र्ई कोई हानि नहीं
क्योंकि तभी यह
देखना होगा कि
नीतियों का कैसा
ड़ रहा है। जनता
रकार वास्तव में
ता प्राप्त करती है।
की निर्धनता और
पा रही है। यदि
ढाँचे का निर्माण
ल्याणकारी बना
क काम कर रही
िक व सामाजिक
। किसी भी दृष्टि
रास्ते पर मुलायम

वाहे काले हों या
है कि मोहरे कौन
ा है। चूंकि उत्तर
: यदि सत्तारूढ़
ाओं से हो जाती
ीय जनता पार्टी
ा कि मायावती
ले जा रही है।
जनता पार्टी
ा का हाथ
से ही चल

है। बांग्लादेश में अल्पसंख्यक हिन्दुओं की स्थिति-परिस्थिति की चर्चा अपने देश में आवश्यक नहीं मानी जाती है। कहा जाता है कि "इसकी चर्चा करने से पड़ोसी बांग्लादेश और भारत के मुसलमानों का मन बिगड़ता है। उनके मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की सेकुलरिटी संदिग्ध होती है। मानवाधिकारों का आघात लगता है।" जबकि वास्तविकता यह है कि वहां के अल्पसंख्यक हिन्दू ही नहीं, ईसाई भी सामान्य अधिकार ही नहीं, मानवाधिकारों से भी वंचित और नर्क से भी बदतर जिन्दगी जीने के लिए मजबूर कर दिये गये हैं। वे भारत की ओर भागते या भारत आते हैं तो सरकारी और सामाजिक यातनाओं तथा राजनीतिक दबावों के कारण। वे अपने बांग्लादेश में भूखा और बीमार रहकर अधिकार वंचित मर जाने के लिए कृपसंकल्प हैं तो भी उनसे कहा जाता है कि "यह देश (बांग्लादेश) तुम्हारा देश नहीं है। तुम हिन्दू हो, तुम्हारा देश भारत है। भारत हमारा शत्रु है। तुम हमारे शत्रु के एजेन्ट हो।" फिर भी वे वहां से भागना नहीं चाहते। उन्हें वहां से भगाया जाता है। वे घुसपैठिए नहीं, शरणार्थी हैं। विस्थापित हैं। वे किसी योजना के तहत भारत नहीं आते या आए हैं। उनके भारत आने का कारण उन पर की जाने वाली अमानवीय यातनाएं और मानवीय संताप हैं।

घुसपैठियों का उद्देश्य:– बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठियों की स्थिति इससे भिन्न है। वे केवल रोजी-रोटी प्राप्त करने और भूख तथा बीमारी से छुटकारा पाने के लिए भारत नहीं आते। वे भारत आते नहीं, उन्हें भारत भेजा जाता है। पहले पूर्वी पाकिस्तान और अब बांग्लादेश की अपनी देशभूमि पर आबादी का दबाव कम करने और भारत की देशभूमि पर आबादी का दबाव बढ़ाकर उस पर काबिज होने की घोषित नीति के तहत उन्हें भेजा जाता था, भेजा जाता है और हम भारत के लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। हमने बांग्लादेश की इस रणनीति के उजागर होने के बाद भी इस ओर ध्यान नहीं दिया कि वह भारत में पांच करोड़ मुस्लिम घुसपैठिए भेजकर अपने देश में आबादी के कारण उत्पन्न होती और बढ़ रही समस्याओं का समाधान करके राहत पाना चाहता है।

लोकसभा और राज्यसभा से लेकर जनसभाओं तक में बार-बार यह कहा

गुलाम, पी.वी., वी.पी. जैसे राजनीतिक लोग और ... बुद्धिजीवी नकारते हैं। इस चर्चा को वे साम्प्रदायिक शत्रुता और देशतोड़क मानते हैं। इसे तथाकथित परम्परागत साम्प्रदायिक सद्भाव पर हमला करना कहते हैं। यही है भारत देश की वह विडम्बना जिसने इसे राष्ट्र नहीं एक लावारिस सराय में

राष्ट्र चिन्तन

बदल दिया है कि जिसकी जब इच्छा हो यहां आए-रहे और जब चाहे लात मारे, जब चाहे यहां अपनी हिस्सेदारी का दावा करके, इसकी भूमि दबा ले, इसकी रोटी छीन ले। इसकी बहू-बेटियों को अपने कब्जे में कर ले और यदि कोई आपत्ति करे तो उसे मानवता पर आक्रमणकारी कहकर कटघरे में खड़ा करके उससे जवाब तलब करे।

घुसपैठ का विरोध:– ऐसा नहीं है कि बांग्लादेशी घुसपैठियों के कारण उत्पन्न वर्तमान और संभावित संकटों एवं समस्याओं पर बहस नहीं हुई या की गयी अथवा इस ओर देशवासियों, सरकारों और दुनिया के देशों का ध्यान आकृष्ट नहीं किया गया। १९८० के दशक में असम का आंदोलन इसी समस्या को लेकर हुआ था। असम का इस्लामीकरण करने की बांग्लादेशी योजना की विधिवत जानकारी मिली तो वहां का युवक उग्र हो उठा। घुसपैठिए बांग्लादेशियों की पहचान करके उन्हें बांग्लादेश वापस भेजने की मांग उठी कि इसके कारण देश की एकता-अखण्डता और सामाजिकता के लिए खतरा बढ़ता जा रहा है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस आंदोलन को हर संभव हथकण्डे अपनाकर दबाना और तोड़ना चाहा था। उसे असमियों का बंगालियों के विरुद्ध आंदोलन कहकर असमियों और बंगालियों को लड़ाने की कुटिल चाल चली गयी थी। आंदोलनकारियों को सी. आई.ए. का एजेन्ट कहा गया था। देशभक्ति के माथे पर क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता और जातीयता की कालिख पोती गयी थी। हत्याकाण्ड और अग्निकाण्ड कराए गये थे। सैकड़ों असमी युवक मार दिये गये थे, किन्तु उन्होंने किसी को भी नहीं मारा था। असम की जनता सड़क पर आ गयी थी। वह आगे-आगे चली थी, राजनीतिक नेता और

विरुद्ध और सहायता के बिना कोई जीत नहीं स...
विश्व हिन्दू परिषद, विद्यार्थी परिषद, राष्ट्रीय ...
के लोगों ने इस समस्या और इससे जुड़े ...

देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया तो भारत सर...
बुद्धिजीवियों द्वारा उन पर हिन्दू- मुस्लिम ...
मुस्लिम घुसपैठियों के कारण बढ़ रही आबादी ...
रहे असंतुलन की समस्या को संसद में ... नहीं
मुस्लिमपरस्त सेकुलरिस्टों ने विजय कुमार मल्होत्रा ...
करने दी। शोरशराबा करके उनकी बात दबा दी ...
जाएगी तो मुसलमान नाराज हो जाएंगे। यह मा...
लिए सर्वथा अजानी है कि विदेशी घुसपैठियों ...
लोगों के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं ...
ध्यान आकृष्ट करने या उन पर चर्चा करने से वहां ...
बांग्लादेशी घुसपैठियों की चर्चा और उनको ...
मांग से यदि भारत के कुछ मुसलमान नाराज ...
उनकी देशभक्ति पर प्रश्नचिन्ह लग जाता ...
घुसपैठियों के साथ उनके मजहबी रिश्ते, राष्ट्रीय ...
संकट पैदा करें तो क्या उसे जायज ...

सत्य की स्वीकारोक्ति:– बांग्ला...
सीमावर्ती क्षेत्रों में जनसंख्या की अकूत ...
हिन्दू परिषद या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता ...
सोच कहा जाता है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण ...
सत्य को बहुत दिन छिपा और दबाकर ...
मंत्रालय को अंततोगत्वा बांग्लादेशी घुसपैठ ...

...सरकार के गले की हड्डी बने ...

देशघाती साबित

ने वाली घुसपैठ जारी है, पर जब इस पर चर्चा होती है तो इस

मानना है कि घुसपैठ के प्रति यह २

बढ़ाकर असम सहित पूर्वी पाकिस्तान
ंग्रेजी विफल रणनीति बहुत पुरानी है।
इस समस्या पर चर्चा होती आ रही है।
के नेता थे तो उन्होंने असम में आबादी
थोक वोट बैंक बनाने का नियोजित
दोलाई कमेटी की रपट में उन सभी
वास्तविकता है। भारत आजाद हुआ।
किस्तान बना, लेकिन सीमावर्ती क्षेत्रों में
न नहीं हुआ, बढ़ा। वोट की कांग्रेसी भूख
के इस आक्रमण का यथार्थ समझने में बाधक
को संरक्षण देने को तथाकथित सेकुलरिटी
यता से जोड़ा गया। उन्हें "अपना ही बन्धु"
संभावित संकट को अनदेखा किया गया।

गया है कि 'भारत में बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठ सामान्य बात नहीं है। यह भारत पर बांग्लादेश की ओर से आबादी का आक्रमण है। यह मुस्लिम विस्तारवादी योजना के तहत किया जा रहा कार्य है। इसके कारण भारत का सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चरित्र प्रभावित होगा। आबादी का संतुलन बिगड़ेगा। आबादी का संतुलन बिगाडकर हमारे पडोसी और उनके समर्थक मानवाधिकारों और राजनीतिक अधिकारों की मांग करेंगे। यह मांग बढ़ते-बढ़ते संविधान, संसद, विधानसभाओं और सरकारों के गठन को प्रभावित करने लगेंगी। आबादी के आधार पर जिलों का गठन, प्रशासन में प्रतिनिधित्व, शासन में हिस्सा, नीतियों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन करने के लिए विवश किया जाएगा। इस विवशता को एक दिन केवल एक नहीं अनेक मजहबी विभाजनों में बदलकर देश के विभिन्न इलाकों के पहले मुस्लिम स्वायत्त परिषदों का गठन और बाद में उन्हें सार्वभौम 'इस्लामिक

...वाला ही नहीं, शर्मनाक भी है। यदि
हिन्दुओं की बहू-बेटियों की इज्जत से
इसकी जांच की जानी चाहिए। घुसपैठ
और सांस्कृतिक प्रदूषण एवं असंतुलन की
नहीं हुई हैं। इनके आयाम सामने आने तक प्रत्ये
देर हो चुकी होगी। जरूरत अब इस बात की है कि
राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक बुलाकर इस समस्या
गंभीर चर्चा करके समय रहते इसका कोई संतोषजनक
जाए। यदि इसे किसी सम्प्रदाय और उसके वोट बैंक के सा
ओर देखा -सोचा जाता रहेगा तो २१वीं सदी के प्रथम दशक
और विभाजन और भारत की भूमि पर एक और सार्वभौम
संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता, नकारा नहीं
किए, कराए और स्वीकार किए गए भारत विभाजन
भारत के लोग एक और विभाजन स्वीकार
एक और विभाजन स्वीकार करने...

चौंकाने वाले
और दुष्परिणाम देखना
क्षेत्र में जाकर सहज और...
गैर मुस्लिम, विशेषकर हिन्दू
सरकारी अधिकारी ने डरते- डरते

घुसपैठिए भेजने के पीछे
और इसे ही मुस्लिम
सहायता से पूरा
के पीड़ित

...ता पार्टी मायावती सरकार को समर्थन
...जपा को मायावती सरकार का समर्थन
... भाजपा दलितों की हितैषी है, लेकिन
...रकार किस तरह से कार्य कर रही है और
प्रभा... जनता और स्वयं भारतीय जनता पार्टी के
किसी भी सरकार को तभी समर्थन देती है और स
सामाजिक न्याय कर सकने में समर्थ होती है तथा अ
आज उत्तर प्रदेश देश का एक अत्यधिक निर्धन र
औद्योगिक रुग्णता को दूर करने में मायावती सरक
मायावती सरकार उत्तर प्रदेश के आर्थिक विकास के
कर पाती और प्रशासनिक तंत्र को वास्तव में चुस्त
पाती तो यह कहा जा सकता था कि यह सरकार अ
है, लेकिन अभी तो जो कुछ हो रहा है उसका सम्बन्ध
विकास से नहीं है- और कल्याण सिंह का यही क
से विकास की ओर नहीं बढ़ रहा, वह उस रास्ते पर
सिंह के शासनकाल में चल रहा था।

मोहरों का रंग बदल देने से खेल की स्थिति नहीं
सफेद या अन्य किसी रंग के, इससे कोई फर्क नहीं
चल रहा है और किस तरह से चल रहा है तथा खे
...जनता सत्ता के खेल को बड़ी गम्भीरता
...की साठगांठ भ्रष्ट पुलिस तथा प्रशासन
...णाम बहुजन समाज पार्टी को त
...श्चित रूप से वर्तमान में
...विकास और साम
...कार्य,

॥ काशिका ॥

पाणिनीयव्याकरणसूत्रवृत्तिः

पण्डितवरवामनजयादित्यविरचिता ।

काशीस्थराजकीयपाठशालायां धर्म्मशास्त्राध्यापकेन
रानडोपाख्येन बालशास्त्रिणा परिशेोधिता ।

काश्यां मेडिकलहालनामके यन्त्रालये मुद्रिता ।

KĀŚIKĀ

A COMMENTARY ON PĀṆINI'S GRAMMATICAL APHORISMS

BY

PAṆḌIT VĀMANA AND JAYĀDITYA

EDITED BY

PAṆḌIT BĀLA ŚASTRI,

PROFESSOR OF HINDU LAW IN THE SANSKRIT COLLEGE, BENARES.

Second Edition.

BENARES:
PRINTED AT THE MEDICAL HALL PRESS.
1898.

भूमिका ।

काशिका

पाणिनिसूत्राणां व्याख्या

सूत्रपाठक्रमानुसारिणी श्रीमन्महामहिमभट्टोजिदीक्षितविरचित-सिद्धान्तकौमुदीमरीचिप्रसारतः पूर्वं सर्वस्मिन् भारते वर्षे पठनपाठनादि-प्रचुरविततप्रचारापि सम्प्रति लघीयस्त्वेन व्युत्पत्तिसौकर्यानुरोधेन चोक्तकौमुद्या एव पठनपाठनादिव्यवहारगोचरतयेयमतीवास्तं गता लुप्तकल्पे-वास्ते । यस्याः संस्कृतविद्येकमहाशरणे ऽस्मिन् क्षेत्र ऽपि नैकमप्यख-ण्डितं पुस्तकं कस्यापि पुस्तकालयउपलभ्यते । एतन्निर्मातारौ च वाम-नजयादित्यनामानौ सूरिणौ भट्टोजिदीक्षितकृतप्रौढमनोरमायां तद्धितप्र-करणस्थबह्वल्पार्थाद्धिति सूत्रे एतत्सर्वं जयादित्यमतेनोक्तं वामनस्तु मन्यते इति तयोः पार्थक्येन प्रदर्शनात् प्रथमद्वितीयपञ्चमषष्ठा वामनकृ-तवृत्तय इतरे जयादित्यकृताइत्यभियुक्ता इति तत्रत्यशब्दरत्नग्रन्थाच्चेतरे तरं भिन्नावेव । महाराष्ट्रभाषीयलोकोत्तरललितकाव्यनिर्मातृवामनपण्डि-तादशेषतन्त्रस्वतन्त्रादस्याः कर्ता वामनो ऽन्य एव ।

> बोपदेवमहाग्राहग्रस्तो वामनदिग्गजः ।
> कीर्तेरेव प्रसङ्गेन माधवेन विमोचितः ॥

इति शब्दकौस्तुभमनोरमयोरुपलभ्यमानश्लोकतो निखिलवैदि-कभारतीतत्त्वार्थप्रकाशकभाष्यकारतस्ततोपि प्राचीनाद्बोपदेवाचार्यतश्चास्य काशिकाकारस्य प्राचीनतरत्वस्य निर्णयेन नवनीताभिधेमहाराष्ट्रभाषीयवि-विधमनोहरकाव्येकदेशसंग्रहे तस्य महाकवेर्वामनपण्डितस्य १५६५ मिते शककाले संस्थितेरुपलम्भेन च तयोरवरतो वर्षपञ्चशत्या अन्तरालकालस्य संभावनात् । अयं च वामनो जयादित्यश्च जैनावित्यनुमीयते । सकलै-रास्तिकैः शिष्टैरादृतस्य ग्रन्थारम्भसमयेमङ्गलाचरणस्याशीर्नमस्क्रियावस्तु-

निर्देशान्यतमस्याप्युपेक्षणात् । वृत्तौ भाष्ये इत्यादि प्रबन्धमुखपद्ये समाहृत्यान्यनन्त्वाणीत्यमरश्लोकसमानच्छायोपलम्भाच्च । इदं च दूरतरमनयोर्नास्तिकत्वे प्रमाणं यदमू कुचत्यानपि कतिपयान्प्रयोगानुपलभ्य तेषां च सूत्रवार्तिकभाष्यैः खिद्विमपश्यन्तौ स्वतन्त्राविव बहूनि वचनानि कल्पयामासतुर्येमाच्चेत्येवमादीनि, सूत्रमध्ये च प्रचिक्षिपतुर्बहूनि पदानि, ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल् क्वरप्ष्युनामित्यादिरूपेण, येनाद्य यावदास्तिकानामपर्यालोचितरहस्यानामङ्गपारायणेकप्रवणानां पारायणे वैगुण्यमुपलभ्यते । आस्तिको हि सूत्रभङ्गादिप्रयासेनापि सूत्राक्षरैरेव रूपाणि साधयितुं यतेत तथाप्यशक्नुवन्नसाध्वेतदित्यभिदधीत न तु शास्त्रं कल्पयेदन्यथयेद्वा । एवं संमाननोत्सञ्जनेति सूत्रे संमाननोदाहरणं नयते चार्वी लोकायते इत्यप्यत्र प्रमाणं चार्वी बुद्धिः तत्संबन्धादाचार्योऽपि चार्वा स लोकायते शास्त्रे पदार्थान्नयते उपपत्तिभिः स्थिरीकृत्य शिष्येभ्यः प्रापयति युक्तिभिः । स्थाप्यमानाः संमानिताः पूजिता भवन्ति इति हि लिखितम् । आस्तिको हि साङ्ख्ये योगे ऽन्यस्मिन्वा ऽऽस्तिकशास्त्रे शिष्याणां व्युत्पादनेन संमाननमभिप्रेयान्न तु नितरां विरुद्धे लोकायतशास्त्रे व्युत्पादनेन । आसंश्च तस्मिन्त्समये भूयांसो जैनाः पाणिनीयतन्त्रे निष्णाता न्यासकारप्रभृतयः । न्यासकारस्य जैनत्वं हि ।

जयन्ति ते सदा सन्तः सर्वोपायैरुपार्जितम् ।
गुणानां सुमहद् वृन्दं दोषाणां परिमार्जनम् ॥
अन्यतः सारमादाय कृतैषा काशिका यथा ।
वृत्तिस्तस्या यथाशक्ति क्रियते पञ्जिका तथा ॥

इति ग्रन्थारम्भस्थपद्यद्वयेन इति श्रीबोधिसत्त्वदेशीयाचार्यजिनेन्द्रबुद्धिपादविरचितायां काशिकाविवरणपञ्जिकायां प्रथमाध्याय इत्युपसंहारेण च व्यक्तमेव । मन्ये चेदमेव निरीक्ष्य नास्तिककृतनिबन्धपठनपाठनाभ्यामास्तिकजनानां दुरितमाशङ्कमानैरशेषप्रमाणैकबद्धादरैरास्तिक-

भूमिका ।

शिरोमणिभिभट्टोजिदीक्षितहरिदीक्षितनागोजिभट्टप्रभृतिभिः पण्डितवरैरुपस्थापितानि वचनानि तादृशा निबन्धा व्यधीयन्त यत्र कृतादराणामर्वाचां शास्त्ररसिकानां स्मृतिपथादपि दूरमपसस्रुस्तात्कालिकाः प्रबन्धाः । अस्तु नामैतन्निबन्धकारो नास्तिको गुणास्त्वस्यां वृत्तौ भूयांसो लसन्ति सर्वेषु सूत्रेषु पूर्वपूर्वसूत्रस्थपदसंबन्धप्रदर्शनेन सरलवृत्तिनिबन्धेन बहुतरोदाहरणप्रत्युदाहरणदानेन च सूत्रार्थप्राञ्जलीकरणमुखा विषयविवेचनप्रभृतयश्च ये ऽर्वाचीननिबन्धानपेक्ष्य व्युत्पित्सुजनानतीवोपकुर्युरिति भवेदिमां वृत्तिं निर्ध्यायतां निश्चयः । तामिमां परमप्राचीनां व्युत्पित्सुजनानां महान्तमुपयोगमादधानां वृत्तिमालोच्य विलुप्तप्रायां प्राचीनसंस्कृतनिबन्धोज्जीवनबद्धदीक्षैर्विदेशीयविद्वद्वरप्रोत्साहितैश्च काशिकराजकीयपाठशालाप्रधानाध्यक्षैः प्रभुवरश्रीग्रिफिथसाहिबाभिधमहाशयैः प्रवर्तितः कथं चिद् द्वित्रखण्डितपुस्तकसंयोगेन समग्रं पुस्तकं समासाद्य प्रवर्तमानो ऽन्तरा मिलितेन गुर्जरप्रान्तस्थसकलपाठशालाध्यक्षपदवीमलंकुर्वता श्रीडाक्टरब्यूलरसाहिबाभिधमहाशयेन च महान्तमनुग्रहमाविष्कुर्वता स्वपाठशालास्थप्रार्थितैतत्पुस्तकाध्यायप्रेषणेन काश्मीरमण्डलाहृतशारदाक्षरलिखितैतत्पुस्तकप्रापणेन च भृशं लघूकृतपरिश्रमो ऽमुद्रयमिमां वृत्तिं काशीविद्यासुधानिधिनामकपत्रिकाद्वारा । बहुत्र चास्यां परिवृत्तियोग्यान्पाठान्निश्चिन्वन्नपि द्वित्रेष्वपि पुस्तकेषु तथैव तानवेक्ष्य ग्रन्थकर्त्रैव तथोपनिबद्धान्मन्यमानस्तथैवास्थापयम् । सेयं वृत्तिः प्रागुक्तपत्रद्वारा प्रकाशितापि तत्पत्रग्रहणासमर्थानां शास्त्ररसिकानां पुनरपि पुरेव खेदं न नोदयेदिति पर्यालोच्य पृथगमुद्रयं तामिमामवलोकयन्तु व्युत्पित्सुजनोपकारिणीं प्राचीनतमां वृत्तिं शास्त्ररसिकाः क्षाम्यन्तु च सीसाक्षरयोजकदोषेण शोधकदृष्टिदोषेण च प्रमादतो ऽनुपलक्षितानशुद्धिदोषान्गुणैकपक्षपातिनः सफलयन्तु च मामकीनं परिश्रममिति प्रार्थयते ।

काशिकराजकीयप्रधानपाठशालायां धर्मशास्त्राध्यापको

बालशास्त्री

ओ३म्
स्वामिनामानन्द देवस्य
२२।३।२८

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ काशिका ॥

वृत्तौ भाष्ये तथा धातुनामपारायणादिषु ।
विप्रकीर्णस्य तन्त्रस्य क्रियते सारसंग्रहः ॥ १ ॥
इष्टयुपसंख्यानवती शुद्धगणा विवृतगूढसूत्रार्था ।
व्युत्पन्नरूपसिद्धिर्वृत्तिरियं काशिका नाम ॥ २ ॥
व्याकरणस्य शरीरं परिनिष्ठितशास्त्रकार्य*मेतावत् ।
शिष्टः परिकरबन्धः क्रियतेऽस्य ग्रन्थकारेण ॥ ३ ॥

॥ अथ शब्दानुशासनम् ॥

केषां शब्दानाम् । लौकिकानां वैदिकानां च । कथमनुशासनम् । प्रकृत्यादिविभागकल्पनया सामान्यविशेषवता लक्षणेन । अथ किमर्थो वर्णानामुपदेशः । प्रत्याहारार्थः । प्रत्याहारो लाघवेन शास्त्रप्रवृत्त्यर्थः ॥

अ इ उ ण् ॥ १ ॥

अ इ उ इत्यनेन क्रमेण वर्णानुपदिश्यान्ते णकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवत्येकेन उरण् रपर इत्यकारेण । ह्रस्वमवर्णं प्रयोगे संवृतम् । दीर्घप्लुतयोस्तु विवृतत्वम् । तेषां सावर्ण्यप्रसिद्ध्यर्थमकार इह शास्त्रे विवृतः प्रतिज्ञायते । तस्य प्रयोगार्थम् अ अ इति शास्त्रान्ते प्रत्यापत्तिः करिष्यते ॥

ऋ ऌ क् ॥ २ ॥

ऋ ऌ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते ककारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति त्रिभिः । अकः सवर्णे दीर्घ इत्यकारेण । इको गुणवृद्धी इतीकारेण । उगितश्चेत्युकारेण । ऋकारादयो वर्णाः प्रचुरप्रयोगविषयास्तेषां सुज्ञानमुपदेशे प्रयोजनम् । ऌकारस्तु क्लृपिस्थ एव प्रयुज्यते क्लृपेश्च पूर्वत्रासिद्धमिति लत्वमसिद्धम् । तस्यासिद्धत्वाद् ऋकार एव अच्कार्याणि भविष्यन्तीति किमर्थम् ऌकार उपदिश्यते । लत्वविधानाद्यानि परायच्कार्याणि तानि ऌकारे यथा स्युरिति । कानि पुनस्तानि । प्लुतः स्वरितो द्विर्वचनम् । क्लृप्तशिखः प्रक्लृप्तवानिति । यच्चाशक्तिजमसाधुशब्दरूपं तदनुकरणस्यापि

* 'कृत्य' पाठान्तरम् ।

साधुत्वमिष्यते । तत्स्यस्यापि ऌकारस्याच्कार्यप्रतिपत्त्यर्थम् ऌकारोपदेशः क्रियते । ऋतक इति प्रयोक्तव्ये शक्तिवैकल्यात् कुमारी ऌतक इति प्रयुङ्क्ते तदन्यो ऽनुकरोति कुमार्य्ऌतक इत्याहेति ॥

ए ओ ङ् ॥ ३ ॥

ए ओ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य अन्ते ङकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवत्येकेन । एङि पररूपमित्येकारेण ॥

ऐ औ च् ॥ ४ ॥

ऐ औ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते चकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति चतुर्भिः । अचः परस्मिन्पूर्वविधावित्यकारेण । इच एकाचो ऽम् प्रत्ययवच्चेति इकारेण । एचो ऽयवायाव इति एकारेण । वृद्धिरादैजिति ऐकारेण ।

प्रत्याहारेनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु न ।
आचारादप्रधानत्वाल्लोपश्च बलवत्तरः ॥

वर्णेषु ये वर्णैकदेशा वर्णान्तरसमानाकृतयस्तेषु तत्कार्यं न भवति तच्छायानुकारिणो हि ते न पुनस्त एव । पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यं हि वर्णमिच्छन्त्याचार्याः । नुड्विधिलादेशविनामेषु ऋकारे प्रतिविधातव्यम् । नुड्विधौ ऋकारग्रहणम् । आनृधतुः । आनृधुः । लादेशे ऋकारग्रहणम् । कॢप्तः कॢप्तवान् । विनामे ऋकारग्रहणम् । कर्तॄणाम् ॥

ह य व र ट् ॥ ५ ॥

ह य व र इत्येतान्वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते टकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवत्येकेन । शश्छोटीत्यकारेण । अयं रेफो यकारात्पर उपदिश्यते । तस्य यर्ग्रहणेन यय्ग्रहणेन च ग्रहणे सति स्वर्नयति प्रातर्नयतीत्यत्र यरो ऽनुनासिके ऽनुनासिको वेति अनुनासिकः प्राप्नोति । मद्रह्रदो भद्रह्रद इत्यत्र द्विर्वचनं प्राप्नोति अचो रहाभ्यां द्वे इति । कुण्डं रथेन वनं रथेनेत्यत्रानुस्वारस्य ययि परसवर्ण इति परसवर्णः प्राप्नोति । नैष दोषः । आकृतौ पदार्थे समुदाये सकृल्लक्ष्ये लक्षणं प्रवर्ततइत्येतस्मिन् दर्शने यरो ऽनुनासिके ऽनुनासिको वा ऽन्तरतमो भवतीत्येवमेतत्प्रवर्तते । तदनेन गकारादीनां ङकारादयो ये यथा स्वस्थानतो गुणतश्चान्तरतमास्ते सर्वे विहिताः । ये तु न स्थानतः नापि गुणतः स्थानमात्रेण गुणमात्रेण वा अन्तरतमास्ते सर्वे निवर्तिता इति स्थानमात्रान्तरतमो रेफस्य यकारो न भवति । द्विर्वचनेपि रेफस्य यरन्तर्भावे सति यर्कार्यत्वं प्राप्तं तत्साक्षाच्छिष्टेन निमित्तभावेन बाध्यत इति न

द्विरुच्यते रेफः । अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण इत्येतदप्यनुस्वारान्तरतमं सकृदेव परसवर्णं विदधाति । न च रेफस्यानुस्वारान्तरतमः सवर्णोऽस्तीति न भविष्यति कुण्डं रथेन वनं रथेनेत्यत्र । अत्रां मध्ये विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयानामप्युपदेशः कर्त्तव्यः । किं प्रयोजनम् । उरᳶकेण । उरःकेण । उरᳶपेण । उरःपेण । अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाय इति णत्वं यथा स्यादिति ।

ल ण् ॥ ६ ॥

लृ इत्येकं वर्णमुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते णकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति त्रिभिः । अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्यय इत्यकारेण । इणकोरितीकारेण । इको यणचीति यकारेण । इण्ग्रहणानि सर्वाणि परेण णकारेण अण्ग्रहणानि तु पूर्वेण । अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्यय इत्येतदेकमनेन । अथ किमर्थमन्त्ग्रहणमेवैतत्र क्रियते । नैवं शक्यम् । अन्तःस्थानामपि हि सवर्णानां ग्रहणमिष्यते सय्यँन्ता । सव्वँत्सरः । यल्लँलोकम् । तल्लँलोकमित्यत्रानुस्वारस्यानुनासिके ययि परसवर्णे कृते तस्य यग्ग्रहणेन ग्रहणाद् द्विर्वचनं यथा स्यादिति । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थो नानुबन्धः । लकारे त्वनुनासिकः प्रतिज्ञायते । तेन उरण् रपर इत्यत्र प्रत्याहारग्रहणाल्लपरत्वमपि भवति ॥

ञ म ङ ण न म् ॥ ७ ॥

ञ म ङ ण न इत्येतान्वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते मकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति त्रिभिः । पुमः खय्यम्पर इत्यकारेण । हलो यमां यमि लोप इति यकारेण । ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यमिति ङकारेण । ञमन्ताड्ड इति ञकारेणापि ग्रहणमस्य दृश्यते । के चित्तु सर्वाण्येतानि प्रत्याहारग्रहणानि ञकारेण भवन्त्विति मकारमनुबन्धं प्रत्याचक्षते । तथा तु सति ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यमित्यत्रागमिनोर्झभोरभावादागमाभावप्रतिपत्तौ प्रतिपत्तिगौरवं भवति ॥

झ भ ञ् ॥ ८ ॥

झ भ इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते ञकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवत्येकेन, अतो दीर्घो यञीति यकारेण ॥

घ ढ ध ष् ॥ ९ ॥

घ ढ ध इत्येतान्वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते षकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति द्वाभ्याम् । एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोरिति भकारझकाराभ्याम् ॥

जबगडदश् ॥ १० ॥

ज ब ग ड द इत्येतान्वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते शकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति षड्भिः। भोभगोअघोअपूर्वस्य योशीति अकारेण। हशि चेति हकारेण। नेड्वशि कृतीति वकारेण। झलां जश् झशीति जकारझकाराभ्याम्। एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोरिति बकारेण ॥

खफछठथचटतव् ॥ ११ ॥

ख फ छ ठ थ च ट त इत्येतान्वर्णानुपदिश्यान्ते वकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवत्येकेन नश्छव्यप्रशानिति छकारेण। खफग्रहणमुत्तरार्थम् ॥

कपय् ॥ १२ ॥

क प इत्येतौ वर्णावुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते यकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति चतुर्भिः। अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण इति यकारेण। मय उञो वो वेति मकारेण। झयो हो ऽन्यतरस्यामिति झकारेण। पुमः खय्यम्पर इति खकारेण ॥

शषसर् ॥ ॥ १३ ॥

श ष स इत्येतान्वर्णानुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते रेफमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति पञ्चभिः। यरो ऽनुनासिके ऽनुनासिको वेति यकारेण। झरो झरि सवर्णे इति झकारेण। खरि चेति खकारेण। अभ्यासे चर्च्चेति चकारेण। शर्पूर्वाः खय इति शकारेण ॥

हल् ॥ १४ ॥

ह इत्येकं वर्णमुपदिश्य पूर्वांश्चान्ते लकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति षड्भिः। अलो ऽन्त्यात्पूर्व उपधेति अकारेण। हलो ऽनन्तराः संयोग इति हकारेण। लोपो व्योर्वलीति वकारेण। रलो व्युपधाद्धलादेः संश्चेति रेफेण। झलो झलीति झकारेण। शल इगुपधादनिटः क्स इति शकारेण। अथ किमर्थमुपदिष्टो ऽपि हकारः पुनरुपदिश्यते। कित्त्वविकल्पक्सेड्विधयो यथा स्युरिति। स्निहित्वा स्नेहित्वेत्यत्र रलो व्युपधाद्धलादेः संश्चेति कित्त्वं वा यथा स्यात्। लिहेरलिक्षदिति शल इगुपधादनिटः क्स इति क्सो यथा स्यात्। रुदिहि स्वपिहीति वलादिलक्षण इड्यथा स्यात्। अदाग्धाम्। झल्ग्रहणेषु च हकारस्य ग्रहणं यथा स्यात्। यद्येवं ह य व र डित्यत्र तर्हि किमर्थमुपदिश्यते। महाँहि सः देवा हसन्तीत्यत्राड्ग्रहणेषु चाश्ग्रहणेषु च

ग्रहणं यथा स्यात्। हशि चेति हकारस्य ग्रहणं यथा स्यात्। ब्रह्मणो हसति। हशि चेति उत्वं यथा स्यात्।

एकस्मान् ङञणवटा द्वाभ्यां षस्त्रिभ्य एव कणमाः स्युः।
ज्ञेयौ चयौ चतुर्भ्यो रः पञ्चभ्यः शलौ षड्भ्यः॥

इति। इति प्रत्याहारः॥

॥ अथ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

वृद्धिरादैच् ॥ १ ॥

वृद्धिशब्दः संज्ञात्वेन विधीयते प्रत्येकमादैचां वर्णानां सामान्येन तद्भावितानामतद्भावितानां च। तपरकरणमैजर्थं तादपि परस्तपर इति खट्वैडकादिषु त्रिमात्रचतुर्मात्रप्रसङ्गनिवृत्तये। आश्वलायनः। ऐतिकायनः। औपगवः। औपमन्यवः। शालीयो मालीयः। वृद्धिप्रदेशाः सिचि वृद्धिः परस्मैपदेष्वित्येवमादयः॥

अदेङ् गुणः ॥ २ ॥

गुण शब्दः संज्ञात्वेन विधीयते प्रत्येकमदेङां वर्णानां सामान्येन तद्भावितानामतद्भावितानां च। तपरकरणं त्विह सर्वार्थम्। तरिता। चेता। स्तोता। पचति। जयति। अहं पचे। गुणप्रदेशा मिदेर्गुण इत्येवमादयः॥

इको गुणवृद्धी ॥ ३ ॥

परिभाषेयं स्थानिनियमार्था। अनियमप्रसङ्गे नियमो विधीयते। वृद्धिगुणौ स्वसंज्ञया शिष्यमाणाविक एव स्थाने वेदितव्यौ*॥ वक्ष्यति सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः अङ्गस्य गुण इति स इक एव स्थाने वेदितव्यः। तरति। नयति। भवति। वृद्धिः खल्वपि। अकार्षीत्। अहार्षीत्। अचैषीत्। अनैषीत्। अलावीत्। अस्तावीत्। गुणवृद्धी स्वसंज्ञया विधीयेते तत्र इक इति एतदुपस्थितं द्रष्टव्यम्। किं कृतं भवति। द्वितीया षष्ठी प्रादुर्भाव्यते। मिदिमृजिपुगन्तलघूपधर्च्छिदृशिक्षिप्रक्षुद्रेष्वङ्गेनेग्विशेष्यते। जुसिसार्वधातुकादिगुणेष्विकाङ्गं विशेष्यते। मेद्यते। अबिभयुः†। इक इति किम्। आत्सन्ध्यक्षरव्यञ्जनानां मा भूत्। यानम्। ग्लायति। उम्भिता। पुनर्गुणवृद्धिग्रहणं स्वसंज्ञया विधाने नियमार्थम्। इह माभूत्। द्यौः। पन्थाः। सः। इममिति॥

न धातुलोप आर्धधातुके ॥ ४ ॥

---

* भवत इति वेदितव्यम्। पा०।

† गुणवृद्धी इत्यारभ्याबिभयुरित्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते।

ह्रस्व
स्थूल दूर युव ह्रस्व क्षिप्र क्षुद्राणां परमणि पूर्वस्य च गुणः

धात्वेकदेशो धातुस्तस्य लोपो यस्मिन्नार्धधातुके तदार्धधातुकं धातुलोपं तत्र ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः। लोलुवः। पोपुवः। मरीमृजः। लोलूयादिभ्यो यङन्तेभ्यः पचाद्यचि विहिते यङोऽचि चेति यङो लुकि कृते तमेवाचमाश्रित्य ये गुणवृद्धी प्राप्ते तयोः प्रतिषेधः। धातुग्रहणं किम्। लूञ्। लविता। रेडसि। पर्णं नयेः। अनुबन्धप्रत्ययलोपे मा भूत्। रिषेर्हिंसार्थस्य विच्प्रत्ययलोपउदाहरणं रेडिति। आर्धधातुक इति किम्। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति। सार्वधातुके मा भूत्। इक इत्येव। अभाजि। रागः॥

क्ङिति च ॥ ५ ॥

निमित्तसप्तम्येषा। क्ङिन्निमित्ते ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः। चितः। चितवान्। स्तुतः। स्तुतवान्। भिन्नः। भिन्नवान्। मृष्टः। मृष्टवान्। ङिति खल्वपि। चिनुतः। चिन्वन्ति। मृष्टः। मृजन्ति। गकारोऽप्यत्र चर्त्वभूतो निर्दिश्यते। ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः। जिष्णुः। भूष्णुः। इक इत्येव। कामयते। लैगवायनः। मृजेरजादौ संक्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते। संक्रमो नाम गुणवृद्धिप्रतिषेधविषयः। परिमृजन्ति। परिमार्जन्ति। परिमृजन्तु। परिमार्जन्तु। लघूपधगुणस्याप्यत्र प्रतिषेधः। अचिनवमसुनवमित्यादौ लकारस्य सत्यपि ङित्त्वे यासुटो ङिद्वचनं ज्ञापकं ङिति यत्कार्यं तल्लकारे ङिति न भवतीति॥

दीधीवेवीटाम् ॥ ६ ॥

दीधीवेव्योरिटश्च ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः। आदीध्यनम्। आदीध्यकः। आवेव्यनम्। आवेव्यकः। इटः खल्वपि। श्वः कणिता। श्वो रणिता। वृद्धिरिटो न संभवतीति लघूपधगुणस्यात्र प्रतिषेधः॥

हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ ७ ॥

भिन्नजातीयैरज्भिरव्यवहिताः श्लिष्टोच्चारिता हलः संयोगसंज्ञा भवन्ति समुदायः संज्ञी। जातौ चेदं बहुवचनं तेन द्वयोर्बहूनां च संयोगसंज्ञा सिद्धा भवति। अग्निरिति गनौ। अश्व इति शवौ। कर्ण इति रणौ। इन्द्रश्चन्द्रो मन्द्र इति नदराः। उष्ट्रो राष्ट्रं भ्राष्ट्रमिति षटराः। तिलान्स्त्यावपतीति नसतरयाः। नसतरया वा। हल इति किम्। तितउच्छत्रम्। संयोगान्तस्य लोप इति लोपः स्यात्। अनन्तरा इति किम्। पचति पनसम्। स्कोः संयोगाद्योरिति लोपः स्यात्। संयोगप्रदेशाः संयोगान्तस्य लोप इत्येवमादयः॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ ८ ॥

मुखसहिता नासिका मुखनासिका तया य उच्चार्यते वर्णः सोऽनुनासिकसंज्ञो भवति। आङोऽनुनासिकश्छन्दसि। अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्रपुत्रे। चन

ओँ इन्द्रः* । मुखग्रहणं किम् । अनुस्वारस्यैव हि स्यात् । नासिकाग्रहणं किम् । कचटतपानां माभूत् । अनुनासिकप्रदेशाः । आङोनुनासिकश्छन्दसीत्येवमादयः ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ ९ ॥

तुल्य शब्दः सदृशपर्याय, आस्ये भवमास्यं ताल्वादिस्थानं, प्रयतनं प्रयत्नः स्पृष्टतादिर्वर्णगुणः । तुल्य आस्ये प्रयत्नो यस्य वर्णस्य येन वर्णेन सह स समानजातीयं प्रति सवर्णसंज्ञो भवति । चत्वार आभ्यन्तराः प्रयत्नाः सवर्णसंज्ञायामाश्रीयन्ते । स्पृष्टता ईषत्स्पृष्टता संवृतता विवृतता चेति । अअ इति यथा ऽकारा उदात्तानुदात्तस्वरिताः प्रत्येकं सानुनासिकानिरनुनासिकाश्च ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदादष्टादशधा भिद्यन्ते । तथेवर्णः । तथोवर्णः । तथा ऋवर्णः । ऌवर्णस्य दीर्घा न सन्ति । तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते । सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि । अन्तःस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिता यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च । रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति । वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः । दण्डाग्रम् । खट्वाग्रम् आस्यग्रहणं किम् कटचतपानां भिन्नस्थानानां तुल्यप्रयत्नानां मा भूत् । किं च स्यात् । तप्ता तर्प्तुमित्यत्र झरोझरि सवर्णइति पकारस्य तकारे लोपः स्यात् । प्रयत्नग्रहणं किम् । इचुयशानां तुल्यस्थानानां भिन्नप्रयत्नानां मा भूत् । किं च स्यात् । अश्च्योततीत्यत्र झरोझरि सवर्णइति शकारस्य चकारे लोपः स्यात् ॥ ऋकारऌकारयोः सवर्णसंज्ञा वक्तव्या ॥ * ॥ होतृऌकारः । होतॄकारः । उभयोर्ऋवर्णस्य ऌवर्णस्य चान्तरतमः सवर्णो दीर्घो नास्तीति ऋकार एव दीर्घो भवति । सवर्णप्रदेशा अकः सवर्णे दीर्घ इत्येवमादयः ॥

नाज्झलौ ॥ १० ॥

अच्च हल् च अज्झलौ तुल्यास्यप्रयत्नावपि अज्झलौ परस्परं सवर्णसंज्ञौ न भवतः । अवर्णहकारौ दण्डहस्तः । इवर्णशकारौ दधिशीतम् । सवर्णदीर्घत्वं न भवति । वैपाशो मत्स्यः । आनडुहं चर्मेति यस्येतिचेति लोपो न भवति ॥

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ११ ॥

ईत् ऊत् एत् इत्येवमन्तं द्विवचनं शब्दरूपं प्रगृह्यसंज्ञं भवति । अग्नी इति । वायू इति । माले इति । पचेते इति । पचेथे इति । ईदूदेदिति किम् । वृक्षावत्र । प्लक्षावत्र । द्विवचनमिति किम् । कुमार्यत्र । किशोर्यत्र । तपरकरणमसंदेहार्थम् । प्रगृह्यप्रदेशाः । प्लुतप्रगृह्या अचीत्येवमादयः । ईदादीनां प्रगृह्यत्वे मणीवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

* अपः । पा० ।

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम ।
दम्पतीव जम्पतीव रोदसीव ॥

अदसो मात् ॥ १२ ॥

अदसः संबन्धी यो मकारस्तस्मात्परईदूदेतः प्रगृह्यसंज्ञा भवन्ति । अमी अत्र । अमी आसते । अमू अत्र । अमू आसाते । एकारस्य नास्त्युदाहरणम् । अदस इति किम् । शम्यत्र । दाडिम्यत्र । मादिति किम् । अमुके ऽत्र ॥

शे ॥ १३ ॥

शे इत्येतत्प्रगृह्यसंज्ञं भवति । किमिदं शे इति । सुपामादेशश्छन्दसि । न युष्मे वाजबन्धवः । अस्मे इन्द्राबृहस्पती । युष्मे इति । अस्मे इति । त्वे रायः । मे रायः । त्वे इति । मे इति । छान्दसमेतदेवैकमुदाहरणम् अस्मे इन्द्राबृहस्पती इति । तत्र तथा पाठात् । इतरत्तु लौकिकमनुकरणम् । युष्मे इति । अस्मे इति त्वे इति । मे इति ॥

निपात एकाजनाङ् ॥ १४ ॥

एकश्चासावच्च एकाच् निपातो य एकाच् आङ्वर्जितः स प्रगृह्यसंज्ञो भवति । अ अपेहि । इ इन्द्रं पश्य । उ उत्तिष्ठ । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । निपात इति किम् । चकारात्र । एकाजिति किम् । प्राग्नये वाचमीरय । अनाङिति किम् । आ उदकान्तात् ओदकान्तात् ।

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

ओत् ॥ १५ ॥

निपात इति वर्त्तते । तस्यौकारेण तदन्तविधिः । ओदन्तो यो निपातः स प्रगृह्यसंज्ञो भवति । आहो इति । उताहो इति ॥

संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥ १६ ॥

ओदिति वर्त्तते । संबुद्धिनिमित्तो य ओकारः स शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसंज्ञो भवति । इतिशब्दे ऽनार्षे अवैदिके परतः । वायो इति । वायविति । भानो इति । भानविति । संबुद्धाविति किम् । गवित्ययमाह । अत्रानुकार्यानुकरणयोर्भेदस्याविवक्षितत्वात् । असत्यर्थवत्त्वे विभक्तिर्न भवति । शाकल्यग्रहणं विभाषार्थम् । इताविति किम् । वायोऽत्र । अनार्षइति किम् । एता या ब्रह्मबन्धवित्यब्रवीत् ॥

उञः ॥ १७ ॥

शाकल्यस्येताविति वर्त्तते। उञः प्रगृह्यसंज्ञा भवति इतौ शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन। शाकल्यस्येति विभाषार्थम्। उ इति। विति॥

ऊँ॥ १८॥

उञ इति वर्त्तते। उञ इतावनार्षे ऊँ इत्ययमादेशो भवति दीर्घो ऽनुनासिकः शाकल्यस्य मतेन प्रगृह्यसंज्ञकश्च। शाकल्यस्य ग्रहणं विभाषार्थमिहाप्यनुवर्त्तते, तेन त्रीणि रूपाणि भवन्ति। उ इति। विति। ऊँ इति॥

ईदूतौ च सप्तम्यर्थे॥ १९॥

शाकल्यस्येतावनार्षेइति निवृत्तम्। ईदन्तमूदन्तं च शब्दरूपं सप्तम्यर्थे वर्त्तमानं प्रगृह्यसंज्ञं भवति। अध्यस्यां मामकी तनू। मामक्यां तन्वामिति प्राप्ते। मामक्यां, मामकी इति। तन्वां, तनू इति। सोमो गौरी अधिश्रितः। ईदूताविति किम्। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति। आङ्शब्दात्परस्याः सप्तम्या डादेशः। सप्तमीग्रहणं किम्। धीती मती सुष्टुती। धीत्या मत्या सुष्टुत्या इति प्राप्ते अर्थग्रहणं किम्। वाप्यश्वो नद्यातिः। तपरकरणमसन्देहार्थम्॥

ईदूतौ सप्तमीत्येव लुप्ते ऽर्थग्रहणाद्भवेत्।
पूर्वस्य चेत्सवर्णोऽसावाडाम्भावः प्रसज्यते॥ १॥
वचनाद्यत्र दीर्घत्वं तत्रापि सरसी यदि।
ज्ञापकं स्यात्तदन्तत्वे मा वा पूर्वपदस्य भूत्॥ २॥

दाधा घ्वदाप्॥ २०॥

दारूपाश्चत्वारो धातवो धारूपौ च द्वौ दाब्दैपौ वर्जयित्वा घुसंज्ञका भवन्ति। डुदाञ्, प्रणिददाति। दाण् दाने, प्रणिदाता। दो, प्रणिद्यति। देङ्, प्रणिदयते। डुधाञ्, प्रणिदधाति। धेट्, प्रणिधयति वत्सो मातरम्। अदाबिति किम्। दाप् लवने, दातं बर्हिः। दैप् शोधने, अवदातं मुखम्। घुप्रदेशाः घुमास्थागापाजहातिसां हलीत्येवमादयः*॥

आद्यन्तवदेकस्मिन्॥ २१॥

असहायस्य आद्यन्तोपदिष्टानि कार्याणि न सिद्ध्यन्तीत्ययमतिदेश आरभ्यते। सप्तम्यर्थे वतिः। आदाविव अन्तइव एकस्मिन्नपि कार्यं भवति। यथा कर्त्तव्यमित्यत्र प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति एवमौपगवमित्यत्रापि यथा स्यात्। यथा वृक्षाभ्यामित्यत्रातोऽङ्गस्य दीर्घत्वमेवमाभ्यामित्यत्रापि यथा स्यात्। एकस्मिन्निति किम्। सभासन्नयने भवः साभासन्नयनः। आकारमाश्रित्य वृद्धसंज्ञा न भवति॥

---

* नेर्गदनदपतपदघुमास्यतीत्येवमादयः। पा०।

तरप्तमपौ घः ॥ २२ ॥

तरप् तमप् इत्येतौ प्रत्ययौ घसंज्ञौ भवतः । कुमारितरा । कुमारितमा । ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । घप्रदेशाः घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्यो ऽनेकाचो ह्रस्व इत्येवमादयः ॥

बहुगणवतुडति संख्या ॥ २३ ॥

बहुगणवतुडति इत्येते संख्यासंज्ञा भवन्ति । बहुकृत्वः । बहुधा । बहुकः । बहुशः । गणकृत्वः । गणधा । गणकः । गणशः । तावत्कृत्वः । तावद्धा । तावत्कः । कतिकृत्वः । कतिधा । कतिकः । कतिशः । बहुगणशब्दयोर्वैपुल्ये सङ्घे च वर्त्तमानयोरिह ग्रहणं नास्ति । संख्यावाचिनोरेव । भूर्यादीनां निवृत्त्यर्थं संख्यासंज्ञा विधीयते ॥ अर्धपूर्वपदश्च पूरणप्रत्ययान्तः संख्यासंज्ञो भवतीति वक्तव्यं समासकन्विध्यर्थम् ॥ * । अर्धपञ्चमशूर्पः । अर्द्धः पञ्चमो येषामिति बहुव्रीहौ कृते ऽर्द्धपञ्चमैः शूर्पैः क्रीतः । तद्धितार्थेति समासः । तत्र दिक्संख्ये संज्ञायामित्यनुवृत्तेस्ततः संख्यापूर्वस्य द्विगुसंज्ञायां शूर्पादञन्यतरस्यामित्यञ् ठञ् च । अध्यर्द्धपूर्वद्विगोरिति लुक् । अर्धपञ्चमकः । संख्याप्रदेशाः । संख्यावंश्येनेत्येवमादयः * ॥

ष्णान्ता षट् ॥ २४ ॥

स्त्रीलिङ्गनिर्देशात्संख्येति संबध्यते । षकारान्ता नकारान्ता च या संख्या सा षट्संज्ञा भवति । षकारान्तास्तावत् । षट् तिष्ठन्ति । षट् पश्य । नकारान्ताः । पञ्च । सप्त । नव । दश । अन्तग्रहणमौपदेशिकार्थम् । तेनेह न भवति । शतानि । सहस्राणि । अष्टानामित्यत्र नुड् भवति । षट्प्रदेशाः षड्भ्यो लुगित्येवमादयः ॥

डति च ॥ २५ ॥

डत्यन्ता या संख्या सा षट्संज्ञा भवति । कति तिष्ठन्ति । कति पश्य ॥

क्तक्तवतू निष्ठा ॥ २६ ॥

क्तश्च क्तवतुश्च क्तक्तवतू प्रत्ययौ निष्ठासंज्ञौ भवतः । कृतः । कृतवान् । भुक्तः । भुक्तवान् । ककारः कित्कार्यार्थः । उकार उगित्कार्यार्थः । निष्ठाप्रदेशाः श्वीदितो निष्ठायामित्येवमादयः ॥

सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ २७ ॥

सर्वशब्द आदिर्येषां तानीमानि सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वः । सर्वौ । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वस्मात् । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । सर्वकः ।

* संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुजित्येवमादयः । पा० ।

विश्वः । विश्वौ । विश्वे । विश्वस्मै । विश्वस्मात् । विश्वेषाम् । विश्वस्मिन् । विश्वकः । उभ । उभय । उभशब्दस्य सर्वनामत्वे प्रयोजनं सर्वनाम्नस्तृतीया चेति । उभये । उभयस्मै । उभयस्मात् । उभयेषाम् । उभयस्मिन् । इतर । इतम । कतर । कतम । कतरस्मै । कतमस्मै । इतर । अन्य । अन्यतर । इतरस्मै । अन्यस्मै । अन्यतरस्मै । त्वशब्दोऽन्यवाची स्वरभेदाद् द्विःपठितः । एक उदात्तो द्वितीयोऽनुदात्तः । के चित्तकारान्तमेकं पठन्ति । त्वत्वदिति द्वावपि चानुदात्ताविति स्मरन्ति । नेम । नेमस्मै । वक्ष्यमाणेन जसि विभाषा भवति । नेमे, नेमाः, इति । समः । समस्मै । कथं यथासंख्यमनुदेशः समानां समे देशे यजेतेति । समस्य सर्वशब्दपर्यायस्य सर्वनामसंज्ञेष्यते न सर्वत्र । सिम । सिमस्मै । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । सर्वादिः ॥ सर्वनामप्रदेशाः सर्वनाम्नः स्मै इत्येवमादयः ॥

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥ २८ ॥

न बहुव्रीहाविति प्रतिषेधं वक्ष्यति तस्मिन्नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते विभाषेयमारभ्यते । दिशां समासो दिक्समासो दिगुपदिष्टे समासे बहुव्रीहौ विभाषा सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै । दक्षिणपूर्वस्यै । दक्षिणपूर्वायै । दिग् ग्रहणं किम् । न बहुव्रीहाविति प्रतिषेधं वक्ष्यति तत्र न ज्ञायते क्व विभाषा क्व प्रतिषेध इति । दिग्ग्रहणे पुनः क्रियमाणे ज्ञायते दिगुपदिष्टसमासे विभाषा ऽन्यत्र प्रतिषेध इति । समासग्रहणं किम् । समास एव यो बहुव्रीहिस्तत्र विभाषा यथा स्यात् । बहुव्रीहिवद्भावेन यो बहुव्रीहिस्तत्र मा भूत् । दक्षिणदक्षिणस्यै देहि । बहुव्रीहाविति किम् । द्वन्द्वे विभाषा मा भूत् । दक्षिणोत्तरपूर्वाणामिति । द्वन्द्वे चेति नित्यं प्रतिषेधो भवति ॥

आबाधे च – ८।१।१० – द्वित्व – – बहुव्रीहिवत्

न बहुव्रीहौ ॥ २९ ॥

सर्वनामसंज्ञायां तदन्तविधेरभ्युपगमाद्बहुव्रीहेरपि सर्वाद्यन्तस्य संज्ञा स्यादिति प्रतिषेध आरभ्यते । बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । प्रियविश्वाय । प्रियोभयाय । द्व्यन्याय । त्र्यन्याय । इह च त्वत्कपितृको मत्कपितृक इत्यकच्च भवति । बहुव्रीहाविति वर्त्तमाने पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं भूतपूर्वमात्रेऽपि प्रतिषेधो यथा स्यात् । वस्त्रान्तरावसनान्तरा इति ॥

२।२।३

तृतीयासमासे ॥ ३० ॥

तृतीयासमासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । मासपूर्वाय । संवत्सरपूर्वाय । द्व्यहपूर्वाय । त्र्यहपूर्वाय । समास इति वर्त्तमाने पुनः समासग्र-

हणं तृतीयासमासार्थवाक्ये ऽपि प्रतिषेधो यथा स्यात् । मासेन पूर्वाय । पूर्व-सदृशसमोनार्थेति तृतीयासमासं प्रतिपदं वक्ष्यति तस्येदं ग्रहणं न यस्य कस्य चित्तृतीयासमासस्य कर्तृकरणे कृता बहुलमिति । त्वयका कृतम् । मयका कृतम् ॥

द्वन्द्वे च ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वे च समासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । पूर्वापराणाम् । कतरकतमानाम् ॥

विभाषा जसि ॥ ३२ ॥

पूर्वेण नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते जसि विभाषा ऽऽरभ्यते । द्वन्द्वे समासे जसि विभाषा सर्व्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । कतरकतमे । कतरकतमाः । जसः कार्यं प्रति विभाषा ऽकजिह न भवति । कतरकतमकाः ॥

प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ॥ ३३ ॥

विभाषाजसीति वर्त्तते । द्वन्द्वइति निवृत्तम् । प्रथम चरम तय अल्प अर्द्ध कतिपय नेम इत्येते जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा भवन्ति । प्रथमे । प्रथमाः । चरमे । चरमाः । द्वितये । द्वितयाः । अल्पे । अल्पाः । अर्धे । अर्धाः । कतिपये । कतिपयाः । नेमे । नेमाः । तय इति तयप्प्रत्ययः । शिष्टानि प्रातिपदिकानि । तत्र नेम इति सर्वादिषु पठ्यते तस्य प्राप्ते विभाषा ऽन्येषामप्राप्ते । उभयशब्दस्य तयप्प्रत्ययान्तस्य गणे पाठान्नित्या सर्वनामसंज्ञा इहापि जस्कार्यं प्रति विभाषा । काकचोर्यथायोगं वृत्तिः ॥ —संख्याया अवयवे तयप्। तस्य उभादुदात्तो नित्यम् इति अयच्

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ ३४ ॥

पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर इत्येतेषां गणे पाठात्पूर्वेण नित्यायां सर्वनामसंज्ञायां प्राप्तायां जसि विभाषा ऽऽरभ्यते । पूर्वादीनि विभाषा जसि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था*। पूर्वे पूर्वाः । परे पराः । अवरे अवराः । दक्षिणे दक्षिणाः । उत्तरे उत्तराः । अपरे अपराः । अधरे अधराः । व्यवस्थायामिति किम् । दक्षिणा इमे गायकाः । प्रवीणा इत्यर्थः । असंज्ञायामिति किम् । उत्तराः कुरवः । सत्यामेव व्यवस्थायामियं तेषां संज्ञा ॥

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ ३५ ॥

---

* अत्र स्वाभिधेयापेक्षोऽवधीति बहुषु पुस्तकेषूपलभ्यमानः पदमञ्जरीस्वरूपसिद्धोऽपि व्यस्तः पाठोऽसमञ्जस इत्यनादृतः ।

अत्रापि नित्या सर्वनामसंज्ञा प्राप्ता जसि विभाष्यते। स्वमित्येतच्छब्दरूपं जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञं भवति न चेज् ज्ञातिधनयोः संज्ञारूपेण वर्तते। स्वे पुत्राः। स्वाः पुत्राः। स्वे गावः। स्वा गावः। आत्मीया इत्यर्थः। ज्ञातिप्रतिषेधः किम्।

धूमायन्तइवाश्लिष्टाः प्रज्वलन्तीव संहताः।
उल्मुकानीव मे ऽमी स्वा ज्ञातयो भरतर्षभ॥

अधनाख्यायामिति किम्। प्रभूताः स्वा न दीयन्ते। प्रभूताः स्वा न भुज्यन्ते। प्रभूतानि धनानीत्यर्थः॥

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ ३६ ॥

अत्रापि पूर्वेण नित्या सर्वनामसंज्ञा प्राप्ता सा जसि विभाष्यते। अन्तरमित्येतच्छब्दरूपं विभाषा जसि सर्वनामसंज्ञं भवति बहिर्योगउपसंव्याने च गम्यमाने। अन्तरे गृहाः। अन्तरा गृहाः। नगरबाह्याश्चाण्डालादिगृहा उच्यन्ते। अन्तरे शाटकाः। अन्तरा शाटकाः। उपसंव्यानं परिधानीयमुच्यते न प्रावरणीयम्। बहिर्योगोपसंव्यानयोरिति किम्। अनयोर्ग्रामयोरन्तरे तापसः प्रतिवसति। तस्मिन्नन्तरे शीतान्युदकानि। मध्यप्रदेशवचनोन्तरशब्दः। गणसूत्रस्य चेदं प्रत्युदाहरणम्॥ अपुरीति च वक्तव्यम्॥ * ॥ अन्तरायां पुरि वसति। विभाषाप्रकरणे तीयस्य वा ङित्सु सर्वनामसंज्ञेत्युपसंख्यानम्॥ * ॥ द्वितीयाय। द्वितीयस्मै। तृतीयाय। तृतीयस्मै॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ ३७ ॥

स्वरादीनि शब्दरूपाणि निपाताश्चाव्ययसंज्ञानि भवन्ति। स्वर्। अन्तर्। प्रातर्। एते अन्तोदात्ताः पठ्यन्ते। पुनर् आद्युदात्तः। सनुतर्। उच्चैस्। नीचैस्। शनैस्। ऋधक्। आरात्। ऋते। युगपत्। पृथक्। एतेपि सनुतर्प्रभृतयोन्तोदात्ताः पठ्यन्ते। ह्यस्। श्वस्। दिवा। रात्रौ। सायम्। चिरम्। मनाक्। ईषत्। जोषम्। तूष्णीम्। बहिस्। आविस्। अवस्। अधस्। समया। निकषा। स्वयम्। मृषा। नक्तम्। नञ्। हेतौ। अद्धा। इद्धा। सामि। एतेपि ह्यस्प्रभृतयोन्तोदात्ताः पठ्यन्ते। वत्। वदन्तमव्ययसंज्ञं भवति। ब्राह्मणवत्। क्षत्रियवत्। सन्। सनात्। सनत्। तिरस्। एते आद्युदात्ताः पठ्यन्ते। अन्तरा। अयमन्तोदात्तः। अन्तरेण। ज्योक्। कम्। शम्। सना। सहसा। विना। नाना स्वस्ति। स्वधा। अलम्। वषट्। अन्यत्। अस्ति। उपांशु। क्षमा। विहायसा। दोषा। मुधा। मिथ्या। क्त्वातोसुन्कसुनः कृन्मकारान्तः सन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च। पुरा। मिथो। मिथस्। प्रबाहुकम्। आर्यहलम्। अभीक्ष्णम्। साकम्। सार्द्धम्। समम्। नमस्। हिरुक्। तसिलादिस्त-

द्धित एधाच्पर्यन्तः । शस्तसी । कृत्वसुच् । सुच् । आस्थालौ । च्व्यर्थाश्च । अम् । आम् । प्रतान् । प्रशान् । स्वरादिः । निपाता वक्ष्यन्ते । प्राग्रीश्वरान्निपाता इति । च । वा । ह । अह । एव । एवमित्यादयः । अव्ययप्रदेशा अव्ययादाप्सुप इत्येवमादयः ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ॥ ३८ ॥

तद्धितान्तः शब्दो ऽसर्वविभक्तिरव्ययसंज्ञो भवति । यस्माच्च सर्वविभक्तेरुत्पत्तिः सो ऽसर्वविभक्तिः । ततः । यतः । तत्र । यत्र । तदा । यदा । सर्वदा । सदा । तद्धित इति किम् । एकः । द्वौ । बहवः । असर्वविभक्तिरिति किम् । औपगवः । औपगवौ । औपगवाः ॥

कृन्मेजन्तः ॥ ३९ ॥

कृद्यो मकारान्त एजन्तश्च तदन्तं शब्दरूपमव्ययसंज्ञं भवति । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारं भुङ्क्ते । लवणंकारं भुङ्क्ते । एजन्तः । वक्षे रायः । ता वामेषे रथानाम् । क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक्च सूर्यं दृशे । वक्षे इति वचेस्तुमर्थे सेसेनिति सेप्रत्यये कुत्वे षत्वे च कृते रूपम् । एषे इति इणः से प्रत्यये गुणे षत्वे च कृते रूपम् । जीवसे इति जीवेरसे प्रत्यये रूपम् । दृशे इति दृशेः केन्प्रत्ययो निपात्यते । दृशे विख्ये चेति । अन्तग्रहणमौपदेशिकप्रतिपत्त्यर्थम् । इह मा भूत् । आधये । चिकीर्षवे । कुम्भकारेभ्य इति ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः ॥ ४० ॥

क्त्वा तोसुन्कसुन् इत्येवमन्तं शब्दरूपमव्ययसंज्ञं भवति । कृत्वा । हृत्वा । तोसुन् । पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । पुरा वत्सानामपाकर्तोः । भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदीति इणः कृञश्च तोसुन्प्रत्ययः । कसुन् । सृपितृदोः कसुन् । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जर्तृभ्य आतृदः ॥

अव्ययीभावश्च ॥ ४१ ॥

अव्ययीभावसमासो ऽव्ययसंज्ञो भवति । किं प्रयोजनम् । लुङ्मुखस्वरोपचाराः । लुक् । उपाग्नि प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति । मुखस्वर । उपाग्निमुखः । प्रत्यग्निमुखः । मुखं स्वाङ्गमित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वं प्राप्तं नाव्ययदिक्शब्देति प्रतिषिध्यते । तस्मिन् प्रतिषिद्धे पूर्वपदप्रकृतिस्वर एव भवति । उपचार । उपपयःकारः । उपपयःकामः । विसर्जनीयस्थानिकस्य सकारस्य उपचार इति संज्ञा । तत्राव्ययीभावस्याव्ययत्वे ऽतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्येति पर्यु-

दांसः सिद्धो भवति । सर्वमिदं काण्डं स्वरादावपि पठ्यते । पुनर्वचनमनित्यत्वज्ञापनार्थं तेनायं कार्यनियमः सिद्धो भवति । इह च पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः, पुरा क्रूरस्य विसृप, इति न लोकाव्ययनिष्ठेति षष्ठीप्रतिषेधो न भवति ॥ २/३/६९

शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४२ ॥

शि इत्येतत्सर्वनामस्थानसंज्ञं भवति । किमिदं शि इति । जश्शसोः शिरादेशः । कुण्डानि तिष्ठन्ति । कुण्डानि पश्य । दधीनि । मधूनि । त्रपूणि । जतूनि । सर्वनामस्थानप्रदेशाः । सर्वनामस्थाने चासंबुद्धावित्येवमादयः ॥ ६/४/८

सुडनपुंसकस्य ॥ ४३ ॥

सुडिति पञ्च वचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि भवन्ति नपुंसकादन्यत्र । नपुंसके न विधिर्न प्रतिषेधस्तेन जसशौ सर्वनामस्थानसंज्ञा पूर्वेण भवत्येव । राजा । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । सुडिति किम् । राज्ञः पश्य । अनपुंसकस्येति किम् । सामनी । वेमनी ॥

न वेति विभाषा ॥ ४४ ॥

नेति प्रतिषेधो वेति विकल्पस्तयोः प्रतिषेधविकल्पयोर्विभाषेति संज्ञा भवति । इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः । विभाषाप्रदेशेषु प्रतिषेधविकल्पावुपतिष्ठेते । तत्र प्रतिषेधेन समीकृते विषये पश्चाद्विकल्पः प्रवर्तते । उभयत्र विभाषाः प्रयोजयन्ति । विभाषा श्वेः । शुशाव । शिश्वाय । शुशुवतुः । शिश्वियतुः । विभाषाप्रदेशाः । विभाषा श्वेरित्येवमादयः ॥

इग्यणः संप्रसारणम् ॥ ४५ ॥ प्रयुज्यमान

इग्यो यणः स्थाने भूतो भावी वा तस्य संप्रसारणमित्येषा संज्ञा भवति । यज् । इष्टम् । वप् । उप्तम् । ग्रह । गृहीतम् । केचिदुभयथा सूत्रमिदं व्याचक्षते । वाक्यार्थः संज्ञी वर्णश्चेति । इग्यण इति यो वाक्यार्थः स्थान्यादेशसंबन्धलक्षणः स संप्रसारणसंज्ञो भवति यणस्थानिक इग्वर्णः स संप्रसारणसंज्ञो भवतीति । तत्र विधौ वाक्यार्थ उपतिष्ठते । ष्यङः संप्रसारणं वसोः संप्रसारणमिति । अनुवादे वर्णः, संप्रसारणाच्चेति । संख्यातानुदेशादिह न भवति । अदुहितरामिति । *संप्रसारणप्रदेशाः । वसोः संप्रसारणमित्येवमादयः ॥

आद्यन्तौ टकितौ ॥ ४६ ॥

आदिष्टिद्भवति अन्तः किद्भवति षष्ठीनिर्दिष्टस्य । लविता । मुण्डो भीषयते । टित्प्रदेशाः । आर्धधातुकस्येड्वलादेरित्येवमादयः । कित्प्रदेशाः । भियो हेतुभये षुगित्येवमादयः ॥

---

* दुभ्यामित्यत्र दिव उदिति तपरकरणाद्दीर्घो नेति क्वचित्पाठः ।

मिदचो ऽन्त्यात्परः ॥ ४७ ॥

अच इति निर्धारणे षष्ठी । जातौ चेदमेकवचनम् । अचां संनिविष्टानामन्त्यादचः परो मिद्भवति । स्थानेयोगप्रत्ययपरत्वस्यायमपवादः । विरुणद्धि । मुञ्चति । पयांसि । मित्प्रदेशाः । रुधादिभ्यः श्नमित्येवमादयः । मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम् । मग्नः । मग्नवान् । मङ्क्ता । मङ्क्तुम् ॥

एच इग्घ्रस्वादेशे ॥ ४८ ॥

एचो ह्रस्वादेशे कर्तव्य इगेव ह्रस्वो भवति नान्यः । रै । अतिरि । नौ । अतिनु । गो । उपगु । एच इति किम् । अतिखट्वः । अतिमालः । ह्रस्वादेशइति किम् । दे३वदत्त । देवद३त्त ॥

षष्ठी स्थानेयोगा ॥ ४९ ॥

परिभाषेयं योगनियमार्था । इह शास्त्रे या षष्ठी अनियतयोगा श्रूयते सा स्थानेयोगैव भवति नान्ययोगा स्थानेयोगनिमित्तभूते सति सा प्रतिपत्तव्या । स्थानशब्दश्च प्रसङ्गवाची । यथा दर्भाणां स्थाने शरैः प्रस्तरितव्यमिति दर्भाणां प्रसङ्गइति गम्यते । एवमिहापि अस्तेः स्थाने प्रसङ्गे भूर्भवति । भविता । भवितुम् । भवितव्यम् । ब्रुवः प्रसङ्गे वचिर्भवति । वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् । प्रसङ्गे संबन्धस्य निमित्तभूते ब्रुव इति षष्ठी । बहवो हि षष्ठ्यर्थाः स्वस्वाम्यनन्तरसमीपसमूहविकारावयवाद्यास्तत्र यावन्तः शब्दे संभवन्ति तेषु सर्वेषु प्राप्तेषु नियमः क्रियते षष्ठी स्थानेयोगेति । स्थाने योगो ऽस्या इति व्यधिकरणो बहुव्रीहिः । अत एव निपातनाच्च सप्तम्या अलुक् ॥

स्थानेन्तरतमः ॥ ५० ॥

स्थाने प्राप्यमाणानामन्तरतम आदेशो भवति सदृशतमः । कुतश्च शब्दस्यान्तर्यम् । स्थानार्थगुणप्रमाणतः । स्थानतः । अकः सवर्णे दीर्घः । दण्डाग्रम् । यूपाग्रम् । द्वयोरकारयोः कण्ठ्य एव दीर्घ आकारो भवति । अर्थतः । वतण्डी चासौ युवतिश्च वातण्ड्ययुवतिः । पुंवद्भावेनान्तरतमः पुंशब्दो ऽतिदिश्यते । गुणतः । पाकः । त्यागः । रागः । चजोः कुघिण्ण्यतोरिति चकारस्याल्पप्राणस्याघोषस्य तादृश एव ककारो भवति जकारस्य घोषवतो ऽल्पप्राणस्य तादृश एव गकारः । प्रमाणतः । अमुष्मै । अमूभ्याम् । अदसोसेर्दादु दो म इति ह्रस्वस्य ह्रस्वः दीर्घस्य दीर्घः । स्थानइति वर्तमाने पुनः स्थानेग्रहणं किम् । यत्रानेकमान्तर्यं संभवति तत्र स्थानत एवान्तर्यं बलीयो यथा स्यात् । चेता । स्तोता । प्रमाणतो ऽकारो गुणः प्राप्तस्तत्र स्थानत आन्तर्यादेकारौकारौ भवतः । तमब्ग्रहणं किम् । वाग्घसति । त्रिष्टुब्भसति । झयो होन्यतरस्यामिति हकारस्य

पूर्वसवर्णे क्रियमाणे सोष्माणः सोष्माण इति द्वितीयाः प्रसक्ताः, नादवतो नादवन्त इति तृतीयाः, तमग्रहणाद्धे सोष्माणो नादवन्तश्च ते भवन्ति चतुर्थाः ॥

उरण् रपरः ॥ ५१ ॥

उः स्थाने ऽण् प्रसज्यमान एव रपरो वेदितव्यः । कर्त्ता । हर्त्ता । किरति । गिरति । द्वैमातुरः । त्रैमातुरः । उरिति किम् । खेयम् । गेयम् । अण् ग्रहणं किम् । सुधातुरकङ् च । सौधातकिः ॥

अलो ऽन्त्यस्य ॥ ५२ ॥

षष्ठीनिर्दिष्टस्य य उच्यते आदेशः सोऽन्त्यस्यालः स्थाने वेदितव्यः । इद्गोण्याः । पञ्चगोणिः । दशगोणिः ॥

ङिच्च ॥ ५३ ॥

ङिच्च य आदेशः सो ऽनेकालपि अलोऽन्त्यस्य भवति । आनङृतो द्वन्द्वे । होतापोतारौ । मातापितरौ । तातङि ङित्करणस्य गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थत्वात्सर्वादेशस्तातङ् भवति । जीवताद्भवान् । जीवतात्त्वम् ॥

आदेः परस्य ॥ ५४ ॥

परस्य कार्यं शिष्यमाणमादेरलः प्रत्येतव्यम् । क्व च परस्य कार्यं शिष्यते । यत्र पञ्चमीनिर्देशः । तद्यथा । ईदासः । आसीनो यजते । द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो ऽप ईत् । द्वीपम् । अन्तरीपम् । प्रतीपम् । समीपम् ॥

अनेकाल्शित्सर्वस्य ॥ ५५ ॥

अनेकाल् य आदेशः शिच्च सर्वस्य षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने भवति । अस्तेर्भूः । भविता । भवितुम् । भवितव्यम् । शित्खल्वपि । जश्शसोः शिः । कुण्डानि तिष्ठन्ति । कुण्डानि पश्य ॥

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ५६ ॥

स्थान्यादेशयोः पृथक्त्वात् स्थान्याश्रयं कार्यमादेशे न प्राप्नोतीत्ययमतिदेश आरभ्यते । स्थानिना तुल्यं वर्त्तत इति स्थानिवत् । स्थानिवदादेशो भवति स्थान्याश्रयेषु कार्येष्वनलाश्रयेषु स्थान्यलाश्रयाणि कार्याणि वर्ज्जयित्वा । अनल्विधिरनेकाल्विधिरित्यर्थः । किमुदाहरणम् । धात्वङ्गकृत्तद्धिताव्ययसुप्तिङ्पदादेशाः । धात्वादेशो धातुवद्भवति । अस्तेर्भूः । ब्रुवो वचिः । आर्धधातुकविषये प्रागेवादेशेषु कृतेषु धातोरिति तव्यादयो भवन्ति । भविता । भवितुम् । भवितव्यम् । वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् । अङ्गादेशो ऽङ्गवद्भवति । केन । काभ्याम् । कैः । किमः कादेशे कृते ऽङ्गाश्रया इनदीर्घत्वैस्भावा भवन्ति । कृदादेशः

कृद्वद्भवति । प्रकृत्य । प्रहृत्य । ल्यबादेशे कृते ह्रस्वस्य पिति कृति तुगिति तुग्भवति । तद्धितादेशस्तद्धितवद्भवति । दाधिकम् । अद्यतनम् । कृत्तद्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसंज्ञा भवति । अव्ययादेशो ऽव्ययवद्भवति । प्रस्तुत्य । प्रहृत्य । उपस्तुत्य । अव्ययादिति सुब्लुग् भवति । सुबादेशः सुब्वद्भवति । वृक्षाय । प्लक्षाय । सुपि चेति दीर्घत्वं भवति । तिङादेशस्तिङ्वद्भवति । अकुरुतम् । अकुरुत । सुप्तिङन्तं पदमिति पदसंज्ञा भवति । पदादेशः पदवद्भवति । ग्रामो वः स्वम् । जनपदो नः स्वम् । पदस्येति रुत्वं भवति । वत्करणं किम् । स्थान्यादेशस्य संज्ञा मा विज्ञायीति स्वाश्रयमपि यथा स्यात् । आङो यमहनः । आहत । आवधिष्टेत्यात्मनेपदमुभयत्रापि भवति । आदेशग्रहणं किम् । आनुमानिकस्याप्यादेशस्य स्थानिवद्भावो यथा स्यात् । पचतु । एरुः । अनल्विधाविति किम् । द्युपथितदादेशा न स्थानिवद्भवन्ति । द्यौः । पन्थाः । स इति हल्ङ्याबिति सुलोपो न भवति ॥

अचः परस्मिन्पूर्वविधौ ॥ ५७ ॥

पूर्वेणानल्विधौ स्थानिवद्भाव उक्तः । अल्विध्यर्थमिदमारभ्यते । आदेशः स्थानिवदिति वर्त्तते । अच इति स्थानिनिर्देशः । परस्मिन्निति निमित्तसप्तमी । पूर्वविधाविति विषयसप्तमी । अजादेशः परनिमित्तकः पूर्वविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवद्भवति । पटयति । अवधीत् । बहुखट्वकः । पटुमाचष्ट इति णिचि टिलोपे कृते तस्य स्थानिवद्भावादत उपधाया इति वृद्धिर्न भवति । अवधीत् । अतो लोपस्य स्थानिवद्भावादतो हलादेर्लघोरिति हलन्तलक्षणा वृद्धिर्न भवति । बहुखट्वक इति आपोऽन्यतरस्यामिति ह्रस्वस्य स्थानिवद्भावाद् ह्रस्वान्ते ऽन्त्यात्पूर्वमिति स्वरो न भवति । अच इति किम् । प्रश्नः । अक्राष्टाम् । आगत्य । प्रश्न इति प्रच्छेर्नङ्प्रत्यये छ्वोः शूडनुनासिके चेति छकारस्य शकारः परनिमित्तकस्तुकि कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवति । अक्राष्टामिति झलो झलीति सिचो लोपः परनिमित्तकः कृषेः षकारस्य षढोः कः सीति ककारे कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवति । आगत्येति वा ल्यपीति अनुनासिकलोपः परनिमित्तकस्तुकि कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवति । परस्मिन्निति किम् । युवजानिः । वधूटीजानिः । वैयाघ्रपद्यः । आदीध्ये । युवजानिरिति जायाया निङ् न परनिमित्तकस्तेन यलोपे न स्थानिवद्भवति । वैयाघ्रपद्य इति न परनिमित्तकः पादस्यान्तलोपः पद्भावं न प्रतिबध्नाति । आदीध्ये इति दीधीङ उत्तमपुरुषैकवचने टेरेत्वस्यापरनिमित्तकत्वाद् यीवर्णयोर्दीधीवेव्योरिति लोपो न भवति । पूर्वविधाविति किम् । हे गौः । बाभ्रवीयाः । नैधेयः । हे गौरिति वृद्धिरजादेशः संबुद्धिलोपे कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवति । बाभ्रवीया इति बाभ्रव्यस्यामी छात्रा इति वृद्धाच्छ इति छः हलस्तद्धि-

तस्येति यकारलोपे कर्त्तव्ये ऽवादेशो न स्थानिवद्भवति । नैधेयः । आतो लोप इटि चेत्याकारलोप इत श्चानिञ इति ढ्कलक्षणे प्रत्ययविधौ न स्थानिवद्भवति ॥

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार-दीर्घजश्चर्विधिषु ॥ ५८ ॥

पूर्वेणातिप्रसक्तः स्थानिवद्भाव एतेषु विधिषु प्रतिषिध्यते । पदान्तविधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवति । कौ स्तः । यौ स्तः । तानि सन्ति । यानि सन्ति । श्नसोरल्लोपः क्ङिति सार्वधातुक इति परनिमित्तकः स पूर्वविधावावादेशे यणादेशे च कर्त्तव्ये स्थानिवत्स्यात्, अस्माद्वचनान्न भवति । द्विर्वचनविधिं प्रति न स्थानिवद्भवति । दद्ध्यत्र । मद्ध्वत्र । यणादेशः परनिमित्तकस्तस्य स्थानिवद्भावादनचि चेति धकारस्य द्विर्वचनं न स्यादस्माद्वचनाद्भवति । वरे योऽजादेशः स पूर्वविधिं प्रति न स्थानिवद्भवति । अप्सु यायावरः प्रवपेत पिण्डान् । यातेर्यङन्ताद्यश्च यङ इति वरचि कृते ऽतो लोपः परनिमित्तकस्तस्य स्थानिवत्त्वादातो लोप इटि चेत्याकारलोपः स्यादस्माद्वचनान्न भवति । यलोप । यलोपविधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवति । कण्डूतिः । कण्डूयतेः क्तिचि कृते ऽतोलोपः परनिमित्तको लोपो व्योर्वलीति यलोपे स्थानिवत्स्यादस्माद्वचनान्न भवति । स्वर । स्वरविधिं प्रति अजादेशो न स्थानिवद्भवति । चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । ण्वुलि कृते ऽतोलोपः परनिमित्तको ञ्नित्यादिर्नित्यमिति स्वरे कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवतीति । सवर्ण । सवर्णविधिं प्रति अजादेशो न स्थानिवद्भवति । शिण्ढि । पिण्ढि । शिषेः पिषेश्च लोण्मध्यमपुरुषैकवचने रुधादिभ्यः श्नम् हित्वधित्वष्टुत्वजश्त्वेषु कृतेषु श्नसोरल्लोपः क्ङिति सार्वधातुके परनिमित्तको ऽनुस्वारस्य ययि परसवर्णे कर्त्तव्ये न स्थानिवद्भवति । अनुस्वार । अनुस्वारविधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवति । शिंषन्ति । पिंषन्ति । नश्चापदान्तस्य झलीति अनुस्वारे कर्त्तव्ये श्नसोरल्लोपो न स्थानिवद्भवति । दीर्घ । दीर्घविधिं प्रति अजादेशो न स्थानिवद्भवति । प्रतिदीव्ना । प्रतिदीव्ने । प्रतिदिवन्नित्येतस्य भस्येत्यधिकृत्य तृतीयैकवचने चतुर्थ्येकवचने च अल्लोपो ऽन इति अकारलोपः परनिमित्तकस्तस्य स्थानिवद्भावाद्धलि चेति दीर्घत्वं न स्यात्, वह्नयं वकारो हल्पर इति अस्माद्वचनाद्भवति । जश् । जश्विधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवति । सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे । बब्धान्ते हरी धानाः । अदेः क्तिनि बहुलं छन्दसीति घस्लादेशः, घसिभसोर्हलि चेति उपधालोपः, झलो झलीति सकारलोपः, झषस्तथोर्धोऽध इति धत्वम्, उपधालोपस्य स्थानिवत्त्वात् झलां जश् झशीति घकारस्य जश्त्वं न स्यादस्माद्वचनाद्भवति । समाना ग्धिः, समानस्य सभावः । सग्धिः । बब्धामिति । भसेर्लोड्द्विवचने शपः श्लुः, द्विर्व-

चन,मभ्यासकार्यं, घसिभसोर्हलि चेति उपधा लोपः, झलो झलीति सकार-लोपः, झषस्तथोर्धोध इति धत्वम्, उपधालोपस्य स्थानिवत्त्वात् झलां जश् झशीति जश्त्वं न स्यादस्माद्वचनाद्भवति । चर् । चर्विधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवति । जक्षतुः । जक्षुः । अक्षन्नमीमदन्त पितरः । लिड्द्विवचनबहुव-चनयोरदेर्घस्लादेशः, गमहनजनखनघसामित्युपधालोपः, द्विर्वचन,मभ्यासकार्यं, तत्रोपधालोपस्य स्थानिवत्त्वात् खरि चेति घकारस्य चर्त्वं न स्यादस्माद्वचना-द्भवति । शासिवसिघसीनां चेति षत्वम् । अक्षन्नित्यदेर्लुङ्बहुवचनेघस्लादेश-श्छन्दसि मन्त्रे घसह्वरेति लुक्, गमहनजनखनघसामित्युपधालोपः, तस्य स्थानिवत्त्वात् खरि चेति चर्त्वं न स्यादस्माद्वचनाद्भवति । स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेशो न स्थानिवद्भवति । अन्यत्र तु स्थानिवदेव । तेन बहुखट्वकः । किर्योः । गिर्योः । वाय्वोरिति स्थानिवत्त्वात् स्वरदीर्घयलोपा न भवन्ति ॥

द्विर्वचनेऽचि ॥ ५९ ॥

द्विर्वचननिमित्ते ऽचि अजादेशः स्थानिवद्भवति द्विर्वचनएव कर्त्तव्ये । रूपातिदेशश्चायं नियतकालस्तेन कृते द्विर्वचने पुनरादेशरूपमेवावतिष्ठते । आ-ल्लोपोपधालोपणिलोपयणयवायावादेशाः प्रयोजनम् । आल्लोपः । पपतुः । पपुः । आतो लोप इटि चेत्याकारलोपे कृते तस्य स्थानिवद्भावादेकाच इति द्विर्वचनं भवति । उपधालोपः । जघ्नतुः । जघ्नुः । गमहनजनखनघसामित्युपधालोपे कृते ऽनच्कत्वाद् द्विर्वचनं न स्यात्, अस्माद्वचनाद्भवति । णिलोपः । आटिटत् । अटतेर्णिचि लुङि चङि णिलोपे कृते तस्य स्थानिवत्त्वादजादेर्द्वितीयस्येति टिश-ब्दस्य द्विर्वचनं भवति । यण् । चक्रतुः । चक्रुः । करोतेरतुसि उसि च यणादेशे कृते ऽनच्कत्वाद् द्विर्वचनं न स्यात् स्थानिवत्त्वाद्भवति । अयवायावादेशाः । निनय । निनाय । लुलव । लुलाव । नयतेर्लुनातेश्चोत्तमे णलि गुणे कृते वृद्धौ चायवायावादेशास्तेषां स्थानिवत्त्वान्नेलोनैलाविति द्विर्वचनं भवति । द्विर्वचन-इति किम् । जग्ले । मम्ले । अवर्णमाकारस्य न भवति । द्विर्वचननिमित्तइति किम् । दुद्यूषति । ऊठि यणादेशो न स्थानिवद्भवति । अचीति किम् । जेघ्री-यते । देध्मीयते । ईघ्राध्मायङि चेति ईकारादेशस्तस्य स्थानिवद्भावादाकारस्य द्विर्वचनं स्यात् । अस्माद्वचनान्न भवति ॥

अदर्शनं लोपः ॥ ६० ॥

अदर्शनमश्रवणमनुच्चारणमनुपलब्धिरभावो वर्णविनाश इत्यनर्थान्तर-मेतैः शब्दैर्योऽर्थोऽभिधीयते तस्य लोप इतीयं संज्ञा भवति । अर्थस्येयं संज्ञा न शब्दस्य । प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं भवति । गोधाया ढ्रक् । गौधेरः । पचेरन् जीवे रदानुक् । जीरदानुः । दिदिर्भेनिन् । आस्रेमाणम् । यकारवकारयोरदर्श-

नमिहोदाहरणम् । अपरस्यानुबन्धादेः प्रसक्तस्य । लोपप्रदेशाः लोपो व्योर्वलीत्येवमादयः ॥

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ॥ ६१ ॥

अदर्शनमिति वर्त्तते । प्रत्ययादर्शनस्य लुक् श्लु लुप् इत्येताः संज्ञा भवन्ति । अनेकसंज्ञाविधानाच्च तद्भावितग्रहणमिह विज्ञायते । लुक्संज्ञाभावितं प्रत्ययादर्शनं लुक्संज्ञं भवति । श्लुसंज्ञाभावितं श्लुसंज्ञं भवति । लुप्संज्ञाभावितं लुप्संज्ञं भवति । तेन संज्ञानां संकरो न भवति । विधिप्रदेशेषु च भाविनी संज्ञा विज्ञायते । अत्ति । जुहोति । वरणाः । प्रत्ययग्रहणं किम् । अगस्तयः । कुण्डिनाः । लुक्श्लुलुप्प्रदेशाः लुक्तद्धितलुकि, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, जनपदे लुबित्येवमादयः ॥

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ ६२ ॥

प्रत्ययनिमित्तं कार्यमसत्यपि प्रत्यये कथं तु नाम स्यादिति सूत्रमिदमारभ्यते । प्रत्ययलोपे कृते प्रत्ययलक्षणं प्रत्ययहेतुकं कार्यं भवति । अग्निचित्, सोमसुत्, अधोगित्यत्र सुप्तिङोर्लुप्तयोः सुप्तिङन्तं पदमिति पदसंज्ञा भवति । अधोगिति दुहेर्लङि तिपि शब्लुकि तिलोपे घत्वभष्भावजश्त्वचर्त्वेषु कृतेषु रूपम् । प्रत्यय इति वर्त्तमाने पुनः प्रत्ययग्रहणं किम् । कृत्स्नप्रत्ययलोपे यथा स्यात् । इह मा भूत् । आघ्नीय । सङ्ग्मीय । हनिगम्योर्लिङात्मनेपदे लिङः स लोपोनन्त्यस्येति सीयुट्सकारलोपः प्रत्ययैकदेशलोपस्तत्र प्रत्ययलक्षणेन झलीत्यनुनासिकलोपो न भवति । प्रत्ययलक्षणमिति किम् । रायः कुलं रैकुलम् । गवे हितं गोहितम् । आयवादेशौ न भवतो वर्णाश्रयत्वात् ॥

न लुमताङ्गस्य ॥ ६३ ॥

पूर्वेणातिप्रसक्तं प्रत्ययलक्षणमिति विशेषे प्रतिषेध उच्यते । लुमता शब्देन लुप्ते प्रत्यये यदङ्गं तस्य प्रत्ययलक्षणं कार्यं न भवति । गर्गाः । मृष्टः । जुहुतः । शब्यञो*र्लुमता लुप्तयोरङ्गस्य गुणवृद्धी न भवतः । लुमतेति किम् । कार्यते । अङ्गस्येति किम् । पञ्च । सप्त । पयः । साम ॥

अचोन्त्यादि टि ॥ ६४ ॥

अच इति निर्द्धारणे षष्ठी । जातावेकवचनम् । अचां संनिविष्टानां योन्त्योच् तदादि शब्दरूपं टिसंज्ञं भवति । अग्निचित् । इच्छब्दः । सोमसुत् । उच्छब्दः । आताम् । आथाम् । आम्शब्दः । पचेते । पचेथे । टिप्रदेशाः । टित आत्मनेपदानां टेरेत्येवमादयः ॥

---

* शब्श्यनोरिति कुत्र चित्पुस्तके उपलभ्यमानः पाठ एव समीचीनः ।

अलोन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ ६५ ॥

धात्वादौ वर्णसमुदाये ऽन्त्यादलः पूर्वो यो वर्णः सोलेवोपधासंज्ञो भवति । पच् । पठ् । अकारः । भिद् । छिद् । इकारः । बुध् । युध् । उकारः । वृत् । वृध् । ऋकारः । अल इति किम् । शिष्टः । शिष्टवान् । समुदायात्पूर्वस्य मा भूत् । उपधाप्रदेशाः । अत उपधाया इत्येवमादयः ॥

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ ६६ ॥

तस्मिन्निति सप्तम्यर्थनिर्देशे पूर्वस्यैव कार्यं भवति नोत्तरस्य । इको यणचि । दध्युदकम् । मध्विदम् । पचत्योदनम् । निर्दिष्टग्रहणमानन्तर्यार्थम् । अग्निचिदत्रेति व्यवहितस्य मा भूत् ॥

तस्मादित्युत्तरस्य ॥ ६७ ॥

निर्दिष्टग्रहणमनुवर्त्तते । तस्मादिति पञ्चम्यर्थनिर्देशउत्तरस्यैव कार्यं भवति न पूर्वस्य । तिङ्‌ङतिङः । ओदनं पचति । इह न भवति । पचत्योदनमिति ॥

स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ॥ ६८ ॥

शास्त्रे स्वमेव रूपं शब्दस्य ग्राह्यं बोध्यं प्रत्याय्यं भवति न बाह्यो ऽर्थः, शब्दसंज्ञां वर्जयित्वा । शब्देनार्थावगतेरर्थे कार्यस्यासंभवात् तद्वाचिनां शब्दानां संप्रत्ययो मा भूदिति सूत्रमिदमारभ्यते । अग्नेर्ढक् । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् । अग्निशब्दो ऽग्निशब्दस्यैव ग्राहको भवति न ज्वलनः पावको धूमकेतुरिति नातः प्रत्ययो भवति । उदश्वितो ऽन्यतरस्याम् । औदश्वित्कम् । औदश्वितम् । तक्रमरिष्टं कालशेयं दण्डाहतं मथितमिति नातः प्रत्ययो भवति । अशब्दसंज्ञेति किम् । दाधा घ्वदाप् । तरप्तमपौ घः । घुग्रहणेषु घग्रहणेषु च संज्ञिनां ग्रहणं न संज्ञायाः ॥ सित्तद्विशेषाणां वृक्षाद्यर्थम् ॥ * ॥ सिन्निर्देशः कर्तव्यः । ततो वक्तव्यं तद्विशेषाणां ग्रहणं भवतीति । किं प्रयोजनम् । वृक्षाद्यर्थम् । विभाषा वृक्षमृगतृणेति । प्लक्षन्यग्रोधम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । पित्पर्यायवचनस्य च स्वाद्यर्थम् ॥ * ॥ पिन्निर्देशः कर्त्तव्यः । ततो वक्तव्यं पर्यायवचनस्य ग्रहणं भवति, चकारात् स्वस्य रूपस्य तद्विशेषाणां चेति । किं प्रयोजनम् । स्वाद्यर्थम् । स्वे पुषः । स्वपोषं पुष्टः । रैपोषम् । धनपोषम् । अश्वपोषम् । गोपोषम् । जित् पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् ॥ * ॥ जिन्निर्देशः कर्त्तव्यः । ततो वक्तव्यं पर्यायवचनस्यैव ग्रहणं भवतीति, न स्वरूपस्य नापि तद्विशेषाणाम् । किं प्रयोजनम् । राजाद्यर्थम् । सभा राजामनुष्यपूर्वा । इनसभम् । ईश्वरसभम् । तस्यैव न भवति । राजसभा । तद्विशेषाणां च न भवति । पुष्यमित्रसभा । चन्द्रगुप्तसभा । भिक्ष-

द्विशेषाणां च मत्स्याद्यर्थम् ॥ * ॥ श्विर्निर्देशः कर्त्तव्यः । ततो वक्तव्यं तस्य च ग्रहणं भवति तद्विशेषाणां चेति । किं प्रयोजनम् । मत्स्याद्यर्थम् । पक्षिमत्स्यमृगान् हन्तीति ठक् । पाक्षिकः । मात्स्यिकः । तद्विशेषाणाम् । शाकुनिकः । पर्यायाणां न भवति । अजिह्मान् हन्ति । अनिमिषान् हन्तीति । अस्येष्यते । मीनान् हन्तीति मैनिकः ॥

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः ॥ ६९ ॥

परेण णकारेण प्रत्याहारग्रहणम् । अण् गृह्यमाण उदिच्च सवर्णानां ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य प्रत्ययं वर्जयित्वा । आद्गुणः । अस्य च्वौ । यस्येति च । स्वरानुनासिक्यकालभिन्नस्य ग्रहणं भवति । उदित्खल्वपि । चुटू । लशक्वतद्धिते । चवर्गटवर्गयोः कवर्गस्य च ग्रहणं भवति । अप्रत्यय इति किम् । सनाशंसभिक्ष उः । अ सांप्रतिके । दीर्घो न भवति ॥

तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥

तः परो यस्मात्सोयं तपरः तादपि परस्तपरः । तपरो वर्णस्तत्कालस्यात्मना तुल्यकालस्य गुणान्तरयुक्तस्य सवर्णस्य ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य । विध्यर्थमिदम् । अणिति नानुवर्त्तते । अणामन्येषां च तपराणाम् इदमेव ग्रहणकशास्त्रम् । अतो भिस ऐसित्येवमादिषु पूर्वग्रहणकशास्त्रं न प्रवर्त्ततएव । अतपरा अणस्तस्यावकाशः । किमुदाहरणम् । अतो भिस ऐस् । वृक्षैः । प्लक्षैः । विष्णोरनुवासिकस्यात् । अब्जाः । गोजाः । तत्कालस्येति किम् । खट्वाभिः । मालाभिः ॥

आदिरन्त्येन सहेता ॥ ७१ ॥

आदिरन्त्यनेत्संज्ञकेन सह गृह्यमाणस्तन्मध्यपतितानां वर्णानां ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य । अण् । अक् । अच् । हल् । सुप् । तिङ् । अन्त्येनेति किम् । सुडिति तृतीयैकवचनेन टा इत्यनेन ग्रहणं मा भूत् ॥

येन विधिस्तदन्तस्य ॥ ७२ ॥

येन विशेषणेन विधिर्विधीयते स तदन्तस्यात्मान्तस्य समुदायस्य ग्राहको भवति स्वस्य च रूपस्य । एरच् । इवर्णान्तादच्प्रत्ययो भवति । चयः । जयः । अयः । ओरावश्यके । उवर्णान्ताद् ण्यद्भवति । अवश्यलाव्यम् । अवश्यभाव्यम् ॥ समासप्रत्ययविधौ तदन्तविधेः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ द्वितीयान्तं श्रितादिभिः सह समस्यते । कष्टश्रितः । इह मा भूत् । कष्टं परमश्रित इति । प्रत्ययविधौ । नडादिभ्यः फक् । नडस्यापत्यं नाडायनः । इह मा भूत् । सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः । किमविशेषेण । नेत्याह ॥ उगिद्वर्णग्रहणवर्जमिति वाच्यम् ॥ * ॥ उगितश्चेति ङीप्प्रत्ययस्तदन्तादपि भवति । भवती । अति-

भवती । वर्णग्रहणम् । अत इञ् । दाक्षिः । प्लाक्षिः ॥ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ * ॥ अल्ग्रहणेषु यस्मिन्विधिस्तदादाविति वक्तव्यम् । अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङाविति । श्रियः । भ्रुवः ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ७३ ॥

यस्येति समुदाय उच्यते । अचां मध्ये यस्य वृद्धिसंज्ञक आदिभूतस्तच्छब्दरूपं वृद्धसंज्ञं भवति । अचामिति जातौ बहुवचनम् । शालीयः । मालीयः । औपगवीयः । कापटवीयः । आदिरिति किम् । सभासंनयने भवः साभासंनयनः ॥ वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥ * ॥ देवदत्तीयाः । दैवदत्ताः ॥ गोत्रान्तादसमस्तवत्प्रत्ययो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ घृतप्रधानो रौढिः घृतरौढिः । तस्य छात्रा घृतरौढीयाः । ओदनप्रधानः पाणिनिरोदनपाणिनिस्तस्य छात्रा ओदनपाणिनीयाः । वृद्धाम्भीयाः । वृद्धकाश्यपीयाः ॥ जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥ * ॥ जैह्वाकाताः । हारितकाताः ॥

त्यदादीनि च ॥ ७४ ॥

यस्याचामादिग्रहणमुत्तरार्थमनुवर्त्तते । इह न संबध्यते । त्यदादीनि शब्दरूपाणि वृद्धसंज्ञानि भवन्ति । त्यदीयम् । तदीयम् । एतदीयम् । इदमीयम् । अदसीयम् । त्वदीयम् । मदीयम् । त्वादायनिः । मादायनिः । भवदीयम् । किमीयम् ॥

एङ् प्राचां देशे ॥ ७५ ॥

यस्याचामादिग्रहणमनुवर्त्तते । एङ् यस्याचामादिस्तत्प्राग्देशाभिधाने वृद्धसंज्ञं भवति । एणीपचनीयम् । भोजकटीयः । गोनर्दीयः । एङिति किम् । आहिच्छत्रः कान्यकुब्जः । प्राचामिति किम् । देवदत्तो नाम वाहीकेषु ग्रामः । तत्र भवो दैवदत्तः । देशइति किम् । गोमत्यां भवा मत्स्या गौमताः ।

प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदके यथा ।
विदुषां शब्दसिद्ध्यर्थे सा नः पातु शरावती ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

॥ अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ १ ॥

अतिदेशोयम् । गाङिति इङादेशो गृह्यते, न गाङ् गताविति । इकारस्यानन्यार्थत्वात् । कुटादयोपि कुटकौटिल्यइत्येतदारभ्य यावत् कुङ्शब्दे इति

तुदादिगण में ३७ धातुयें हैं

एभ्यो गाङ्कुटादिभ्यः परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितो भवन्ति ङिद्वद्भवन्तीत्यर्थः। गाङः। अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। कुटादिभ्यः। कुटिता। कुटितुम्। कुटितव्यम्। उत्पुटिता। उत्पुटितुम्। उत्पुटितव्यम्। अञ्णिदिति किम्। उत्कोटयति। उच्चुकोट। उत्कोटकः। उत्कोटो वर्त्तते॥ व्यचेः कुटादित्वमनसीति वक्तव्यम्॥ *॥ विचिता। विचितुम्। विचितव्यम्। अनसीति किम्। उरुव्यचाः॥

विज इट्। २॥

ओविजी भयचलनयोः, अस्मात्पर इडादिः प्रत्ययो ङिद्भवति। उद्विजिता। उद्विजितुम्। उद्विजितव्यम्। इडिति किम्। उद्वेजनम्। उद्वेजनीयम्॥

विभाषोर्णोः॥ ३॥

इडिति वर्तते। ऊर्णुञ् आच्छादने, अस्मात्पर इडादिः प्रत्ययो विभाषा ङिद्भवति। प्रोर्णुविता। प्रोर्णविता। इडित्येव। प्रोर्णवनम्। प्रोर्णवनीयम्॥

सार्वधातुकमपित्॥ ४॥

सार्वधातुकं यदपित्तन्ङिद्वद्भवति। कुरुतः। कुर्वन्ति। चिनुतः। चिन्वन्ति। सार्वधातुकमिति किम्। कर्त्ता। कर्तुम्। कर्त्तव्यम्। अपिदिति किम्। करोति। करोषि। करोमि॥

असंयोगाल्लिट् कित्॥ ५॥

अपिदिति वर्त्तते। असंयोगान्ताद्धातोः परो लिट्प्रत्ययोऽपित् किद्भवति। बिभिदतुः। बिभिदुः। चिच्छिदतुः। चिच्छिदुः। ईजतुः। ईजुः। असंयोगादिति किम्। सस्रंसे। दध्वंसे। अपिदित्येव। बिभेद*॥

इन्धिभवतिभ्यां च॥ ६॥

इन्धिभवतीत्येताभ्यां परो लिट्प्रत्ययः किद्भवति। समीधे दस्युहन्तमम्। पुत्र ईधे अथर्वणः। भवतेः। खल्वपि। बभूव। बभूविथ। इन्धेः संयोगार्थं ग्रहणम्। भवतेः पिदर्थम्। अत्रेष्टिः। श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम्॥ *॥ श्रेथतुः। श्रेथुः। ग्रेथतुः। ग्रेथुः। देभतुः। देभुः। परिषस्वजे। परिषस्वजाते॥ ×अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि। ६।४।१२० एत्वमभ्यासलोपश्च

मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा॥ ७॥

मृड मृद गुध कुष क्लिश वद वस् इत्येतेभ्यः परः क्त्वाप्रत्ययः किद्भवति। न क्त्वा सेडिति प्रतिषेधं वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपकर्षः। गुधकुषक्लि-

---

* बिभेदियेति पा०।

थीनां तु रलो व्युपधादिति विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम्। मृडित्वा। मृदित्वा। गुधित्वा। कुषित्वा। क्लिशित्वा। उदित्वा। उषित्वा॥

रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ ८ ॥

रुद विद मुष ग्रहि स्वपि प्रच्छ इत्येतेभ्यः सश्च क्त्वा च कितौ भवतः। रुदविदमुषीणां रलो व्युपधादिति विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं ग्रहणम्। ग्रहेर्विध्यर्थमेव। स्वपिप्रच्छ्योः सन्नर्थं ग्रहणम्। किदेव हि क्त्वा। रुदित्वा। रुरुदिषति। विदित्वा। विविदिषति। मुषित्वा। मुमुषिषति। गृहीत्वा। जिघृक्षति। सुप्त्वा। सुषुप्सति। पृष्ट्वा। पिपृच्छिषति। ग्रहादीनां कित्त्वात्संप्रसारणं भवति। किरश्च पञ्चभ्य इति प्रच्छेरिडागमः॥ सनि ग्रहगुहोश्चेति नेट्

कॄ गॄ दॄ धृङ् प्रच्छ सनि

इको झल् ॥ ९ ॥

सन्नित्यनुवर्त्तते। क्त्वेति निवृत्तम्। इगन्ताद्धातोः परो झलादिः सन् किद्भवति। चिचीषति। तुष्टूषति। चिकीर्षति। इक इति किम्। पिपासति। तिष्ठासति। झलिति किम्। शिशयिषते। किमर्थमिदमुच्यते। गुणो मा भूदिति। अज्झनगमां सनीति दीर्घत्वं गुणस्य बाधकं भविष्यति। यथैव तर्हि दीर्घत्वं गुणं बाधते तथा णिलोपमपि बाधेत। तस्माद्दीर्घत्वस्यावकाशदानाय कित्त्वमिदमारभ्यते। चिचीषतीत्यादिषु सावकाशं दीर्घत्वं परत्वाद् णिलोपेन बाध्यते। ज्ञीप्सति।

इकः कित्त्वं गुणो मा भूद्दीर्घारम्भात्कृते भवेत्।
अनर्थकं तु ह्रस्वार्थं दीर्घाणां तु प्रसज्यते॥
सामर्थ्याद्धि पुनर्भाव्यमृदित्वं दीर्घसंश्रयम्।
दीर्घाणां नाकृते दीर्घे णिलोपस्तु प्रयोजनम्॥

उपधायाः ... ७।१।१०२

हलन्ताच्च ॥ १० ॥

इकः सन् झल्किदिति वर्त्तते। समीपवचनोऽन्तशब्दः। हल् चासावन्तश्च हलन्तः। इगन्तादिक्समीपाद्धलः परः सन् झलादिः किद्भवति। बिभित्सति। बुभुत्सते। इक इत्येव। यियक्षते। झलित्येव। विवर्त्तिषते। दम्भेर्हल्ग्रहणस्य जातिवाचकत्वात्सिद्धम्। धीप्सति। धिप्सति॥ दम्भ इच्च

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ ११ ॥

हलन्तादिको झल्किदिति वर्त्तते। सनिति निवृत्तम्। गन्तादिक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ आत्मनेपदेषु परतः कितौ भवतः। भित्सीष्ट। भुत्सीष्ट। सिचि खल्वपि। अभित्त। अबुद्ध। इक इत्येव। यक्षीष्ट। अयष्ट।

झलो झलि ८।२।२६

संप्रसारणं हि स्यात् । आत्मनेपदेष्विति किम् । अस्वाक्षीत् । अद्राक्षीत् । सृजिदृशोर्झल्यमकितीत्यमागमो न स्यात् । हलन्तादित्येव । चेषीष्ट । अचेष्ट । गुणो न स्यात् । झलित्येव । वर्त्तिषीष्ट । अवर्त्तिष्ट । गुणो न स्यात् । लिङ्सिचाविति किम् । द्रष्टा । द्रक्ष्यति ॥

उश्च ॥ १२ ॥

ऋवर्णान्ताद्धातोः परौ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु झलादी कितौ भवतः । कृषीष्ट । हृषीष्ट । सिचः खल्वपि । अकृत । अहृत । झलित्येव । वरिषीष्ट । अवरिष्ट । वृतो वा । अवरीष्ट* ॥

वा गमः ॥ १३ ॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति वर्त्तते । गमेर्धातोः परौ लिङ्सिचौ आत्मनेपदेषु झलादी वा कितौ भवतः । संगसीष्ट । संगंसीष्ट । सिचः खल्वपि । समगत । समगंस्त । कित्त्वपक्षे अनुनासिकलोपो भवति अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामिति ॥

हनः सिच् ॥ १४ ॥

हन्तेर्धातोः परः सिच् किद्भवति । आहत । आहसाताम् । आहसत । सिचः कित्त्वादनुनासिकलोपः । सिज्ग्रहणं लिङ्निवृत्त्यर्थम्, उत्तरत्रानुवृत्तिर्मा भूत् । आत्मनेपदग्रहणमुत्तरार्थमनुवर्त्तते । इह तु परस्मैपदे हन्तेर्वधभावस्य नित्यत्वात्कित्त्वस्य प्रयोजनं नास्ति ॥

यमो गन्धने ॥ १५ ॥

सिच आत्मनेपदेष्विति वर्त्तते । यमेर्धातोर्गन्धने वर्त्तमानात्परः सिच् प्रत्ययः किद्भवति आत्मनेपदेषु परतः । गन्धनं सूचनं, परेण प्रच्छाद्यमानस्यावद्यस्याविष्करणम् । अनेकार्थत्वाद्धातूनां यमिस्तत्र वर्तते । उदायत । उदायसाताम् । उदायसत । सूचितवानित्यर्थः । सिचः कित्त्वादनुनासिकलोपः । आङो यमहन इत्यात्मनेपदम् । गन्धनइति किम् । उदायंस्त पादम् । उदायंस्त कूपादुदकम्† उद्धृतवानित्यर्थः । सकर्मकत्वेपि समुदाङ्भ्यो यमो ऽग्रन्थ इत्यात्मनेपदम् ॥

विभाषोपयमने ॥ १६ ॥

यमः सिजात्मनेपदेष्विति वर्त्तते । यमेर्धातोरुपयमने वर्त्तमानात् परः सिच्प्रत्ययो विभाषा किद्भवति आत्मनेपदेषु परतः । उपायत कन्याम् । उपा-

---

* आत्मनेपदेष्वित्येव । अकार्षीत् । इति क्वाचित्कः पाठः ।

† रज्जुम् । पा० ।

यंस्त कन्याम् । उपायत भार्याम् । उपायंस्त भार्याम् । उपयमनं स्वीकरणं विवाहः दारकर्म पाणिग्रहणमित्यर्थः । उपाद्यमः स्वकरणइत्यात्मनेपदम् ॥

स्थाघ्वोरिच्च ॥ १७ ॥

सिजात्मनेपदेष्विति वर्तते । तिष्ठतेर्धातोः घुसंज्ञकानां च इकारश्चान्तादेशः सिच्च किद्भवति आत्मनेपदेषु परतः । उपास्थित । उपास्थिषाताम् । उपास्थिषत । घुसंज्ञकानाम् । अदित । अधित ॥

इत्त्वं कस्य तकारेत्त्वं दीर्घो मा भूदृतेपि सः ।
अनन्तरे प्लुतो मा भूत् प्लुतश्च विषये स्मृतः ॥

न क्त्वा सेट् ॥ १८ ॥

क्त्वाप्रत्ययः सेण्न किद्भवति । देवित्वा । वर्त्तित्वा । सेडिति किम् । कृत्वा । हुत्वा* । क्त्वाग्रहणं किम् । निगृहीतिः । उपस्निहितिः । निकुचितिः ॥

न सेडिति कृते ऽकित्त्वे, निष्ठायामवधारणात् ।
ज्ञापकान्न परोक्षायां, सनि झल्ग्रहणं विदुः ॥
इत्त्वं कित्संनियोगेन रोण तुल्यं सुधीवनि ।
वस्वर्थं किदतीदेशान्निगृहीतिः प्रयोजनम् ॥

निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥ १९ ॥

न सेडिति वर्त्तते† । शीङ् स्विदि मिदि क्ष्विदि धृष् इत्येतेभ्यः परो निष्ठाप्रत्ययः सेण्न किद्भवति । शयितः । शयितवान् । प्रस्वेदितः । प्रस्वेदितवान् । प्रमेदितः । प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितः । प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः । प्रधर्षितवान् । सेडित्येव । स्विन्नः । स्विन्नवान् । स्विदादीनामादितश्चेति निष्ठायामिट् प्रतिषिध्यते । विभाषा भावादिकर्मणोरिति पक्षेभ्यनुज्ञायते स विषयः कित्त्वप्रतिषेधस्य ॥ .

मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥

मृषेर्धातोः तितिक्षायामर्थे निष्ठा सेण्न किद्भवति । तितिक्षा क्षमा । मर्षितः । मर्षितवान् । तितिक्षायामिति किम् । अपमृषितं वाक्यमाह ॥

उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

निष्ठा सेण्न किदिति वर्त्तते । उदुपधाद्धातोः परो भावे आदिकर्मणि च वर्त्तमानो निष्ठाप्रत्ययः सेडन्यतरस्यां न किद्भवति । द्युतितमनेन । द्योति-

* हृत्वेति पाठान्तरम् ।
† सेड् न किदिति वर्तते । पा० ।

तमनेन । प्रद्योतितः । प्रद्युतितः । मुदितमनेन । मोदितमनेन । प्रमुदितः । प्रमोदितः । उदुपधादिति किम् । लिखितमनेन । भावादिकर्म्मणोरिति किम् । रुचितं कार्षापणं ददाति । सेडित्येव । प्रभुक्त ओदनः । व्यवस्थितविभाषा चेयम् । तेन शब्विकरणानामेव भवति । गुधपरिवेष्टने । गुधितमित्यत्र न भवति ॥

पूङः क्त्वा च ॥ २२ ॥

अन्यतरस्यामिति न स्वर्यते । उत्तरसूत्रे पुनर्वावचनात् । न सेडिति वर्त्तते । पूङश्चेतीड्विहितः क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः पूङश्चेति । पूङः परो निष्ठाप्रत्ययः क्त्वा च सेण् न किद्भवति । पवितः । पवितवान् । क्त्वाप्रत्ययस्य न क्त्वा सेडिति सिद्ध एव प्रतिषेधः । तस्य ग्रहणमुत्तरार्थम् । तथा चोक्तम् । नित्यमकित्त्वमिडाद्योः क्त्वानिष्ठयोः क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थमिति ॥

नोपधात्थफान्ताद्वा ॥ २३ ॥

निष्ठेति निवृत्तम् । नकारोपधाद्धातोस्थकारान्तात्फकारान्ताच्च परः क्त्वाप्रत्ययः सेड्वा न किद्भवति । ग्रथित्वा । ग्रन्थित्वा । श्रथित्वा । श्रन्थित्वा । गुफित्वा । गुम्फित्वा । नोपधादिति किम् । रेफित्वा । गोफित्वा । थफान्तादिति किम् । स्रंसित्वा । ध्वंसित्वा ॥

वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥ २४ ॥

वञ्चि लुञ्चि ऋत इत्येतेभ्यः परः क्त्वाप्रत्ययः सेड्वा न किद्भवति । वचित्वा । वञ्चित्वा । लुचित्वा । लुञ्चित्वा । ऋतित्वा । अर्तित्वा । ऋतेरीयङार्धधातुके विकल्पितः । स यत्र पक्षे नास्ति तत्रेदमुदाहरणम् । सेडित्येव । वक्त्वा ॥

तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ २५ ॥

न क्त्वा सेडिति प्रतिषेधे प्राप्ते कित्त्वं विकल्प्यते । तृषि मृषि कृशि इत्येतेभ्यः परः क्त्वाप्रत्ययः सेट् काश्यपस्याचार्यस्य मते वा न किद्भवति । तृषित्वा । तर्षित्वा । मृषित्वा । मर्षित्वा । कृशित्वा । कर्शित्वा । काश्यपग्रहणं पूजार्थं वेत्येव हि वर्त्तते ॥

रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ २६ ॥

वेति वर्त्तते । सेडिति च । उश्च इश्च वी । वी उपधे यस्य स व्युपधः । उकारोपधादिकारोपधाच्च धातो रलन्ताद्धलादेः परः संश्च क्त्वा च सेटौ वा कितौ भवतः । द्युतित्वा । द्योतित्वा । दिद्युतिषते । दिद्योतिषते । लिखित्वा । लेखित्वा । लिलिखिषति । लिलेखिषति । रल इति किम् । देवित्वा । दिदेविषति । व्युपधादिति किम् । वर्त्तित्वा । विवर्त्तिषते । हलादेरिति किम् । एषित्वा । एषिषिषति । सेडित्येव । भुक्त्वा । बुभुक्षते ॥

ऊकालो ऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥

ऊ इति त्रयाणामयं मात्रिकद्विमात्रिकत्रिमात्रिकाणां प्रश्लिष्टनिर्देशः । ह्रस्वदीर्घप्लुत इति द्वन्द्वैकवद्भावे पुल्लिङ्गनिर्देशः । उऊऊ ३ इत्येवं कालोऽज् यथाक्रमं ह्रस्वदीर्घप्लुत इत्येवं संज्ञो भवति । उकालो ह्रस्वः । दधि । मधु । ऊकालो दीर्घः । कुमारी । गौरी । ऊ ३ कालः प्लुतः । देवदत्ता ३ अन्वसि । कालग्रहणं परिमाणार्थम् । दीर्घप्लुतयोः ह्रस्वसंज्ञा मा भूत् । आलूय । प्रलूय । ह्रस्वस्य पिति कृति तुगिति तुङ् भवति । अज्ग्रहणं संयोगाच्समुदायनिवृत्त्यर्थम् । प्रतक्ष्य । प्ररक्ष्य । ह्रस्वाश्रयस्तुङ्मा भूत् । तितउच्छत्रम् । दीर्घात्पदान्ताद्वेति विभाषा तुङ्मा भूत् । ह्रस्वदीर्घप्लुतप्रदेशाः । ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ॥

अचश्च ॥ २८ ॥

परिभाषेयं स्थानिनियमार्था । ह्रस्वदीर्घप्लुताः स्वसंज्ञया शिष्यमाणा अच एव स्थाने वेदितव्याः । वक्ष्यति ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । रै । अतिरि । नौ । अतिनु । गो । उपगु । अच इति किम् । सुवाग् ब्राह्मणकुलम् । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । चीयते । श्रूयते । अच इति किम् । भिद्यते । छिद्यते । वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः । देवदत्ता ३ । यज्ञदत्ता ३ । अच इति किम् । अग्निची ३ त् । सोमसू ३ त् । तकारस्य मा भूत् । स्वसंज्ञया विधाने नियमः । अजिति वर्त्तते । इह मा भूत् । द्यौः । पन्थाः । सः । द्युभ्याम् । द्युभिः । अत्र नियमो नास्ति ॥

उच्चैरुदात्तः ॥ २९ ॥

अजिति वर्त्तते । उदात्तादिशब्दः स्वरे वर्णधर्म्मे लोकवेदयोः प्रसिद्धा एव तदिह तद्गुणेचि परिभाष्यन्ते । उच्चैरुपलभ्यमानो यो ऽच् स उदात्तसंज्ञो भवति । उच्चैरिति च श्रुतिप्रकर्षो न गृह्यते । उच्चैर्भाषते । उच्चैः पठतीति । किं तर्हि, स्थानकृतमुच्चत्वं संज्ञिनो विशेषणम् । ताल्वादिषु हि भागवत्सु स्थानेषु वर्णा निष्पद्यन्ते तत्र यः समाने स्थाने ऊर्ध्वभागनिष्पन्नो ऽच् स उदात्तसंज्ञो भवति यस्मिन्नुच्चार्यमाणे गात्राणामायामो निग्रहो भवति । रूक्षता अस्निग्धता स्वरस्य । संवृतता कण्ठविवरस्य । ये । ते । के । उदात्तप्रदेशा आद्युदात्तश्चेत्येवमादयः ॥

नीचैरनुदात्तः ॥ ३० ॥

अजिति वर्तते । नीचैरुपलभ्यमानो योऽच् सोऽनुदात्तसंज्ञो भवति । समाने

स्थाने नीचभागे निष्पन्नो ऽच् अनुदात्तः। यस्मिन्नुच्चार्यमाणे गात्राणामन्ववसर्गो भवति। मार्दवम्। स्वरस्य मृदुता स्निग्धता। कण्ठविवरस्योरुता महत्ता। त्वसमसिमनेमेत्यनुच्चानि। नमस्ते रुद्र नीलकण्ठ सहस्राक्ष। अनुदात्तप्रदेशा अनुदात्तौ सुप्पितावित्येवमादयः॥

समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥

अजिति वर्त्तते। उदात्तानुदात्तस्वरसमाहारो योच् स स्वरित। संज्ञो भवति। सामर्थ्याच्चात्र लोकवेदयोः प्रसिद्धौ गुणावेव वर्णधर्म्मावुदात्तानुदात्तौ गृह्येते नाचौ। तौ समाह्रियेते यस्मिन्नचि तस्य स्वरित इत्येषा संज्ञा विधीयते। शिक्यम्। कन्या। सामन्यः। क्व। स्वरितप्रदेशाः तित्स्वरितमित्येवमादयः॥

तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥

उदात्तानुदात्तस्वरसमाहारः स्वरित इत्युक्तम्। तत्र न ज्ञायते कस्मिन्नंशे उदात्तः कस्मिन्ननुदात्तः, कियान्वा उदात्तः कियान्वा अनुदात्त इति। तदुभयमनेनाख्यायते। तस्य स्वरितस्य आदावर्धह्रस्वमुदात्तम्। परिशिष्टमनुदात्तम्। अर्धह्रस्वमिति चार्द्धमात्रोपलक्ष्यते। ह्रस्वग्रहणमतन्त्रम्। सर्वेषामेव ह्रस्वदीर्घप्लुतानां स्वरितानामेष स्वरविभागः, शिक्यमित्यत्रार्द्धमात्रादित उदात्ता ऽपरार्धमात्रा ऽनुदात्ता, एकश्रुतिर्वा। कन्या इत्यत्रार्द्धमात्रा ऽऽदित उदात्ता ऽध्यर्धमात्रा ऽनुदात्ता। माणवका ३ माणवकेत्यत्रार्धमात्रा ऽऽदित उदात्ताऽर्धतृतीयमात्रा अनुदात्ता॥

एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ ॥ ३३ ॥

त्रैस्वर्ये पदानां प्राप्ते दूरात्संबुद्धावैकश्रुत्यं विधीयते। एका श्रुतिर्यस्य तदिदमेकश्रुति। एकश्रुति वाक्यं भवति। दूरात्संबोधयति येन वाक्येन तत्संबोधनं संबुद्धिः, नैकवचनं संबुद्धिः। स्वराणामुदात्तादीनामविभागो ऽभेदः तिरोधानमेकश्रुतिः। आगच्छ भो माणवक देवदत्ता३। दूरादिति किम्। आगच्छ भो माणवक देवदत्त॥

यज्ञकर्म्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ ३४ ॥

त्रैस्वर्येण वेदे मन्त्राः पठ्यन्ते तेषां यज्ञक्रियायामपि तथैव प्रयोगे प्राप्ते एकश्रुतिर्विधीयते। जपन्यूङ्खसामानि वर्ज्जयित्वा यज्ञकर्म्मणि मन्त्राणामेकश्रुत्यं भवति। अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म्। यज्ञकर्मणीति किम्। संपाठे मा भूत्। अजपेष्विति किम्। ममाग्ने वर्च्चो विहवेष्वस्तु। जपो ऽनुकरणमन्त्रः। उपांशुप्रयोगः। अन्यूङ्खेति किम्। न्यूङ्खा ओकाराः षोडश। तेषु के चिदुदात्ताः के चिदनुदात्ताः। असामस्विति

किम् । ए३ विश्वं समत्रिणं दहा३ । सामानि वाक्यविशेषस्यगीतय उच्यन्ते । तत्रैकश्रुतिर्न भवति ॥

उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ ३५ ॥

यज्ञकर्म्मणीति वर्तते । यज्ञकर्म्मणि वषट्कारः उच्चैस्तरां वा भवति एकश्रुतिर्वा । वषट्शब्देनात्र वौषट्शब्दो लक्ष्यते, वौषडित्यस्यैवेदं स्वरविधानम् । यद्येवं वौषड्ग्रहणमेव कस्मान्न कृतम् । वैचित्र्यार्थम् । विचित्रा हि सूत्रस्य कृतिः पाणिनेः । सोमस्याग्ने वीही ३ वौ ३ षट् । सोमस्याग्ने वीही ३ वौ ३ षट् ॥

॥ विभाषा छन्दसि ॥ ३६ ॥

छन्दसि विषये विभाषा एकश्रुतिर्भवति, पक्षान्तरे त्रैस्वर्यमेव भवति । वेति प्रकृते विभाषाग्रहणं यज्ञकर्म्मणीत्यस्य निवृत्त्यर्थम् । तेनायं स्वाध्यायकालेपि पाक्षिक एकश्रुत्यविधिर्भवति । इषे त्वोर्ज्जे त्वा । इषे त्वोर्ज्जे त्वा । अग्न आयाहि वीतये । अग्न आयाहि वीतये । अग्निमीळे पुरोहितम् । अग्निमीळे पुरोहितम् । शन्नो देवीरभिष्टये । शन्नो देवीरभिष्टये । *व्यवस्थितविकल्पोयमिति केचित् । व्यवस्था च वेदे मन्त्रदले नित्यं त्रैस्वर्यं ब्राह्मणदले नित्यमेकश्रुत्यमिति ॥

"इच्छासंहितयोरार्षे छन्दो वेदे च छन्दसि"

इति नानार्थकोशात् छन्दसि वर्णसंहितायामिति भट्टाचार्यचरणा इति । भाषायामप्येकश्रुतिर्विभाषा भवतीति सिद्धम् ॥

न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ ३७ ॥

सुब्रह्मण्या नाम निगदस्तत्र यज्ञकर्म्मणीति विभाषा छन्दसीति च एकश्रुतिः प्राप्ता प्रतिषिध्यते । सुब्रह्मण्यायामेकश्रुतिर्न भवति । यस्तु लक्षणप्राप्तः स्वरितस्तस्योदात्त आदेशो भवति । सुब्रह्मण्यो ३ मिन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेर्मेष वृषणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सुत्यामागच्छ मघवन् । अत्र सुब्रह्मण्योमित्योकारस्तित्स्वरेण स्वरितस्तस्योदात्तो विधीयते । इन्द्र आगच्छेत्यामन्त्रितमाद्युदात्तं द्वितीयो वर्णो ऽनुदात्तः । उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित इति स्वरितः प्रसक्तस्तस्यानेनोदात्तः क्रियते । तेन द्वावप्युदात्तौ संपन्नौ । आगच्छेत्याकार उदात्तः । ततः परोनुदात्तः स्वरितस्तस्यानेनोदात्तः क्रियते । तदेवमिन्द्र आगच्छेति चत्वार उदात्ताः । पश्चिम एकोनुदात्तः । हरिव आगच्छेत्यनयैव प्रक्रियया चत्वार उदात्ताः द्वावनुदात्तौ । मेधातिथेरिति षष्ठ्यन्तं परमामन्त्रितमनुप्रविशति ।

---

* व्यवस्थितेत्यारभ्य सिद्धमित्यन्तः पाठः केषु चित्पुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे इति । ततः सकलस्यामन्त्रिताद्युदात्तत्वे कृते द्वितीयमक्षरमनुदात्तं तस्योदात्तादनुदात्तस्य स्वरित इति स्वरितत्वे प्राप्ते इदमुदात्तत्वं विधीयते । तेन द्वावप्युदात्तौ भवतः । शेषमनुदात्तम् । वृषणश्वस्य मेनइति समानं पूर्वेण । गौरावस्कन्दिन्निति तथैव द्वे आद्ये अक्षरे उदात्ते शेषमनुदात्तम् । अहल्यायै जारेति सुबन्तस्यामन्त्रितानुप्रवेशात् तद्वदेव स्वरः । द्वावुदात्तौ शेषमनुदात्तम् । कौशिकब्राह्मणेति । समस्तमामन्त्रितमाद्युदात्तं तत्र पूर्ववद् द्वावुदात्तौ । शेषमनुदात्तम् । एवं गौतमब्रुवाणेति द्वावुदात्तौ शेषमनुदात्तम् । श्वः सुत्यामागच्छ मघवन्निति श्वः शब्द उदात्तः सुत्यामित्यन्तोदात्तः । संज्ञायां समजनिषदेति क्यपो विधाने उदात्त इति वर्त्तते । आगच्छेति द्वावुदात्तौ । अन्त्यो ऽनुदात्तः । मघवन्निति पदात्परमामन्त्रितं निहन्यते ॥

देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ ३८ ॥

सुब्रह्मण्यायामेव देवा ब्रह्माण इति पठ्यते, तत्र पूर्वेण स्वरितस्योदात्ते प्राप्ते ऽनेनानुदात्तो विधीयते । देवब्रह्मणोः स्वरितस्यानुदात्त आदेशो भवति । देवा ब्रह्माण आगच्छत । द्वयोरपि पदयोरामन्त्रिताद्युदात्तत्वे शेषनिघाते चोदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः कृतस्तस्यानुदात्तो भवति ॥

स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥ ३९ ॥

एकश्रुतिरिति वर्त्तते । संहितायां विषये स्वरितात्परेषामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति । इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि । इममित्यन्तोदात्तं, मे इति अनुदात्तं, विधिकालएव निघातविधानात् । तत्पुनरुदात्तादनुदात्तस्य स्वरित इति स्वरितं संपद्यते । तस्मात्स्वरितात्परेषामनुदात्तानां गङ्गेप्रभृतीनामेकश्रुतिर्भवति । सर्वएते आमन्त्रितनिघातेनानुदात्ताः । माणवक जटिलकेति प्रथममामन्त्रितमाद्युदात्तं तस्य द्वितीयमक्षरं स्वरितं ततः परेषामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति । संहिताग्रहणं किम् । अवग्रहे मा भूत् । इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति ॥

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ ४० ॥

अनुदात्तग्रहणमनुवर्त्तते । उदात्तः परो यस्मात्स उदात्तपरः, स्वरितः परो यस्मात्स स्वरितपरः, उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतर आदेशो भवति । अनुदात्ततर इत्यर्थः । देवा मरुतः पृश्निमातरोपः । मातर इत्यनुदात्तः । अप इत्यन्तोदात्तः । ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्य इति । तत्रानुदात्तयोरेकादेश ओकारोनुदात्तः । तस्योदात्ते परभूते सन्नतर आदेशो भवति इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । इकारोनुदात्तः शुतुद्रिइत्येतदामन्त्रितं पादादौ तस्माच

निहन्यते, अनुदात्तं सर्वमपादादाविति तस्य प्रथममक्षरमुदात्तं तस्मिन्परभूते पूर्वस्य सरस्वतीती कारस्य सन्नतर आदेशो भवति। माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि। क्व इति स्वरितस्तस्मिन्परभूते क इति अनुदात्तस्तस्य सन्नतर आदेशो भवति॥

अपृक्त एकाल्प्रत्ययः॥ ४१॥

अपृक्त इतीयं संज्ञा भवति एकाल् यः प्रत्ययस्तस्य। असहायवाची एकशब्दः। स्पृशोनुदके क्विन्। घृतस्पृक्। भजो ण्विः। अर्धभाक्। पादभाक्। एकालिति किम्। दर्विः। जागृविः। प्रत्यय इति किम्। सुराः। अपृक्तप्रदेशा वेरपृक्तस्येत्येवमादयः॥

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः॥ ४२॥

तत्पुरुष इति समासविशेषस्य संज्ञां वक्ष्यति। स तत्पुरुषः समानाधिकरणपदः कर्मधारयसंज्ञो भवति। अधिकरणशब्दोऽभिधेयवाची। समानाधिकरणः समानाभिधेयः। परमराज्यम्। उत्तमराज्यम्। कर्मधारये राज्यमित्युत्तरपदाद्युदात्तं न भवति। पाचकवृन्दारिका। तत्पुरुष इति किम्। पाचिकाभार्यः। समानाधिकरण इति किम्। ब्राह्मणराज्यम्। कर्मधारयप्रदेशाः कर्मधारये निष्ठेत्येवमादयः*॥

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्॥ ४३॥

प्रथमया विभक्त्या यन्निर्दिश्यते समासशास्त्रे तदुपसर्जनसंज्ञं भवति। समास इति समासविधायि शास्त्रं गृह्यते। वक्ष्यति द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैरिति द्वितीयासमासे द्वितीयेत्येतत्प्रथमानिर्दिष्टं तृतीयासमासे तृतीयेति चतुर्थीसमासे चतुर्थीति पञ्चमीसमासे पञ्चमीति षष्ठीसमासे षष्ठीति सप्तमीसमासे सप्तमीति। कष्टश्रितः। शङ्कुलाखण्डः। यूपदारु। वृकभयम्। राजपुरुषः। अक्षशौण्डः। उपसर्जनप्रदेशा उपसर्जनं पूर्वमित्येवमादयः॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते॥ ४४॥

एका विभक्तिर्यस्य तदिदमेकविभक्ति,समासे विधीयमाने यन्नियतविभक्तिकं द्वितीये संबन्धिनि बहुभिर्विभक्तिभिर्युज्यमानेप्येकयैव विभक्त्या युज्यते तदुपसर्जनसंज्ञं भवति अपूर्वनिपाते, पूर्वनिपातं पूर्वनिपाताख्यमुपसर्जनकार्यं वर्जयित्वा। निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। पूर्वपदे नानाविभक्तिकेप्युत्तरपदं पञ्चम्यन्तमेव भवति। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः। निष्क्रान्तं कौ-

* कर्मधारयप्रदेशाः पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेष्वित्येवमादय इति पाठान्तरम्।

शाम्ब्या निष्कौशाम्बिम् । निष्क्रान्तेन कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिना । निष्क्रान्ताय कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बये । निष्क्रान्तात् कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बेः । निष्क्रान्तस्य कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बेः । निष्क्रान्ते कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बौ । एवं निर्वाराणसिः । एकविभक्तीति किम् । राजकुमारी । अपूर्वनिपात इति किम् । नहि भवति कौशाम्बीनिरिति ॥

१ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ४५ ॥

अभिधेयवचनोऽर्थशब्दः । अर्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं भवति धातुप्रत्ययौ वर्ज्जयित्वा । डित्थः । कपित्थः । कुण्डम् । पीठम् । अर्थवदिति किम् । वनं धनमिति नान्तस्यावधेर्मा भूत् । न लोपो हि स्यात् । अधातुरिति किम् । हन्तेर्लङ् । अहन् । नलोपः स्यात् । अप्रत्यय इति किम् । काण्डे । कुड्ये । ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्येति ह्रस्वः स्यात् । *अनर्थकस्यापि निपातस्य प्रातिपदिकसंज्ञेष्यते । अध्यागच्छति । प्रलम्बते । प्रातिपदिकप्रदेशाः ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्येत्येवमादयः ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च ॥ ४६ ॥

कृतस्तद्धिताः समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञा भवन्ति । अप्रत्यय इति पूर्वत्र पर्युदासात्कृदन्तस्य तद्धितान्तस्य चानेन प्रातिपदिकसंज्ञा विधीयते । अर्थवत्समुदायानां समासग्रहणं नियमार्थम् । कृत् । कारकः । हारकः । कर्त्ता । हर्त्ता । तद्धितः । औपगवः । कापटवः । समासः । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । समासग्रहणस्य नियमार्थत्वाद्वाक्यस्यार्थवतः संज्ञा न भवति ॥

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ ४७ ॥

नपुंसकलिङ्गेऽर्थे यत्प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्य ह्रस्वो भवति आदेशोऽलोऽन्त्यस्याचः । अतिरि कुलम् । अतिनु कुलम् । नपुंसकइति किम् । ग्रामणीः । सेनानीः । प्रातिपदिकस्येति किम् । काण्डे तिष्ठतः । कुड्ये तिष्ठतः । प्रातिपदिकग्रहणसामर्थ्यादेकादेशः पूर्वस्यान्तवच्च भवति ॥

गोस्त्रियोरुपसर्ज्जनस्य ॥ ४८ ॥

प्रातिपदिकस्येति वर्त्तते । गोइति स्वरूपग्रहणं,स्त्रीति प्रत्ययग्रहणं स्वरितत्वात् । उपसर्ज्जनग्रहणं तयोर्विशेषणं, गोरुपसर्ज्जनस्य स्त्रीप्रत्ययान्तस्योपसर्ज्जनस्येति । ताभ्यां प्रातिपदिकस्य तदन्तविधिः । उपसर्ज्जनगोशब्दान्तस्य उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तान्तस्य च प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति । चित्रगुः । शबलगुः । स्त्रियाः । निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । अतिखट्वः । अतिमालः ।

---

* अनर्थकस्येत्यारभ्य प्रलम्बते इत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।

उपसर्ज्जनस्येति किम् । राजकुमारी । स्वरितत्वं किम् । अतितन्त्रीः । अतिलक्ष्मीः । अतिश्रीः । ईयसो बहुव्रीहेः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ बहुश्रेयसी । विद्यमानश्रेयसी ॥

लुक्तद्धितलुकि ॥ ४९ ॥

स्त्रीग्रहणमनुवर्त्तते उपसर्जनस्येति च । पूर्वेण ह्रस्वत्वे प्राप्ते लुग्विधीयते । तद्धितलुकि सति स्त्रीप्रत्ययस्य उपसर्ज्जनस्य लुग्भवति । पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य पञ्चेन्द्रः । दशेन्द्रः । पञ्चभिः शष्कुलीभिः क्रीतः पञ्चशष्कुलिः । आमलक्याः फलमामलकम् । बकुलम् । बदरम् । तद्धितग्रहणं किम् । गार्ग्याः कुलं गार्गीकुलम् । लुकीति किम् । गार्गीत्वम् । उपसर्ज्जनस्येत्येव । अवन्ती । कुन्ती । कुरुः ॥

इद्गोण्याः ॥ ५० ॥

पूर्वेण लुकि प्राप्ते इकारो विधीयते । गोण्यास्तद्धितलुकि सति इकारादेशो भवति । पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः पञ्चगोणिः । दशगोणिः । इदिति योगविभागः । पञ्चभिः सूचीभिः क्रीतः पञ्चसूचिः । दशसूचिः । स च एवं विषय एव ॥

लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥

लुपीति लुप्संज्ञया लुप्तस्य प्रत्ययस्यार्थ उच्यते । तत्र लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने भवतः । युक्तवदिति निष्ठाप्रत्ययेन क्तवतुना प्रकृत्यर्थ उच्यते । स हि प्रत्ययार्थमात्मना युनक्ति तस्य युक्तवतो व्यक्तिवचने लुबर्थे विधीयेते । अथ वा युक्तः प्रकृत्यर्थः प्रत्ययार्थेन संबद्धस्तस्मिन्निव व्यक्तिवचने लुबर्थे भवतः । सप्तम्यर्थे वतिः । व्यक्तिवचने इति च लिङ्गसंख्ययोः पूर्वाचार्यनिर्देशस्तदीयमेवेदं सूत्रम् । तथा चास्य प्रत्याख्यानं भविष्यति । तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वादिति । व्यक्तिः स्त्रीपुंनपुंसकानि, वचनमेकत्वद्वित्वबहुत्वानि । पञ्चालाः क्षत्रियाः । पुंलिङ्गाः बहुवचनविषयाः । तेषां निवासो जनपदः यथा तेषु क्षत्रियेषु व्यक्तिवचने तद्वज्जनपदे भवतः । पञ्चालाः । कुरवः । मगधाः । मत्स्याः । अङ्गाः । वङ्गाः । सुह्माः । पुण्ड्राः । लुपीति किम् । लुकि मा भूत् । लवणः सूपः । लवणा यवागूः । लवणं शाकम् । व्यक्तिवचने इति किम् । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषास्तस्य वनं शिरीषवनम् । विभाषौषधिवनस्पतिभ्य इति णत्वं न भवति ॥ हरीतक्यादिषु व्यक्तिः ॥ * ॥ हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः फलानि ॥ खलतिकादिषु वचनम् ॥ * ॥ खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि वनानि खलतिकं वनानि ॥

विशेषणानां चाजातेः ॥ ५२ ॥

लुपीति वर्त्तते । लुबर्थस्य यानि विशेषणानि तेषामपि व्यक्तिवचने भवतो जातिं वर्जयित्वा । पञ्चालाः रमणीयाः । बह्वन्नाः बहुक्षीरघृताः बहुमाल्यफलाः ।

गोदौ रमणीयौ । बहुवौ बहुक्षीरघृतौ बहुमाल्यफलौ । अजातेरिति किम् । पञ्चालाः जनपदः । गोदौ ग्रामः । जात्यर्थस्य चायं युक्तवद्भावप्रतिषेधः । तेन जातिद्वारेण यानि विशेषणानि तेषामपि युक्तवद्भावो न भवति । पञ्चालाः जनपदो रमणीयो बह्वन्नः । गोदौ ग्रामो रमणीयो बह्वन्न इति ॥ मनुष्यलुपि प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ चञ्चाभिरूपः । वद्भिका दर्शनीयः ॥

तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥ ५३ ॥

तदिति प्रकृतं युक्तवद्भावलक्षणं निर्दिश्यते, तदशिष्यं न वक्तव्यं कस्मात्संज्ञाप्रमाणत्वात् । संज्ञाशब्दा हि नानालिङ्गसंख्याः । प्रमाणं पञ्चाला वरणा इति च । नैते योगशब्दाः । किं तर्हि जनपदादीनां संज्ञा एताः । तत्र लिङ्गं वचनं च स्वभावसिद्धमेव न यत्नप्रतिपाद्यम् । यथा आपो दाराः गृहाः सिकता वर्षा इति ॥

लुब्योगाप्रख्यानात् ॥ ५४ ॥

लुबप्यशिष्यः । योयं जनपदे लुप् वरणादिभ्यश्चेति लुबुच्यते अयं न वक्तव्यः, किं कारणं योगाप्रख्यानात् । नहि पञ्चाला वरणा इति योगः संबन्धः प्रख्यायते नैतदुपलभामहे वृक्षयोगान्नगरे वरणा इति । किं तर्हि संज्ञा एताः । तस्मादत्र तस्य निवासः अदूरभवश्चेति तद्धितो नैवोत्पद्यते किं लुपो विधानेन ॥

योगप्रमाणे च तदभावे ऽदर्शनं स्यात् ॥ ५५ ॥

पञ्चालादयः संज्ञा शब्दा न योगनिमित्ता इत्युक्तं, तच्चावश्यमेवाभ्युपगन्तव्यं योगप्रमाणे हि तदभावे ऽदर्शनं स्यात् यदि पञ्चालादिशब्दो योगस्य प्रमाणं योगस्य वाचकः स्यात् ततस्तदभावे ऽदर्शनमप्रयोगः स्यात् । दृश्यते च संप्रति विनैव क्षत्रियसंबन्धेन जनपदेषु पञ्चालादिशब्दस्ततो ऽवसीयते नायं योगनिमित्तकः किं तर्हि रूढिरूपेणैव तत्र प्रवृत्त इति ॥

प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् ॥ ५६ ॥

अशिष्यमिति वर्त्तते, प्रधानं समासे किं चित्पदं प्रत्ययस्तव्यदादिः ताभ्यामर्थवचनमर्थाभिधानमनेन प्रकारेण भवतीति पूर्वाचार्यैः परिभाषितम् । प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं सह ब्रूतः प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूत इति । तत्पाणिनिराचार्यः प्रत्याचष्टे । अशिष्यमेतत् अर्थस्यान्यप्रमाणत्वादिति । अन्य इति शास्त्रापेक्षया लोको व्यपदिश्यते, शब्दैरर्थाभिधानं स्वाभाविकं न पारिभाषिकमशक्यत्वात्, लोकत एवार्थावगतेः । यैरपि व्याकरणं न श्रुतं ते ऽपि राजपुरुषमानयेत्युक्ते राजविशिष्टं पुरुषमानयन्ति न राजानं नापि पुरुषमात्रम् । औपगवमानयेत्युक्ते उपगुविशिष्टमपत्यमानयन्ति नोपगुं नाप्यपत्यमात्रं नेभ्यो । यश्च लोकतो ऽर्थः सिद्धः किं तत्र यत्नेन ॥

कालोपसर्ज्जने च तुल्यम् ॥ ५७ ॥

अशिष्यमिति वर्त्तते । कालोपसर्ज्जने चाशिष्ये कस्मादर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् । तुल्यशब्दो हेत्वनुकर्षणार्थः । अशिष्यविशेषणं चैतत् । कालोपसर्जने च तुल्यमशिष्ये भवतः । इहान्ये वैयाकरणाः कालोपसर्ज्जनयोः परिभाषां कुर्वन्ति । आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशनात् । एषोऽद्यतनः कालः । अपरे पुनराहुः । अहरुभयतोऽर्द्धरात्रं एषोऽद्यतनः काल इति । तथोपसर्जनपरिभाषां कुर्वन्ति अप्रधानमुपसर्ज्जनमिति । तत्प्राणिनिराचार्यः प्रत्याचष्टे लोकतो ऽर्थावगतेः । यैरपि व्याकरणं न श्रुतं तेऽप्याहुरिदमस्माभिरद्य कर्त्तव्यमिदं श्वः कर्त्तव्यमिदं ह्यः कृतमिति । नैवं व्युत्पाद्यन्ते! तथोपसर्ज्जनं वयमत्र गृहे ग्रामे वा उपसर्ज्जनमप्रधानमिति गम्यते । यश्च लोकतो ऽर्थः सिद्धः किं तत्र यत्नेन । यद्येवं पूर्वसूत्रएव कालोपसर्ज्जनग्रहणं कस्मान्न क्रियते, किमर्थो योगविभागः । प्रदर्शनार्थः । अन्यदप्येवं जातीयकमशिष्यमिति । तथा च पूर्वाचार्याः परिभाषन्ते मत्वर्थे बहुव्रीहिः, पूर्वपदार्थप्रधानो ऽव्ययीभावः, उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व इत्येवमादि, तदशिष्यमिति ॥

जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम् ॥ ५८ ॥

अशिष्यमिति निवृत्तम् । जातिर्नामायमेकोऽर्थः तदभिधाने एकवचनमेव प्राप्तमत इदमुच्यते जातेराख्या जात्याख्या जात्याख्यायामेकस्मिन्नर्थे बहुवचनमन्यतरस्यां भवति । जात्यर्थो बहुवद् भवतीति यावत् । तेन तद्विशेषणानामजातिशब्दानामपि संपन्नादीनां बहुवचनमुपपद्यते । संपन्नो यवः । संपन्ना यवाः । संपन्नो व्रीहिः । संपन्ना व्रीहयः । पूर्ववया ब्राह्मणः प्रत्युत्थेयः । पूर्ववयसो ब्राह्मणाः प्रत्युत्थेयाः । जातिग्रहणं किम् । देवदत्तो यज्ञदत्तः । आख्यायामिति किम् । काश्यपप्रतिकृतिः काश्यपः । भवत्ययं जातिशब्दो न त्वनेन जातिराख्यायते किं तर्हि प्रतिकृतिः । एकस्मिन्निति किम् । व्रीहियवौ ॥ संख्याप्रयोगे प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ एको व्रीहिः संपन्नः सुभिक्षं करोति ॥

अस्मदो द्वयोश्च ॥ ५९ ॥

अस्मदो योऽर्थस्तस्यैकत्वे द्वित्वे च बहुवचनमन्यतरस्यां भवति । अहं ब्रवीमि । वयं ब्रूमः । आवां ब्रूवः । वयं ब्रूमः ॥ सविशेषणस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ अहं देवदत्तो ब्रवीमि । अहं गार्ग्यो ब्रवीमि । अहं पटुर्ब्रवीमि ! युष्मदि गुरावेकेषाम् । त्वं मे गुरुः । यूयं मे गुरवः ॥

फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ॥ ६० ॥

चकारो द्वयोरित्यनुकर्षणार्थः । फल्गुन्योर्द्वयोः प्रोष्ठपदयोश्च द्वयोर्नक्ष-

त्रयोर्बहुवचनमन्यतरस्यां भवति। कदा पूर्वे फल्गुन्यौ, कदा पूर्वाः फल्गुन्यः। कदा पूर्वे प्रोष्ठपदे, कदा पूर्वाः प्रोष्ठपदाः। नक्षत्रइति किम्। फल्गुन्यौ माणविके ॥

छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् ॥ ६१ ॥

अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते। द्वयोर्द्विवचने प्राप्ते पुनर्वस्वोश्छन्दसि विषये एकवचनमन्यतरस्यां भवति। पुनर्वसुर्नक्षत्रमदितिर्देवता। पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता। नक्षत्रइत्येव। पुनर्वसू माणवकौ। छन्दसीति किम्। पुनर्वसू इति ॥

विशाखयोश्च ॥ ६२ ॥

छन्दसीति वर्त्तते, द्विवचने प्राप्ते छन्दसि विषये विशाखयोरेकवचनमन्यतरस्यां भवति। विशाखा नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता। विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता ॥

तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ॥ ६३ ॥

छन्दसीति निवृत्तम्। तिष्य एकः पुनर्वसू द्वौ तेषां द्वन्द्वो बह्वर्थः। तत्र बहुवचने प्राप्ते द्विवचनं विधीयते। तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रविषये द्वन्द्वे बहुवचनप्रसङ्गे नित्यं द्विवचनं भवति। उदितौ तिष्यपुनर्वसू दृश्येते। तिष्यपुनर्वस्वोरिति किम्। विशाखानुराधाः। नक्षत्रइति किम्। तिष्यश्च माणवकः पुनर्वसू माणवकौ तिष्यपुनर्वसवो माणवकाः। ननु च प्रकृतमेव नक्षत्रग्रहणं किमर्थं पुनरुच्यते। पर्यायाणामपि यथा स्यात्। तिष्यपुनर्वसू। पुष्यपुनर्वसू। सिद्ध्यपुनर्वसू। द्वन्द्वइति किम्। यस्तिष्यस्तौ पुनर्वसू येषां तइमे तिष्यपुनर्वसवः। उन्मुग्धास्तिष्यादय एव विपर्ययेण दृश्यमाना बहुव्रीहिणोच्यन्ते। तेन नक्षत्रसमास एवायम्। बहुवचनस्येति किम्। एकवचनस्य मा भूत्, तिष्यपुनर्वसु इदमिति। सर्वो द्वन्द्वो विभाषा एकवद्भवतीत्यस्यैतदेव ज्ञापकम्। नित्यग्रहणं विकल्पनिवृत्त्यर्थम् ॥

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥ ६४ ॥

समानं रूपमेषामिति सरूपाः। सरूपाणां शब्दानां एकविभक्तौ परत एकशेषो भवति। एकः शिष्यते इतरे निवर्त्तन्ते। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षौ। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षाः। प्रत्यर्थं शब्दनिवेशान्नैकेनानेकस्याभिधानं, तत्रानेकार्थाभिधाने ऽनेकशब्दत्वं प्राप्तं तस्मादेकशेषः। सरूपाणामिति किम्। प्लक्षन्यग्रोधाः। रूपग्रहणं किम्। भिन्नेऽप्यर्थे यथा स्यात्। अक्षाः। पादाः। माषाः। एकग्रहणं किम्। द्विबह्वोः शेषो मा भूत्। शेषग्रहणं किम्। आदेशो मा भूत्। एकविभक्ताविति किम्। पयः पयो जरयति। ब्राह्मणाभ्यां च कृतं ब्राह्मणाभ्यां च देहि ॥

वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ॥ ६५ ॥

शेष इति वर्त्तते। यूनेति सहयोगे तृतीया। वृद्धो यूना सहवचने शिष्यते युवा निवर्त्तते। वृद्धशब्दः पूर्वाचार्यसंज्ञा गोत्रस्य। अपत्यमन्तर्हितं वृद्धमिति। वृद्धयूनोः सहवचने वृद्धः शिष्यते तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः। तदिति वृद्धयूनोर्निर्देशः। लक्षणशब्दो निमित्तपर्यायः। चेच्छब्दो यद्यर्थे, एवकारो ऽवधारणे। विशेषो वैरूप्यम्। वृद्धयुवनिमित्तकमेव यदि वैरूप्यं भवति ततो वृद्धः शिष्यते युवा निवर्त्तते। समानायामाकृतौ वृद्धयुवप्रत्ययौ भिद्येते। गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ। वात्स्यश्च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ। वृद्ध इति किम्। गर्गश्च गार्ग्यायणश्च गर्गगार्ग्यायणौ। यूनेति किम्। गार्ग्यश्च गर्गश्च गार्ग्यगर्गौ। तल्लक्षण इति किम्। गार्ग्यवात्स्यायनौ। एवकारः किमर्थः। भागवित्तिश्च भागवित्तिकश्च भागवित्तिभागवित्तिकौ। कुत्सा सौवीरत्वं च भागवित्तिकस्यापरो विशेषो विद्यते॥

स्त्री पुंवच्च ॥ ६६ ॥

शेष इति वर्त्तते, वृद्धो यूनेति च सर्वं, स्त्री वृद्धा यूना सहवचनेशिष्यते तल्लक्षणश्चेदेव विशेषो भवति। पुंवद्चास्याः कार्यं भवति। स्त्र्यर्थः पुमर्थवद्भवति। गार्गी च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ। वात्सी च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ। दाक्षी च दाक्षायणश्च दाक्षी॥

पुमान् स्त्रिया ॥ ६७ ॥

तल्लक्षणश्चेदेव विशेष इति वर्त्तते। वृद्धो यूनेति निवृत्तम्। स्त्रिया सहवचने पुमान् शिष्यते स्त्री निवर्त्तते। स्त्रीपुंसलक्षणश्चेदेव विशेषो भवति। ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ। कुक्कुटश्च कुक्कुटी च कुक्कुटौ। तल्लक्षणश्चेदेव विशेष इत्येव। कुक्कुटश्च मयूरी च कुक्कुटमयूर्यौ। एवकारः किमर्थः। इन्द्रश्च इन्द्राणी चेन्द्रेन्द्राण्यौ। पुंयोगादाख्यायामित्यपरो विशेषः। पुमानिति किम्। प्राक्च प्राची च प्राक्प्राच्यौ। प्रागित्यव्ययमलिङ्गम्॥

भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥ ६८ ॥

यथासंख्यं भ्रातृपुत्रशब्दौ शिष्येते सहवचने स्वसृदुहितृभ्याम्। स्वस्रा सहवचने भ्रातृशब्दः शिष्यते। भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ। दुहित्रा सहवचने पुत्र शब्दः शिष्यते। पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ॥

नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ६९ ॥

तल्लक्षणश्चेदेव विशेष इति वर्त्तते। नपुंसकानपुंसकमात्रकृते विशेषे ऽनपुंसकेन सहवचने नपुंसकं शिष्यते एकवच्चास्य कार्यं भवति अन्यतरस्याम्। शुक्लश्च कम्बलः शुक्ला च बृहतिका शुक्लं च वस्त्रं तदिदं शुक्लम्। तानीमानि

शुक्लानि । अनपुंसकेनेति किम् । शुक्लं च शुक्लं च शुक्लं च शुक्लानि । एकवच्चेति न भवति ॥

पिता मात्रा ॥ ७० ॥

अन्यतरस्यामिति वर्त्तते नैकवदिति । मात्रा सहवचने पितृशब्दः शिष्यते अन्यतरस्याम् । माता च पिता च पितरौ । मातापितराविति वा ॥

श्वशुरः श्वश्र्वा ॥ ७१ ॥

अन्यतरस्यामिति वर्तते । श्वश्र्वा सहवचने श्वशुरशब्दः शिष्यते अन्यतरस्याम् । श्वशुरश्च श्वश्रूश्च श्वशुरौ । श्वश्रूश्वशुराविति वा ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ ७२ ॥

त्यदादीनि शब्दरूपाणि सर्वैः सहवचने नित्यं शिष्यन्ते त्यदादिभिरन्यैश्च । सर्वग्रहणं साकल्यार्थं, नित्यग्रहणं विकल्पनिवृत्त्यर्थम् । स च देवदत्तश्च तौ । यश्च देवदत्तश्च यौ । त्यदादीनां मिथो यद्यत्परं तत्तच्छिष्यते ॥ * ॥ स च यश्च यौ । यश्च कश्च कौ ॥

ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३ ॥

ग्राम्याणां पशूनां संघाः ग्राम्यपशुसंघाः । एतेषु सह विवक्षायां स्त्री शिष्यते । पुमान् स्त्रियेति पुंसः शेषे प्राप्ते स्त्रीशेषो विधीयते । अतरुणग्रहणं सामर्थ्यात्पशुविशेषणम् । गाव इमाः । अजा इमाः । ग्राम्यग्रहणं किम् । रुरव इमे । पृषता इमे । पशुष्विति किम् । ब्राह्मणाः क्षत्रियाः । संघेष्विति किम् । एतौ गावौ चरतः । अतरुणेष्विति किम् । वत्सा इमे । बर्करा इमे । अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । अश्वा इमे ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ भूवादयो धातवः ॥ १ ॥

भू इत्येवमादयः शब्दाः क्रियावचना धातुसंज्ञा भवन्ति । भू । भवति । एध । एधते । स्पर्द्ध । स्पर्द्धते । धातुशब्दः पूर्वाचार्यसंज्ञा । ते च क्रियावचनानां संज्ञां कृतवन्तः । तदिहापि पूर्वाचार्यसंज्ञाश्रयणात् क्रियावाचिनामेव भूवादीनां धातुसंज्ञा विधीयते ॥

भूवादीनां वकारोयं मङ्गलार्थः प्रयुज्यते ।
भूवो वार्थं वदन्तीति भ्वर्था वा वादयः स्मृताः ॥
धातुप्रदेशा धातोरित्येवमादयः ॥

॥ उपदेशेजनुनासिक इत् ॥ २ ॥

उपदिश्यतेनेनेत्युपदेशः शास्त्रवाक्यानि सूत्रपाठः खिलपाठश्च तत्र योजनुनासिकः स इत्संज्ञो भवति । एध । स्पर्द्ध । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । उपदेशइति किम् । अभ्रँ आपः । अजिति किम् । आतो मनिन् क्वनिब्वनिपश्च । अनुनासिक इति किम् । सर्वस्याचो मा भूत् । इत्प्रदेशा आदितश्चेत्येवमादयः ॥

॥ हलन्त्यम् ॥ ३ ॥

उपदेशइति वर्त्तते । अन्ते भवमन्त्यम् । धात्वादेः समुदायस्य यदन्त्यं हल् तदित्संज्ञं भवति । अ इ उ ण् । णकारः । ऋ ऌ क् । ककारः । ए ओ ङ् । ङकारः । ऐ औ च् । चकारः । उपदेशइत्येव । अग्निचित् । सोमसुत् । हस्य ल् हलिति * द्वितीयमत्र हल्ग्रहणं तन्त्रेणोपात्तं द्रष्टव्यम् । तेन प्रत्याहारपाठे हलित्यत्र लकारस्य इत्संज्ञा क्रियते । तथा च सति हलन्त्यमित्यत्र प्रत्याहारे नेतरेतराश्रयदोषो भवति ॥

न विभक्तौ तुस्माः ॥ ४ ॥

पूर्वेण प्राप्तायामित्संज्ञायां विभक्तौ वर्त्तमानानां तवर्गसकारमकाराणां प्रतिषेध उच्यते । तवर्ग । टाङसिङसामिनात्स्याः । वृक्षात् । प्लक्षात् । सकार । जस् । ब्राह्मणाः । तस् । थस् । पचतः । पचथः । मकार । अपचताम् । अपचतम् । विभक्ताविति किम् । अचो यत् । ऊर्णाया युस् । रुधादिभ्यः श्नम् । किमो ऽत् । इदमो ऽदित्यत्र प्रतिषेधो न भवति । अनित्यत्वादस्य प्रतिषेधस्य । इदमस्थमुरित्युकारानुबन्धनिर्द्देशादनित्यत्वमुपलक्ष्यते ॥

आदिर्ञिटुडवः ॥ ५ ॥

इदिति वर्तते । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । ञि टु डु इत्येतेषां समुदायानामादितो वर्तमानानामित्संज्ञा भवति । ञिमिदा । मिन्नः । ञिधृषा । धृष्टः । ञिक्ष्विदा । क्ष्विण्णः † । ञिइन्धी । इद्धः । टुवेपृ । वेपथुः । टुओश्वि । श्वयथुः । डुपचष् । पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् । डुकृञ् । कृत्रिमम् । आदिरिति किम् । पटूयति । कण्डूयति । उपदेशइत्येव । ङकारीयति ॥

---

* हल्हलिति पा० ।   † ञिष्विदा स्विन्नः पा० ।

षः प्रत्ययस्य ॥ ६ ॥

षकारः प्रत्ययस्यादिरित्संज्ञो भवति । शिल्पिनि ष्वुन् । नर्त्तकी । रजकी । प्रत्ययस्येति किम् । षोडः । षडिकः । आदिरित्येव । अविमह्योष्टि-षच् । अविषः । महिषः ॥

चुटू ॥ ७ ॥

चवर्गटवर्गौ प्रत्ययस्यादी इत्संज्ञौ भवतः । गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् । कौञ्जायन्यः । छस्य ईयादेशं वक्ष्यति । जस् । ब्राह्मणाः । झस्यान्तादेशं वक्ष्य-ति । शण्डिकादिभ्यो ञ्यः । शाण्डिक्यः । टवर्ग । चरेष्टः । कुरुचरी । मद्रचरी । ठस्य इकादेशं वक्ष्यति । सप्तम्यां जनेर्डः । उपसरजः । मन्दुरजः । ढस्यैयादेशं वक्ष्यति । अचाणः । आचः । पृथग्योगकरणमस्य विधेरनित्यत्वज्ञापनार्थम् । तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ । केशचुञ्चुः । केशचणः । अवात्कुटारच्च । नते नासि-कायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः । अवटीटः । आदिरित्येव । कर्म्मणि घटो ऽठच् । कर्मठः ॥

लशक्वतद्धिते ॥ ८ ॥

तद्धितवर्ज्जितस्य प्रत्ययस्यादितो वर्त्तमाना लकारशकारकवर्गा इत्संज्ञा भवन्ति । लकार । ल्युट्च । चयनम् । जयनम् । शकार । कर्त्तरि शप् । भवति । पचति । कवर्ग । क्तक्तवतू निष्ठा । भुक्तः । भुक्तवान् । प्रियवशे वदः खच् । प्रियंवदः । वशंवदः । ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः । ग्लास्नुः । जिष्णुः । भूष्णुः । भञ्ज-भासमिदो घुरच् । भङ्गुरम् । टाड्सिङसामिनात्स्याः । वृक्षात् । वृक्षस्य । अत-द्धितइति किम् । चूडालः । लोमशः । कर्णिका ॥

तस्य लोपः ॥ ९ ॥

तस्येत्संज्ञकस्य लोपो भवति । तथा चैवोदाहृतम् । तस्य ग्रहणं सर्व-लोपार्थम् । अलोन्त्यस्य मा भूत् । आदिर्ञिटुडव इति ॥

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥ १० ॥

संख्याशब्देन क्रमो लक्ष्यते । यथासंख्यं यथाक्रममनुदेशो भवति । अनुदि-श्यतइत्यनुदेशः । पश्चादुच्चार्यतइत्यर्थः । समानां समसंख्यानां समपरिपठिता-नामुद्देशिनामनुदेशिनां च यथाक्रममुद्देशिभिरनुदेशिनः संबध्यन्ते । तूदीशलातु-रवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः । प्रथमात्प्रथमः । द्वितीयाद् द्वितीय इत्यादि । तौदेयः । शालातुरीयः । वार्मतेयः । कौचवार्यः । समानामिति किम् । लक्ष-णेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः । लक्षणादयश्चत्वारो ऽर्थाः । प्रत्याद-यस्त्रयः । सर्वेषां सर्वत्र कर्म्मप्रवचनीयसंज्ञा भवति । इह कस्मान्न भवति । वेशो-

यश्चादेर्भंगाद्यल् । ख चेति । स्वरितेन लिङ्गेन यथासंख्यं, यत्र नेष्यते तत्र स्वरितत्वं न प्रतिज्ञायते । स्वरितेनाधिकार इति स्वरितग्रहणं पूर्वेणापि संबध्यते ॥

स्वरितेनाधिकारः ॥ ११ ॥

स्वरितेनेति इत्थंभूतलक्षणे तृतीया । स्वरितो नाम स्वरविशेषो वर्णधर्मः * । तेन चिह्नेनाधिकारो वेदितव्यः । अधिकारो विनियोगः । स्वरितगुणयुक्तं शब्दरूपमधिकृतत्वादुत्तरत्रोपतिष्ठते । प्रतिज्ञास्वरिताः पाणिनीयाः । प्रत्ययः । धातोः । ङ्याप्प्रातिपदिकात् । अङ्गस्य । भस्य । पदस्य ॥

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ १२ ॥

अविशेषेण धातोरात्मनेपदं परस्मैपदं च विधास्यते तत्रायं नियमः क्रियते । अनुदात्तेतो ये धातवो ङितश्च तेभ्य एव आत्मनेपदं भवति नान्येभ्यः । अनुदात्तेद्भ्यः । आस् । आस्ते । वस् । वस्ते । ङिद्भ्यः खल्वपि । षूङ् । सूते । शीङ् । शेते ॥

भावकर्म्मणोः ॥ १३ ॥

लः कर्म्मणि च भावे चाकर्म्मकेभ्य इति भावकर्म्मणोर्विहितस्य लस्य तिबादयः सामान्येन वक्ष्यन्ते तत्रेदमुच्यते । भावे कर्म्मणि चात्मनेपदं भवति । भावे । ग्लायते भवता । सुप्यते भवता । आस्यते भवता । कर्म्मणि । क्रियते कटः । ह्रियते भारः । कर्म्मकर्त्तरि । लूयते केदारः स्वयमेवेति परस्मैपदं न भवति । तस्य विधाने द्वितीयं कर्तृग्रहणमनुवर्त्तते । तेन कर्त्तैव यः कर्त्ता तत्र परस्मैपदं भवति ॥

कर्त्तरि कर्म्मव्यतिहारे ॥ १४ ॥

कर्म्मशब्दः क्रियावाची व्यतिहारो विनिमयः । यत्रान्यसंबन्धिनीं क्रियामन्यः करोति इतरसंबन्धिनीं चेतरः स कर्मव्यतिहारः । तद्विशिष्टक्रियावचनाद्धातोरात्मनेपदं भवति । व्यतिलुनते । व्यतिपुनते । कर्म्मव्यतिहारइति किम् । लुनन्ति । कर्तृग्रहणमुत्तरार्थं शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदमिति ॥

न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ १५ ॥

पूर्वेणात्मनेपदं प्राप्तं प्रतिषिध्यते । गत्यर्थेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः कर्म्मव्यतिहारे आत्मनेपदं न भवति । व्यतिगच्छन्ति । व्यतिसर्पन्ति । हिंसार्थेभ्यः । व्यतिहिंसन्ति । व्यतिघ्नन्ति । प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति । हरतेरप्रतिषेधः ॥ * ॥ संप्रहरन्ते राजानः ॥

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ १६ ॥

---

* वर्णधर्मो न स्वरधर्म इति क्वचित्पाठः ।

इतरेतरो ऽन्योन्य इत्येवमुपपदाद्धातोः कर्मव्यतिहारे आत्मनेपदं न भवति । इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति । अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति । परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ परस्परस्य व्यतिलुनन्ति ॥

नेर्विशः ॥ १७ ॥

शेषात्कर्तरीति परस्मैपदे प्राप्ते निपूर्वाद्विश आत्मनेपदं विधीयते नेः परस्माद्विश आत्मनेपदं भवति । निविशते । निविशन्ते । नेरिति किम् । प्रविशति । यदागमास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते तेनाटा नास्ति व्यवधानम् । न्यविशत । नेरुपसर्गस्य ग्रहणम् अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्येति तस्मादिह न भवति । मधुनि विशन्ति भ्रमराः ॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ १८ ॥

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ञित्त्वात्कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सिद्धमात्मनेपदम्, अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः । परिव्यवेभ्य उत्तरात्क्रीणातेरात्मनेपदं भवति । परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते । पर्यादय उपसर्गा गृह्यन्ते तेनेह न भवति । बहुविक्रीणाति वनम् ॥

विपराभ्यां जेः ॥ १९ ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदमित्यस्यापवादः । विपरापूर्वाज्जयते र्धातोरात्मनेपदं भवति । विजयते । पराजयते । विपराशब्दावुपसर्गौ गृह्येते साहचर्यात्, तेनेह न भवति । बहु विजयति वनम् । परा जयति सेनेति ॥

आङो दो ऽनास्यविहरणे ॥ २० ॥

अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः । आङ्पूर्वाद्ददातेरनास्यविहरणे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । विद्यामादत्ते । अनास्यविहरण इति किम् । आस्यं व्याददाति ॥ आस्यविहरणसमानक्रियादपि प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ विपादिकां व्याददाति । कूलं व्याददाति । स्वाङ्गकर्म्मकाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । व्याददते पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखम् ॥

क्रीडो ऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ २१ ॥

क्रीडृ विहारे एतस्माद् अनु सम् परि इत्येवंपूर्वाद् आङ्पूर्वाच्चात्मनेपदं भवति । अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आङः खल्वपि । आक्रीडते । समो ऽकूजने इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ संक्रीडन्ति शकटानि । समासाहचर्यादन्वादिरुपसर्गो गृह्यते तेनेह कर्मप्रवचनीयप्रयोगे न भवति । माणवकमनुक्रीडति । आगमेः क्षमायामात्मनेपदं वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्षमा उपेक्षा कालहरणमिति यावत् । आगमयस्व तावन्माणवकम् । शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥ * ॥ वि-

द्यासु शिचते । आशिषि नाथः ॥ * ॥ सर्पिषो नाथते । मधुनो नाथते । आशिषीति किम् । माणवकमनुनाथति । हरतेर्गतताच्छील्ये ॥ * ॥ पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावोऽनुहरन्ते । गतताच्छील्य इति किम् । मातुरनुहरति । किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अपस्किरते वृषभो हृष्टः । जीविकायाम् । अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी । कुलायकरणे । अपस्किरते श्वा ऽऽश्रयार्थी । हर्षादिष्विति किम् । अपकिरति कुसुमम् । आङि नुप्रच्छ्योरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ आनुते शृगालः । आपृच्छते गुरुम् । शप उपलम्भनइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वाचा शरीरस्पर्शनमुपलम्भनम् । देवदत्ताय शपते । यज्ञदत्ताय शपते । उपलम्भन इति किम् । शपति ॥

समवप्रविभ्यः स्थः ॥ २२ ॥

सम् अव प्र वि इत्येवंपूर्वात् तिष्ठतेरात्मनेपदं भवति । संतिष्ठन्ते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥ आङः स्थः प्रतिज्ञानइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अस्तिसंकारमात्रमातिष्ठते । आगमौ गुणवृद्धी आतिष्ठते ॥

प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ २३ ॥

स्वाभिप्रायकथनं प्रकाशनं, स्थेयस्याख्या स्थेयाख्या । तिष्ठत्यस्मिन्निति स्थेयः । विवादपदनिर्णेता लोके स्थेय इति प्रसिद्धस्तस्य प्रतिपत्त्यर्थमाख्याग्रहणम् । प्रकाशने स्थेयाख्यायां च तिष्ठतेरात्मनेपदं भवति । प्रकाशने तावत् । तिष्ठते कन्या छात्रेभ्यः । तिष्ठते वृषली ग्रामपुत्रेभ्यः । प्रकाशयत्यात्मानमित्यर्थः । स्थेयाख्यायाम् । त्वयि तिष्ठते । मयि तिष्ठते । संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ॥

उदो ऽनूर्ध्वकर्म्मणि ॥ २४ ॥

उत्पूर्वात्तिष्ठतेरनूर्ध्वकर्म्मणि वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । कर्म्मशब्दः क्रियावाची अनूर्ध्वताविशिष्टक्रियावचनात्तिष्ठतेरात्मनेपदं भवति । गेहे उत्तिष्ठते । कुटुम्बे उत्तिष्ठते । तदर्थे यततइत्यर्थः । उद ईहायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । अस्माद्ग्रामात् शतमुत्तिष्ठति । शतमुत्पद्यतइत्यर्थः । ईहाग्रहणमनूर्द्धकर्म्मणा एव विशेषणं नापवादः । अनूर्द्धकर्म्मणीति किम् । आसनादुत्तिष्ठति ॥

उपान्मन्त्रकरणे ॥ २५ ॥

उपपूर्वात्तिष्ठतेर्मन्त्रकरणे ऽर्थे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते । आग्नेय्या ऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । मन्त्रकरणइति किम् । भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन । उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रीकरणपथिष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ देवपूजायाम् । आदित्यमुपतिष्ठते । संगतिकरणे । रथिकानुपतिष्ठते । मित्रकरणे । महामात्रानुपतिष्ठते । मित्रकरणसंगतिकरणयोः को विशेषः । संगतिक-

रणमुपश्लेषः । तद्यथा । गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । मित्त्रकरणं तु विनाप्युपश्लेषेण मैत्रीसंबन्धः । पथि । अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते । वा लिप्सायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठते । उपतिष्ठतीति वा ॥

अकर्म्मकाच्च ॥ २६ ॥

उपादिति वर्तते । उपपूर्वात् तिष्ठतेरकर्मकादकर्मकक्रियावचनादात्मनेपदं भवति । यावद्भुक्तमुपतिष्ठते । यावदोदनमुपतिष्ठते । भुक्तमिति भावे क्तप्रत्ययः । भोजनेभोजने सन्निधीयतइत्यर्थः । अकर्म्मकादिति किम् । राजानमुपतिष्ठति ॥

उद्विभ्यां तपः ॥ २७ ॥

अकर्म्मकादिति वर्त्तते । उद्वि इत्येवंपूर्वात् तपतेरकर्म्मकक्रियावचनादात्मनेपदं भवति । उत्तपते । वितपते । दीप्यत इत्यर्थः । अकर्म्मकादित्येव । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । वितपति पृष्ठं सविता । स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उत्तपते पाणिम् । उत्तपते पृष्ठम् । वितपते पाणिम् । वितपते पृष्ठम् । स्वाङ्गं चेह न पारिभाषिकं गृह्यते ऽद्रवं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गमिति । किं तर्हि, स्वमङ्गं स्वाङ्गम् । तेनेह न भवति । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य पृष्ठमुत्तपतीति । उद्विभ्यामिति किम् । निष्टपति ॥

आङो यमहनः ॥ २८ ॥

अकर्मकादिति वर्तते । यम उपरमे हन, हिंसागत्योरिति परस्मैपदिनौ । ताभ्यामकर्म्मकक्रियावचनाभ्यामाङ्पूर्वाभ्यामात्मनेपदं भवति । आयच्छते । आयच्छेते । आयच्छन्ते । हनः खल्वपि । आहते । आघ्नाते । आघ्नते । अकर्मकादित्येव । आयच्छति कूपाद्रज्जुम् । आहन्ति वृषलं पादेन । स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् । आयच्छते पाणिम् । आहते शिरः । स्वाङ्गं चेह न पारिभाषिकं गृह्यते किं तर्हि, स्वमङ्गं स्वाङ्गं, तेनेह न भवति । आहन्ति शिरः परकीयमिति ॥

समो गम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्तिश्रुविदिभ्यः ॥ २९ ॥

अकर्म्मकादिति वर्त्तते । शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते संपूर्वेभ्यो गमि ऋच्छि प्रच्छ स्वरति अर्ति श्रु विदि इत्येतेभ्यो ऽकर्मकेभ्यो धातुभ्य आत्मनेपदं भवति । संगच्छते । समृच्छते । संपृच्छते । संस्वरते । संकल्पा अस्य समरन्त । अर्तेर्लुङि च्लेः सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेत्यङादेशः । तत्र परस्मैपदेष्वित्येतन्नाश्रीयते बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपीत्याट् प्रतिषिध्यते । ऋदृशोऽङि गुण इति गुणः । समरन्त । संशृणुते । संवित्ते । ऋच्छेरनादेशस्य ग्रहणम् । समृच्छिष्यते । अर्त्यादेशस्य त्वर्त्तेरित्येव सिद्धमात्मनेपदम् । अर्तिरुभयत्र पठ्यते, ऋ गतिप्रापणयोः

रिति भ्वादौ ऋ सृ गताविति जुहोत्यादौ, विशेषाभावाद् द्वयोरपि ग्रहणम्। विदेर्ज्ञानार्थस्य ग्रहणं, परस्मैपदिभिर्गमादिभिः साहचर्याच्च लाभार्थस्य स्वरितेत्त्वादुभयतोभाषस्य। दृशेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ संपश्यते। अकर्म्मकादित्येव। ग्रामं संपश्यति ॥

निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ ३० ॥

अकर्मकादिति निवृत्तम्। अतः परं सामान्येनात्मनेपदविधानं प्रतिपत्तव्यम्। नि सम् उप वि इत्येवंपूर्वाद् ह्वयतेर्द्धातोरात्मनेपदं भवति। निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वयते। अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः। अन्यत्र हि ञित्वात्सिद्धमेवात्मनेपदम्। उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वा वचनम् ॥ * ॥ निरस्यति। निरस्यते। समूहते। समूहति ॥

स्पर्द्धायामाङः ॥ ३१ ॥

अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः। स्पर्द्धायां विषये आङ्पूर्वाद् ह्वयतेरात्मनेपदं भवति। स्पर्द्धा संघर्षः पराभिभवेच्छा स विषयो धात्वर्थस्य। धातुस्तु शब्दक्रिय एव। मल्लो मल्लमाह्वयते। छात्रश्छात्रमाह्वयते। स्पर्द्धमानस्तस्याह्वानं करोतीत्यर्थः। स्पर्द्धायामिति किम्। गामाह्वयति गोपालः ॥

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ ३२ ॥

कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सिद्धमेवात्मनेपदम्। अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः। गन्धनादिष्वर्थेषु वर्त्तमानात्करोतेरात्मनेपदं भवति। गन्धनमपकारप्रयुक्तं हिंसात्मकं सूचनम्। तथाहि, वस्त गन्ध अर्द्दने, अर्द्द हिंसायाम्, इति। चुरादौ पठ्यते। अवक्षेपणं भर्त्सनम्। सेवनमनुवृत्तिः। साहसिक्यं साहसिकं कर्म्म। प्रतियत्नः सतो गुणान्तराधानम्। प्रकथनं प्रकर्षेण कथनम्। उपयोगो धर्म्मादिप्रयोजनो विनियोगः। गन्धने तावत्। उत्कुरुते। उदाकुरुते। सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणे। श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। सेवने। गणकानुपकुरुते। महामात्रानुपकुरुते। सेवतइत्यर्थः। साहसिक्ये। परदारान्प्रकुरुते। तेषु सहसा प्रवर्ततइत्यर्थः। प्रतियत्ने। एधो दकस्योपस्कुरुते। काण्डं गुडस्योपस्कुरुते। तस्य सतो गुणान्तराधानं करोतीत्यर्थः। षष्ठीसुटौ करोतेः प्रतियत्नएव विधीयेते *। प्रकथने। गाथाः प्रकुरुते। जनापवादान्प्रकुरुते। प्रकर्षेण कथयतीत्यर्थः। उपयोगे। शतं प्रकुरुते। सहस्रं प्रकुरुते। धर्म्मार्थं शतं विनियुङ्क्त इत्यर्थः। एतेष्विति किम्। कटं करोति ॥

---

* कृञः प्रतियत्नइति षष्ठी। उपात्प्रतियत्नेति सुडिति कुत्र चित्पाठः।

अधेः प्रसहने ॥ ३३ ॥

अकर्त्रभिप्रायार्थो ऽयमारम्भः । अधिपूर्वात् करोतेः प्रसहने वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । प्रसहनमभिभवः, अपराजयो वा । तमधिचक्रे । तमभिबभूव, न तेन पराजित, इति वा । प्रसहनइति किम् । अर्थमधिकरोति । पृथग्योगकरणमुपसर्गविशेषणार्थम् ॥

वेः शब्दकर्म्मणः ॥ ३४ ॥

कृञ इत्यनुवर्त्तते । विपूर्वात्करोतेरकर्त्रभिप्राये क्रियाफले शब्दकर्म्मण आत्मनेपदं भवति । कर्मशब्द इह कारकाभिधायी न क्रियावचनः । क्रोष्टा विकुरुते स्वरान् । ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान् । शब्दकर्म्मण इति किम् । विकरोति पयः ॥

अकर्म्मकाच्च ॥ ३५ ॥

वेः कृञ इत्यनुवर्त्तते । विपूर्वात्करोतेरकर्म्मकादकर्म्मकक्रियावचनादात्मनेपदं भवति । विकुर्वन्ते सैन्धवाः । साधुदान्ताः शोभनं वल्गन्तीत्यर्थः । ओदनस्य पूर्णाश्छात्रा विकुर्वते । निष्फलं चेष्टन्तइत्यर्थः ॥

संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ ३६ ॥

णीञ् प्रापणे ऽस्मात् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सिद्धमेवात्मनेपदम् । अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । णीञ् प्रापणे इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति सम्माननादिषु विशेषणेषु सत्सु । संमाननं पूजनम् । नयते चार्वी लोकायते । चार्वी बुद्धिः तत्संबन्धादाचार्योपि चार्वी, स लोकायते शास्त्रे पदार्थान्नयते, उपपत्तिभिः स्थिरीकृत्य शिष्येभ्यः प्रापयति, ते युक्तिभिः स्थाप्यमानाः संमानिताः पूजिता भवन्ति । उत्सञ्जनमुत्क्षेपणम् । माणवकमुदानयते । उत्क्षिपतीत्यर्थः । आचार्यकरणमाचार्यक्रिया, माणवकमीदृशेन विधिना ऽऽत्मसमीपं प्रापयति यथा स उपनेता स्वयमाचार्यः संपद्यते । माणवकमुपनयते । आत्मानमाचार्यीकुर्वन्माणवकमात्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । ज्ञानं प्रमेयनिश्चयः । नयते चार्वी लोकायते । तत्र प्रमेयं निश्चिनोतीत्यर्थः । भृतिर्वेतनम् । कर्मकरानुपनयते । भृतिदानेन समीपं करोतीत्यर्थः । विगणनमृणादेर्निर्यातनम् । मद्राः करं विनयन्ते । निर्यातयन्तीत्यर्थः । व्ययो धर्म्मादिषु विनियोगः । शतं विनयते । सहस्रं विनयते । धर्माद्यर्थं शतं विनियुङ्क्तइत्यर्थः । एतेष्विति किम् । अजां नयति ग्रामम् ॥

कर्तृस्थे चाशरीरे कर्म्मणि ॥ ३७ ॥

नयतेः कर्त्ता देवदत्तादिर्लकारवाच्यः कर्तृस्थे कर्मण्यशरीरे सति नयते-

रात्मनेपदं भवति । शरीरं प्राणिकायः तदेकदेशोपि शरीरम् । क्रोधं विनयते । मन्युं विनयते कर्तृस्थइति किम् । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य क्रोधं विनयति । अशरीरइति किम् । गडुं विनयति । घाटां विनयति । कर्म्मणीति किम् । बुद्ध्या विनयति । प्रज्ञया विनयति ॥

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ ३८ ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते वृत्त्यादिष्वर्थेषु क्रमेर्धातोरात्मनेपदं भवति । वृत्तिरप्रतिबन्धः । सर्ग उत्साहः । तायनं स्फीतता । वृत्तौ तावत् । ऋक्ष्वस्य क्रमते बुद्धिः । न प्रतिहन्यतइत्यर्थः । यजुःष्वस्य क्रमते बुद्धिः । सर्गे । व्याकरणाध्ययनाय क्रमते । उत्सहतइत्यर्थः । तायने । अस्मिन् शास्त्राणि क्रमन्ते । स्फीतीभवन्तीत्यर्थः । एतेष्विति किम् । अपक्रामति ॥

उपपराभ्याम् ॥ ३९ ॥

वृत्तिसर्गतायेनेष्विति वर्त्तते । उपपरापूर्वात्क्रमतेर्वृत्त्यादिष्वर्थेषु वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । किमर्थं तर्हीदमुच्यते, उपसर्गनियमार्थं सोपसर्गादुपपरापूर्वादेव नान्यपूर्वादिति । उपक्रमते । पराक्रमते । उपपराभ्यामिति किम् । संक्रामति । वृत्त्यादिष्वित्येव । उपक्रामति । पराक्रामति ॥

आङ उद्गमने ॥ ४० ॥

आङ्पूर्वात् क्रमतेरुद्गमने वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । आक्रमतआदित्यः । आक्रमते चन्द्रमाः । आक्रमन्ते ज्योतींषि । उद्गमनइति किम् । आक्रामति माणवकः कुतपम् । ज्योतिरुद्गमनइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । आक्रामति धूमो हर्म्यतलात् ॥

वेः पादविहरणे ॥ ४१ ॥

विपूर्वात्क्रमतेः पादविहरणेर्थे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । विहरणं विक्षेपः । सुष्ठु विक्रमते । साधु विक्रमते । अश्वादीनां गतिविशेषो विक्रमणमुच्यते । यद्यपि क्रमिः पादविहरणएव पठ्यते क्रमु पादविक्षेपइति तथाप्यनेकार्थत्वाद्धातूनामेवमुक्तम् । पादविहरणइति किम् । विक्रामत्यजिनसन्धिः ॥

प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ ४२ ॥

प्र उप इत्येताभ्यां परस्मात् क्रमतेरात्मनेपदं भवति, तौ चेत् प्रोपौ समर्थौ तुल्यार्थौ भवतः । क्व चानयोस्तुल्यार्थता, आदिकर्म्मणि । प्रक्रमते भोक्तुम् । उपक्रमते भोक्तुम् । समर्थाभ्यामिति किम् । पूर्वेद्युः प्रक्रामति । गच्छतीत्यर्थः । अपरेद्युरुपक्रामति । आगच्छतीत्यर्थः । अथोपपराभ्यामित्यनेनात्मनेपदमत्र कस्मान्न भवति, वृत्त्यादिग्रहणं तत्रानुवर्त्तते, ततोऽन्यत्रेदं प्रत्युदाहरणम् ॥

अनुपसर्गाद्वा ॥ ४३ ॥

क्रम इति वर्त्तते । अप्राप्तविभाषेयम् । उपसर्गवियुक्तात् क्रमतेरात्मनेपदं वा भवति । क्रमते । क्रामति । अनुपसर्गादिति किम् । संक्रामति ॥

अपह्नवे ज्ञः ॥ ४४ ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते जानातेरपह्नवे वर्त्तमानाद् आत्मनेपदं भवति । अपह्नवो ऽपह्नुतिरपलापः । सोपसर्गश्चायमपह्नवे वर्त्तते न केवलः । शतमपजानीते । सहस्रमपजानीते । अपलपतीत्यर्थः । अपह्नवइति । किम् । न त्वं किंचिदपि जानासि ॥

अकर्म्मकाच्च ॥ ४५ ॥

अकर्त्रभिप्रायार्थमिदं, कर्त्रभिप्राये ह्यनुपसर्गाज्ज्ञ इति वक्ष्यति । जानातेरकर्मकादकर्म्मकक्रियावचनादात्मनेपदं भवति । सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते । कथं चायमकर्म्मकः । नात्र सर्प्पिरादि ज्ञेयत्वेन विवक्षितं, किं तर्हि ज्ञानपूर्विकायां प्रवृत्तौ करणत्वेन, तथा च "ज्ञो ऽविदर्थस्य करणे" इति षष्ठी विधीयते । सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते । सर्पिषा उपायेन प्रवर्त्तत इत्यर्थः । अकर्मकादिति किम् । स्वरेण पुत्रं जानाति ॥

संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥ ४६ ॥

ज्ञ इति वर्त्तते । सकर्मकार्थमिदम् । सं प्रति इत्येवं पूर्वाज्जानातेरनाध्याने वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । आध्यानमुत्कण्ठास्मरणम् । शतं संजानीते । सहस्रं संजानीते । शतं प्रतिजानीते । सहस्रं प्रतिजानीते । अनाध्याने इति किम् । मातुः संजानाति । पितुः संजानाति । उत्कण्ठतइत्यर्थः ॥

भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥ ४७ ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते भासनादिषु विशेषणेषु सत्सु वदतेरात्मनेपदं भवति । भासनं दीप्तिः । वदते चार्वी लोकायते । भासमानो दीप्यमानस्तत्र पदार्थान् व्यक्तीकरोतीत्यर्थः । उपसंभाषा उपसान्त्वनम् । कर्मकरानुपवदते । उपसान्त्वयतीत्यर्थः । ज्ञानं सम्यगवबोधः । वदते चार्वी लोकायते । जानाति वदितुमित्यर्थः । यत्न उत्साहः । क्षेत्रे वदते । गेहे वदते । तद्विषयमुत्साहमाविष्करोतीत्यर्थः । विमतिर्नानामतिः । क्षेत्रे विवदन्ते । गेहे विवदन्ते । विमतिपतिता विचित्रं भाषन्तइत्यर्थः । उपमन्त्रणं रहस्युपच्छन्दनम् । कुलभार्यामुपवदते । परदारानुपवदते । उपच्छन्दयतीत्यर्थः । एतेष्विति किम् । यत्किंचिद्वदति ॥

व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ ४८ ॥

वद इति वर्त्तते। व्यक्तवाचां समुच्चारणं सहोच्चारणं तत्र वर्तमानाद्वदतेरात्मनेपदं भवति। ननु वद व्यक्तायां वाचीत्येव पठ्यते तत्र किं व्यक्तवाचामिति विशेषणेन। प्रसिद्ध्युपसंग्रहार्थमेतत्। व्यक्तवाच इति हि मनुष्याः प्रसिद्धाः तेषां समुच्चारणे यथा स्यात्। संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः। संप्रवदन्ते क्षत्रियाः। व्यक्तवाचामिति किम्। संप्रवदन्ति कुक्कुटाः। समुच्चारणइति किम्। ब्राह्मणो वदति। क्षत्रियो वदति॥

अनोरकर्मकात् ॥ ४९ ॥

वद इति व्यक्तवाचामिति च वर्त्तते। अनुपूर्वाद्वदतेरकर्म्मकाद्व्यक्तवाग्विषयादात्मनेपदं भवति। अनुवदते कठः कलापस्य। अनुवदते मौदः पैप्पलादस्य। अनुः सादृश्ये। यथा कलापोधीयानो वदति तथा कठ इत्यर्थः। अकर्म्मकादिति किम्। पूर्वमेव यजुरुदितमनुवदति। व्यक्तवाचामित्येव। अनुवदतिवीणा॥

विभाषा विप्रलापे ॥ ५० ॥

वद इति वर्त्तते। व्यक्तवाचां समुच्चारण इति च। विप्रलापात्मके व्यक्तवाचां समुच्चारणे वर्त्तमानाद्वदतेरात्मनेपदं भवति विभाषा। प्राप्तविभाषेयम्। विप्रवदन्ते सांवत्सराः। विप्रवदन्ति सांवत्सराः। विप्रवदन्ते मौहूर्त्ताः। विप्रवदन्ति मौहूर्त्ताः। युगपत्परस्परप्रतिषेधेन विरुद्धं वदन्तीत्यर्थः। विप्रलापइति किम्। संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः। व्यक्तवाचामित्येव। विप्रवदन्ति शकुनयः। समुच्चारणइत्येव। क्रमेण मौहूर्त्ता मौहूर्त्तेन सह विप्रवदन्ति॥

अवाद्ग्रः ॥ ५१ ॥

गॄ निगरणइति तुदादौ पठ्यते तस्येदं ग्रहणं, न तु गॄ शब्दइति क्र्यादिपठितस्य। तस्य ह्यवपूर्वस्य प्रयोग एव नास्ति। शेषादिति परस्मैपदे प्राप्ते। अवपूर्वाद्गिरतेरात्मनेपदं भवति। अवगिरते। अवगिरेते। अवगिरन्ते। अवादिति किम्। गिरति॥

समः प्रतिज्ञाने ॥ ५२ ॥

ग्र इति वर्त्तते। संपूर्वाद्गिरतेः प्रतिज्ञाने वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति। प्रतिज्ञानमभ्युपगमः। शतं संगिरते। नित्यं शब्दं संगिरते। प्रतिज्ञानइति किम्। संगिरति ग्रासम्॥

उदश्चरः सकर्म्मकात् ॥ ५३ ॥

शेषात्कर्तरि परस्मैपदे प्राप्ते उत्पूर्वाच्चरतेः सकर्म्मकक्रियावचनादात्मनेपदं भवति। गेहमुच्चरते। कुटुम्बमुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते। उत्क्रम्य गच्छतीत्यर्थः। सकर्म्मकादिति किम्। बाष्पमुच्चरति॥

समस्तृतीयायुक्तात् ॥ ५४ ॥

संपूर्वाच्चरतेस्तृतीयायुक्तादात्मनेपदं भवति । तृतीयेति तृतीया विभक्तिर्गृह्यते तया चरतेरर्थद्वारकोयोगः । अश्वेन संचरते । तृतीयायुक्तादिति किम् । उभौ लोकौ संचरसि इमं चामुं च देवल । यद्यप्यत्र तदर्थयोगः संभवति तृतीया तु न श्रूयतइति प्रत्युदाहरणं भवति ॥

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ ५५ ॥

दाण् दाने परस्मैपदी ततः संपूर्वात्तृतीयायुक्तादात्मनेपदं भवति सा चेत्तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवति । कथं पुनस्तृतीया चतुर्थ्यर्थे स्यात् । वक्तव्यमेवैतत् । अशिष्टव्यवहारे तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ दास्या संप्रयच्छते । वृषल्या संप्रयच्छते । कामुकः सन् दास्यै ददातीत्यर्थः । चतुर्थ्यर्थइति किम् । पाणिना संप्रयच्छति । समः प्रशब्देन व्यवधाने कथमात्मनेपदं भवति । सम इति विशेषणे षष्ठी न पञ्चमी ॥

उपाद्यमः स्वकरणे ॥ ५६ ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते उपपूर्वाद् यमः स्वकरणे वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । पाणिग्रहणविशिष्टमिह स्वकरणं गृह्यते न स्वकरणमात्रम् । भार्यामुपयच्छते । स्वकरणइति किम् । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य भार्यामुपयच्छति ॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ ५७ ॥

ज्ञा श्रु स्मृ दृश् इत्येतेषां सन्नन्तानामात्मनेपदं भवति । तत्र जानातेरपह्नवे ज्ञ इति त्रिभिः सूत्रैरात्मनेपदं विहितं श्रुदृशोरपि समो गम्यृच्छीत्यत्र विहितं तस्मिन्विषये पूर्ववत्सन इत्येव सिद्धमात्मनेपदं ततो ऽन्यत्रानेन विधीयते । स्मरतेः पुनरप्राप्तएव विधानम् । धर्म्मं जिज्ञासते । गुरुं शुश्रूषते । नष्टं सुस्मूर्षते । नृपं दिदृक्षते । सन इति किम् । जानाति । शृणोति । स्मरति । पश्यति ॥

नानोर्ज्ञः ॥ ५८ ॥

पूर्वेण योगेन प्राप्तमात्मनेपदं प्रतिषिध्यते । अनुपूर्वाज्जानातेः सन्नन्तादात्मनेपदं न भवति । तथा च सति सकर्मकस्यैवायं प्रतिषेधः संपद्यते । पुत्रमनुजिज्ञासति । अनोरिति किम् । धर्म्मं जिज्ञासते ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ ५९ ॥

प्रति आङ् इत्येवंपूर्वाच्छृणोतेः सन्नन्तादात्मनेपदं न भवति । प्रतिशुश्रूषति । आशुश्रूषति । उपसर्गग्रहणं चेदं, तस्मादिह प्रतिषेधो न भवति । देवदत्तं प्रति शुश्रूषते ॥

शदेः शितः ॥ ६० ॥

शद्लृ शातने परस्मैपदी तस्मादात्मनेपदं विधीयते । शदिर्यः शिद्भावी शितो वा संबन्धी तस्मादात्मनेपदं भवति । शीयते । शीयेते । शीयन्ते । शित इति किम् । अशत्स्यत् । शत्स्यति । शिशत्सति ॥

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ ६१ ॥

मृङ् प्राणत्यागे । ङित्त्वादात्मनेपदमत्र सिद्धमेवेति नियमार्थमिदं वचनम् । म्रियतेर्लुङ्लिङोः शितश्चात्मनेपदं भवति अन्यत्र न भवति । अमृत । मृषीष्ट । शितः खल्वपि । म्रियते । म्रियेते । म्रियन्ते । नियमः किमर्थः । मरिष्यति । अमरिष्यत् ॥

पूर्ववत्सनः ॥ ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुः आत्मनेपदी तद्वत्सचन्तादात्मनेपदं भवति । येन निमित्तेन पूर्वस्मादात्मनेपदं विधीयते तेनैव सचन्तादपि भवति । अनुदात्तङित आत्मनेपदम् । आस्ते । शेते । सचन्तादपि तदेव निमित्तम् । आसिसिषते । शिशयिषते । नेर्विशः । निविशते । निविविक्षते । आङ उद्गमने । आक्रमते । आचिक्रंसते । इह न भवति । शिशत्सति । मुमूर्षति । नहि शदिम्रियतिमात्रमात्मनेपदनिमित्तं किं तर्हि शिदाद्यपि तच्चेह नास्ति । यस्य च पूर्वत्रैव निमित्तभावः प्रतिषिध्यते तत्सचन्तेप्यनिमित्तम् । अनुचिकीर्षति । पराचिकीर्षति । इह जुगुप्सते मीमांसते इति अनुदात्तेत इत्येव सिद्धमात्मनेपदमवयवे कृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवतीति ॥

आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ ६३ ॥

अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । आम् प्रत्ययो यस्मात्सोयमाम्प्रत्ययः आम्प्रत्ययस्येव धातोः कृञो ऽनुप्रयोगस्यात्मनेपदं भवति । ईक्षांचक्रे । ईहांचक्रे । यदि विध्यर्थमेतत् तर्हि उदुब्जांचकार उदुम्भांचकारेति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदं प्राप्नोति । नैष दोषः । उभयमनेन क्रियते । विधिर्नियमश्च । कथम् । पूर्ववदिति वर्त्तते । स द्वितीयो यत्नो नियमार्थो भविष्यति । कृञ इति किम् । ईक्षामास । ईक्षांबभूव । कथं पुनरस्यानुप्रयोगो यावता कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटीत्युच्यते । कृञिति प्रत्याहारग्रहणं तत्र विज्ञायते । कृ संनिविष्टानां प्रत्याहारः । अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विरितिकृशब्दादारभ्य यावत् कृञो द्वितीयतृतीयेति अकारः ॥

प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ ६४ ॥

युजिर् योगे स्वरितेत् तस्य कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सिद्धमेवात्मनेपदम् ।

अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । प्र उप इत्येवंपूर्वाद् युजेरयज्ञपात्रप्रयोगविषयादात्मनेपदं भवति । प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते । अयज्ञपात्रेष्विति किम् । द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति । स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उद्युङ्क्ते । नियुङ्क्ते । स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति किम् । संयुनक्ति ॥

समः क्ष्णुवः ॥ ६५ ॥

क्ष्णु तेजने परस्मैपदी ततः संपूर्वादात्मनेपदं भवति । समो गम्यृच्छि इत्यत्रैव कस्मान्न पठितः । अकर्मकादिति तत्र वर्त्तते । संक्ष्णुते शस्त्रम् । संक्ष्णुवाते । संक्ष्णुवते ॥

भुजो ऽनवने ॥ ६६ ॥

भुज पालनाभ्यवहारयोरिति रुधादौ पठ्यते । तस्मादनवने ऽपालने वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति । भुङ्क्ते । भुञ्जाते । भुञ्जते । अनवनइति किम् । भुनक्त्येनमग्निराहितः । अनवनप्रतिषेधेन रौधादिकस्यैव ग्रहणं विज्ञायते न तौदादिकस्य भुजो कौटिल्यइत्यस्य । तेनेह न भवति । विभुजति पाणिम् ॥

णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्त्तानाध्याने ॥ ६७ ॥

णिचश्चेति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले सिद्धमेवात्मनेपदम् । अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । ण्यन्तादात्मनेपदं भवति, कथम्, अणौ यत्कर्म णौ चेत्तदेव कर्म, स एव कर्त्ता भवति । अनाध्याने, आध्यानं वर्जयित्वा । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । आरोहयते हस्ती स्वयमेव । उपसिचन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । उपसेचयते हस्ती स्वयमेव । पश्यन्ति भृत्या राजानम् । दर्शयते राजा स्वयमेव । णेरिति किम् । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । आरोहयमाणो हस्ती साध्वारोहति । अणाविति किम् । गणयति गणं गोपालकः । गणयति गणः स्वयमेव । कर्मग्रहणं किम् । लुनाति दात्रेण । लावयति दात्रं स्वयमेव । णौ चेद्ग्रहणं समानक्रियार्थम् । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । आरोहयमाणो हस्ती भीतान् सेचयति मूत्रेण । यत्सग्रहणमनन्यकर्मार्थम् । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । आरोहयमाणो हस्ती स्थलमारोहयति मनुष्यान् । कर्त्तेति किम् । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । तानारोहयति महामात्रः । अनाध्यानइति किम् । स्मरति वनगुल्मस्य कोकिलः । स्मरयत्येनं वनगुल्मः स्वयमेव । ननु चात्र कर्मकर्त्तरि मूलोदाहरणानि तत्र कर्मवद्भावेनैव सिद्धमात्मनेपदं किमर्थमिदमुच्यते । कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्मवदतिदेशो विज्ञायते । कर्तृस्थार्थोयमारम्भः । तथा च रुहिः कर्तृस्थक्रियः दृशिः कर्तृस्थभावक उदाहृतः ॥

भीस्म्योर्हेतुभये ॥ ६८ ॥

णेरिति वर्त्तते । अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । बिभेतेः स्मयतेश्च एयन्तादात्मनेपदं भवति हेतुभये । हेतुः प्रयोजकः कर्त्ता लकारवाच्यस्ततश्चेद्भयं भवति । भयग्रहणमुपलक्षणार्थं विस्मयेपि तत एव । जटिलो भीषयते । मुण्डो भीषयते । जटिलो विस्मापयते । मुण्डो विस्मापयते । हेतुभयइति किम् । कुञ्चिकयैनं भाययति । रूपेण विस्माययति । अत्र कुञ्चिका भयस्य करणं न हेतुः ॥

गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ ६९ ॥

णेरिति वर्तते । अकर्त्रभिप्रायार्थो ऽयमारम्भः । गृधु अभिकाङ्क्षायां वञ्चु गतावित्येतयोर्ण्यन्तयोः प्रलम्भने वर्त्तमानयोरात्मनेपदं भवति । प्रलम्भनं विसंवादनं मिथ्याफलाख्यानम् । माणवकं गर्धयते । माणवकं वञ्चयते । प्रलम्भनइति किम् । श्वानं गर्धयति । गर्धनमस्योत्पादयतीत्यर्थः । अहिं वञ्चयति । परिहरतीत्यर्थः ॥

लियः संमाननशालीनीकरणयोश्च ॥ ७० ॥

णेरिति वर्त्तते । अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । लीङ् श्लेषणे इति दिवादौ पठ्यते । ली श्लेषणे इति च क्र्यादौ । विशेषाभावाद् द्वयोरपि ग्रहणम् । लियो एयन्तात्संमानने शालीनीकरणे च वर्त्तमानादात्मनेपदं भवति च शब्दात् प्रलम्भने च । संमाननं पूजनम् । शालीनीकरणं न्यग्भावनम् । जटाभिरालापयते । पूजां समधिगच्छतीत्यर्थः । श्येनो वर्त्तिकामुल्लापयते । न्यक्करोतीत्यर्थः । प्रलम्भने । कस्त्वामुल्लापयते । विसंवादयतीत्यर्थः । विभाषा लीयतेरिति वात्वं विधीयते । तदस्मिन्विषये नित्यमन्यत्र विकल्पः । व्यवस्थितविभाषा हि सा । संमाननादिष्विति किम् । बालकमुल्लापयति ॥

मिथ्योपपदात्कृञोभ्यासे ॥ ७१ ॥

णेरिति वर्त्तते । अकर्त्रभिप्रायार्थोयमारम्भः । एयन्तात्करोतेर्मिथ्योपपदादात्मनेपदं भवति अभ्यासे । अभ्यासः पुनःपुनः करणमावृत्तिः । पदं मिथ्या कारयते । सापचारं स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः । मिथ्योपपदादिति किम् । पदं सुष्ठु कारयति । कृञ इति किम् । पदं मिथ्या वाचयति । अभ्यासइति किम् । पदं मिथ्या कारयति । सकृदुच्चारयति ॥

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥ ७२ ॥

णेरिति निवृत्तम् । शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदे प्राप्ते स्वरितेतो ये धातवो ञितश्च तेभ्य आत्मनेपदं भवति कर्त्तारं चेत्क्रियाफलमभिप्रैति क्रियायाः फलं क्रियाफलं प्रधानभूतं यदर्थमसौ क्रिया आरभ्यते तच्चेत्कर्त्तुर्लकारवाच्यस्य भवति । यजते । पचते । ञितः खल्वपि । सुनुते । कुरुते । स्वर्गादि प्रधानफलमिह कर्त्ता-

रम्भिप्रैति । कर्त्रभिप्रायइति किम् । यजन्ति याजकाः । पचन्ति पाचकाः । कुर्वन्ति कर्म्मकराः । यद्यपि दक्षिणा भृतिश्च कर्त्तुः फलमिहास्ति तथापि न तदर्थः क्रियारम्भः ॥

अपाद्वदः ॥ ७३ ॥

कर्त्रभिप्रायइति वर्त्तते । अपपूर्वाद्वदतेः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदं भवति । धनकामो न्यायमपवदते । न्यायापवादेन धनमर्जयिष्यामि इति मन्यते । कर्त्रभिप्राये क्रियाफलइत्येव । अपवदति ॥

णिचश्च ॥ ७४ ॥

कर्त्रभिप्राये क्रियाफलइति वर्त्तते । णिजन्तादात्मनेपदं भवति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । कटं कारयते । ओदनं पाचयते । कर्त्रभिप्रायइत्येव । कटं कारयति परस्य ॥

समुदाङ्भ्यो यमो ऽग्रन्थे ॥ ७५ ॥

कर्त्रभिप्रायइति वर्त्तते । सम् उद् आङ् इत्येवंपूर्वाद्यमेः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदं भवति ग्रन्थविषयश्चेत्प्रयोगो न भवति । व्रीहीन् संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । आङ्पूर्वादकर्म्मकादाङो यमहन इति सिद्धमेवात्मनेपदं सकर्मकार्थमिदं पुनर्ग्रहणम् । अग्रन्थइति किम् । उद्यच्छति चिकित्सां वैद्यः । कर्त्रभिप्रायइत्येव । संयच्छति । उद्यच्छति । आयच्छति ॥

अनुपसर्गाज् ज्ञः ॥ ७६ ॥

कर्त्रभिप्रायइति वर्त्तते । अनुपसर्गाज्जानातेः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदं भवति । गां जानीते । अश्वं जानीते । अनुपसर्गादिति किम् । स्वर्गं लोकं न प्रजानाति मूढः । कर्त्रभिप्रायइत्येव । देवदत्तस्य गां जानाति ।

विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ ७७ ॥

स्वरितञित इति पञ्चभिः सूत्रैरात्मनेपदं कर्त्रभिप्राये क्रियाफले द्योतिते विहितं तदुपपदेन द्योतिते न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते । समीपे श्रूयमाणं शब्दान्तरमुपपदं तेन प्रतीयमाने कर्त्रभिप्राये क्रियाफले विभाषा ऽऽत्मनेपदं भवति । स्वं यज्ञं यजति । स्वं यज्ञं यजते । स्वं कटं करोति । स्वं कटं कुरुते । स्वं पुत्रमपवदति । स्वं पुत्रमपवदते । एवं पञ्चसूत्र्यामुदाहार्यम् ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ ७८ ॥

पूर्वेण प्रकरणेनात्मनेपदनियमः कृतः न परस्मैपदनियमः तत्सर्वतः प्राप्नोति तदर्थमिदमुच्यते । येभ्यो धातुभ्यो येन विशेषणेनात्मनेपदमुक्तं ततो यदन्यत्स शेषः । शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदं भवति शेषादेव नान्यस्मात् । अनुदात्त-

ङित आत्मनेपदमुक्तम् । आस्ते । शेते । ततो ऽन्यत्र परस्मैपदं भवति । याति । वाति । नेर्विश आत्मनेपदमुक्तम् । निविशते । ततो ऽन्यत्र परस्मैपदम् । आविशति । प्रविशति । कर्त्तरीति किम् । पच्यते । गम्यते । कर्मकर्त्तरि कस्मात्परस्मैपदं न भवति । पच्यते ओदनः स्वयमेव । कर्त्तरि कर्मव्यतिहारइति द्वितीयं कर्तृग्रहणमनुवर्त्तते तेन कर्त्तैव यः कर्त्ता तत्र परस्मैपदं कर्मकर्त्तरि न भवति ॥

अनुपराभ्यां कृञः ॥ ७९ ॥

कर्त्रभिप्राये क्रियाफले गन्धनादिषु च करोतेरात्मनेपदं विहितं तदपवादः परस्मैपदं विधीयते । अनु परा इत्येवंपूर्वात्करोतेः परस्मैपदं भवति । अनुकरोति । पराकरोति ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ ८० ॥

क्षिप प्रेरणे स्वरितेत् ततः कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते । अभि प्रति अति इत्येवंपूर्वात् क्षिपः परस्मैपदं भवति । अभिक्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति । अभिप्रत्यतिभ्य इति किम् । आक्षिपते । द्वितीयमपि कर्तृग्रहणमनुवर्त्तते । तेनेह न भवति । अभिक्षिप्यते स्वयमेव ॥

प्राद्वहः ॥ ८१ ॥

वह प्रापणे स्वरितेत् तत्र कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते । प्रपूर्वाद्वहतेः परस्मैपदं भवति । प्रवहति । प्रवहतः । प्रवहन्ति । प्रादिति किम् । आवहते ॥

परेर्मृषः ॥ ८२ ॥

मृष तितिक्षायां स्वरितेत् ततस्तथैवात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते । परिपूर्वाद् मृष्यतेः परस्मैपदं भवति । परिमृष्यति । परिमृष्यतः । परिमृष्यन्ति । परेरिति किम् । आमृष्यते । वहतिमपि के चिदत्रानुवर्त्तयन्ति । परिवहति ॥

व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ ८३ ॥

रमु क्रीडायाम् । अनुदात्तेत्त्वादात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते । वि आङ् परि इत्येवंपूर्वाद्रमतेः परस्मैपदं भवति । विरमति । आरमति । परिरमति । एतेभ्य इति किम् । अभिरमते ॥

उपाच्च ॥ ८४ ॥

रम इत्येव । उपपूर्वाद्रमतेः परस्मैपदं भवति । देवदत्तमुपरमति । यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीति यावत् । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र रमिः । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् । अकर्मकाद्विभाषां वक्ष्यति सा उपपूर्वादेव यथा स्यात् ॥

विभाषा ऽकर्मकात् ॥ ८५ ॥

रम उपादिति च वर्त्तते। पूर्वेण नित्ये परस्मैपदे प्राप्ते विकल्प आरभ्यते। उपपूर्वाद्रमतेरकर्म्मकाद्विभाषा परस्मैपदं भवति। यावद्भुक्तमुपरमति। यावद्भुक्तमुपरमते। निवर्ततइत्यर्थः॥

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ॥ ८६ ॥

णिचश्चेति कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते। बुध युध नश जन इङ् प्रु द्रु स्रु इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं भवति। बोधयति। योधयति। नाशयति। जनयति। अध्यापयति। प्रावयति। द्रावयति। स्रावयति। ये ऽत्राकर्मकास्तेषामणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकादित्येवं सिद्धे वचनमिदमचित्तवत्कर्तृकार्थम्। बोधयति पद्मम्। योधयन्ति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। ये ऽत्र चलनार्था अपि तेषां निगरणचलनार्थेभ्यश्चेति सिद्धे यदा न चलनार्थास्तदर्थं वचनम्। प्रवते। प्राप्नोतीति गम्यते। अयो द्रवति। विलीयतइत्यर्थः। कुण्डिका स्रवति। स्यन्दतइत्यर्थः। तद्विषयाण्युदाहरणानि॥

निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ ८७ ॥

णेरिति वर्त्तते। कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदापवादः परस्मैपदं विधीयते। निगरणमभ्यवहारः। चलनं कम्पनम्। निगरणार्थेभ्यश्चलनार्थेभ्यश्च धातुभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं भवति। निगारयति। आशयति। भोजयति। चलनार्थेभ्यः। चलयति। चोपयति। कम्पयति। अयमपियोगः सकर्मकार्थः। अचित्तवत्कर्तृकार्थश्च। अदेः प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ अत्ति देवदत्तः। आदयते देवदत्तेन॥

अणावकर्म्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ॥ ८८ ॥

णेरिति वर्त्तते। कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदापवादः परस्मैपदं विधीयते। अण्यन्तो यो धातुरकर्म्मकश्चित्तवत्कर्तृकश्च तस्माद् ण्यन्तात्परस्मैपदं भवति। आस्ते देवदत्तः। आसयति देवदत्तम्। शेते देवदत्तः। शाययतिदेवदत्तम्। अणाविति किम्। चेतयमानं प्रयोजयति चेतयते इति के चित्प्रत्युदाहरन्ति तदयुक्तम्। हेतुमण्णिचो विधिः, प्रतिषेधोपि प्रत्यासत्तेस्तस्यैव न्याय्यः। तस्मादिह चेतयतीति परस्मैपदेनैव भवितव्यम्। इदं तु प्रत्युदाहरणम्। आरोहयमाणं प्रयोजयति। आरोहयते। अकर्मकादिति किम्। कटं कुर्वाणं प्रयोजयति। कारयते। चित्तवत्कर्तृकादिति किम्। शुष्यन्ति व्रीहयः। शोषयते व्रीहीनातपः॥

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ ८९ ॥

पूर्वेण योगद्वयेन कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदापवादः परस्मैपदं विहितं तस्य प्रतिषेधोयमुच्यते । यत्कर्त्रभिप्रायविषयमात्मनेपदं तदवस्थितमेव न प्रतिषिध्यते । पा दमि आङ्यम आङ्यस परिमुह रुचि नृति वद वस इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न भवति । णिचश्चेत्यात्मनेपदं भवति । तत्र पिबतिर्निगरणार्थः । दमिप्रभृतयश्चित्तवत्कर्तृकाः । नृतिश्चलनार्थोपि । एषां परस्मैपदं न भवति । पा । पाययते । दमि । दमयते । आङ्यम । आयामयते । यमोऽपरिवेषणे इति मित्संज्ञा प्रतिषिध्यते । आङ्यस । आयासयते । परिमुह । परिमोहयते । रुचि । रोचयते । नृति । नर्त्तयते । वद । वादयते । वस । वासयते । पादिषु धेट उपसंख्यानम् ॥ * ॥ धापयेते शिशुमेकं समीची ॥

वा क्यषः ॥ ९० ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यषिति वक्ष्यति तदन्ताद्धातोर्वा परस्मैपदं भवति * । लोहितायति । लोहितायते । पटपटायति । पटपटायते । अथात्र परस्मैपदेन मुक्ते कथमात्मनेपदं लभ्यते । यावता ऽनुदात्तङित इत्येवमादिना प्रकरणेन तन्नियतम् । एवं तर्हि आत्मनेपदमेवात्र विकल्पितं विधीयते, तच्चानन्तरं परस्मैपदप्रतिषेधेन सन्निधापितमिह संबध्यते । तेन मुक्ते शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदं भवति ॥

द्युद्भ्यो लुङि ॥ ९१ ॥

वेत्येव । द्युत दीप्तौ तत्साहचर्याद् लुठादयोपि कृपूपर्यन्तास्तथैव व्यपदिश्यन्ते । बहुवचननिर्द्देशादाद्यर्थो भवति । अनुदात्तेत्त्वाच्चित्यमेवात्मनेपदे प्राप्ते द्युतादिभ्यो लुङि वा परस्मैपदं भवति । व्यद्युतत् । व्यद्योतिष्ट । अलुठत् । अलोठिष्ट । लुङीति किम् । द्योतते ॥

वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ ९२ ॥

द्युतादिष्वेव वृतादयः पठ्यन्ते । वृतु वर्त्तने । वृधु वृद्धौ । शृधु शब्दकुत्सायाम् । स्यन्दू प्रस्रवणे । कृपू सामर्थ्ये । एतेभ्यो धातुभ्यः स्ये सनि च परतो वा परस्मैपदं भवति । वृत् । वर्त्स्यति । अवर्त्स्यत् । विवृत्सति । वर्त्तिष्यते । अवर्त्तिष्यत । विवर्त्तिषते । वृध् । वर्त्स्यति । अवर्त्स्यत् । विवृत्सति । वर्द्धिष्यते । अवर्द्धिष्यत । विवर्द्धिषते । स्यसनोरिति किम् । वर्त्तते ॥

लुटि च कॢपः ॥ ९३ ॥

वृतादित्वादेव स्यसनोर्विकल्पः सिद्धः । लुटि विधीयते । चकारस्तर्हि

---

* शेषादिति नित्ये प्राप्ते विकल्पार्थं वचनमित्यपि क्व चित्पाठः ।

स्यसनोरनुकर्षणार्थो न वक्तव्यः । एवं तर्हीयं प्राप्तिः पूर्वां प्राप्तिं बाधेत । तस्माच्चकारः स्यसनोरनुकर्षणार्थः क्रियते । लुटि च स्यसनोश्च कृपेः परस्मैपदं वा भवति । कल्प्ता । कल्प्तारौ । कल्प्तारः । कल्प्स्यति । अकल्प्स्यत् । चिक्लृप्सति । कल्पिता । कल्पिष्यते । अकल्पिष्यत । चिकल्पिषते* ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ प्रथमस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।

आ कडारादेका संज्ञा ॥ १ ॥

कडाराः कर्मधारयइति वक्ष्यति आ एतस्मात्सूत्रावधेर्येदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः तत्र एका संज्ञा भवतीति वेदितव्यम् । का पुनरसौ । या परा ऽनवकाशा च । अन्यत्र संज्ञासमावेशान्नियमार्थं वचनमेकैव संज्ञा भवतीति । वक्ष्यति ह्रस्वं लघु । भिदि छिदि । भेत्ता । छेत्ता । संयोगे गुरु । शिक्षा । भिक्षा । संयोग परस्य ह्रस्वस्य लघुसंज्ञा प्राप्नोति गुरुसंज्ञा च । एका संज्ञेति वचनाद्गुरुसंज्ञैव भवति । अततक्षत् । अररक्षत् । सन्वल्लघुनीत्येष विधिर्न भवति ॥

विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥ २ ॥

तुल्यबलविरोधो विप्रतिषेधः । यत्र द्वौ प्रसङ्गावन्यार्थावेकस्मिन्युगपत्प्राप्तः स तुल्यबलविरोधो विप्रतिषेधः । तस्मिन्विप्रतिषेधे परं कार्यं भवति । उत्सर्गापवादनित्यानित्यान्तरङ्गबहिरङ्गेषु तुल्यबलता नास्तीति नायमस्य योगस्य विषयो बलवतैव तत्र भवितव्यम् । अप्रवृत्तौ पर्यायेण वा प्रवृत्तौ प्राप्तायां वचनमारभ्यते । अतो दीर्घो यञि सुपि चेत्यस्यावकाशः । वृक्षाभ्याम् । प्लक्षाभ्याम् । बहुवचने झल्येदित्यस्यावकाशः । वृक्षेषु । प्लक्षेषु । इहोभयं प्राप्नोति । वृक्षेभ्यः । प्लक्षेभ्यः । इति । परं भवति विप्रतिषेधेन ॥

यू स्त्र्याख्यौ नदी ॥ ३ ॥

ई च ऊ च यू । अविभक्तिको निर्देशः । स्त्रियमाचक्षाते स्त्र्याख्यौ । मूलविभुजादिदर्शनात्कप्रत्ययः । ईकारान्तमूकारान्तं च स्त्र्याख्यं शब्दरूपं नदीसंज्ञं भवति । ईकारान्तम् । कुमारी । गौरी । लक्ष्मीः । शार्ङ्गरवी । ऊकारान्तम् । ब्रह्मबन्धूः । यवागूः । यू इति किम् । मात्रे । दुहित्रे । स्त्र्याख्याविति किम् ।

---

* यत्र परस्मैपदं तत्र तासि च क्लृप इतीट् प्रतिषेधः । यत्रात्मनेपदं तत्रेड् भवत्येवेत्यपि क्व चित्पाठः ।

ग्रामणीः। सेनानीः। खलपूः। आख्याग्रहणं किम्। शब्दार्थे स्त्रीत्वएव यथा स्यात् पदान्तराख्ये मा भूत्। ग्रामण्ये स्त्रियै। खलप्वे स्त्रियै। नदीप्रदेशा आण्नद्या इत्येवमादयः॥

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ४ ॥

पूर्वेणातिप्रसक्ता नदीसंज्ञा प्रतिषिध्यते। स्थितिः स्थानम्। इयङुवङोः स्थानमनयोरितीयङुवङ्स्थानौ तौ यू नदीसंज्ञौ न भवतः स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा। हे श्रीः। हे भ्रूः। अस्त्रीति किम्। हे स्त्रि॥

वा ऽऽमि ॥ ५ ॥

पूर्वेण नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते आमि विकल्पः क्रियते। इयङुवङ्स्थानौ यू आमि परतो वा नदीसंज्ञौ न भवतः। श्रियाम्। श्रीणाम्। भ्रुवाम्। भ्रूणाम्। अस्त्रीत्येव। स्त्रीणाम्॥

ङिति ह्रस्वश्च ॥ ६ ॥

दीर्घस्य नदीसंज्ञा विहिता ह्रस्वस्य न प्राप्नोति इयङुवङ्स्थानयोश्च प्रतिषिद्धा। तस्माङ्ङिति वा विधीयते। ङिति परतो ह्रस्वश्च य्वोः संबन्धी यः स्त्र्याख्यौ इयङुवङ्स्थानौ च यू वा नदीसंज्ञौ भवतः। कृत्यै। कृतये। धेन्वै। धेनवे। श्रियै। श्रिये। भ्रुवै। भ्रुवे। अस्त्रीत्येव। स्त्रियै। स्त्र्याख्या-वित्येव। अग्नये। वायवे। भानवे॥

शेषो घ्यसखि ॥ ७ ॥

ह्रस्व इति वर्त्तते। शेषोऽत्र घिसंज्ञो भवति सखिशब्दं वर्जयित्वा। कश्च शेषः। ह्रस्वमिवर्णोवर्णान्तं यच्च स्त्र्याख्यं स्त्र्याख्यं च यच्च नदीसंज्ञकं स शेषः। अग्नये। वायवे। कृतये। धेनवे। असखीति किम्। सख्या। सख्ये। सख्युः। सख्यौ *॥

पतिः समासएव ॥ ८ ॥

पतिशब्दस्य घिसंज्ञायां सिद्धायामयं नियमः क्रियते पतिशब्दः समास-एव घिसंज्ञो भवति। प्रजापतिना। प्रजापतये। समासइति किम्। पत्या। पत्ये। एवकार इष्टतो ऽवधारणार्थः। दृढमुष्टिना। दृढमुष्टये॥

षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥ ९ ॥

पतिरिति वर्तते। पूर्वेण नियमेनासमासे न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते। षष्ठ्यन्तेन युक्तः पतिशब्दः छन्दसि विषये वा घिसंज्ञो भवति। कुलुञ्चानां

* इत उत्तरं "घिप्रदेशाः द्वन्द्वे घीत्येवमादय" इत्यपि क्वचित्पाठः॥

पतये नमः । कुलुञ्चानां पत्ये नमः । *षष्ठीग्रहणं किम् । मया पत्या जरदृष्टिर्यथासः । छन्दसीति किम् । ग्रामस्य पत्ये ॥

ह्रस्वं लघु ॥ १० ॥

मात्रिकस्य ह्रस्वसंज्ञा कृता तस्यानेन लघुसंज्ञा विधीयते । ह्रस्वमक्षरं लघुसंज्ञं भवति । भेत्ता । छेत्ता । अचीकरत् । अजीहरत् । लघुप्रदेशाः पुगन्तलघूपधस्य चेत्येवमादयः ॥

संयोगे गुरु ॥ ११ ॥

ह्रस्वमिति वर्तते । पूर्वेण लघुसंज्ञायां प्राप्तायां गुरुसंज्ञा विधीयते । संयोगे परतो ह्रस्वमक्षरं गुरुसंज्ञं भवति । कुण्डा । शिक्षा । भिक्षा । गुरुप्रदेशाः गुरोश्च हल इत्येवमादयः ॥

दीर्घं च ॥ १२ ॥

संयोगइति नानुवर्त्तते । सामान्येन संज्ञाविधानम् । दीर्घं चाक्षरं गुरुसंज्ञं भवति । ईहांचक्रे । ईक्षांचक्रे ॥

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्यये ऽङ्गम् ॥ १३ ॥

यस्मात्प्रत्ययो विधीयते धातोर्वा प्रातिपदिकाद्वा तदादि शब्दरूपं प्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञं भवति । कर्त्ता । हर्त्ता । करिष्यति । हरिष्यति । औपगवः । कापटवः । यस्मादिति संज्ञिनिर्द्देशार्थं, तदादीतिसंबन्धात् । प्रत्ययग्रहणं किम् । न्यविशत । व्यक्रीणीत । नेर्विश इत्युपसर्गाद्विधिरस्ति तदादेरङ्गसंज्ञा स्यात् । विधिग्रहणं किम् । प्रत्ययपरत्वमात्रे मा भूत् । स्त्री इयती । तदादिवचनं स्यादिनुमर्थम् । करिष्यावः । करिष्यामः । कुण्डानि । पुनः प्रत्ययग्रहणं किमर्थम् । लुप्तप्रत्यये मा भूत् । स्त्र्यर्थम् । अङ्गप्रदेशा अङ्गस्येत्येवमादयः ॥

सुप्तिङन्तं पदम् ॥ १४ ॥

सुप्तिङिति प्रत्याहारग्रहणम् । सुबन्तं तिङन्तं च शब्दरूपं पदसंज्ञं भवति । ब्राह्मणाः पचन्ति । पदसंज्ञायामन्तग्रहणमन्यत्र संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधेः प्रतिषेधार्थम् । गौरी ब्राह्मणितरा । पदप्रदेशाः पदस्य पदादित्येवमादयः ॥

नः क्ये ॥ १५ ॥

क्यइति क्यच्क्यङ्क्यषां सामान्यग्रहणम् । नान्तं शब्दरूपं क्ये परतः पदसंज्ञं भवति । क्यच् । राजीयति । क्यङ् । राजायते । क्यष् । चर्म्मायति ।

---

* चेत्रस्य पतये नमः । चेत्रस्य पत्ये नम इत्यपि क्व चिदुदाहरणम् ॥

चर्म्मायते । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । नान्तमेव क्ये परतः पदसंज्ञं भवति नान्यत् । वाच्यति । स्रुच्यति ॥

सिति च ॥ १६ ॥

यचि भमिति वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपवादः । सिति प्रत्यये परतः पूर्वं पदसंज्ञं भवति । भवतष्ठक्छसौ । भवदीयः । ऊर्णाया युस् । ऊर्णायुः । ऋतोरण्छन्दसि घस् । ऋत्वियः ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥ १७ ॥

स्वादिष्विति सुशब्दादेकवचनादारभ्य आ कपः प्रत्यया गृह्यन्ते । स्वादिषु प्रत्ययेषु परतः सर्वनामस्थानवर्ज्जितेषु पूर्वं पदसंज्ञं भवति । राजभ्याम् । राजभिः । राजत्वम् । राजता । राजतरः । राजतमः । असर्वनामस्थानइति किम् । राजानौ । राजानः ॥

यचि भम् ॥ १८ ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थानइति वर्तते । पूर्वेण पदसंज्ञायां प्राप्तायां तदपवादो भसंज्ञा विधीयते । यकारादावजादौ च स्वादौ सर्वनामस्थानवर्ज्जिते प्रत्यये परतः पूर्वं भसंज्ञं भवति । यकारादौ । गार्ग्यः । वात्स्यः । अजादौ । दाक्षिः । प्लाक्षिः ॥ नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ नभइव नभस्वत् । अङ्गिराइव अङ्गिरस्वत् । मनुरिव मनुष्वत् ॥ वृषण्वस्वश्वयोः ॥ * ॥ वृषन्नित्येतत् वस्वश्वयोः परतो भसंज्ञं भवति छन्दसिविषये । वृषण्वसुः । वृषणश्वस्य मेने । भप्रदेशाः भस्येत्येवमादयः ॥

तसौ मत्वर्थे ॥ १९ ॥

भमिति वर्त्तते । तकारान्तं सकारान्तं शब्दरूपं मत्वर्थप्रत्यये परतो भसंज्ञं भवति । उदश्वित्वान् घोषः । विद्युत्वान् बलाहकः । सकारान्तम् । यशस्वी । पयस्वी । तसाविति किम् । तक्षवान् ग्रामः ॥

अयस्मयादीनिच्छन्दसि ॥ २० ॥

अयस्मयादीनि शब्दरूपाणि छन्दसि विषये साधूनि भवन्ति । भपदसंज्ञाधिकारे विधानात्तेन मुखेन साधुत्वमयस्मयादीनां विधीयते । अयस्मयं वर्म । अयस्मयानि पात्राणि । क्वचिदुभयमपि भवति । स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन । पदत्त्वात्कुत्वं भत्वाज्जश्त्वं न भवति । छन्दसीति किम् । अयोमयं ॥

बहुषु बहुवचनम् ॥ २१ ॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात्स्वादयः लस्य तिबादय इति सामान्येन बहुवचनं विहितं तस्यानेन बहुत्वसंख्या वाच्यत्वेन विधीयते । बहुषु बहुवचनं भवति ।

बहुत्वमस्य वाच्यं भवतीति यावत् । कर्मादयोऽप्यपरे विभक्तीनामर्था वाच्या-स्तदीये बहुत्वे बहुवचनं कर्मादिषु बहुषु बहुवचनमित्यर्थः । ब्राह्मणाः पठन्ति । यत्र च संख्या संभवति तत्रायमुपदेशः । अव्ययेभ्यस्तु निःसंख्येभ्यः सामान्यविहिताः स्वादयो विद्यन्तएव ॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ २२ ॥

द्वित्वैकत्वयोरर्थयोर्द्विवचनैकवचने भवतः । एतदपि सामान्यविहितयो-र्द्विवचनैकवचनयोरर्थाभिधानम् । द्वित्वे द्विवचनं भवति एकत्वे एकवचनं भव-ति । ब्राह्मणौ पचतः । ब्राह्मणः पचति ॥

कारके ॥ २३ ॥ क्रियान्वयि कारकम्

कारकइति । विशेषणमपादानादिसंज्ञाविषयमधिक्रियते । कारकइत्य-धिकारो वेदितव्यः । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामः कारकइत्येवं तद्वेदितव्यम् । कारकशब्दश्च निमित्तपर्यायः । कारकं हेतुरित्यनर्थान्तरम् । कस्य हेतुः । क्रियायाः । वक्ष्यति ध्रुवमपाये ऽपादानम् । ग्रामादागच्छति । पर्वतादवरो-हति । कारकइति किम् । वृक्षस्य पर्णं पतति । कुड्यस्य पिण्डः पतति । अक-थितं च । अकथितं च कारकं कर्मसंज्ञं भवति । माणवकं पन्थानं पृच्छति । कार-कइति किम् । माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति । कारकसंशब्दनेषु चानेनैव विशेषणेन व्यवहारो विज्ञायते ॥

ध्रुवमपाये ऽपादानम् ॥ २४ ॥

ध्रुवं यदपाययुक्तमपाये साध्ये यदवधिभूतं तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । ग्रामादागच्छति । पर्वतादवरोहति । सार्थाद्धीनः । रथात्पतितः ॥ जुगुप्सावि-रामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ अधर्माज्जुगुप्सते । अधर्माद्विरमति । धर्मात्प्रमाद्यति । अपादानप्रदेशा अपादाने पञ्चमीत्येवमादयः ॥

भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ २५ ॥

बिभेत्यर्थानां त्रायत्यर्थानां च धातूनां प्रयोगे भयहेतुर्यस्तत्कारकमपादा-नसंज्ञं भवति । चौरेभ्यो बिभेति । चौरेभ्य उद्विजते । त्रायत्यर्थानाम् । चौरेभ्यस्त्रा-यते । चौरेभ्यो रक्षति । भयहेतुरिति किम् । अरण्ये बिभेति । अरण्ये त्रायते ॥

पराजेरसोढः ॥ २६ ॥

परापूर्वस्य जयतेः प्रयोगे ऽसोढो यो ऽर्थः सोढुं न शक्यते तत्कारकमपा-दानसंज्ञं भवति । अध्ययनात्पराजयते । असोढ इति किम् । शत्रून्पराजयते ॥

वारणार्थानामीप्सितः ॥ २७ ॥

वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे य ईप्सितोर्थः तत्कारकमपादानसंज्ञं भव-

ति । प्रवृत्तिविघातो वारणम् । यवेभ्यो गां वारयति । यवेभ्यो गां निवर्त्तयति । ईप्सित इति किम् । यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे ॥

अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ २८ ॥

व्यवधानमन्तर्द्धिः । अन्तर्द्धिनिमित्तं येनादर्शनमात्मन इच्छति तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । उपाध्यायादन्तर्द्धत्ते । उपाध्यायान्निलीयते । मा मामुपाध्यायो द्राक्षीदिति निलीयते । अन्तर्द्धाविति किम् । चौरान्न दिदृक्षते । इच्छतिग्रहणं किम् । अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् ॥

आख्यातोपयोगे ॥ २९ ॥

आख्याता प्रतिपादयिता । उपयोगो नियमपूर्वकं विद्याग्रहणम् । उपयोगे साध्ये य आख्याता तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । उपाध्यायादधीते । उपाध्यायादागमयति । उपयोगइति किम् । नटस्य शृणोति ॥

जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ३० ॥

जनेः कर्त्ता जनिकर्त्ता । जन्यर्थस्य जन्मनः कर्त्ता जायमानः तस्य या प्रकृतिः कारणं हेतुः तत् कारकमपादानसंज्ञं भवति । शृङ्गाच्छरो जायते । गोमयाद्वृश्चिको जायते ॥

भुवः प्रभवः ॥ ३१ ॥

कर्त्तुरिति वर्त्तते । भवनं भूः । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः । भूकर्त्तुः प्रभवो यस्तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । हिमवतो गङ्गा प्रभवति । काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति । प्रथमत उपलभ्यतइत्यर्थः ॥

कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम् ॥ ३२ ॥

कर्मणा करणभूतेन कर्त्ता यमभिप्रैति तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । अन्वर्थसंज्ञाविज्ञानाद्ददातिकर्मणेति विज्ञायते । उपाध्यायाय गां ददाति । माणवकाय भिक्षां ददाति ॥ क्रियाग्रहणमपि कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ क्रिययापि यमभिप्रैति स संप्रदानम् । श्राद्धाय निगर्हते । युद्धाय संनह्यते । पत्ये शेते । संप्रदानप्रदेशाः चतुर्थी संप्रदानइत्येवमादयः ॥ कर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा ॥ * ॥ पशुना रुद्रं यजते । पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः ॥

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ ३३ ॥

रुचिना समानार्था रुच्यर्थाः । अन्यकर्त्तृकोऽभिलाषो रुचिः । रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणो योऽर्थस्तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । देवदत्ताय रोचते मोदकः । यज्ञदत्ताय स्वदते पूपः । देवदत्तस्याभिलाषस्य मोदकः कर्त्ता । प्रीयमाण इति किम् । देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि ॥

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥ ३४ ॥

श्लाघ ह्नुङ् स्था शप इत्येतेषां ज्ञीप्स्यमानो यो ऽर्थस्तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । ज्ञीप्स्यमानो ज्ञपयितुमिष्यमाणो बोधयितुमभिप्रेतः । देवदत्ताय श्लाघते । देवदत्तं श्लाघमानस्तां श्लाघां तमेव ज्ञपयितुमिच्छतीत्यर्थः । एवं देवदत्ताय ह्नुते । यज्ञदत्ताय ह्नुते । देवदत्ताय तिष्ठते । यज्ञदत्ताय तिष्ठते । देवदत्ताय शपते । यज्ञदत्ताय शपते । ज्ञीप्स्यमान इति किम् । देवदत्ताय श्लाघते पथि ॥

धारेरुत्तमर्णः ॥ ३५ ॥

धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्णो यो ऽर्थः तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । उत्तममृणं यस्य स उत्तमर्णः । कस्य चोत्तममृणं,यदीयं धनं, धनस्वामी प्रयोक्ता उत्तमर्णः स संप्रदासंज्ञो भवति । देवदत्ताय शतं धारयति । यज्ञदत्ताय शतं धारयति । उत्तमर्ण इति किम् । देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे ॥

स्पृहेरीप्सितः ॥ ३६ ॥

स्पृह ईप्सायां, चुरादावदन्तः पठ्यते, तस्य ईप्सितो यो ऽर्थस्तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । ईप्सित इत्यभिप्रेत उच्यते । पुष्पेभ्यः स्पृहयति । फलेभ्यः स्पृहयति । ईप्सित इति किम् । पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति ॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ॥ ३७ ॥

अमर्षः क्रोधः । अपकारो द्रोहः । अक्षमा ईर्ष्या । गुणेषु दोषाविष्करणमसूया । क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपस्तत्कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति । क्रोधस्तावत्कोप एव, द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । तस्मात्सामान्येन विशेषणं यं प्रति कोप इति । देवदत्ताय क्रुध्यति । देवदत्ताय द्रुह्यति । देवदत्तायेर्ष्यति । देवदत्तायासूयति । यं प्रति कोप इति किम् । भार्यामीर्ष्यति । मैनामन्यो द्राक्षीदिति ॥

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥ ३८ ॥

पूर्वेण संप्रदानसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते । क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोरुपसर्गसंबद्धयोर्यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति । देवदत्तमभिक्रुध्यति । देवदत्तमभिद्रुह्यति । उपसृष्टयोरिति किम् । देवदत्ताय क्रुध्यति । यज्ञदत्ताय द्रुह्यति ॥

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥ ३९ ॥

राधेरीक्षेश्च कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति, कीदृशं, यस्य विप्रश्नः, विविधः प्रश्नः विप्रश्नः, स कस्य भवति, यस्य शुभाशुभं पृच्छ्यते । देवदत्ताय राध्यति । देवदत्तायेक्षते । नैमित्तिकः पृष्टः सन् देवदत्तस्य दैवं पर्यालोचयतीत्यर्थः ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता ॥ ४० ॥

प्रति आङ् इत्येवंपूर्वस्य शृणोतेः कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति, कीदृशं, पूर्वस्य कर्त्ता। प्रतिपूर्व आङ्पूर्वश्च शृणोतिरभ्युपगमे प्रतिज्ञाने वर्त्तते। स चाभ्युपगमः परेण प्रयुक्तस्य सतो भवति। तत्र प्रयोक्ता पूर्वस्याः क्रियायाः कर्त्ता संप्रदानसंज्ञो भवति। देवदत्ताय गां प्रतिशृणोति। देवदत्ताय गामाशृणोति। प्रतिजानीतइत्यर्थः॥

अनुप्रतिगृणश्च ॥ ४१ ॥

पूर्वस्य कर्त्तेति वर्त्तते। अनुपूर्वस्य प्रतिपूर्वस्य च गृणातेः कारकं पूर्वस्याः क्रियायाः कर्तृभूतं संप्रदानसंज्ञं भवति। होत्रे ऽनुगृणाति। होता प्रथमं शंसति तमन्यः प्रोत्साहयति। अनुगरः प्रतिगर इति हि शंसितुः प्रोत्साहने वर्त्तते। होत्रे ऽनुगृणाति। होतारं शंसन्तं प्रोत्साहयतीत्यर्थः॥

साधकतमं करणम् ॥ ४२ ॥

क्रियाप्रसिद्धौ यत्प्रकृष्टोपकारकं विवक्षितं तत्साधकतमं कारकं करणसंज्ञं भवति। दात्रेण लुनाति। परशुना छिनत्ति। तमब्ग्रहणं किम्। गङ्गायां घोषः। कूपे गर्गकुलम्। करणप्रदेशाः कर्तृकरणयोस्तृतीयेत्येवमादयः॥

दिवः कर्म च ॥ ४३ ॥

पूर्वेण करणसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते। दिवः साधकतमं यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति चकारात्करणसंज्ञं च। अक्षान्दीव्यति। अक्षैर्दीव्यति॥

परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

साधकतममिति वर्तते। पूर्वेण करणसंज्ञायां प्राप्तायां संप्रदानसंज्ञा पक्षे विधीयते। परिक्रयणे साधकतमं कारकमन्यतरस्यां संप्रदानसंज्ञं भवति। परिक्रयणं नियतकालं वेतनादिना स्वीकरणं नात्यन्तिकः क्रय एव। शताय परिक्रीतो ऽनुब्रूहि। शतेन परिक्रीतो ऽनुब्रूहि। सहस्रेण परिक्रीतो ऽनुब्रूहि। सहस्राय परिक्रीतो ऽनुब्रूहि॥

आधारो ऽधिकरणम् ॥ ४५ ॥

आध्रियन्ते ऽस्मिन् क्रिया इत्याधारः। कर्तृकर्मणोः क्रियाश्रयभूतयोर्धारणक्रियां प्रति य आधारस्तत्कारकमधिकरणसंज्ञं भवति। कटे आस्ते। कटे शेते। स्थाल्यां पचति। अधिकरणप्रदेशाः सप्तम्यधिकरणे चेत्येवमादयः॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥ ४६ ॥

पूर्वेणाधिकरणसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते। अधिपूर्वाणां शीङ् स्था आस् इत्येतेषामाधारो यस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति। ग्राममधिशेते। ग्राममधितिष्ठति। पर्वतमध्यास्ते॥

अभिनिविशश्च ॥ ४७ ॥

अभिनिपूर्वस्य विशतेराधारो यस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति । ग्राममभिनिविशते । कथं कल्याणे ऽभिनिवेशः, पापेभिनिवेशः, याया संज्ञायस्मिन्यस्मिन् संज्ञिन्यभिनिविशतइति । अन्यतरस्यामिति वर्त्तते परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्यामित्यतः । सा च व्यवस्थितविभाषा विज्ञायते ॥

उपान्वध्याङ्वसः ॥ ४८ ॥

उप अनु अधि आङ् इत्येवंपूर्वस्य वसतेराधारो यस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति । ग्राममुपवसति सेना । पर्वतमुपवसति । ग्राममनुवसति । ग्राममधिवसति । ग्राममावसति ॥ वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ ग्रामे उपवसति । भोजननिवृत्तिं करोतीत्यर्थः ॥

कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ ४९ ॥

कर्त्तुः क्रियया यदाप्तुमिष्टतमं तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति । कटं करोति । ग्रामं गच्छति । कर्त्तुरिति किम् । माषेष्वश्वं बध्नाति । कर्मण ईप्सिता माषा न कर्तुः । तमब्ग्रहणं किम् । पयसौदनं भुङ्क्ते । कर्मेत्यनुवर्तमाने पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्त्यर्थम् । इतरथा ऽऽधारस्यैव हि स्यात् । गेहं प्रविशतीति । ओदनं पचति सक्तून्पिबतीत्यादिषु न स्यात् । पुनः कर्मग्रहणात् सर्वत्र सिद्धं भवति । कर्मप्रदेशाः कर्मणि द्वितीयेत्येवमादयः ॥

तथायुक्तं चानीप्सितम् ॥ ५० ॥

येन प्रकारेण कर्तुरीप्सिततमं क्रियया युज्यते तेनैव चेत्प्रकारेण यदनीप्सितं युक्तं भवति तस्य कर्मसंज्ञा विधीयते । ईप्सितादन्यत्सर्वमनीप्सितं द्वेष्यमितरच्च । विषं भक्षयति । चौरान्पश्यति । ग्रामं गच्छन् वृक्षमूलान्युपसर्पति ॥

अकथितं च ॥ ५१ ॥

अकथितं च यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति । केनाकथित,मपादानादिविशेषकथाभिः । परिगणनं कर्त्तव्यम् ।

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ ।
ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना ॥ अकथितम्

उपयुज्यतइत्युपयोगः, पयः प्रभृति, तस्य निमित्तं गवादि, तस्योपयुज्यमानपयःप्रभृतिनिमित्तस्य गवादेः कर्मसंज्ञा विधीयते । पाणिना कांस्यपात्र्यां गां दोग्धि पयः । पाण्यादिकमप्युपयोगनिमित्तं तस्य कस्माच्च भवति । नैतदस्ति । विहिता हि तत्र करणादिसंज्ञा । तदर्थमाह । अपूर्वविधाविति । ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते । ब्रुविशास्योर्गुणः साधनं प्रधानं कर्म धर्मादिकं,

तेन यत्संबध्यते, तदकीर्तितमाचरितं कविना, तदकथितमुक्तं सूत्रकारेण। दुहि, गां दोग्धि पयः। याचि, पौरवं गां याचते। रुधि, गामवरुणद्धि व्रजम्। प्रच्छि, माणवकं पन्थानं पृच्छति। भिक्षि, पौरवं गां भिक्षते। चिञ्, वृक्षमवचिनोति फलानि। ब्रुवि, माणवकं धर्मं ब्रूते। शासि, माणवकं धर्ममनुशास्ति॥

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ ॥ ५२ ॥

अर्थशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्यवसानार्थानां च धातूनां तथा शब्दकर्मकाणामकर्मकाणां च अण्यन्तानां यः कर्त्ता स ण्यन्तानां कर्मसंज्ञो भवति। गच्छति माणवको ग्रामम्। गमयति माणवकं ग्रामम्। याति माणवको ग्रामम्। यापयति माणवकं ग्रामम्। गत्यर्थेषु नीवह्योः प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ नयति भारं देवदत्तः। नाययति भारं देवदत्तेन। वहति भारं देवदत्तः। वाहयति भारं देवदत्तेन॥ वहेरनियन्तृकर्त्तृकस्येति वक्तव्यम्॥ * ॥ इह प्रतिषेधो मा भूत्। वहन्ति यवान् बलीवर्दाः। वाहयति यवान् बलीवर्दानिति। बुद्धि। बुध्यते माणवको धर्मम्। बोधयति माणवकं धर्मम्। वेत्ति माणवको धर्मम्। वेदयति माणवकं धर्मम्। प्रत्यवसानमभ्यवहारः। भुङ्क्ते माणवक ओदनम्। भोजयति माणवकमोदनम्॥ अश्नाति माणवक ओदनम्। आशयति माणवकमोदनम्॥ आदिखाद्योः प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ अत्ति माणवक ओदनम्। आदयते माणवकेनौदनम्। खादति माणवकः। खादयति माणवकेन॥ भक्षेरहिंसार्थस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ भक्षयति पिण्डीं देवदत्तः। भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेनेति। अहिंसार्थस्येति किम्। भक्षयन्ति बलीवर्दाः सस्यं, भक्षयन्ति बलीवर्दान्सस्यम्। शब्दकर्मणाम्। अधीते माणवको वेदम्। अध्यापयति माणवकं वेदम्। पठतिमाणवको वेदम्। पाठयति माणवकं वेदम्। अकर्मकाणाम्। आस्ते देवदत्तः। आसयति देवदत्तम्। शेते देवदत्तः। शाययति देवदत्तम्। एतेषामिति किम्। पचत्योदनं देवदत्तः। पाचयत्योदनं देवदत्तेनेति। अण्यन्तानामिति किम्। गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं, तमपरः प्रयुङ्क्ते, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥

अणि कर्त्ता स णाविति वर्त्तते। हरतेः करोतेश्चाण्यन्तयोर्यः कर्त्ता स ण्यन्तयोरन्यतरस्यां कर्मसंज्ञो भवति। हरति भारं माणवकः। हारयति भारं माणवकं माणवकेनेति वा। करोति कटं देवदत्तः। कारयति कटं देवदत्तं देवदत्तेनेति वा॥ अभिवादिदृशोरात्मनेपदउपसंख्यानम्॥ * ॥ अभिवदति गुरुं देवदत्तः। अभिवादयते गुरुं देवदत्त देवदत्तेनेति वा। पश्यन्ति भृत्या राजा-

नम् । दर्शयते भृत्यान् राजानं दर्शयते भृत्यैरिति वा । आत्मनेपदइति किम् । दर्शयति चैत्रं मैत्रमपरः । प्राप्तविकल्पत्वाद् द्वितीयैव । अभिवादयति गुरुं माणवकेन पिता । अप्राप्तविकल्पत्वात्तृतीयैव ॥

स्वतन्त्रः कर्ता ॥ ५४ ॥

स्वतन्त्र इति प्रधानभूत उच्यते । अगुणीभूतो यः । क्रियाप्रसिद्धौ स्वातन्त्र्येण विवक्ष्यते तत्कारकं कर्तृसंज्ञं भवति । देवदत्तः पचति । स्थाली पचति । कर्तृप्रदेशाः कर्तृकरणयोस्तृतीयेत्येवमादयः ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ५५ ॥

तदिति अनन्तरः कर्ता परामृश्यते । तस्य प्रयोजकः तत्प्रयोजकः । निपातनात्समासः । स्वतन्त्रस्य प्रयोजको यो ऽर्थः तत्कारकं हेतुसंज्ञं भवति चकारात्कर्तृसंज्ञं च । संज्ञासमावेशार्थश्चकारः । कुर्वाणं प्रयुङ्क्ते । कारयति । हारयति । हेतुत्वाद् णिचो निमित्तं कर्तृत्वाच्च कर्तृप्रत्ययेनोच्यते । हेतुप्रदेशाः हेतुमति चेत्येवमादयः ॥

प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ५६ ॥

अधिरीश्वरइति वक्ष्यति प्रागेतस्मादवधेर्यानित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामः निपातसंज्ञास्ते वेदितव्याः । वक्ष्यति "चादयो ऽसत्त्वे" च वा ह अह । प्राग्वचनं संज्ञासमावेशार्थम् । गत्युपसर्गकर्मप्रवचनीयसंज्ञाभिस्सह निपातसंज्ञा समाविशति । रेफोच्चारणमीश्वरे तोसुन्कसुनावित्ययमवधिर्मा विज्ञायाति ॥

रीश्वराद्वीश्वरान्मा भूत् कृन्मेजन्तः परोपि सः ।
समासेष्वव्ययीभावो लौकिकं चातिवर्त्तते ॥

चादयो ऽसत्त्वे ॥ ५७ ॥

चादयो निपातसंज्ञा भवन्ति न चेत्सत्त्वे वर्तन्ते । प्रसज्य प्रतिषेधो यं,-सत्त्वमिति द्रव्यमुच्यते ॥ च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । सूपत् । कूपत् । कुवित् । नेत् । चेत् । चण् । कच्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकिम् । नकिम् । माङ् । माङो ङकारो विशेषणार्थो माङि लुङिति । इह न भवति । मा भवतु, मा भविष्यति । नञ् । यावत् । तावत् । त्वा । त्वै । द्वै । रै । श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । वषट् । स्वधा । ओम् । किल । तथा । अथ । सु । स्म । अस्मि । अ । इ । उ । ऋ । ऌ । ए । ऐ । ओ । औ । अम् । तक । उञ् । उकञ् । वेलायाम् । मात्रायाम् । यथा । यत् । यम् । तत् । किम् । पुरा । अद्धा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याट् । पाट् । थाट् । अहो । उताहो । हो । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो । अथो । ननु ।

मन्ये । मिथ्या । असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् । चन । बत । इह । आम् । शम् । कम् । अनुकम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् । सत्यम् । ऋतम् * । श्रद्धा । इद्धा । मुधा । नोचेत् । नचेत् । नहि । जातु । कथम् । कुतः । कुत्र । अव । अनु । हाहौ । हैहा । ईहा । आहोस्वित् । छम्बट् । खम् । दिष्ट्या । पशु । वट् । सह । आनुषक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये । अरे । चटु । बाट् । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । सीम् । वै । † उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः । उपसर्गप्रतिरूपकाः ।

अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

अच उपसर्गात्त इति तत्वं न भवति । दुर्नीतम् । दुर्नयः । दुर्निर्णयः । उपसर्गादिति णत्वं न भवति । असत्त्वइति किम् । पशुर्वै पुरुषः । पशुः पुरोडाशः । निपातप्रदेशाः स्वरादिनिपातमव्ययमित्येवमादयः ॥

प्रादयः ॥ ५८ ॥

प्रादयो ऽसत्त्वे निपातसंज्ञा भवन्ति । प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । दुस् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । पृथग्योगकरणमुत्तरसंज्ञाविशेषणार्थम् । उपसर्गाः क्रियायोगइति चादीनामुपसर्गसंज्ञा मा भूत् । असत्त्वइत्येव । परा जयति सेना ॥

उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ५९ ॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञा भवन्ति । प्रणयति । परिणयति । प्रणायकः । परिणायकः । क्रियायोगइति किम् । प्रगतो नायको ऽस्माद्देशात् प्रनायको देशः ॥ मरुच्छब्दस्य चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ मरुद्भिर्दत्तो मरुत्तः । संज्ञाविधानसामर्थ्यादनजन्तत्वेपि अच उपसर्गात्त इति तत्वं भवति । श्रच्छब्दस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥ आत्श्चोपसर्गइति अङ् भवति । श्रद्धा । उपसर्गप्रदेशा उपसर्गे घोः किरित्येवमादयः ॥

गतिश्च ॥ ६० ॥

गतिसंज्ञकाश्च प्रादयो भवन्ति क्रियायोगे । प्रकृत्य । प्रकृतम् । प्रकरोति । योगविभाग उत्तरार्थः । उत्तरत्र गतिसंज्ञैव यथा स्यात्, उपसर्गसंज्ञा

---

* ऋतमित्येतदुत्तरं "वाकिर्, नकिर्, आङ्, "अ, मा, नो, ना, प्रतिषेधे,"उत, दह," इत्येते क्व चित् पुस्तके दृश्यन्ते ।

† त्वे, तुवै, न्वे, नुवे, अध, अधस्, स्मि, अच्छ, अदल, टह, हेहे, हैहे, नौ, म, आस्, ग्रस्, शुकम्, सम्, वव, वात्, डिकम्, हितुक्, वशम्, णिकम्, प्रवकम्, सनुकम्, नुकम्, मन्त, ठौ, सुक्, भाजक्, अले, वद्, वाद्, कीम्, एते ऽधिकाः पुस्तकान्तरेषु ।

मा भूत्। ऊरीस्यादित्यत्रोपसर्गप्रादुर्भ्यां मस्तिर्यच्पर इति षत्वं प्रसज्येत। चकारः संज्ञासमावेशार्थः। प्रणीतम्। अभिषिक्तम्। गतिरनन्तर इति स्वर उपसर्गादिति णत्वषत्वे च भवतः। कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम्॥ * ॥ कारिकाकृत्य। कारिकाकृतम्। यत्कारिकाकरोति। पुनश्चनसौ छन्दसि गतिसंज्ञौ भवत इति वक्तव्यम्॥ * ॥ पुनरुत्स्यूतं वासो देयम्। गतिर्गताविति निघातो भवति। चनोहितः। गतिरनन्तर इतिस्वरः। गतिप्रदेशाः कुगतिप्रादय इत्येवमादयः॥

ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ ६१ ॥

ऊर्यादयः शब्दाः च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति। च्विडाचोः कृभ्वस्तियोगे विधानं तत्साहचर्यादूर्यादीनामपि तैरेव योगे गतिसंज्ञा विधीयते। ऊरीउररीशब्दावङ्गीकरणे विस्तारे च। ऊरीकृत्य। ऊरीकृतम्। यदूरीकरोति। उररीकृत्य। उररीकृतम्। यदुररीकरोति। पापी। ताली। आताली। वेताली। धूसी। शकला। संशकला। ध्वंसकला। भ्रंशकला। एते शकलादयो हिंसायाम्। शकलाकृत्य। संशकलाकृत्य। ध्वंसकलाकृत्य। भ्रंशकलाकृत्य। गुलुगुधा पीडार्थे। गुलुगुधाकृत्य। सजूः सहार्थे। सजूःकृत्य। फलू, फली, विक्ली, आक्ली, इति विकारे। फलूकृत्य। फलीकृत्य। विक्लीकृत्य। आक्लीकृत्य। आलोष्टी, केवाली, केवाली, शेवाली, वर्षाली, मस्मसा, मसमसा, एते हिंसायाम्। वषट्। वौषट्। श्रौषट्। स्वाहा। स्वधा। बन्धा। प्रादुस्। श्रत्। आविस्। च्व्यन्ताः खल्वपि। शुक्लीकृत्य। शुक्लीकृतम्। यच्छुक्लीकरोति। डाच्। पटपटाकृत्य। पटपटाकृतम्। यत्पटपटाकरोति॥

अनुकरणं चानितिपरम् ॥ ६२ ॥

इतिः परो यस्मादिति बहुव्रीहिः। अनुकरणमनितिपरं क्रियायोगे गतिसंज्ञं भवति। खाट्कृत्य। खाट्कृतम्। यत् खाट्करोति। अनितिपरमिति किम्। खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत्॥

आदरानादरयोः सदसती ॥ ६३ ॥

प्रीत्यतिशय आदरः *। परिभवौदासीन्यमनादरः। आदरानादरयोर्यथाक्रमं सदसच्छब्दौ गतिसंज्ञौ भवतः। सत्कृत्य। सत्कृतम्। यत्सत्करोति। असत्कृत्य। असत्कृतम्। यदसत्करोति। आदरानादरयोरिति किम्। सत्कृत्वाकाण्डं गतः। असत्कृत्वा काण्डं गतः॥

भूषणेऽलम् ॥ ६४ ॥

---

* प्रीतिसंभ्रम इति पाठान्तरम्।

अलमिति प्रतिषेधे सामर्थ्ये पर्याप्तौ भूषणे चेति विशेषणमुपादीयते। भूषणे यो ऽलंशब्दः स गतिसंज्ञो भवति। अलंकृत्य। अलंकृतम्। यदलंकरोति। भूषणइति किम्। अलं भुक्त्वा ओदनं गतः॥

अन्तरपरिग्रहे ॥ ६५ ॥

अन्तःशब्दो ऽपरिग्रहेर्थे गतिसंज्ञो भवति। परिग्रहः स्वीकरणं तदभावे गतिसंज्ञा विधीयते। अन्तर्हत्य। अन्तर्हतम्। यदन्तर्हन्ति। अपरिग्रहइति किम्। अन्तर्हत्वा मूषिकां श्येनो गतः। परिगृह्य गत इत्यर्थः। अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गसंज्ञा वक्तव्या॥ * ॥ अन्तर्द्धा। अन्तर्द्धिः। अन्तर्णयति॥

कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ॥ ६६ ॥

कणेशब्दो मनस्शब्दश्च श्रद्धाप्रतीघाते गतिसंज्ञो भवतः। कणेहत्य पयः पिबति। मनोहत्य पयः पिबति। तावत्पिबति यावदस्याभिलाषो निवृत्तः। श्रद्धा प्रतिहतेत्यर्थः। श्रद्धाप्रतीघातइति किम्। कणे हत्वा गतः। मनो हत्वा गतः॥

पुरो ऽव्ययम् ॥ ६७ ॥

असिप्रत्ययान्तः पुरःशब्दो ऽव्ययं स गतिसंज्ञो भवति। समासस्वरोपचाराः प्रयोजनम्। पुरस्कृत्य। पुरस्कृतम्। यत्पुरस्करोति। अव्ययमिति किम्। पूः, पुरौ, पुरः कृत्वा काण्डं गतः॥

अस्तं च ॥ ६८ ॥

अस्तंशब्दो मकारान्तो ऽव्ययमनुपलब्धौ वर्त्तते स गतिसंज्ञो भवति। अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति। अस्तंगतानि धनानि। यदस्तंगच्छति। अव्ययमित्येव। अस्तं काण्डम्। क्षिप्तमित्यर्थः॥

अच्छ गत्यर्थवदेषु ॥ ६९ ॥

अच्छशब्दो ऽव्ययमभिशब्दस्यार्थे वर्त्तते। स गत्यर्थेषु धातुषु वदतौ च गतिसंज्ञो भवति। अच्छगत्य। अच्छगतम्। यदच्छगच्छति। वदतौ। अच्छोद्य। अच्छोदितम्। यदच्छवदति। अव्ययमित्येव। उदकमच्छं गच्छति॥

अदो ऽनुपदेशे ॥ ७० ॥

अदःशब्दस्त्यदादिषु पठ्यते सोनुपदेशे गतिसंज्ञो भवति। उपदेशः परार्थः प्रयोगः। स्वयमेव तु यदा बुद्ध्या परामृशति तदा नास्त्युपदेश इति सो ऽस्य विषयः। अदःकृत्य। अदःकृतम्। यददःकरोति। अनुपदेशइति किम्। अदः कृत्वा काण्डं गत इति परस्य कथयति॥

तिरो ऽन्तर्द्धौ ॥ ७१ ॥

अन्तर्द्धिर्व्यवधानम्। तत्र तिरःशब्दो गतिसंज्ञो भवति। तिरोभूय।

तिरोभूतम्। यत् तिरोभवति। अन्तर्द्धाविति किम्। तिरो भूत्वा स्थितः। पार्श्वतो भूत्वेत्यर्थः॥

विभाषा कृञि ॥ ७२ ॥

अन्तर्द्धाविति वर्त्तते। प्राप्तविभाषेयम्। तिरःशब्दः करोतौ परतो विभाषा गतिसंज्ञो भवति। तिरःकृत्य। तिरस्कृत्य। तिरस्कृतम्। यत्तिरस्करोति। तिरस्कृत्वा। तिरःकृत्वा। अन्तर्द्धावित्येव। तिरः कृत्वा काष्ठं तिष्ठति॥

उपाजेऽन्वाजे ॥ ७३ ॥

विभाषा कृञीति वर्त्तते। उपाजेऽन्वाजेशब्दौ विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ दुर्बलस्य सामर्थ्याधाने वर्त्तेते तौ कृञि विभाषा गतिसंज्ञौ भवतः। उपाजेकृत्य। उपाजे कृत्वा। अन्वाजेकृत्य। अन्वाजे कृत्वा॥

साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ ७४ ॥

विभाषा कृञीति वर्त्तते। साक्षात्प्रभृतीनि शब्दरूपाणि कृञि विभाषा गतिसंज्ञानि भवन्ति। साक्षात्प्रभृतिषु च्व्यर्थवचनम्॥ * ॥ साक्षात्कृत्य। साक्षात्कृत्वा। मिथ्याकृत्य। मिथ्या कृत्वा। साक्षात्। मिथ्या। चिन्ता। भद्रा। लोचना। विभाषा। संपत्का। आस्था। अमा। श्रद्धा। प्राजर्या। प्राजरुहा। वीजर्या। वीजरुहा। संसर्या। अर्थे। लवणम्। उष्णम्। शीतम्। उदकम्। आर्द्रम्। गतिसंज्ञासंनियोगेन लवणादीनां मकारान्तत्वं निपात्यते। अग्नौ। वशे। विकम्पने। विहसने। प्रहसने। प्रतपने। प्रादुस्। नमस्। आविस्॥

अनत्याधानउरसिमनसी ॥ ७५ ॥

विभाषाकृञीति वर्त्तते। अत्याधानमुपश्लेषणं तदभावेऽनत्याधाने उरसिमनसी शब्दौ विभाषा कृञि गतिसंज्ञौ भवतः। उरसिकृत्य। उरसि कृत्वा। मनसिकृत्य। मनसि कृत्वा। अनत्याधानइति किम्। उरसि कृत्वा पाणिं शेते॥

मध्येपदेनिवचने च ॥ ७६ ॥

विभाषा कृञीति वर्त्तते। चकारादनत्याधानइति च। मध्ये पदे निवचने इत्येते शब्दा अनत्याधाने विभाषा कृञि गतिसंज्ञा भवन्ति। मध्येकृत्य। मध्ये कृत्वा। पदेकृत्य। पदे कृत्वा। निवचनं वचनाभावः। निवचनेकृत्य। निवचने कृत्वा। वाचं नियम्येत्यर्थः। अनत्याधानइत्येव। हस्तिनः पदे कृत्वा शिरः शेते॥

नित्यं हस्तेपाणावुपयमने ॥ ७७ ॥

कृञीति वर्त्तते हस्ते पाणौ इत्येतौ शब्दौ कृञि नित्यं गतिसंज्ञौ भवत उपयमने। उपयमनं दारकर्म। पाणौकृत्य। हस्तेकृत्य। दार कर्म कृत्वेत्यर्थः। उपयमनइति किम्। हस्ते कृत्वा कार्षापणं गतः॥

प्राध्वं बन्धने ॥ ७८ ॥

कृञीति वर्तते । प्राध्वमिति मकारान्तमव्ययमानुकूल्ये वर्तते, तदानुकूल्यं बन्धनहेतुकं यदा भवति तदा प्राध्वंशब्दः कृञि नित्यं गतिसंज्ञो भवति । प्राध्वंकृत्य । बन्धनइति किम् । प्राध्वं कृत्वा शकटं गतः ॥

जीविकोपनिषदावौपम्ये ॥ ७९ ॥

कृञीति वर्त्तते । जीविका उपनिषदित्येतौ शब्दौ औपम्ये विषये कृञि गतिसंज्ञौ भवतः । जीविकाकृत्य । उपनिषत्कृत्य । औपम्यइति किम् । जीविकां कृत्वा गतः ॥

ते प्राग्धातोः ॥ ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञकाः धातोः प्राक् प्रयोक्तव्याः । तथा चैवोदाहृताः । तेग्रहणमुपसर्गार्थम् । गतयो ह्यनन्तराः ॥

छन्दसि परे ऽपि ॥ ८१ ॥

प्राक् प्रयोगे प्राप्ते छन्दसि परेप्यभ्यनुज्ञायन्ते । छन्दसि विषये गत्युपसर्गसंज्ञकाः परेपि पूर्वेपि प्रयोक्तव्याः । न च परेषां प्रयुज्यमानानां संज्ञाकार्यं किं चिदस्ति । केवलं परप्रयोगेपि क्रियायोग एषामस्तीति ज्ञाप्यते । याति नि हस्तिना । हन्ति नि मुष्टिना । निहन्ति मुष्टिना ॥

व्यवहिताश्च ॥ ८२ ॥

व्यवहिताश्च गत्युपसर्गसंज्ञकाः छन्दसि दृश्यन्ते । आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । आयाहि ॥

कर्मप्रवचनीयाः ॥ ८३ ॥

कर्मप्रवचनीया इत्यधिकारो वेदितव्यः । यानित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामः कर्मप्रवचनीयसंज्ञास्ते वेदितव्याः । अधिकरीश्वरइति यावद्वक्ष्यति । कर्मप्रवचनीयप्रदेशाः कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीयेत्येवमादयः ॥

अनुर्लक्षणे ॥ ८४ ॥

अनुशब्दो लक्षणे द्योत्ये कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् । अनडुद्यज्ञमन्वसिञ्चत् । अगस्त्यमन्वसिञ्चन्प्रजाः । किमर्थमिदमुच्यते । यावता लक्षणेत्थंभूताख्यानेति सिद्धैवानोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । हेत्वर्थं तु वचनं हेतुतृतीयां बाधित्वा द्वितीयैव यथा स्यात् ॥

तृतीयार्थे ॥ ८५ ॥

अनुशब्दस्तृतीयार्थे द्योत्ये कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । नदीमन्ववसिता सेना । पर्वतमन्ववसिता सेना । पर्वतेन संबद्धेत्यर्थः ॥

हीने ॥ ८६ ॥

हीन इति न्यून उच्यते स चोत्कृष्टापेक्षः । तेनेयं हीनोत्कृष्टसंबन्धे संज्ञा विज्ञायते । हीने द्योत्ये ऽयमनुः कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । अनुशाकटायनं वैयाकरणाः । अन्वर्जुनं योद्धारः ॥

उपोऽधिके च ॥ ८७ ॥

उपशब्दः अधिके हीने च द्योत्ये कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । उप खार्यां द्रोणः । उप निष्के कार्षापणम् । हीने । उप शाकटायनं वैयाकरणाः ॥

अपपरी वर्जने ॥ ८८ ॥

अपपरी शब्दौ वर्जने द्योत्ये कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ भवतः । प्रकृतेन संबन्धिना कस्य चिदनभिसंबन्धो वर्जनम् । अप त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः । परि । परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः । वर्जनइति किम् । ओदनं परिषिञ्चति ॥

आङ्मर्यादावचने ॥ ८९ ॥

आङित्येष शब्दः मर्यादावचने कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । अवधिर्मर्यादा । वचनग्रहणादभिविधिरपि गृह्यते । आ पाटलिपुत्राद्वृष्टो देवः । आकुमारं यशः पाणिनेः । आ सांकाश्यात् । आ मथुरायाः । मर्यादावचनइति किम् । ईषदर्थे क्रियायोगे च मा भूत् ॥

लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥ ९० ॥

लक्षणे इत्थंभूताख्याने भागे वीप्सायां च विषयभूतायां प्रति परि अनु इत्येते कर्मप्रवचनीयसंज्ञा भवन्ति । लक्षणे तावत् । वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । वृक्षं परि । वृक्षमनु । इत्थंभूताख्याने । साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति । मातरं परि । मातरमनु । भागे । यदत्र मां प्रति स्यात् । मां परि स्यात् । मामनु स्यात् । वीप्सायाम् । वृक्षंवृक्षं प्रति सिञ्चति । परि सिञ्चति । अनु सिञ्चति । लक्षणादिष्विति किम् । ओदनं परिषिञ्चति । अथ परिशब्दयोगे पञ्चमी कस्मान्न भवति पञ्चम्यपाङ्परिभिरिति । वर्जनविषये सा विधीयते, अपशब्दसाहचर्यात् ॥

अभिरभागे ॥ ९१ ॥

लक्षणादिष्वेव भागवर्ज्जितेष्वभिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । वृक्षमभि विद्योतते । साधुर्देवदत्तो मातरमभि । वृक्षंवृक्षमभि सिञ्चति । अभागइति किम् । भागः स्वीक्रियमाणोंशः । यदत्र ममाभिष्यात् तद्दीयताम् । यदत्र मम भवति तद्दीयतामित्यर्थः ॥

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ ९२ ॥

मुख्यसदृशः प्रतिनिधिः । दत्तस्य निर्यातनं प्रतिदानम् । प्रतिनिधिवि-

षये प्रतिदानविषये च प्रतिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । अभिमन्युरर्जुनतः प्रति । माषानस्मै तिलेभ्यः प्रति यच्छति ॥

अधिपरी अनर्थकौ ॥ ९३ ॥

अधिपरी शब्दौ अनर्थकौ अनर्थान्तरवाचिनौ कर्म्मप्रवचनीयसंज्ञौ भवतः । कुतोऽध्यागच्छति । कुतः पर्यागच्छति । गत्युपसर्गसंज्ञाबाधनार्था कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विधीयते ॥

सुः पूजायाम् ॥ ९४ ॥

सुशब्दः पूजायामर्थे कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । सु सिक्तं भवता । सु स्तुतं भवता । धात्वर्थः स्तूयते । उपसर्गसंज्ञाऽभावं षत्वं न भवति । पूजायामिति किम् । सुषिक्तं किं तवात्र ॥

अतिरतिक्रमणे च ॥ ९५ ॥

अतिशब्दः अतिक्रमणे चकारात्पूजायां च कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । निष्पन्नेऽपि वस्तुनि क्रियाप्रवृत्तिरतिक्रमणम् । अति सिक्तमेव भवता । अति स्तुतमेव भवता । पूजायाम् । अति सिक्तं भवता । अति स्तुतं भवता । शोभनं कृतमित्यर्थः ॥

अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥ ९६ ॥

पदार्थे संभावने ऽन्ववसर्गे गर्हायां समुच्चये च वर्तमानः अपिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । पदान्तरस्याप्रयुज्यमानस्यार्थः पदार्थः । सर्पिषोऽपि स्यात् । मधुनोऽपि स्यात् । मात्रा बिन्दुः स्तोकमित्यस्यार्थे ऽपिशब्दो वर्त्तते । संभावनमधिकार्थवचनेन शक्तेरप्रतिघाताविष्करणम् । अपि सिञ्चेन्मूलकसहस्रम् । अपि स्तुयाद्राजानम् । अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा । अपि सिञ्च । अपि स्तुहि । गर्हा निन्दा । धिग्जाल्मं देवदत्तमपि सिञ्चेत्पलाण्डुम् । अपि स्तुयाद्वृषलम् । समुच्चये । अपि सिञ्च । अपि स्तुहि । सिञ्च च स्तुहि च । उपसर्गसंज्ञाबाधनात् षत्वं न भवति ॥ ८।३।८७ इति तु भवति

अधिरीश्वरे ॥ ९७ ॥

ईश्वरः स्वामी स च स्वमपेक्षते । तदयं स्वस्वामिसंबन्ध कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । तत्र कदा चित्स्वामिनः कर्मप्रवचनीयविभक्तिः सप्तमी भवति कदा चित्स्वात् । अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः । अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः ॥

विभाषा कृञि ॥ ९८ ॥

अधिः करोतौ विभाषा कर्मप्रवचनीयसंज्ञो भवति । यदत्र मामधिकरिष्यति । कर्मप्रवचनीयसंज्ञापक्षे गतिसंज्ञाबाधनात् तिङि चोदात्तवतीति निघातो न भवति ॥

लः परस्मैपदम् ॥ ९९ ॥

ल इति षष्ठी आदेशापेक्षा । लादेशाः परस्मैपदसंज्ञा भवन्ति । तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप्, वस्, मस् । शतृक्वसू च । परस्मैपदप्रदेशाः सिचि वृद्धिः परस्मैपदेष्वित्येवमादयः ॥

तङानावात्मनेपदम् ॥ १०० ॥

तङिति प्रत्याहारो नवानां वचनानाम् । आन इति शानच्कानचोर्ग्रहणम् । पूर्वेण परस्मैपदसंज्ञायां प्राप्तायां तङानयोरात्मनेपदसंज्ञा विधीयते । त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् । आनः खल्वपि । शानच्कानचौ । ल इत्येव । कृतीह निघ्नानाः । आत्मनेपदप्रदेशा अनुदात्तङित आत्मनेपदमित्येवमादयः ॥

तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ १०१ ॥

तिङोऽष्टादश प्रत्ययाः नव परस्मैपदसंज्ञकाः नवात्मनेपदसंज्ञकाः तत्र परस्मैपदेषु त्रयस्त्रिकाः यथाक्रमं प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञा भवन्ति । आत्मनेपदेष्वपि त्रयस्त्रिकाः प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञा भवन्ति । तिप्, तस्, झि, इति प्रथमः । सिप्, थस्, थ, इति मध्यमः । मिप्, वस्, मस्, इत्युत्तमः । आत्मनेपदेषु त, आतां, झ, इति प्रथमः । थास्, आथाम्, ध्वम्, इति मध्यमः । इट्, वहि, महिङ्, इत्युत्तमः । प्रथममध्यमोत्तमप्रदेशाः शेषे प्रथम इत्येवमादयः ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ १०२ ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति * एकशः एकैकं पदम् । तिबित्येकवचनम् । तसिति द्विवचनम् । झि इति बहुवचनम् । एवं सर्वत्र । एकवचनद्विवचनबहुवचनप्रदेशाः बहुषु बहुवचनमित्येवमादयः ॥

सुपः ॥ १०३ ॥

तिङां त्रिकेष्वेकवचनादिसंज्ञा विहिताः संप्रति सुपां त्रिकेषु विधीयन्ते । सुपश्च त्रीणित्रीणि पदानि एकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति । सु इत्येकवचनम् । औ इति द्विवचनम् । जसिति बहुवचनम् । एवं सर्वत्र ॥

विभक्तिश्च ॥ १०४ ॥

त्रीणित्रीणीत्यनुवर्तते । त्रीणित्रीणि विभक्तिसंज्ञाश्च भवन्ति सुपस्तिङश्च । विभक्तिप्रदेशा अष्टन आ विभक्तावित्येवमादयः ॥

---

* तानि तिङस्त्रीणित्रीणि सुप्त्वेकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्तीत्यपि क्व चित्पाठः ।

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥ १०५ ॥

लस्येत्यधिकृत्य सामान्येन तिबादयो विहितास्तेषामयं पुरुषनियमः क्रियते। युष्मद्युपपदे सति व्यवहिते चाव्यवहिते सति समानाधिकरणे समानाभिधेये तुल्यकारके स्थानिनि प्रयुज्यमाने ऽप्यप्रयुज्यमानेऽपि मध्यमपुरुषो भवति। त्वं पचसि। युवां पचथः। यूयं पचथ। अप्रयुज्यमानेऽपि। पचसि। पचथः। पचथ॥

प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च ॥ १०६ ॥

प्रहासः परिहासः क्रीडा। प्रहासे गम्यमाने मन्योपपदे धातोर्मध्यमपुरुषो भवति, मन्यतेश्चोत्तमः स चैकवद्भवति। एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यस इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, यातस्तेन ते पिता। मध्यमोत्तमयोः प्राप्तयोः उत्तममध्यमौ विधीयेते। प्रहास इति किम्। एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्य इति। सुष्ठु मन्यसे, साधु मन्यसे॥

अस्मद्युत्तमः ॥ १०७ ॥

उत्तमपुरुषो नियम्यते। अस्मद्युपपदे समानाभिधेये प्रयुज्यमानेऽप्यप्रयुज्यमानेऽपि उत्तमपुरुषो भवति। अहं पचामि। आवां पचावः। वयं पचामः। अप्रयुज्यमानेऽपि। पचामि। पचावः। पचामः॥

शेषे प्रथमः ॥ १०८ ॥

शेष इति मध्यमोत्तमविषयादन्य उच्यते। यत्र युष्मदस्मदी समानाधिकरणे उपपदे न स्तः तत्र शेषे प्रथमपुरुषो भवति। पचति। पचतः। पचन्ति॥

परः संनिकर्षः संहिता ॥ १०९ ॥

परशब्दो ऽतिशये वर्त्तते। संनिकर्षः प्रत्यासत्तिः। परो यः संनिकर्षो वर्णानामर्धमात्राकालव्यवधानं स संहितासंज्ञो भवति। दध्यत्र। मध्वत्र। संहिताप्रदेशास्संहितायामित्येवमादयः॥

विरामो ऽवसानम् ॥ ११० ॥

विरतिर्विरामः। विरम्यतेऽनेनेति वा विरामः। सोऽवसानसंज्ञो भवति। दधि। मधु। वृक्षः। प्लक्षः। अवसानप्रदेशाः खरवसानयोर्विसर्जनीय इत्येवमादयः॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः॥
समाप्तश्चाध्यायः॥ शुभम्॥

॥ अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

समर्थः पदविधिः ॥ १ ॥

परिभाषेयम् । यः कश्चिदिह शास्त्रे पदविधिः श्रूयते स समर्थो वेदितव्यः । विधीयतइति विधिः । पदानां विधिः पदविधिः । स पुनः समासादिः । समर्थः शक्तः, विग्रहवाक्यार्थाभिधाने यः शक्तः स समर्थो वेदितव्यः । अथ वा समर्थपदाश्रयत्वात् समर्थः । समर्थानां पदानां सम्बद्धार्थानां संसृष्टार्थानां विधिर्वेदितव्यः । वक्ष्यति, "द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः" । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । समर्थग्रहणं किम् । पश्य देवदत्त कष्टं, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम् । "तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन" । शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः । समर्थग्रहणं किम् । करिष्यसि शङ्कुलया, खण्डो देवदत्त उपलेन ॥ "चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" । यूपाय दारु, यूपदारु । समर्थग्रहणं किम् । गच्छ त्वं यूपाय, दारु देवदत्तस्य गेहे । "पञ्चमी भयेन" । वृकेभ्यो भयं, वृक भयम् । समर्थग्रहणं किम् । गच्छ त्वं मां वृकेभ्यो, भयं देवदत्तस्य यज्ञदत्तात् । "षष्ठी" । राज्ञः पुरुषो, राजपुरुषः । समर्थग्रहणं किम् । भार्या राज्ञः, पुरुषो देवदत्तस्य । "सप्तमी शौण्डैः" । अक्षेषु शौण्डः, अक्षशौण्डः । समर्थग्रहणं किम् । शक्तस्त्वमक्षेषु, शौण्डः पिबति पानागारे । पदग्रहणं किम् । वर्णविधौ समर्थपरिभाषा मा भूत् । तिष्ठतु दध्य,शान त्वं शाकेन । तिष्ठतु कुमारी,च्छत्रं हर देवदत्तात् । यणादेशो नित्यश्च तुग्भवति ॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे ॥ २ ॥

सुबन्तमामन्त्रिते परतः परस्याङ्गवद्भवति, स्वरे, स्वरलक्षणे कर्तव्ये । तादात्म्यातिदेशोयम् । सुबन्तमामन्त्रितमनुप्रविशति । वक्ष्यति । "आमन्त्रितस्य च" । आमन्त्रितस्यादिरुदात्तो भवति । स ससुप्कस्यापि यथा स्यात् । कुण्डेनाटन् । परशुना वृश्चन् । मद्राणां राजन् । कश्मीराणां राजन् । सुबिति किम् । पीड्ये पीड्यमान । आमन्त्रितइति किम् । गेहे गार्ग्यः । परग्रहणं किम् । पूर्वस्य मा भूत् । देवदत्त कुण्डेनाटन् । अङ्गग्रहणं किम् । यथा मृत्पिण्डीभूतः स्वरं लभेत । उभयोराद्युदात्तत्वं मा भूत् । वत्करणं किम् । स्वाश्रयमपि यथा स्यात् । आं कुण्डेनाटन् । "आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके"-इत्येकान्तरता भवति । स्वरइति किम् । कूपे सिञ्चन् । चर्मे नमन् । प्रत्ययस्वे प्रति पराङ्गवच्च भवति । सुबन्तस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यान-

मनन्तरत्वात् ॥ * ॥ * तीक्ष्णया सूच्या सीव्यन् । तीक्ष्णेन परशुना वृश्चन् । अव्ययानां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ उच्चैरधीयान । नीचैरधीयान ॥

प्राक्कडारात्समासः ॥ ३ ॥

कडारसंशब्दानात्प्राग्† यानित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामस्ते समाससंज्ञा वेदितव्याः । वक्ष्यति । यथा ऽसादृश्ये । यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । प्राग्वचनं संज्ञासमावेशार्थम् । समासप्रदेशा "स्तृतीयासमास" इत्येवमादयः ॥

सह सुपा ॥ ४ ॥

सुबिति वर्तते, सहेति सुपेति च त्रयमप्यधिकृतं वेदितव्यम् । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्रेदमुपस्थितं द्रष्टव्यम् । वक्ष्यति द्वितीयाश्रितेति द्वितीयान्तं श्रितादिभिः सह समस्यते । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । सहग्रहणं योगविभागार्थं, तिङापि सह यथा स्यात् । अनुव्यचलत । अनुप्रावर्षत् ॥

अव्ययीभावः ॥ ५ ॥

अव्ययीभाव इत्यधिकारो वेदितव्यः । यानित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामो ऽव्ययीभावसंज्ञास्ते वेदितव्याः । वक्ष्यति, "यथा ऽसादृश्ये" । यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । अन्वर्थसंज्ञा चेयं महती पूर्वपदार्थप्राधान्यमव्ययीभावस्य दर्शयति । अव्ययीभावप्रदेशा "अव्ययीभावश्चे" त्येवमादयः ॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ॥ ६ ॥

सुप् सुपेति च वर्त्तते । विभक्त्यादिष्वर्थेषु यदव्ययं वर्त्तते तत्समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते अव्ययीभावश्च समासो भवति । वचनग्रहणं प्रत्येकं संबध्यते । विभक्तिवचने तावत् । स्त्रीष्वधिकृत्य कथा प्रवर्त्तते । अधिस्त्रि । अधिकुमारि । सप्तम्यर्थे यदव्ययं तद् विभक्तिवचनम् । समीपवचने । कुम्भस्य समीपम् । उपकुम्भम् । उपमणिकम् । समृद्धिर्ऋद्धेराधिक्यम् । समृद्धिर्मद्राणाम् । सुमद्रं, सुमगधं, वर्त्तते । व्यृद्धिर्ऋद्धेरभावः । गवदिकानामृद्धेरभावः । दुर्गवदिकं, दुर्यवनं वर्त्तते । अर्थाभावो वस्तुनो ऽभावः । अभावो मक्षिकाणाम् । निर्मक्षिकं, निर्मशकं, वर्त्तते । अत्ययो भूतत्वमतिक्रमः । अतीतानि

---

* सुबन्तस्य पराङ्गवद्भावे कर्तव्ये तत्समानाधिकरणस्योपसंख्यानम् ॥ अनन्तरत्वाच्च न प्राप्नोति । इति पाठान्तरम् ॥ परमुपरिस्थ एव पाठो न्यासारूढः ।

† अधिकारो ऽयम् । "कडाराः कर्मधारये" इति वक्ष्यति प्रागेतस्माद्-इति पाठान्तरम् ।

हिमानि । निर्हिमं, निःशीतं, वर्तते । असंप्रति, उपभोगस्य वर्त्तमानकालप्रतिषेधः । अतितैसृकम्* । तैसृकमाच्छादनं, तस्यायमुपभोगकालो न भवतीत्यर्थः । शब्दप्रादुर्भावः प्रकाशता शब्दस्य । इतिपाणिनि । तत्पाणिनि । पाणिनिशब्दो लोके प्रकाशत इत्यर्थः । पश्चात् । अनुरथं पादातम् । रथानां पश्चात् । यथार्थे यदव्ययं वर्त्तते तत्समस्यते । योग्यता वीप्सा पदार्थानतिवृत्तिः सादृश्यं चेति यथार्थाः । योग्यतायाम् । अनुरूपम् । रूपयोग्यं भवतीत्यर्थः । वीप्सायाम् । अर्थमर्थं प्रति । प्रत्यर्थम् । पदार्थानतिवृत्तौ । यथाशक्ति । आनुपूर्व्यमनुक्रमः । अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः । ज्येष्ठानुपूर्व्या भवन्तः प्रविशन्त्वित्यर्थः । यौगपद्यमेककालता । सचक्रं धेहि । युगपच्चक्रं धेहीत्यर्थः । सादृश्यं तुल्यता । किमर्थमिदमुच्यते, यथार्थ इत्येव सिद्धम् । गुणभूतेपि सादृश्ये यथा स्यात् । सदृशः सख्या ससखि । संपत्तिरनुरूप आत्मभावः समृद्धेरन्यः । सब्रह्म बाभ्रवाणाम् । सक्षत्रं शालङ्कायनानाम् । साकल्यमशेषता । सतृणमभ्यवहरति । सबुसम् । न किं चिदभ्यवहार्यं परित्यजतीत्ययमर्थोऽधिकार्थवचनेन प्रतिपाद्यते । अन्तवचने । अन्त इति परिग्रहापेक्षया समाप्तिरुच्यते । साग्न्यधीते । सेष्टिपशुबन्धम् । पशुबन्धान्तमधीत इत्यर्थः । इयं समाप्तिरसकलेप्यध्ययने भवतीति साकल्यात्पृथगुच्यते ॥

यथाऽसादृश्ये ॥ ७ ॥

यथेत्येतदव्ययमसादृश्ये वर्त्तमानं सुपा सह समस्यते, ऽव्ययीभावश्च समासो भवति । यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । येये वृद्धाः । यथाध्यापकम् । यथाध्यापकम् । असादृश्य इति किम् । यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः । यथार्थे यदव्ययमिति पूर्वेणैव सिद्धे समासे वचनमिदं सादृश्यप्रतिषेधार्थम् ॥

यावदवधारणे ॥ ८ ॥

यावदित्येतदव्ययमवधारणे वर्त्तमानं सुपा सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अवधारणमियत्तापरिच्छेदः । यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । यावन्त्यमत्राणि संभवन्ति पञ्च षड्वा तावत आमन्त्रयस्व । अवधारण इति किम् । यावद्दत्तं तावद्भुक्तम् । नावधारयामि कियन्मया भुक्तमिति† ॥

सुप्प्रतिना मात्रार्थे ॥ ९ ॥

मात्रा बिन्दुः स्तोकमल्पमिति पर्यायाः । मात्रार्थे वर्त्तमानेन प्रतिना सह सुबन्तं समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अस्त्यत्र किं चित् शाकम् ।

---

* तैष्टकम् । इति पाठान्तरम् ।

† कियद्दत्तं त्वया कियद्भुक्तं मयेति पा· ।

शाकप्रति । सूपप्रति । मात्रार्थे इति किम् । वृत्तं प्रति विद्योतते विद्युत् । सुर्बति । वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमव्ययनिवृत्त्यर्थम् ॥

अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥ १० ॥

अक्षशब्दः शलाकाशब्दः संख्याशब्दश्च परिणा सह समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । कितवव्यवहारे समासोयमिष्यते । पञ्चिका नाम द्यूतं पञ्चभिरक्षैः शलाकाभिर्वा भवति, तत्र यदा सर्वे उत्तानाः पतन्त्यवाञ्चो वा तदा पातयिता जयति, तस्यैवास्य विघातोऽन्यथा पाते सति जायते । अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथा पूर्वं जये, अक्षपरि । शलाकापरि । एकपरि । द्विपरि । त्रिपरि । परमेण चतुष्परि । पञ्चसु त्वेकरूपासु जय एव भविष्यति ।

अक्षादयस्तृतीयान्ताः पूर्वोक्तस्य यथा न तत् ।

कितवव्यवहारे च एकत्वेऽक्षशलाकयोः ॥

विभाषा ॥ ११ ॥

विभाषेत्ययमधिकारो वेदितव्यः । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तद्विभाषा भवति । वक्ष्यति "अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या" । अपत्रिगर्तं वृष्टो देवः । अप त्रिगर्तेभ्यः ॥

अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥ १२ ॥

अप परि बहिस् अञ्चु इत्येते सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन सह विभाषा समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः । अप त्रिगर्त्तेभ्यः । परित्रिगर्त्तम् । परि त्रिगर्त्तेभ्यः । बहिर्ग्रामम् । बहिर्ग्रामात् । प्राग्ग्रामम् । प्राग्ग्रामात् । बहिःशब्दयोगे पञ्चमीभावस्यैतदेव ज्ञापकम् ॥

आङ्मर्यादाभिविध्योः ॥ १३ ॥

आङित्येतन्मर्यादायामभिविधौ च वर्त्तमानं पञ्चम्यन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः । आ पाटलिपुत्रात् । अभिविधौ । आकुमारं यशः पाणिनेः । आ कुमारेभ्यः ॥

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥ १४ ॥

लक्षणं चिह्नं तद्वाचिना सुबन्तेन सहाभिप्रती शब्दावाभिमुख्ये वर्त्तमानौ विभाषा समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति । अग्निमभि । प्रत्यग्नि । अग्निं प्रति । अग्निं लक्ष्यीकृत्य अभिमुखं पतन्तीत्यर्थः । लक्षणेनेति किम् । स्रुघ्नं प्रति गतः । प्रतिनिवृत्य स्रुघ्नमेवाभिमुखं गतः । अभिप्रती इति किम् । येनाग्निस्तेन गतः । आभिमुख्यइति किम् । अभ्यङ्का गावः । प्रत्यङ्का गावः । नवाङ्का इत्यर्थः ॥

अनुर्यत्समया ॥ १५ ॥

समया समीपम् । अनुर्यस्य समीपवाची तेन लक्षणभूतेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अनुवनमशनिर्गतः । अनुरिति किम् । वनं समया । यत्समयेति किम् । वृक्षमनु विद्योतते विद्युत् । अव्ययं विभक्तिसमीपेत्येव सिद्धे पुनर्वचनं विभाषार्थम् ॥

॥ यस्य चायामः ॥ १६ ॥

लक्षणेनेति वर्त्तते । आयामो दैर्घ्यम् । अनुर्यस्यायामवाची तेन लक्षणभूतेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । अनुगङ्गं वाराणसी । अनुयमुनं मथुरा । यमुनाऽऽयामेन मथुराऽऽयामो लक्ष्यते । आयाम इति किम् । वृक्षमनु विद्योतते विद्युत् ॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ १७ ॥

तिष्ठद्ग्वादयः समुदाया एव निपात्यन्ते । तिष्ठद्गुप्रभृतीनि शब्दरूपाणि अव्ययीभावसंज्ञानि भवन्ति । तिष्ठद्गु कालविशेषः । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन्काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालः । खलेयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण नैव संबध्यन्ते ऽन्यपदार्थे च काले वर्त्तन्ते । चकारो ऽवधारणार्थः । अपरः समासो न भवति परमतिष्ठद्ग्विति । तिष्ठद्गु । वहद्गु । आयतीगवम् । खलेबुसम् । खलेयवम् । लूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् । पूयमानयवम् । संहृतयवम् । संह्रियमाणयवम् । संहृतबुसम् । संह्रियमाणबुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्षमम् । दुष्षमम् । अपरसमम् । आयतीसमम् । प्राह्णम् । प्ररथम् । प्रमृगम् । प्रदक्षिणम् । अपरदक्षिणम् । संप्रति । असंप्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् ॥ इच् कर्मव्यतिहारे ॥ दण्डादण्डि । मुसलामुसलि ॥

पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥ १८ ॥

षष्ठीसमासे प्राप्ते तदपवादो ऽव्ययीभाव आरभ्यते । वावचनाच्च षष्ठीसमासोपि पक्षे ऽभ्यनुज्ञायते । पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह विभाषा समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । तत्सन्नियोगेन चानयोरेकारान्तत्वं निपात्यते । पारं गङ्गायाः, पारेगङ्गम् । मध्यं गङ्गायाः, मध्येगङ्गम् । षष्ठीसमासपक्षे । गङ्गापारम् । गङ्गामध्यम् । महाविभाषया वाक्यविकल्पः क्रियते ॥

संख्या वंश्येन ॥ १९ ॥

विद्यया जन्मना वा प्राणिनामेकलक्षणसंतानो वंश इत्यभिधीयते । तत्र भवो वंश्यः । तद्वाचिना सुबन्तेन सह संख्या समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ द्विमुनि व्याकरणस्य । त्रिमुनि व्याकर-

यस्य । यदा तु विद्यया तद्वतामभेदविवक्षा तदा सामानाधिकरण्यं भवति । द्विमुनि व्याकरणं, त्रिमुनि व्याकरणमिति । जन्मना । एकविंशति भारद्वाजम् ॥

नदीभिश्च ॥ २० ॥

संख्येत्यनुवर्त्तते । नदीवचनैः शब्दैः सह संख्या समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति समाहारे चायमिष्यते । सप्तगङ्गम् । द्वियमुनम् । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् ॥

अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ॥ २१ ॥

संख्येति निवृत्तं, नदीग्रहणमनुवर्त्तते । नदीभिः सह सुबन्तमन्यपदार्थे वर्त्तमानं संज्ञायां विषये समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति । विभाषाधिकारेऽपि नित्यसमास एवायम् । नहि वाक्येन संज्ञा गम्यते । उन्मत्तगङ्गं नाम देशः । लोहितगङ्गम् । कृष्णगङ्गम् । शनैर्गङ्गम् । अन्यपदार्थ इति किम् । कृष्णवेण्णा संज्ञायामिति किम् । शीघ्रगङ्गो देशः ॥

तत्पुरुषः ॥ २२ ॥

तत्पुरुष इति संज्ञा ऽधिक्रियते प्राग्बहुव्रीहे, यानितऊर्द्ध्वम नुक्रमिष्यामस्तत्पुरुषसंज्ञास्ते वेदितव्याः । वक्ष्यति द्वितीयाश्रितातीतपतितेति । कष्टश्रितः । पूर्वाचार्यसंज्ञा चेयं महती तदङ्गीकरणमुपाधेरपि तदीयस्य परिग्रहार्थम् । उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष इति । तत्पुरुषप्रदेशाः तत्पुरुषे कृति बहुलमित्येवमादयः ॥

द्विगुश्च ॥ २३ ॥

द्विगुश्च समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति । द्विगोस्तत्पुरुषत्वे समासान्ताः प्रयोजनम् । पञ्चराजी । दशराजी । द्व्यहः । पञ्चगवम् । दशगवम् ॥

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥ २४ ॥

सुप् सुपेति वर्त्तते, तस्य विशेषणमेतद् द्वितीया । द्वितीयान्तं सुबन्तं श्रितादिभिः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । नरकश्रितः । अतीत । कान्तारमतीतः, कान्तारातीतः । पतित । नरकं पतितः, नरकपतितः । गत । ग्रामं गतः, ग्रामगतः । अत्यस्त । तरङ्गानत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः । तुहिनात्यस्तः । प्राप्त । सुखं प्राप्तः सुखप्राप्तः । आपन्न । सुखमापन्नः, सुखापन्नः । दुःखापन्नः ॥ श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ ग्रामं गमी, ग्रामगमी । ग्रामं गामी, ग्रामगामी । ओदनं बुभुक्षुः, ओदनबुभुक्षुः ॥

स्वयं क्तेन ॥ २५ ॥

स्वयमेतदव्ययमात्मनेत्यस्यार्थे वर्त्तते तस्य द्वितीयया संबन्धोनुपपन्न इति

द्वितीयाग्रहणमुत्तरार्थमनुवर्त्तते । स्वयमित्येतत्सुबन्तं क्तान्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । स्वयंधौतौ पादौ । स्वयंविलीनमाज्यम् । ऐकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद्भवति ॥

खट्वा क्षेपे ॥ २६ ॥

खट्वाशब्दो द्वितीयान्तः क्तान्तेन सह क्षेपे गम्यमाने समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । क्षेपो निन्दा स च समासार्थ एव, तेन विभाषाधिकारेऽपि नित्यसमास एवायं, नहि वाक्येन क्षेपो गम्यते । खट्वारोहणं चेह विमार्गप्रस्थानस्योपलक्षणम् । सर्व एवाविनीतः खट्वारूढ इत्युच्यते । खट्वारूढो जाल्मः । खट्वाप्लुतः । अपथप्रस्थित इत्यर्थः । क्षेपइति किम् । खट्वामारूढः ॥

सामि ॥ २७ ॥

सामीत्येतदव्ययमर्द्धशब्दपर्यायस्तस्यासत्त्ववाचित्वाद् द्वितीयया नास्ति संबन्धः तत् सुबन्तं क्तान्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । सामिकृतम् । सामिपीतम् । सामिभुक्तम् । ऐकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद्भवति ॥

कालाः ॥ २८ ॥

द्वितीया क्तेनेति वर्त्तते । कालवाचिनः शब्दा द्वितीयान्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ते विभाषा, तत्पुरुषश्च समासो भवति । अनत्यन्तसंयोगार्थं वचनम् । काला इति न स्वरूपविधिः । षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः । ते कदा चिदहर्गच्छन्ति कदा चिद्रात्रिम् । अहरतिसृता मुहूर्त्ताः । अहस्संक्रान्ताः । रात्र्यतिसृता मुहूर्त्ताः । रात्रिसंक्रान्ताः । मासप्रमितश्चन्द्रमाः । मासं प्रमातुमारब्धः प्रतिपच्चन्द्रमा इत्यर्थः ॥

अत्यन्तसंयोगे च ॥ २९ ॥

काला इति वर्त्तते, क्तेनेति निवृत्तम् । अत्यन्तसंयोगः कृत्स्नसंयोगः कालस्य स्वेन संबन्धिना व्याप्तिः । कालवाचिनः शब्दा द्वितीयान्ता अत्यन्तसंयोगे गम्यमाने सुपा सह समस्यन्ते विभाषा, तत्पुरुषश्च समासो भवति । मुहूर्त्तं सुखम्, मुहूर्त्तसुखम् । सर्वरात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना ॥

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥ ३० ॥

सुप् सुपेति वर्त्तते, तस्य विशेषणमेतत् । तृतीयान्तं सुबन्तं गुणवचनेनार्थशब्देन च सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कीदृशेन गुणवचनेन तत्कृतेन, तदर्थकृतेन, तृतीयान्तार्थकृतेनेति यावत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः । किरिणा काणः, किरिकाणः । अर्थशब्देन । धान्येनार्थः, धान्यार्थः । तत्कृतेनेति किम् । अक्ष्णा काणः । गुणवचनेनेति किम् । गोभिर्वपावान् ॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥ ३१ ॥

पूर्व सदृश सम ऊनार्थ कलह निपुण मिश्र श्लक्ष्ण एतैः सह तृतीयान्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । अस्मादेव वचनात् पूर्वादिभिर्योगे तृतीया भवति, हेतौ वा द्रष्टव्या । मासेन पूर्वः, मासपूर्वः । संवत्सरपूर्वः । सदृश । मातृसदृशः । पितृसदृशः । सम । मातृसमः । पितृसमः । ऊनार्थ । माषोनम् । कार्षापणोनम् । माषविकलम् । कार्षापणविकलम् । कलह । असिकलहः । वाक्कलहः । निपुण । वाग्निपुणः । आचारनिपुणः । मिश्र । गुडमिश्रः । तिलमिश्रः । श्लक्ष्ण । आचारश्लक्ष्णः ॥ पूर्वादिष्ववरस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥ मासेनावरः, मासावरः । संवत्सरावरः ॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥ ३२ ॥

तृतीयेति वर्त्तते । कर्त्तरि करणे च या तृतीया तदन्तं कृदन्तेन सह समस्यते बहुलं, तत्पुरुषश्च समासो भवति । सर्वोपाधिव्यभिचारार्थं बहुलग्रहणम् । कर्तरि । अहिना हतः, अहिहतः । करणे । नखैर्निर्भिन्नो, नखनिर्भिन्नः । परशुना छिन्नः, परशुच्छिन्नः । कर्तृकरणे इति किम् । भिक्षाभिरुषितः । बहुलग्रहणं किम् । दात्रेण लूनवान्, परशुना छिन्नवान्, इह समासो न भवति । पादहारको, गलेचोपक, इति च भवति ॥

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ ३३ ॥

स्तुतिनिन्दाप्रयुक्तमध्यारोपितार्थवचनमधिकार्थवचनम् । कर्तृकरणयोर्या तृतीया तदन्तं सुबन्तं कृत्यैः सह समस्यते ऽधिकार्थवचने गम्यमाने विभाषा, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कर्त्ता । काकपेया नदी । श्वलेह्यः कूपः । करणम् । बाष्पच्छेद्यानि तृणानि । कण्टकसंचेय ओदनः । पूर्वस्यैवायं प्रपञ्चः ॥ कृत्यग्रहणे यण्ण्यतोर्ग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । काकैः पातव्या इति ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् ॥ ३४ ॥

तृतीयेति वर्त्तते । व्यञ्जनवाचि तृतीयान्तमन्नवाचिना सुबन्तेन सह समस्यते विभाषा, तत्पुरुषश्च समासो भवति । संस्कार्यमन्नं, संस्कारकं व्यञ्जनम् । दध्ना उपसिक्त ओदनः, दध्योदनः । क्षीरोदनः । वृत्तौ क्रियाया अन्तर्भावादन्नव्यञ्जनयोः सामर्थ्यम् ॥

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ ३५ ॥

मिश्रीकरणवाचि तृतीयान्तं भक्ष्यवाचिना सुबन्तेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । खरविशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यं, तस्य संस्कारकं मिश्रीकरणम् ।

गुडेन मिश्रा धानाः, गुडधानाः । गुडपृथुकाः । वृत्तौ क्रियाया अन्तर्भावात्पूर्वोत्तरपदयोः सामर्थ्यम् ॥

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ॥ ३६ ॥

सुप् सुपेति वर्त्तते, तस्य विशेषणमेतत् । तदिति सर्वनाम्ना चतुर्थ्यन्तस्यार्थः परामृश्यते। तस्मै इदं तदर्थम्। तदर्थ अर्थ बलि हित सुख रक्षित इत्येतैः सह चतुर्थ्यन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। तदर्थेन प्रकृतिविकारभावे समासोयमिष्यते । यूपाय दारु, यूपदारु । कुण्डलाय हिरण्यम्, कुण्डलहिरण्यम् । इह न भवति । रन्धनाय स्थाली, अवहननायोलूखलमिति । चतुर्थी चास्मादेव ज्ञापकात्तादर्थ्ये भवति ॥ अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या ॥ * ॥ ब्राह्मणार्थं पयः। ब्राह्मणार्था यवागूः। बलि । कुबेराय बलिः। कुबेरबलिः । महाराजबलिः । हित । गोहितम् । अश्वहितम् । सुख । गोसुखम् । अश्वसुखम् । रक्षित । गोरक्षितम् । अश्वरक्षितम् ॥

पञ्चमी भयेन ॥ ३७ ॥

सुप् सुपेति वर्त्तते, तस्य विशेषणमेतत् । पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयशब्देन सुबन्तेन सह समस्यते विभाषा, तत्पुरुषश्च समासो भवति । वृकेभ्यो भयम्, वृकभयम् । चौरभयम् । दस्युभयम् ॥ भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वृकेभ्यो भीतः, वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः । पूर्वस्यैवायं बहुलग्रहणस्य प्रपञ्चः । तथा च ग्रामनिर्गतः, अधर्मजुगुप्सुरित्येवमादि सिद्धं भवति ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥ ३८ ॥

अपेत अपोढ मुक्त पतित अपत्रस्त इत्येतैः सह पञ्चम्यन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। अपेत। सुखापेतः। अपोढ। कल्पनापोढः। मुक्त। चक्रमुक्तः। पतित। स्वर्गपतितः। अपत्रस्त। तरङ्गापत्रस्तः। अल्पश इति समासस्याल्पविषयतामाचष्टे। अल्पा पञ्चमी समस्यते न सर्वा। प्रासादात्पतितः, भोजनादपत्रस्तः, इत्येवमादौ न भवति। कर्तृकरणे कृता बहुलमित्यस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥ ३९ ॥

स्तोक अन्तिक दूर इत्येवमर्थाः शब्दाः कृच्छ्रशब्दश्च पञ्चम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । स्तोक । स्तोकान्मुक्तः । अन्तिक । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रान्मुक्तः । कृच्छ्राल्लब्धः । पञ्चम्याः स्तोकादिभ्य इत्यलुक् ॥ शतसहस्रौ परेणेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ शतात्परे, परश्शताः । सहस्रात्परे, परस्सहस्राः । राजदन्तादित्वात्परनिपातः । निपातनात्सुडागमः ॥

सप्तमी शौण्डैः ॥ ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । अक्षेषु शौण्डो, ऽक्षशौण्डः । अक्षधूर्तः । अक्षकितवः । शौण्ड । धूर्त्त । कितव । व्याड । प्रवीण । संवीत । अन्तर् । अन्तश्शब्दस्त्वत्राधिकरणप्रधान एव पठ्यते । अधिपटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण* । वृत्तौ प्रसक्तिक्रियाया अन्तर्भावादत्रादिषु अधिकरणे । सप्तमी ॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ ४१ ॥

सप्तमीति वर्तते । सिद्ध शुष्क पक्व बन्ध इत्येतैः सह सप्तम्यन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । सांकाश्य सिद्धः । काम्पिल्यसिद्धः । शुष्क । आतपशुष्कः । छायाशुष्कः । पक्व । स्थालीपक्वः । कुम्भीपक्वः । बन्ध । चक्रबन्धः । बहुलग्रहणस्यैवायमुदाहरणप्रपञ्चः ॥

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥ ४२ ॥

ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थग्रहणम् । ध्वाङ्क्षवाचिना सह सप्तम्यन्तं सुबन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति, क्षेपे गम्यमाने । तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव, तीर्थध्वाङ्क्षः । अनवस्थित इत्यर्थः । तीर्थकाकः । तीर्थवायसः । क्षेप इति किम् । तीर्थे ध्वाङ्क्षस्तिष्ठति ॥

कृत्यैर्ऋणे ॥ ४३ ॥

सप्तमीति वर्त्तते । कृत्यप्रत्ययान्तैः सह सप्तम्यन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति, ऋणे गम्यमाने । यत्प्रत्ययेनैवेष्यते । मासे देयमृणं, मासदेयम् । संवत्सरदेयम् । त्र्यहदेयम् । ऋणग्रहणं नियोगोपलक्षणार्थं तेनेहापि समासो भवति । पूर्वाह्णे गेयं साम । प्रातरध्येयो ऽनुवाकः । ऋण इति किम् । मासे देया भिक्षा ॥

संज्ञायाम् ॥ ४४ ॥

संज्ञायां विषये सप्तम्यन्तं सुपा सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । संज्ञा समुदायोपाधिः । तेन नित्यसमास एवायं, नहि वाक्येन संज्ञा गम्यते । अरण्येतिलकाः । अरण्येमाषाः । वनेकिंशुकाः । वनेबिल्वकाः । कूपेपिशाचकाः । हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायामित्यलुक् ॥

क्तेनाहोरात्रावयवाः ॥ ४५ ॥

अहरवयवा राज्यवयवाश्च सप्तम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । पूर्वाह्णकृतम् । अपराह्णकृतम् । पूर्वरात्रकृतम् । अपर-

---

* वेव्याड । मन्द । समीर । एते शब्दा अपत्र पुस्तकान्तरे दृश्यन्ते ।

रात्रकृतम् । अवयवग्रहणं किम्* । अहनि भुक्तम् । रात्रौ वृत्तम् । बहुलग्रहणाद् रात्रिवृत्तम्, संध्यागर्जितमित्यादयः ॥

तत्र ॥ ४६ ॥

तत्रेत्येतत् सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। तत्रभुक्तम् । तत्रकृतम् । तत्रपीतम् । ऐकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद्भवति ॥

क्षेपे ॥ ४७ ॥

क्षेपो निन्दा । क्षेपे गम्यमाने सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । अवतप्तेनकुलस्थितं तवैतत् । चापलमेतत्, अनवस्थितत्वं तवैतदित्यर्थः । उदकेविशीर्णम् । प्रवाहेमूत्रितम् । भस्मनिहुतम् । निष्फलं यत्क्रियते तदेवमुच्यते । तत्पुरुषे कृति बहुलमित्यलुक् ॥

पात्रेसंमितादयश्च ॥ ४८ ॥

समुदाया एव निपात्यन्ते । पात्रेसंमितादयः शब्दास्तत्पुरुषसंज्ञा भवन्ति क्षेपे गम्यमाने । ये चात्र क्तान्तेन सह समासास्तेषां पूर्वेणैव सिद्धे पुनः पाठो युक्तारोह्यादिपरिग्रहार्थः । पूर्वपदाद्युदात्तत्वं यथा स्यादिति । युक्तारोह्यादिषु हि पात्रेसंमितादयश्चेति पठ्यन्ते । पात्रेसंमिताः । पात्रेबहुलाः । अवधारणेन क्षेपो गम्यते । पात्रएव संमिता न पुनः क्व चित्कार्यइति । उदुम्बरमशकादिषु उपमया क्षेपः । मातरिपुरुष इति प्रतिषिद्धसेवनेन । पिण्डीशूरादिषु निरीहतया । अव्यक्तत्वाच्चाकृतिगणोयम्† । पात्रेसंमिताः । पात्रेबहुलाः । उदरक्रिमिः । कूपकच्छपः । कूपचूर्णकः । अवटकच्छपः । कूपमण्डूकः । कुम्भमण्डूकः । उदपानमण्डूकः । नगरकाकः । नगरवायसः । मातरिपुरुषः । पिण्डशूरः । गेहेशूरः । गेहेनर्दी । गेहेक्ष्वेडी । गेहेविजिती । गेहेव्याडः । गेहेतृप्तः । गेहेधृष्टः । गर्भेतृप्तः । आखनिकबकः । गोष्ठेशूरः । गोष्ठेविजिती । गोष्ठेक्ष्वेडी । गेहेमेही । गोष्ठेपटुः । गोष्ठेपण्डितः । गोष्ठेप्रगल्भः । कर्णेटिट्टिभः । कर्णेचुरचुरा । चकारोऽवधारणार्थः तेन समासान्तरं न भवति, परमपात्रेसंमिता इति ।

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ॥ ४९ ॥

सुप् सुपेति वर्तते, तस्य विशेषणमेतत् । पूर्वकाल एक सर्व जरत् पुराण

---

* अवयवग्रहणं किम् ।
अनूखसैराभरणैः पिशाचो यदभावत ।
तत्तु ते दिवा वृत्तं रात्रौ वृत्तं च द्रक्ष्यसि ॥
इति पाठान्तरम् ।

† अव्यक्तत्वादाकृतिगणोयम् । इति पा० ।

मव केवल इत्येते सुबन्ताः समानाधिकरणेन सुपा सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तस्य शब्दस्यैकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम् । पूर्वकाल इत्यर्थनिर्देशः, परिशिष्टानां स्वरूपग्रहणम् । पूर्वकालो ऽपरकालेन समस्यते । स्नातानुलिप्तः । कृष्टसमीकृतम् । दग्धप्ररूढम् । एकशाटी । एकभिक्षा । सर्वदेवाः । सर्वमनुष्याः । जरद्धस्ती । जरद्गृष्टिः । जरद्वृत्तिः । पुराणान्नम् । पुराणावसथम् । नवान्नम् । नवावसथम् । केवलान्नम् । समानाधिकरणेनेति किम् । एकस्याः शाटी ॥

दिक्संख्ये संज्ञायाम् ॥ ५० ॥

समानाधिकरणेनेत्यापादसमाप्तेरनुवर्त्तते । दिग्वाचिनः शब्दाः संख्या च समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति, संज्ञायां विषये । पूर्वेषुकामशमी । अपरेषुकामशमी । संख्या । पञ्चाम्राः । सप्तर्षयः । संज्ञायामिति किम् । उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥ ५१ ॥

दिक्संख्ये इत्यनुवर्त्तते । तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे चाभिधेये दिक्संख्ये समानाधिकरणेन सुपा सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । तद्धितार्थे तावत् । पूर्वस्यां शालायां भवः । दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः । पौर्वशालः । आपरशालः । उत्तरपदे । पूर्वशालाप्रियः । अपरशालाप्रियः । समाहारे दिक्शब्दो न संभवति । संख्या तद्धितार्थे । पाञ्चनापितिः । पाञ्चकपालः । उत्तरपदे । पञ्चगवधनो, दशगवधनः । समाहारे । पञ्चफली । दशपूली । पञ्चकुमारि । दशकुमारि । स नपुंसकमिति नपुंसकत्वं, ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्येति ह्रस्वत्वम् ॥

संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ ५२ ॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चेत्यत्र यः संख्यापूर्वः समासः स द्विगुसंज्ञो भवति । तद्धितार्थे तावत् । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः, पञ्चकपालो, दशकपालः । संस्कृतं भक्षा इत्यण्, तस्य द्विगोर्लुगनपत्ये इति लुक् । उत्तरपदे । पञ्चनावप्रियः । नावो द्विगोरिति समासान्तो भवति । समाहारे । पञ्चपूली । द्विगोरिति । ङीब् भवति । द्विगुप्रदेशा द्विगोरित्येवमादयः ॥

कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ ५३ ॥

कुत्सितवाचीनि सुबन्तानि कुत्सनवचनैः सुबन्तैः सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । शब्दप्रवृत्तिनिमित्तकुत्सायामयं समास इष्यते । विशेषणं विशेष्येणेति परनिपाते प्राप्ते विशेष्यस्य पूर्वं निपातार्थ आरम्भः । वैयाक-

व्याघ्रसूचिः । निश्चातिश्च इत्यर्थः । याज्ञिककितवः । अयाज्ययाजनतृष्णापरः । मीमांसकदुर्दुरूटः । नास्तिकः । कुत्सितानीति किम् । वैयाकरणश्चोरः । नह्यत्र वैयाकरणत्वं कुत्स्यते । कुत्सनैरिति किम् । कुत्सितो ब्राह्मणः ॥

पापाणके कुत्सितैः ॥ ५४ ॥

पापाणकशब्दौ कुत्सनाभिधायिनौ तयोः पूर्वेण समासे परनिपातः प्राप्तः पूर्वनिपातार्थमिदमारभ्यते । पाप अणक एते सुबन्ते कुत्सितवचनैस्सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । पापनापितः । पापकुलालः । अणकनापितः । अणककुलालः ॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ ५५ ॥

उपमीयतेनेनेत्युपमानम् । उपमानवाचीनि सुबन्तानि सामान्यवचनैः सुबन्तैः सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । उपमानोपमेययोः साधारणो धर्मः सामान्यं तद्विशिष्टोपमेयवचनैरयं समासः । शस्त्रीवश्यामा, शस्त्रीश्यामा देवदत्ता । कुमुदश्येनी । हंसगद्गदा । न्यग्रोधपरिमण्डला । उपमानानीति किम् । देवदत्ता श्यामा । सामान्यवचनैरिति किम् । फालाइव तन्दुलाः । पर्वताइव बलाहकाः ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ ५६ ॥

उपमेयमुपमितं तद्वाचि सुबन्तं व्याघ्रादिभिः सामर्थ्याद् उपमानवचनैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति, न चेत्सामान्यवाची शब्दः प्रयुज्यते । विशेषणं विशेष्येणेति परनिपाते प्राप्ते विशेष्यस्य पूर्वनिपातार्थ आरम्भः । पुरुषोयं व्याघ्रइव पुरुषव्याघ्रः । पुरुषसिंहः । सामान्याप्रयोगइति किम् । पुरुषो व्याघ्रइव शूरः । व्याघ्र । सिंह । ऋक्ष । ऋषभ । चन्दन । वृक । वृष । वराह । हस्तिन् । कुञ्जर । रुरु । पृषत । पुण्डरीक । बलाहक । आकृतिगणश्चायम् । तेनेदमपि भवति । मुखपद्मम् । मुखकमलम् । करकिसलयम् । पार्थिवचन्द्रः । इत्येवमादि ॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥ ५७ ॥

भेदकं, विशेषणं, भेद्यं,विशेष्यम् । विशेषणवाचि सुबन्तं विशेष्यवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । नीलोत्पलम् । रक्तोत्पलम् । बहुलवचनं व्यवस्थार्थम् । क्वचिन्नित्यसमास एव । कृष्णसर्पः । लोहितशालिः । क्वचिन्न भवत्येव । रामो जामदग्न्यः । अर्जुनः कार्त्तवीर्यः । क्वचिद्विकल्पः । नीलमुत्पलम् । नीलोत्पलम् । विशेषणमिति किम् । तक्षकः सर्पः । विशेष्येणेति किम् । लोहितस्तक्षकः ॥

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥ ५८ ॥

पूर्व अपर प्रथम चरम जघन्य समान मध्य मध्यम वीर इत्येते सुबन्ताः समानाधिकरणेन सुपा सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । पूर्वपुरुषः । अपरपुरुषः । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः । मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः । पूर्वस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ ५९ ॥

श्रेण्यादयः सुबन्ताः कृतादिभिः समानाधिकरणैः सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनम् ॥ * ॥ अश्रेणयः श्रेणयः कृताः । श्रेणिकृताः । एककृताः । श्रेण्यादयः पठ्यन्ते । कृतादिराकृतिगणः । च्व्यन्तानां तु कुगतिप्रादय इत्यनेन नित्यसमासः । श्रेणीकृताः । श्रेणि । एक । पूग । कुण्ड । राशि । विशिख । निचय । निधान । इन्द्र । देव । मुण्ड । भूत । श्रवण । वदान्य । अध्यापक । ब्राह्मण । क्षत्रिय । पटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण । कृपण । श्रेण्यादिः ॥ कृत । मित । मत । भूत । उक्त । समाज्ञात । समाम्नात । समाख्यात । संभावित । अवधारित । निराकृत । अवकल्पित । उपकृत । उपाकृत । इति कृतादिः ॥

क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥ ६० ॥

नञैव विशेषो यस्य सर्वमन्यत्प्रकृत्यादिकं तुल्यं तन्नञ्विशिष्टं, तेन नञ्विशिष्टेन क्तान्तेन समानाधिकरणेन सह अनञ् क्तान्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कृतं च तदकृतं च, कृताकृतम् । भुक्ताभुक्तम् । पीतापीतम् । उदितानुदितम् । नुडिटौ तद्भक्तत्वाचैव भेदकौ । अशितानशितेन जीवति । क्लिष्टाक्लिशितेन वर्त्तते ॥ कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटापुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका ॥ समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च ॥ * ॥ शाकप्रधानः पार्थिवः । शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातौल्वलिः ॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥ ६१ ॥

सत् महत् परम उत्तम उत्कृष्ट इत्येते पूज्यमानैः सह समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । पूज्यमानैरिति वचनात् पूजावचनाः सदादयो विज्ञायन्ते । सत्पुरुषः । महापुरुषः । परमपुरुषः । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः । पूज्यमानैरिति किम् । उत्कृष्टो गौः कर्दमात् ॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ ६२ ॥

वृन्दारक नाग कुञ्जर इत्येतैः सह पूज्यमानवाचि सुबन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । पूज्यमानमिति वचनाद् वृन्दारकादयः पूजावचना गृह्यन्त । गोवृन्दारकः । अश्ववृन्दारकः । गोनागः । अश्वनागः । गोकुञ्जरः । अश्वकुञ्जरः । पूज्यमानमिति किम् । सुसीमो नागः ॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ ६३ ॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने वर्त्तमानौ समर्थेन सुपा सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कतरकठः । कतरकालापः । कतमकठः । कतमकालापः । ननु कतमशब्दस्तावज्जातिपरिप्रश्नएव व्युत्पादितः, कतरशब्दोऽपि साहचर्यात्तदर्थवृत्तिरेव ग्रहीष्यते, किं जातिपरिप्रश्नग्रहणेन । एवं तर्ह्येतज्ज्ञापयति कतमशब्दोऽन्यत्रापि वर्त्ततइति । तथा च प्रत्युदाहरणं, कतरो भवतोर्देवदत्तः । कतमो भवतां देवदत्तः ॥

किं क्षेपे ॥ ६४ ॥

किमित्येतत् क्षेपे गम्यमाने सुपा सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । किंराजा, यो न रक्षति । किंसखा, योऽभिद्रुह्यति । किंगौः, यो न वहति । किमः क्षेपे इति समासान्तो न भवति । क्षेपइति किम् । को राजा पाटलिपुत्रे ॥

पोटायुवति स्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः ॥ ६५ ॥

उभयव्यञ्जना, पोटेत्यभिधीयते । *गृष्टि, सकृत्प्रसूता । धेनुः, प्रत्यग्रप्रसूता । वशा, वन्ध्या । वेहद्, गर्भपातिनी । बष्कयणी, तरुणवत्सा । पोटादिभिः सह जातिवाचि सुबन्तं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । इभपोटा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गोगृष्टिः । गोधेनुः । गोवशा । गोवेहत् । गोबष्कयणी । कठप्रवक्ता । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः । जातिरिति किम् । देवदत्तः प्रवक्ता । धूर्त्तग्रहणमकुत्सार्थम् ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥ ६६ ॥

जातिरिति वर्त्तते । जातिवाचि सुबन्तं प्रशंसावचनैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । रूढिशब्दाः प्रशंसावचना गृह्यन्ते मतल्लिकादयस्ते च विशिष्टलिङ्गत्वादन्यलिङ्गेऽपि जातिशब्दे स्वलिङ्गोपादाना एव समानाधिकरणा भवन्ति । गोप्रकाण्डम् । अश्वप्रकाण्डम् । गोमतल्लिका । अश्वमतल्लिका गोमचर्चिका । अश्वमचर्चिका । जातिरिति किम् । कुमारी मतल्लिका ॥

---

* युवतिर्नवयौवना स्त्री । स्तोकमल्पपर्यायः । कतिपयं च । इत्यधिकं क्व चित् ।

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः ॥ ६७ ॥

खलत्यादिभिः समानाधिकरणैः सह युवशब्दः समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । जरतीभिरिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहण'मिति ज्ञापनार्थः । युवा खलतिः, युवखलतिः । युवतिः खलती, युवखलती । युवा पलितः, युवपलितः । युवतिः पलिता, युवपलिता । युवा वलिनः, युववलिनः । युवतिर्वलिना, युववलिना । युवा जरन्, युवजरन् । युवतिर्जरती, युवजरती ॥

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥ ६८ ॥

कृत्यप्रत्ययान्तास्तुल्यपर्यायाश्च सुबन्ता अजातिवचनेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । भोज्योष्णम् । भोज्यलवणम् । पानीयशीतम् । तुल्याख्याः । तुल्यश्वेतः । तुल्यमहान् । सदृशश्वेतः । सदृशमहान् । अजात्येति किम् । भोज्य ओदनः ॥

वर्णो वर्णेन ॥ ६९ ॥

वर्णविशेषवाचि सुबन्तं वर्णविशेषवाचिना सुबन्तेन समानाधिकरणेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः । कृष्णशबलः । लोहितशबलः । अवयवद्वारेण कृष्णशब्दः समुदाये वर्त्तमानः समानाधिकरणो भवति ॥

कुमारः श्रमणादिभिः ॥ ७० ॥

कुमारशब्दः श्रमणादिभिः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । येऽत्र स्त्रीलिङ्गाः पठ्यन्ते श्रमणा प्रव्रजिता कुलटेत्येवमादयस्तैः सह स्त्रीलिङ्ग एव कुमारशब्दः समस्यते, ये तु पुंलिङ्गा अध्यापकोऽभिरूपकः पण्डित इति, तैरुभयथा, प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमिति । कुमारी श्रमणा, कुमारश्रमणा । श्रमणा । प्रव्रजिता । कुलटा । गर्भिणी । तापसी । दासी । बन्धकी । अध्यापक । अभिरूपक । पण्डित । पटु । मृदु । कुशल । चपल । निपुण ॥

चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ ७१ ॥

चतुष्पाद्वाचिनः सुबन्ता गर्भिणीशब्देन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । गोगर्भिणी । अजागर्भिणी ॥ चतुष्पाज्जातिरिति वक्तव्यम् ॥ ॰ ॥ इह मा भूत् । कालाक्षी गर्भिणी । स्वस्तिमती गर्भिणी । चतुष्पाद इति किम् । ब्राह्मणी गर्भिणी ॥

मयूरव्यंसकादयश्च ॥ ७२ ॥

समुदाया एव निपात्यन्ते । मयूरव्यंसकादयः शब्दास्तत्पुरुषसंज्ञा भव-

न्ति । चकारो ऽवधारणार्थः । परममयूरव्यंसक इति समासान्तरं न भवति मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः । काम्बोजमुण्डः । यवनमुण्डः । छन्दसि । हस्तेगृह्य । पादेगृह्य । लाङ्गलेगृह्य । पुनर्दाय ॥ एहीडादयो ऽन्यपदार्थे ॥ एहीडम्, एहियवं वर्त्तते । एहिवाणिजा क्रिया । अपेहिवाणिजा । प्रेहिवाणिजा । एहिस्वागता । अपेहिस्वागता । प्रेहिस्वागता । एहिद्वितीया । अपेहिद्वितीया । प्रोहकटा । अपोहकटा । प्रोहकर्दमा । अपोहकर्दमा । उद्धरचूडा । आहरचेला । आहरवसना । आहरवनिता । कृन्तविचक्षणा । उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । उत्पचविपचा । उत्पतनिपता । उच्चावचम् । उच्चनीचम् । अचितोपचितम् । अवचितपराचितम् । निश्चप्रचम् । अकिंचनम् । स्नात्वाकालकः । पीत्वास्थिरकः । भुक्त्वासुहितः । प्रोष्यपापीयान् । उत्पत्यव्याकुला । निपत्यरोहिणी । निषण्णश्यामा । अपेहिप्रघसा । इहपञ्चमी । इहद्वितीया ॥ जहि कर्म्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति ॥ जहिजोडः । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । उज्जहिस्तम्बः ॥ आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये ॥ अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । खादताचमता । आहरनिवपा । आवपनिष्किरा । उत्पचविपचा । भिन्द्धिलवणा । छिन्द्धिविचक्षणा । पचलवणा । पचप्रकूटा । अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

॥ अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ १ ॥

एकदेशो ऽस्यास्तीत्येकदेशी अवयवी, तद्वाचिना सुबन्तेन सह पूर्वापराधरोत्तरशब्दाः सामर्थ्यादेकदेशवचनाः समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । एकाधिकरणग्रहणमेकदेशिनो विशेषणम्, एकं चेदधिकरणमेकद्रव्यमेकदेशि भवति । षष्ठीसमासापवादोयं योगः । पूर्वं कायस्य, पूर्वकायः । अपरकायः । अधरकायः । उत्तरकायः । एकदेशिनेति किम् । पूर्वं नाभेः कायस्य * । एकाधिकरणइति किम् । पूर्वं छात्राणामामन्त्रय । कथं मध्याह्नः सायाह्न इति । संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्येति ज्ञापकात्सर्वैकदेशशब्देनाह्नः समासो भवति ॥

अर्द्धं नपुंसकम् ॥ २ ॥

एकदेशिनैकाधिकरणे इति वर्त्तते । समप्रविभागे ऽर्धशब्दो नपुंसकमा-

* अत्र 'नाभिशब्देन सह समासो न भवति' । इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

विष्टलिङ्गस्तस्येदं ग्रहणम् । अर्द्धमित्येतद् नपुंसकमेकदेशिनैकाधिकरणेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । षष्ठीसमासापवादोयं योगः । अर्द्धं पिप्पल्याः, अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी । नपुंसकमिति किम् । ग्रामार्द्धः । नगरार्द्धः । एकदेशिनेत्येव । अर्द्धं पशोर्देवदत्तस्य । देवदत्तेन सह समासो न भवति । एकाधिकरणइत्येव । अर्द्धं पिप्पलीनाम् ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

एकदेशिनैकाधिकरणइति वर्तते। षष्ठीसमासापवादोयं योगः । अन्यतरस्यांग्रहणात् सोपि भवति । पूरणेति प्रतिषेधस्तात एवान्यतरस्यांग्रहणसामर्थ्यात्र प्रवर्त्तते । द्वितीयादीनि शब्दरूपाणि एकदेशिनैकाधिकरणेन सहान्यतरस्यां समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । द्वितीयं भिक्षायाः, द्वितीयभिक्षा । षष्ठीसमासपक्षे भिक्षाद्वितीयं वा । तृतीयं भिक्षायाः, तृतीयभिक्षा । भिक्षातृतीयं वा । चतुर्थं भिक्षायाः, चतुर्थभिक्षा । भिक्षाचतुर्थं वा । तुर्यं भिक्षायाः, तुर्यभिक्षा । भिक्षातुर्यं वा । तुरीयशब्दस्यापीष्यते ॥ तुरीयं भिक्षायाः, तुरीयभिक्षा । भिक्षातुरीयं वा * । एकदेशिनेत्येव । द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य । एकाधिकरणइत्येव । द्वितीयं भिक्षाणाम् ॥

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥ ४ ॥

एकदेशिनैकाधिकरणइति निवृत्तम् । द्वितीयासमासे प्राप्ते वचनमिदम् । विधानसामर्थ्यात्सोपि भवति । प्राप्त आपन्न इत्येतौ द्वितीयान्तेन सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । प्राप्तो जीविकां, प्राप्तजीविकः । जीविकाप्राप्त इति वा । आपन्नो जीविकाम्, आपन्नजीविकः । जीविकापन्न इति वा ॥

कालाः परिमाणिना ॥ ५ ॥

परिमाणमस्यास्तीति परिमाणी तद्वाचिना सुबन्तेन सह सामर्थ्यात्परिमाणवचनाः कालशब्दाः समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। षष्ठीसमासविषये योगारम्भः† । मासो जातस्य, मासजातः । संवत्सरजातः । द्व्यहजातः । त्र्यहजातः ॥

नञ् ॥ ६ ॥

नञ् समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । न ब्राह्मणो, ऽब्राह्मणः । अवृषलः ॥ नञो नलोपस्तिङि क्षेपे ॥ * ॥ अपचसि त्वं जाल्म ‡ ॥

ईषदकृता ॥ ७ ॥

---

* तुरीयशब्दस्येत्यारभ्य भिक्षातुरीयं वेत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

† षष्ठीसमासापवादो ऽयं योगः इति पा० २ ।

‡ नञो नलोपेत्यारभ्य जाल्मेत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

ईषदित्ययं शब्दोऽकृदन्तेन सुपा सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ ईषद्गुणवचनेनेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ईषत्कडारः । ईषत्पिङ्गलः । ईषद्विकटः । ईषदुन्नतः । ईषत्पीतम् । ईषद्रक्तम् * । गुणवचनेनेति किम् । इह न भवति । ईषद्गार्ग्यः ॥

षष्ठी ॥ ८ ॥

षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । राज्ञः पुरुषो, राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः ॥ कृद्योगा च षष्ठी समस्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इध्मप्रव्रश्चनः । पलाशशातनः । किमर्थमिदमुच्यते । 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते' इति वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपकर्षः ॥

याजकादिभिश्च ॥ ९ ॥

पूर्वेण समासः सिद्ध एव तस्य कर्तरि चेति प्रतिषेधे प्राप्ते वचनमिदमारभ्यते प्रतिप्रसवार्थम् । याजकादिभिः सह षष्ठी समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक† । स्नातक । अध्यापक । उत्सादक । उद्वर्त्तक‡ । होतृ । पोतृ । भर्तृ । रथगणक । पत्तिगणक ॥ तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठी समस्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चन्दनगन्धः । कपित्थरसः ॥ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सर्वेषां श्वेततरः, सर्वश्वेतः । सर्वेषां महत्तरः, सर्वमहान् । 'न निर्धारणे' इति प्रतिषेधे प्राप्ते वचनमिदम् । सर्वशुक्ला गौः§ ॥

न निर्द्धारणे ॥ १० ॥

पूर्वेण समासे प्राप्ते प्रतिषेध आरभ्यते । निर्द्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते । जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्द्धारणम् । क्षत्रियो मनुष्याणां शूरतमः । कृष्णा गवां संपन्नक्षीरतमा । धावनध्वगानां शीघ्रतमः ॥ प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सर्पिषो ज्ञानम् । मधुनो ज्ञानम् ‖ ॥

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥ ११ ॥

पूरणगुणसुहितार्थ सद् अव्यय तव्य समानाधिकरण इत्येतैः सह षष्ठी न समस्यते । अर्थशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, तेन स्वरूपविधिर्न भवति । पूर-

---

* अत्र 'अकृतेति किम् । ईषद्भुक्तम्' । इत्यधिकं कुत्र चित् ।

† परिवेषकेति पाठान्तरम् ।

‡ हर्तृ, वर्तक, इत्यधिको क्व चित् ।

§ गुणात्तरेणेत्यारभ्य सर्वशुक्ला गौरित्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।

‖ ज्ञो ऽविदर्थस्य करणे इति षष्ठीति क्व चिदधिकमत्र ।

णार्थे । छात्राणां पञ्चमः । छात्राणां दशमः । गुण । बलाकायाः शौक्ल्यम् । काकस्य कार्ष्ण्यम् । सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः । फलानां सुहितः । फलानां तृप्तः । सत् । ब्राह्मणस्य कुर्वन् । ब्राह्मणस्य कुर्वाणः । अव्यय । ब्राह्मणस्य कृत्वा । ब्राह्मणस्य हृत्वा । तव्य । ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् । तव्यता सानुबन्धकेन समासो भवत्येव । ब्राह्मणकर्त्तव्यम् । समानाधिकरण । शुकस्य माराविदस्य । राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य । पाणिनेः सूत्रकारस्य । किं च स्यात् । पूर्वनिपातस्यानियमः स्यात् । अनन्तरायां तु प्राप्तौ प्रतिषिद्धायां विशेषणं विशेष्येणेति भवत्येव समासः । पूर्वनिपातश्च तदा नियोगतो विशेषणस्यैव * ॥

क्तेन च पूजायाम् ॥ १२ ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्चेति वक्ष्यति तस्येदं ग्रहणम् । पूजाग्रहणमुपलक्षणार्थम् । क्तो यः पूजायां विहितस्तेन षष्ठी न समस्यते । राज्ञां मतः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां पूजितः । पूजायामिति किम् । छात्रस्य हसितं, छात्रहसितम् ॥

अधिकरणवाचिना च ॥ १३ ॥

'क्तो ऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः' इति वक्ष्यति, तस्येदं ग्रहणम् । अधिकरणवाचिना क्तेन षष्ठी न समस्यते । इदमेषां यातम् । इदमेषां भुक्तम् ॥

कर्म्मणि च ॥ १४ ॥

क्तेनेति निवृत्तम् । कर्म्मग्रहणं । षष्ठीविशेषणम् । कर्म्मणि च या षष्ठी सा न समस्यते । उभयप्राप्तौ कर्म्मणीति षष्ठ्या इदं ग्रहणम् । आश्चर्यो गवां दोहो ऽगोपालकेन † । रोचते ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन । साधु खलु पयसः पानं देवदत्तेन । विचित्रा सूत्रस्य कृतिः पाणिनिना ॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि ॥ १५ ॥

कर्तृग्रहणं षष्ठीविशेषणम् । कर्त्तरि या षष्ठी सा तृचा ऽकेन च सह न समस्यते । भवतः शायिका । भवत आसिका । भवतो ऽग्रगामिका । तृच् कर्त्तर्येव विधीयते, तत्प्रयोगे कर्त्तरि षष्ठी नास्ति । तस्मात्तृज्ग्रहणमुत्तरार्थम् । कर्त्तरीति किम् । इक्षुभक्षिकां मे धारयसि ॥

कर्त्तरि च ॥ १६ ॥

कर्त्तरि च यौ तृजकौ ताभ्यां सह षष्ठी न समस्यते । सामर्थ्यादकस्य विशेषणार्थं कर्तृग्रहणमितरत्र व्यभिचाराभावात् । अपां स्रष्टा । पुरां भेत्ता ।

---

* अनन्तरायामित्यारभ्य विशेषणस्यैवेत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।
† अशिक्षितेन गोपालेनेति पाठान्तरम् ।

यज्ञस्य भर्त्ता। ननु च भर्तृशब्दो ह्ययं याजकादिषु पठ्यते*। संबन्धिशब्दस्य पतिपर्यायस्य तत्र ग्रहणम्† अकः खल्वपि। ओदनस्य भोजकः। सक्तूनां पायकः॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः॥ १७॥

नेति निवृत्तं न तृजकौ। नित्यं समासो विधीयते। क्रीडायां जाविकायां च नित्यं षष्ठी समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। तृच् क्रीडाजीविकयो र्नास्तीत्येक एवोदाह्रियते। उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वारणपुष्पप्रचायिका। जीविकायाम्। दन्तलेखकः। नखलेखकः। क्रीडाजीविकयोरिति किम्। ओदनस्य भोजकः॥

कुगतिप्रादयः॥ १८॥

नित्यमिति वर्त्तते। कुशब्दो ऽव्ययं गृह्यते,गत्यादिसाहचर्यात्, न द्रव्यवचनः। कुगतिप्रादयः समर्थेन शब्दान्तरेण सह नित्यं समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। कुः पापार्थे। कुपुरुषः। गति। उररीकृतम्। यदूरीकरोति। प्रादयः। दुर्निन्दायाम्। दुष्पुरुषः। स्वती पूजायाम्। सुपुरुषः। अतिपुरुषः। आङीषदर्थे। आपिङ्गलः। प्रायिकं चैतदुपाधिवचनम्, अन्यत्रापि हि समासो दृश्यते। कोष्णम्। कदुष्णम्। कवोष्णम्। दुष्कृतम्। अतिस्तुतम्। आबद्धम्। इति॥ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया॥*॥ प्रगत आचार्यः, प्राचार्यः। प्रान्तेवासी॥ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया॥*॥ अतिक्रान्तः खट्वाम्, अतिखट्वः। अतिमालः॥ अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया॥*॥ अवक्रुष्टः कोकिलया, अवकोकिलः॥ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या॥*॥ परिग्लानो ऽध्ययनाय, पर्यध्ययनः। अलं कुमार्यै, अलंकुमारिः॥ निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्यां॥*॥ निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः, निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः॥ इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम्॥ *॥ वाससीइव॥ प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥*॥ वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्। साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति॥

उपपदमतिङ्॥ १९॥

नित्यमिति वर्तते। उपपदमतिङन्तं समर्थेन शब्दान्तरेण सह समस्यते नित्यं, तत्पुरुषश्च समासो भवति। कुम्भकारः। नगरकारः। अतिङिति किम्। एधानाहारको व्रजति। ननु च सुप् सुपेति वर्त्तते, तत्र कुतस्तिङन्तेन

---

* पठ्यते इत्यस्याग्रे 'तत्र पाठसामर्थ्यात्समासेन भवितव्यम्। नैतदस्ति' इति क्वचिदधिकम्।

† ग्रहणमित्यस्याग्रे 'इह तु क्रियाशब्दस्य' इति पाठः कुत्र चिदधिकः।

सह समासप्रसङ्गः । एवं तर्हि ज्ञापयति एतयोर्योगयोः सुप् सुपेति न संबध्यत-इति । तेन गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेरित्येतदुपपन्नं भवति । अश्वक्रीती । धनक्रीती ॥

अमैवाव्ययेन ॥ २० ॥

पूर्वेणैव समासे सिद्धे नियमार्थं वचनम् । अव्ययेनोपपदस्य यः समासः सोऽमैव भवति, नान्येन । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारं भुङ्क्ते । लवणंकारं भुङ्क्ते । अमैवेति किम् । कालसमयवेलासु तुमुन् । कालो भोक्तुम् * । एवकारकरणमुपपदविशेषणार्थम् । अमैव यत्तुल्यविधानमुपपदं तस्य समासो यथा स्यात्, अमा चान्येन च यत्तुल्यविधानं तस्य मा भूत् । अग्रेभुक्त्वा । अग्रे भोजम् ॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

अमैवेत्यनुवर्त्तते । उपदंशस्तृतीयायामित्यतः प्रभृति यान्युपपदानि तान्यमैवाव्ययेन सहान्यतरस्यां समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । उभयत्र विभाषेयम् । यदमैव तुल्यविधानमुपपदं तस्य प्राप्ते, यथोपदंशस्तृतीयायामिति । यत्पुनरमा चान्येन च तुल्यविधानं तस्याप्राप्ते, यथा अव्यये यथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलाविति । मूलकोपदंशं भुङ्क्ते । मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते । उच्चैःकारमाचष्टे । उच्चैः कारम् । अमैवेत्येव । पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु । पर्याप्तो भोक्तुम् । प्रभुर्भोक्तुम् ॥

क्त्वा च ॥ २२ ॥

अमैवेति पूर्वयोगे ऽनुवृत्तं तेनान्यत्र न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते । क्त्वाप्रत्ययेन सह तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि अन्यतरस्यां समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । उच्चैःकृत्य । उच्चैः कृत्वा । अव्यये यथाभिप्रेताख्याने इति क्त्वाप्रत्ययः । समासपक्षे ल्यबेव । तृतीयाप्रभृतीनीत्येव । अलं कृत्वा । खलु कृत्वा ॥

शेषो बहुव्रीहिः ॥ २३ ॥

† उपयुक्तादन्यः शेषः । शेषः समासो बहुव्रीहिसंज्ञो भवति । कश्च शेषः । यत्रान्यः समासो नोक्तः । वक्ष्यति । अनेकमन्यपदार्थे । चित्रगुः । शबलगुः । कृष्णोत्तरासङ्गः । शेष इति किम् । उन्मत्तगङ्गम् । लोहितगङ्गम् । बहुव्रीहिप्रदेशाः न बहुव्रीहावित्येवमादयः ॥

अनेकमन्यपदार्थे ॥ २४ ॥

अनेकं सुबन्तमन्यपदार्थे वर्तमानं समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति ।

---

* 'समयो भोक्तुम् । वेला भोक्तुम्' । इत्यधिकं क्वचित् ।
† तत्पुरुष इति निवृत्तमिति क्वचिदधिकमत्र ।

प्रथमार्थमेकं वर्जयित्वा सर्वेषु विभक्त्यर्थेषु बहुव्रीहिर्भवति । प्राप्तमुदकं ग्रामं, प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथो ऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । चित्रगुर्देवदत्तः । वीरपुरुषको ग्रामः । प्रथमार्थे तु न भवति । वृष्टे देवे गतः । अनेकग्रहणं किम् । बहूनामपि यथा स्यात् ।

सुसूक्ष्मजटकेशेन सुलभाजिनवाससा ।
पुत्री पर्वतराजस्य कुतो हेतोर्विवाहिता * ॥

बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ व्यधिकरणानां मा भूत् । पञ्चभिर्भुक्तमस्य ॥ अव्ययानां च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ उच्चैर्मुखः । नीचैर्मुखः ॥ सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ कण्ठे स्थितः कालो ऽस्य, कण्ठेकालः । उरसिलोमा । उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं यस्य स, उष्ट्रमुखः । खरमुखः ॥ समुदायविकारषष्ठ्याश्च बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ केशानां संघातः, केशसंघातः, केशसंघातश्चूडा ऽस्य केशचूडः । सुवर्णस्य विकारो ऽलंकारो ऽस्य सुवर्णालंकारः ॥ प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपदस्य लोपश्च वा बहुव्रीहिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रपतितं पर्णमस्य, प्रपर्णः । प्रपतितं पलाशमस्य, प्रपलाशः ॥ नञो ऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ अविद्यमानः पुत्रो यस्य, अपुत्रः । अविद्यमानभार्यः, अभार्यः ॥ सुबधिकारे ऽस्तिक्षीरादीनां बहुव्रीहिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी । अस्त्यादयो निपाताः ॥

संख्यया ऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये ॥ २५ ॥

संख्येये या संख्या वर्तते तया सहाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । अव्यय । उपदशाः । उपविंशाः । आसन्नदशाः । आसन्नविंशाः । अदूरदशाः । अदूरविंशाः । अधिकदशाः । अधिकविंशाः । संख्या । द्वित्राः । त्रिचतुराः । द्विदशाः । संख्ययेति किम् । पञ्च ब्राह्मणाः । अव्ययासन्नादूराधिकसंख्या इति किम् । ब्राह्मणाः पञ्च । संख्येये इति किम् । अधिका विंशतिर्गवाम् ॥

दिङ्नामान्यन्तराले ॥ २६ ॥

दिशां नामानि दिङ्नामानि । दिङ्नामानि सुबन्तानि अन्तराले वाच्ये समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं, दक्षिणपूर्वा दिक् । पूर्वोत्तरा । उत्तरपश्चिमा । पश्चिमदक्षिणा ॥ सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे† पुंवद्भावः ॥ * ॥ नामग्रहणं रूढ्यर्थम् । इह मा भूत् । ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्च दिशोर्यदन्तरालमिति ॥

---

* सुसूक्ष्मजटकेशेन सुनताजिनवाससा ।
समन्ताग्नितरन्धेण द्वयोर्वृत्तौ न सिध्यति ॥ इति पा० २

† वृत्तिमात्रे इत्यस्याने पूर्वपदस्येत्यपि कुत्र चित् पाठः ।

तत्र तेनेदमिति सरूपे ॥ २७ ॥

तत्रेति सप्तम्यन्तं गृह्यते। तेनेति तृतीयान्तम्। सरूपग्रहणं प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्रेति सप्तम्यन्ते सरूपे पदे तेनेति च तृतीयान्ते इदमित्येतस्मिन्नर्थे समस्येते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति। इतिकरणश्चेह विवक्षार्थो लौकिकमर्थमनुसारयति। ततो ग्रहणं प्रहरणं कर्मव्यतिहारो युद्धं च समासार्थ इति सर्वमितिकरणाल्लभ्यते। यत्तत्रेति निर्दिष्टं ग्रहणं चेत्तद्भवति, यत्तेनेति निर्दिष्टं प्रहरणं चेत्तद्भवति, यदिदमिति निर्दिष्टं युद्धं चेत्तद्भवति। केशेषुकेशेषु च गृहीत्वा इदं युद्धं वृत्तं, केशाकेशि। कचाकचि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं वृत्तं, दण्डादण्डि। मुशलामुशलि। इच् कर्मव्यतिहारइति इच् समासान्तः, स चाव्ययम्। अन्येषामपि दृश्यतइति पूर्वपदस्य दीर्घत्वम्। सरूपग्रहणं किम्। हलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं वृत्तम्॥

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥ २८ ॥

सहेत्येतच्छब्दरूपं तुल्ययोगे वर्तमानं तेनेति तृतीयान्तेन सह समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति। सह पुत्रेणागतः, सपुत्रः। सच्छात्रः। सकर्मकरः। तुल्ययोगइति किम्। सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी। विद्यमानैरेव दशभिः पुत्रैर्भारं वहतीत्यर्थः। कथं सकर्मकः सलोमकः सपक्षक इति। नह्यत्र तुल्ययोगो गम्यते किं तर्हि विद्यमानता। प्रायिकं तुल्ययोगइति विशेषणमन्यत्रापि समासो दृश्यते॥

चार्थे द्वन्द्वः ॥ २९ ॥

अनेकमिति वर्तते। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं समस्यते, द्वन्द्वसंज्ञश्च समासो भवति। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। तत्र समुच्चयान्वाचययोरसामर्थ्यान्नास्ति समासः। इतरेतरयोगे समाहारे च समासो विधीयते। प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च, प्लक्षन्यग्रोधौ। धवश्च खदिरश्च पलाशश्च, धवखदिरपलाशाः। वाक्च त्वक्च, वाक्त्वचम्। वाग्दृषदम्। द्वन्द्वप्रदेशाः द्वन्द्वे चेत्येवमादयः॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ ३० ॥

समासइति वर्तते। उपसर्जनसंज्ञकं समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम्। पूर्ववचनं परप्रयोगनिवृत्त्यर्थम्। अनियमो हि स्यात्। द्वितीया। कष्टश्रितः। तृतीया। शङ्कुलाखण्डः*। चतुर्थी। यूपदारु। पञ्चमी। वृकभयम्। षष्ठी। राजपुरुषः। सप्तमी। अक्षशौण्डः॥

---

* किरिकाण इत्यधिकमत्र क्वचित्।

राजदन्तादिषु परम् ॥ ३१ ॥

पूर्वनिपाते प्राप्ते परप्रयोगार्थं वचनम् । राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्तव्यम् । न केवलमुपसर्जनस्य, अन्यस्यापि यथालक्षणं विहितस्य पूर्वनिपातस्यापवादः परनिपातो विधीयते । दन्तानां राजा, राजदन्तः । वनस्याग्रे, अग्रेवणम् । निपातनादलुक् । राजदन्तः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् । नग्नमुषितम् । सिक्तसंमृष्टम् । मृष्टलुञ्चितम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अर्पितोप्तम् । उप्तगाढम् । पूर्वकालस्य परनिपातः । उलूखलमुसलम् । तण्डुलकिण्वम् । दृषदुपलम् । आरग्वायनबन्धकी । चित्ररथबाह्लीकम् । आवन्त्यश्मकम् । शूद्रार्यम् । स्नातकराजानौ । विष्वक्सेनार्जुनौ । अक्षिभ्रुवम् । दारगवम् । शब्दार्थौ । धर्मार्थौ । कामार्थौ । अनियमश्चात्रेष्यते । अर्थशब्दौ । अर्थधर्मौ । अर्थकामौ । तत्कथं वक्तव्यमिदम् । धर्मादिषूभयमिति । वैकारिमतम् । गजवाजम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासककरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् । सिञ्जास्थम् । चित्रास्वाती । भार्यापती । जायापती । जम्पती । दम्पती । जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । पुत्रपती । पुत्रपशु । केशश्मश्रु । श्मश्रुकेशौ । शिरोबीजम् । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । आद्यन्तौ । अन्तादी । गुणवृद्धी । वृद्धिगुणौ ॥

द्वन्द्वे घि ॥ ३२ ॥

पूर्वमिति वर्त्तते । द्वन्द्वे समासे घ्यन्तं पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । पटुगुप्तौ । मृदुगुप्तौ । अनेकप्राप्तावेकस्य नियमः, शेषे त्वनियमः । पटुमृदुशुक्लाः । पटुशुक्लमृदवः । द्वन्द्वइति किम् । विस्पष्टपटुः ॥

अजाद्यदन्तम् ॥ ३३ ॥

द्वन्द्वइति वर्त्तते * । अजाद्यदन्तं शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । उष्ट्रखरम् । उष्ट्रशशकम् ॥ बहुष्वनियमः ॥ * ॥ अश्वरथेन्द्राः । इन्द्ररथाश्वाः ॥ द्वन्द्वे घजाद्यदन्त विप्रतिषेधेन ॥ * ॥ इन्द्राग्नी । इन्द्रवायू । तपरकरणं किम् । अश्वावृषौ वृषाश्वे इति वा ॥

अल्पाच्तरम् ॥ ३४ ॥

द्वन्द्वइति वर्त्तते । अल्पाच्तरं शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च, प्लक्षन्यग्रोधौ । धवखदिरपलाशाः । बहुष्वनियमः । शङ्खदुन्दुभिवीणाः । वीणाशङ्खदुन्दुभयः ॥ ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥ * ॥ हेमन्तशिशिरवसन्ताः । चित्रास्वाती । कृत्तिका-

---

* पूर्वमिति चेति क्व चिदधिकम् ।

रोहिण्यौ । समानाक्षराणामिति किम् । ग्रीष्मवसन्तौ ॥ लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कुशकाशम् । शरशादम् ॥ अभ्यर्हितं च पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ मातापितरौ । श्रद्धामेधे । दीक्षातपसी ॥ वर्णानामानुपूर्व्येण पूर्वनिपातः ॥ * ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः । समानाक्षराणामित्यत्र नास्ति ॥ भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥ * ॥ युधिष्ठिरार्जुनौ ॥ संख्याया अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥ * ॥ द्वित्राः । त्रिचतुराः । नवतिशतम् ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ ३५ ॥

सर्वोपसर्जनत्वाद्बहुव्रीहेरनियमे प्राप्ते नियमार्थं वचनम् । सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहिसमासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । कण्ठेकालः । उरसिलोमा । विशेषणम् । चित्रगुः शबलगुः ॥ सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । द्विशुक्लः । द्विकृष्णः । अनयोरेव मिथः संप्रधारणायां परत्वात्संख्यायाः पूर्वनिपातः । द्व्यन्यः । त्र्यन्यः ॥ वा प्रियस्य पूर्वनिपातः ॥ * ॥ गुडप्रियः । प्रियगुडः ॥ सप्तम्याः पूर्वनिपाते प्राप्ते गड्वादिभ्यः सप्तम्यन्तं परम् ॥ * ॥ गडुकण्ठः । गडुशिराः । कथं वहेगडुः प्राप्तस्य चाबाधा व्याख्येया ॥

निष्ठा ॥ ३६ ॥

* निष्ठान्तं च बहुव्रीहिसमासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । कृतकटः । भिक्षितभिक्षः । अवमुक्तोपानत्कः । आहूतसुब्रह्मण्यः । ननु च विशेषणमेवात्र निष्ठा, नैष नियमो, विशेषणविशेष्यभावस्य विवक्षानिबन्धत्वात् । कटे कृतमनेनेति वा विग्रहीतव्यम् ॥ निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् ॥ * ॥ शार्ङ्गजग्धी । पलाण्डुभक्षिती । मासजातः । संवत्सरजातः । सुखजातः । दुःखजातः । कथं कृतकटः, भुक्तौदनः । प्राप्तस्य चाबाधा व्याख्येया ॥ प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अस्युद्यतः । दण्डपाणिः । कथमुद्यतगदः उद्यतासिः । प्राप्तस्य चाबाधा व्याख्येया ॥

वा ऽऽहिताग्न्यादिषु ॥ ३७ ॥

निष्ठेति पूर्वनिपाते प्राप्ते विकल्प उच्यते । आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तं पूर्वं वा प्रयोज्यम् । अग्न्याहितः । आहिताग्निः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । जातश्मश्रुः । तैलपीतः । घृतपीतः । ऊढभार्यः । गतार्थः । आकृतिगणश्चायम् । तेनगडुकण्ठप्रभृतय इहैव द्रष्टव्याः ॥

कडाराः कर्मधारये ॥ ३८ ॥

गुणशब्दानां विशेषणत्वात्पूर्वनिपाते प्राप्ते विकल्प उच्यते । कडारादयः

---

* बहुव्रीहाविति वर्त्तत इति क्व चिदधिकमत्र ।

शब्दाः कर्मधारये समासे वा पूर्वे प्रयोक्तव्याः। कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः। कडार। गडुल। काण। खञ्ज। कुण्ठ। खञ्जर। खलति। गौर। वृद्ध। भिक्षुक। पिङ्गल। तनु। वटर। कर्मधारयइति किम्। कडारपुरुषो ग्रामः॥

इति श्रीजयादित्यरचितायां काशिकायां वृत्तौ द्वितीयस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः॥

॥ अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः॥

अनभिहिते ॥ १ ॥

अनभिहितइत्यधिकारोयं वेदितव्यः। यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामो ऽनभिहितइत्येवं तद्वेदितव्यम्। अनभिहिते अनुक्ते अनिर्दिष्टे कर्मादौ विभक्तिर्भवति। केनानभिहिते, तिङ्कृत्तद्धितसमासैः, परिसंख्यानम्। वक्ष्यति कर्म्मणि द्वितीया। कटं करोति। ग्रामं गच्छति। अनभिहितइति किम्। तिङ्। क्रियते कटः। कृत्। कृतः कटः। तद्धित। शत्यः। शतिकः। समास। प्राप्तमुदकं यं ग्रामं, प्राप्तोदको ग्रामः। परिसंख्यानं किम्। कटं करोति भीष्ममुदारं दर्शनीयम्। बहुषु बहुवचनमित्येवमादिना संख्यावाच्यत्वेन विभक्तीनामुपदिष्टा, तत्र विशेषणार्थमिदमारभ्यते, अनभिहितकर्माद्याश्रयेष्वेकत्वादिषु द्वितीयादयो वेदितव्या इति॥

कर्मणि द्वितीया ॥ २ ॥

द्वितीयादयः शब्दाः पूर्वाचार्यैः सुपां त्रिकेषु स्मर्यन्ते, तैरेवात्र व्यवहारः। कर्मणि कारके या संख्या तत्र द्वितीया विभक्तिर्भवति। कटं करोति। ग्रामं गच्छति।

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीया ऽऽम्रेडितान्तेषु ततो ऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ * ॥

उभयतो ग्रामम्। सर्वतो ग्रामम्। धिग्देवदत्तम्। उपर्युपरि ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधो ग्रामम्॥ अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेषु च दृश्यते ॥ * ॥ अभितो ग्रामम्। परितो ग्रामम्। समया ग्रामम्। निकषा ग्रामम्। हा देवदत्तम्। बुभुक्षितं न प्रति भाति किं चित्॥

तृतीया च होश्छन्दसि ॥ ३ ॥

कर्मणीति वर्त्तते। द्वितीयायां प्राप्तायां तृतीया विधीयते, चशब्दात्सा च भवति। छन्दसि विषये जुहोतेः कर्मणि कारके तृतीया विभक्तिर्भवति द्वितीया च। यवाग्वा ऽग्निहोत्रं जुहोति। यवागूमग्निहोत्रं जुहोति। छन्दसीति किम्। यवागूमग्निहोत्रं जुहोति॥

अन्तरान्तरेण युक्ते ॥ ४ ॥

द्वितीया स्वर्यते न तृतीया । अन्तराऽन्तरेणशब्दौ निपातौ साहचर्याद्गृह्येते । आभ्यां योगे द्वितीया विभक्तिर्भवति । षष्ठ्यपवादो योग । तत्रान्तराशब्दो मध्यमाधेयप्रधानमाचष्टे । अन्तरेणशब्दस्तु तच्च विनार्थं च । अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः । अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलुः * । अन्तरेण पुरुषकारं न किंचिल्लभ्यते । युक्तग्रहणं किम् । अन्तरा तक्षशिलां च पाटलिपुत्रं स्रुघ्नस्य प्राकारः ॥

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ ५ ॥

कालशब्देभ्यो ऽध्वशब्देभ्यश्च द्वितीया विभक्तिर्भवति अत्यन्तसंयोगे गम्यमाने † । क्रियागुणद्रव्यैः साकल्येन कालाध्वनोः संबन्धो ऽत्यन्तसंयोगः । मासमधीते । संवत्सरमधीते । मासं कल्याणी । संवत्सरं कल्याणी । मासं गुडधानाः । संवत्सरं गुडधानाः । अध्वनः खल्वपि । क्रोशमधीते । योजनमधीते । क्रोशं कुटिला नदी । योजनं कुटिला नदी । क्रोशं पर्वतः । योजनं पर्वतः । अत्यन्तसंयोगइति किम् । मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः ॥

अपवर्गे तृतीया ॥ ६ ॥

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगइति वर्त्तते । अपवर्गः फलप्राप्तौ सत्यां क्रियापरिसमाप्तिः । अपवर्गे गम्यमाने कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया विभक्तिर्भवति । मासेनानुवाको ऽधीतः । संवत्सरेणानुवाको ऽधीतः । अध्वनः । क्रोशेनानुवाको ऽधीतः । योजनेनानुवाको ऽधीतः । अपवर्गइति किम् । क्रोशमधीतो ऽनुवाकः । मासमधीतः । कर्तृव्यावृत्तौ फलसिद्धेरभावात् तृतीया न भवति । मासमधीतो ऽनुवाको न चानेन गृहीतः ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ ७ ॥

कालाध्वनोरिति वर्त्तते । कारकयोर्मध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यां सप्तमीपञ्चम्यौ विभक्ती भवतः । अद्य भुक्त्वा देवदत्तो द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता । त्र्यहे त्र्यहाद्वोक्ता । कर्तृशक्त्योर्मध्ये कालः । इहस्थो ऽयमिष्वासः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति । क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति । कर्तृकर्मणोः कारकयोः कर्मापादानयोः कर्माधिकरणयोर्वा मध्ये क्रोशः । संख्यातानुदेशो न भवत्यस्वरितत्वात् ॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥ ८ ॥

कर्मप्रवचनीयैर्युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति । अनुर्लक्षणे । शाकल्यस्य संहितामनुप्रावर्षत् । आगस्त्यमन्वसिञ्चत्प्रजाः ॥

---

* तव मम मध्ये कमण्डलुरित्यर्थः इत्यधिकं क्व चित् ।

† षष्ठ्यपवादो ऽयं योग इत्यधिकं क्व चित् ।

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ ९ ॥

कर्मप्रवचनीययुक्तइति वर्त्तते। यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं कर्मप्रवचनीयैर्युक्ते तत्र सप्तमी विभक्तिर्भवति। उपखार्य्यां द्रोणः। उपनिष्के कार्षापणम्। यस्य चेश्वरवचनमिति स्वस्वामिनोर्द्वयोरपि पर्यायेण सप्तमी विभक्तिर्भवति। अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः, अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः, इति। द्वितीयापवादो योगः॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १० ॥

अप आङ् परि इत्येतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति। अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। आ पाटलिपुत्राद्वृष्टो देवः। परिपरि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। अपेन साहचर्यात्परेर्वर्जनार्थस्य ग्रहणम्। तेनेह न भवति। वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ ११ ॥

मुख्यसदृशः प्रतिनिधिः। दत्तस्य प्रतिनिर्यातनं प्रतिदानम्। यस्मात्प्रतिनिधिर्यतश्च प्रतिदानं तत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते पञ्चमी विभक्तिर्भवति। अभिमन्युरर्जुनतः प्रति। प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति। माषानस्मै तिलेभ्यः प्रतियच्छति। ननु च प्रतिनिधिप्रतिदाने कर्मप्रवचनीययुक्ते न तु यतः प्रतिनिधिप्रतिदाने। नैष दोषः। संबन्धसंबन्धात्तस्यापि योगोऽस्त्येव॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १२ ॥

गत्यर्थानां धातूनां चेष्टाक्रियाणां परिस्पन्दक्रियाणां कर्मणि कारकेऽध्ववर्जिते द्वितीयाचतुर्थ्यौ भवतः। ग्रामं गच्छति। ग्रामाय गच्छति। ग्रामं व्रजति। ग्रामाय व्रजति। गत्यर्थग्रहणं किम्। ओदनं पचति। कर्मणीति किम्। अश्वेन व्रजति। चेष्टायामिति किम्। मनसा पाटलिपुत्रं गच्छति। अनध्वनीति किम्। अध्वानं गच्छति। अध्वन्यर्थग्रहणम्। पन्थानं गच्छति। मार्गं गच्छति। आस्थितप्रतिषेधश्चायं विज्ञेयः। आस्थितः संप्राप्तः, आक्रान्त उच्यते। यत्र उत्पथेन पन्थानं गच्छति, तत्र भवितव्यमेव चतुर्थ्या। पथे गच्छतीति। द्वितीयाग्रहणं किम्। न चतुर्थ्येव विकल्प्येत। अपवादविषयेऽपि यथा स्यात्। ग्रामं गन्ता। ग्रामाय गन्ता। कृद्योगलक्षणा षष्ठी न भवति॥

चतुर्थी संप्रदाने ॥ १३ ॥

संप्रदाने कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति। उपाध्यायाय गां ददाति। माणवकाय भिक्षां ददाति। देवदत्ताय रोचते। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। इत्यादि॥ चतुर्थीविधाने तादर्थ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ यूपाय दारु। कुण्डलाय हिरण्यम्। रन्धनाय स्थाली अवहननायोलूखलम्॥ क्लृपिसंपद्यमाने चतुर्थी

वक्तव्या ॥ * ॥ मूत्राय कल्पते यवागूः । उच्चाराय कल्पते यवागूः । क्लृपीत्यर्थनिर्देशः । मूत्राय संपद्यते यवागूः । मूत्राय जायते यवागूः ॥ उत्पातेन ज्ञाप्यमाने चतुर्थी वक्तव्या ॥ * ॥

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥

हितयोगे चतुर्थी वक्तव्या ॥ * ॥ गोभ्यो हितम् । अरोचकिने हितम् ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥ १४ ॥

क्रिया क्रियार्था उपपदं यस्य सो ऽयं क्रियार्थोपपदः । तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायामित्येष विषयो लक्ष्यते । क्रियार्थोपपदस्य च स्थानिनो ऽप्रयुज्यमानस्य धातोः कर्मणि कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति । द्वितीयापवादो योगः । एधेभ्यो व्रजति । पुष्पेभ्यो व्रजति । क्रियार्थोपपदस्येति किम् । प्रविश पिण्डीम् । प्रविशतर्पणम् । भक्षिरत्र स्थानी न तु क्रियार्थोपपदः । कर्मणीति किम् । एधेभ्यो व्रजति शकटेन । स्थानिन इति किम् । एधानाहर्तुं व्रजति ॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ १५ ॥

तुमुना समानार्थस्तुमर्थः । तुमर्थभाववचनप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाच्चतुर्थी विभक्तिर्भवति । भाववचनाश्चेति वक्ष्यति, तस्येदं ग्रहणम् । पाकाय व्रजति । त्यागाय व्रजति । भूतये व्रजति । संपत्तये व्रजति । तुमर्थादिति किम् । पाक,स्त्यागो, रागः । भाववचनादिति किम् । कारको व्रजति ॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च ॥ १६ ॥

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा ऽलं वषट् इत्येतैर्योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति । नमो देवेभ्यः । स्वस्ति प्रजाभ्यः । स्वाहा ऽग्नये । स्वधा पितृभ्यः । अलं मल्लो मल्लाय । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । प्रभुर्मल्लो मल्लाय । शक्तो मल्लो मल्लाय । वषडग्नये । वषडिन्द्राय । चकारः पुनरस्यैव समुच्चयार्थः । तेनाशीर्विवक्षायामपि षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति । स्वस्ति गोभ्यो भूयात् । स्वस्ति ब्राह्मणेभ्यः ॥

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषा ऽप्राणिषु ॥ १७ ॥

मन्यतेः कर्मणि, मन्यकर्मणि । मन्यकर्मणि प्राणिवर्जिते विभाषा चतुर्थी विभक्तिर्भवति अनादरे गम्यमाने । अनादरस्तिरस्कारः । न त्वा तृणं मन्ये । न त्वा तृणाय मन्ये । न त्वा बुसं मन्ये । न त्वा बुसाय मन्ये । मन्यतिग्रहणं किम् । न त्वा तृणं चिन्तयामि । विकरणनिर्देशः किमर्थः । न त्वा तृणं मन्वे । अनादरइति किम् ।

अश्मानं दृषदं मन्ये मन्ये काष्ठमुलूखलम् ।
अन्धायास्तं सुतं मन्ये यस्य माता न पश्यति ॥

अप्राणिष्विति किम् । न त्वा शृगालं मन्ये ॥ यदेतदप्राणिष्विति तद-नावादिष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ व्यवस्थितविभाषा च ज्ञेया । न त्वा नावं मन्ये । नावमुत्तीर्यं न नाव्यम् । न त्वा ऽन्नं मन्ये । यावन्न भुक्तं श्राद्धम् । प्राणिषु तूभयम् । न त्वा काकं मन्ये । न त्वा शृगालं मन्ये । इह चतुर्थी द्वितीया च भवतः । न त्वा श्वानं मन्ये । न त्वा शुने मन्ये । युष्मदः कस्मान्न भवति चतुर्थी, एतदपि हि मन्यतेः कर्म, व्यवस्थितविभाषाविज्ञानादेव न भवति ॥

कर्तृकरणयोस्तृतीया ॥ १८ ॥

कर्त्तरि करणे च कारके तृतीया विभक्तिर्भवति । देवदत्तेन कृतम् । यज्ञद-त्तेन भुक्तम् । करणे । दात्रेण लुनाति । परशुना छिनत्ति ॥ तृतीयाविधाने प्रकृत्या-दीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्रकृत्या ऽभिरूपः । प्रकृत्या दर्शनीयः । प्रायेण याज्ञिकः । प्रायेण वैयाकरणः । गार्ग्यो ऽस्मि गोत्रेण । समेन धावति । विषमेण धावति । द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति । पञ्चकेन पशून् क्रीणाति । सहस्रेण पशून् क्रीणाति ॥

सहयुक्ते ऽप्रधाने ॥ १९ ॥

सहार्थेन युक्ते ऽप्रधाने तृतीया विभक्तिर्भवति । पुत्रेण सहागतः पिता । पुत्रेण सह गोमान् । पितुरत्र क्रियादिसंबन्धः शब्देनोच्यते, पुत्रस्य तु प्रतीय-मान, इति तस्याप्राधान्यम् । सहार्थेन च योगे विधानात्पर्यायप्रयोगेपि भवति । पुत्रेण सार्द्धमिति । विनापि सहशब्देन भवति । वृद्धो यूनेति निदर्शनात् । अप्रधानइति किम् । शिष्येण सहोपाध्यायस्य गौः ॥

येनाङ्गविकारः ॥ २० ॥

अङ्गशब्दो ऽत्राङ्गसमुदाये शरीरे वर्तते, येनेति च तदवयवो हेतुत्वेन निर्दिश्यते । येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया विभक्तिर्भ-वति । अक्ष्णा काणः । पादेन खञ्जः । पाणिना कुण्ठः* । अवयवधर्मेण समु-दायो व्यपदिश्यते । अङ्गविकार इति किम् । अक्षिकाणमस्य ॥

इत्थंभूतलक्षणे ॥ २१ ॥

कं चित्प्रकारं प्राप्त इत्थंभूत,स्तस्य लक्षणमित्थंभूतलक्षणं, ततस्तृतीया विभक्तिर्भवति । अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत् । छात्रेणोपाध्यायम् ।

* कुणिरिति पाठान्तरम् ।

शिखया परिव्राजकम् । इह न भवति । कमण्डलुपाणिश्छात्र इति । लक्षणस्य समासे ऽन्तर्भूतत्वात् । इत्थंभूत इति किम् । वृक्षं प्रति विद्योतनम्* ॥

संज्ञो ऽन्यतरस्यां कर्मणि ॥ २२ ॥

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि कारके द्वितीयायां प्राप्तायामन्यतरस्यां तृतीया विभक्तिर्भवति । पित्रा संजानीते । पितरं संजानीते । मात्रा संजानीते । मातरं संजानीते† ॥

हेतौ ॥ २३ ॥

फलसाधनयोग्यः पदार्थो लोके हेतुरुच्यते । तद्वाचिनस्तृतीया विभक्तिर्भवति । धनेन कुलम् । कन्यया शोकः । विद्यया यशः ॥

अकर्तर्यृणे पञ्चमी ॥ २४ ॥

हेताविति वर्त्तते । कर्त्तृवर्जितं यदृणं हेतुस्ततः पञ्चमी विभक्तिर्भवति । तृतीयापवादो योगः‡ । शताद्बद्धः । सहस्राद्बद्धः । अकर्त्तरीति किम् । शतेन बन्धितः । शतमृणं च भवति, प्रयोजकत्वाच्च कर्त्तृसंज्ञम् ॥

विभाषा गुणे ऽस्त्रियाम् ॥ २५ ॥

हेताविति वर्त्तते । गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे विभाषा पञ्चमी विभक्तिर्भवति । जाड्याद्बद्धः । जाड्येन बद्धः । पाण्डित्याद् मुक्तः । पाण्डित्येन मुक्तः । गुणग्रहणं किम् । धनेन कुलम् । अस्त्रियामिति किम् । बुद्ध्या मुक्तः । प्रज्ञया मुक्तः ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ २६ ॥

हेतोः प्रयोगो हेतु प्रयोगः । हेतुशब्दस्य प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी विभक्तिर्भवति । अन्नस्य हेतोर्वसति ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ २७ ॥

सर्वनाम्नो हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया विभक्तिर्भवति षष्ठी च । पूर्वेण षष्ठ्यामेव प्राप्तायामिदमुच्यते । कस्य हेतोर्वसति । केन हेतुना वसति ॥ यस्य हेतोर्वसति । येन हेतुना वसति ॥ निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् ॥ * ॥ किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन वसति । कस्मै निमित्ताय वसति । कस्मान्निमित्ताद्वसति । कस्य निमित्तस्य वसति । कस्मिंन्निमित्ते वसति । एवं कारणहेत्वोरप्युदाहार्यम् । अर्थग्रहणं चैतत् । पर्यायोपादानं तु

---

* इत्थंभूत इत्यारभ्य विद्योतनमित्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।

† संपूर्वः किम् । मातरं जानाति । पितरं जानाति । कर्मणीति किम् । पुत्रेण पुत्रं संजानीते पिता । इत्यधिकं क्व चित् ।

‡ तृतीयापवादो ऽयं योग इत्यधिकं कुत्र चित् ।

स्वरूपविधिर्मा विज्ञायीति । तेनेहापि भवति । किं प्रयोजनं वसति । केन प्रयोजनेन वसति । कस्मै प्रयोजनाय वसति । कस्मात्प्रयोजनाद् वसति । कस्य प्रयोजनस्य वसति । कस्मिन् प्रयोजने वसति ॥

अपादाने पञ्चमी ॥ २८ ॥

अपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति । ग्रामादागच्छति । पर्वतादवरोहति । वृकेभ्यो बिभेति । अध्ययनात्पराजयते । पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्रासादमारुह्य प्रेक्षते, प्रासादात्प्रेक्षते ॥ अधिकरणे चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ आसने उपविश्य प्रेक्षते, आसनात्प्रेक्षते । शयनात्प्रेक्षते ॥ प्रश्नाख्यानयोश्च पञ्चमी वक्तव्या ॥ * ॥ कुतो भवान्, पाटलिपुत्रात् ॥ यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी वक्तव्या ॥ * ॥ गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि । कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे ॥ तद्युक्तात्काले सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥ कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे ॥ अध्वनः प्रथमा सप्तमी च वक्तव्या ॥ * ॥ गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि, चतुर्षु योजनेषु वा ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ २९ ॥

अन्य आरात् इतर ऋते दिक्शब्द अञ्चूत्तरपद आच् आहि इत्येतैर्योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति । अन्य इत्यर्थग्रहणम् । तेन पर्यायप्रयोगेऽपि भवति । अन्यो देवदत्तात् । भिन्नो देवदत्तात् । अर्थान्तरं देवदत्तात् । विलक्षणो देवदत्तात् । आराच्छब्दो दूरान्तिकार्थे वर्त्तते । तत्र दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्यामिति प्राप्ते पञ्चमी विधीयते । आराद्देवदत्तात् । आराद्यज्ञदत्तात् । इतर इति निर्दिश्यमानप्रतियोगी पदार्थ उच्यते । इतरो देवदत्तात् । ऋते इति अव्ययं वर्जनार्थे । ऋते देवदत्तात् । ऋते यज्ञदत्तात् । दिक्शब्दः । पूर्वो ग्रामात् । उत्तरो ग्रामात् । पूर्वो ग्रीष्माद्वसन्तः । उत्तरो ग्रीष्मो वसन्तात् । दिक्शब्द इत्यत्र शब्दग्रहणं देशकालवृत्तिनापि दिक्शब्देन योगे यथा स्यात् । इतरथा हि दिग्वृत्तिनैव स्यात् । इयमस्याः पूर्वेति । इह तु न स्यात् । अयमस्मात्पूर्वः काल इति । अञ्चूत्तरपद । प्राग् ग्रामात् । प्रत्यग् ग्रामात् । ननु चायमपि दिक्शब्द एव । षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेनेति वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपकर्षः । आच् । दक्षिणा ग्रामात् । उत्तरा ग्रामात् । आहि । दक्षिणाहि ग्रामात् । उत्तराहि ग्रामात् ॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ ३० ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुजिति वक्ष्यति, तस्येदं ग्रहणम् । अतसर्थेन प्रत्ययेन युक्ते षष्ठी विभक्तिर्भवति । दक्षिणतो ग्रामस्य । उत्तरतो ग्रामस्य । पुरस्ताद् ग्रामस्य । उपरि ग्रामस्य । उपरिष्टाद्ग्रामस्य ॥

एनपा द्वितीया ॥ ३१ ॥

एनबन्यतरस्यामदूरे पञ्चम्या इति वक्ष्यति। तेन युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति। पूर्वेण षष्ठ्यां प्राप्तायामिदं वचनम्। दक्षिणेन ग्रामम्। उत्तरेण ग्रामम्। षष्ठ्यपीष्यते। दक्षिणेन ग्रामस्य। उत्तरेण ग्रामस्य। तदर्थं योगविभागः कर्तव्यः॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीया ऽन्यतरस्याम् ॥ ३२ ॥

पञ्चमीग्रहणमनुवर्त्तते। पृथक् विना नाना इत्येतैर्योगे तृतीया विभक्तिर्भवति अन्यतरस्यां पञ्चमी च। पृथग् देवदत्तेन। पृथग् देवदत्तात्। विना देवदत्तेन। विना देवदत्तात्। नाना देवदत्तेन। नाना देवदत्तात्। पृथग्विनानानाभिरिति योगविभागो द्वितीयार्थः।

विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना।
विना हस्तिकृतान्दोषान्केनेमौ पातितौ द्रुमौ॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यास- त्त्ववचनस्य ॥ ३३ ॥

स्तोक अल्प कृच्छ्र कतिपय इत्येतेभ्यो ऽसत्त्ववचनेभ्यः करणे कारके ऽन्यतरस्यां तृतीया भवति। पञ्चम्यत्र पक्षे विधीयते, तृतीया तु करणादित्येव सिद्धा। यदा तु धर्ममात्रं करणतया विवक्ष्यते न द्रव्यं, तदा स्तोकादीनामसत्त्ववचनता। स्तोकान्मुक्तः। स्तोकेन मुक्तः। अल्पान्मुक्तः। अल्पेन मुक्तः। कृच्छ्रान्मुक्तः। कृच्छ्रेण मुक्तः। कतिपयान्मुक्तः। कतिपयेन मुक्तः। असत्त्ववचनस्येति किम्। स्तोकेन विषेण हतः। अल्पेन मधुना मत्तः। करणइति किम्। क्रियाविशेषणे कर्मणि मा भूत्। स्तोकं मुञ्चति॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥ ३४ ॥

पञ्चम्यनुवर्त्तते। दूरान्तिकार्थैः शब्दैर्योगे षष्ठी विभक्तिर्भवत्यन्यतरस्यां पञ्चमी च। दूरं ग्रामात्। दूरं ग्रामस्य। विप्रकृष्टं ग्रामात्। विप्रकृष्टं ग्रामस्य। अन्तिकं ग्रामात्। अन्तिकं ग्रामस्य। अभ्याशं ग्रामात्। अभ्याशं ग्रामस्य। अन्यतरस्यांग्रहणं पञ्चम्यर्थम्। इतरथा हि तृतीया पक्षे स्यात्॥

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ ३५ ॥

पञ्चम्यनुवर्त्तते। दूरान्तिकार्थेभ्यः शब्देभ्यो द्वितीया विभक्तिर्भवति, चकारात्पञ्चमी तृतीयापि समुच्चीयते। दूरं ग्रामस्य। दूराद्ग्रामस्य। दूरेण ग्रामस्य। अन्तिकं ग्रामस्य। अन्तिकाद्ग्रामस्य। अन्तिकेन ग्रामस्य। प्रातिपदिकार्थे विधानम्। असत्त्ववचनग्रहणं चानुवर्त्तते। सत्त्वशब्देभ्यो यथायथं विभक्तयो भवन्ति। दूरः पन्थाः। दूराय पथे देहि। दूरस्य पथः स्वम्॥

सप्तम्यधिकरणे च ॥ ३६ ॥

सप्तमी विभक्तिर्भवत्यधिकरणे कारके, चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्यश्च। कटे आस्ते। शकटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। दूरान्तिकार्थेभ्यः खल्वपि। दूरे ग्रामस्य। अन्तिके ग्रामस्य। आभ्याशे ग्रामस्य। दूरान्तिकार्थेभ्यश्चतस्रो विभक्तयो भवन्ति, द्वितीयातृतीयापञ्चमीसप्तम्यः ॥ सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अधीती व्याकरणे। परिगणिती याज्ञिके। आम्नाती छन्दसि ॥ साध्वसाधुप्रयोगे च सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥ साधुर्देवदत्तो मातरि। असाधुः पितरि ॥ कारकार्हाणां च कारकत्वे सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥ ऋद्धेषु भुञ्जानेषु दरिद्रा आसते। ब्राह्मणेषु तरत्सु वृषला आसते ॥ अकारकार्हाणां चाकारकत्वे सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥ दरिद्रेष्वासीनेषु ऋद्धा भुञ्जते। वृषलेष्वासीनेषु ब्राह्मणास्तरन्ति ॥ तद्विपर्यासे च सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥ ऋद्धेष्वासीनेषु दरिद्रा भुञ्जते। ब्राह्मणेष्वासीनेषु वृषलास्तरन्ति ॥ निमित्तात्कर्मसंयोगे सप्तमी वक्तव्या ॥ * ॥

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु* चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥

यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥ ३७ ॥

सप्तमीति वर्तते। भावः क्रिया। यस्य च भावेन यस्य च क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततो भाववतः सप्तमी विभक्तिर्भवति। प्रसिद्धा च क्रिया क्रियान्तरं लक्षयति। गोषु दुह्यमानासु गतः। दुग्धास्वागतः। अग्निषु हूयमानेषु गतः। हुतेष्वागतः। भावेनेति किम्। यो जटाभिः स भुङ्क्ते। पुनर्भावग्रहणं किम्। यो भुङ्क्ते स देवदत्तः ॥

षष्ठी चानादरे ॥ ३८ ॥

पूर्वेण सप्तम्यां प्राप्तायां षष्ठी विधीयते, चकारात्सापि भवति। अनादराधिके भावलक्षणे भाववतः षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः। रुदतः प्राव्राजीत्। रुदति प्राव्राजीत्। क्रोशतः प्राव्राजीत्। क्रोशति प्राव्राजीत्। क्रोशन्तमनादृत्य प्रव्रजित इत्यर्थः ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ॥ ३९ ॥

षष्ठीसप्तम्यौ वर्तेते। स्वामिन् ईश्वर अधिपति दायाद साक्षिन् प्रतिभू प्रसूत इत्येतैर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः। गवां स्वामी। गोषु स्वामी। गवामीश्वरः। गोष्वीश्वरः। गवामधिपतिः। गोष्वधिपतिः। गवां दायादः।

---

* बालेष्विति पाठान्तरम्।

गोषु दायादः । गवां साक्षी । गोषु साक्षी । गवां प्रतिभूः । गोषु प्रतिभूः । गवां प्रसूतः । गोषु प्रसूतः । षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पक्षे सप्तमीविधानार्थं वचनम् ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥ ४० ॥

षष्ठीसप्तम्यौ वर्तेते । आयुक्तो व्यापारितः* कुशलो निपुणः ताभ्यां योगे आसेवायां गम्यमानायां षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः । आसेवा तात्पर्यम् । आयुक्तः कटकरणस्य । आयुक्तः कटकरणे । कुशलः कटकरणस्य । कुशलः कटकरणे । आसेवायामिति किम् । आयुक्तो गौः शकटे । ईषद्युक्त इत्यर्थः । तत्र सप्तम्येवाधिकरणे भवति ॥

यतश्च निर्द्धारणम् ॥ ४१ ॥

षष्ठीसप्तम्यौ वर्तेते । जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्द्धारणम् । यतो निर्द्धारणं ततः षष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः । मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः । मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः । गवां कृष्णा संपन्नक्षीरतमा । गोषु । कृष्णा संपन्नक्षीरतमा । अध्वगानां धावन्तः शीघ्रतमाः । अध्वगेषु धावन्तः शीघ्रतमाः ॥

पञ्चमी विभक्ते ॥ ४२ ॥

यतश्च निर्द्धारणमिति वर्तते । षष्ठीसप्तम्यपवादो योगः । विभागो विभक्तम् । यस्मिन्निर्द्धारणाश्रये विभक्तमस्ति ततः पञ्चमी विभक्तिर्भवति । माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः सुकुमारतराः । आढ्यतराः ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥ ४३ ॥

साधु निपुण इत्येताभ्यां योगे ऽर्चायां गम्यमानायां सप्तमी विभक्तिर्भवति, न चेत् प्रतिः प्रयुज्यते । मातरि साधुः । पितरि साधुः । मातरि निपुणः । पितरि निपुणः । अर्चायामिति किम् । साधुर्भृत्यो राज्ञः । तत्त्वकथने न भवति । अप्रतेरिति किम् । साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति ॥ अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ साधुर्देवदत्तो मातरं परि । मातरमनु ॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ ४४ ॥

प्रसित उत्सुक इत्येताभ्यां योगे तृतीया विभक्तिर्भवति, चकारात्सप्तमी च । प्रसितः प्रसक्तो, यस्तत्र नित्यमेवावबद्धः स उच्यते । केशैः प्रसितः । केशेषु प्रसितः । केशैरुत्सुकः । केशेषूत्सुकः ॥

नक्षत्रे च लुपि ॥ ४५ ॥

तृतीयासप्तम्यावनुवर्तेते । लुबन्तान्नक्षत्रशब्दात् तृतीयासप्तम्यौ विभक्ती भवतः । पुष्येण पायसमश्नीयात् । पुष्ये पायसमश्नीयात् । मघाभिः पललौ-

* व्यापृत इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः ।

दनम् । मघासु पललौदनम् । नक्षत्रइति किम् । पञ्चालेषु वसति । लुपीति किम् । मघासु ग्रहः । इह कस्मान्न भवति । अद्य पुष्यः । अद्य कृत्तिका । अधिकरणइति वर्तते । वचनं तु पक्षे तृतीयाविधानार्थम् ॥

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ ४६ ॥

प्रातिपदिकार्थः सत्ता । लिङ्गं स्त्रीलिङ्गपुंलिङ्गनपुंसकानि । परिमाणं, द्रोणः खारी आढकम्* । वचन,मेकत्वद्वित्वबहुत्वानि । मात्रशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे वचनमात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति । प्रातिपदिकार्थमात्रे । उच्चैः । नीचैः । लिङ्गग्रहणं किम् । कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्, इत्यत्रापि यथा स्यात् । परिमाणग्रहणं किम् । द्रोणः, खारी, आढकम्, इत्यत्रापि यथा स्यात् । वचनग्रहणं किम् । एकत्वादिषूक्तेष्वपि यथा स्याद् । एकः, द्वौ, बहवः । प्रातिपदिकग्रहणं किम् । निपातस्यानर्थकस्य प्रातिपदिकत्वमुक्तं ततो ऽपि यथा स्यात् । प्रलम्बते । अध्यागच्छति ॥

संबोधने च ॥ ४७ ॥

आभिमुख्यकरणं संबोधनम्, तदधिके प्रातिपदिकार्थे प्रथमा न प्राप्नोतीति वचनमारभ्यते । संबोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति । हे देवदत्त । हे देवदत्तौ । हे देवदत्ताः ॥

सा ऽऽमन्त्रितम् ॥ ४८ ॥

संबोधने या प्रथमा तदन्तं शब्दरूपमामन्त्रितसंज्ञं भवति । तथा चैवोदाहृतम् । आमन्त्रितप्रदेशा आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद् इत्येवमादयः† ॥

एकवचनं संबुद्धिः ॥ ४९ ॥

आमन्त्रितप्रथमाया यदेकवचनं तत्संबुद्धिसंज्ञं भवति । हे पटो । हे देवदत्त । संबुद्धिप्रदेशा एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेरित्येवमादयः ॥

षष्ठी शेषे ॥ ५० ॥

कर्मादिभ्यो ऽन्यः प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिसंबन्धादिः शेषस्तत्र षष्ठी विभक्तिर्भवति । राज्ञः पुरुषः । पशोः पादः । पितुः पुत्रः ॥

ज्ञो ऽविदर्थस्य करणे ॥ ५१ ॥

‡ जानातेरविदर्थस्याज्ञानार्थस्य करणे कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति । सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते । सर्पिषा करणेन प्रवर्ततइत्यर्थः । प्रवृत्तिव-

---

* 'परिमाणं प्रस्थादि' इति पा० २ ।

† 'आमन्त्रितस्य च' इत्येवमादयः । इति पा० ३ ।

‡ अत्र 'शेषइत्यनुवर्तते' इत्यधिकं क्वचित् ।

यनो जानातिरविदर्थः । अथ वा मिथ्याज्ञानवचनः । सर्पिषि रक्तः प्रतिहतो वा । चित्तभ्रान्त्या तदात्मना सर्वमेव ग्राह्यं प्रतिपद्यते । मिथ्याज्ञानमज्ञानमेव । अविदर्थस्येति किम् । स्वरेण पुत्रं जानाति ॥

अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ ५२ ॥

शेषइति वर्तते । अधीगर्थाः स्मरणार्थाः । दय दानगतिरक्षणेषु । ईश ऐश्वर्ये । एतेषां कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति । मातुरध्येति । मातुः स्मरति । सर्पिषो दयते । सर्पिष ईष्टे । मधुन ईष्टे । कर्मणीति किम् । मातुर्गुणैः स्मरति । शेषइति किम् । मातरं स्मरति ॥

कृञः प्रतियत्ने ॥ ५३ ॥

सतो गुणान्तराधानं प्रतियत्नः । करोतेः कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते प्रतियत्ने गम्यमाने षष्ठी विभक्तिर्भवति । एधोदकस्योपस्कुरुते । शस्त्रपत्रस्योपस्कुरुते । प्रतियत्नइति किम् । कटं करोति । कर्मणीति किम् । एधोदकस्योपस्कुरुते प्रज्ञया । शेषइत्येव । एधोदकमुपस्कुरुते ॥

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥ ५४ ॥

रुजार्थानां धातूनां भाववचनानां भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति । चौरस्य रुजति रोगः । चौरस्यामयत्यामयः । रुजार्थानामिति किम् ॥

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ।
जीव पुत्रक मामेवं तपःसाहसमाचर* ॥

भाववचनानामिति किम् । नदी कूलानि रुजति । अज्वरेरिति किम् । चौरं ज्वरयति ज्वरः ॥ अज्वरिसंताप्योरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चौरं संतापयति तापः । शेषइत्येव । चौरं रुजति रोगः ॥

आशिषि नाथः ॥ ५५ ॥

नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु पठ्यते, तस्याशीःक्रियस्य कर्मणि कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी विभक्तिर्भवति । सर्पिषो नाथते । मधुनो नाथते । आशिषीति किम् । माणवकमुपनाथति, अङ्ग पुत्रकाधीष्व ॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥ ५६ ॥

जासि निप्रहण नाट क्राथ पिष् इत्येतेषां धातूनां हिंसाक्रियाणां कर्मणि

---

* कल्याणी खलु गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ इति पाठान्तरम् ॥

कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति। जसु हिंसायां, जसु ताडने, इति च चुरादौ पठ्यते तस्येदं ग्रहणं, न दैवादिकस्य जसु मोक्षणे, इत्यस्य *। चौरस्योज्जासयति। वृषलस्योज्जासयति। निप्रहण इति संघातविगृहीतविपर्यस्तग्रहणम्। चौरस्य निप्रहन्ति। चौरस्य निहन्ति। चौरस्य प्रहन्ति। चौरस्य प्रणिहन्ति। चौरस्योत्क्राथयति। वृषलस्योत्क्राथयति। चौरस्य क्राथयति। वृषलस्य क्राथयति। निपातनाद्वृद्धिः। अयं हि घटादौ पठ्यते, क्रथ क्नथ क्लथ हिंसार्थाः इति, तत्र घटादयो मित इति मित्संज्ञायां मितां ह्रस्व इति ह्रस्वत्वं स्यात्। चौरस्य पिनष्टि। वृषलस्य पिनष्टि। हिंसायामिति किम्। धानाः पिनष्टि। शेषइत्येव। चौरमुज्जासयति। एषामिति किम्। चौरं हिनस्ति। निप्रहण इति किम्। चौरं विहन्ति †॥

व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥ ५७ ॥

व्यवहृ पण इत्येतयोः समर्थयोः समानार्थयोः कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति। द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे च समानार्थत्वमनयोः। शतस्य व्यवहरति। सहस्रस्य व्यवहरति। शतस्य पणते। सहस्रस्य पणते। आयप्रत्ययः कस्मान्न भवति। स्तुत्यर्थस्य पणतेरायप्रत्यय इष्यते ‡॥ समर्थयोरिति किम्। शलाकां व्यवहरति। विक्षिपतीत्यर्थः। ब्राह्मणान् पणायते। स्तौतीत्यर्थः। शेषइत्येव। शतं पणते॥

दिवस्तदर्थस्य ॥ ५८ ॥

व्यवहृपणिसमानार्थस्य दीव्यतेः कर्मणि षष्ठी विभक्तिर्भवति। शतस्य दीव्यति। सहस्रस्य दीव्यति। तदर्थस्येति किम्। ब्राह्मणं दीव्यति। योगविभाग उत्तरार्थः॥

विभाषोपसर्गे ॥ ५९ ॥

दिवस्तदर्थस्येति नित्यं षष्ठ्यां प्राप्तायां सोपसर्गस्य विकल्प उच्यते। उपसर्गे सति दिवस्तदर्थस्य कर्मणि कारके विभाषा षष्ठी विभक्तिर्भवति। शतस्य प्रतिदीव्यति। सहस्रस्य प्रतिदीव्यति। शतं प्रतिदीव्यति। सहस्रं प्रतिदीव्यति। उपसर्गस्येति किम्। शतस्य दीव्यति। तदर्थस्येत्येव। शलाकां प्रतिदीव्यति॥

द्वितीया ब्राह्मणे ॥ ६० ॥

ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्य कर्मणि कारके द्वितीया विभक्तिर्भवति। गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः। अनुपसर्गस्य षष्ठ्यां प्राप्तायामिदं वचनम्। सोपसर्गस्य तु छन्दसि व्यवस्थितविभाषयापि सिद्ध्यति॥

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने ॥ ६१ ॥

---

* अत्र 'अहिंसार्थत्वात्' इत्यधिकं क्व चित्।

† एषामित्यारभ्य विहन्तीत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते।

‡ अत्र 'न तु व्यवहारार्थस्य' इत्यधिकं क्व चित्।

प्रेष्य इति इष्यतेर्दैवादिकस्य लोण्मध्यमपुरुषस्यैकवचनं, तत्साहचर्याद् ब्रुविरपि तद्विषय एव गृह्यते। प्रेष्यब्रुवोर्हविषः कर्मणः षष्ठी विभक्तिर्भवति देवतासंप्रदाने सति। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोनुब्रूहि। प्रेष्यब्रुवोरिति किम्। अग्नये छागं हविर्वपां मेदो जुहुधि। हविष इति किम्। अग्नये गोमयान् प्रेष्य। देवतासंप्रदान इति किम्। माणवकाय पुरोडाशं प्रेष्य॥ हविषः प्रस्थितस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ इन्द्राग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ६२ ॥

छन्दसि विषये चतुर्थ्यर्थे षष्ठी विभक्तिर्भवति * बहुलम्। पुरुषमृगश्चन्द्रमसः। पुरुषमृगश्चन्द्रमसे। गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्। ते वनस्पतिभ्यः। बहुलग्रहणं किम्। कृष्णो रात्र्यै, हिमवतो हस्ती॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या॥ * ॥ या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वो जायते। या दतो धावति तस्यै श्यावदन्। या नखानि कृन्तति तस्यै कुनखः। या ऽऽङ्क्ते तस्यै काणः। या ऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा। या केशान् प्रलिखति तस्यै खलतिः। अहल्यायै जारः॥

यजेश्च करणे ॥ ६३ ॥

यजेर्धातोः करणे कारके छन्दसि बहुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति। घृतस्य यजते। घृतेन यजते। सोमस्य यजते। सोमेन यजते†॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे काले ऽधिकरणे ॥ ६४ ॥

छन्दसि बहुलमिति निवृत्तम्। कृत्वोऽर्थानां प्रत्ययानां प्रयोगे काले ऽधिकरणे षष्ठी विभक्तिर्भवति। पञ्चकृत्वो ऽह्नो भुङ्क्ते। द्विरह्नो ऽधीते। कृत्वोर्थग्रहणं किम्। अह्नि शेते। रात्रौ शेते। प्रयोगग्रहणं किम्। अहनि भुक्तम्। गम्यते हि द्विस्त्रिश्चतुर्वेति, न त्वप्रयुज्यमाने भवति। कालग्रहणं किम्। द्विः कांस्यपात्र्यां भुङ्क्ते। अधिकरणइति किम्। द्विरह्नो भुङ्क्ते। शेषइत्येव। द्विरहन्यधीते॥

कर्तृकर्मणोः कृति ॥ ६५ ॥

कृत्प्रयोगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी विभक्तिर्भवति। भवतः शायिका। भवत आसिका। कर्मणि। अपां स्रष्टा। पुरां भेत्ता। वज्रस्य भर्त्ता। कर्तृकर्मणोरिति किम्। शस्त्रेण भेत्ता। कृतीति किम्। तद्धितप्रयोगे मा भूत्। कृतपूर्वी कटम्। भुक्तपूर्वी ओदनम्। शेषइति निवृत्तं, पुनः कर्मग्रहणात्। इतरथा हि कर्तरि च कृतीति ब्रूयात्॥

---

* अत्र 'देवतासंप्रदाने सति' इत्यधिकं क्व चित्।

† अत्र 'करणइति किम्। अन्यत्र मा भूत्' इत्यधिकं क्व चित्।

उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥ ६६ ॥

पूर्वेण षष्ठी प्राप्ता नियम्यते । उभयप्राप्ताविति बहुव्रीहिः । उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति सोयमुभयप्राप्तिस्तत्र कर्मण्येव षष्ठी विभक्तिर्भवति, न कर्तरि । आश्चर्यो गवां दोहो ऽगोपालकेन । रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन । साधु खलु पयसः पानं यज्ञदत्तेन । बहुव्रीहिविज्ञानादिह नियमो न भवति । आश्चर्यमिदमोदनस्य नाम पाको ब्राह्मणानां च प्रादुर्भाव इति ॥ अकाकारयोः स्त्रीप्रत्यययोः प्रयोगे नेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम् । चिकीर्षा देवदत्तस्य कटस्य ॥ शेषे विभाषा ॥ * ॥ अकाकारयोः स्त्रीप्रत्यययोर्ग्रहणात् तदपेक्षयाशेषः स्त्रीप्रत्यय एव गृह्यते । विचित्रा हि सूत्रस्य कृतिः पाणिनेः पाणिनिना वा ॥ के चिदविशेषेणैव विभाषामिच्छन्ति ॥ शब्दानामनुशासनमाचार्येण, आचार्यस्येति वा ॥

क्तस्य च वर्तमाने ॥ ६७ ॥

न लोकाव्ययनिष्ठेति प्रतिषेधे प्राप्ते पुनः षष्ठी विधीयते । क्तस्य वर्तमानकालविहितस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्भवति । राज्ञां मतः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां पूजितः । क्तस्येति किम् । ओदनं पचमानः । वर्तमानइति किम् । ग्रामं गतः ॥ नपुंसके भावउपसंख्यानम् ॥ * ॥ छात्रस्य हसितम् । मयूरस्य नृत्तम् । कोकिलस्य व्याहृतम् ॥ शेषविज्ञानात् सिद्धम् ॥ * ॥ तथा च कर्तृविवक्षायां तृतीयापि भवति । छात्रेण हसितमिति ॥

अधिकरणवाचिनश्च ॥ ६८ ॥

क्तोधिकरणे चेति वक्ष्यति, तस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्भवति । अयमपि प्रतिषेधापवादो योगः । इदमेषामासितम् । इदमेषां शयितम् । इदमहेः सृप्तम् । इदं वनकपेर्यातम् । इदमेषां भुक्तम् । इदमेषामशितम् । द्विकर्मकाणां प्रयोगे कर्तरि कृति द्वयोरपि षष्ठी द्वितीयावत् । नेता ऽश्वस्य ग्रामस्य चैत्रः । अन्ये प्रधाने कर्मण्याहुः । तदा नेताश्वस्य ग्रामं चैत्रः * ॥

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ ६९ ॥

कर्तृकर्मणोः कृतीति षष्ठी प्राप्ता प्रतिषिध्यते । ल उ उक अव्यय निष्ठा खलर्थ तृन् इत्येतेषां प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति । ल इति शतृशानचौ कानच्क्वसू किकिनौ च गृह्यन्ते । ओदनं पचन् । ओदनं पचमानः । ओदनं पेचानः । ओदनं पेचिवान् । पपिः सोमम् । ददिर्गाः । उ । कटं चिकीर्षुः । ओदनं बुभुक्षुः । कन्यामलंकरिष्णुः । इष्णुचोपि प्रयोगे निषेधः । † उक । आगामुकं वाराणसीं रक्ष

---

* द्विकर्मकाणां प्रयोगइत्यारभ्य ग्रामं चैत्र इत्येतत्पर्यन्तो ग्रन्थो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† इष्णुचो ऽपि प्रयोगो निषेध इति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

आहुः ॥ उकप्रतिषेधे कमेर्भाषाया अप्रतिषेधः ॥ * ॥ दास्याः कामुकः । अव्यय । कटं कृत्वा । ओदनं भुक्त्वा ॥ अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः ॥ * ॥ पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । निष्ठा । ओदनं भुक्तवान् । देवदत्तेन कृतम् । खलर्थ । ईषत्करः कटो भवता । ईषत्पानः सोमो भवता । तृन्निति प्रत्याहारग्रहणं, लटः शतृशानचावित्यारभ्य आ तृनो नकारात् । तेन शानन्चानश्शतृतृनामपि प्रतिषेधो भवति । सोमं पवमानः । नट माघ्नानः । अधीयन् पारायणम् । कर्ता कटान् । वदिता जनापवादान् ॥ द्विषः शतुर्वा वचनम् ॥ * ॥ चौरं द्विषन् । चौरस्य द्विषन् ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ ७० ॥

अकस्य भविष्यति काले विहितस्येनस्तु भविष्यति चाधमर्ण्ये च विहितस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति । कटं कारको व्रजति । ओदनं भोजको व्रजति । इनः खल्वपि । ग्रामं गमी । ग्रामं गामी । आधमर्ण्ये । शतं दायी । सहस्रं दायी । भविष्यदाधमर्ण्ययोरिति किम् । यवानां लावकः । सक्तूनां पायकः । अवश्यं करी कटस्य । इह कस्मान्न भवति वर्षशतस्य पूरकः, पुत्रपौत्राणां दर्शक इति । भविष्यदधिकारे विहितस्याकस्येदं ग्रहणम् ॥

कृत्यानां कर्तरि वा ॥ ७१ ॥

कर्तृकर्मणोः कृतीति नित्यं षष्ठी प्राप्ता कर्त्तरि विकल्प्यते । कृत्यानां प्रयोगे कर्तरि वा षष्ठी विभक्तिर्भवति, न कर्मणि * । भवता कटः कर्तव्यः । भवतः कटः कर्तव्यः । कर्त्तरीति किम् । गेयो माणवकः साम्नाम् ॥ उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठ्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ आक्रष्टव्या ग्रामं शाखा देवदत्तेन । नेतव्या ग्राममजा देवदत्तेन ॥

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ७२ ॥

तुल्यार्थैः शब्दैर्योगे तृतीया विभक्तिर्भवत्यन्यतरस्यां, पक्षे षष्ठी च, तुलोपमाशब्दौ वर्जयित्वा । शेषे विषये तृतीयाविधानात् तया मुक्ते षष्ठ्येव भवति । तुल्यो देवदत्तेन । तुल्यो देवदत्तस्य । सदृशो देवदत्तेन । सदृशो देवदत्तस्य । अतुलोपमाभ्यामिति किम् । तुला देवदत्तस्य नास्ति । उपमा कृष्णस्य न विद्यते । वेति वर्तमाने ऽन्यतरस्यांग्रहणमुत्तरसूत्रे तस्य चकारेणानुकर्षणार्थम् । इतरथा हि तृतीयानुकृष्येत ॥

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ॥ ७३ ॥

आशिषि गम्यमानायाम् आयुष्य मद्र भद्र कुशल सुख अर्थ हित इत्येतै-

---

* 'न कर्मणी'ति कुत्र विचार्यम् ।

योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति। चकारो विकल्पानुकर्षणार्थः। शेषे चतुर्थीविधानात्तया मुक्ते षष्ठी विभक्तिर्भवति। अत्रायुष्यादीनां पर्यायग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ * आयुष्यं देवदत्ताय भूयात्। आयुष्यं देवदत्तस्य भूयात्। चिरं जीवितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। मद्रं देवदत्ताय भूयात्। मद्रं देवदत्तस्य। भद्रं देवदत्ताय। भद्रं देवदत्तस्य। कुशलं देवदत्ताय। कुशलं देवदत्तस्य। निरामयं देवदत्ताय। निरामयं देवदत्तस्य। सुखं देवदत्ताय। सुखं देवदत्तस्य। शं देवदत्ताय। शं देवदत्तस्य। अर्थो देवदत्ताय। अर्थो देवदत्तस्य। प्रयोजनं देवदत्ताय। प्रयोजनं देवदत्तस्य। हितं देवदत्ताय। हितं देवदत्तस्य। पथ्यं देवदत्ताय। पथ्यं देवदत्तस्य। आशिषीति किम्। आयुष्यं देवदत्तस्य तपः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
द्वितीयस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

द्विगुरेकवचनम् ॥ १ ॥

द्विगुः समासः एकवचनं भवति। एकस्य वचनमेकवचनम्। एकस्यार्थस्य वाचको भवतीत्यर्थः। तदनेन प्रकारेण द्विग्वर्थस्यैकवद्भावो विधीयते,द्विग्वर्थ एकवद्भवतीति। समाहारद्विगोश्चेदं ग्रहणं नान्यस्य। पञ्चपूलाः समाहृताः पञ्चपूली। दशपूली। द्विग्वर्थस्यैकत्वादनुप्रयोगेप्येकवचनं भवति। पञ्चपूलीयं शोभनेति ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥ २ ॥

एकवचनमिति वर्त्तते। अङ्गशब्दस्य प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्त्या त्रीणि वाक्यानि संपद्यन्ते। प्राण्यङ्गानां द्वन्द्व एकवद्भवति,तथा तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानां च। प्राण्यङ्गानां तावत्। पाणिपादम्। शिरोग्रीवम्। तूर्याङ्गानाम्। मार्दङ्गिकपाणविकम्। वीणावादकपरिवादकम्। सेनाङ्गानाम् रथिकाश्वारोहम्। रथिकपादातम्। हस्त्यश्वादिषु परत्वात्पशुद्वन्द्वे विभाषयैकवद् भवति। इतरेतरयोगे समाहारे च द्वन्द्वो विहितः, तत्र समाहारस्यैकत्वात्सिद्धमेवैकवचनम्। इदं तु प्रकरणं विषयविभागार्थम्। प्राण्यङ्गादीनां समाहार एव द्वन्द्वः। दधिपयआदीनामितरेतरयोग एव। वृक्षमृगादीनामुभयत्रेति ॥

अनुवादे चरणानाम् ॥ ३ ॥

---

* अत्रेत्यारभ्य कर्तव्यमित्यन्तः पाठो बहुत्र नास्ति।

चरणशब्दः शाखानिमित्तकः पुरुषेषु वर्तते । चरणानां द्वन्द्व एकवद्भवति, अनुवादे गम्यमाने । प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्त्तनमात्रमनुवादः । उदगात्कठकालापम् । प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम् । कठकालापादीनामुदयप्रतिष्ठे प्रमाणान्तरावगते यदा पुनः शब्देनानूद्येते तदैव मुदाहरणम् । यदा तु प्रथमत एवोपदेशस्तदा प्रत्युदाहरणम् । अनुवादइति किम् । उदगुः कठकालापाः । प्रत्यष्ठुः कठकौथुमाः ॥ स्थेणोरद्यतन्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्थेणोरिति किम् । अनन्दिषुः कठकालापाः । अद्यतन्यामिति किम् । उद्यन्ति कठकालापाः ॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥ ४ ॥

अध्वर्युवेदे यस्य क्रतोर्विधानं सो ऽध्वर्युक्रतुः । अध्वर्युक्रतुवाचिनां शब्दानामनपुंसकलिङ्गानां द्वन्द्व एकवद्भवति । अध्वर्युक्रतुरनपुंसकं द्वन्द्व इति गौणो निर्देशः । अर्काश्वमेधम् । सायाह्नातिरात्रम् । अध्वर्युक्रतुरिति किम् । इषुवज्रौ । उद्भिद्बलभिदौ । अनपुंसकमिति किम् । राजसूयवाजपेये । इह कस्मान्न भवति दर्शपौर्णमासौ, क्रतुशब्दः सोमयज्ञेषु रूढः ॥

अध्ययनतो ऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ॥ ५ ॥

अध्ययनेन निमित्तेन येषामविप्रकृष्टा प्रत्यासन्ना आख्या तेषां द्वन्द्व एकवद्भवति । पदकक्रमकम् । क्रमकवार्तिकम् । संपाठः पदानां क्रमस्य च प्रत्यासत्तिः । अध्ययनत इति किम् । पितापुत्रौ । अविप्रकृष्टाख्यानामिति किम् । याज्ञिकवैयाकरणौ ॥

जातिरप्राणिनाम् ॥ ६ ॥

जातिवाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति, प्राणिनो वर्जयित्वा । आराशस्त्रि । धानाशष्कुलि । जातिरिति किम् । नन्दकपाञ्चजन्यौ । अप्राणिनामिति किम् । ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः । नञिवयुक्तन्यायेन द्रव्यजातीनामयमेकवद्भावो न गुणक्रियाजातीनाम् । रूपरसगन्धस्पर्शाः । गमनाकुञ्चनप्रसारणानि । जातिपरत्वे च जातिशब्दानामयमेकवद्भावो विधीयते, न नियतद्रव्यविवक्षायाम् । इह कुण्डे बदरामलकानि तिष्ठन्तीति ॥

विशिष्टलिङ्गो नदी देशो ऽग्रामाः ॥ ७ ॥

विशिष्टलिङ्गानां भिन्नलिङ्गानां नदीवाचिनां शब्दानां देशवाचिनां च ग्रामवर्जितानां द्वन्द्व एकवद्भवति । नद्यवयवो द्वन्द्वो नदीत्युच्यते । देशावयवश्च देशः । नदी देश इत्यसमासनिर्देश एवायम् । उद्ध्यश्च इरावती च, उद्ध्येरावति । गङ्गाशोणम् । देशः खल्वपि । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च, कुरुकुरुक्षेत्रम् । कुरुकुरुजा-

कुलम् । विशिष्टलिङ्ग इति किम् । गङ्गायमुने । मद्रकेकयाः । नदी देश इति किम् । कुक्कुटमयूर्यौ । अग्रामा इति किम् । जाम्बवश्च शालूकिनी च, जाम्बवशालूकिन्यौ । नदीग्रहणमदेशत्वात् । जनपदो हि देशः । तथा च पर्वतानां ग्रहणं न भवति । कैलासश्च गन्धमादनं च, कैलासगन्धमादने ॥ अग्रामा इत्यत्र नगराणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ इह मा भूत् । मथुरा च पाटलिपुत्रं च, मथुरापाटलिपुत्रम् ॥ उभयतश्च ग्रामाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ सौर्यं च नगरं, केतवतं च ग्रामः, सौर्यकेतवते ॥

क्षुद्रजन्तवः ॥ ८ ॥

अपरिचितपरिमाणः क्षुद्रः । क्षुद्रजन्तुवाचिनां द्वन्द्व एकवद्भवति । दंशमशकम् । यूकालिक्षम् । क्षुद्रजन्तव इति किम् । ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥

क्षुद्रजन्तुरनस्थिः स्यादथ वा क्षुद्र एव यः ।
शतं वा प्रसृतौ येषां के चिदा नकुलादपि ॥

आ नकुलादपीतीयमेव स्मृतिः प्रमाणमितरासां तद्विरोधात् ॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ ९ ॥

विरोधो वैरं, शाश्वतिको नित्यः । येषां शाश्वतिको विरोधस्तद्वाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति । मार्जारमूषकम् । श्वशृगालम् । अहिनकुलम् । शाश्वतिक इति किम् । गौपालिशालङ्कायनाः कलहायन्ते । चकारः पुनरस्यैव समुच्चयार्थः । तेन पशुशकुनिद्वन्द्वे विरोधिनामनेन नित्यमेकवद्भावो भवति । अश्वमहिषम् । काकोलूकम् ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ १० ॥

निरवसानं, बहिष्करणम् । कुतो बहिष्करणं, पात्रात् । यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति ते निरवसिताः, न निरवसिताः, अनिरवसिताः । अनिरवसितशूद्रवाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवद्भवति । तक्षायस्कारम् । रजकतन्तुवायम् । अनिरवसितानामिति किम् । चण्डालमृतपाः ॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ ११ ॥

गवाश्वप्रभृतीनि कृतैकवद्भावानि द्वन्द्वरूपाणि साधूनि भवन्ति । गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । कुब्जवामनम् । कुब्जकैरातकम् । पुत्रपौत्रम् । श्वचण्डालम् । स्त्रीकुमारम् । दासीमाणवकम् । शाटीपिच्छकम् । उष्ट्रखरम् । उष्ट्रशशम् । मूत्रशकृत् । मूत्रपुरीषम् । यकृन्मेदः । मांसशोणितम् । दर्भशरम् । दर्भपूतीकम् । अर्जुनशिरीषम् । तृणोलपम् । दासी-

दासम् । कुटीकुटम् । भागवतीभागवतम् । गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चारितं द्वन्द्ववृत्तं, रूपान्तरे तु नायं विधिर्भवति । गोऽश्वम् । गोऽश्वौ । पशुद्वन्द्वविभाषैव भवति ॥

विभाषावृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ॥ १२ ॥

वृक्ष मृग तृण धान्य व्यञ्जन पशु शकुनि अश्ववडव पूर्वापर अधरोत्तर इत्येतेषां द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति । प्लक्षन्यग्रोधम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । रुरुपृषतम् । रुरुपृषताः । कुशकाशम् । कुशकाशाः । व्रीहियवम् । व्रीहियवाः । दधिघृतम् । दधिघृते । गोमहिषम् । गोमहिषाः । तित्तिरिकपिञ्जलम् । तित्तिरिकपिञ्जलाः । अश्ववडवम् । अश्ववडवौ । पूर्वापरम् । पूर्वापरे । अधरोत्तरम् । अधरोत्तरे ॥ बहुप्रकृतिः फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानाम् ॥ * ॥ एषां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवद्भवति, न द्विप्रकृतिः । बदरामलके । रथिकाश्वारोहौ । प्लक्षन्यग्रोधौ । रुरुपृषतौ । हंसचक्रवाकौ । यूकालिक्षे । व्रीहियवौ । कुशकाशौ ॥

विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥ १३ ॥

परस्परविरुद्धं विप्रतिषिद्धम् । विप्रतिषिद्धार्थानां शब्दानामनधिकरणवाचिनामद्रव्यवाचिनां द्वन्द्व एकवद्भवति । विभाषानुकर्षणार्थश्चकारः । शीतोष्णम् । शीतोष्णे । सुखदुःखम् । सुखदुःखे । जीवितमरणम् । जीवितमरणे । विप्रतिषिद्धमिति किम् । कामक्रोधौ । अनधिकरणवाचीति किम् । शीतोष्णे उदके ॥

न दधिपयआदीनि ॥ १४ ॥

यथायथमेकवद्भावे प्राप्ते प्रतिषेध आरभ्यते । दधिपयआदीनि शब्दरूपाणि नैकवद्भवन्ति । दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणौ । स्कन्दविशाखौ । परिव्राट्कौशिकौ * । प्रवर्ग्योपसदौ । शुक्लकृष्णौ । इध्माबर्हिषी । निपातनाद्दीर्घः । दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी । मेधातपसी । अध्ययनतपसी । उलूखलमुसले । आद्यवसाने । श्रद्धामेधे । ऋक्सामे । वाङ्मनसे ॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥ १५ ॥

नेति वर्त्तते । अधिकरणं वर्त्तिपदार्थः, स हि समासस्यार्थस्याधारः, तस्यैतावत्त्वे परिमाणे गम्यमाने द्वन्द्वो नैकवद्भवति । यथायथमेकवद्भावः प्राप्तः प्रतिषिध्यते । दश दन्तोष्ठाः । दश मार्दङ्गिकपाणविकाः ॥

विभाषा समीपे ॥ १६ ॥

अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपे विभाषा द्वन्द्व एकवद्भवति । उपदशं दन्तोष्ठम् । उपदशा दन्तोष्ठाः । उपदशं मार्दङ्गिकपाणविकम् । उपदशा मार्दङ्गि-

* परिव्राजककौशिकौ । इति पा० २ ।

कपाणविकाः । अव्ययस्य संख्यया ऽव्ययीभावोपि विहितो बहुव्रीहिरपि, तत्रै-कवद्भावपत्ते ऽव्ययीभावो ऽनुप्रयुज्यते, इतरत्र बहुव्रीहिः ॥

स नपुंसकम् ॥ १७ ॥

यस्यायमेकवद्भावो विहितः स नपुंसकलिङ्गो भवति द्विगुर्द्वन्द्वश्च । पञ्चगवम् । दशगवम् । द्वन्द्वः खल्वपि । पाणिपादम् । शिरोग्रीवम् । परलि-ङ्गतापवादो योगः ॥ अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते ॥ * ॥ पञ्च-पूली । दशरथी ॥ वा ऽऽबन्तः स्त्रियामिष्टः ॥ * ॥ पञ्चखट्वम् । पञ्चखट्वी ॥ अनो नलोपश्च वा च द्विगुः स्त्रियाम् ॥ * ॥ पञ्चतक्षम् । पञ्चतक्षी ॥ पात्रा-दिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ पञ्चपात्रम् । चतुर्युगम् । त्रिभुवनम् ॥

अव्ययीभावश्च ॥ १८ ॥

अव्ययीभावश्च समासो नपुंसकलिङ्गो भवति । अधिस्त्रि । उपकुमारि । उन्मत्तगङ्गम् । लोहितगङ्गम् । पूर्वपदार्थप्रधानस्यालिङ्गतैव प्राप्ता, ऽन्यपदार्थप्र-धानस्याभिधेयवल्लिङ्गता, ऽत इदमुच्यते । अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः ॥ पुण्य-सुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्यते ॥ * ॥ पुण्याहम् । सुदिनाहम् ॥ पथः संख्याव्य-यादेः क्लीबतेष्यते ॥ * ॥ त्रिपथम् । चतुष्पथम् । विपथम् । सुपथम् ॥ क्रिया-विशेषणानां च क्लीबतेष्यते ॥ * ॥ * मृदु पचति । शोभनं पचति ॥

तत्पुरुषो ऽनञ्कर्मधारयः ॥ १९ ॥

अधिकारोयमुत्तरसूत्रेषूपतिष्ठते । नञ्समासं कर्मधारयं च वर्जयित्वा ऽन्यस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवतीत्येतदधिकृतं वेदितव्यम् । यदित ऊर्द्ध्वमनु-क्रमिष्यामस्तत्र । वक्ष्यति विभाषा सेनासुरेति । ब्राह्मणसेनम् । ब्राह्मणसेना । तत्पुरुष इति किम् । दृढसेनो राजा । अनञिति किम् । असेना । अकर्मधा-रय इति किम् । परमसेना ॥

संज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥ २० ॥

संज्ञायां विषये कन्थान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, सा चेत् कन्था उशीनरेषु भवति । सौशमिकन्थम् । आह्वरकन्थम् । संज्ञायामिति किम् । वीर-णकन्था । उशीनरेष्विति किम् । दाक्षिकन्था । परवल्लिङ्गतापवाद इदं प्रकरणम् ॥

उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् ॥ २१ ॥

उपज्ञायतइत्युपज्ञा उपक्रम्यतइत्युपक्रमः । उपज्ञा च उपक्रमश्च उपज्ञो-पक्रमम् । तदन्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति तदाद्याचिख्यासायां तयोरुप-ज्ञोपक्रमयोरादेराचिख्यासायां गम्यमानायां । आख्यातुमिच्छा आचिख्यासा ।

---

* क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकलिङ्गता च वक्तव्या ॥ * ॥ इति पा० २ ।

यद्युपज्ञेयस्योपक्रम्यस्य चार्थस्यादिराख्यातुमिष्यते तत एतद्भवति । पाणिन्युपज्ञमाकालापकं* व्याकरणम् । पाणिनेरुपज्ञानेन प्रथमतः प्रणीतमाकालापकं व्याकरणम् । व्याड्युपज्ञं दुष्करणम् । आद्योपक्रमं प्रासादः । नन्दोपक्रमाणि मानानि । दर्शनीयोपक्रमं सुकुमारम् । उपज्ञोपक्रममिति किम् । वाल्मीकिश्लोकाः । तदाद्याचिख्यासायामिति किम् । देवदत्तोपज्ञो रथः । यज्ञदत्तोपक्रमो रथः ॥

छाया बाहुल्ये ॥ २२ ॥

विभाषा सेनासुराच्छायेति विभाषां वक्ष्यति, नित्यार्थमिदं वचनम् । छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति बाहुल्ये गम्यमाने । पूर्वपदार्थधर्मो बाहुल्यम् । शलभादीनां हि बहुत्वं गम्यते । शलभच्छायम् । इक्षुच्छायम् । बाहुल्यइति किम् । कुड्यच्छाया ॥

सभा राजामनुष्यपूर्वा ॥ २३ ॥

सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, सा चेत्सभा राजपूर्वा ऽमनुष्यपूर्वा च भवति । इनसभम् । ईश्वरसभम् । इह कस्मान्न भवति । राजसभा । पर्यायवचनस्यैवेष्यते । तदुक्तम् । जितपर्यायस्यैव राजाद्यर्थमिति । अमनुष्यपूर्वा । रक्षःसभम् । पिशाचसभम् । इह कस्मान्न भवति काष्ठसभा । अमनुष्यशब्दो रूढिरूपेण रक्षःपिशाचादिष्वेव वर्त्तते । राजामनुष्यपूर्वेति किम् । देवदत्तसभा ॥

अशाला च ॥ २४ ॥

अशाला च या सभा तदन्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति । संघातवचनो ऽत्र सभाशब्दो गृह्यते । स्त्रीसभम् । दासीसभम् । दासीसंघात इत्यर्थः । अशालेति किम् । अनाथसभा । अनाथकुटीत्यर्थः ॥

विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ॥ २५ ॥

सेना सुरा छाया शाला निशा इत्येवमन्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति विभाषा । ब्राह्मणसेनम् । ब्राह्मणसेना । यवसुरम् । यवसुरा । कुड्यच्छायम् । कुड्यच्छाया । गोशालम् । गोशाला । श्वनिशम् । श्वनिशा ॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २६ ॥

समाहारद्वन्द्वे नपुंसकलिङ्गस्य विहितत्वाद् इतरेतरयोगद्वन्द्वस्येदं ग्रहणम् । परस्य यल्लिङ्गं तद्भवति द्वन्द्वस्य तत्पुरुषस्य च । उत्तरपदलिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोर्विधीयते । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तत्पुरुषस्य । अर्द्धं

* क्व चिद् 'अकालकम्' इति पा० २ ।

पिप्पल्याः, अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी । अर्द्धनखरञ्जनी ॥ द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ द्विगुः । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः । प्राप्तो जीविकां, प्राप्तजीविकः । आपन्नो जीविकाम्, आपन्नजीविकः । अलं जीविकायै, अलंजीविकः । गतिसमास । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः, निष्कौशाम्बिः ॥

पूर्ववदश्ववडवौ ॥ २७ ॥

अश्ववडवयोर्विभाषैकवद्भाव उक्तस्तत्रैकवद्भावादन्यत्र परवल्लिङ्गतायां प्राप्तायामिदमारभ्यते । अश्ववडवयोः पूर्ववल्लिङ्गं भवति । अश्वश्च वडवा चाश्ववडवौ । अर्थातिदेशश्चायं न निपातनं, तत्र द्विवचनमतन्त्रं, वचनान्तरेऽपि पूर्ववल्लिङ्गता भवति । अश्ववडवान्, अश्ववडवैरिति ॥

हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि ॥ २८ ॥

पूर्ववदिति वर्तते । हेमन्तशिशिरे अहोरात्रे इत्येतयोश्छन्दसि विषये पूर्ववल्लिङ्गं भवति । हेमन्तशिशिरावृतून् प्रीणामि । अहोरात्रे इदं ब्रूमः । परवल्लिङ्गतापवादो योगः । अर्थातिदेशश्चायं न निपातनं, तेन द्विवचनमतन्त्रं, वचनान्तरेऽपि पूर्ववल्लिङ्गता भवति । पूर्वपक्षाश्चितयः, अपरपक्षाः पुरीषम्, अहोरात्राणीष्टकाः । छन्दसीति किम् । दुःखे हेमन्तशिशिरे । अहोरात्राविमौ पुण्यौ । छन्दसि लिङ्गव्यत्यय उक्तस्तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

रात्राह्नाहाः पुंसि ॥ २९ ॥

कृतसमासान्तानां निर्देशः । रात्र अह्न अह इत्येते पुंसि भाष्यन्ते । परवल्लिङ्गतायां स्त्रीनपुंसकयोः प्राप्तयोरिदं वचनम् । द्विरात्रः । त्रिरात्रः । चतूरात्रः । पूर्वाह्णः । अपराह्णः । मध्याह्नः । द्व्यहः । त्र्यहः ॥ अनुवाकादयः पुंसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अनुवाकः । शंयुवाकः । सूक्तवाकः ॥

अपथं नपुंसकम् ॥ ३० ॥

अपथशब्दो नपुंसकलिङ्गो भवति । अपथमिदम् । अपथानि गाहते मूढः । इह कस्मान्न भवति, अपथो देशो, ऽपथा नगरी । तत्पुरुष इति वर्तते ॥

अर्धर्चाः पुंसि च ॥ ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि नपुंसके च भाष्यन्ते । अर्धर्चः । अर्धर्चम् । गोमयः । गोमयम् । शब्दरूपाश्रया चेयं द्विलिङ्गता क्वचिदर्थभेदेनापि व्यवतिष्ठते । यथा पद्मशङ्खशब्दौ निधिवचनौ पुंलिङ्गौ । जलजे उभयलिङ्गौ । भूतशब्दः पिशाचे उभयलिङ्गः । क्रियाशब्दस्याभिधेयवल्लिङ्गम् । सैन्धवशब्दो लवणे उभयलिङ्गः । यौगिकस्याभिधेयवल्लिङ्गम् । सारशब्द उत्कर्षे पुंलिङ्गो न्यायादन-

नपेते नपुंसकं, नैतत्सारमिति । धर्म इत्यपूर्वे पुंलिङ्गः । तत्साधने नपुंसकम् । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । अर्द्धर्च । गोमय । कषाय । कार्षापण । कुतप । कपाट । शङ्ख । चक्र । गूथ । यूथ । ध्वज । कबन्ध । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूष । अन्धकार । दण्ड । कमण्डलु । मण्ड । भूत । द्वीप । द्यूत । चक्र । धर्म । कर्मन् । मोदक । शतमान । यान । नख । नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । रजत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र । घृत सैन्धव । औषध । आढक । चषक । द्रोण । खलीन । पात्रीव । षष्टिक । वार । बाण । प्रोथ । कपित्थ । शुष्क । शील । शुल्ब । सीधु । कवच । रेणु । कपट । सीकर । मुसल । सुवर्ण । यूप । चमस । वर्ण । क्षीर । कर्ष । आकाश । अष्टापद । मङ्गल । निधन । निर्यास । जृम्भ । वृत्त । पुस्त । क्ष्वेडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु । मूल । मूलक शराव । शाल । वप्र । विमान । मुख । प्रग्रीव । शूल । वज्र । कर्पट । शिखर । कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तृण । पङ्क । कुण्डल । किरीट । अर्बुद । अङ्कुश । तिमिर । आश्रम । भूषण । इल्कस । मुकुल । वसन्त । तडाग । पिटक । विटङ्क । माष । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु । अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चषाल । खण्ड । दर । विटप । रण । बल । मल । मृणाल । हस्त । सूत्र । ताण्डव । गाण्डीव । मण्डप । पटह । सौध । पार्श्व । शरीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुट्टिम । मण्डल । ककुद । तोमर । तोरण । मञ्चक । पुङ्ख । मध्य । बाल । वल्मीक । वर्ष । वस्त्र । देह । उद्यान । उद्योग । स्नेह । स्वर । संगम । निष्क । क्षेम । शूक । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । मूषिक । वल्कल । कुञ्ज । विहार । लोहित । विषाण । भवन । अरण्य । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ लोमश । तमाल । लोह । दण्डक । शपथ प्रतिसर । दारु । धनुस् । मान । तङ्क । वितङ्क । मव । सहस्र । ओदन । प्रवाल । शकट । अपराह्ण । नीड । शकल । * अर्द्धर्चादिः ॥

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥ ३२ ॥

आदेशः कथनम्, अन्वादेशोऽनुकथनम् । इदमोऽन्वादेशविषयस्याशादेशो भवत्यनुदात्तस्तृतीयादौ विभक्तौ परतः । आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता,

---

* कुणप । मुण्ड । पूत । मरु । कंस । लोमन । लिङ्ग । सीर । व्रत । ऋण । कडार । वर्ण । पूर्ण । पणव । विशाल । बुस्त । पुस्तक । पल्लव । निगड । खल । स्थूल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कण्टक । छाल । कुमुद । पुराण । जाल । स्कन्ध । ललाट । कुङ्कुम । कुशल । विडङ्ग । पिण्याक । आर्द्र । हल । कटक । योध । बिम्ब । कुक्कुट । कुडप खण्डल । गुच्छक । वसु । उद्यम । स्तन । स्तेन । चत्र । कलह । पालक । दल । वर्चस्क । कूर्च । तण्डक । तण्डुल । इत्येते पुस्तकान्तरेष्वधिकाः ॥

अथो आभ्यामहरप्यधीतम् । अस्मै छात्राय कम्बलं देहि, अथो अस्मै शाटकमपि देहि । अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्, अथो अस्य प्रभूतं स्वम् * अशादेशवचनं साकच्कार्थम् । इमकाभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता, अथो आभ्यामहरप्यधीतम् । नेह पश्चादुच्चारणमात्रमन्वादेशः, किं तर्हि एकस्यैवाभिधेयस्य पूर्वं शब्देन प्रतिपादितस्य द्वितीयं प्रतिपादनमन्वादेशः । तेनेह न भवति देवदत्तं भोजय, इमं च यज्ञदत्तमिति ॥

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ॥ ३३ ॥

अन्वादेशे अनुदात्त इति वर्तते । एतदोऽन्वादेशविषयस्य अशादेशो भवति अनुदात्तस्त्रतसोः परतः । तौ चापि त्रतसावनुदात्तौ भवतः । एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः । अथो अत्र युक्ता अधीमहे । एतस्माच्छात्राच्छन्दोऽधीष्व, अथो अतो व्याकरणमप्यधीष्व । सर्वानुदात्तं पदं भवति । एतदोऽशित्यशादेशे लब्धे पुनर्वचनमनुदात्तार्थम् ॥

द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥ ३४ ॥

अन्वादेशे अनुदात्त इति वर्त्तते । द्वितीया टा ओस् इत्येतेषु परत इदमेतदोरन्वादेशविषययोरेनशब्द आदेशो भवति अनुदात्तः । इदमो मण्डूकप्लुतिन्यायेनानुवृत्तिः । इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय । अथो एनं व्याकरणमध्यापय । अनेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेनाहरप्यधीतम् । अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं स्वम् । एतदः खल्वपि । एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय, अथो एनं व्याकरणमप्यध्यापय । एतेन छात्रेण रात्रिरधीता, अथो एनेनाहरप्यधीतम् । एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः प्रभूतं स्वम् ॥ एनदिति नपुंसकैकवचने वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रक्षालयैनत् । परिवर्त्तयैनत् । इह कस्मान्न भवति । अयं दण्डो हरानेन । एतमातं ङितं विद्यादिति । यत्र किंचिद् विधाय वाक्यान्तरेण पुनरन्यदुपदिश्यते सोऽन्वादेशः । इह तु वस्तुनिर्देशमात्रं कृत्वा एकमेव विधानम् ॥

आर्द्धधातुके ॥ ३५ ॥

आर्द्धधातुके इत्यधिकारोऽयं, ण्यक्षत्रियार्षञित इति यावत् । यदित ऊर्द्धमनुक्रमिष्यामस्तदार्द्धधातुके वेदितव्यम् । वक्ष्यति हनो वध लिङि । वध्यात् । आर्द्धधातुक इति किम् । हन्यात् । विषयसप्तमी चेयं न परसप्तमी । तेनार्द्धधातुकविवक्षायामादेशेषु कृतेषु पश्चाद्यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति । भव्यम् । प्रचेयम् । आख्येयम् ॥

---

* 'अस्माच्छात्राच्छन्दोऽधीष्व । अथो अस्माद्व्याकरणमप्यधीष्व' । इदमत्राधिकं क्वचित् ।

अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ ३६ ॥

अदो जग्धिरादेशो भवति ल्यपि परतः, तकारादौ च किति प्रत्यये । प्रजग्ध्य । विजग्ध्य । जग्धः । जग्धवान् । इकार उच्चारणार्थो नानुबन्धः । तेन नुम्न भवति । एवं वच्यादीनामपि । इह कस्मान्न भवति अन्नम् । अन्नाण्ण इति निपातनात् ।

जग्धौ सिद्धेन्तरङ्गत्वात्ति कितीति ल्यबुच्यते ।
ज्ञापयत्यन्तरङ्गाणां ल्यपा भवति बाधनम् ॥

तीति किम् । अद्यते । कितीति किम् । अत्तव्यम् ॥

लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ ३७ ॥

लुङि सनि च परतोऽदो घस्लृ आदेशो भवति । ऌदित्करणमङर्थम् । लुङि । अघसत् । अघसताम् । अघसन् । सनि । जिघत्सति । जिघत्सतः । जिघत्सन्ति ॥ घस्लृभावेऽच्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्रात्तीति प्रघसः ॥

घञपोश्च ॥ ३८ ॥

घञि अपि च परतोऽदो घस्लृ आदेशो भवति । घासः । प्रघसः । उपसर्गेऽद इत्यप् ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ३९ ॥

छन्दसि विषये बहुलमदो घस्लृ आदेशो भवति । घस्तान्नूनम् । सग्धिश्च मे । न च भवति । आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतम् । अन्यतरस्यांग्रहणमेव कस्मान्न क्रियते तदेवोत्तरार्थमपि भविष्यति । कार्यान्तरार्थं बहुलग्रहणम् । घस्तामित्यत्रोपधालोपो न भवति ॥

लिट्यन्यतरस्याम् ॥ ४० ॥

लिटि परतोऽदोऽन्यतरस्यां घस्लादेशो भवति । जघास । जक्षतुः । जक्षुः । आद । आदतुः । आदुः ॥

वेञो वयिः ॥ ४१ ॥

लिट्यन्यतरस्यामिति वर्त्तते । वेञो वयिरादेशो भवति अन्यतरस्यां लिटि परतः । इकार उच्चारणार्थः । उवाय । ऊयतुः । ऊयुः । पक्षे, ऊवतुः । ऊवुः । लिटि वयो य इति यकारस्य संप्रसारणं प्रतिषिध्यते । वश्चास्यान्यतरस्यां कितीति वकारो विधीयते । ववौ । ववतुः । ववुः । वेञ इति संप्रसारणं न भवति ॥

हनो वध लिङि ॥ ४२ ॥

हन्तेर्धातोर्वध इत्ययमादेशो भवति लिङि परत आर्धधातुके । वध्यात् ।

वध्यास्ताम्। वध्यासुः। अकारान्तश्चायमादेशः, तत्राकारस्य लोपो भवति। तस्य स्थानिवद्भावादवधीदिति हलन्तलक्षणा वृद्धिरतो हलादेर्लघोरिति न भवति॥

लुङि च ॥ ४३ ॥

लुङि च परतो हनो वध इत्ययमादेशो भवति। अवधीत्। अवधिष्टाम्। अवधिषुः। योगविभाग उत्तरार्थः। आत्मनेपदेषु लिङि विकल्पो मा भूत्॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते। आत्मनेपदेषु परतो हनो लुङ्यन्यतरस्यां वध इत्ययमादेशो भवति। आवधिष्ट। आवधिषाताम्। आवधिषत। न च भवति। आहत। आहसाताम्। आहसत *॥

इणो गा लुङि ॥ ४५ ॥

इणो गा इत्ययमादेशो भवति लुङि परतः। अगात्। अगाताम्। अगुः। लुङीति वर्त्तमाने पुनर्लुङ्ग्रहणमात्मनेपदेष्वन्यतरस्यामित्येतन्मा भूत्। इह त्वविशेषेण नित्यं च भवति। अगात्। अगायि भवता॥ इणवदिक इति वक्तव्यम्॥ *॥ अध्यगात्। अध्यगाताम्। अध्यगुः॥

णौ गमिरबोधने ॥ ४६ ॥

णौ परत इणोऽबोधनार्थस्य गमिरादेशो भवति। इकार उच्चारणार्थः। गमयति। गमयतः। गमयन्ति। अबोधनइति किम्। प्रत्याययति। इणवदिक इत्येव। अधिगमयति॥

सनि च ॥ ४७ ॥

सनि परत इणोऽबोधनार्थस्य गमिरादेशो भवति। जिगमिषति। जिगमिषतः। जिगमिषन्ति। अबोधनइत्येव। अर्थान्प्रतीषिषति इणवदिक इत्येव। अधिजिगमिषति। योगविभाग उत्तरार्थः। इङश्चेति सन्येव यथा स्यात् †॥

इङश्च ॥ ४८ ॥

इङश्च सनि परतो गमिरादेशो भवति। अधिजिगांसते। अधिजिगांसेते। अधिजिगांसन्ते॥

गाङ् लिटि ॥ ४९ ॥

गाङादेशो भवतीङो लिटि परतः। अधिजगे। अधिजगाते। अधिज-

---

* 'आङो यमहन इत्यात्मनेपदम्। हनः सिजिति कित्त्वम्। अनुदात्तोपदेशेति नलोपः। ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः' इति पुस्तकान्तरेऽधिकम्।

† अत्र 'णौ मा भूत्। इति क्व चिदधिकम्।

गिरे। गाङोनुबन्धग्रहणं विशेषणार्थं, गाङ्कुटादिभ्य इत्यत्रास्य ग्रहणं यथा स्यात्। नहि स्थानिवद्भावेन गाङिति रूपं लभ्यते ॥

विभाषा लुङ्लृङोः ॥ ५० ॥

लुङि लृङि च परत इङो विभाषा गाङादेशो भवति। आदेशपक्षे गाङ्कुटादिभ्य इति ङित्त्वं, घुमास्थागापाजहातिसां हलीतीत्वम्। अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। न च भवति। अध्यैष्ट। अध्यैषाताम्। अध्यैषत। लृङि खल्वपि। अध्यगीष्यत। अध्यगीष्येताम्। अध्यगीष्यन्त। न च भवति। अध्यैष्यत। अध्यैष्येताम्। अध्यैष्यन्त ॥

णौ च संश्चङोः ॥ ५१ ॥

इङो गाङ् विभाषेति वर्त्तते। णाविति इङपेक्षा परसप्तमी संश्चङोरिति च यपेक्षा। णौ सन्परे चङ्परे च परत इङो विभाषा गाङादेशो भवति। अधिजिगापयिषति। न च भवति। अध्यापिपयिषति। चङि खल्वपि। अध्यजीगपत् अध्यापिपत् ॥

अस्तेर्भूः ॥ ५२ ॥

अस्तेर्धातोर्भू इत्ययमादेशो भवति आर्द्धधातुके। भविता। भवितुम्। भवितव्यम् *। इह कस्मान्न भवति, ईहामास, ईहामासतुः, ईहामासुः। कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटीति प्रत्याहारग्रहणेनास्तेर्गहणसामर्थ्यात्। तथा चोच्यते।

"अनुप्रयोगे तु भुवा ऽस्त्यबाधनं
स्मरन्ति कर्तुर्वचनं मनीषिणः"

इति ॥

ब्रुवो वचिः ॥ ५३ ॥

ब्रुवो वचिरादेशो भवति आर्धधातुकविषये। इकार उच्चारणार्थः। वक्ता। वक्तुम्। वक्तव्यम्। स्थानिवद्भावेन कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदं भवति। ऊचे। वक्ष्यते ॥

चक्षिङः ख्याञ् ॥ ५४ ॥

चक्षिङः ख्याञादेशो भवत्यार्धधातुके। आख्याता। आख्यातुम्। आख्यातव्यम्। स्थानिवद्भावेन नित्यमात्मनेपदं न भवति। ञकारानुबन्धकरणसामर्थ्यात् †॥ खशादिरप्ययमादेश इष्यते ॥ * ॥ आक्शाता। आक्शातुम्। आक्शातव्यम् ॥ वर्जने प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ दुर्जनाः संचक्ष्याः। वर्जनीया

---

* अत्र 'आर्धधातुकइति किम्। अस्ति। स्तः। सन्ति'। इति क्व चिदधिकम्।

† अत्र 'आख्यास्यति। आख्यास्यते'। इति क्व चिदधिकम्।

इत्यर्थः ॥ असनयोश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ नृचक्षा राक्षसाः हिंसार्थो ऽत्र धातुः । अने खल्वपि । विचक्षणः पण्डितः ॥ बहुलं संज्ञाछन्दसोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अघवधऋगार्त्रविचक्षणाजिराद्यर्थम् ॥

वा लिटि ॥ ५५ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते । लिटि परतश्चक्षिङः ख्याञादेशो वा भवति । आचख्यौ । आचख्यतुः । आचख्युः । न च भवति । आचचक्षे । आचचक्षाते । आचचक्षिरे ॥

अजेर्व्यघञपोः ॥ ५६ ॥

अजेर्धातोर्वीत्ययमादेशो भवत्यार्धधातुके परतो घञपौ वर्जयित्वा । प्रवायकः । प्रवयणीयः । अघञपोरिति किम् । समाजः । उदाजः । अपि तु, समजः । उदजः । समुदोरजः पशुष्वित्यप् । दीर्घोच्चारणं किम् । प्रवीताः ॥ घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् ॥ * ॥ समज्या ॥ वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते ॥ * ॥ प्रवेता । प्राजिता । प्रवेतुम् । प्राजितुम् ॥

वा यौ ॥ ५७ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते । यु इति ल्युटो ग्रहणम् । यौ परभूते अजेर्वी इत्ययमादेशो भवति । प्रवयणो दण्डः । प्राजनो दण्डः । प्रवयणमानय । प्राजनमानय ॥

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ॥ ५८ ॥

ण्यादयो गोत्रप्रत्ययाः । ण्यान्तात् क्षत्रियगोत्रादार्षाद् ञितश्च परयोरणिञोर्यूनि लुग्भवति । ण्यान्तात्तावत् । कुर्वादिभ्यो ण्य,स्तस्माद्यूनि इञ् । तस्य लुक् । कौरव्यः पिता । कौरव्यः पुत्रः । ननु च कौरव्यशब्दस्तिकादिषु पठ्यते, ततः फिञा भवितव्यं, कौरव्यायणिरिति । क्षत्रियगोत्रस्य तत्र ग्रहणं कुरुनादिभ्यो ण्य इत्यनेन विहितस्य । इदं तु ब्राह्मणगोत्रम् । कुर्वादिभ्यो ण्य इति ण्यः । क्षत्रिय । ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चेत्यण् । तस्माद्यूनि इञ् । तस्य लुक् । श्वाफल्कः पिता । श्वाफल्कः पुत्रः । आर्ष । ऋष्यण् । तस्माद्यूनि इञ् । तस्य लुक् । वासिष्ठः पिता । वासिष्ठः पुत्रः । ञित् । अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । तस्माद्यूनि इञ् । तस्य लुक् । बैदः पिता । बैदः पुत्रः । अणः खल्वपि । तिकादिभ्यः फिञ् । तस्माद्यूनि प्राग्दीव्यतो ऽण् । तस्य लुक् । तैकायनिः पिता । तैकायनिः पुत्रः । एतेभ्य इति किम् । शिवादिभ्यो ऽण् । तस्माद् यूनि अत इञ् । तस्य न लुग्भवति । कौहडः पिता । कौहडिः पुत्रः । यूनीति किम् । वामरथ्यस्य छात्राः वामरथाः । कुर्वादिभ्यो ण्य इति ण्यस्तस्मात् कण्वादिभ्यो गोत्रइति शैषिको ऽण् । तस्य लुग्न भवति । अणि-

ओरिति किम् । दाक्षेरपत्यं युवा दाक्षायणः * ॥ अत्रात्स्वगोत्रमात्राद्युवप्रत्ययस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥ बैधिः पिता । बैधिः पुत्रः । जाबालिः पिता । जाबालिः पुत्रः । औदुम्बरिः पिता । औदुम्बरिः पुत्रः । भाण्डीजङ्घिः पिता । भाण्डीजङ्घिः पुत्रः । साल्वावयवलक्षण इञ् । तस्मात्फक् । तस्य लुक् ॥ पैलादिदर्शनात् सिद्धम् ॥

पैलादिभ्यश्च ॥ ५९ ॥

पैल इत्येवमादिभ्यश्च युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पीलाया वेत्यण् । तस्मादणो द्व्यचः इति फिञ् । तस्य लुक् । पैलः पिता । पैलः पुत्रः । अन्ये पैलादय इञन्तास्तेभ्य इञः प्राचामिति लुकि सिद्धे ऽप्रागर्थः पाठः । पैल । शालङ्कि । सात्यकि । सात्यकामि । देवि । औदमज्जि । औदव्रजि । औदमेघि । औदबुद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायनि । राणायनि । रैहक्षिति । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । औज्जिहानि † ॥ तद्राजाच्चाणः ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥

इञः प्राचाम् ॥ ६० ॥

गोत्रे य इञ् तदन्ताद्युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । गोत्रविशेषणं प्राग्ग्रहणं, न विकल्पार्थम् । पान्नागारेरपत्यं युवा । यञिञोश्चेति फक् । तस्य लुक् । पान्नागारिः पिता । पान्नागारिः पुत्रः । मान्थरैषणिः पिता । मान्थरैषणिः पुत्रः । प्राचामिति किम् । दाक्षिः पिता । दाक्षायणः पुत्रः ॥

न तौल्वलिभ्यः ॥ ६१ ॥

अनन्तरेण प्राप्तो लुक् प्रतिषिध्यते । तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य न लुग्भवति । तौल्वलिः पिता । तौल्वलायनः पुत्रः । तौल्वलि । धारणि । रावणि । पारणि । दैलीपि । दैवलि । दैवमति । दैवयज्ञि । प्रावाहणि । मान्धातकि । आनुहारति । श्वाफल्कि । आनुमति । आहिंसि । आसुरि । आयुधि । नैमिषि । आसिबन्धकि । बैकि । पौष्करसादि । वैरकि । वैलकि । वैहति । बैकर्णि । कारेणुपालि । कामलि ‡ ॥

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ ६२ ॥

ते तद्राजाः ञ्यादयस्तद्राजा इति वक्ष्यति,तस्य तद्राजसंज्ञस्य प्रत्ययस्य बहुषु वर्तमानस्य अस्त्रीलिङ्गस्य लुग्भवति, तेनैव चेत्तद्राजेन कृतं बहुत्वं भवति । अङ्गाः । वङ्गाः । पुण्ड्राः । मगधाः । लोहध्वजाः । व्रीहिमताः । तद्राजस्येति

---

* अत्र 'यञिञोश्चेति फको लुग्न भवति' इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

† अत्र 'रागहति । राणि । सैमनि । उंहमानि' । एते पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

‡ अत्र 'रान्धकि । आसुराहति' । प्राणाहति । पौष्कि । कान्दकि । ग्रैवकति । माकराहति' । एते पुस्तकान्तरेष्वधिकाः ।

किम् । औपगवाः । बहुष्विति किम् । आङ्गः । तेनैव ग्रहणं किम् । प्रियो वाङ्गो येषां त इमे प्रियवाङ्गाः । अस्त्रियामिति किम् । आङ्ग्यः स्त्रियः ॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ ६३ ॥

बहुषु तेनैवास्त्रियामिति सर्वमनुवर्तते । यस्क इत्येवमादिभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुषु वर्त्तमानस्यास्त्रीलिङ्गस्य लुग्भवति, तेनैव चेद् गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं भवति । प्रत्ययविधेश्चान्यत्र लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणमित्यनन्तरापत्येपि लुग्भवत्येव । यस्काः । लभ्याः । बहुष्वित्येव । यास्कः । तेनैवेत्येव । प्रियायास्काः । अस्त्रियामित्येव । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्रइति किम् । यास्काश्छात्राः । यस्क । लभ्य । दुह्य । अयःस्थूण । तृणकर्ण । एते पञ्च शिवादिषु पठ्यन्ते । ततः परेभ्यः षड्भ्य इञ् * । सदामत्त । कम्बलभार । अहियोग । कर्णाटक । पिण्डीजङ्घ । बकसक्थ । ततः परेभ्यश्चतुर्भ्यो गृष्ट्यादिभ्यश्चेति ढञ् । बस्ति । कुद्रि † । अजबस्ति । मित्रयु । ततः परेभ्यो द्वादशभ्य इञ् । रक्षामुख । जङ्घारथ । मन्थक । उत्कास । कटुकमन्थक । पुष्करसत् । विषपुट । उपरिमेखल । क्रोष्टुमान । क्रोष्टपाद । शीर्षमाय । पुष्करसच्छब्दाद् बाह्वादिपाठादिञ् । खरपशब्दो नडादिषु पठ्यते । ततः फक् । पदक । वर्मक । एताभ्यामत इञ् । भलन्दनशब्दात् शिवादिभ्यो ऽण् । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित । एतेभ्यश्चतुर्भ्यो ऽश्वादिभ्यः फञ् ॥

यञञोश्च ॥ ६४ ॥

बहुषु तेनैवास्त्रियां गोत्रइति चानुवर्तते । यञो ऽञश्च गोत्रप्रत्ययस्य बहुषु वर्तमानस्यास्त्रीलिङ्गस्य लुग्भवति । गर्गादिभ्यो यञ् । गर्गाः । वत्साः । अञः खल्वपि । अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्यो ऽञ् । बिदाः । उर्वाः । बहुष्वित्येव । गार्ग्यः । बैदः । तेनैवेत्येव । प्रियगार्ग्याः प्रियबैदाः । अस्त्रियामित्येव । गार्ग्यः स्त्रियः । बैद्यः स्त्रियः । गोत्रइत्येव । द्वीपादनुसमुद्रं यञ् । द्वैप्याः । उत्सादिभ्यो ऽञ् । औत्साश्छात्राः ॥ यञादीनामेकद्वयोर्वा तत्पुरुषे षष्ठ्या उपसंख्यानम् ॥ * ॥ गार्ग्यस्य कुलं, गार्ग्यकुलं, गर्गकुलं वा । गार्ग्ययोः कुलं, गार्ग्यकुलं, गर्गकुलं वा । एवं बैदस्य कुलं, बैदकुलं, बिदकुलं वा । बैदयोः कुलं, बैद कुलं, बिदकुलं वा । यञादीनामिति किम् । आङ्गकुलम् । एकद्वयोरिति किम् । गर्गाणां कुलं, गर्गकुलम् । तत्पुरुषइति किम् । गार्ग्यस्य समीपमुपगार्ग्यम् । षष्ठ्या इति किम् । परमगार्ग्यः ॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥ ६५ ॥

---

* अत्र पुस्तकान्तरे 'सप्तभ्य इञ्' इति पाठः, तदनुसारेण कर्णाटक इत्येतदुत्तरं 'पर्णाटक' इत्येतदधिकम् ।

† विधि । कद्रू । इति पा० २ ।

अत्र्यादिभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुषु लुग्भवति । अत्रिशब्दादितश्चानिञ इति ढक् । इतरेभ्य ऋष्यण् । अत्रयः । भृगवः । कुत्साः । वसिष्ठाः । गोतमाः । अङ्गिरसः । बहुष्वित्येव । आत्रेयो, भार्गवः । तेनैवेत्येव । प्रियात्रेयाः । प्रियभार्गवाः । अस्त्रियामिति किम् । आत्रेय्यः स्त्रियः ॥

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ॥ ६६ ॥

बह्वचः प्रातिपदिकाद् य इञ् विहितः प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तते तस्य बहुषु लुग्भवति । पन्नागाराः । मन्थरैषणाः । भरतेषु खल्वपि । युधिष्ठिराः । अर्जुनाः । बह्वच इति किम् । बैकयः । पौष्पयः । प्राच्यभरतेष्विति किम् । बालाकयः । हास्तिदासयः । भरताः प्राच्या एव तेषां पुनर्ग्रहणं ज्ञापनार्थम्, अन्यत्र प्राग्ग्रहणे भरतग्रहणं न भवतीति, तेन इञः प्राचामिति भरतानां युवप्रत्ययस्य लुग्न भवति । आर्जुनिः पिता । आर्जुनायनः पुत्रः ॥

न गोपवनादिभ्यः ॥ ६७ ॥

गोपवनादिभ्यः परस्य प्रत्ययस्य लुग्न भवति । बिदाद्यन्तर्गणोऽयम् । ततोऽञो गोत्रप्रत्ययस्य यञञोश्चेति लुक् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । गौपवनाः । शैग्रवाः । गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्व । अवतान । श्यामाक । श्वापर्ण । एतावन्त एवाष्टौ गोपवनादयः । परिशिष्टानां हरितादीनां प्रमादपाठः । ते हि चतुर्थे बिदादिषु पठ्यन्ते । तेभ्यश्च बहुषु लुग्भवत्येव । हरिताः । किंदासा इति ॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च द्वन्द्वे गोत्रप्रत्ययस्य बहुषु लुग्भवति । तैकायनयश्च कैतवायनयश्च । तिकादिभ्यः फिञ् । तस्य लुक् । तिककितवाः । वाङ्खरयश्च भाण्डीरथयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । वङ्खरभण्डीरथाः । औपकायनाश्च लामकायनाश्च । नडादिभ्यः फक् । तस्य लुक् । उपकलमकाः । पाफकयश्च नारकयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । पफकनरकाः । बाकनखयश्च श्वागुदपरिणद्धयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । बकनखश्वगुदपरिणद्धाः । उब्जशब्दादत इञ् । ककुभशब्दाच्छिवाद्यण् । तयोर्लुक् । औब्जयश्च काकुभाश्च उब्जककुभाः । लाङ्कयश्च शान्तमुखयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । लङ्कशान्तमुखाः । उरसशब्दस्तिकादिषु पठ्यते ततः फिञ् । लङ्कटशब्दादिञ् तयोर्लुक् । औरसायनयश्च लाङ्कटयश्च, उरसलङ्कटाः । भ्राष्टकयश्च कापिष्ठलयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कार्ष्णाजिनयश्च कार्ष्णसुन्दरयश्च । अत इञ् । तस्य लुक् । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः । आग्निवेश्यश्च दासेरकयश्च । अग्निवेशशब्दाद् गर्गादिभ्यो यञ् । दासेरकशब्दादत इञ् । तयोर्लुक् । अग्निवेशदासेरकाः ॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ ६९ ॥

उपक इत्येवमादिभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुषु लुग्भवति अन्यतरस्यां द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च । अद्वन्द्वग्रहणं द्वन्द्वाधिकारनिवृत्त्यर्थम् । एतेषां च मध्ये त्रयो द्वन्द्वास्तिककितवादिषु पठ्यन्ते । उपकलमकाः । भ्राष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः । इति । तेषां पूर्वेणैव नित्यमेव लुग्भवति । अद्वन्द्वे त्वनेन विकल्पः । उपकाः । औपकायनाः । लमकाः । लामकायनाः । भ्रष्टकाः । भ्राष्टकयः । कपिष्ठलाः । कापिष्ठलयः । कृष्णाजिनाः । कार्ष्णाजिनयः । कृष्णसुन्दराः । कार्ष्णसुन्दरय इति । परिशिष्टानां च द्वन्द्वे ऽद्वन्द्वे च विकल्प इति । पण्डारक । अण्डारक । गडुक । सुपर्यक । सुपिष्ट । मयूरकर्ण । खारीजङ्घ । शलाबल । पतञ्जल । कठेरणि । कुषीतक । काशकृत्स्न । निदाघ । कलशीकण्ठ । दामकण्ठ । कृष्णपिङ्गल । कर्णक । पर्णक । जटिलक । बधिरक । जन्तुक । अनुलोम । अर्द्धपिङ्गलक । प्रतिलोम । प्रतान । अनभिहित * ॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥ ७० ॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरणो यञश्च बहुषु लुग्भवति, परिशिष्टस्य च प्रकृतिभागस्य यथासंख्यमगस्ति कुण्डिनच् इत्येतावादेशौ भवतः । अगस्तयः । कुण्डिनाः । चकारः स्वरार्थः । मध्योदात्तो हि कुण्डिनशब्दस्तदादेशोऽपि तथा स्यात् । अगस्त्यशब्दादृष्यण् । कुण्डिनीशब्दाद्गर्गादित्वाद्यञ् । तयोर्गोत्रे लुगचीति लुकि प्रतिषिद्धे आगस्तीयाश्छात्रा इति वृद्धलक्षणश्छो भवति । कौण्डिन्ये त्वणेव भवितव्यं कण्वादिभ्यो गोत्रइति, तत्र विशेषो नास्ति। कौण्डिनाश्छात्राः ॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥ ७१ ॥

सुपो विभक्तेर्धातुसंज्ञायाः प्रातिपदिकसंज्ञायाश्च लुग्भवति । तदन्तर्गतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते । धातोस्तावत् । पुत्रीयति । घटीयति । प्रातिपदिकस्य । कष्टश्रितः । राजपुरुषः । धातुप्रातिपदिकयोरिति किम् । वृक्षः । प्लक्षः ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ ७२ ॥

अदिप्रभृतिभ्य उत्तरस्य शपो लुग्भवति । अत्ति । हन्ति । द्वेष्टि ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७३ ॥

छन्दसि विषये शपो बहुलं लुग्भवति । अदिप्रभृतिभ्य उक्तस्ततो न भवत्यपि । वृत्रं हनति । अहिः शयते । अन्येभ्यश्च भवति । त्राध्वं नो देवाः ॥

यङो ऽचि च ॥ ७४ ॥

---

* चूडारक । उदङ्क । सुधायुक । अबन्धक । पदञ्चल । अनुपद । अपजगध । कमक । लेखाभ । कमन्दक । पिञ्जल । मयूरकर्ण । मदाघ । कदामत्त । दामकण्ठ । एते पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ॥

यङो लुग्भवति अचि प्रत्यये परतः। चकारेण बहुलग्रहणमनुकृष्यते, न तु छन्दसीति, तेन छन्दसि भाषायां च यङो लुग्भवति। लोलुवः। पोपुवः। सनीस्रंसः। दनीध्वंसः। बहुलग्रहणादनच्यपि भवति। शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्वावदीति॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः॥ ७५॥

शबनुवर्तते न यङ्। जुहोत्यादिभ्य उत्तरस्य शपः श्लुर्भवति। लुकि प्रकृते श्लुर्विधानं द्विर्वचनार्थम्। जुहोति। बिभेति। नेनेक्ति॥

बहुलं छन्दसि॥ ७६॥

छन्दसि विषये बहुलं शपः श्लुर्भवति। यत्रोक्तं तत्र न भवति, अन्यत्रापि भवति। जुहोत्यादिभ्यस्तावन्न भवति। दाति प्रियाणि। धाति प्रियाणि। अन्येभ्यश्च भवति। पूर्णां विवष्टि। जनिमा विवक्ति॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु॥ ७७॥

लुगनुवर्त्तते, न श्लुः। गाति स्था घु पा भू इत्येतेभ्यः परस्य सिचो लुग्भवति परस्मैपदेषु परतः। अगात्। अस्थात्। घु। अदात्। अधात्। अपात्। अभूत्॥ गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्॥ *॥ गायतेः पातेश्च न भवति। अगासीन्नटः। अपासीन्नृपः। परस्मैपदेष्विति किम्। अगासातां ग्रामौ देवदत्तेन॥

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः॥ ७८॥

घ्रा धेट् शा छा सा इत्येतेभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु विभाषा लुग्भवति। धेटः पूर्वेण प्राप्ते विभाषार्थं वचनम्। परिशिष्टानामप्राप्ते। अघ्रात्। अघ्रासीत्। अधात्। अधासीत्। अशात्। अशासीत्। अच्छात्। अच्छासीत्। असात्। असासीत्। परस्मैपदेष्वित्येव। अघ्रासातां सुमनसौ देवदत्तेन।

तनादिभ्यस्तथासोः॥ ७९॥

तनादिभ्य उत्तरस्य सिचस्तथासोः परतो विभाषा लुग्भवति। अतत। अतथाः। अतनिष्ट। अतनिष्ठाः। असात। असाथाः। असनिष्ट। असनिष्ठाः। जनसनखनामित्यात्वम्। थासा साहचर्यादात्मनेपदस्य तशब्दस्य ग्रहणं, परस्मैपदे न भवति। अतनिष्ट यूयम्॥

मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः॥ ८०॥

मन्त्रविषये घस ह्वर णश वृ दह आत् वृच् कृ गमि जनि इत्येतेभ्य उत्तरस्य लेर्लुग्भवति। घस। अक्षन्नमीमदन्त पितरः। ह्वरेति ह्वर्कौटिल्ये। मा ह्वर्मित्रस्य त्वम्। णश। प्रणङ्मर्त्यस्य। वृ इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम्। सुरुचो वेन आवः। दह। मा न आधक्। आदिति आकारान्तग्रहणम्। प्रा

पूरणे । आ ऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वृङ् । मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क् । कृ । अक्रन् कर्म कर्मकृतः । गमि । अग्मन् । जनि । अज्ञत वा अस्य दन्ताः । ब्राह्मणे प्रयोगोऽयम् । मन्त्रग्रहणं तु छन्दस उपलक्षणार्थम् ॥

आमः ॥ ८१ ॥

आमः परस्य लेर्लुग् भवति । ईहांचक्रे । ऊहांचक्रे । ईक्षांचक्रे ॥

अव्ययादाप्सुपः ॥ ८२ ॥

अव्ययादुत्तरस्यापः सुपश्च लुग्भवति । तत्र शालायाम् । यत्र शालायाम् । सुपः खल्वपि । कृत्वा । हित्वा ॥

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ॥ ८३ ॥

पूर्वेण लुक् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । अदन्तादव्ययीभावादुत्तरस्य सुपो न लुग्भवति, अमादेशस्तु तस्य सुपो भवत्यपञ्चम्याः । तस्मिन् प्रतिषिद्धे पञ्चम्याः श्रवणमेव भवति । उपकुम्भं तिष्ठति । उपकुम्भं पश्य । उपमणिकं तिष्ठति । उपमणिकं पश्य । अत इति किम् । अधिस्त्रि । अधिकुमारि । अपञ्चम्या इति किम् । उपकुम्भादानय ॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८४ ॥

पूर्वेण नित्यमम्भावे प्राप्ते वचनमिदम् । तृतीयासप्तम्योर्विभक्त्योर्बहुलमम्भावो भवति, अव्ययीभावे । उपकुम्भेन कृतम् । उपकुम्भं कृतम् । उपकुम्भे निधेहि । उपकुम्भं निधेहि ॥ सप्तम्या ऋद्धिनदीसमाससंख्यावयवेभ्यो नित्यमिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सुमद्रम् । सुमगधम् । उन्मत्तगङ्गम् । लोहितगङ्गम् । एकविंशतिभारद्वाजम् । बहुलवचनात्सिद्धम् ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ ८५ ॥

लुडादेशस्य प्रथमपुरुषस्य परस्मैपदस्यात्मनेपदस्य च डा रौ रस् इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यम् । कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । आत्मनेपदस्य । अध्येता । अध्येतारौ । अध्येतारः । प्रथमस्येति किम् । श्वः कर्तासि श्वो ऽध्येतासे ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

समाप्तश्चाध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

प्रत्ययः ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् । प्रत्ययशब्दः संज्ञात्वेनाधिक्रियते । आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेर्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः प्रत्ययसंज्ञास्ते वेदितव्याः प्रकृत्युपपदोपाधिविकारागमान्वर्जयित्वा । वक्ष्यति, तव्यत्तव्यानीयरः । कर्त्तव्यम् । करणीयम् । तैत्तिरीयम् । प्रत्ययप्रदेशाः प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमित्येवमादयः ॥

परश्च ॥ २ ॥

अयमप्यधिकारो योगेयोगउपतिष्ठते, परिभाषा वा । परश्च स भवति धातोर्वा प्रातिपदिकाद्वा यः प्रत्ययसंज्ञः । कर्तव्यम् । तैत्तिरीयम् । चकारः पुनरस्यैव समुच्चयार्थः, तेनोणादिषु परत्वं न विकल्प्यते ॥

आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥

अयमप्यधिकारः परिभाषा वा । आद्युदात्तश्च स भवति यः प्रत्ययसंज्ञः । अनियतस्वरप्रत्ययप्रसङ्गे ऽनेकाचु च प्रत्ययेषु देशस्यानियमे सति वचनमिदमादेरुदात्तार्थम् । कर्तव्यम् । तैत्तिरीयम् ॥

अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ ४ ॥

पूर्वस्यायमपवादः । सुपः पितश्च प्रत्यया अनुदात्ता भवन्ति । दृषदौ । दृषदः । पितः खल्वपि । पचति । पठति ॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥

गुप गोपने, तिज निशाने, कित निवासे, एतेभ्यो धातुभ्यः सन्प्रत्ययो भवति । प्रत्ययसंज्ञा चाधिकृतैव । जुगुप्सते । तितिक्षते । चिकित्सति ॥ निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते, ऽन्यत्र यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति ॥ * ॥ गोपायति । तेजयति । सङ्केतयति । गुपादिष्वनुबन्धकरणमात्मनेपदार्थम् ॥

मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ६ ॥

मान पूजायां, बध बन्धने, दान अवखण्डने, शान अवतेजने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः सन्प्रत्ययो भवति, अभ्यासस्य चेकारस्य दीर्घादेशो भवति । मीमांसते । बीभत्सते । दीदांसते । शीशांसते । उत्तरसूत्रे वाग्रहणं सर्वस्य शेषो विज्ञायते, तेन क्व चिन्न भवत्यपि । मानयति । बाधयति । दानयति । निशानयति ॥ अत्रापि सन्नर्थविशेषइष्यते ॥ * ॥ मानेर्जिज्ञासायां, बधेर्वैरूप्ये, दानेरार्जवे, शानेर्निशाने ॥

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥ ७ ॥

इषिकर्म यो धातुरिषिणैव समानकर्तृकस्तस्मादिच्छायामर्थे वा सन्प्रत्ययो, भवति। कर्मत्वं समानकर्तृकत्वं च धातोरर्थद्वारकम्। कर्तुमिच्छति, चिकीर्षति। जिहीर्षति। धातुग्रहणं किम्। सोपसर्गादुत्पत्तिर्मा भूत्। प्रकर्तुमैच्छत्, प्राचिकीर्षत्। कर्मण इति किम्। करणान्मा भूत्। गमनेनेच्छति। समानकर्तृकादिति किम्। देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः। इच्छायामिति किम्। कर्तुं जानाति। वावचनाद्वाक्यमपि भवति। धातोरिति विधानादत्र सन आर्द्धधातुकसंज्ञा भवति, न पूर्वत्र ॥ आशङ्कायामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ शङ्के पतिष्यति कूलम्। पिपतिषति कूलम्। श्वा मुमूर्षति ॥ इच्छासन्नन्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ चिकीर्षितुमिच्छति। विशेषणं किम्। जुगुप्सिषते। मीमांसिषते ॥

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

सुप आत्मनः क्यच् ॥ ८ ॥

कर्मण इच्छायां वेत्यनुवर्त्तते। इषिकर्मण एषितुरेवात्मसंबन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे वा क्यच्प्रत्ययो भवति। आत्मनः पुत्त्रमिच्छति पुत्त्रीयति। सुब्ग्रहणं किम्। वाक्यान्मा भूत्। महान्तं पुत्त्रमिच्छति। आत्मन इति किम्। राज्ञः पुत्त्रमिच्छति। ककारो नः क्यइति सामान्यग्रहणार्थः। चकारस्तदविधानार्थः ॥ क्यचि मान्ताव्ययप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ इदमिच्छति। उच्चैरिच्छति। नीचैरिच्छति ॥ छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ मा त्वा वृका अघायवो विदन् ॥

काम्यच्च ॥ ९ ॥

सुबन्तात्कर्मण आत्मेच्छायां काम्यच् प्रत्ययो भवति। आत्मनः पुत्त्रमिच्छति, पुत्त्रकाम्यति। वस्त्रकाम्यति। योगविभाग उत्तरत्र क्यचोनुवृत्त्यर्थः। ककारस्येत्संज्ञा प्रयोजनाभावान्न भवति। चकारादित्वाद्वा काम्यचः॥ उपयट्काम्यति॥

उपमानादाचारे ॥ १० ॥

क्यजनुवर्त्तते, न काम्यच्। उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेर्थे वा क्यच्प्रत्ययो भवति। आचारक्रियायाः प्रत्ययार्थत्वात्तदपेक्षयैवोपमानस्य कर्मता। पुत्त्रमिवाचरति, पुत्त्रीयति छात्त्रम्। प्रावारीयति कम्बलम् ॥ अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्रासादीयति कुटे* । पर्यङ्कीयति मञ्चके ॥

---

* अत्र कुट्यामिति युक्तः पाठ इति पदमञ्जर्याम्।

कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ११ ॥

आचारइत्यनुवर्त्तते । उपमानात्कर्त्तुः सुबन्तादाचारेऽर्थे वा क्यङ् प्रत्ययो भवति, सकारस्य च लोपो भवति । अन्वाचयशिष्टः सलोपस्तदभावेपि क्यङ् भवत्येव । श्येनइवाचरति काकः, श्येनायते । कुमुदं पुष्करायते । सलोपविधावपि वाग्रहणं संबध्यते, व्यवस्थितविभाषा च भवति । ओजायते । अप्सरायते । पयायते । पयस्यते ।

ओजसोप्सरसो नित्यं पयसस्तु विभाषया । *

सलोपविधौ च कर्त्तुरिति स्थानषष्ठी संपद्यते, तत्रालोन्त्यनियमे सति, 'हंसायते' 'सारसायते' इति सलोपो न भवति ॥ आचारे ऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः ॥ * ॥ अवगल्भते । अवगल्भायते । क्लीबते । क्लीबायते । होडते । होडायते ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येके ॥ * ॥ अश्वइवाचरति, अश्वायते । गर्दभायते । अश्वति । गर्दभति ॥

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥ १२ ॥

भृश इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽच्व्यन्तेभ्यो भुवि भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति, हलन्तानां । च लोपः । अच्वेरिति प्रत्येकमभिसंबध्यते । किमर्थं पुनरिदमुच्यते, यावता भवतियोगे च्विर्विधीयते तेनोक्तार्थत्वाच्च्व्यन्तेभ्यो न क्यङ् भविष्यति । तत्सादृश्यप्रतिपत्त्यर्थं तर्हि च्विप्रतिषेधः क्रियते । अभूततद्भावविषयेभ्यो भृशादिभ्यः क्यङ्प्रत्ययः । अभृशो भृशो भवति, भृशायते । शीघ्रायते । भृश । शीघ्र । मन्द । चपल । पण्डित । उत्सुक । उन्मनस् । अविमनस् । सुमनस् । दुर्मनस् । रहस् । रेहस् । शश्वत् । बृहत् । वेहत् । नृषत् । शुधि । अधर । ओजस् । वर्चस् † । भृशादिः । अच्वेरिति किम् । भृशीभवति ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ १३ ॥

लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् प्रत्ययो भवति । लोहितायति । लोहितायते । डाजन्तेभ्यः । पटपटायति । पटपटायते । लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं, भृशादिष्वितराणि यानि लोहितादिषु पठ्यन्ते तेभ्यः क्यङेव, अपरिपठितेभ्यस्तु क्यषेव भवति । वर्मायति । वर्मायते । निद्रायति । निद्रायते । करुणायति । करुणायते । कृपायति । कृपायते । आकृतिगणोयम् । तथा च ककारः सामान्यग्रहणार्थानुबध्यते नः क्यइति । नहि पठितानां मध्ये नकारान्तः शब्दोस्ति । ऊर्ध्वस्तोभिरिव क्यषापि योगे डाज् भवतीत्येतदेव

* "सकारस्येष्यते लोपः शब्दशास्त्रविचक्षणैः" ॥
इत्युत्तरार्धमधिकमत्र क्व चित् ।

† विमनस् । रभन् । दन् । रोहत् । शुचिस् । अरजस् । अचेते पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

वचनं ज्ञापकम् । अच्चेरित्यनुवृत्तेरभूततद्भावे क्यष् विज्ञायते । लोहित । नील । हरित । पीत । मद्र । फेन । मन्द । लोहितादिः ॥

कष्टाय क्रमणे ॥ १४ ॥

क्यङनुवर्त्तते, न क्यष् । कष्टशब्दाच्चतुर्थीसमर्थात्क्रमणेऽर्थे ऽनार्जवे क्यङ् प्रत्ययो भवति । कष्टाय कर्मणे क्रामति,कष्टायते । अत्यल्पमिदमुच्यते ॥ सत्त्रकष्टकक्षकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम्, ॥ * ॥ कण्वचिकीर्षा पापचिकीर्षा, तस्यामेतेभ्यः क्यङ् प्रत्ययो भवति । सत्त्रायते । कष्टायते । कक्षायते । कृच्छ्रायते । गहनायते । कण्वचिकीर्षायामिति किम् । अजः कष्टं क्रामति ॥

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ॥ १५ ॥

रोमन्थशब्दात्तपःशब्दाच्च कर्मणो यथाक्रमं वर्त्तिचरोरर्थयोः क्यङ् प्रत्ययो भवति । रोमन्थं वर्त्तयति, रोमन्थायते गौः ॥ हनुचलनइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । कीटो रोमन्थं वर्त्तयति ॥ तपसः परस्मैपदं च ॥ * ॥ तपश्चरति, तपस्यति ॥

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ १६ ॥

कर्मण इति वर्त्तते । बाष्पशब्दादूष्मशब्दाच्च कर्मण उद्वमनेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति । बाष्पमुद्वमति, बाष्पायते । ऊष्मायते ॥ फेनाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ फेनमुद्वमति, फेनायते ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ १७ ॥

शब्द वैर कलह अभ्र कण्व मेघ इत्येतेभ्यः करणे करोत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति । शब्दं करोति, शब्दायते । वैरायते । कलहायते । अभ्रायते । कण्वायते । मेघायते ॥ सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सुदिनायते । दुर्दिनायते । नीहारायते ॥ अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाकष्टाग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ अटायते । अट्टायते । शीकायते । कोटायते । पोटायते । सोटायते । कष्टायते * ॥

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥ १८ ॥

कर्मग्रहणमनुवर्त्तते । सुख इत्येवमादिभ्यः कर्मभ्यो वेदनायामर्थे ऽनुभवे क्यङ् प्रत्ययो भवति, वेदयितुश्चेत्कर्त्तुः संबन्धीनि सुखादीनि भवन्ति । सुखं वेदयते, सुखायते । दुःखायते । कर्तृग्रहणं किम् । सुखं वेदयति प्रसाधको देवदत्तस्य । सुख । दुःख । तृप्त † । गहन । कृच्छ्र । अस्र । अलीक । प्रतीप । करुण । कृपण । सोढ । सुखादिः ॥

---

* अट्टाटाशीकाकोटापोटासोटासुष्टाघ्रुष्टापुष्टाग्रहणं कर्तव्यमिति पुस्तकान्तरेपाठः ॥ भाष्यपुस्तकेषु तु बहुषु 'अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटापुष्टासुष्टाग्रहणं कर्तव्यम्' इति पाठः ।

† तृप्तेत्यस्य स्थाने तीव्रेति पा० ।

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ १९ ॥

करणइति वर्त्तते । नमस् वरिवस् चित्रङ् इत्येतेभ्यो वा क्यचप्रत्ययो भवति, करणविशेषे पूजादौ । नमसः पूजायाम् । नमस्यति देवान् । वरिवसः परिचर्यायाम् । वरिवस्यति गुरून् । चित्रङ आश्चर्ये । चित्रीयते । ङकार आत्मनेपदार्थः ॥

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ २० ॥

करणइति वर्तते । पुच्छ भाण्ड चीवर इत्येतेभ्यो णिङ् प्रत्ययो भवति, करणविशेषे ॥ पुच्छादुदसने पर्यसने पर्यसने वा ॥ * ॥ उत्पुच्छयते । परिपुच्छयते ॥ भाण्डात्समाचयने ॥ * ॥ संभाण्डयते ॥ चीवरादर्जने परिधाने वा ॥ * ॥ संचीवरयते भिक्षुः । ङकार आत्मनेपदार्थः । णकारः सामान्यग्रहणार्थः, णेरनिटीति ॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥ २१ ॥

मुण्ड मिश्र श्लक्ष्ण लवण व्रत वस्त्र हल कल कृत तूस्त इत्येतेभ्यः करणे णिच् प्रत्ययो भवति। मुण्डं करोति, मुण्डयति । मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति । व्रताद्भोजने तन्निवृत्तौ च । पयो व्रतयति । वृषलान्नं व्रतयति । वस्त्रात्समाच्छादने । संवस्त्रयति । हलिं गृह्णाति, हलयति। कलिं गृह्णाति, कलयति। हलिकल्योरदन्तत्वनिपातनं सन्वद्भावप्रतिषेधार्थम् । अजहलत् । अचकलत् । कृतं गृह्णाति, कृतयति । तूस्तानि विहन्ति, वितूस्तयति केशान् । विशदीकरोतीत्यर्थः ॥

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ २२ ॥

एकाज् यो धातुर्हलादिः क्रियासमभिहारे वर्तते तस्माद्यङ् प्रत्ययो भवति। पौनःपुन्यं भृशार्थो वा क्रियासमभिहारः । पुनःपुनः पचति, पापच्यते । यायज्यते। भृशं ज्वलति, जाज्वल्यते । देदीप्यते । धातोरिति किम् । सोपसर्गादुत्पत्तिर्मा भूत् । भृशं प्राटति । एकाच इति किम् । भृशं जागर्ति । हलादेरिति किम् । भृशमीक्षते ॥ सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतीनां ग्रहणं यङ्विधावनेकाजहलाद्यर्थम् ॥ * ॥ सोसूच्यते । सोसूत्र्यते । मो मूत्र्यते । अटाट्यते । अरार्यते । अशाश्य । प्रोर्णोनूयते । भृशं शोभते, भृशं रोचतइत्यत्र नेष्यते, ऽनभिधानात् ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ २३ ॥

गतिवचनाद्धातोः कौटिल्ये गम्यमाने नित्यं यङ् प्रत्ययो भवति । कुटिलं क्रामति, चङ्क्रम्यते । दन्द्रम्यते । नित्यग्रहणं विषयनियमार्थं, गतिवचनान्नित्यं कौटिल्यएव भवति, न तु क्रियासमभिहारे । भृशं क्रामति ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ॥ २४ ॥

लुप सद चर जप जभ दह दश गृ इत्येतेभ्यो भावगर्हायां धात्वर्थगर्हायां यङ् प्रत्ययो भवति। गर्हितं लुम्पति, लोलुप्यते। एवं सासद्यते। चञ्चूर्यते। जञ्जप्यते। जञ्जभ्यते। दन्दह्यते। दन्दश्यते। निजेगिल्यते। भावगर्हायामिति किम्। साधु जपति। भावग्रहणं किम्। साधनगर्हायां मा भूत्। मन्त्रं जपति वृषलः। नित्यग्रहणं विषयनियमार्थमनुवर्त्तते। एतेभ्यो नित्यं भावगर्हायामेव भवति, न तु क्रियासमभिहारे। भृशं लुम्पति॥

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ २५ ॥

सत्यादिभ्यश्चूर्णपर्यन्तेभ्यश्चुरादिभ्यश्च णिच् प्रत्ययो भवति। सत्यमाचष्टे, सत्यापयति॥ अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्यः॥ * ॥ अर्थमाचष्टे, अर्थापयति। वेदापयति। आपुग्वचनसामर्थ्याट्टिलोपो न भवति *। पाशाद्विमोचने। विपाशयति। रूपाद्दर्शने। रूपयति। वीणयोपगायति, उपवीणयति। तूलेनानुकुष्णाति, अनुतूलयति। श्लोकैरुपस्तौति, उपश्लोकयति। सेनया ऽभियाति, अभिषेणयति। लोमान्यनुमार्ष्टि, अनुलोमयति। त्वचं गृह्णाति, त्वचयति। अकारान्तस्त्वचशब्दः। वर्मणा संनह्यति, संवर्मयति। वर्णं गृह्णाति, वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसयति, अवचूर्णयति। चुरादिभ्यः स्वार्थे। चोरयति। चिन्तयति। स्वाभाविकत्वादर्थाभिधानस्य यथास्वं प्रत्ययार्था निर्दिश्यन्ते॥

हेतुमति च ॥ २६ ॥

हेतुः स्वतन्त्रस्य कर्त्तुः प्रयोजकः, तदीयो व्यापारः प्रेषणादिलक्षणो हेतुमान्, तस्मिन्नभिधेये धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति। कटं कारयति। ओदनं पाचयति॥ तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम्॥ * ॥ सूत्रं करोति, सूत्रयति॥ आख्यानात्कृतस्तदाचष्ट इति णिच् कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम्॥ * ॥ आख्यानात्कृदन्ताण्णिज्वक्तव्यस्तदाचष्ट इत्येतस्मिन्नर्थे, कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकं भवति। कंसवधमाचष्टे, कंसं घातयति। बलिबन्धमाचष्टे, बलिं बन्धयति। राजागमनमाचष्टे, राजानमागमयति॥ आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम्॥ * ॥ आरात्रिविवासमाचष्टे, रात्रिं विवासयति॥ चित्रीकरणे प्रापि॥ * ॥ उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते, सूर्यमुद्गमयति॥ नक्षत्रयोगे ज्ञि॥ * ॥ पुष्ययोगं जानाति, पुष्येण योजयति। मघाभिर्योजयति॥

---

* अयं क्वाचित्कः पाठ इति पदमञ्जर्याम्।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥

कण्डूञ् इत्येवमादिभ्यो यक् प्रत्ययो भवति। द्विविधाः कण्ड्वादयो धातवः प्रातिपदिकानि च। तत्र धात्वधिकाराद्धातुभ्य एव प्रत्ययो विधायते, न तु प्रातिपदिकेभ्यः। तथा च गुणप्रतिषेधार्थः ककारोऽनुबध्यते।

धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासञ्जनादपि।
आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः॥

कण्डूञ्, कण्डूयति। कण्डूयते। ञित्त्वात्कर्त्रभिप्राये क्रियाफल इत्यात्मनेपदम्। कण्डूञ्। मन्तु। हृणीङ्। वल्गु। असु। मनस्। महीङ्। लेट्। लोट्। इरस्। इरज्। इरञ्। दुवस्। मेधा। कुषुभ। मगध। तन्तस्। पम्पस्। सुख। दुःख। सपर। अर। भिषज्। भिष्णज्। इषुध। चरण। चुरण। भुरण। तुरण। भुरण। गद्गद। एला। केला। खेला। लिट्। लोट् *।

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ २८ ॥

गुपू रक्षणे, धूप संतापे, विच्छ गतौ, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च, इत्येतेभ्यो धातुभ्य आयप्रत्ययो भवति। गोपायति। धूपायति। विच्छायति। पणायति। पनायति। स्तुत्यर्थेन पनिना साहचर्यात्तदर्थः पणिः प्रत्ययमुत्पादयति न व्यवहारार्थः। शतस्य पणते। सहस्रस्य पणते। अनुबन्धश्च केवले चरितार्थस्तेनायप्रत्ययान्तान्नात्मनेपदं भवति॥

ऋतेरीयङ् ॥ २९ ॥

ऋतिः सौत्रो धातुर्घृणायां वर्तते तत ईयङ् प्रत्ययो भवति। ङकार आत्मनेपदार्थः। ऋतीयते। ऋतीयेते। ऋतीयन्ते। ऋतेश्छङिति सिद्धे ईयङ्वचनं ज्ञापनार्थं धातुविहितानां प्रत्ययानामायचादयो न भवन्तीति॥

कमेर्णिङ् ॥ ३० ॥

कमेर्धातोर्णिङ् प्रत्ययो भवति। णकारो वृद्ध्यर्थः। ङकार आत्मनेपदार्थः। कामयते। कामयेते। कामयन्ते॥

आयादय आर्द्धधातुके वा ॥ ३१ ॥

आर्द्धधातुकविषये आर्द्धधातुकविवक्षायामायादयः प्रत्यया वा भवन्ति। गोप्ता। गोपायिता। अर्तिता। ऋतीयिता। कमिता। कामयिता। नित्यं प्रत्ययप्रसङ्गे तदुत्पत्तिरार्द्धधातुकविषये विकल्प्यते, तत्र यथायथं प्रत्यया भवन्ति। गुप्तिः। गोपाया॥

---

* असुञ्। हृणीङ्। रुषय। पुरण। अत्रैते पुस्तकान्तरे ऽधिकः पदमञ्जर्यामनास्थिताः।

सनाद्यन्ता धातवः ॥ ३२ ॥

सन् आदिर्येषां ते सनादयः । सनादयोन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः । सनाद्यन्ताः समुदाया धातुसंज्ञा भवन्ति । प्रत्ययग्रहणपरिभाषैव पदसंज्ञायामन्तवचनेन लिङ्गेन प्रतिषिद्धा सती पुनरिहान्तवचनेन प्रतिप्रसूयते । चिकीर्षति । पुत्रीयति । पुत्रकाम्यति ॥

स्यतासी लृलुटोः ॥ ३३ ॥

लृरूपमुत्सृष्टानुबन्धं सामान्यमेकमेव तस्मिन् लुटि च परतो धातोर्यथासंख्यं स्यतासी प्रत्ययौ भवतः । करिष्यति । अकरिष्यत । अकरिष्यत् । श्वः कर्ता । इदित्करणमनुनासिकलोपप्रतिषेधार्थम् । मन्ता । संगन्ता ॥

सिब्बहुलं लेटि ॥ ३४ ॥

धातोः सिप् प्रत्ययो भवति बहुलं लेटि परतः । जोषिषत् । तारिषत् । मन्दिषत् । न च भवति, पताति दिद्युत् । उदधिं च्यावयाति ॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥ ३५ ॥

कासृ शब्दकुत्सायां, ततः प्रत्ययान्तेभ्यश्च धातुभ्य आम् प्रत्ययो भवति लिटि परतो ऽमन्त्रविषये । कासाञ्चक्रे । प्रत्ययान्तेभ्यः । लोलूयाञ्चक्रे । अमन्त्रइति किम् । कृष्णो नोनाव ॥ कास्यनेकाच इति वक्तव्यं चुलुम्पाद्यर्थम् ॥ * ॥ चुलुम्पाञ्चकार । दरिद्राञ्चकार ॥

आमो ऽमित्त्वमदन्तत्वादगुणत्वं विदेस्तथा ।
आस्कासोरांविधानाच्च पररूपं कृतन्तवत् ॥

इजादेश्च गुरुमतो ऽनृच्छः ॥ ३६ ॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छतिवर्जितस्तस्माच्च लिटि परत आम्प्रत्ययो भवति । ईह चेष्टायाम् । ऊह वितर्के । ईहाञ्चक्रे । ऊहाञ्चक्रे । इजादेरिति किम् । ततक्ष । ररक्ष । गुरुमत इति किम् । इयज । उवप । अनृच्छ इति किम् । आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । आनर्च्छुः ॥ ऊर्णोतेश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रोर्णुनाव । अथवा,

वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम् ।
आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

दयायासश्च ॥ ३७ ॥

दय दानगतिरक्षणेषु, अय गतौ, आस उपवेशने, एतेभ्यश्च लिटि परत आम्प्रत्ययो भवति । दयाञ्चक्रे । पलायाञ्चक्रे । आसाञ्चक्रे ॥

उषविदजागृभ्यो ऽन्यतरस्याम् ॥ ३८ ॥

उष दाहे, विद ज्ञाने, जागृ निद्राक्षये, एतेभ्यो लिटि परतो ऽन्यतरस्यामाम् प्रत्ययो भवति । ओषाञ्चकार । उवोष । विदाञ्चकार । विवेद । जागराञ्चकार । जजागार । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि गुणो न भवति ॥

भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥ ३९ ॥

ञिभी भये, ह्री लज्जायां, डुभृञ् धारणपोषणयोः, हु दानादनयोः, एतेभ्यो लिटि परत आम्प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम्, श्लाविव चास्मिन्कार्यं भवति । किं पुनस्तत्, द्वित्वमित्वं च । बिभयाञ्चकार । बिभाय । जिह्रयाञ्चकार । जिह्राय । बिभराञ्चकार । बभार । जुहवाञ्चकार । जुहाव ॥

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ ४० ॥

आम्प्रत्ययस्य पश्चात्कृञनुप्रयुज्यते लिटि परतः । कृञिति प्रत्याहारेण कृभ्वस्तयो गृह्यन्ते, तत्सामर्थ्यादस्तेर्भूभावो न भवति । पाचयाञ्चकार । पाचयाम्बभूव । पाचयामास ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्येतदन्यतरस्यां निपात्यते । किं पुनरिह निपात्यते । विदेर्लोट्याम्प्रत्ययो गुणाभावो लोटो लुक्, कृञश्च लोट्परस्यानुप्रयोगः । अत्र भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु । विदन्तु । इतिकरणः प्रदर्शनार्थः, न केवलं प्रथमपुरुषबहुवचनं, किं तर्हि, सर्वाण्येव लोड्वचनान्यनुप्रयुज्यन्ते । विदाङ्करोतु । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुतामित्यादि ॥

अभ्युत्सादयप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि ॥ ४२ ॥

अभ्युत्सादयामित्येवमादयश्छन्दसि विषये ऽन्यतरस्यां निपात्यन्ते । सदिजनिरमीणां ण्यन्तानां लुङ्याम्प्रत्ययो निपात्यते । चिनोतेरपि तत्रैवाम्प्रत्ययो द्विर्वचनं कुत्वं च । अकरिति चतुर्भिरपि प्रत्येकमनुप्रयोगः संबध्यते । पावयाङ्क्रियादिति पवतेः पुनातेर्वा ण्यन्तस्य लिङ्याम् निपात्यते, क्रियादिति चास्यानुप्रयोगः । विदामक्रन्निति विदेर्लुङ्याम् निपात्यते, गुणाभावश्च, अक्रन्निति चास्यानुप्रयोगः । अभ्युत्सादयामकः । अभ्युदसीषददिति भाषायाम् । प्रजनयामकः । प्राजीजनदिति भाषायाम् । चिकयामकः । अचैषीदिति भाषायाम् । रमयामकः । अरीरमदिति भाषायाम् । पावयाङ्क्रियात् । पाव्यादिति भाषायाम् । विदामक्रन् । अवेदिषुरिति भाषायाम् ॥

च्लि लुङि ॥ ४३ ॥

धातोश्च्लिः प्रत्ययो भवति लुङि परतः । इकार उच्चारणार्थः, चकारः स्वरार्थः । अस्य सिजादीनादेशान्वक्ष्यति तत्रैवोदाहरिष्यामः ॥

च्लेः सिच् ॥ ४४ ॥

च्लेः सिजादेशो भवति । इकार उच्चारणार्थः, चकारः स्वरार्थः । अकार्षीत् । अहार्षीत् । आगमानुदात्तत्वं हि प्रत्ययस्वरमिव चित्स्वरमपि बाधेतेति स्थानिन्यादेशे च द्विश्चकारोऽनुबध्यते ॥ स्पृशमृशकृषतृपदृपां सिज्वा वक्तव्यः ॥ * ॥ अस्प्राक्षीत् । अस्पार्क्षीत् । अस्पृक्षत् । अम्राक्षीत् । अमार्क्षीत् । अमृक्षत् । अकार्क्षीत् । अक्राक्षीत् । अकृक्षत् । अतृपत् । अत्राप्सीत् । अतार्प्सीत् । अदृपत् । अद्राप्सीत् । अदार्प्सीत् ॥

शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ ४५ ॥

शलन्तो यो धातुरिगुपधस्तस्मात्परस्य च्लेरनिटः क्स आदेशो भवति । दुह । अधुक्षत् । लिह । अलिक्षत् । शल इति किम् । अभैत्सीत् । अच्छैत्सीत् । इगुपधादिति किम् । अधाक्षीत् । अनिट इति किम् । अकोषीत् । अमोषीत् ॥

श्लिष आलिङ्गने ॥ ४६ ॥

श्लिषेर्धातोरालिङ्गनक्रियावचनात्परस्य च्लेः क्स आदेशो भवति । आलिङ्गनमुपगूहनं परिष्वङ्गः । अत्र नियमार्थमेतत् । आश्लिक्षत्कन्यां देवदत्तः । आलिङ्गन इति किम् । समाश्लिषज्जतु काष्ठम् ॥

न दृशः ॥ ४७ ॥

पूर्वेण क्सः प्राप्तः प्रतिषिध्यते । दृशेर्धातोः परस्य च्लेः क्सादेशो न भवति । अस्मिन्प्रतिषिद्धे इरितो वेत्यङ्सिचौ भवतः । अदर्शत् । अद्राक्षीत् ॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ ४८ ॥

सिजपवादश्चङ्विधीयते । ण्यन्तेभ्यो धातुभ्यः श्रि द्रु स्रु इत्येतेभ्यश्च परस्य च्लेश्चङादेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि परतः । ङकारो गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः, चकारश्चङीति विशेषणार्थः । अचीकरत् । अजीहरत् । अशिश्रियत् । अदुद्रुवत् । असुस्रुवत् । कर्त्तरीति किम् । अकारयिषातां कटौ देवदत्तेन ॥ कमेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ आयादय आर्द्धधातुके वेति यदा णिङ्नास्ति तदैतदुपसंख्यानम् । अचकमत । णिङ्पक्षे सन्वद्भावः । अचीकमत ।

नाकमिष्ट सुखं यान्ति सुयुक्तैर्वडवारथैः ।
अथ पत्काषिणो यान्ति ये ऽचीकमतभाषिणः ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ॥ ४९ ॥

धेट् पाने, टुओश्वि गतिवृद्ध्योः, एताभ्यामुत्तरस्य च्लेर्विभाषा चङादेशो भवति । धेटस्तावत् । अदधत् । सिच्पक्षे विभाषा घ्राधेडिति लुक् । अधात् । अधासीत् । श्वयतेः खल्वपि । अशिश्वियत् । अङोऽप्यत्र विकल्प इष्यते । अश्वत् । अश्वयीत् । कर्त्तरीत्येव । अधिषातां गावौ वत्सेन ॥

गुपेश्छन्दसि ॥ ५० ॥

गुपेः परस्य च्लेश्छन्दसि विषये विभाषा चङादेशो भवति । यत्रायप्रत्ययो नास्ति तत्रायं विधिः । इमान्नो मित्रावरुणौ गृहानजूगुपतम् । अगौप्तम् । अगोपिष्टम् । अगोपायिष्टमिति वा । भाषायां तु चङन्तं वर्जयित्वा शिष्टं रूपत्रयं भवति ॥

नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ ५१ ॥

ऊन परिहाणे, ध्वन शब्दे, इल प्रेरणे, अर्द्द गतौ याचने च, एतेभ्यो धातुभ्यो ण्यन्तेभ्यः पूर्वेण च्लेश्चङि प्राप्ते छन्दसि विषये न भवति । काममूनयीः । औनिनदिति भाषायाम् । मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् । अदिध्वनदिति भाषायाम् । काममैलयीः । ऐलिलदिति भाषायाम् । मैनमर्द्दयीत् । आर्द्दिददिति भाषायाम् ॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यो ऽङ् ॥ ५२ ॥

असु क्षेपणे, वच परिभाषणे, ब्रूञादेशो वा । ख्या प्रकथने । चक्षिङादेशो वा । एभ्यः परस्य च्लेरङादेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि परतः । अस्यतेः पुषादिपाठादेवाङि सिद्धे पुनर्ग्रहणमात्मनेपदार्थम् । पर्यास्थत । पर्यास्थेताम् । पर्यास्थन्त । वक्ति । अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् । ख्याति । आख्यत् । आख्यताम् । आख्यन् । कर्त्तरीति किम् । पर्यासिषातां गावौवत्सेन ॥

लिपिसिचिह्वश्च ॥ ५३ ॥

लिप उपदेहे, षिच क्षरणे, ह्वेञ् स्पर्द्धायाम्, एतेभ्यश्च परस्य च्लेरङादेशो भवति । अलिपत् । असिचत् । आह्वत् । पृथग्योग उत्तरार्थः ॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

पूर्वेण प्राप्ते विभाषा आरभ्यते । लिपि सिचि ह्व आत्मनेपदेषु परतश्च्लेरङादेशो भवति अन्यतरस्याम् । स्वरितञित इत्यात्मनेपदम् । अलिपत । अलिप्त । असिचत । असिक्त । अह्वत । अह्वास्त ॥

पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ॥ ५५ ॥

पुषादिभ्यो द्युतादिभ्यः ॡदिद्भ्यश्च धातुभ्यः परस्य च्लेः परस्मैपदेषु परतो ऽङादेशो भवति । पुषादिर्दिवाद्यन्तर्गणो गृह्यते, न भ्वादिक्र्याद्यन्त-

णेषः । पुष । अपुषत् । द्युतादि । अद्युतत् । अश्वितत् । लृदित्खल्वपि । गम्लृ । अगमत् । शक्लृ । अशकत् । परस्मैपदेष्विति किम् । व्यद्योतिष्ट । अलोटिष्ट ॥

सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ ५६ ॥

सृ गतौ, शासु अनुशिष्टौ, ऋ गतौ, इत्येतेभ्यः परस्य च्लेरङादेशो भवति । सर्त्ति । असरत् । शास्ति । अशिषत् । अर्त्ति । आरत् । पृथग्योगकरणमात्मनेपदार्थम् । समरन्त । चकारः परस्मैपदेष्वित्यनुकर्षणार्थः । तच्चोत्तरत्रोपयोगं यास्यति ॥

इरितो वा ॥ ५७ ॥

इरितो धातोः परस्य च्लेरङादेशो वा भवति । भिदिर् । अभिदत् । अभैत्सीत् । छिदिर् । अच्छिदत् । अच्छैत्सीत् । परस्मैपदेष्वित्येव । अभित्त । अच्छित्त ॥

जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ ५८ ॥

वेति वर्त्तते । जॄष् वयोहानौ, स्तम्भुः सौत्रो धातुः । म्रुचु म्लुचु गत्यर्थौ । ग्रुचु ग्लुचु स्तेयकरणे । ग्लुञ्चु षस्ज गतौ । टुओश्वि गतिवृद्ध्योः । एतेभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लेर्वा ऽङादेशो भवति । अजरत् । अजारीत् । अस्तभत् । अस्तम्भीत् । अम्रुचत् । अम्रोचीत् । अम्लुचत् । अम्लोचीत् । अग्रुचत् । अग्रोचीत् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । अग्लुचत् । अग्लुञ्चीत् । अश्वत् । अश्वयीत् । अशिश्वियत् । ग्लुचुग्लुञ्च्वोरेकतरोपादानेऽपि रूपत्रयं सिद्ध्यत्यर्थभेदात्तु द्वयोरुपादानं कृतम् । के चित्तु वर्णयन्ति द्वयोरुपादानसामर्थ्याद् ग्लुञ्चेरनुनासिकलोपो न भवति । अग्लुञ्चदिति ॥

कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥ ५९ ॥

कृ मृ दृ रुहि इत्येतेभ्यः परस्य च्लेश्छन्दसि विषये ऽङादेशो भवति । शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत् । अथो ऽमरत् । अदरदर्थान् । पर्वतमारुहत् । अन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् । छन्दसीति किम् । अकार्षीत् । अमृत । अदारीत् । अरुक्षत् ॥

चिण् ते पदः ॥ ६० ॥

पद गतौ, अस्माद्धातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो भवति तशब्दे परतः । सामर्थ्यादात्मनेपदैकवचनं गृह्यते । उदपादि सस्यम् । समपादि भैक्षम् । तद्गति किम् । उदपत्साताम् । उदपत्सत ॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो ऽन्यतरस्याम् ॥ ६१ ॥

चिण् तद्गति वर्त्तते । दीपीदीप्तौ, जनी प्रादुर्भावे, बुध अवगमने, पूरी आप्यायने, तायृ संतानपालनयोः, ओप्यायी वृद्धौ, एतेभ्यः परस्य च्लेस्तशब्दे

परतो ऽन्यतरस्यां चिणादेशो भवति। अदीपि। अदीपिष्ट। अजनि। अजनिष्ट। अबोधि। अबुद्ध। अपूरि। अपूरिष्ट। अतायि। अतायिष्ट। अप्यायि। अप्यायिष्ट॥

अचः कर्मकर्त्तरि ॥ ६२ ॥

अजन्ताद्धातोः परस्य च्लेः कर्मकर्त्तरि तशब्दे परतश्चिणादेशो भवति। प्राप्तविभाषेयम्। अकारि कटः स्वयमेव। अकृत कटः स्वयमेव। अलावि केदारः स्वयमेव। अलविष्ट केदारः स्वयमेव। अच इति किम्। अभेदि काष्ठं स्वयमेव। कर्मकर्त्तरीति किम्। अकारि कटो देवदत्तेन॥

दुहश्च ॥ ६३ ॥

दुह प्रपूरणे, अस्मात्परस्य च्लेश्चिणादेशो भवत्यन्यतरस्याम्। अदोहि गौः स्वयमेव। अदुग्ध गौः स्वयमेव। कर्मकर्त्तरीत्येव। अदोहि गौर्गोपालकेन॥

न रुधः ॥ ६४ ॥

रुधिर् आवरणे, अस्मात्परस्य च्लेः कर्मकर्त्तरि चिणादेशो न भवति। अन्ववारुद्ध गौः स्वयमेव। कर्मकर्त्तरीत्येव। अन्ववारोधि गौर्गोपालकेन॥

तपोऽनुतापे च ॥ ६५ ॥

नेति वर्त्तते। तप संतापे, अस्मात्परस्य च्लेश्चिणादेशो न भवति कर्मकर्त्तर्यनुतापे च। अनुतापः, पश्चात्तापः। तस्य ग्रहणमकर्मकर्त्रर्थं, तत्र हि भावकर्मणोरपि प्रतिषेधो भवति। अतप्त तपस्तापसः। अन्ववातप्त पापेन कर्मणा॥

चिण् भावकर्मणोः ॥ ६६ ॥

धातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो भवति भावे कर्मणि तशब्दे परतः। भावे तावत्। अशायि भवता। कर्मणि खल्वपि। अकारि कटो देवदत्तेन। अहारि भारो यज्ञदत्तेन। चिण्ग्रहणं विस्पष्टार्थम्॥

सार्वधातुके यक् ॥ ६७ ॥

भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परतो धातोर्यक् प्रत्ययो भवति। आस्यते भवता। शय्यते भवता। कर्मणि। क्रियते कटः। गम्यते ग्रामः। ककारो गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः। यग्विधाने कर्मकर्त्तर्युपसंख्यानं विप्रतिषेधाद्धि यकः शपो बलीयस्त्वम्। क्रियते कटः स्वयमेव। पच्यते ओदनः स्वयमेव॥

कर्त्तरि शप् ॥ ६८ ॥

कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतो धातोः शप्प्रत्ययो भवति। पकारः स्वरार्थः, शकारः सार्वधातुकार्थः। भवति। पचति॥

दिवादिभ्यः श्यन् ॥ ६९ ॥

दिव् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्यन्प्रत्ययो भवति । शपोऽपवादः । नकारः स्वरार्थः, शकारः सार्वधातुकार्थः । दीव्यति । सीव्यति ॥

वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ ७० ॥

उभयत्र विभाषेयम् । टुभ्राशृ टुभ्लाशृ दीप्तौ, भ्रमु अनवस्थाने, भ्रमु चलने, द्वयोरपि ग्रहणम् । क्रमु पादविक्षेपे, क्लमु ग्लानौ, त्रसी उद्वेगे, त्रुटी छेदने, लष कान्तौ, एतेभ्यो वा श्यन् प्रत्ययो भवति । भ्राशते । भ्राश्यते । भ्लाशते । भ्लाश्यते । भ्रमति । भ्राम्यति । क्रामति । क्राम्यति । क्लामति । क्लाम्यति । त्रसति । त्रस्यति । त्रुटति । त्रुट्यति । लषति । लष्यति ॥

यसोऽनुपसर्गात् ॥ ७१ ॥

यसु प्रयत्ने दैवादिकः तस्मान्नित्यं श्यनि प्राप्ते ऽनुपसर्गाद्विकल्प उच्यते। यसोनुपसर्गाद्वा श्यन्प्रत्ययो भवति । यस्यति । यसति । अनुपसर्गादिति किम् । आयस्यति । प्रयस्यति ॥

संयसश्च ॥ ७२ ॥

सोपसर्गार्थ आरम्भः । संपूर्वाच्च यसेर्वा श्यन्प्रत्ययो भवति । संयस्यति । संयसति ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ॥ ७३ ॥

षुञ् अभिषवे, इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नुप्रत्ययो भवति । शपोऽपवादः । सुनोति । सिनोति ॥

श्रुवः शृ च ॥ ७४ ॥

श्रुवः श्नुप्रत्ययो भवति तत्संनियोगेन श्रुवः शृ इत्ययमादेशो भवति । शृणोति । शृणुतः । शृण्वन्ति ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ ७५ ॥

अक्षू व्याप्तौ भौवादिकः, अस्मादन्यतरस्यां श्नुप्रत्ययो भवति । अक्ष्णोति । अक्षति ॥

तनूकरणे तक्षः ॥ ७६ ॥

तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, अस्मात्तनूकरणे वर्त्तमानादन्यतरस्यां श्नुप्रत्ययो भवति । अनेकार्थत्वाद्धातूनां विशेषणोपादानम् । तक्षति काष्ठम् । तक्ष्णोति काष्ठम् । तनूकरण इति किम् । संतक्षति वाग्भिः ॥

तुदादिभ्यः शः ॥ ७७ ॥

तुद व्यथने, इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः शप्रत्ययो भवति । शपोऽपवादः । शकारः सार्वधातुकसंज्ञार्थः । तुदति । नुदति ॥

रुधादिभ्यः श्नम् ॥ ७८ ॥

रुधिर् आवरणे, इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नम् प्रत्ययो भवति । शपोपवादः । मकारो देशविध्यर्थः । शकारः श्नान्नलोप इति विशेषणार्थः । रुणद्धि । भिनत्ति ॥

तनादिकृञ्भ्य उः ॥ ७९ ॥

तनु विस्तारे, इत्येवमादिभ्योधातुभ्यः कृञश्च उप्रत्ययो भवति । शपोपवादः । तनोति । सनोति । क्षणोति । कृञः खल्वपि । करोति । तनादिपाठादेव उप्रत्यये सिद्धे करोतेरुपादानं नियमार्थम्, अन्यत्तनादिकार्यं मा भूदिति । तनादिभ्यस्तथासोरिति विभाषा सिचो लुङ् भवति । अकृत । अकृथाः ॥

धिन्विकृण्व्योर च ॥ ८० ॥

हिवि धिवि जिवि प्रीणनार्थाः, कृवि हिंसाकरणयोः, इत्येतयोर्धात्वोरुप्रत्ययो भवत्यकारश्चान्तादेशः । धिनोति । कृणोति । अतो लोपस्य स्थानिवद्भावाद्गुणो न भवति ॥

क्र्यादिभ्यः श्ना ॥ ८१ ॥

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमयइत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नाप्रत्ययो भवति । शपोपवादः । शकारः सार्वधातुकसंज्ञार्थः । क्रीणाति । प्रीणाति ॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥ ८२ ॥

आद्याश्चत्वारो धातवः सौत्राः । स्कुञ् आप्रवणे । एतेभ्यः श्नाप्रत्ययो भवति श्नुश्च । स्तभ्नाति । स्तभ्नोति । स्तुभ्नाति । स्तुभ्नोति । स्कभ्नाति । स्कभ्नोति । स्कुभ्नाति । स्कुभ्नोति । स्कुनाति । स्कुनोति । उदित्त्वप्रतिज्ञानात्सौत्राणामपि धातूनां सर्वार्थत्वं विज्ञायते नैतद्विकरणविषयत्वमेव ॥

हलः श्नः शानज्झौ ॥ ८३ ॥

हल उत्तरस्य श्नाप्रत्ययस्य शानजादेशो भवति हौ परतः । मुषाण । पुषाण । हल इति किम् । क्रीणीहि । हाविति किम् । मुष्णाति । श्न इति स्थानिनिर्देश आदेशसंप्रत्ययार्थः । इतरथा हि प्रत्ययान्तरमेव सर्वविषयं विज्ञायेत ॥

छन्दसि शायजपि ॥ ८४ ॥

छन्दसि विषये श्नः शायजादेशो भवति, शानजपि । गृभाय जिह्वया मधु । शानचः खल्वपि । बधान पशुम् ॥

व्यत्ययो बहुलम् ॥ ८५ ॥

यथायथं विकरणाः शबादयो विहितास्तेषां छन्दसि विषये बहुलं व्यत्ययो भवति । व्यतिगमनं व्यत्ययो व्यतिहारः विषयान्तरे विधानं, क्व चिद्द्विविकरणता क्व चित्त्रिविकरणता च । आण्डा शुष्णस्य भेदति । भिनत्तीति प्राप्ते । स च न मरति । न म्रियतइति प्राप्ते । द्विविकरणता । इन्द्रो वस्तेन नेषतु । नयत्विति प्राप्ते । त्रिविकरणता । इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् । तीर्यास्मेति प्राप्ते । बहुलग्रहणं सर्वविधिव्यभिचारार्थम् ।

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोपि हि सिद्ध्यति बाहुलकेन ॥

लिङ्याशिष्यङ् ॥ ८६ ॥

आशिषि विषये यो लिङ् तस्मिन्परतश्छन्दसि विषये ऽङ् प्रत्ययो भवति । शपोपवादः । छन्दस्युभयथेति लिङः सार्वधातुकसंज्ञाप्यस्ति । स्थागागमिवचिविदिशकिरुहयः प्रयोजनम् । स्था । उपस्थेयम् । गा । सत्यमुपगेयम् । गमि । गमेम जानतो गृहान् । वचि । मन्त्रं वोचेमाग्नये । विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् । शकि । व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम् । रुहि । स्वर्गं लोकमारुहेयम् ॥ दृशेरग्वक्तव्यः ॥ * ॥ पितरं च दृशेयं मातरं च ॥

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ ८७ ॥

कर्मणि क्रिया कर्म, कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवद्भवति । यस्मिन्कर्मणि कर्तृभूतेपि तद्वत्क्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्त्ता कर्मवद्भवति । कर्माश्रयाणि कार्याणि प्रपद्यते । कर्तरि शबिति कर्तृग्रहणमिहानुवृत्तं प्रथमया विपरिणम्यते । यगात्मनेपदचिण्चिण्वद्भावाः प्रयोजनम् । भिद्यते काष्ठं स्वयमेव । अभेदि काष्ठं स्वयमेव । कारिष्यते कटः स्वयमेव । वत्करणं स्वाश्रयमपि यथा स्यात् । भिद्यते कुसूलेनेति । अकर्मकाणां भावे लः सिद्धो भवति । लिङ्याशिष्यङिति द्विलकारको निर्देशः । तत्र लानुवृत्तेर्लान्तस्य कर्त्ता कर्मवद्भवतीति कुसूलाद् द्वितीया न भवति । कर्मणेति किम् । करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रियस्य मा भूत् । साध्वसिश्छिनत्ति । साधु स्थाली पचति । धात्वधिकारात्समाने धातौ कर्मवद्भावः । इह न भवति । पचत्योदनं देवदत्तः, राध्यत्योदनः स्वयमेवेति । कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्मवद्भवति, न कर्तृस्थभावकानां न कर्तृस्थक्रियाणाम् ॥

कर्मस्थः पचतेर्भावः कर्मस्था च भिदेः क्रिया ।
मासासिभावः कर्तृस्थः कर्तृस्था च गमेः क्रिया ॥

तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥ ८८ ॥

तप संतापे, अस्य कर्ता कर्मवद्भवति, स च तपःकर्मकस्यैव नान्य कर्मकस्य । क्रियाभेदाद्विध्यर्थमेतत् । उपवासादीनि तपांसि तापसं तपन्ति । दुःखयन्तीत्यर्थः । स तापसस्त्वगस्थिभूतः स्वर्गाय तपस्तप्यते । अर्जयतीत्यर्थः । पूर्वेणाप्राप्तः कर्मवद्भावो विधीयते । तप्यते तपस्तापसः । अतप्त तपस्तापसः । तपःकर्मकस्यैवेति किम् । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः ॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥ ८९ ॥

दुह स्नु नम् इत्येतेषां कर्मकर्तरि यक्चिणौ कर्मवद्भावापदिष्टौ न भवतः । दुहेरनेन यक् प्रतिषिध्यते । चिण् दुहश्चेति पूर्वमेव विभाषितः । दुग्धे गौः स्वयमेव । अदुग्ध गौः स्वयमेव । अदोहि गौः स्वयमेव । प्रस्नुते गौः स्वयमेव । प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव । नमते दण्डः स्वयमेव । अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥ यक्चिणोः प्रतिषेधे णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ कारयति कटं देवदत्तः । कारयते कटः स्वयमेव । अचीकरत्कटं देवदत्तः । अचीकरत कटः स्वयमेव । उत्पुच्छयते गौः स्वयमेव । उदपुपुच्छत गौः स्वयमेव । श्रथ्नाति ग्रन्थं देवदत्तः । श्रथ्नीते ग्रन्थः स्वयमेव । अश्रन्थिष्ट ग्रन्थः स्वयमेव । ग्रथ्नाति श्लोकं देवदत्तः । ग्रथ्नीते श्लोकः स्वयमेव अग्रन्थिष्ट श्लोकः स्वयमेव । ब्रवीति श्लोकं देवदत्तः । ब्रूते श्लोकः स्वयमेव । अवोचच्छ्लोकं देवदत्तः । अवोचत श्लोकः स्वयमेव । आत्मनेपदविधाने ऽकर्मकाणाम् । हन्ति माणवकं देवदत्तः । आहते माणवकः स्वयमेव । आवधिष्ट माणवकः स्वयमेव, आहतेति वा । विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव । व्यकृषत सैन्धवाः स्वयमेव ॥

कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च ॥ ९० ॥

कुष निष्कर्षे, रञ्ज रागे, अनयोर्धात्वोः कर्मकर्तरि प्राचामाचार्याणां मतेन श्यन्प्रत्ययो भवति, परस्मैपदं च । यगात्मनेपदयोरपवादौ । कुष्यति पादः स्वयमेव । रज्यति वस्त्रं स्वयमेव । प्राचांग्रहणं विकल्पार्थम् । कुष्यते । रज्यते । व्यवस्थितविभाषा चेयम् । तेन लिङ्लिटोः स्यादिविषये च न भवतः । चुकुषे पादः स्वयमेव । ररञ्जे वस्त्रं स्वयमेव । कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव । रङ्क्षीष्ट वस्त्रं स्वयमेव । कोषिष्यते पादः स्वयमेव । रङ्क्ष्यते वस्त्रं स्वयमेव । अकोषि पादः स्वयमेव । अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥

धातोः ॥ ९१ ॥

धातोरित्ययमधिकारो वेदितव्यः । आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः,यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो धातोरित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । तव्यत्तव्यानीयरः इति । कर्त्तव्यम् । करणीयम् । धातुग्रहणमनर्थकम् । यद्विधौ धात्वधिकारात् । कृदुपपदसंज्ञार्थं तर्हि । अस्मिन्धात्वधिकारे ते यथा स्यातां, पूर्वत्र मा भूता-

मिति । आर्धधातुकसंज्ञार्थं च द्वितीयं धातुग्रहणं कर्तव्यम् । धातोरित्येवं विहितस्य यथा स्यात् । इह मा भूत् । लूभ्यां लूभिरिति ॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥ ९२ ॥

तत्रैतस्मिन्धात्वधिकारे तृतीये यत्सप्तमीनिर्दिष्टं तदुपपदसंज्ञं भवति । वक्ष्यति । कर्मण्यण् । कुम्भकारः । स्थग्रहणं सूत्रेषु सप्तमीनिर्देशप्रतिपत्त्यर्थम् । इतरथा हि सप्तमी श्रूयते यत्र तत्रैव स्यात् । स्तम्बेरमः, कर्णेजप इति । यत्र वा सप्तमीश्रुतिरस्ति सप्तम्यां जनेर्ड इति । उपसरजो, मन्दुरज इति । स्थग्रहणात्तु सर्वत्र भवति । गुरुसंज्ञाकरणमन्वर्थसंज्ञाविज्ञाने सति समर्थपरिभाषाव्यापारार्थम् । पश्य कुम्भं करोति कटमिति प्रत्ययो न भवति । उपपदमतिङित्येवमादयः ॥

कृदतिङ् ॥ ९३ ॥

अस्मिन्धात्वधिकारे तिङ्वर्जितः प्रत्ययः कृत्संज्ञको भवति । कर्तव्यम् । करणीयम् । अतिङिति किम् । चीयात् । स्तूयात् । कृत्प्रदेशाः कृत्तद्धितसमासाश्चेत्येवमादयः ॥

वा ऽसरूपो ऽस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

अस्मिन्धात्वधिकारे ऽसमानरूपः प्रत्ययो ऽपवादो वा बाधको भवति स्त्र्यधिकारविहितप्रत्ययं वर्जयित्वा । ण्वुल्तृचावुत्सर्गा, इगुपधज्ञाप्रीकिरः क इत्यपवादः, तद्विषये ण्वुल्तृचावपि भवतः । विक्षेपकः । विक्षेप्ता । विक्षिपः । असरूप इति किम् । कर्मण्यणित्युत्सर्गः, आतोनुपसर्गे क इत्यपवादः, स नित्यं बाधको भवति । गोदः । कम्बलदः । नानुबन्धकृतमसारूप्यम् । अस्त्रियामिति किम् । स्त्रियां क्तिन्नित्युत्सर्गः, अ प्रत्ययादित्यपवादः, स बाधक एव भवति । चिकीर्षा । जिहीर्षा ॥

कृत्याः प्राङ् ण्वुलः ॥ ९५ ॥

ण्वुल्तृचाविति वक्ष्यति, प्रागेतस्माण्ण्वुल्संशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः कृत्यसंज्ञकास्ते वेदितव्याः तत्रैवोदाहरिष्यामः । कृत्यप्रदेशाः कृत्यरधिकार्थवचने कृत्यानां कर्तरि वेत्येवमादयः ॥

तव्यत्तव्यानीयरः ॥ ९६ ॥

धातोरिति वर्तते । धातोस्तव्यत् तव्य अनीयर् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । तकाररेफौ स्वरार्थौ । कर्तव्यम् । कर्तव्यम् । करणीयम् ॥ वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च ॥ * ॥ वास्तव्यः ॥ केलिमर उपसंख्यानम् ॥ * ॥ पचेलिमा माषाः । भिदेलिमानि काष्ठानि । कर्मकर्तरि चायमिष्यते ॥

अचो यत् ॥ ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत्प्रत्ययो भवति । तकारो यतोनाव इति स्वरार्थः ।

गेयम् । पेयम् । चेयम् । जेयम् । अज्ग्रहणं किम् । यावता हलन्ताण्ण्यतं वक्ष्यति अजन्तभूतपूर्वादपि यथा स्यात् । दित्स्यम् । धित्स्यम् ॥ तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ तकि । तक्यम् । शसि । शस्यम् । चति । चत्यम् । यति । यत्यम् । जनि । जन्यम् ॥ हनो वा वध च ॥ * ॥ वध्यम् । घात्यम् ॥

पोरदुपधात् ॥ ९८ ॥

पवर्गान्ताद्धातोरकारोपधाद्यत्प्रत्ययो भवति । ण्यतोपवादः । शप् । शप्यम् । लभ् । लभ्यम् । पोरिति किम् । पाक्यम् । वाक्यम् । अदुपधादिति किम् । कोप्यम् । गोप्यम् । तपरकरणं तत्कालार्थम् । आप्यम् ॥

शकिसहोश्च ॥ ९९ ॥

शकॢ शक्तौ, षह मर्षणे, अनयोर्धात्वोर्यत्प्रत्ययो भवति । शक्यम् । सह्यम् ॥

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ १०० ॥

गद व्यक्तायां वाचि, मदी हर्षे, चर गतिभक्षणयोः, यमउपरमे, एतेभ्यश्चानुपसर्गेभ्यो यत्प्रत्ययो भवति । गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । अनुपसर्गइति किम् । प्रगाद्यम् । प्रमाद्यम् । यमेः पूर्वेणैव सिद्धे ऽनुपसर्गनियमार्थं वचनम् ॥ चरेराङि चागुरौ ॥ * ॥ आचर्यो देशः । अगुराविति किम् । आचार्य उपनेता ॥

अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥ १०१ ॥

अवद्य पण्य वर्या इत्येते शब्दा निपात्यन्ते गर्ह्य पणितव्यानिरोध इत्येतेष्वर्थेषु यथासंख्यम् । अवद्यमिति निपात्यते गर्ह्यं चेत्तद्भवति । अवद्यं पापम् । अनुद्यमन्यत् । वदः सुपि क्यप् च । पण्यमिति निपात्यते पणितव्यं चेत्तद्भवति । पण्यः कम्बलः । पण्या गौः । पाण्यमन्यत् । वर्येति स्त्रियां निपात्यते अनिरोधश्चेद्भवति । अनिरोधो ऽप्रतिबन्धः । शतेन वर्या । सहस्रेण वर्या । वृत्या ऽन्या । स्त्रीलिङ्गनिर्देशः किमर्थः । वार्या ऋत्विजः ॥

वह्यं करणम् ॥ १०२ ॥

वहेर्धातोः करणे यत्प्रत्ययो निपात्यते । वहत्यनेनेति वह्यं शकटम् । करणइति किम् । वाह्यमन्यत् ॥

अर्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ १०३ ॥

ऋ गतौ, अस्माण्ण्यति प्राप्ते स्वामिवैश्ययोरभिधेययोर्यत्प्रत्ययो निपात्यते । अर्यः स्वामी । अर्या वैश्यः ॥ यतो ऽनाव इत्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्वामिवैश्ययोरिति किम् । आर्यो ब्राह्मणः ॥

उपसर्या काल्या प्रजने ॥ १०४ ॥

उपसर्येति निपात्यते काल्या चेत्प्रजने भवति । उपपूर्वात्सर्तेर्यत्प्रत्ययः ।

प्राप्तकाला कल्या। प्रजनः प्रजननं प्रथमगर्भग्रहणम्। गर्भग्रहणे प्राप्तकाला। उप-
सर्या गौः। उपसर्या वडवा। काल्या प्रजन इति किम्। उपसार्या शरदि मथुरा॥

अजर्यं संगतम्॥ १०५॥

अजर्यमिति निपात्यते संगतं चेद्भवति। जीर्यतेर्नञ्पूर्वात्संगते संगमने कर्तरि यत्प्रत्ययो निपात्यते। न जीर्यतीत्यजर्यम्। अजर्यमार्यसंगतम्। अजर्यं नोऽस्तु संगतम्। संगतमिति किम्। अजरिता कम्बलः॥

वदः सुपि क्यप् च॥ १०६॥

अनुपसर्ग इति वर्तते। वदेर्धातोः सुबन्त उपपदे अनुपसर्गे क्यप् प्रत्ययो भवति, चकाराद्यच्च। ब्रह्मोद्यम्। ब्रह्मवद्यम्। सत्योद्यम्। सत्यवद्यम्। सुपीति किम्। वाद्यम्। अनुपसर्ग इत्येव। प्रवाद्यम्॥

भुवो भावे॥ १०७॥

सुप्यनुपसर्ग इत्यनुवर्तते। भवतेर्धातोः सुबन्त उपपदेऽनुपसर्गे भावे क्यप् प्रत्ययो भवति। यत्तु नानुवर्तते। ब्रह्मभूयं गतः। ब्रह्मत्वं गतः। देवभूयम्, देवत्वं गतः। भावग्रहणमुत्तरार्थम्। सुपीत्येव, भव्यम्। अनुपसर्ग इत्येव। प्रभव्यम्॥

हनस्त च॥ १०८॥

सुप्यनुपसर्ग इति वर्तते भाव इति च। हन्तेर्धातोः सुबन्त उपपदेऽनुपसर्गे भावे क्यप् प्रत्ययो भवति, तकारश्चान्तादेशः। ब्रह्महत्या। अश्वहत्या। सुपी-त्येव, घातः। ण्यत्तु भावे न भवत्यनभिधानात्। अनुपसर्ग इत्येव। प्रघातो वर्तते॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्॥ १०९॥

सुप्यनुपसर्गे भाव इति निवृत्तम्। सामान्येन विधानमेतत्। एति स्तु शास् वृ दृ जुष् इत्येतेभ्यः क्यप् प्रत्ययो भवति। इत्यः। स्तुत्यः। शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः। क्यबिति वर्तमाने पुनः क्यब्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम्। ओरावश्यके इति ण्यतं बाधित्वा क्यबेव भवति। अवश्यस्तुत्यः। वृग्रहणे वृञो ग्रहणमिष्यते न वृङः। वार्या ऋत्विजः॥ शंसिदुहिगुहिभ्यो वेति वक्तव्यम्॥ * ॥ शस्यम्। शंस्यम्। दुह्यम्। दोह्यम्। गुह्यम्। गोह्यम्॥ आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम्॥ * ॥ आज्यं घृतम्। कथमुपेयम्। एतेस्तद्रूपं, नेणः॥

ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः॥ ११०॥

ऋकारोपधाच्च धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति क्लृपिचृती वर्जयित्वा। वृतु। वृत्यम्। वृधु। वृध्यम्। अक्लृपिचृतेरिति किम्। कल्प्यम्। चर्त्यम्। तपरकरणं किम्। कृत संशब्दने। ण्यदेव भवति। कीर्त्यम्॥ पाणौ सृजेर्ण्यद्वक्तव्यः॥ * ॥ पाणिसर्ग्या रज्जुः॥ समवपूर्वाच्च॥ * ॥ समवसर्ग्या॥

ई च खनः ॥ १११ ॥

खनेर्धातोः क्यप् प्रत्ययो भवतीकारश्चान्तादेशः । खेयम् । दीर्घनिर्देशः प्रश्लेषार्थः । तत्र द्वितीय इकारो ये विभाषेत्यात्वबाधनार्थः ॥

भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ ११२ ॥

भृञो धातोरसंज्ञायां विषये क्यप् प्रत्ययो भवति । भृत्याः कर्मकराः । भर्तव्या इत्यर्थः । असंज्ञायामिति किम् । भार्यानाम क्षत्रियः ॥ संपूर्वाद्विभाषा ॥ * ॥ संभृत्याः । संभार्याः ॥

संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिद्ध्यति ।
स्त्रियां भावाधिकारोऽस्ति तेन भार्या प्रसिद्ध्यति ॥

मृजेर्विभाषा ॥ ११३ ॥

मृजेर्धातोर्विभाषा क्यप् प्रत्ययो भवति । ऋदुपधत्वात् प्राप्तविभाषेयम् । परिमृज्यः । परिमार्ग्यः ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥ ११४ ॥

राजसूय सूर्य मृषोद्य रुच्य कुप्य कृष्टपच्य अव्यथ्य इत्येते शब्दाः क्यपि निपात्यन्ते । राज्ञा सोतव्यः राज्ञा वा इह सूयते राजसूयः क्रतुः । सूसर्त्तिभ्यां क्यप् सर्त्तेरुत्वं सुवतेर्वा रुडागमः । सरति सुवति वा सूर्यः । मृषापूर्वस्य वदतेः यत्वे यति प्राप्ते नित्यं क्यब् निपात्यते । मृषोद्यम् । रोचतेऽसौ रुच्यः । कर्त्तरि क्यप् । गुपे रादेः कत्वं च संज्ञायाम् । कुप्यम् । गोप्यमन्यत् । कृष्टे पच्यन्ते कृष्टपच्याः । कर्मकर्त्तरि निपातनम् । न व्यथते अव्यथ्यः ॥

भिद्योद्ध्यौ नदे ॥ ११५ ॥

भिदेरुज्झेश्च क्यब् निपात्यते नदेऽभिधेये । उज्झेर्धत्वं च । भिनत्ति कूलं भिद्यः । उज्झत्युदकम् उद्ध्यः । नद इति किम् । भेत्ता । उज्झिता ॥

पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥ ११६ ॥

पुषेः सिधेश्चाधिकरणे क्यब् निपात्यते नक्षत्रेऽभिधेये । पुष्यन्त्यस्मिन्नर्था इति पुष्यः । सिद्ध्यन्त्यस्मिन्निति सिद्ध्यः । नक्षत्र इति किम् । पोषणं, सेधनम् ॥

विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु ॥ ११७ ॥

विपूय विनीय जित्य इत्येते शब्दा निपात्यन्ते यथासंख्यं मुञ्ज कल्क हलि इत्येतेषु वाच्येषु । विपूर्वात्पवतेर्नयतेश्च तथा जयतेर्यति प्राप्ते कर्मणि क्यन्निपात्यते । विपूयो मुञ्जः । विपाव्यमन्यत् । विनीयः कल्कः । विनेयमन्यत् । जित्यो हलिः । जेयमन्यत् ॥

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि ॥ ११८ ॥

प्रति अपि इत्येवंपूर्वाद्ग्रहेः क्यप् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये । मत्तस्य न प्रतिगृह्यम् । तस्मान्नापिगृह्यम् । छन्दसीति किम् । प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ॥

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥ ११९ ॥

पदे ऽस्वैरिणि बाह्यायां पक्ष्ये चार्थे ग्रहेर्धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति । पदे तावत् । प्रगृह्यं पदं, यस्य प्रगृह्यसंज्ञा विहिता । अवगृह्यं पदं, यस्यावग्रहः क्रियते । अस्वैरी परतन्त्रः । गृह्यका इमे । गृहीतका इत्यर्थः । बाह्यायाम् । ग्रामगृह्या सेना । नगरगृह्या सेना । ग्रामनगराभ्यां बहिर्भूतेत्यर्थः । स्त्रीलिङ्गनिर्देशादन्यत्र न भवति । पक्षे भवः पक्ष्यः । वासुदेवगृह्याः । अर्जुनगृह्याः । तत्पक्षाश्रिता इत्यर्थः ॥

विभाषा कृवृषोः ॥ १२० ॥

कृञो वृषश्च विभाषा क्यप् प्रत्ययो भवति । करोतेर्ण्यति प्राप्ते वर्षतेऋदुपधत्वान्नित्ये क्यपि विभाषारभ्यते । कृत्यम् । कार्यम् । वृष्यम् । वर्ष्यम् ॥

युग्यं च पत्रे ॥ १२१ ॥

युग्यमिति निपात्यते पत्रं चेत्तद्भवति । पतत्यनेनेति पत्रं, वाहनमुच्यते । युग्यो गौः । युग्योऽश्वः । युग्यो हस्ती । युजेः क्यप् कुत्वं च निपात्यते । पत्र इति किम् । योग्यमन्यत् ॥

अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ १२२ ॥

अमाशब्दः सहार्थे वर्त्तते । तस्मिन्नुपपदे वसेर्धातोः कालेऽधिकरणे ण्यत्प्रत्ययो भवति, तत्रान्यतरस्यां वृद्ध्यभावो निपात्यते । सह वसतोऽस्मिन्काले सूर्याचन्द्रमसाविति अमावास्या । अमावस्या । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वादमावास्याया वेत्यत्रामावस्याशब्दस्यापि ग्रहणं भवति ।

अमावसोरहं ण्यतोर्निपातयाम्यवृद्धिताम् ।
तथैकवृत्तिता तयोः स्वरश्च मे प्रसिद्ध्यति ॥

छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ १२३ ॥

निष्टर्क्यादयः शब्दाश्छन्दसि विषये निपात्यन्ते । यदिह लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । निष्टर्क्ये इति कृति छेदने इत्यस्मान्निस्पूर्वात्क्यपि प्राप्ते ण्यत्, आद्यन्तविपर्ययश्च, निसश्च षत्वं निपात्यते । निष्टर्क्ये

चिन्वीत पशुकामः। देवशब्द उपपदे हूयतेर्जुहोतेर्वा क्यप् दीर्घस्तुगभावश्च। देवहूयः। प्रपूर्वादुत्पूर्वाच्च नयतेः क्यप्। प्रणीयः। उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः क्यप्। उच्छिष्यम्। मृङ् प्राणत्यागे, स्तृञ् आच्छादने, ध्वृ हूर्छने, एतेभ्यो यत्प्रत्ययः। मर्यः। स्तर्या। स्त्रियामेव निपातनम्। ध्वर्यः। खनेर्यत्। खन्यः। एतस्मादेव ण्यत्। खान्यः। देवशब्द उपपदे यजेर्यत्। देवयज्या। स्त्रीलिङ्गनिपातनम्। आङ्पूर्वात्पृच्छेः क्यप्। आपृच्छ्यः। प्रतिपूर्वात्सीव्यतेः क्यप् षत्वं च। प्रतीषीव्यः। ब्रह्मण्युपपदे वदेर्ण्यत्। ब्रह्मवाद्यः। भाव्यः। स्ताव्यः। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत् आवादेशश्च भवति। उपपूर्वस्य चिनोतेर्ण्यदायादेशौ। उपचाय्यपृडम्। पृडे चोत्तरपदे निपातनमेतत्॥ हिरण्य इति वक्तव्यम्॥ * ॥ हिरण्यादन्यत्र उपचेयपृडमेव।

निष्टर्क्ये व्यत्ययं विद्यान्निसः षत्वं निपातनात्।
ण्यदायादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ॥
ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च यतो विधिः।
ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ ण्यद्विधिश्चतुः॥

ऋहलोर्ण्यत्॥ १२४॥

पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ऋवर्णान्ताद्धातोर्हलन्ताच्च ण्यत्प्रत्ययो भवति। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। वाक्यम्। पाक्यम्॥

ओरावश्यके॥ १२५॥

अवश्यंभाव आवश्यकम्। उवर्णान्ताद्धातोर्ण्यत् प्रत्ययो भवत्यावश्यके द्योत्ये। यतोऽपवादः। लाव्यम्। पाव्यम्। आवश्यक इति किम्। लव्यम्। आवश्यके द्योत्य इति स्वरसमासानुपपत्तिः। अवश्यलाव्यम् अवश्यपाव्यमिति। नैष दोषः। मयूरव्यंसकादित्वात्समास उत्तरपदप्रकृतिस्वरे च यत्नः करिष्यते॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च॥ १२६॥

आङ्पूर्वात्सुनोतेः यु वपि रपि लपि त्रपि चम् इत्येतेभ्यश्च ण्यत् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। आसाव्यम्। याव्यम्। वाप्यम्। राप्यम्। लाप्यम्। त्राप्यम्। आचाम्यम्। अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः। दभि। दाभ्यम्॥

आनाय्योऽनित्ये॥ १२७॥

आनाय्य इति निपात्यते अनित्येऽभिधेये नयतेराङ्पूर्वात् ण्यदायादेशौ निपात्येते। आनाय्यो दक्षिणाग्निः। रूढिरेषा। तस्मान्नानित्यविशेषे दक्षिणाग्नावेवावतिष्ठते। तस्य चानित्यत्वं नित्यमजागरणात्। यश्च गार्हपत्यादानीयते दक्षिणाग्निराहवनीयेन सहैकयोनिस्तत्रैतन्निपातनं न दक्षिणाग्निमात्रे। तस्य हि योनिर्विकल्प्यते। वैश्यकुलाद्वित्तवतो भ्राष्ट्राद्वा गार्हपत्याद्वेति॥

आनाय्यो ऽनित्य इति चेद्दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् ।
एकयोनौ तु तं विद्यादानेयो ह्यन्यथा भवेत् ॥

प्रणाय्यो ऽसंमतौ ॥ १२८ ॥

अविद्यमाना संमतिरस्मिन्नित्यसंमतिः । संमननं संमतिः । संमतता पूजा । प्रणाय्य इति निपात्यते ऽसंमतावभिधेये । प्रणाय्यश्चोरः । असंमताविति किम् । प्रणेयोऽन्यः । यद्येवं कथमेतत् । ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्यायान्तेवासिने नान्यस्मै कस्मै चनेति । संमतिरभिलाषोऽप्युच्यते । तदभावेन निष्कामतया असंमतिरन्तेवासी भवति । तस्मै निष्कामाय मोक्षार्थं यतमानायान्तेवासिने प्रणाय्याय ब्रह्म प्रब्रूयादिति युज्यते ॥

पाय्यसांनाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ १२९ ॥

पाय्यादयः शब्दा निपात्यन्ते यथासंख्यं,माने हविषि निवासे सामिधेन्यां चाभिधेयायाम् । पाय्य इति माङो ण्यत्प्रत्यय आदेःपत्वं च निपात्यते । माने । पाय्यं मानम् । मेयमन्यत् । संपूर्वान्नयतेर्ण्यदायादेशावुपसर्गदीर्घत्वं च निपात्यते । सान्नाय्यं हविः । सन्नेयमन्यत् । रूढित्वाच्च हविर्विशेषएवावतिष्ठते । निपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यदायादेशावादिकुत्वं च निपात्यते । निकाय्यो निवासः । निचेयमन्यत् । धाय्येति धाञो ण्यत्प्रत्ययो निपात्यते सामिधेनी चेत्सा भवति । धाय्या सामिधेनी । धेयमन्यत् । सामिधेनीशब्द ऋग्विशेषस्य वाचकः तत्र च धाय्येति न सर्वा सामिधेन्युच्यते किं तर्हि का चिदेव । रूढिशब्दो ह्ययं तथा चासामिधेन्यामपि दृश्यते धाय्याः शंसत्यग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभिरिति ॥

क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ॥ १३० ॥

कुण्डपाय्य संचाय्य इत्येतौ शब्दौ निपात्येते क्रतावभिधेये । कुण्डशब्दे तृतीयान्तउपपदे पिबतेर्धातोरधिकरणे यत्प्रत्ययो निपात्यते युक्च । कुण्डेन पायते ऽस्मिन्सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः । यतो ऽनाव इति स्वरः । संपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यदायादेशौ निपात्येते । संचीयते ऽस्मिन्सोम इति संचाय्यः क्रतुः । क्रताविति किम् । कुण्डपानम् । संचेयः ॥

अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ १३१ ॥

परिचाय्य उपचाय्य समूह्य इत्येते शब्दा निपात्यन्ते अग्नावभिधेये । परिपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यदायादेशौ निपात्येते । परिचाय्यः । उपचाय्यः । संपूर्वाद्वहेः संप्रसारणं दीर्घत्वं च निपात्यते । समूह्यं चिन्वीत पशुकामः । अग्नाविति किम् । परिचेयम् । उपचेयम् । संवाह्यम् ॥

चित्याग्निचित्ये च ॥ १३२ ॥

चित्यशब्दोऽग्निचित्याशब्दश्च निपात्येते। चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेवाग्निचित्या। भावे यकारप्रत्ययस्तुक् च। तेनान्तोदात्तत्वं भवति। अग्नावित्येव। चेयमन्यत् ॥

ण्वुल्तृचौ ॥ १३३ ॥

धातोरिति वर्तते। सर्वधातुभ्यो ण्वुल्तृचौ प्रत्ययौ भवतः। कारकः। कर्त्ता। हारकः। हर्त्ता। चकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थः। तुश्छन्दसि तुरिष्ठेमेयस्स्विति ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ १३४ ॥

प्रत्येकमादिशब्दः संबध्यते। त्रिभ्यो गणेभ्यस्त्रयः प्रत्यया यथासंख्यं भवन्ति। नन्द्यादिभ्यो ल्युः, ग्रहादिभ्यो णिनिः, पचादिभ्योऽच्। नन्दिग्रहिपचादयश्च न धातुपाठतः संनिविष्टा गृह्यन्ते, किं तर्हि नन्दनरमणेत्येवमादिषु प्रातिपदिकगणेषु अपोद्धृत्य प्रकृतयो निर्दिश्यन्ते ॥ नन्दिवासिमदिदूषिसाधिवर्द्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम् ॥ नन्दनः। वासनः। मदनः। दूषणः*। साधनः। वर्द्धनः। शोभनः। रोचनः॥ सहितपिदमेः संज्ञायाम् ॥ सहनः। तपनः। दमनः। जल्पनः। रमणः। दर्पणः। संक्रन्दनः। संकर्षणः। संहर्षणः। जनार्दनः। यवनः†। मधुसूदनः। विभीषणः। लवणः। निपातनाण्णत्वम्। चित्तविनाशनः। कुलदमनः। शत्रुदमनः। इति नन्द्यादिः। ग्रह। उत्सह। उद्दस। उद्भास। स्था। मन्त्र। संमर्द। ग्राही। उत्साही। उद्दासी। उद्भासी। स्थायी। मन्त्री। संमर्दी॥ रक्षश्रुवसवपशां नौ॥ निरक्षी। निश्रावी। निवासी। निवापी। निशायी॥ याचिव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम्॥ अयाची। अव्याहारी। असंव्याहारी। अव्राजी। अवादी। अवासी॥ अचामचित्तकर्तृकाणाम्॥ प्रतिषिद्धानामित्येव। अकारी। अहारी। अविनायी। अधिशायी। विशयी॥ विषयी देशे॥ विषयी देशः॥ अभिभावी भूते॥ अभिभावी। अपराधी। उपरोधी। परिभावी। परिभवी। इति ग्रह्यादिः॥ पच। वप। वद। चल। तप। पत। नदट्। भषट्। वस। गरट्। प्लवट्। तरट्। चोरट्। ग्राहट्। जर। मर। क्षर। क्षम। सूदट्। देवट्। मोरट्। सेव। मेष। क्रोध। मेधानर्त्त। व्रण। दर्श। दंश। दम्भ। जारभर। श्वपच। ‡ पचादिराकृतिगणः॥

---

* पुस्तकान्तरे 'भूषणः'। इति पा० तदनुसारेण पूर्वमपि 'मदिभूषिसाधि' इति पा०।

† पुस्तकान्तरे 'पवनः'। इति पा० २।

‡ क्षर। मोरट्। क्रोध। दंश। दम्भ। एते पदमञ्जरीपर्यालोचनात्तवर्तते वृत्तिपाठस्था न भवन्तीति। परं तु बहुषु काशिकापुस्तकेषूपलभ्यन्ते।

अज्विधिः सर्वधातुभ्यः पठ्यन्ते च पचादयः ।
अणबाधनार्थमेव स्यात्सिध्यन्ति श्वपचादयः ॥ *

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ १३५ ॥

इगुपधेभ्यो जानातेः प्रीणातेः किरतेश्च कप्रत्ययो भवति । विक्षिपः । विलिखः । बुधः । कृशः । जानातीति ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः । देवसेवमेषादयः पचादौ पठितव्याः ॥

आतश्चोपसर्गे ॥ १३६ ॥

आकारान्तेभ्यो धातुभ्य उपसर्ग उपपदे कप्रत्ययो भवति । णस्यापवादः । प्रस्थः । सुग्लः । सुम्लः ॥

पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥ १३७ ॥

पादिभ्यो धातुभ्य उपसर्गउपपदे शप्रत्ययो भवति । उत्पिबः । विपिबः । उज्जिघ्रः । विजिघ्रः । उद्धमः । विधमः । धेट् । उद्धयः । विधयः । उत्पश्यः । विपश्यः । उपसर्गइति के चिदनुवर्तयन्ति । पश्यतीति पश्यः ॥ जिघ्रतेः संज्ञायां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ व्याघ्रः ॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ॥ १३८ ॥

अनुपसर्गेभ्यो लिम्पादिभ्यः शप्रत्ययो भवति । लिम्पतीतिलिम्पः । विन्दतीति विन्दः । धारयतीति धारयः । पारयतीति पारयः । वेदयतीति वेदयः । उदेजयतीत्युदेजयः । चेतयतीति चेतयः । सातिः सौत्रो धातुः । सातयः । साहयः । अनुपसर्गादिति किम् । प्रलिपः ॥ नौ लिम्पेरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ निलिम्पा नाम देवाः ॥ गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥ * ॥ गोविन्दः । अरविन्दः ॥

ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ १३९ ॥

दाञो धाञश्च विभाषा शप्रत्ययो भवति । णस्यापवादः । ददः । दायः । दधः । धायः । अनुपसर्गादित्येव । प्रदः । प्रधः ॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ १४० ॥

इतिशब्द आद्यर्थः । ज्वलदीप्तावित्येवमादिभ्यो धातुभ्यः कसगतावित्येवमन्तेभ्यो विभाषा णप्रत्ययो भवति । अचोऽपवादः । ज्वालः । ज्वलः । चालः । चलः । अनुपसर्गादित्येव । प्रज्वलः ॥ तनोतेर्णे उपसंख्यानम् ॥ * ॥ अवतनोतीत्यवतानः ॥

---

* अयं श्लोको बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ १४१ ॥

अनुपसर्गादिति विभाषा चेति निवृत्तम् । श्यैङ आकारान्तेभ्यश्च धातुभ्यः व्यध आस्रु संस्रु अतीण् अवसा अवहृ लिह श्लिष श्वस इत्येतेभ्यश्च णप्रत्ययो भवति । आकारान्तत्वादेव श्यायतेः प्रत्यये सिद्धे पुनर्वचनं बाधकबाधनार्थम् । उपसर्गे कं बाधित्वा ऽयमेव भवति । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । दायः । धायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

दुन्योरनुपसर्गे ॥ १४२ ॥

दुनोतेर्नयतेश्चानुपसर्गे णप्रत्ययो भवति । दुनोतीति दावः । नयतीति, नायः । अनुपसर्गइति किम् । प्रदवः । प्रणयः ॥

विभाषा ग्रहः ॥ १४३ ॥

विभाषा ग्रहेर्धातोर्णप्रत्ययो भवति । अचोपवादः । ग्रहः । ग्राहः । व्यवस्थितविभाषा चेयम् । जलचरे नित्यम् । ग्राहः । ज्योतिषि नेष्यते । तत्र ग्रह एव* ॥ भवतेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भवतीति. भावः । भवः ॥

गेहे कः ॥ १४४ ॥

ग्रहेर्धातोः कप्रत्ययो भवति गेहे कर्त्तरि । गृहं वेश्म । तात्स्थ्याद्दाराश्च । गृह्णन्तीति, गृहा दाराः । गृहाणि वेश्मानि ॥

शिल्पिनि ष्वुन् ॥ १४५ ॥

धातोः ष्वुन्प्रत्ययो भवति शिल्पिनि कर्त्तरि ॥ नृतिखनिरञ्जिभ्यः परिगणनं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ नर्त्तकः । खनकः । रजकः । नर्त्तकी । खनकी । रजकी । रञ्जेरनुनासिकलोपश्च ॥

गस्थकन् ॥ १४६ ॥

गायतेस्थकन्प्रत्ययो भवति शिल्पिनि कर्त्तरि । गाथकः । गाथिका ॥

ण्युट् च ॥ १४७ ॥

चकारेण ग इत्यनुकृष्यते † । गायतेर्ण्युट्प्रत्ययो भवति शिल्पिनि कर्त्तरि । गायनः । गायनी । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

हश्च व्रीहिकालयोः ॥ १४८ ॥

चकारेण ण्युडनुकृष्यते । जहातेर्जिहीतेश्च धातोर्ण्युट्प्रत्ययो भवति व्री-

---

* जलचरे ग्राह एव । ज्योतिषि ग्रह एव । इति पा० २ ।
† 'थकन् इत्यनुकृष्यते' इति क्व चित् पुस्तके पाठो ऽसंगतः ।

हौ काले च कर्त्तरि । हायना नाम व्रीहयः । जहत्युदकमिति कृत्वा । काले । हायनः संवत्सरः । जहाति भावानिति ॥

प्रुसृ*ल्वः समभिहारे वुन् ॥ १४९ ॥

प्रु सृ लू इत्येतेभ्यो धातुभ्यः समभिहारे वुन् प्रत्ययो भवति । प्रवकः । सरकः । लवकः । समभिहारग्रहणेनात्र साधुकारित्वं लक्ष्यते । साधुकारिणि वुन्विधानात्सकृदपि यः सुष्ठु करोति तत्र भवति । बहुशो यो दुष्टं करोति तत्र न भवति ॥

आशिषि च ॥ १५० ॥

आशिषि गम्यमानायां धातुमात्राद् वुन्प्रत्ययो भवति । जीवतात्, जीवकः । नन्दतात्, नन्दकः । आशीः प्रार्थनाविशेषः । स च क्रियाविषयः । अमुष्याः क्रियायाः कर्त्ता भवेदित्येवमाशास्यते ॥

इति काशिकायां वृत्तौ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

॥ अथ तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

कर्मण्यण् ॥ १ ॥

त्रिविधं कर्म निर्वर्त्यं विकार्यं प्राप्यं चेति । सर्वत्र कर्मण्युपपदे धातोरण्प्रत्ययो भवति । निर्वर्त्यं तावत् । कुम्भकारः । नगरकारः । विकार्यम् । काण्डलावः । शरलावः । प्राप्यम् । वेदाध्यायः । चर्चापाठः । ग्रामं गच्छति, आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं शृणोतीत्यत्र न भवत्यनभिधानात् ॥ शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम् ॥ * ॥ मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः मांसकामा । मांसभक्षः । मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ॥ ईक्षिक्षमिभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । बहुक्षमः । बहुक्षमा ॥

ह्वावामश्च ॥ २ ॥

ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च । वेञ् तन्तुसन्ताने । माङ् माने । एतेभ्यश्च कर्मण्युपपदे ऽण् प्रत्ययो भवति । कप्रत्ययापवादः । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

आतो ऽनुपसर्गे कः ॥ ३ ॥

आकारान्तेभ्यो ऽनुपसर्गेभ्यः कर्मण्युपपदे कप्रत्ययो भवति । अणोपवादः । गोदः । कम्बलदः । पार्ष्णित्रम् । अङ्गुलित्रम् । अनुपसर्ग इति किम् । गोसंदायः । वडवासंदायः ।

---

* 'सु' इत्येकस्मिन् पुस्तके पाठः, तदनुसारेणोदाहरणमपि सरक इत्यस्य स्थाने सवक इत्येव तत्र ।

सुपि स्थः ॥ ४ ॥

सुबन्त उपपदे तिष्ठतेः कप्रत्ययो भवति । समस्थः । विषमस्थः * । अत्र योगविभागः कर्त्तव्यः । सुपीति । सुप्याकारान्तेभ्यः कप्रत्ययो भवति । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । पादपः । कच्छपः । ततः स्थः । स्थश्च सुपि कप्रत्ययो भवति । किमर्थमिदम् । कर्तरि पूर्वयोगः । अनेन भावे यथा स्यात् । आखूनामुत्थानम्, आखूत्थः । शलभोत्थः । इत उत्तरं कर्मणीति च सुपीति च द्वयमप्यनुवर्त्तते । तत्र सकर्मकेषु धातुषु कर्मणीत्येतदुपतिष्ठते । अन्यत्र सुपीति ॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ ५ ॥

तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदोर्धात्वोः कप्रत्ययो भवति । तुन्दपरिमृज आस्ते । शोकापनुदः पुत्रो जातः ॥ आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अलसस्तुन्दपरिमृज उच्यते । तुन्दपरिमार्ज एवान्यः । सुखस्याहर्त्ता शोकापनुदः । शोकापनोद एवान्यः ॥ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः । नखमुचानि धनूंषि । काकगुहास्तिलाः । कौ मोदते कुमुदम् ॥

प्रे दाज्ञः ॥ ६ ॥

सोपसर्गार्थ आरम्भः । ददातेर्जानातेश्च धातोः प्रेणोपसृष्टात्कर्मण्युपपदे कप्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । सर्वप्रदः । पथिप्रज्ञः । प्रइति किम् । गोसंदायः ॥

समि ख्यः ॥ ७ ॥

सोपसर्गार्थ आरम्भः । संपूर्वात्ख्या इत्येतस्माद्धातोः कर्मण्युपपदे कप्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । गां संचष्टे, गोसंख्यः ॥

गापोष्टक् ॥ ८ ॥

कर्मण्यनुपसर्गइति वर्त्तते । गायतेः पिबतेश्च धातोः कर्मण्युपपदे ऽनुपसर्गे टक् प्रत्ययो भवति । कस्यापवादः । शक्रं गायति, शक्रगः । सामगः । शक्रगी । सामगी ॥ सुरासीध्वोः पिबतेरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सुरापः । सुरापी । सीधुपः । सीधुपी । सुरासीध्वोरिति किम् । क्षीरपा ब्राह्मणी । पिबतेरिति किम् । सुरां पातीति सुरापा । अनुपसर्गइत्येव । शक्रसंगायः । सामसंगायः ॥ बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति । या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ॥

हरतेरनुद्यमने ऽच् ॥ ९ ॥

हरतेर्धातोरनुद्यमने वर्त्तमानात्कर्मण्युपपदे ऽच् प्रत्ययो भवति । अणोऽप-

---

* कूटस्थ इत्यपि क्व चित् ।

चाद्वः । उद्यमनमुत्क्षेपणम् । अंशं हरतीत्यंशहरः । रिक्थहरः । अनुद्यमनइति किम् । भारहारः ॥ अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ शक्तिग्रहः । लाङ्गलग्रहः । अङ्कुशग्रहः । यष्टिग्रहः । तोमरग्रहः । घटग्रहः । घटीग्रहः । धनुर्ग्रहः ॥ सूत्रे च धार्यर्थे ॥ * ॥ सूत्रग्रहः । सूत्रं धारयतीत्यर्थः । सूत्रग्राह एवान्यः ॥

वयसि च ॥ १० ॥

वयसि गम्यमाने हरतेः कर्मण्युपपदे ऽच्प्रत्ययो भवति । उद्यमनार्थोयमारम्भः । कालकृता शरीरावस्था यौवनादिर्वयः । यदुद्यमनं क्रियमाणं संभाव्यमानं वा वयो गमयति तत्रायं विधिः । अस्थिहरः श्वा । कवचहरः क्षत्रियकुमारः ॥

आङि ताच्छील्ये ॥ ११ ॥

आङ्पूर्वाद्धरतेः कर्मण्युपपदे ऽच्प्रत्ययो भवति ताच्छील्ये गम्यमाने । ताच्छील्यं तत्स्वभावता । पुष्पाहरः । फलाहरः । पुष्पाहरणे स्वाभाविकी फलानपेक्षा प्रवृत्तिरस्येत्यर्थः । ताच्छील्यइति किम् । भारमाहरतीति भाराहारः ॥

अर्हः ॥ १२ ॥

अर्ह पूजायाम्, अस्माद्धातोः कर्मण्युपपदे ऽच् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । स्त्रीलिङ्गे विशेषः । पूजार्हा । गन्धार्हा । मालार्हा ॥

स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ॥ १३ ॥

स्तम्ब कर्ण इत्येतयोः सुबन्तयोरुपपदयोर्यथासंख्यं रमिजपोर्धात्वोरच्प्रत्ययो भवति । रमेरकर्मकत्वाज्जपेः शब्दकर्मकत्वात्कर्म न संभवतीति सुपीत्येतदिहाभिसंबध्यते ॥ हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्तम्बे रमते, स्तम्बेरमो हस्ती । कर्णे जपतीति, कर्णेजपः सूचकः । हस्तिसूचकयोरिति किम् । स्तम्बे रन्ता । कर्णे जपिता मशकः ॥

शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ १४ ॥

शम्युपपदे धातुमात्रात्संज्ञायां विषये ऽच्प्रत्ययो भवति । शंकरः । शंभवः । शंवदः । धातुग्रहणं किम् । यावता धातोरिति वर्त्ततएव । शमिसंज्ञायामिति सिद्धे धातुग्रहणं कृञो हेत्वादिषु टप्रतिषेधार्थम् । शंकरा नाम परिव्राजिका । शंकरा नाम शकुनिका । तच्छीला च ॥

अधिकरणे शेतेः ॥ १५ ॥

सुपीति संबध्यते । शेतेर्धातोरधिकरणे सुबन्तउपपदे ऽच्प्रत्ययो भवति । खे शेते खशयः । गर्तशयः ॥ पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥ * ॥ पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । उदरशयः । पृष्ठशयः ॥ दिग्धसहपूर्वाच्च ॥ * ॥ दिग्धेन सह शेते दिग्ध-

स्हशयः ॥ उत्तानादिषु कर्तृषु ॥ * ॥ उत्तानः शेते, उत्तानशयः । अवमूर्द्धा शेते, ऽवमूर्द्धशयः ॥ गिरौ डश्छन्दसि ॥ * ॥ गिरौ शेते गिरिशः ॥

चरेष्टः ॥ १६ ॥

अधिकरण इति वर्त्तते । चरेर्धातोरधिकरणे सुबन्त उपपदे टप्रत्ययो भवति । कुरुषु चरतीति कुरुचरः । मद्रचरः । कुरुचरी । मद्रचरी । प्रत्ययान्तरकरणं ङीबर्थम् ॥

भिक्षासेनादायेषु च ॥ १७ ॥

अनधिकरणार्थ आरम्भः । भिक्षा सेना आदाय इत्येतेषूपपदेषु चरेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति । भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायचरः ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे इत्येतेषू पपदेषु सर्तेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति । पुरः सरति, पुरःसरः । अग्रतःसरः । अग्रेसरः ॥

पूर्वे कर्त्तरि ॥ १९ ॥

पूर्वशब्दे कर्तृवाचिन्युपपदे सर्त्तेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति । पूर्वः सरतीति पूर्वसरः । कर्त्तरीति किम् । पूर्वं देशं सरति, पूर्वसारः ॥

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ २० ॥

कर्मण्युपपदे करोतेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति । हेतौ ताच्छील्ये आनुलोम्ये च गम्यमाने । हेतुरैकान्तिकं कारणम् । ताच्छील्यं तत्स्वभावता । आनुलोम्यमनुकूलता । हेतौ तावत् । शोककरी कन्या । यशस्करी विद्या । कुलकरं धनम् । ताच्छील्ये । श्राद्धकरः । अर्थकरः । आनुलोम्ये । प्रेषकरः । वचनकरः । एतेष्विति किम् । कुम्भकारः । नगरकारः ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ २१ ॥

कर्मणि सुपीति च द्वयमप्यनुवर्त्तते । तत्र यथायोगं सम्बन्धः । दिवादिषूपपदेषु करोतेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति । अहेत्वाद्यर्थ आरम्भः । दिवाशब्दो ऽधिकरणवचनः सुपीत्यस्य विशेषणम् । दिवा करोति प्राणिनश्चेष्टायुक्तानिति, दिवाकरः । विभां करोतीति विभाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः । भास्करः । सकारस्य निपातनाद्विसर्जनीयजिह्वामूलीयौ न भवतः । कारकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । आदिकरः । बहुकरः । नान्दीकरः । किंकरः । लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः । भक्तिकरः । कर्तृकरः । चित्रकरः । क्षेत्रकरः । संख्या । एककरः । द्विकरः ।

किंकरः । जङ्घाकरः । बाहुकरः । अहस्करः । यत्करः । तत्करः । धनुष्करः । अरुष्करः ॥ कियत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम् ॥ * ॥ किंकरा । यत्करा । तत्करा । बहुकरा । अथ वा पचादिषु पाठः करिष्यते ॥

कर्मणि भृतौ ॥ २२ ॥

कर्मणीति स्वरूपग्रहणम् । कर्मशब्द उपपदे कर्मवाचिनि करोतेष्टप्रत्ययो भवति भृतौ गम्यमानायाम् । भृतिर्वेतनम् । कर्म निर्वेशः । कर्म करोतीति, कर्मकरः । भृतक इत्यर्थः । भृताविति किम् । कर्मकारः ॥

न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ २३ ॥

शब्दादिषूपपदेषु करोतेष्टप्रत्ययो न भवति । हेत्वादिषु प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शब्दकारः । श्लोककारः । कलहकारः । गाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः । मन्त्रकारः । पदकारः ॥

स्तम्बशकृतोरिन् ॥ २४ ॥

स्तम्ब शकृत् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोरिन्प्रत्ययो भवति ॥ व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्तम्बकरिः व्रीहिः । शकृत्करिर्वत्सः । व्रीहिवत्सयोरिति किम् । स्तम्बकारः । शकृत्कारः ॥

हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ २५ ॥

दृति नाथ इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः हरतेर्धातोः पशौ कर्तरि इन्प्रत्ययो भवति । दृतिं हरति, दृतिहरिः पशुः । नाथहरिः पशुः । पशाविति किम् । दृतिहारः । नाथहारः ॥

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥ २६ ॥

फलेग्रहिः आत्मम्भरिः इत्येतौ शब्दौ निपात्येते । उपपदस्य एकारान्तत्वमिन्प्रत्ययश्च ग्रहेर्निपात्यते । फलानि गृह्णातीति, फलेग्रहिर्वृक्षः । आत्मशब्दस्य उपपदस्य मुमागम इन्प्रत्ययश्च भृञो निपात्यते । आत्मानं बिभर्त्ति आत्मम्भरिः । अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः । कुक्षिम्भरिः । उदरम्भरिः ॥

छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ २७ ॥

वन षण संभक्तौ, रक्ष पालने, मथे विलोडने, एतेभ्यः कर्मण्युपपदे छन्दसि विषये इन्प्रत्ययो भवति । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । गोसनिं यो पथिरक्षी श्वानौ । हविर्मथीनाम् ॥

एजेः खश् ॥ २८ ॥

एजृ कम्पने इत्यस्माद् ण्यन्तात्कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो भवति । खकारो मुमर्थः । शकारः सार्वधातुकसंज्ञार्थः । अङ्गमेजयति, अङ्गमेजयः । जनमेजयः ॥

खश्प्रत्यये * वातशुनीतिलशर्द्धेष्वजधेट्तुदजहातीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वातमजा मृगाः । शुनिन्धयः । तिलन्तुदः । शर्द्धञ्जहा माषाः ॥

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ २९ ॥

नासिकास्तनयोः कर्मणोरुपपदयोर्ध्माधेटोर्धात्वोः खश्प्रत्ययो भवति । यथासंख्यमत्र नेष्यते ॥ स्तने धेटः ॥ * ॥ स्तनन्धयः ॥ नासिकायां तु ध्मश्च धेटश्च ॥ * ॥ नासिकन्धमः । नासिकंधयः । तच्चैतन्नासिकास्तनयोरिति लक्षणाव्यभिचारचिह्नादल्पाच्तरस्यापूर्वनिपातनाल्लभ्यते । धेट ष्टित्वात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । स्तनन्धयी ॥

नाडीमुष्ट्योश्च ॥ ३० ॥

नाडी मुष्टि इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्ध्माधेटोः खश् प्रत्ययो भवति । अत्रापि घ्यन्तस्यापूर्वनिपातो लक्षणाव्यभिचारचिह्नं, तेन संख्यातानुदेशो न भवति । नाडिन्धमः । मुष्टिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धयः । अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः । घटिन्धमः । घटिन्धयः । खारिन्धमः । खारिन्धयः । वातन्धयः । वातन्धमः । पर्वतः ॥

उदि कूले रुजिवहोः ॥ ३१ ॥

रुजो भङ्गे, वह प्रापणे, एताभ्यामुत्पूर्वाभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो भवति । कूलमुद्रुजतीति कूलमुद्रुजो रथः । कूलमुद्वहः ॥

वहाभ्रे लिहः ॥ ३२ ॥

वह अभ्र इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः लिहेर्धातोः खश् प्रत्ययो भवति । वहं लेढीति, वहंलिहो गौः । अभ्रंलिहो वायुः ॥

परिमाणे पचः ॥ ३३ ॥

परिमाणं प्रस्थादि, तस्मिन्कर्मण्युपपदे पचेः खश् पत्ययो भवति । प्रस्थं पचति, प्रस्थंपचा स्थाली । द्रोणम्पचः खारिम्पचः । कटाहः ॥

मितनखे च ॥ ३४ ॥

मित नख इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः पचेः खश्प्रत्ययो भवति । अपरिमाणार्थ आरम्भः । मितं पचति, मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः ॥

विध्वरुषोस्तुदः ॥ ३५ ॥

विधु अरुस् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः तुदेर्धातोः खश्प्रत्ययो भवति । विधुन्तुदः राहुः । अरुन्तुदः ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ ३६ ॥

---

* खश्प्रकरणे इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः ।

असूर्यललाट इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः दृशितपोर्धात्वोः खश्प्रत्ययो भवति । असूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटन्तप आदित्यः । असूर्यं इति चासमर्थसमासो ऽयम् । दृशिना नञः संबन्धात् । सूर्यं न पश्यन्तीति । गुप्तिपरं चैतत् । एवं नाम गुप्ता यदपरिहार्यदर्शनं सूर्यमपि न पश्यन्तीति ॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ ३७ ॥

उग्रम्पश्य इरम्मद पाणिन्धम इत्येते शब्दा निपात्यन्ते । उग्रं पश्यतीत्युग्रम्पश्यः । इरया माद्यतीतीरम्मदः । पाणयो ध्मायन्ते एष्विति पाणिन्धमाः पन्थानः ॥

प्रियवशे वदः खच् ॥ ३८ ॥

प्रिय वश इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्वदेर्धातोः खच् प्रत्ययो भवति । प्रियं वदतीति, प्रियंवदः । वशंवदः । चकारः खचि ह्रस्व इति विशेषणार्थः । खकारो मुमर्थः । प्रत्ययान्तरकरणमुत्तरार्थम् ॥ खच्प्रकरणे गमेः सुप्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ मितंगमो हस्ती । मितंगमा हस्तिनी ॥ विहायसो विह च ॥ * ॥ *विहायसा गच्छति, विहंगमः ॥ खच्च डिद्वा वक्तव्यः ॥ * ॥ विहंगः । विहंगमः ॥ डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः ॥ * ॥ विहगः ॥

द्विषत्परयोस्तापेः ॥ ३९ ॥

द्विषत्परयोः कर्मणोरुपपदयोस्तापेर्धातोः खच् प्रत्ययो भवति । चुरादिः तप संतापे,भ्वादिः । द्वयोरपि ग्रहणम् । द्विषन्तं तापयति तप दाहे, द्विषन्तपः । परन्तपः । द्विषत्परयोरिति द्वितकारको निर्देशः । तेन स्त्रियां न भवति । द्विषतीं तापयति द्विषतीतापः ॥

वाचि यमो व्रते ॥ ४० ॥

वाक्शब्दे कर्मण्युपपदे यमेर्धातोः खच् प्रत्ययो भवति व्रते गम्यमाने । व्रतमिति शास्त्रतो नियम उच्यते । वाचंयम आस्ते । व्रतइति किम् । वाग्यामः ॥

पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥ ४१ ॥

पुर् सर्व इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्यथासंख्यं दारिसहोर्धात्वोः खच् प्रत्ययो भवति । पुरं दारयति, पुरंदरः । सर्वंसहो राजा ॥ भगे च दारेरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भगन्दरः ॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥ ४२ ॥

सर्व कूल अभ्र करीष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कषेर्धातोः खच् प्रत्ययो भवति । सर्वं कषति, सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो गिरिः । करीषंकषा वात्या ॥

* विहायसेति क्व चित् पाठः ।

मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥ ४३ ॥

मेघ ऋति भय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञः खच् प्रत्ययो भवति । मेघंकरः । ऋतिंकरः ॥ भयंकर ॥ उपपदविधौ भयादिग्रहणं तदन्तविधिं प्रयोजयति ॥ * ॥ अभयंकरः ॥

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ ४४ ॥

क्षेम प्रिय मद्र इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु करोतेरण् प्रत्ययो भवति, चकारात्खच्च । क्षेमकारः । क्षेमंकरः । प्रियकारः । प्रियंकरः । मद्रकारः । मद्रंकरः । वेति वक्तव्ये पुनरण्ग्रहणं हेत्वादिषु टप्रतिषेधार्थम् ॥

आशिते भुवः करणभावयोः ॥ ४५ ॥

अत्र सुपीत्युपतिष्ठते । आशितशब्दे सुबन्ते उपपदे भवतेर्धातोः करणे भावे चार्थे खच् प्रत्ययो भवति । आशितो भवत्यनेन, आशितंभव ओदनः । भावे । आशितस्य भवनं, आशितंभवं वर्त्तते ॥

संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ॥ ४६ ॥

कर्मणीति च सुपीति च प्रकृतं संज्ञावशाद्यथा संभवं संबध्यते भृ तॄ वृ जि धारि सहि तपि दम इत्येतेभ्यो धातुभ्यः संज्ञायां विषये खच्प्रत्ययो भवति । विश्वंभरा वसुंधरा । रथंतरं साम । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्ती । युगंधरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुंतपः । अरिंदमः । संज्ञायामिति किम् । कुटुम्बं बिभर्त्तीति कुटुम्बभारः * ॥

गमश्च ॥ ४७ ॥

गमेर्धातोः सुप्युपपदे संज्ञायां विषये खच्प्रत्ययो भवति । सुतंगमो नाम यस्य पुत्रः सौतंगमिः । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ ४८ ॥

संज्ञायामिति नानुवर्त्तते । अन्त अत्यन्त अध्वन् दूर पार सर्व अनन्त इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु गमेर्डप्रत्ययो भवति । अन्तगः । अत्यन्तगः । अध्वगः । दूरगः । पारगः । सर्वगः । अनन्तगः । डकारष्टिलोपार्थः । डित्यभस्याप्यनुबन्धकरणसामर्थ्यादिति ॥ डप्रकरणे सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ सर्वत्रगः । पन्नगः ॥ उरसो लोपश्च ॥ * ॥ उरसा गच्छतीत्युरगः ॥ सुदुरोरधिकरणे ॥ * ॥ सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति सुगः । दुर्गः ॥ निरो देशे ॥ * ॥ निर्गो देशः । अपर आह ॥ डप्रकरणेऽन्यत्रापि † दृश्यत इति ॥ * ॥ स्त्र्यगारगः । ग्रामगः । गुरुतल्पगः ॥

---

* कुटुम्बं बिभर्त्तीति कुटुम्बभारः । इत्यधिकं क्वचित् ।

† अन्यत्रापीति पदमञ्जर्यारूढः पाठः ।

आशिषि हनः ॥ ४९ ॥

ड इति वर्त्तते । आशिषि गम्यमानायां हन्तेर्धातोः कर्मण्युपपदे डप्रत्ययो भवति । तिमिं वध्यात्तिमिहः । शत्रुहः । आशिषीति किम् । शत्रुघातः ॥ दारावाहनो ऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥ * ॥ दारावुपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण् प्रत्ययो भवति, अन्तस्य च टकारादेशो भवति, संज्ञायां विषये । दारु आहन्ति,-दार्वाघाटः ॥ चारौ वा ॥ * ॥ आङ्पूर्वाद्धन्तेश्चारावुपपदे, ऽण्, अन्तस्य वा टकारादेशः । चार्वाघाटः । चार्वाघातः ॥ कर्मणि समि च ॥ * ॥ कर्मण्युपपदे संपूर्वाद्धन्तेरणप्रत्ययो ऽन्तस्य च वा टकारादेशः । वर्णान्संहन्ति, वर्णसंघाटः । पदानि संहन्ति पदसंघाटः । पदसंघातः ॥

अपे क्लेशतमसोः ॥ ५० ॥

अपपूर्वाद्धन्तेः क्लेशतमसोः कर्मणोरुपपदयोर्डप्रत्ययो भवति । क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः सूर्यः । अनाशीरर्थ आरम्भः ॥

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ ५१ ॥

हन इति वर्त्तते । कुमार शीर्ष इत्येतयोरुपपदयोः हन्तेर्णिनिः प्रत्ययो भवति । कुमारघाती । शीर्षघाती । निपातनाच्छिरसः शीर्षभावः ॥

लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ ५२ ॥

हन्तेर्जायापत्योः कर्मणोरुपपदयोर्लक्षणवति कर्त्तरि टक् प्रत्ययो भवति । जायाघ्नो ब्राह्मणः । पतिघ्नी वृषली । अथ वा लक्षणे द्योत्ये टक्प्रत्ययः ॥

अमनुष्यकर्तृके च ॥ ५३ ॥

अमनुष्यकर्तृके वर्त्तमानाद्धन्तेर्धातोः कर्मण्युपपदे टक् प्रत्ययो भवति । जायाघ्नस्तिलकालकः । पतिघ्नी पाणिरेखा । श्लेष्मघ्नं मधु । पित्तघ्नं घृतम् । अमनुष्यकर्तृके इति किम् । आखुघातः शूद्रः । इह कस्मान्न भवति । चोरघातो हस्ती । कृत्यल्युटो बहुलमिति बहुलवचनादण् भवति ॥

शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ ५४ ॥

शक्तौ गम्यमानायां हस्तिकपाटयोः कर्मणोरुपपदयोर्हन्तेष्टक् प्रत्ययो भवति । मनुष्यकर्तृकार्थ आरम्भः । हस्तिनं हन्तुं शक्तः । हस्तिघ्नो मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । शक्ताविति किम् । विषेण हस्तिनं हन्ति हस्तिघातः ॥

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ ५५ ॥

पाणिघ ताडघ इत्येतौ शब्दौ निपात्येते शिल्पिनि कर्तरि । पाणि ताड इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्हन्तेर्धातोः कः प्रत्ययो भवति, तस्मिंश्च परतो

हन्तेष्टिलोपो घत्वं च निपात्यते *। पाणिघः। ताडघः। शिल्पिनीति किम्। पाणिघातः। ताडघातः॥ राजघ उपसंख्यानम्॥ *॥ राजानं हन्ति राजघः॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्॥ ५६॥

आढ्यादिषु कर्मसूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु करोतेर्धातोः करणे कारके ख्युन्प्रत्ययो भवति। च्वेर्विकल्पेन विधानाद् द्विविधाश्च्व्यर्थाः। च्व्यन्ता अच्व्यन्ताश्च। तत्र च्व्यन्ताः पर्युदस्यन्ते। अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन आढ्यंकरणम्। सुभगंकरणम्। स्थूलंकरणम्। पलितंकरणम्। नग्नंकरणम्। अन्धंकरणम्। प्रियंकरणम्। च्व्यर्थेष्विति किम्। आढ्यं तैलेन कुर्वन्ति, अभ्यञ्जयन्तीत्यर्थः। प्रकृतेरविवक्षायामभूतप्रादुर्भावेपि प्रत्युदाहरणं भवति। अच्वाविति किम्। आढ्यीकुर्वन्त्यनेन। ननु च ख्युना मुक्ते ल्युटा भवितव्यम्। न च ल्युटः ख्युनश्च विशेषोस्ति तत्र किं प्रतिषेधेन। एवं तर्हि प्रतिषेधसामर्थ्यात्ख्युन्यसति ल्युडपि न भवति, तेन ल्युटोप्ययमर्थतः प्रतिषेधः। उत्तरार्थश्च च्विप्रतिषेधः क्रियते॥

कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ॥ ५७॥

आढ्यादिषु सुबन्तेषूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेर्धातोः कर्त्तरि कारके खिष्णुच् खुकञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः। अनाढ्य आढ्यो भवति आढ्यंभविष्णुः। आढ्यंभावुकः। सुभगंभविष्णुः। सुभगंभावुकः। स्थूलंभविष्णुः। स्थूलंभावुकः। पलितंभविष्णुः। पलितंभावुकः। नग्नंभविष्णुः। नग्नंभावुकः। अन्धंभविष्णुः। अन्धंभावुकः। प्रियंभविष्णुः। प्रियंभावुकः। कर्तरीति किम्। करणे मा भूत्। च्व्यर्थेष्वित्येव। आढ्यो भविता। अच्वावित्येव। आढ्यीभविता॥

उदात्तत्वाद्भुवः सिद्धमिकारादित्वमिष्णुचः।
नञस्तु स्वरसिद्ध्यर्थमिकारादित्वमिष्यते॥

स्पृशोनुदके क्विन्॥ ५८॥

स्पृशेर्धातोरनुदके सुबन्तउपपदे क्विन्प्रत्ययो भवति। ननु सकर्मकत्वात्स्पृशेः कर्मैवोपपदं प्राप्नोति। नैष दोषः। कर्तरीति पूर्वसूत्रादनुवर्त्तते, तत्कर्तृप्रचयार्थं विज्ञायते। सुबन्तमात्रे चोपपदे कर्तृप्रचयो लभ्यते। घृतं स्पृशति, घृतस्पृक्। मन्त्रेण स्पृशति, मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशति जलस्पृक्। अनुदकइति किम्। उदकस्पर्शः। नकारः क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति विशेषणार्थः॥

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च॥ ५९॥

*. पाणि ताडेत्यारभ्य निपात्यतइत्यन्तं पुस्तकान्तरे न दृश्यते।

ऋत्विगादयः पञ्चशब्दाः क्विन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अपरे त्रयो धातवो निर्दिश्यन्ते । ऋतुशब्दउपपदे यजेर्धातोः क्विन् प्रत्ययो निपात्यते । ऋतौ यजति, ऋतुं वा यजति, ऋतुप्रयुक्तो वा यजति, ऋत्विक् । रूढिरेषा यथाकथं चिदनुगन्तव्या । धृषेः क्विन्प्रत्ययः द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च निपात्यते । धृष्णोतीति दधृक् । सृजेः कर्मणि क्विन् अमागमश्च निपात्यते । सृजन्ति तामिति स्रक् । दिशेः कर्मणि क्विन्निपात्यते । दिशन्ति तामिति दिक् । उत्पूर्वात्स्निहः क्विनुपसर्गान्तलोपः षत्वं च निपात्यन्ते । उष्णिक् । अञ्चु युजि क्रुञ्च इत्येतेषां धातूनां क्विन्प्रत्ययो भवति । निपातनैः सहनिर्देशादत्रापि किं चिदलाक्षणिकं कार्यमस्ति । अञ्चतेः सुबन्तमात्रउपपदे क्विन्प्रत्ययो भवति । प्राङ् । प्रत्यङ् । उदङ् । युजेः क्रुञ्चेश्च केवलादेव । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । सोपपदात्तु सत्सूद्विषेत्यादिना क्विप् भवति । अश्वयुक् । अश्वयुजौ । अश्वयुजः । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । नलोपः कस्मान्न भवति । निपातनसाहचर्यात् ॥

त्यदादिषु दृशो ऽनालोचने कञ्च ॥ ६० ॥

त्यदादिषूपपदेषु दृशेर्धातोरनालोचनेर्थे वर्तमानात्कञ् प्रत्ययो भवति । चकारात्क्विन् च । त्यादृक् । त्यादृशः । तादृक् । तादृशः । यादृक् । यादृशः । कञो ञकारो विशेषणार्थः । ठक् ठञ् कञिति । अनालोचनइति किम् । तं पश्यति तद्दर्शः । तादृगादयो हि रूढिशब्दप्रकारा नैवात्र दर्शनक्रिया विद्यते ॥ समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ॥ दृशेः क्सश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ तादृक्षः । यादृक्षः । अन्यादृक्षः । कीदृक्षः ॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेपि क्विप् ॥ ६१ ॥

सुपीत्यनुवर्त्तते । कर्मग्रहणं तु स्पृशोनुदके क्विन्नित्यतः प्रभृति न व्याप्रियते । सदादिभ्यो धातुभ्यः सुबन्ते उपपदे उपसर्गेप्यनुपसर्गेपि क्विप्प्रत्ययो भवति । उपसर्गग्रहणं ज्ञापनार्थम् । अन्यत्र सुब्ग्रहणे उपसर्गग्रहणं न भवतीति । वदः सुपि क्यप् चेति । सू इति द्विषा साहचर्यात् सूतेरादादिकस्य ग्रहणं, न सुवतेस्तौदादिकस्य । युजिर् योगे । युज समाधौ । द्वयोरपि ग्रहणम् । विद ज्ञाने । विद सत्तायाम् । विद विचारणे । त्रयाणामपि ग्रहणम् । न लाभार्थस्य विदेः । अकारस्य विवक्षितत्वात् । सत् । शुचिषत् । अन्तरिक्षसत् । उपसत् । सूः । अण्डसूः । शतसूः । प्रसूः । द्विष । मित्रद्विट् । प्रद्विट् । द्रुह । मित्रध्रुक् । प्रध्रुक् । दुह । गोधुक् । प्रधुक् । युज् । अश्वयुक् । प्रयुक् । विद । वेदवित् । प्रवित् । ब्रह्मवित् । भिद । काष्ठभित् । प्रभित् । छिद । रज्जुच्छिद् । प्रच्छिद् । जि । शत्रुजित् । प्रजित् । नी । सेनानीः । प्रणीः । ग्रामणीः ।

अग्रणीः । कथमत्र णत्वं, स एषां ग्रामणीरिति निपातनात् । नयतेः पूर्वपदात् संज्ञायामग इति णत्वम् । राट् । विराट् । सम्राट् । मो राजि समः क्वौ इति मत्वम् । अन्येभ्योपि दृश्यते, क्विप् चेति सामान्येन वक्ष्यति तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

भजो ण्विः ॥ ६२ ॥

उपसर्गे सुपीति वर्त्तते । भजेर्धातोः सुबन्तउपपदे उपसर्गेप्यनुपसर्गेपि ण्विप्रत्ययो भवति । अर्धं भजते, अर्द्धभाक् । उपसर्गेपि । प्रभाक् ॥

छन्दसि सहः ॥ ६३ ॥

उपसर्गे सुपीत्येव । छन्दसि विषये सहेर्धातोः सुबन्तउपपदे ण्विप्रत्ययो भवति। तुराषाट्* । सहेः साडः स इति षत्वम् । अन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घत्वम्॥

वहश्च ॥ ६४ ॥

वहेर्धातोश्छन्दसि विषये सुबन्तउपपदे ण्विप्रत्ययो भवति । प्रष्ठ वाट् । दित्यवाट् । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ ६५ ॥

कव्य पुरीष पुरीष्य इत्येतेषु उपपदेषु छन्दसि विषये वहेर्धातोर्ञ्युट् प्रत्ययो भवति । कव्यवाहनः पितृणाम् । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

हव्ये ऽनन्तःपादम् ॥ ६६ ॥

हव्यशब्दे उपपदे छन्दसि विषये वहेर्धातो र्ञ्युट् प्रत्ययो भवति, अनन्तःपादं चेद्वहिर्वर्तते । अग्निश्च हव्यवाहनः । अनन्तः पादमिति किम् । हव्यवाडग्निरजरः पिता नः ॥

जनसनखनक्रमगमो विट् ॥ ६७ ॥

छन्दसि उपसर्गे सुपीत्यनुवर्त्तते । जन जनने । जनी प्रादुर्भावे । द्वयोरपि ग्रहणम् । तथा षणु दाने । वन षणसंभक्तौ । द्वयोरपि ग्रहणम् । जनादिभ्यो धातुभ्यः सुबन्तउपपदे छन्दसि विषये विट् प्रत्ययो भवति । टकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थः, वेरपृक्तस्येति, विशेषणार्थश्च, विड्वनोरनुनासिकस्यादिति । अब्जाः । गोजाः । सन । गोषा इन्द्रो नृषा असि । खन । विसखाः । कूपखाः । क्रम । दधिक्राः । गम । अग्रेगा उन्नेतृणाम् ॥

अदो ऽनन्ने ॥ ६८ ॥

छन्दसीति निवृत्तम् । अदेर्धातोरनन्ने सुप्युपपदे विट् प्रत्ययो भवति । आममत्ति, आमात् । सस्यात् । अनन्नइति किम् । अन्नादः ॥

* छत्राषाट् । पृतनाषाट् इति क्व चिदत्राधिकम् ।

क्रव्ये च ॥ ६९ ॥

क्रव्यशब्द उपपदे अदेर्धातोर्विट् प्रत्ययो भवति । क्रव्यमत्ति, क्रव्यात् । पूर्वेणैव सिद्धे वचनमसरूपबाधनार्थम् । तेनाणन भवति । कथं तर्हि क्रव्यादः । कृत्तविकृत्तशब्दे उपपदे ऽण् तस्य च पृषोदरादिपाठात्क्रव्यभावः । कृत्तविकृत्तपक्वमांसभक्षः क्रव्याद उच्यते । आममांसभक्षः । क्रव्यादिति ॥

दुहः कब् घश्च ॥ ७० ॥

दुहेर्धातोः सुप्युपपदे कप्प्रत्ययो भवति । घकारश्चान्तादेशः । कामदुघा धेनुः * । अर्थदुघा ॥

मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥ ७१ ॥

श्वेतवह उक्थशस् पुरोडाश इत्येतेभ्यो ण्विन् प्रत्ययो भवति मन्त्रेविषये । धातूपपदसमुदाया निपात्यन्ते अलाक्षणिककार्यसिद्ध्यर्थं, प्रत्ययस्तु विधीयत एव । श्वेतशब्दे कर्तृवाचिन्युपपदे वहेर्धातोः कर्मणि कारके ण्विन्प्रत्ययो भवति । श्वेता एनं वहन्ति, श्वेतवा इन्द्रः । उक्थशब्दे कर्मणि करणे वा उपपदे शंसतेर्धातोर्ण्विन्प्रत्ययो भवति, नलोपश्च निपात्यते । उक्थानि शंसति उक्थैर्वा शंसति, उक्थशा यजमानः । दाशृ दान इत्येतस्य पुरःपूर्वस्य डत्वं, कर्मणि च प्रत्ययः । पुरो दाशन्त एनं पुरोडाः ॥ श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ श्वेतवोभ्याम् । श्वेतवोभिः । पदस्येति किम् । श्वेतवाहौ । श्वेतवाहः ॥

अवे यजः ॥ ७२ ॥

अवे उपपदे यजेर्धातोर्ण्विन् प्रत्ययो भवति, मन्त्रे विषये । त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

विजुपे छन्दसि ॥ ७३ ॥

उपउपपदे यजेश्छन्दसि विषये विच्प्रत्ययो भवति † । उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति । उपयड्भ्याम् । छन्दोग्रहणं ब्राह्मणार्थम् । चित्करणं सामान्यग्रहणाविघातार्थम्, वेरपृक्तस्येति । किमर्थमिदमुच्यते । यावता अन्येभ्योऽपि दृश्यत इति यजेरपि विच् सिद्ध एव । यजेर्नियमार्थमेतत् । उपयजेश्छन्दस्येव, न भाषायामिति ॥

आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥ ७४ ॥

छन्दसीति वर्त्तते । सुपि उपसर्गेऽपीति च । आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः सुप्युपपदे छन्दसि विषये मनिन् क्वनिब् वनिब् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । चका-

---

* 'घर्मदुघा धेनुः' । इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।
† अत्र 'मन्त्रे विषय' इति क्वचित्को ऽपपाठः ॥

राद्विन् भवति । सुदामा । अश्वत्थामा । क्वनिप् । सुधीवा । सुपीवा । वनिप् । भूरिदावा । घृतपावा । विच् खल्वपि । कीलालपाः । शुभंयाः । रामस्योपदाः ॥

अन्येभ्यो ऽपि दृश्यन्ते ॥ ७५ ॥

छन्दसीति निवृत्तम् । अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो ऽनाकारान्तेभ्यो मनिन् क्वनिप् वनिप् इत्येते प्रत्यया दृश्यन्ते, विच्च । सुशर्मा । क्वनिप् । प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । वनिप् । विजावा । अग्रेगावा । विच् खल्वपि । रेडसि पर्णं न येः । अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । निरुपपदादपि भवति । धीवा । पीवा । दृशिग्रहणं प्रयोगानुसरणार्थम् ॥

क्विप् च ॥ ७६ ॥

सर्वधातुभ्यः सोपपदेभ्यो निरुपपदेभ्यश्च छन्दसि भाषायां च क्विप् प्रत्ययो भवति । उखायाः स्रंसते, उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहाद्भ्रश्यति, वाहाभ्रट्* । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः ॥

स्थः क च ॥ ७७ ॥

सुप्युपसर्गेपीति च वर्तते । स्था इत्येतस्माद्धातोः सुप्युपपदे कप्रत्ययो भवति, क्विप् च । किमर्थमिदमुच्यते । यावता सुपि स्थ इति कः सिद्ध एव । अन्येभ्योपि दृश्यते इति क्विप् । बाधकबाधनार्थं पुनर्वचनम् । शमि धातोः संज्ञायामचं बाधते । शंस्थः । शंस्थाः ॥

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ ७८ ॥

अजातिवाचिनि सुबन्तउपपदे ताच्छील्ये गम्यमाने धातोर्णिनिप्रत्ययो भवति । उष्णभोजी । शीतभोजी । अजाताविति किम् । ब्राह्मणानामन्त्रयिता । ताच्छील्यइति किम् । उष्णं भुङ्क्ते कदा चित् । सुपीति वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमुपसर्गनिवृत्त्यर्थम् ॥ उत्प्रतिभ्यामाङि सर्त्तेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ उदासारिण्यः प्रत्यासारिण्यः ॥ साधुकारिणि च ॥ * ॥ साधुकारी । साधुदायी ॥ ब्रह्मणिवदः ॥ * ॥ ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥

कर्त्तर्युपमाने ॥ ७९ ॥

कर्तृवाचिनि उपमानउपपदे धातोर्णिनिप्रत्ययो भवति । उपपदकर्त्ता प्रत्ययार्थस्य कर्त्तुरुपमानम् । उष्ट्रइव क्रोशति, उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थ आरम्भः । जात्यर्थो वा । कर्त्तरीति किम् । अपूपानिव भक्षयति माषान् । उपमानइति किम् । उष्ट्रः क्रोशति ॥

---

* पुस्तकान्तरे 'वाहभ्रद्' । इति पाठः । 'अन्येषामपि दृश्यते इति दीर्घः' इति च नास्ति ।

व्रते ॥ ८० ॥

व्रतमिति शास्त्रतो नियम उच्यते। व्रते गम्यमाने सुबन्तउपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति। समुदायोपाधिश्चायं, धातूपपदप्रत्ययसमुदायेन व्रतं गम्यते। स्थण्डिलशायी। अश्राद्धभोजी। कामचारप्राप्तो नियमः, सति शयने स्थण्डिलएव शेते नान्यत्र, सति भोजने ऽश्राद्धमेव भुङ्क्ते न श्राद्धमिति। व्रते इति किम्। स्थण्डिले शेते देवदत्तः। अताच्छील्यार्थ आरम्भः। जात्यर्थो वा॥

बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ ८१ ॥

आभीक्ष्ण्ये गम्यमाने धातोर्बहुलं णिनिप्रत्ययो भवति। आभीक्ष्ण्यं पौनःपुन्यं, तात्पर्यमासेवा ताच्छील्यादन्यत्। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरपायिणो बाह्लीकाः। बहुलग्रहणात्कुल्माषखाद इत्यत्र न भवति॥

मनः ॥ ८२ ॥

सुपीति वर्त्तते। मन्यतेः सुबन्तउपपदे णिनिप्रत्ययो भवति। दर्शनीयमानी। शोभनमानी। बहुलग्रहणानुवृत्तेर्मन्यतेर्ग्रहणं न मनुतेः। उत्तरसूत्रे हि खश्प्रत्यये विकरणकृतो विशेषः स्यात्॥

आत्ममाने खश्च ॥ ८३ ॥

आत्मनो मननमात्ममानः। आत्ममाने वर्त्तमानान्मन्यतेः सुप्युपपदेखश्प्रत्ययो भवति। चकाराण्णिनिश्च। यदा प्रत्ययार्थः कर्ता ऽऽत्मानमेव दर्शनीयत्वादिना धर्मेण युक्तं मन्यते तदायं विधिः। दर्शनीयमात्मानं मन्यते दर्शनीयंमन्यः। दर्शनीयमानी। पण्डितंमन्यः। पण्डितमानी। आत्ममान इति किम्। दर्शनीयमानी देवदत्तस्य यज्ञदत्तः। अतः सार्वकालिका विधयो वेदितव्याः॥

भूते ॥ ८४ ॥

भूतइत्यधिकारो वर्त्तमाने लडिति यावत्। यदित ऊर्द्धमनुक्रमिष्यामः भूतइत्येवं तद्वेदितव्यम्। धात्वधिकाराच्च धात्वर्थे भूतइति विज्ञायते। वक्ष्यति, करणे यजः। अग्निष्टोमेनेष्टवान्। अग्निष्टोमयाजी। भूतइति किम्। अग्निष्टोमेन यजते॥

करणे यजः ॥ ८५ ॥

णिनिरनुवर्त्तते। न खश्। यजतेर्धातोः करणउपपदे णिनिप्रत्ययो भवति भूते। अग्निष्टोमयाजी। अग्निष्टोमः फलभावनायां करणं भवति॥

कर्मणि हनः ॥ ८६ ॥

कर्मणि उपपदे हन्तेर्धातोर्णिनिप्रत्ययो भवति भूते काले। पितृव्यघाती। मातुलघाती। कुत्सितग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्। चोरं हतवान्॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ ८७ ॥

कर्मणीति वर्त्तते । ब्रह्मादिषु कर्मसूपपदेषु हन्तेर्धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति भूते । ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा । किमर्थमिदमुच्यते । यावता सर्वधातुभ्यः क्विब्विहित एव । ब्रह्मादिषु हन्तेः क्विब्वचनं नियमार्थम् । चतुर्विधश्चात्र नियम इष्यते ॥ ब्रह्मादिष्वेव हन्तेर्नान्यस्मिन्नुपपदे । पुरुषं हतवानिति । ब्रह्मादिषु हन्तेरेव नान्यस्मात्स्यात् । ब्रह्माधीतवानिति । ब्रह्मादिषु हन्तेर्भूतकाले क्विबेव नान्यः प्रत्ययः । तथा भूतकालएव नान्यस्मिन् । ब्रह्माणं हन्ति हनिष्यति वेति । तदेतद्वक्ष्यमाणबहुलग्रहणस्य पुरस्तादपकर्षणाल्लभ्यते ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ८८ ॥

पूर्वेण नियमादप्राप्तः क्विब्विधीयते । छन्दसि विषये उपपदान्तरेऽपि हन्तेर्बहुलं क्विप्प्रत्ययो भवति । मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत् । पितृहा । न च भवति । मातृघातः । पितृघातः ॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ ८९ ॥

कर्मणीति वर्त्तते, तदसंभवात्सुशब्दं वर्जयित्वा परिशिष्टानां विशेषणं भवति । स्वादिषु कर्मसूपपदेषु करोतेर्धातोः क्विप्प्रत्ययो भवति । सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । अयमपि नियमार्थ आरम्भः । त्रिविधश्चात्र नियम इष्यते ॥ धातुनियमं वर्जयित्वा कालोपपदप्रत्ययनियमः । धातोरनियतत्वादन्यस्मिन्नप्युपपदे भवति । शास्त्रकृत् । भाष्यकृत् ॥

सोमे सुञः ॥ ९० ॥

कर्मणीति वर्त्तते । सोमे कर्मण्युपपदे सुनोतेर्धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति । सोमसुत् । सोमसुतौ । सोमसुतः । अयमपि नियमार्थ आरम्भः । चतुर्विधश्चात्र नियम इष्यते ॥ धातुकालोपपदप्रत्ययविषयः ॥

अग्नौ चेः ॥ ९१ ॥

कर्मणीत्येव । अग्नौ कर्मण्युपपदे चिनोतेर्धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति । अग्निचित् । अग्निचितौ । अग्निचितः । अत्रापि पूर्ववच्चतुर्विधो नियम इष्यते ॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ ९२ ॥

चेः कर्मणीति वर्त्तते । कर्मण्युपपदे चिनोतेः कर्मण्येव कारके क्विप् प्रत्ययो भवति अग्न्याख्यायां, धातूपपदप्रत्ययसमुदायेन चेदग्न्याख्या गम्यते । श्येनइव चीयते श्येनचित् । कङ्कचित् । आख्याग्रहणं रूढिसंप्रत्ययार्थम् । अत्यर्थो हीष्टकाचय उच्यते श्येनचिदिति ॥

कर्मणीनि विक्रियः ॥ ९३ ॥

कर्मण्युपपदे विपूर्वात्क्रीणातेर्धातोरिनिप्रत्ययो भवति। कर्मणीति वर्त्तमाने पुनः कर्मग्रहणं कर्तुः कुत्सानिमित्ते कर्मणि यथा स्यात्। कर्ममात्रे मा भूत्। सोमविक्रयी। रसविक्रयी। इह न भवति। धान्यविक्रायः॥

दृशेः क्वनिप्॥ ९४॥

कर्मणीत्येव। दृशेर्धातोः कर्म्मण्युपपदे क्वनिप् प्रत्ययो भवति। मेरुदृश्वा। परलोकदृश्वा। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्तइति क्वनिपि सिद्धे पुनर्वचनं प्रत्ययान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

राजनि युधिकृञः॥ ९५॥

कर्मणीत्येव। राजन्शब्दे कर्म्मण्युपपदे युध्यतेः करोतेश्च क्वनिप् प्रत्ययो भवति। ननु च युधिरकर्मकः। अन्तर्भावितण्यर्थः सकर्मको भवति। राजयुध्वा। राजानं योधितवानित्यर्थः। राजकृत्वा॥

सहे च॥ ९६॥

सहशब्दे चोपपदे युधिकृञोर्धात्वोः क्वनिप्प्रत्ययो भवति। असत्त्ववाचित्वान्नोपपदं कर्मणा विशेष्यते। सहयुध्वा। सहकृत्वा॥

सप्तम्यां जनेर्डः॥ ९७॥

सप्तम्यन्तउपपदे जनेर्धातोर्डः प्रत्ययो भवति। उपसरे जातः उपसरजः। मन्दुरजः॥

पञ्चम्यामजातौ॥ ९८॥

पञ्चम्यन्तउपपदे जातिवर्जिते जनेर्डः प्रत्ययो भवति। बुद्धिजः। संस्कारजः। दुःखजः। अजाताविति किम्। हस्तिनो जातः। अश्वाज्जातः॥

उपसर्गे च संज्ञायाम्॥ ९९॥

उपसर्गे चोपपदे जनेर्डः प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये। समुदायोपाधिः संज्ञा। अथेमा मानवीः प्रजाः॥

अनौकर्मणि॥ १००॥

अनुपूर्वाद् जनेः कर्मण्युपपदे डः प्रत्ययो भवति। पुमांसमनुजातः पुमनुजः। स्त्र्यनुजः॥

अन्येष्वपि दृश्यते॥ १०१॥

अन्येष्वप्युपपदेषु कारकेषु जनेर्डप्रत्ययो दृश्यते। सप्तम्यामित्युक्तमसप्तम्यामपि दृश्यते। न जायते इत्यजः। द्विर्जाताः द्विजाः। पञ्चम्यामजाताविव्युक्तं जातावपि दृश्यते। ब्राह्मणजो धर्मः। क्षत्रियजं युद्धम्। उपसर्गे संज्ञायामित्युक्तम् असंज्ञायामपि दृश्यते। अभिजाः। परिजाः। केशाः। अनौ

कर्मणीत्युक्तमकर्मण्यपि दृश्यते। अनुजातः। अनुजः। अपिशब्दः सर्वोपाधि-व्यभिचारार्थः। तेन धात्वन्तरादपि भवति कारकान्तरेऽपि। परितः खाता परिखा। आखा॥

निष्ठा॥ १०२॥

क्तक्तवतू निष्ठेत्युक्तं स निष्ठासंज्ञकः प्रत्ययो भूते भवति। कृतम्। कृतवान्। भुक्तम्। भुक्तवान्। निष्ठायामितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः। संज्ञायां क्तक्तवतू भाव्येते। सतोश्चानयोः संज्ञया भाव्यम्। नैष दोषः। भाविनी संज्ञा विज्ञायते। स भूते भवति यस्योत्पन्नस्य निष्ठेत्येषा संज्ञा भवति। सामर्थ्यात् क्तक्तवत्वोर्विधानमेतत्॥ आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या॥ * ॥ प्रकृतः कटं देवदत्तः। प्रकृतवान् कटं देवदत्तः॥

सुयजोर्ङ्वनिप्॥ १०३॥

सुनोतेर्यजतेश्च ङ्वनिप् प्रत्ययो भवति। सुत्वा। यज्वा॥

जीर्यतेरतृन्॥ १०४॥

भूतइति वर्त्तते। जीर्यतेरतृन् प्रत्ययो भवति भूते। जरन्। जरन्तौ। जरन्तः। वासरूपेण निष्ठा। जीर्णः। जीर्णवानिति॥

छन्दसि लिट्॥ १०५॥

भूत इत्येव। छन्दसि विषये धातोर्लिट् प्रत्ययो भवति। अहं सूर्यमुभयतो ददर्श। अहं द्यावापृथिवी आततान। ननु च छन्दसि लुङ्लङ्लिट इति सामान्येन लिड्विहित एव। धातुसंबन्धे स विधिरयं त्वविशेषेण॥

लिटः कानज्वा॥ १०६॥

छन्दसि लिटः कानजादेशो भवति वा। अग्निं चिक्यानः। सोमं सुषुवाणः। वरुणं सुषुवाणः। न च भवति। अहं सूर्यमुभयतो ददर्श। अहं द्यावापृथिवी आततान। लिड्ग्रहणं किम्। न पूर्वस्यैव प्रकृतस्यादेशविधाने विभक्ति-विपरिणामो भविष्यति। लिण्मात्रस्य यथा स्यात्। योऽपि परोक्षे विहितस्तस्या-प्ययमादेशो भवति॥

क्वसुश्च॥ १०७॥

छन्दसि लिटः क्वसुरादेशो भवति। जक्षिवान्। पपिवान्। न च भवति। अहं सूर्यमुभयतो ददर्श। योगविभाग उत्तरार्थः॥

भाषायां सदवसश्रुवः॥ १०८॥

सद वस श्रु इत्येतेभ्यः परस्य लिटो भाषायां विषये वा क्वसुरादेशो भवति। आदेशविधानादेव लिडपि तद्विषयोऽनुमीयते। उपसेदिवान् कौत्सः

पाणिनिम् । तेन मुक्ते यथा प्राप्तं प्रत्यया भवन्ति । उपासदत् । उपासीदत् । उपससाद । अनूषिवान्कौत्सः पाणिनिम् । अन्ववात्सीत् । अन्ववसत् । अनूवास । उपशुश्रुवान्कौत्सः पाणिनिम् । उपाश्रौषीत् । उपाशृणोत् । उपशुश्राव । लुङ्लङ्विषये परस्तादनुवृत्तेः क्वसुर्भवति ॥

उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ १०९ ॥

उपेयिवान् अनाश्वान् अनूचान इत्येते शब्दा निपात्यन्ते । उपपूर्वादिणः क्वसुः, द्विर्वचनमभ्यासदीर्घत्वं तत्सामर्थ्यादेकादेशप्रतिबन्धः, तत्र वस्वेकाजाद्घसामित्यनेकाच्त्वादिडन प्राप्नोति स निपात्यते, अभ्यासस्य श्रवणं धातुरूपस्य यणादेशः । उपेयिवान् । क्रादिनियमात्प्राप्तश्च वस्वेकाजाद्घसामिति प्रतिषिद्धः स पुनरिट् प्रतिप्रसूयते, तेनाजादौ न भवति । उपेयुषः । उपेयुषा । न चात्रोपसर्गस्तन्त्रं, अन्योपसर्गपूर्वाच्चिरुपसर्गाच्च भवत्येव । समीयिवान् । ईयिवान् । वावचनानुवृत्तेश्च पूर्ववल्लुङादयोपि भवन्ति । उपागात् । उपैत् । उपेयाय । अश्नातेर्नञ्पूर्वात् क्वसुर्निपात्यते, इडभावश्च । अनाश्वान् । नाशीत् । नाश्नात् । नाश । वचेरनुपूर्वात्कर्त्तरि कानज्निपात्यते । अनूचानः । अन्ववोचत् । अन्वब्रवीत् । अनूवाच ॥

लुङ् ॥ ११० ॥

भूतइत्येव । भूतेर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति । अकार्षीत् । अहार्षीत् ॥ वसतेर्लुङ् रात्रिविशेषे जागरणसंततौ वक्तव्यः ॥ * ॥ भवानुषितः । अहमत्रावात्सम् ॥

अनद्यतने लङ् ॥ १११ ॥

भूतइत्येव । अनद्यतनइति बहुव्रीहिनिर्देशः । अविद्यमानाद्यतने भूतेर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लङ् प्रत्ययो भवति । अकरोत् । अहरत् । बहुव्रीहिनिर्द्देशः किमर्थः । अद्य ह्यो वा अभुञ्ज्महीति व्यामिश्रे मा भूत् ॥ परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शनविषये लङ्वक्तव्यः ॥ * ॥ अरुणद्यवनः साकेतम् । अरुणद्यवनो माध्यमिकानिति ॥

अभिज्ञावचने लृट् ॥ ११२ ॥

अभिज्ञा स्मृतिस्तद्वचनउपपदे भूतानद्यतने लृट् प्रत्ययो भवति । लङोपवादः । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः । वचनग्रहणं पर्यायार्थम् । अभिजानासि स्मरसि बुध्यसे चेतयसइति ॥

न यदि ॥ ११३ ॥

यच्छब्दसहिते ऽभिज्ञावचनउपपदे लृट् प्रत्ययो न भवति । पूर्वेण प्राप्तः

प्रतिषिध्यते । अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेष्ववसाम । वासमात्रं स्मर्यते । नत्वपरं किं चिल्लक्ष्यते । तेन उत्तरसूत्रस्य नायं विषयः ॥

विभाषा साकाङ्क्षे ॥ ११४ ॥

यदिति नानुवर्त्तते । उभयत्र विभाषेयम् । अभिज्ञावचनउपपदे यच्छब्दसहिते केवले च विभाषाल्लृट् प्रत्ययो भवति साकाङ्क्षश्चेत्प्रयोक्ता । लक्ष्यलक्षणयोः संबन्धे प्रयोक्तुराकाङ्क्षा भवति । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामस्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे । अभिजानासि देवदत्त मगधेषु वत्स्यामः तत्रौदनं भोक्ष्यामहे । यदि खल्वपि । अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेषु वत्स्यामः, यत्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे । अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेष्ववसाम, यत्तत्रौदनमभुञ्ज्महि । वासोलक्षणं, भोजनं लक्ष्यम् ॥

परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥

भूतानद्यतनइति वर्त्तते । तस्य विशेषणं परोक्षग्रहणम् । भूतानद्यतनपरोक्षेर्थे वर्तमानाद्धातोर्लिट् प्रत्ययो भवति । ननु धात्वर्थः सर्वः परोक्ष एव । सत्यमेतत् । अस्ति तु लोके धात्वर्थेनापि कारकेषु प्रत्यक्षाभिमानः, स यत्र नास्ति तत्परोक्षमित्युच्यते । चकार । जहार । उत्तमविषयेपि चित्तव्याक्षेपात् परोक्षता संभवत्येव । तद्यथा । सुप्तोहं किल विललाप ॥ अत्यन्तापह्नवे च लिड्वक्तव्यः ॥ * ॥ कलिङ्गेषु स्थितोसि, नाहं कलिङ्गं जगाम । दक्षिणापथं प्रविष्टोसि, नाहं दक्षिणापथं प्रविवेश ॥

हशश्वतोर्लङ् च ॥ ११६ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षे ऽर्थे लिटि प्राप्ते हशश्वतोरुपपदयोर्लङ् प्रत्ययो भवति । चकाराल्लिट् च । इति ह कारोत् । इति ह चकार । शश्वदकरोत् । शश्वच्चकार ॥

प्रश्ने चासन्नकाले ॥ ११७ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षइति वर्त्तते । तस्य विशेषणमेतत् । प्रष्टव्यः प्रश्नः । आसन्नकाले पृच्छ्यमाने भूतानद्यतनपरोक्षेर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लङ्लिटौ प्रत्ययौ भवतः कश्चित्कं चित्पृच्छति । अगच्छद्देवदत्तः । जगाम देवदत्तः । अयजद्देवदत्तः । इयाज देवदत्तः । प्रश्नइति किम् । जगाम देवदत्तः । आसन्नकालइति किम् । भवन्तं पृच्छामि, जघान कंसं किल वासुदेवः ॥

लट् स्मे ॥ ११८ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षइति वर्त्तते । स्मशब्दउपपदे भूतानद्यतनपरोक्षे लट् प्रत्ययो भवति । लिटोपवादः । नलेन स्म पुराधीयते । ऊर्णया स्म पुराधीयते ॥

अपरोक्षे च ॥ ११९ ॥

अपरोक्षे च भूतानद्यतनेऽर्थे वर्तमानाद्धातोः स्मउपपदे लट् प्रत्ययो भवति । एवं स्म पिता ब्रवीति । इति स्मोपाध्यायः कथयति ॥

ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ १२० ॥

अनद्यतने परोक्षइति निवृत्तम् । भूतसामान्ये विधिरयम् । ननुशब्दउपपदे प्रश्नपूर्वके प्रतिवचने भूतेऽर्थे लट् प्रत्ययो भवति । लुङोपवादः । अकार्षीः कटं देवदत्त, ननु करोमि भोः । अवोचस्तत्र किं चिद्देवदत्त, ननु ब्रवीमि भोः । पृष्टप्रतिवचन इति किम् । नन्वकार्षीन्माणवकः ॥

नन्वोर्विभाषा ॥ १२१ ॥

भूतइत्येव । नशब्दे नुशब्दे चोपपदे पृष्टप्रतिवचने विभाषा लट् प्रत्ययो भवति भूते । अकार्षीः कटं देवदत्त, न करोमि भोः । नाकार्षम् । अहं नु करोमि । अहं न्वकार्षम् ॥

पुरि लुङ्चास्मे ॥ १२२ ॥

अनद्यतनग्रहणमिह मण्डूकप्लुत्यानुवर्त्तते । पुरःशब्दउपपदे स्मशब्दवर्जिते भूतानद्यतनेऽर्थे विभाषा लुङ् प्रत्ययो भवति लट् च । ताभ्यां मुक्ते पक्षे यथाविषयमन्येपि प्रत्यया भवन्ति । वसन्तीह पुरा छात्राः । अवात्सुः पुरा छात्राः । अवसन्निह पुरा छात्राः । ऊषुरिह पुरा छात्राः । अस्मइति किम् । नलेन स्म पुराधीयते ॥

वर्त्तमाने लट् ॥ १२३ ॥

आरब्धो अपरिसमाप्तश्च वर्त्तमानः, तस्मिन्वर्त्तमानेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोः लट् प्रत्ययो भवति । पचति । पठति ॥

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ १२४ ॥

लटः शतृशानचावित्येतावादेशौ भवतः, अप्रथमान्तेन चेत्तस्य सामानाधिकरण्यं भवति । पचन्तं देवदत्तं पश्य । पचमानं देवदत्तं पश्य । पचता कृतम् । पचमानेन कृतम् । अप्रथमासमानाधिकरणे इति किम् । देवदत्तः पचति । लडिति वर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम् । क्वचित् प्रथमासमानाधिकरणेपि भवति । सन्ब्राह्मणः । अस्ति ब्राह्मणः । विद्यते ब्राह्मणः । विद्यमानो ब्राह्मणः । जुह्वत् । जुहोति । अधीयानः । अधीते ॥ माङ्याक्रोशे ॥ * ॥ मा पचन् । मा पचमानः । के चिद्विभाषाग्रहणमनुवर्त्तयन्ति नन्वोर्विभाषेति । सा च व्यवस्थिता । तत्र यथादर्शनं प्रयोगा नेतव्याः ॥

संबोधने च ॥ १२५ ॥

प्रथमासमानाधिकरणार्थ आरम्भः । संबोधने च विषये लटः शतृशानचौ प्रत्ययौ भवतः । हे पचन् । हे पचमान ॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ १२६ ॥

लक्ष्यते चिह्न्यते येन तल्लक्षणम् । जनको हेतुः । धात्वर्थविशेषणं चैतत् । लक्षणेहेतौ चार्थे वर्त्तमानाद्धातोः परस्य लटः शतृशानचावादेशौ भवतः । तौ चेल्लक्षणहेतू क्रियाविषयौ भवतः । लक्षणे । शयाना भुञ्जते यवनाः । तिष्ठन्तोनुशासति गणकाः । हेतौ । अर्जयन्वसति । अधीयानो वसति । लक्षणहेत्वोरिति किम् । पचति । पठति । क्रियाया इति किम् । द्रव्यगुणयोर्मा भूत् । यः कम्पते सोश्वत्थः । यदुत्प्लवते तल्लघु । यन्निषीदति तद्गुरु । लक्षणहेत्वोरिति निर्द्देशः पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम् ॥

तौ सत् ॥ १२७ ॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ भवतः । तौ ग्रहणमुपाध्यसंसर्गार्थम् । शतृशानजमात्रस्य संज्ञा भवति । ब्राह्मणस्य कुर्वन् । ब्राह्मणस्य कुर्वाणः । ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः । सत्प्रदेशाः पूरणगुणसहितार्थसदव्ययतव्येत्येवमादयः ॥

पूङ्यजोः शानन् ॥ १२८ ॥

पूङो यजेश्च धातोः शानन् प्रत्ययो भवति । पवमानः । यजमानः । यदि प्रत्ययाः शानन्नादयो न लादेशाः, कथं सोमं पवमानो नडमाघ्नान इति षष्ठीप्रतिषेधः । तृन्निति प्रत्याहारनिर्देशात् । क्व संनिविष्टानां प्रत्याहारः । लटः शतृ इत्यतः प्रभृति आ तृनो नकारात् ॥ द्विषः शतुर्वा वचनम् ॥ * ॥ चोरस्य द्विषन् । चोरं द्विषन् ॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥ १२९ ॥

ताच्छील्यं तत्स्वभावता । वयः शरीरावस्था यौवनादिः । शक्तिः सामर्थ्यम् । ताच्छील्यादिषु धातोश्चानश् प्रत्ययो भवति । ताच्छील्ये तावत् । कतीह मुण्डयमानाः । कतीह भूषयमाणाः । वयोवचने । कतीह कवचं पर्यस्यमानाः । कतीह शिखण्डं वहमानाः । शक्तौ । कतीह निघ्नानाः । कतीह पचमानाः ॥

इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ १३० ॥

इङो धारेश्च धात्वोः शतृप्रत्ययो भवति अकृच्छ्रिणि कर्त्तरि । अकृच्छ्रः सुखसाध्यो यस्य कर्तुर्धात्वर्थः सो ऽकृच्छ्री । अधीयन् पारायणम् । धारयन्नुपनिषदम् । अकृच्छ्रिणीति किम् । कृच्छ्रेणाधीते । कृच्छ्रेण धारयति ॥

द्विषो ऽमित्रे ॥ १३१ ॥

अमित्रः शत्रुः । अमित्रे कर्त्तरि द्विषेर्धातोः शतृप्रत्ययो भवति । द्विषन् द्विषन्तौ । द्विषन्तः । अमित्रइति किम् । द्वेष्टि भार्या पतिम् ॥

सुञो यज्ञसंयोगे ॥ १३२ ॥

यज्ञेन संयोगो यज्ञसंयोगः । यज्ञसंयुक्ते ऽभिषवे वर्त्तमानात्सुनोतेर्धातोः शतृप्रत्ययो भवति । सर्वे सुन्वन्तः । सर्वे यजमानः सत्रिण उच्यन्ते । संयोगग्रहणं प्रधानकर्तृप्रतिपत्त्यर्थम् । याजकेषु मा भूत् । यज्ञसंयोगइति किम् । सुनोति सुराम् ॥

अर्हः प्रशंसायाम् ॥ १३३ ॥

प्रशंसा स्तुतिः । अर्हतेर्धातोः प्रशंसायां शतृप्रत्ययो भवति । अर्हन्निह वान्विद्वाम् । अर्हन्निह भवान्पूजाम् । प्रशंसायामिति किम् । अर्हति चोरो वधम् ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ १३४ ॥

भ्राजभासेति क्विपं वक्ष्यति । आ एतस्मात् क्विप्संशब्दाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तच्छीलादिषु कर्तृषु ते वेदितव्याः । अभिविधौ चायमाङ् । तेन क्विपोप्ययमर्थनिर्द्देशः । तदिति धात्वर्थः शीलादिविशेषणत्वेन निर्द्दिश्यते । तच्छीलो यः स्वभावतः फलनिरपेक्षस्तत्र प्रवर्त्तते । तद्धर्मा तदाचारः, यः स्वधर्मं ममायमिति प्रवर्त्तते विनापि शीलेन । तत्साधुकारी यो धात्वर्थं साधु करोति । उत्तरत्रैवोदाहरिष्यामः ॥

तृन् ॥ १३५ ॥

सर्वधातुभ्यस्तृन्प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्तृषु । नकारः स्वरार्थः । तच्छीले तावत् । कर्ता कटान् । वदिता जनापवादान् । तद्धर्मणि । मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम् । अन्नमपहर्त्तार आह्वरका भवन्ति श्राद्धे सिद्धे । उन्नेतारस्तौल्वलायना भवन्ति पुत्रे जाते तत्साधुकारिणि । कर्त्ता कटम् । गन्ता खेटम् ॥ तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य ॥ * ॥ होता । पोता । अनुपसर्गस्येति किम् । उद्गाता । प्रतिहर्ता । तृजेव भवति । स्वरविशेषः ॥ नयतेः षुक् च ॥ * ॥ नेष्टा ॥ त्विषेर्द्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च ॥ * ॥ त्वष्टा ॥ क्षदेश्च नियुक्ते ॥ * ॥ क्षत्ता । क्वचिदधिकृत उच्यते ॥ छन्दसि तृच्च ॥ * ॥ क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यः । स्वरे विशेषः ॥

अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच ॥ १३६ ॥

अलंकृञादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु इष्णुच् प्रत्ययो भवति । अलंकरिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उत्पतिष्णुः । उन्म-

द्दिष्णुः। रोचिष्णुः। अपत्रपिष्णुः। वर्त्तिष्णुः। वर्द्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः॥ अलंकृञो मण्डनार्थाद्युचः पूर्वविप्रतिषेधेनेष्णुज्वक्तव्यः॥ * ॥ *

णेश्छन्दसि ॥ १३७ ॥

णयन्ताद्धातोश्छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्तृषु इष्णुच् प्रत्ययो भवति। दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः॥

भुवश्च ॥ १३८ ॥

भवतेर्धातोश्छन्दसि विषये तच्छीलादिष्विष्णुच् प्रत्ययो भवति। भविष्णुः। योगविभाग उत्तरार्थः। चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः। भ्राजिष्णुना लोहितचन्दनेन॥

ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ १३९ ॥

छन्दसीति निवृत्तं,ग्ला जि स्था इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्चकाराद्भुवश्च तच्छीलादिषु क्स्नुः प्रत्ययो भवति। ग्लास्नुः। जिष्णुः। स्थास्नुः। भूष्णुः। गित्वायं प्रत्ययो न कित्। तेन स्थ ईकारो न भवति। क्ङिति चेत्यत्र गकारोपि चर्त्वभूतो निर्द्दिश्यते। तेन गुणो न भवति। श्र्युकः किताीत्यत्रापि गकारो निर्द्दिश्यते। तेन भुव इड् न भवति॥

क्स्नोर्गित्वान्न स्थ ईकारः क्ङितोरीत्वशासनात्।
गुणाभावस्त्रिषु स्मार्यः श्र्युकोनिट्त्वं गकोरितोः॥

दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम्॥ * ॥ दंक्ष्णवः पशवः॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ १४० ॥

त्रसादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु क्नुः प्रत्ययो भवति। त्रस्नुः। गृध्नुः। धृष्णुः। क्षिप्नुः॥

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ १४१ ॥

इतिशब्द आद्यर्थे। शमादिभ्यो धातुभ्यो ऽष्टाभ्यस्तच्छीलादिषु घिनुण् प्रत्ययो भवति। शम उपशमे इत्यतः प्रभृति मदी हर्षइत्येवमन्तः शमादिर्द्दिवाद्यन्तर्गणः। घकार उत्तरत्र कुत्वार्थः। उकार उच्चारणार्थः। णकारो वृद्ध्यर्थः। शमी। तमी। दमी। श्रमी। भ्रमी। क्षमी। प्रमादी। उन्मादी। अष्टाभ्य इति किम्। असिता॥

संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ॥ १४२ ॥

---

* इदं बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते।

घिनुणनुवर्त्तते । संपृचादिभ्यो धातुभ्यो घिनुण् भवति तच्छीलादिषु । पृची संपर्के इति रुधादिर्गृह्यते न त्वदादिर्लुग्विकरणत्वात् । परिदेविर्भ्वादिर्गृह्यते देवृ देवन इति । क्षिप प्रेरणे दिवादिस्तुदादिश्च सामान्येन गृह्यते । युज समाधौ दिवादिः । युजिर् योगे रुधादिः । द्वयोरपि ग्रहणम् । रञ्ज रागइत्यस्य निपातनादनुनासिकलोपः । संपर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी । संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही । योगी । आक्रीडी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । अतिचारी । अपचारी । आमोषी । अभ्याघाती ॥

वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥ १४३ ॥

कष हिंसार्थः । लस श्लेषणक्रीडनयोः । कत्थ श्लाघायाम् । स्रम्भु विश्वासे । एतेभ्यो धातुभ्यो विशब्दउपपदे घिनुण् प्रत्ययो भवति । कष । विकाषी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी ॥

अपे च लषः ॥ १४४ ॥

लष कान्तौ । अस्माद्धातोरपउपपदे चकाराद्वौ च घिनुण् भवति । अपलाषी । विलाषी ॥

प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ १४५ ॥

प्रउपपदे लपादिभ्यो घिनुण् भवति । प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी । वस इति वस निवासइत्यस्य ग्रहणं नाच्छादनार्थस्य, लुग्विकरणत्वात् ॥

निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ॥ १४६ ॥

निन्दादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वुञ् प्रत्ययो भवति । पञ्चम्यर्थे प्रथमा । क्लिश उपतापे । क्लिश विबाधने । द्वयोरपि ग्रहणम् । निन्दकः । हिंसकः । क्लेशकः । खादकः । विनाशकः । परिक्षेपकः । परिराटकः । परिवादकः । व्याभाषकः । असूयकः । ण्वुलैव सिद्धे वुञ्विधानं ज्ञापनार्थं ताच्छीलिकेषु वासरूपन्यायेन तृजादयो न भवन्तीति ॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ १४७ ॥

देवयतेः क्रुशेश्चोपसर्गे उपपदे वुञ् प्रत्ययो भवति । आदेवकः । परिदेवकः । आक्रोशकः । परिक्रोशकः । उपसर्गइति किम् । देवयिता । क्रोष्टा ॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ १४८ ॥

चलनार्थेभ्यः शब्दार्थेभ्यश्चाकर्मकेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु युच्

प्रत्ययो भवति । चलनः । चोपनः । शब्दार्थेभ्यः । शब्दनः । रवणः । अकर्मकादिति किम् । पठिता विद्याम् ॥

अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥ १४९ ॥

अनुदात्तेद्यो धातुः हलादिरकर्मकः ततश्च युच् प्रत्ययो भवति । वर्त्तनः । वर्द्धनः । अनुदात्तेत इति किम् । भविता । हलादेरिति किम् । एधिता । अादिग्रहणं किम् । जुगुप्सनः । मीमांसनः । अकर्मकादित्येव । वसिता वस्त्रम् ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥ १५० ॥

जुप्रभृतिभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्तृषु । जु इति सौत्रो धातुः । जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । गर्द्धनः । ज्वलनः । शोचनः । लषणः । पतनः । पदनः । चलनार्थानां पदेश्च ग्रहणं सकर्मकार्थमिह । ज्ञापनार्थं च पदिग्रहणमन्ये वर्णयन्ति । ताच्छीलिकेषु मिथो वासरूपविधिर्नास्तीति । तेनालंकृञस्तृन्न भवत्यलंकर्त्तेति । तथाहि । पदेरुकञा विशेषविहितेन सामान्यविहितस्य युचो ऽसरूपत्वात्समावेशो भवेदेव किमनेन विधानेन । ज्ञापनार्थं पुनर्विधीयते । प्रायिकं चैतद् ज्ञापकम् । क्व चित्समावेशः दृश्यतएव । गन्ता खेटं विकत्थनः ॥

क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ १५१ ॥

क्रुध कोपे । मडि भूषायाम् । इत्येतदर्थेभ्यश्च धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति । क्रोधनः । रोषणः । मण्डनः । भूषणः ॥

न यः ॥ १५२ ॥

यकारान्ताद्धातोर्युच् प्रत्ययो न भवति । पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते । क्नूयिता । क्ष्मायिता ॥

सूददीपदीक्षश्च ॥ १५३ ॥

सूद दीप दीक्ष इत्येतेभ्यश्च युच् प्रत्ययो न भवति । अनुदात्तेत्त्वात्प्राप्तः प्रतिषिध्यते । सूदिता । दीपिता । दीक्षिता । ननु च दीपेर्विशेषविहितो रप्रत्ययो दृश्यते नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो र इति स एव बाधको भविष्यति किं प्रतिषेधेन । वासरूपेण युजपि प्राप्नोति । ताच्छीलिकेषु च वासरूपविधिर्नास्तीति प्रायिकमेतद् इत्युक्तम् । तथा च समावेशो दृश्यते । कम्रा युवतिः । कमना युवतिः । कम्प्रा शाखा । कम्पना शाखेति । सूदेर्युचि प्रतिषिद्धे कथं मधुसूदनो रिपुसूदन इति । अनित्योयं प्रतिषेध इति योगविभागाद्विज्ञायते । अथ वा मधुसूदनादयो नन्द्यादिषु द्रष्टव्यः । कृत्यल्युटो बहुलमिति ल्युडन्तो वा * ॥

---

* कृतेत्यारभ्य वेत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्य उकञ् ॥ १५४ ॥

लषादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु उकञ् प्रत्ययो भवति । अपलाषुकं वृषलसंगतम् । प्रपातुका गर्भा भवन्ति । उपपादुकं सत्त्वम् । उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति । प्रभावुकमन्नं भवति । प्रवर्षुकाः पर्जन्याः । आघातुकं कापालिकस्य शूलम् । कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति । आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः । किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः ॥

जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ १५५ ॥

जल्पादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु षाकन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीषर्थः । जल्पाकः । भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्टाकः । वराकः । वराकी ॥

प्रजोरिनिः ॥ १५६ ॥

प्रपूर्वाज्जवतेः तच्छीलादिषु कर्तृषु इनिः प्रत्ययो भवति । प्रजवी । प्रजविनौ ॥

जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ १५७ ॥

जि जये । दृङ् आदरे । क्षि क्षये, क्षि निवासगत्योरिति द्वयोरपि ग्रहणम् । प्रसू इति षू प्रेरणइत्यस्य ग्रहणम् । जिप्रभृतिभ्यो धातुभ्य इनिः प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्तृषु । जयी । दरी । क्षयी । विश्रयी । अत्ययी । वमी । अव्यथी । अभ्यमी । परिभवी । प्रसवी ॥

स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ १५८ ॥

स्पृह ईप्सायाम् । गृह ग्रहणे । पत गतौ । चुरादावदन्ताः पठ्यन्ते । दय दानगतिरक्षणेषु । द्रा कुत्सायां गतौ, निपूर्वस्तत्पूर्वश्च, तदो नकारान्तता च निपात्यते । डुधाञ् श्रत्पूर्वः । एतेभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु आलुच् प्रत्ययो भवति । स्पृहयालुः । गृहयालुः । पतयालुः । दयालुः । निद्रालुः । तन्द्रालुः । श्रद्धालुः ॥ आलुचि शीङो ग्रहणं कर्तव्यम् ॥ * ॥ शयालुः ॥

दाधेट्सिशदसदो रुः ॥ १५९ ॥

दा धेट् सि शद सद इत्येतेभ्यो रुः प्रत्ययो भवति । दारुः । धारुर्वत्सो मातरम् । न लोकाव्ययेत्युकारप्रश्लेषात् षष्ठी न भवति । सेरुः । शद्रुः । सद्रुः ॥

सृघस्यदः क्मरच् ॥ १६० ॥

सृ घसि अद इत्येतेभ्यो धातुभ्यः तच्छीलादिषु कर्तृषु क्मरच् प्रत्ययो भवति । सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ १६१ ॥

भञ्ज भास मिद इत्येतेभ्यो घुरच् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु। भङ्गुरं काष्ठम्। घित्वात्कुत्वम्। भासुरं ज्योतिः। मेदुरः पशुः। भञ्जेः कर्मकर्त्तरि प्रत्ययः स्वभावात् ॥

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ १६२ ॥

ज्ञानार्थस्य विदेर्ग्रहणं न लाभार्थस्य स्वभावात्। विदादिभ्यो धातुभ्यः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु कुरच् प्रत्ययो भवति। विदुरः पण्डितः। भिदुरं काष्ठम्। छिदुरा रज्जुः। भिदिच्छिदोः कर्मकर्त्तरि प्रयोगः ॥ व्यधेः संप्रसारणं कुरच्च वक्तव्यः ॥ * ॥ विधुरः * ॥

इण्नश्जिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥ १६३ ॥

इण् नश् जि सर्त्ति इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्वरप् प्रत्ययो भवति। पकारस्तुगर्थः। इत्वरः। इत्वरी। नश्वरः। नश्वरी। जित्वरः। जित्वरी। सृत्वरः। सृत्वरी। नेड्वशि कृतीतीट्प्रतिषेधः ॥

गत्वरश्च ॥ १६४ ॥

गत्वर इति निपात्यते। गमेरनुनासिकलोपः क्वरप् प्रत्ययश्च। गत्वरः। गत्वरी ॥

जागुरूकः ॥ १६५ ॥

जागर्त्तेरूकः प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु। जागरूकः ॥

यजजपदशां यङः ॥ १६६ ॥

यजादीनां यङन्तानामूकः प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु। यायजूकः। जञ्जपूकः। दन्दशूकः ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥ १६७ ॥

नम्यादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु रः प्रत्ययो भवति। नम्रं काष्ठम्। कम्प्रा शाखा। स्मेरं मुखम्। अजस्रं जुहोति। कम्रा युवतिः। हिंस्रं रक्षः। दीप्रं काष्ठम्। अजस्रमिति जसु मोक्षणे नञ्पूर्वो रप्रत्ययान्तः क्रियासातत्ये वर्त्तते ॥

सनाशंसभिक्ष उः ॥ १६८ ॥

सन्निति सन्प्रत्ययान्तो गृह्यते। न सनिर्धातुः। अनभिधानात्, व्याप्तिन्यायाद्वा। सन्नन्तेभ्यो धातुभ्य आशंसेर्भिक्षेश्च तच्छीलादिषु कर्त्तृषु उः प्रत्ययो भवति। चिकीर्षुः। जिहीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः। आङः शसि इच्छायामित्यस्य ग्रहणं, न शंसेः स्तुत्यर्थस्य ॥

---

* व्यधेरित्यारभ्य विधुर इत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते।

विन्दुरिच्छुः ॥ १६९ ॥

विदेर्नुमागम इषेश्छत्वमुकारश्च प्रत्ययो निपात्यते तच्छीलादिषु कर्तृषु वेदनशीलो विन्दुः । एषणशील इच्छुः ॥

क्याच्छन्दसि ॥ १७० ॥

क्य इति क्यच्क्यङ्क्यषां सामान्येन ग्रहणम् । क्यप्रत्ययान्ताद्धातोश्छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्तृषु उकारप्रत्ययो भवति । मित्रयुः । संस्वेदयुः । सुम्नयुः । छन्दसीति किम् । मित्रीयिता । न छन्दस्यपुत्रस्येति प्रतिषेधाच्च दीर्घः* ॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ १७१ ॥

आकारान्तेभ्य ऋवर्णान्तेभ्यश्च गम हन जन इत्येतेभ्यश्छन्दसि विषये तच्छीलादिषु किकिनौ प्रत्ययौ भवतः । लिड्वच्च तौ भवतः । आदिति तकारो मुखसुखार्थः, न त्वयं तपरो, मा भूत्तादपि परस्तपर इति ऋकारे तत्कालग्रहणम् । पपिः सोमं, ददिर्गाः । मित्रावरुणौ ततुरिः । दूरे ह्यध्वा जगुरिः । जग्मिर्युवा । जघ्निर्वृत्रम् । जज्ञिर्बीजम् । अथ किमर्थं कित्त्वम् । यावता असंयोगाल्लिट् किदिति कित्त्वं सिद्धमेव । ऋच्छत्यृतामिति लिटि गुणः प्रतिषेधविषयआरभ्यते तस्यापि बाधनार्थं कित्त्वम् ॥ किकिनावुत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥ * ॥ सेदिः । नेमिः ॥ भाषायां धाञ्कृसृजनिगमिनमिभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ दधिः । चक्रिः । सस्रिः । जज्ञिः । जग्मिः । नेमिः ॥ सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ दीर्घाकितः । सासहिः । वावहिः । चाचलिः पापतिः ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ १७२ ॥

छन्दसीति निवृत्तम् । स्वपेस्तृषेश्च तच्छीलादिषु कर्तृषु नजिङ् प्रत्ययो भवति । स्वप् । स्वप्नक् । तृष्णक् ॥ धृषेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ धृष्णक् ॥

शॄवन्द्योरारुः ॥ १७३ ॥

शॄ हिंसायाम् । वदि अभिवादनस्तुत्योः । एताभ्यां धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्तृष्वारुः प्रत्ययो भवति । शरारुः । वन्दारुः ॥

भियः क्रुक्लुकनौ ॥ १७४ ॥

ञि भी भये । अस्माद्धातोः तच्छीलादिषु कर्तृषु क्रुक्लुकनौ प्रत्ययौ भवतः । भीरुः । भीलुकः ॥ क्रुकन्नपि वक्तव्यः ॥ * ॥ भीरुकः ॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ १७५ ॥

---

* छन्दसीत्यारभ्य दीर्घ इत्येतत्पर्यन्तं पुस्तकान्तरे न विद्यते ।

ष्ठा गतिनिवृत्तौ । ईश ऐश्वर्ये । भासृ दीप्तौ । पिसृ पेसृ गतौ । कस गतौ । एतेभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वरच् प्रत्ययो भवति । स्थावरः । ईश्वरः । पेश्वरः । विकस्वरः ॥

यश्च यङः ॥ १७६ ॥

या प्रापणे । अस्माद्यङन्तात्तच्छीलादिषु कर्तृषु वरच् प्रत्ययो भवति । यायावरः ॥

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ १७७ ॥

भ्राजादिभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु क्विप् प्रत्ययो भवति । विभ्राट् । विभ्राजौ । विभ्राजः । भाः । भासौ । भासः । धूः । धुरौ । धुरः । विद्युत् । विद्युतौ । विद्युतः । ऊर्क् । ऊर्जौ । ऊर्जः । पूः । पुरौ । पुरः । जवतेर्दीर्घश्च निपात्यते * । जूः । जुवौ । जुवः । ग्रावस्तुत् । ग्रावस्तुतौ । ग्रावस्तुतः । किमर्थमिदमुच्यते, यावता ऽन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते क्विप् चेति क्विप्सिद्ध एव । ताच्छीलिकैर्बाध्यते । वासरूपविधिर्नास्तीत्युक्तम् । अथ तु प्रायिकमेतत् । ततस्तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ १७८ ॥

अन्येभ्योऽपि धातुभ्यस्ताच्छीलिकेषु क्विप् प्रत्ययो दृश्यते । युक् । छित् । भित् । दृशिग्रहणं विध्यन्तरोपसंग्रहार्थम् । क्व चिद्दीर्घः । क्व चिद्द्विर्वचनम् । क्व चित्संप्रसारणम् । क्व चिदसंप्रसारणम् । तथा चाह ॥ क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घो ऽसंप्रसारणं च ॥ * ॥ वचि । वाक् । प्रच्छि । शब्दप्राट् । आयतस्तूः । कटप्रूः । जूः । श्रीः । जुग्रहणेनात्र नार्थः । भ्राजादिसूत्रएव गृहीतत्वात् ॥ द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च ॥ * ॥ दिद्युत् । जगत् ॥ जुहोतेर्दीर्घश्च ॥ * ॥ जुहूः ॥ दृभयदृत्यस्य ह्रस्वश्च द्वे च ॥ * ॥ दद्रृत् ॥ ध्यायतेः संप्रसारणं च ॥ * ॥ धीः ॥

भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ १७९ ॥

† भवतेर्धातोः संज्ञायामन्तरे च गम्यमाने क्विप् प्रत्ययो भवति । विभूः‡ नाम कश्चित् । अन्तरे । प्रतिभूः । धनिकाधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति स प्रतिभूरुच्यते ॥

विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ॥ १८० ॥

---

* जवते दीर्घश्चेति । के चिदाहुः सूत्रे जू इति दीर्घः पठितव्य इति । विध्यन्तरोपसंग्रहार्थं दृशिग्रहणमुत्तरसूत्रादपकृष्टव्यमित्यन्ये ॥ इति पदमञ्जर्याम् ॥

† तच्छीलादिषु कर्तृष्विति निवृत्तमिति पुस्तकान्तरे दृश्यते ।

‡ मित्रभूरिति पा० ।

भुव इति वर्त्तते । वि प्र सम् इत्येवंपूर्वाद्भवतेर्धातोः डुप्रत्ययो भवति, न चेत्संज्ञा गम्यते । विभुः सर्वगतः । प्रभुः स्वामी । संभुर्जनिता । असंज्ञायामिति किम् । विभूर्नाम कश्चित् ॥ डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उप संख्यानम् ॥ * ॥ मितं द्रवति मितद्रुः । शंभुः ॥

धः कर्मणि ष्ट्रन् ॥ १८१ ॥

धयतेर्दधातेश्च कर्मणि कारके ष्ट्रन्प्रत्ययो भवति । षकारो ङीषर्थः । धयन्ति तां दधति वा भैषज्यार्थमिति धात्री । स्तनदायिनी आमलकी चोच्यते ॥

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥ १८२ ॥

दाप् लवने । णीञ् प्रापणे । शसु हिंसायाम् § । यु मिश्रणे । युजिर् योगे ष्टुञ् स्तुतौ । तुद व्यथने । षिञ् बन्धने । षिचिर् क्षरणे । मिह सेचने । पत्लृ गतौ । दंश दशने । णह बन्धने । एतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके ष्ट्रन्प्रत्ययो भवति । दान्त्यनेनेति दात्रम् । नेत्रम् । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्त्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । अजादित्वात् टाप् न ङीप् । दंशेरनुनासिकलोपेन निर्देशो ज्ञापनार्थः क्ङितो ऽन्यस्मिन्नपि प्रत्यये नलोपः क्वचिद्भवतीति तेन ल्युट्यपि भवति । दशनम् । नद्ध्री ॥

हलसूकरयोः पुवः ॥ १८३ ॥

पू इति पूङ्पूञोस्सामान्येन ग्रहणम् । अस्माद्धातोः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति । तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवो भवति । हलस्य पोत्रम् । सूकरस्य पोत्रम् । मुखमुच्यते ॥

अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ॥ १८४ ॥

ऋ गतौ । लूञ् छेदने । धू विधूनने । षू प्रेरणे । खनु अवदारणे । षह मर्षणे । चर गतिभक्षणयोः । एतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके इत्रप्रत्ययो भवति । अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

पुवः संज्ञायाम् ॥ १८५ ॥

पूङ्पूञोः सामान्येन ग्रहणम् । पवतेर्धातोः करणे कारके इत्रप्रत्ययो भवति समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते । दर्भः पवित्रम् । बर्हिष्पवित्रम् ॥

कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥ ॥ १८६ ॥

पुव इति वर्त्तते । पुवः करणे कर्तरि च इत्रप्रत्ययो भवति । ऋषिदेवतयोर्यथासंख्यं संबन्धः । ऋषौ करणे देवतायां कर्त्तरि । पूयते ऽनेनेति पवि-

---

* शसु हिंसायाम् । शंसु स्तुतौ च । द्वयोरपि ग्रहणमिति पा० ।

ज्ञेयमृषिः । देवतायाम् । अग्निः पवित्रं स मा पुनातु । वायुः सोमः सूर्य इन्द्रः पवित्रं ते मा पुनन्तु ॥

ञीतः क्तः ॥ १८७ ॥

ञि इद्यस्यासौ ञीत् । ञीतो धातोर्वर्त्तमाने ऽर्थे क्तप्रत्ययो भवति । भूते निष्ठा विहिता वर्तमाने न प्राप्नोतीति विधीयते । ञिमिदा स्नेहने । मिन्नः । ञिक्ष्विदा । क्ष्विण्णः । ञिधृषा । धृष्टः ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ १८८ ॥

मतिरिच्छा । बुद्धिर्ज्ञानम् । पूजासत्कारः । एतदर्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्त्तमानार्थे क्तप्रत्ययो भवति । राज्ञां मतः । राज्ञामिष्टः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां ज्ञातः । राज्ञां पूजितः । राज्ञामर्चितः । अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः ।

शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृतः पूर्ववत्स्मृतः ॥

कष्ट इति भविष्यति काले । अमृत इति पूर्ववत् । वर्त्तमानइत्यर्थः । तथा । सुप्तः * । शयितः । आशितः । लिप्तः । तृप्तः । इत्येवमादयोऽपि वर्त्तमाने द्रष्टव्याः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

उणादयो बहुलम् ॥ १ ॥

वर्त्तमानइत्येव, संज्ञायामिति च । उणादयः प्रत्यया वर्त्तमानेऽर्थे संज्ञायां विषये बहुलं भवन्ति । यतो विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति । के चिदविहिता एव प्रयोगत उन्नीयन्ते । कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् । कारुः । वायुः । पायुः । जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशुः ।

---

* सप्त इति पा० ।

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥

भूतेपि दृश्यन्ते ॥ २ ॥

पूर्वत्र वर्त्तमानाधिकाराद्भूतार्थमिदं वचनम् । भूते काले उणादयः प्रत्यया दृश्यन्ते । वृत्तमिदं वर्त्म । चरितं तदिति चर्म । भसितं तदिति भस्म । दृशिग्रहणं प्रयोगानुसारार्थम् ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ ३ ॥

भविष्यति काले गम्यादयः शब्दाः साधवो भवन्ति । प्रत्ययस्यैव भविष्यत्कालता विधीयते न प्रकृतेः । गमी ग्रामम् । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी ॥ अनद्यतनउपसंख्यानम् ॥ * ॥ श्वो गमी ग्रामम् ॥

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ ४ ॥

भविष्यतीत्येव । यावत्पुराशब्दयोर्निपातयोरुपपदयोर्भविष्यति काले धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । यावद्भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते । निपातयोरिति किम् । यावद्दास्यति तावद्भोक्ष्यते । करणभूतया पुरा व्रजिष्यति ॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ ५ ॥

कदा कर्हि इत्येतयोरुपपदयोर्विभाषा भविष्यति काले धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । कदा भुङ्क्ते । कदा भोक्ष्यते । कदा भोक्ता । कर्हि भुङ्क्ते । कर्हि भोक्ष्यते । कर्हि भोक्ता ॥

किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥ ६ ॥

विभाषेति वर्त्तते । किमो वृत्तं किंवृत्तम् ॥ वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात् डतरडतमौ चेति परिसंख्यानं स्मर्यते ॥ किंवृत्तउपपदे लिप्सायां भविष्यति काले धातोर्विभाषा लट् प्रत्ययो भवति । लिप्सा,लब्धुमिच्छा प्रार्थनाभिलाषः । कं भवन्तो भोजयन्ति । कं भवन्तो भोजयितारः । लब्धुकामः पृच्छति । कतरो भिक्षां दास्यति, ददाति, दाता वा । कतमो भिक्षां दास्यति, ददाति, दाता वा । लिप्सायामिति किम् । कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ ७ ॥

विभाषेत्येव । लिप्स्यमानात्सिद्धिर्लिप्स्यमानसिद्धिः, लिप्स्यमानसिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति काले धातोर्विभाषा लट् प्रत्ययो भवति । अक्षिप्रार्थोऽयमारम्भः । यो भक्तं ददाति सस्वर्गं गच्छति । यो भक्तं दास्यति स स्वर्गं गमिष्यति । यो भक्तं दाता स स्वर्गं गन्ता । लिप्स्यमानाद् भक्तात्स्वर्गसिद्धिमाचक्षाणो दातारं प्रोत्साहयति ॥

लोडर्थलक्षणे च ॥ ८ ॥

लोडर्थः प्रैषादिर्लक्ष्यते येन स लोडर्थलक्षणो धात्वर्थः, तत्र वर्त्तमानाद्धातोर्भविष्यति काले विभाषा लट् प्रत्ययो भवति । उपाध्यायश्चेदागच्छति । उपाध्यायश्चेदागमिष्यति । उपाध्यायश्चेदागन्ता । अथ त्वं छन्दो ऽधीष्व । अथ त्वं व्याकरणमधीष्व । उपाध्यायागमनमध्ययनप्रैषस्य लक्षणम् ॥

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ ९ ॥

भविष्यति विभाषा लोडर्थलक्षणइति सर्वमनुवर्त्तते । ऊर्द्ध्वमौहूर्त्तिके भविष्यति काले लोडर्थलक्षणार्थे वर्त्तमानाद्धातोर्विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति, चकाराल्लट् च । ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्ताद्भव ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकः । निपातनात्समासः, उत्तरपदवृद्धिश्च । भविष्यतश्चैतद्विशेषणम् । ऊर्ध्वं मुहूर्त्तादुपरि मुहूर्तस्य उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, उपाध्यायश्चेदागच्छति, उपाध्यायश्चेदागमिष्यति, उपाध्यायश्चेदागन्ता । अथ त्वं छन्दो ऽधीष्व । अथ त्वं व्याकरणमधीष्व ॥

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ १० ॥

भविष्यतीत्येव । क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोर्भविष्यति काले तुमुन्ण्वुलौ प्रत्ययौ भवतः । भोक्तुं व्रजति । भोजको व्रजति । भुजिक्रियार्था व्रजिरत्रोपपदम् । क्रियायामिति किम् । भिक्षिष्यइत्यस्य जटाः । क्रियार्थायामिति किम् । धावतस्ते पतिष्यति दण्डः । अथ किमर्थं ण्वुल् विधीयते । यावता ण्वुल्तृचाविति सामान्येन विहित एव सोऽस्मिन्नपि विषये भविष्यति । लृटा क्रियार्थोपपदेन बाध्येत । वासरूपविधिना सोपि भविष्यति । एवं तर्ह्येतज् ज्ञाप्यते क्रियायामुपपदे क्रियार्थायां वासरूपेण तृजादयो न भवन्तीति । तेन कर्त्ता व्रजति विक्षिपो व्रजतीत्येवमादि निवर्त्त्यते ॥

भाववचनाश्च ॥ ११ ॥

भविष्यतीत्येव । भावइति प्रकृत्य ये घञादयो विहितास्ते च भाववचना भविष्यति काले क्रियायामुपपदे क्रियार्थायां भवन्ति । किमर्थमिदं यावता विहिता एव ते । क्रियार्थोपपदे विहितेनास्मिन्विषये तुमुना बाध्येरन् । वासरूपविधिस्त्वत्र

नास्तीत्युक्तम् । अथ वचनग्रहणं किमर्थम् । वाचका यथा स्युः । कथं च वाचका भवन्ति । याभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन विहिता यदि ताभ्यस्तथैव भवन्ति नासामञ्जस्येनेति । पाकाय व्रजति । भूतये व्रजति । पुष्टये व्रजति ॥

अण् कर्मणि च ॥ १२ ॥

भविष्यतीत्येव । चकारः सन्नियोगार्थः । धातोरण्प्रत्ययो भवति भविष्यति काले कर्मण्युपपदे क्रियायां च क्रियार्थायाम् । कर्मण्यणिति सामान्येन विहितो वासरूपविधेरभावाद् ण्वुलाबाधितः पुनरणिखधीयते, सोपवादत्वाद् ण्वुलं बाधते, परत्वात्कादीन् । तेनापवादविषयेपि भवत्येव । काण्डलावो व्रजति । अश्वदायो व्रजति । गोदायो व्रजति । कम्बलदायो व्रजति ॥

लृट् शेषे च ॥ १३ ॥

भविष्यतीत्येव । शेषः क्रियार्थोपपदादन्यः । शेषे शुद्धे भविष्यति काले चकारात् क्रियायां चोपपदे क्रियार्थायां धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । करिष्यामीति व्रजति । हरिष्यामीति व्रजति । शेषे खल्वपि । करिष्यति । हरिष्यति ॥

लृटः सद्वा ॥ १४ ॥

लृटः स्थाने सत्संज्ञौ शतृशानचौ वा भवतः । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन यथा लटः शतृशानचौ तथा ऽस्यापि भवतः । अप्रथमासमानाधिकरणादिषु नित्यम्, अन्यत्र विकल्पः। करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य । हे करिष्यन् । हे करिष्यमाण । अर्जयिष्यमाणो वसति । प्रथमासमानाधिकरणे विकल्पः । करिष्यन्देवदत्तः । करिष्यमाणो देवदत्तः । करिष्यते । करिष्यति ॥

अनद्यतने लुट् ॥ १५ ॥

भविष्यतीत्येव । भविष्यदनद्यतनेर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लुट् प्रत्ययो भवति । लृटोपवादः । श्वः कर्ता । श्वो भोक्ता । अनद्यतनइति बहुव्रीहिनिर्देशः । तेन व्यामिश्रे न भवति । अद्य श्वो वा भविष्यतीति ॥ परिदेवने श्वस्तनी भविष्यदर्थे वक्तव्या ॥ * ॥ इयं नु कदा गन्ता, यैवं पादौ निदधाति । अयं नु कदाध्येता, य एवमनभियुक्तः ॥

पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ १६ ॥

भविष्यतीति निवृत्तम् । इत उत्तरं त्रिष्वपि कालेषु प्रत्ययाः । पदादिभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । पद्यतेसौ, पादः । रुजत्यसौ, रोगः । विशत्यसौ, वेशः ॥ स्पृश उपतापइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्पृशतीति स्पर्श उपतापः । ततो ऽन्यत्र पचाद्यच् भवति । स्पर्शो देवदत्तः । स्वरे विशेषः ॥

सृ स्थिरे ॥ १७ ॥

सर्त्तेर्द्धातोः स्थिरे कर्त्तरि घञ् प्रत्ययो भवति । स्थिर इति कालान्तरस्थायी पदार्थ उच्यते । स चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरतीति धात्वर्थस्य कर्त्ता युज्यते । चन्दनसारः । खदिरसारः । स्थिरइति किम् । सर्त्ता । सारकः । व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अतीसारो व्याधिः । विसारो मत्स्यः । सारो बलम् ॥

भावे ॥ १८ ॥

भावे वाच्ये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । पाकः । त्यागः । रागः । क्रियासामान्यवाची भवतिः । तेनार्थनिर्देशः क्रियमाणः सर्वधातुविषयः कृतो भवति । धात्वर्थश्च धातुनैवोच्यते, यस्तस्य सिद्धता नाम धर्मः तत्र घञादयः प्रत्यया विधीयन्ते । पुंलिङ्गैकवचनं चात्र न तन्त्रं, लिङ्गान्तरे वचनान्तरेपि चात्र प्रत्यया भवन्त्येव । पक्तिः । पचनम् । पाकौ । पाकाः । इति ॥

अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥ १९ ॥

कर्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये धातोर्घञ् भवति । प्रास्यन्ति तं प्रासः । वसीव्यन्ति तं प्रसेवः । आहरन्ति तस्माद्रसमित्याहारः । मधुराहारः । तक्षशिलाहारः । अकर्त्तरीति किम् । मिषत्यसौ मेषः । संज्ञायामिति किम् । कर्त्तव्यः कटः । संज्ञाव्यभिचारार्थश्चकारः । को भवता दायो दत्तः । को भवता लाभो लब्धः । कारकग्रहणं पर्युदासे न कर्त्तव्यं, तत्क्रियते प्रसज्यप्रतिषेधेपि समासोस्तीति ज्ञापनार्थम्, आदेच उपदेशे ऽशितीति । इत उत्तरं भावे ऽकर्त्तरि च कारके इति च द्वयमनुवर्त्तते ॥

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ २० ॥

परिमाणाख्यायां गम्यमानायां सर्वेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । एकस्तण्डुलनिचायः* । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । कॄ विक्षेपे । द्वौ कारौ । त्रयः काराः । सर्वग्रहणमपोपि बाधनार्थम् । पुरस्तादपवादन्यायेन ह्यचमेव बाधेत नापम् । परिमाणाख्यायामिति किम् । निश्चयः । आख्याग्रहणं रूढिनिरासार्थम् । तेन संख्यापि गृह्यते न प्रस्थाद्येव । घञनुक्रमणमजपोर्विषये, स्त्रीप्रत्ययास्तु न बाध्यन्ते । एका तिलोच्छ्रित्तिः । द्वे प्रसूती† ॥ दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च ॥ * ॥ दारयन्तीति, दाराः‡ । जरयन्तीति, जाराः ॥

इङश्च ॥ २१ ॥

इङो धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । अचोपवादः । अध्यायः । उपेत्यास्मा-

---

* निश्चाय इति पा० ।

† द्वे प्रसती इति पा० ।

‡ दारा इत्यस्योत्तरमचि प्राप्ते घञ् । दारा इत्यचा ऽपि सिध्यति । घञापि घञोन्त उदात्त इति स्वरसिद्धिरित्यत्राधिकं पुस्तकान्तरे ।

दधीते उपाध्यायः ॥ अपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् ॥ * ॥
उपाध्याया । उपाध्यायी ॥ शृ वा युवर्णनिवृतेषु ॥ * ॥ शारो वायुः । शारो
वर्णः । शारो निवृतम् ॥

गोरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः ॥

उपसर्गे रुवः ॥ २२ ॥

उपसर्गउपपदे रौतेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । अपोपवादः । संरावः ।
उपरावः । उपसर्गइति किम् । रवः ॥

समि युद्रुदुवः ॥ २३ ॥

समि उपपदे यु द्रु दु इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । संयावः ।
संद्रावः । संदावः । समीति किम् । प्रयवः ॥

श्रिणीभुवो ऽनुपसर्गे ॥ २४ ॥

श्रि णी भू इत्येतेभ्यो धातुभ्यो ऽनुपसर्गेभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । अज-
पोरपवादः । श्रायः । नायः । भावः । अनुपसर्गइति किम् । प्रश्रयः । प्रणयः ।
प्रभवः । कथं प्रभावो राज्ञः । प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासो भविष्यति ।
कथं च नयो राज्ञः । कृत्यल्युटो बहुलमित्यज् भविष्यति ।

वौ क्षुश्रुवः ॥ २५ ॥

वावुपपदे क्षु श्रु इत्येताभ्यां धातुभ्यां घञ् प्रत्ययो भवति । अपोपवादः ।
विक्षावः । विश्रावः । वाविति किम् । क्षवः । श्रवः ॥

अवोदोर्नियः ॥ २६ ॥

अव उत् इत्येतयोरुपपदयोर्नयतेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ॥ अवनायः ।
उन्नायः । कथमुन्नयः पदार्थानाम् । कृत्यल्युटो बहुलमित्यज् भविष्यति ॥

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥ २७ ॥

प्रशब्दउपपदे द्रु स्तु स्रु इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति ।
प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः । प्रइति किम् । द्रवः । स्तवः । स्रवः ॥

निरभ्योः पूल्वोः ॥ २८ ॥

पू इति पूङ्पूञोः सामान्येन ग्रहणम् । लूञ् छेदने । यथासंख्यमुपसर्ग-
संबन्धः । निरभिपूर्वयोः पूल्वोर्धात्वोर्घञ् प्रत्ययो भवति । निष्पावः । अभि-
लावः । निरभ्योरिति किम् । पवः । लवः ॥

उन्न्योर्ग्रः ॥ २९ ॥

गृ शब्दे, गॄ निगरणे, द्वयोरपि ग्रहणम् । उन्न्योरुपपदयोः गृ इत्येतस्मा-

द्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति। उद्गारः समुद्रस्य। निगारो देवदत्तस्य। उद्न्योरिति किम्। गरः॥

कॄ धान्ये॥ ३०॥

उद्न्योरिति वर्त्तते। कॄ इत्येतस्माद्धातोरुद्न्योरुपपदयोर्घञ् प्रत्ययो भवति, धान्यविषयश्चेद्धात्वर्थो भवति। विक्षेपार्थस्य किरतेर्ग्रहणं न हिंसार्थस्य, अनभिधानात्। उत्कारो धान्यस्य। निकारो धान्यस्य। धान्यइति किम्। भैक्ष्योत्करः। पुष्पनिकरः॥

यज्ञे समि स्तुवः॥ ३१॥

यज्ञविषये प्रयोगे संपूर्वात्स्तौतेर्घञ् प्रत्ययो भवति। संस्तावश्छन्दोगानाम्। समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः स देशः संस्ताव इत्युच्यते। यज्ञइति किम्। संस्तवश्छात्रयोः॥

प्रे स्त्रोऽयज्ञे॥ ३२॥

स्तृञ् आच्छादने। अस्माद्धातोः प्रशब्दे उपपदे घञ् प्रत्ययो भवति न चेद्यज्ञविषयः प्रयोगो भवति। शङ्खप्रस्तारः *॥

प्रथने वावशब्दे॥ ३३॥

स्तृञ् आच्छादने। अस्माद्धातोर्विशब्दउपपदे घञ् प्रत्ययो भवति प्रथने गम्यमाने, तच्चेत्प्रथनं शब्दविषयं न भवति। प्रथनं विस्तीर्णता। पटस्य विस्तारः। प्रथनइति किम्। तृणविस्तरः। अशब्दइति किम्। विस्तरो वचसाम्॥

छन्दोनाम्नि च॥ ३४॥

वौ स्त्र इति वर्त्तते। विपूर्वात्स्तृणातेश्छन्दोनाम्नि घञ् प्रत्ययो भवति। वृत्तमत्र छन्दो गृह्यते यस्य गायत्र्यादयो विशेषाः। न मन्त्रब्राह्मणं, नामग्रहणात्। विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहतीछन्दः। विष्टारपङ्क्तिशब्दोऽत्र छन्दोनाम, न घञन्तं शब्दरूपं, तत्र त्ववयवत्वेन तद्वर्त्तते। छन्दोनाम्नीत्यधिकरणसप्तम्येषा॥

उदि ग्रहः॥ ३५॥

उदुपपदे ग्रहेर्द्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति। अपोपवादः। उद्ग्राहः॥ छन्दसि निपूर्वादपीष्यते स्रुगुद्यमननिपातनयोः॥ *॥ हकारस्य भकारः। उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन्॥

समि मुष्टौ॥ ३६॥

ग्रह इत्येव। सम्युपपदे ग्रहेर्द्धातोर्घञ् भवति मुष्टिविषयश्चेद्धात्वर्थो

---

* नयिप्रस्... इत्यप्युदाहरणं बहुषु पुस्तकेषूपलभ्यते।

भवति । मुष्टिरङ्गुलिसंनिवेशः । अहो मल्लस्य संग्राहः । अहो मुष्टिकस्य संग्राहः । दृढमुष्टिताख्यायते । मुष्टाविति किम् । संग्रहो धान्यस्य ॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ ३७ ॥

परिशब्दे निशब्दे चोपपदे यथासंख्यं निय इणश्च धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । अचोऽपवादः । द्यूताभ्रेषयोः । अत्रापि यथासंख्यमेव संबन्धः । द्यूतविषयश्चेन्नयतेरर्थः । अभ्रेषविषयश्चेदिणोऽर्थः । पदार्थानामनपचारो यथाप्राप्तकरणमभ्रेषः । द्यूते तावत् । परिणायेन शारान् हन्ति । समन्तान्नयनेन । अभ्रेषे । एषोऽत्र न्यायः । द्यूताभ्रेषयोरिति किम् । परिणयः । न्ययं गतः पापः ॥

परावनुपात्यय इणः ॥ ३८ ॥

परिशब्द उपपदे इणो धातोर्घञ्प्रत्ययो भवति । अनुपात्यये गम्यमाने । क्रमप्राप्तस्यानतिपातोऽनुपात्ययः परिपाटी । तव पर्यायः । मम पर्यायः । अनुपात्यय इति किम् । कालस्य पर्ययः । अतिपात इत्यर्थः ॥

व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ ३९ ॥

वि उप इत्येतयोरुपपदयोः शेतेर्धातोर्घञ् भवति । पर्याये गम्यमाने । तव विशायः । मम विशायः । तव राजोपशायः । तव राजानमुपशयितुं पर्याय इत्यर्थः । पर्याय इति किम् । विशयः । उपशयः ॥

हस्तादाने चेरस्तेये ॥ ४० ॥

हस्तादाने गम्यमाने चिनोतेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । न चेत्स्तेयं चौर्यं भवति । हस्तादानग्रहणेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य लक्ष्यते । पुष्पप्रचायः । फलप्रचायः । हस्तादान इति किम् । वृक्षशिखरे फलप्रचयं करोति । अस्तेय इति किम् । पुष्पप्रचयश्चौर्येण ॥ उच्चयस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ *

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ ४१ ॥

चेरित्येव । निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः । चीयतेऽसौ चितिः । पाण्यादिसमुदायः शरीरम् । राशीकरणमुपसमाधानम् । एतेष्वर्थेषु चिनोतेर्घञ् प्रत्ययो भवति, धातोरादेश्च ककार आदेशः । निवासे तावत् । चिखल्लिनिकायः † । चितौ । आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरे । अनित्यकायः । उपसमाधाने । महान्गोमयनिकायः । एतेष्विति किम् । चयः । इह कस्मान्न भवति महान्काष्ठनिचयः । बहुत्वमत्र विवक्षितं नोपसमाधानम् ॥

---

* क्वचित्पुस्तके इदं वार्तिकं न दृश्यते ।

† चिखल्लिनिकाय इति । चिखल्लिर्जनपदविशेषस्तत्संबन्धी ग्रामादिर्निवासदेश इत्यर्थः इति पदमञ्जर्याम् ।

संघे चानौत्तराधर्ये ॥ ४२ ॥

चेरित्येव । प्राणिनां समुदायः संघः । स च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां भवति । एकधर्मसमावेशेन, औत्तराधर्येण वा । तत्र औत्तराधर्यपर्युदासादितरो गृह्यते । संघे वाच्ये चिनोतेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति आदेश्च कः । भिक्षुकनिकायः । ब्राह्मणनिकायः । वैयाकरणनिकायः । अनौत्तराधर्ये इति किम् । सूकरनिचयः । प्राणिविषयत्वात्संघस्येह न भवति । ज्ञाताज्ञातसमुच्चयः । प्रमाणसमुच्चयः ॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ ४३ ॥

कर्म, क्रिया । व्यतिहारः, परस्परं करणम् । कर्मव्यतिहारे गम्यमाने धातोर्णच्प्रत्ययो भवति स्त्रीलिङ्गे वाच्ये । तच्च भावे । चकारो विशेषणार्थः णचः स्त्रियामञिति । व्यावक्रोशी । व्यावलेखी । व्यावहासी वर्त्तते । स्त्रियामिति किम् । व्यतिपाको वर्त्तते ॥ बाधकविषयेऽपि क्वचिदिष्यते ॥ व्यावचोरी । व्यावचर्ची । इह न भवति । व्यतीक्षा । व्यतीहा वर्त्तते । व्यात्युक्षी भवति । तदेतद्वैचित्र्यं कथं लभ्यते । कृत्यल्युटो बहुलमिति भवति ॥

अभिविधौ भावइनुण् ॥ ४४ ॥

अभिविधिरभिव्याप्तिः क्रियागुणाभ्यां कार्त्स्न्येन संबन्धः । अभिविधौ गम्यमाने धातोर्भावइनुण् भवति । सांकूटिनम् । सांराविणम् । सान्द्राविणं वर्त्तते । अभिविधाविति किम् । संकोटः । संरावः । संद्रावः * । भावइति वर्त्तमाने पुनर्भावग्रहणं वासरूपनिरासार्थं, तेन घञ् न भवति । ल्युटा तु समावेश इष्यते । संकूटनं वर्त्तते । तत्कथं, कृत्यल्युटो बहुलमिति ॥

आक्रोशे ऽवन्योर्ग्रहः ॥ ४५ ॥

दृष्टानुवृत्तिसामर्थ्याद् घञनुवर्त्तते, नानन्तर इनुण् । अव नि इत्येतयोरुपपदयोर्ग्रहेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति आक्रोशे गम्यमाने । आक्रोशः शपनम् । अवग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । निग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । आक्रोशइति किम् । अवग्रहः पदस्य । निग्रहश्चोरस्य ॥

प्रे लिप्सायाम् ॥ ४६ ॥

ग्रहइत्येव । प्रशब्दउपपदे ग्रहेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति लिप्सायां गम्यमानायाम् । पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः पिण्डार्थी † । स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी । लिप्सायामिति किम् । प्रग्रहो देवदत्तस्य ॥

---

* सन्द्राव इति प्रत्युदाहरणं त्वयुक्तम्, समि युद्रुदुव इत्यस्यानवकाशत्वादिति पदमञ्जरी ।

† पिण्डपातार्थीति पा० ।

परौ यज्ञे ॥ ४७ ॥

परिशब्दउपपदे ग्रहेर्घञ् प्रत्ययो भवति । यज्ञविषयश्चेत्प्रत्ययान्ताभिधेयः स्यात् । उत्तरपरिग्राहः । अधरपरिग्राहः । यज्ञइति किम् । परिग्रहो देवदत्तस्य ॥

नौ वृ धान्ये ॥ ४८ ॥

वृ इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम् । निशब्दउपपदे वृ इत्येतस्माद्धातोर्धान्यविशेषे ऽभिधेये घञ् प्रत्ययो भवति । अपोपवादः । नीवारा नाम व्रीहयः । धान्यइति किम् । निवरा कन्या ॥

उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ ४९ ॥

उच्छब्दउपपदे श्रयत्यादिभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । अजपोरपवादः । उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः । कथं पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । वक्ष्यमाणं विभाषाग्रहणमिह सिंहावलोकितन्यायेन संबध्यते ॥

विभाषा ऽऽङि रुप्लुवोः ॥ ५० ॥

आङि उपपदे रौतेः प्लवतेश्च विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति । आरावः । आरवः । आप्लावः । आप्लवः ॥

अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ ५१ ॥

विभाषेति वर्त्तते। अवउपपदे ग्रहेर्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति विभाषा वर्षप्रतिबन्धे ऽभिधेये । प्राप्तकालस्य वर्षस्य कुतश्चिन्निमित्तादभावो वर्षप्रतिबन्धः । अवग्राहो देवस्य । अवग्रहो देवस्य। वर्षप्रतिबन्धइति किम् । अवग्रहः पदस्य ॥

प्रे वणिजाम् ॥ ५२ ॥

ग्रह इति वर्त्तते । विभाषेत्येव । प्रशब्दउपपदे ग्रहेर्धातोर्विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति । प्रत्ययान्तवाच्यश्चेद्वणिजां संबन्धी भवति । वणिक्संबन्धेन च तुलासूत्रं लक्ष्यते, न तु वणिजस्तन्त्रम् । तुला प्रगृह्यते येन सूत्रेण स शब्दार्थः । तुलाप्रग्राहेण चरति । तुलाप्रग्रहेण चरति । वणिगन्यो वा । वणिजामिति किम् । प्रग्रहो देवदत्तस्य ॥

रश्मौ च ॥ ५३ ॥

ग्रहो विभाषा प्रइति वर्त्तते । प्रशब्दउपपदे ग्रहेर्धातोर्विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति । रश्मिश्चेत् प्रत्ययान्तेनाभिधीयते । रथादियुक्तानामश्वादीनां संयमनार्था रज्जू रश्मिरिह गृह्यते । प्रग्रहः । प्रग्राहः ॥

वृणोतेराच्छादने ॥ ५४ ॥

विभाषा प्रइति वर्त्तते । प्रशब्दउपपदे वृणोतेर्धातोर्विभाषा घञ् प्रत्यये

भवति । प्रत्ययान्तेन चेदाच्छादनविशेष उच्यते । प्रावारः । प्रवरः । आच्छादनइति किम् । प्रवरा गौः ॥

परौ भुवो ऽवज्ञाने ॥ ५५ ॥

विभाषेत्येव । परिशब्दउपपदे भवतेर्धातोर्विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति अवज्ञाने गम्यमाने । अवज्ञानमसत्कारः । परिभावः । परिभवः । अवज्ञानइति किम् । सर्वतो भवनं परिभवः ॥

एरच् ॥ ५६ ॥

भावे अकर्त्तरि च कारके इति प्रकृतमनुवर्त्तते यावत्कृत्यल्युटो बहुलमिति । इवर्णान्ताद्धातोर्भावे अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामच् प्रत्ययो भवति । घञो ऽपवादः । चकारो विशेषणार्थः । अन्तः थाथघञ्क्ताजबित्रकाणामिति । चयः । अयः । जयः । क्षयः ॥ अज्विधौ भयादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम् । भयम् । वर्षम् ॥ जवसवौ छन्दसिवक्तव्यौ ॥ * ॥ ऊर्वोरस्तु मे जवः । पञ्चौदनसवः * ॥

ॠदोरप् ॥ ५७ ॥

ॠकारान्तेभ्य उवर्णान्तेभ्यश्च अप् प्रत्ययो भवति । घञोपवादः । पित्करणं स्वरार्थम् । करः । गरः । शरः । उवर्णान्तेभ्यः । यवः । लवः । पवः । दकारो मुखसुखार्थः । मा भूत्तादपि परस्तपरः ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ ५८ ॥

ग्रहादिभ्यो धातुभ्यो ऽप् प्रत्ययो भवति । घञोपवादः । निश्चिनोतेस्त्वचोपवादः । ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः । निश्चिग्रहणं स्वरार्थम् ॥ वशिरण्योरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वशः । रणः ॥ घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् ॥ * ॥ प्रतिष्ठन्तेस्मिन्निति प्रस्थः पर्वतस्य । प्रस्नान्त्यस्मिन्निति प्रस्नः । प्रपिबन्त्यस्यामिति प्रपा । आविध्यन्ति तेनेत्याविधः । विहन्यन्ते ऽस्मिन्निति विघ्नः । आयुध्यतेनेनेत्यायुधम् ॥

उपसर्गे ऽदः ॥ ५९ ॥

अबित्येव । उपसर्गउपपदे ऽदेर्धातोरप् प्रत्ययो भवति । विघसः । प्रघसः । उपसर्गइति किम् । घासः ॥

नौ ण च ॥ ६० ॥

निशब्दउपपदे अदेर्धातोर्णः प्रत्ययो भवति । चकारादप् च । न्यादः । निघसः ॥

---

* नि. इ. दनरुद दृति पा० ।

व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ ६१ ॥

व्यध जप इत्येतयोरनुपसर्गयोरप् प्रत्ययो भवति । घञोऽपवादः । व्यधः । जपः । अनुपसर्गइति किम् । आव्याधः । उपजापः ॥

स्वनहसोर्वा ॥ ६२ ॥

अनुपसर्गइत्येव । स्वनहसोरनुपसर्गयोर्वा अप् प्रत्ययो भवति । स्वनः । स्वानः । हसः । हासः । अनुपसर्गइति किम् । प्रस्वानः । प्रहासः ॥

यमः समुपनिविषु च ॥ ६३ ॥

अनुपसर्गे वा इति वर्त्तते । सम् उप नि वि इत्येतेषूपपदेषु अनुपसर्गेऽपि यमेर्वा अप् प्रत्ययो भवति । घञोऽपवादः । संयमः । उपयामः । संयमः । उपयमः । नियमः । नियामः । वियमः । वियामः । अनुपसर्गात्खल्वपि । यमः । यामः ॥

नौ गदनदपठस्वनः ॥ ६४ ॥

अबित्येव । निशब्दउपपदे गद नद पठ स्वन इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वा अप् प्रत्ययो भवति । घञोऽपवादः । निगदः । निगादः । निनदः । निनादः । निपठः । निपाठः । निस्वनः । निस्वानः ॥

क्वणो वीणायां च ॥ ६५ ॥

नौ वा ऽनुपसर्गइति वर्त्तते । क्वणतेर्धातोर्निपूर्वादनुपसर्गाच्च वीणायां वा अप् प्रत्ययो भवति । घञोऽपवादः । सोपसर्गार्थं वीणाया ग्रहणम् । निक्वणः । निक्वाणः । अनुपसर्गात् । क्वणः । क्वाणः । वीणायां खल्वपि । कल्याणप्रक्वणा वीणा । एतेष्विति किम् । अतिक्वाणो वर्त्तते ॥

नित्यं पणः परिमाणे ॥ ६६ ॥

पण व्यवहारे स्तुतौ च । अस्माद्धातोर्नित्यमप् प्रत्ययो भवति परिमाणे गम्यमाने । नित्यग्रहणं विकल्पनिवृत्त्यर्थम् । मूलकपणः । शाकपणः । संव्यवहाराय मूलकादीनां यः परिमितो मुष्टिर्बध्यते तस्येदमभिधानम् । परिमाणइति किम् । पाणः ॥

मदो ऽनुपसर्गे ॥ ६७ ॥

मदेर्धातोरनुपसर्गादप् प्रत्ययो भवति । घञोऽपवादः । विद्यामदः । धनमदः । कुलमदः । अनुपसर्गइति किम् । उन्मादः । प्रमादः ॥

प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ ६८ ॥

प्रमद संमद इत्येतौ शब्दौ निपात्येते हर्षेऽभिधेये । कन्यानां प्रमदः । कोकिलानां संमदः । हर्षइति किम् । प्रमादः । संमादः । प्रसंख्यामिति नोक्तं, निपातनं रूढ्यर्थम् ॥

समुदोरजः पशुषु ॥ ६९ ॥

समुदोरुपपदयोरजतेर्धातोः पशुविषये धात्वर्थे अप् प्रत्ययो भवति। घञो ऽपवादः। अज गतिक्षेपणयोरिति पठ्यते। स संपूर्वः समुदाये वर्त्तते, उत्पूर्वश्च प्रेरणे। समजः पशूनां, समुदाय इत्यर्थः। उदजः पशूनां, प्रेरणमित्यर्थः। पशुष्विति किम्। समाजो ब्राह्मणानाम्। उदाजः क्षत्रियाणाम्॥

अक्षेषु ग्लहः ॥ ७० ॥

ग्लह इति निपात्यते अक्षविषयश्चेद्धात्वर्थो भवति। ग्रहेरप् सिद्ध एव लत्वार्थं निपातनम्। अक्षस्य ग्लहः। अक्षेष्विति किम्। ग्रहः पादस्य। अन्ये ग्लहिं प्रकृत्यन्तरमाहुः ते घञं प्रत्युदाहरन्ति। ग्लाहः॥

प्रजने सर्त्तेः ॥ ७१ ॥

सर्त्तेर्धातोः प्रजने विषये अप् प्रत्ययो भवति, घञोपवादः। प्रजनं, प्रथमं गर्भग्रहणम्। गवामुपसरः। पशूनामुपसरः। स्त्रीगवीषु पुंगवानां गर्भाधानाय प्रथममुपसरणमुच्यते॥

ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ ७२ ॥

नि अभि उप वि इत्येतेषु उपपदेषु ह्वयतेर्धातोः संप्रसारणम् अप् प्रत्ययो भवति। घञोपवादः। निहवः। अभिहवः। उपहवः। विहवः। एतेष्विति किम्। प्रह्वायः॥

आङि युद्धे ॥ ७३ ॥

आङि उपपदे ह्वयतेर्धातोः संप्रसारणमप् प्रत्ययो भवति युद्धे ऽभिधेये। आहूयन्ते ऽस्मिन्नित्याहवः। युद्धइति किम्। आह्वायः॥

निपानमाहावः ॥ ७४ ॥

आङ्पूर्वस्य ह्वयतेर्धातोः संप्रसारणमप् प्रत्ययो वृद्धिश्च निपात्यते, निपानं चेदभिधेयं भवति। निपिबन्त्यस्मिन्निति निपानमुदकाधार उच्यते। आहावः। पशूनां कूपोपसरेषु य उदकाधारस्तत्र हि पानाय पशव आहूयन्ते। निपानमिति किम्। आह्वायः॥

भावे ऽनुपसर्गस्य ॥ ७५ ॥

अनुपसर्गस्य ह्वयतेः संप्रसारणमप् प्रत्ययो भवति भावे ऽभिधेये। हवः। हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्। अनुपसर्गस्येति किम्। आह्वायः। भावग्रहणमकर्त्तरि च कारके संज्ञायामित्यस्य निरासार्थम्॥

हनश्च वधः ॥ ७६ ॥

भावेनुपसर्गस्येति वर्त्तते। हन्तेर्द्धातोरनुपसर्गे भावे अप् प्रत्ययो भवति, तत्संनियोगेन च वधादेशः, स चान्तोदात्तः। तत्रोदात्तनिवृत्तिस्वरेणापि उदात्तत्वं भवति। वधश्चोराणाम्। वधो दस्यूनाम्। भावइत्येव। घातः। अनुपसर्गस्येत्येव। प्रघातो, विघातः। चकारो भिन्नक्रमत्वाच्चादेशेन संबध्यते। किं तर्हि प्रकृतेन प्रत्ययेन, अप् च, यश्चापरः प्राप्नोति। तेन घञपि भवति। घातो वर्त्तते॥

मूर्तौ घनः ॥ ७७ ॥

हन इत्येव, मूर्त्तिः, काठिन्यं, मूर्तावभिधेयायां हन्तेरप् प्रत्ययो भवति, घनश्चादेशः। अभ्रघनः। दधिघनः। कथं घनं दधीति। धर्मशब्देन धर्मी भण्यते॥

अन्तर्घनो देशे ॥ ७८ ॥

अन्तःपूर्वाद्धन्तेरप् प्रत्ययो भवति घनादेशश्च भवति देशे ऽभिधेये। अन्तर्घनः, संज्ञीभूतो वाहीकेषु देशविशेष उच्यते। अन्ये णकारं पठन्ति। अन्तर्घणो देश इति, तदपि ग्राह्यमेव। देशइति किम्। अन्तर्घातोन्यः॥

अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥ ७९ ॥

प्रपूर्वस्य हन्तेः प्रघण प्रघाण इत्येतौ शब्दौ निपात्येते अगारैकदेशे वाच्ये। प्रघणः। प्रघाणः। द्वारप्रकोष्ठो बाह्य उच्यते। अगारैकदेशइति किम्। प्रघातो ऽन्यः॥

उद्घनोत्याधानम् ॥ ८० ॥

उत्पूर्वस्य हन्तेरुद्घन इति निपात्यते ऽत्याधानं चेद्भवति। उद्घनः। यस्मिन्काष्ठे स्थापयित्वा अन्यानि काष्ठानि तक्ष्यन्ते तदभिधीयते। उद्घातोन्यः॥

अपघनोङ्गम् ॥ ८१ ॥

अपपूर्वस्य हन्तेरपघन इति निपात्यते, अङ्गं चेत्तद्भवति। अपघनः, अङ्गम्। अवयव, एकदेशो न सर्वः किं तर्हि पाणिः पादश्चाभिधीयते। अपघातो ऽन्यः॥

करणे ऽयोविद्रुषु ॥ ८२ ॥

हन इति वर्त्तते। अयस् वि द्रु इत्येतेषूपपदेषु हन्तेर्द्धातोः करणे कारके ऽप् प्रत्ययो भवति, घनादेशश्च। अयो हन्यतेनेनेत्ययोघनः। विघनः। द्रुघनः। द्रुघण इति केचिदुदाहरन्ति। कथं णत्वम्। अरीहणादिषु पाठात्। पूर्वपदात्संज्ञायामग इति वा॥

स्तम्बे क च ॥ ८३ ॥

करणे हन इति वर्त्तते। स्तम्बशब्दउपपदे करणे कारके हन्तेः कः प्रत्ययो भवति। चकारादप्। तत्र घनादेशः। स्तम्बघनः॥ स्त्रियां स्तम्बघ्ना स्तम्बघना इति इष्यते॥ करणइत्येव। स्तम्बघातः॥

परौ घः ॥ ८४ ॥

करणे हन इत्येव । परिशब्दउपपदे हन्तेर्धातोरप् प्रत्ययो भवति । करणे कारके घशब्दश्चादेशः । परिहन्यतेऽनेनेति परिघः । पलिघः ॥

उपघ्न आश्रये ॥ ८५ ॥

उपपूर्वस्य हन्तेरप् प्रत्यय उपधालोपश्च निपात्यते । आश्रयशब्दः सामीप्यं प्रत्यासत्तिं लक्षयति । पर्वतोपघ्नः । ग्रामोपघ्नः । आश्रयइति किम् । पर्वतोपघात एवान्यः ॥

संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ ८६ ॥

समुदोरुपपदयोर्हन्तेर्धातोरप् प्रत्ययो भवति टिलोपो घत्वं च निपात्यते, यथासंख्यं गणेऽभिधेये प्रशंसायां गम्यमानायाम् । संघः पशूनाम् । उद्घो मनुष्यः । गणप्रशंसयोरिति किम् । संघातः ॥

निघो निमितम् ॥ ८७ ॥

निघ इति निपूर्वाद्धन्तेरप् प्रत्ययष्टिलोपो घत्वं च निपात्यते, निमितं चेदभिधेयं भवति । समन्तान्मितं निमितम् । समारोहपरिणाहम् । निघा वृक्षाः । निघाः शालयः । निमितमिति किम् । निघातः ॥

ड्वितः क्त्रिः ॥ ८८ ॥

भावे ऽकर्त्तरि च कारकइति वर्त्तते । डु इद्यस्य तस्माद् ड्वितो धातोः क्त्रिः प्रत्ययो भवति । क्त्रेर्मम्नित्यमिति वचनात् केवलो न प्रयुज्यते । डुपचष् पाके । पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् । डुकृञ् । कृत्रिमम् ॥

ट्वितो ऽथुच् ॥ ८९ ॥

टु इद्यस्य तस्मात् ट्वितो धातोरथुच् प्रत्ययो भवति भावादौ । टुवेपृ । वेपथुः । टुओश्वि । श्वयथुः । टुदु । दवथुः ॥ *

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥ ९० ॥

भावे ऽकर्त्तरि च कारकइति वर्त्तते । यजादिभ्यो धातुभ्यो नङ् प्रत्ययो भवति । ङकारो गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः । यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । रक्ष्णः । प्रच्छेरसंप्रसारणं ज्ञापकात् प्रश्ने चासन्नकालइति ॥

स्वपो नन् ॥ ९१ ॥

स्वपेर्धातोर्नन् प्रत्ययो भवति । नकारः स्वरार्थः । स्वप्नः ॥

उपसर्गे घोः किः ॥ ९२ ॥

---

* टुदु । दवथुः । इदं कुत्र चिदधिकम् ।

भावे ऽकर्त्तरि च कारकइति वर्त्तते। उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति। कित्करणमातो लोपार्थम्। प्रदिः। प्रधिः। अन्तर्द्धिः॥

कर्मण्यधिकरणे च ॥ ९३ ॥

घोरित्येव। कर्मण्युपपदे घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति, अधिकरणे कारके। जलं धीयते ऽस्मिन्निति जलधिः। शरधिः। अधिकरणग्रहणमर्थान्तरनिरासार्थम्। चकारः प्रत्ययानुकर्षणार्थः॥

स्त्रियां क्तिन् ॥ ९४ ॥

भावे ऽकर्त्तरि च कारकइति वर्त्तते। स्त्रीलिङ्गे भावादौ धातोः क्तिन्प्रत्ययो भवति। घञजपामपवादः। कृतिः। चितिः। मतिः॥ क्तिन्नाबादिभ्यश्च वक्तव्यः॥ * ॥ आबादयः प्रयोगतोनुसर्त्तव्याः। आप्तिः। राद्धिः। दीप्तिः। स्वस्तिः। ध्वस्तिः। लब्धिः॥ श्रुयजिस्तुभ्यः करणे॥ * ॥ श्रूयते ऽनयेति श्रुतिः। इष्टिः। स्तुतिः॥ ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः॥ * ॥ ग्लानिः। म्लानिः। ज्यानिः। हानिः॥ ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भवति इति वक्तव्यम्॥ * ॥ कीर्णिः। गीर्णिः। जीर्णिः। शीर्णिः। लूनिः। यूनिः॥ संपदादिभ्यः क्विप्॥ * ॥ संपत्। विपत्। प्रतिपत्॥ क्तिन्नपीष्यते॥ संपत्तिः। विपत्तिः॥

स्थागापापचो भावे ॥ ९५ ॥

स्त्रियामिति वर्तते। स्थादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् प्रत्ययो भवति। अङोपवादस्य बाधकः। प्रस्थितिः। उद्गीतिः। संगीतिः। प्रपीतिः। संपीतिः। पक्तिः। भावग्रहणमर्थान्तरनिरासार्थम्। कथमवस्था संस्थेति। व्यवस्था यामसंज्ञायामिति ज्ञापकाद् नात्यन्ताय बाधा भवतीति॥

मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥ ९६ ॥

भावे स्त्रियामिति वर्तते। मन्त्रे विषये वृषादिभ्यो धातुभ्यः क्तिन् प्रत्ययो भवति, उदात्तः। प्रकृतिप्रत्यययोर्विभक्तिविपरिणामेन संबन्धः। कस्मादेवं कृतम्। वैचित्र्यार्थम्। वृष्टिः। इष्टिः। पक्तिः। मतिः। वित्तिः। भूतिः। वीतिः। रातिः। सर्वत्र सर्वधातुभ्यः सामान्येन विहित एव क्तिन्। उदात्तार्थंवचनम्। इषेस्तु इच्छेति निपातनं वक्ष्यति। ततः क्तिन्नपि विधीयते मन्त्रादन्यत्रादिरुदात्तः॥

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥ ९७ ॥

मन्त्रइति नानुवर्त्तते। ऊत्यादयः शब्दा निपात्यन्ते। उदात्त इति वर्त्तते। अवतेर्ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्चेति ऊठ्। ऊतिः। स्वरार्थं वचनम्। यौतेर्जवतेश्च यूतिः। जूतिः। दीर्घत्वं च निपात्यते। सातिः। इत्वा

भावो निपात्यते। सनोतेर्वा जनसनखनामित्यात्वे कृते स्वरार्थं निपातनम्। हन्तेर्हिनोतेर्वा हेतिः। कीर्त्तयतेः कीर्त्तिः ॥

व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥ ९८ ॥

उदात्त इत्येव। व्रजयजोर्धात्वोः स्त्रीलिङ्गे भावे क्यप् प्रत्ययो भवति, उदात्तः। क्तिनोपवादः। व्रज्या। इज्या। पित्करणमुत्तरत्र तुगर्थम् ॥

संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥ ९९ ॥

भावइति न स्वर्यते। पूर्व एवात्रार्थाधिकारः। समजादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां क्यप् प्रत्ययो भवति उदात्तः संज्ञायां विषये। समजन्त्यस्यामिति समज्या। निषद्या। निपत्या। मन्या। विद्या। सुत्या। शय्या। भृत्या। इत्या। कथं तदुक्तम् ॥

'स्त्रियां भावाधिकारोस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति' इति।

भावाधिकारो, भावव्यापारो, वाच्यत्वेन विवक्षितः, न तु शास्त्रीयोधिकारः ॥

कृञः श च ॥ १०० ॥

करोतेर्धातोः स्त्रियां शः प्रत्ययो भवति। चकारात् क्यप् च। योगविभागो ऽत्र कर्त्तव्यः। क्तिन्नपि यथा स्यात्। क्रिया। कृत्या। कृतिः ॥

इच्छा ॥ १०१ ॥

इषेर्धातोः शः प्रत्ययो यगभावश्च निपात्यते। इच्छा ॥ परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्यानामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ परिचर्या। परिसर्या। मृगया। अटाट्या ॥ जागर्तेरकारो वा ॥ * ॥ जागरा। जागर्या ॥

अ प्रत्ययात् ॥ १०२ ॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यस्स्त्रियामकारः प्रत्ययो भवति। क्तिनोपवादः। चिकीर्षा। जिहीर्षा। पुत्रीया। पुत्रकाम्या। लोलूया। कण्डूया ॥

गुरोश्च हलः ॥ १०३ ॥

हलन्तो यो धातुर्गुरुमान् ततः स्त्रियामकारः प्रत्ययो भवति। क्तिनोपवादः। कुण्डा। हुण्डा। ईहा। ऊहा। गुरोरिति किम्। भक्तिः। हल इति किम्। नीतिः ॥

षिद्भिदादिभ्यो ऽङ् ॥ १०४ ॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति। गणपठितेषु भिदादिषु निष्कृष्य प्रकृत्ययो गृह्यन्ते। जृष्। जरा। त्रपूष्। त्रपा। भिदादिभ्यः

खल्वपि । भिदा । छिदा । विदा । चिपा ॥ गुहा, गिर्योषध्योः ॥ श्रद्धा । मेधा । गोधा । आरा । हारा । कारा । चिया । भारा । धारा । लेखा । रेखा । चूडा । पीडा । वपा । वसा । सृजा ॥ क्रपेः संप्रसारणं च ॥ कृपा भिदा, विदारणे ॥ भित्तिरन्या ॥ छिदा, द्वैधीकरणे ॥ छित्तिरन्या ॥ आरा, शस्त्र्याम् । आर्त्तिरन्या ॥ धारा प्रपाते ॥ धृतिरन्या ॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ १०५ ॥

चिति स्मृत्यां, पूज पूजायां, कथ वाक्यप्रबन्धे, कुबि आच्छादने, चर्च अध्ययने, चुरादिः । एभ्यो धातुभ्यो युचि प्राप्ते स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा । 'चकाराद्युजपि भवति । चिन्तना' * ॥

आतश्चोपसर्गे ॥ १०६ ॥

आकारान्तेभ्य उपसर्गे उपपदे स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । क्तिनोपवादः । प्रदा । उपदा । प्रधा । उपधा ॥ श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः ॥ श्रद्धा । अन्तर्द्धा ॥

ण्यासश्रन्थो युच् ॥ १०७ ॥

ण्यन्तेभ्यो धातुभ्य आस श्रन्थ इत्येताभ्यां च स्त्रियां युच्प्रत्ययो भवति । अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना । कथमास्या । स्वहलोण्यंद्भविष्यति । वासरूपप्रतिषेधश्च स्त्रीप्रकरणविषयस्यैवोत्सर्गापवादस्य । श्रन्थिः क्र्यादिर्गृह्यते श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोरिति । न चुरादिः श्रन्थ ग्रन्थ संदर्भे इति । ण्यन्तत्वेनैव सिद्धत्वात् ॥ घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ घट्टना । वन्दना । वेदना । घट्टिस्तौदादिकस्य ग्रहणं घट्ट चलनइति । न चौरादिकस्य घट्ट संवरणइत्यस्य ग्रहणं, तस्य णेरित्येव सिद्धत्वात् ॥ इषेरनिच्छार्थस्य युज्वक्तव्यः ॥ * ॥ अध्येषणा । अन्वेषणा ॥ परेर्वा ॥ * ॥ पर्येषणा । परीष्टिः ॥

रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम् ॥ १०८ ॥

रोगाख्यायां गम्यमानायां धातोर्बहुलं ण्वुल् प्रत्ययो भवति । क्तिचादीनामपवादः । आख्याग्रहणं रोगस्य चेत्प्रत्ययान्तेन संज्ञा भवति । बहुलग्रहणं व्यभिचारार्थम् । प्रच्छर्द्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । न च भवति । सिरोर्त्तिः ॥ धात्वर्थे निर्द्देशे ण्वुल्वक्तव्यः ॥ * ॥ आशिका । शायिका वर्त्तते ॥ इक्श्तिपौ धातुनिर्द्देशे इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भिदिः । छिदिः । पचतिः । पठतिः ॥ वर्णात्कारः ॥ * ॥ निर्द्देशइति प्रकृतम् । अकारः । इकार ॥ रादिफः ॥ * ॥ रेफः ॥ मत्वर्थाच्छः ॥ * ॥ अकारलोपश्च । मत्वर्थीयः ॥ इञजादिभ्यः ॥ * ॥ आजिः । आतिः । आदिः ॥ इक् कृष्यादिभ्यः ॥ * ॥ कृषिः । किरिः ॥

---

* इदमत्राधिकं पदमज्जयसंमतं च ।

संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥

संज्ञायां विषये धातोर्ण्वुल् प्रत्ययो भवति। उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वरणपुष्पप्रचायिका *। अभ्यूषखादिका। आचोषखादिका। शालभञ्जिका। तालभञ्जिका॥

विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥ ११० ॥

पूर्वं परिप्रश्नः, पश्चादाख्यानम्। सूत्रे ऽल्पाच्तरस्य पूर्वनिपातः। परिप्रश्ने आख्याने च गम्यमाने धातोरिञ् प्रत्ययो भवति। चकाराद् ण्वुलपि। विभाषाग्रहणात्परोपि यः प्राप्नोति सोपि भवति। कां त्वं कारिमकार्षीः। कां कारिकामकार्षीः। कां क्रियामकार्षीः। कां कृत्यामकार्षीः। कां कृतिमकार्षीः। सर्वां कारिमकार्षम्। सर्वां कारिकामकार्षम्। सर्वां क्रियामकार्षम्। सर्वां कृत्यामकार्षम्। सर्वां कृतिमकार्षम्। कां गणिमजीगणः। कां गणनामजीगणः। सर्वां गणिमजीगणम्। सर्वां गणिकाम्। सर्वां गणनाम्। एवं कां याजिम्। कां याजिकाम्। कां याचिम्। कां याचिकाम्। कां पचाम्। कां पाठिम्। कां पाठिकाम्। इति द्रष्टव्यम्। आख्यानपरिप्रश्नयोरिति किम्। कृतिः। हृतिः॥

पर्यायार्हणोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ १११ ॥

पर्यायः परिपाटीक्रमः। अर्हणमर्हः, तद्योग्यता। ऋणं तत् यत्परस्य † धार्यते। उत्पत्तिर्जन्म। एतेष्वर्थेषु धातोर्ण्वुच् प्रत्ययो भवति। क्तिन्नादीनामपवादः। पर्याये तावत्। भवतः शायिका। भवतो ऽग्रग्रासिका। अर्हे। अर्हति भवानिक्षुभक्षिकाम् ‡। ऋणे। इक्षुभक्षिकां मे धारयसि। ओदनभोजिकाम्। पयःपायिकाम्। उत्पत्तौ। इक्षुभक्षिका मे उदपादि। ओदन भोजिका। पयःपायिका। विभाषेत्येव। चिकीर्षोत्पद्यते। ण्वुलि प्रकृते प्रत्ययान्तरकरणं स्वरार्थम्॥

आक्रोशे नञ्यनिः ॥ ११२ ॥

विभाषेति निवृत्तम्। आक्रोशः शपनम्। आक्रोशे गम्यमाने नञ्युपपदे धातोरनिः प्रत्ययो भवति। क्तिन्नादीनामपवादः। अकरणिस्ते वृषल भूयात्। आक्रोशइति किम्। अकृतिस्तस्य कटस्य। नञीति किम्। मृतिस्ते वृषल भूयात्॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ११३ ॥

भावे ऽकर्त्तरि च कारकइति निवृत्तम्। कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया ल्युट् च

---

* प्रचायिकेति पा०।

† परस्मै इति पाठः। तत्र धारेरुत्तमर्ण इति संप्रदानसंज्ञा।

‡ पयःपायिकामिति पुस्तकान्तरे ऽधिकम्।

बहुलमर्थेषु भवन्ति। यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति। भावकर्मणोः कृत्या विहिताः कारकान्तरेऽपि भवन्ति। स्नानीयं चूर्णम्। दानीयो ब्राह्मणः। करणाधिकरणयोर्भावे च ल्युट्। अन्यत्रापि भवति। अपसेचनमवस्रावणम्। राजभोजनाः शालयः। राजाच्छादनानि वासांसि। प्रस्कन्दनम्। प्रपतनम्। बहुलग्रहणादन्येऽपि कृतो यथाप्राप्तमभिधेयं व्यभिचरन्ति। पादाभ्यां ह्रियते, पादहारकः। गले चोप्यते, गलेचोपकः॥

नपुंसके भावे क्तः॥ ११४॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातोः क्तः प्रत्ययो भवति। हसितम्। सहितम्। जल्पितम् *॥

ल्युट् च॥ ११५॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातोर्ल्युट् प्रत्ययो भवति। हसनं छात्रस्य। शोभनम्। जल्पनम्। शयनम्। आसनम्। योगविभाग उत्तरार्थः॥

कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम्॥ ११६॥

येन कर्मणा संस्पृश्यमानस्य कर्त्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन्कर्मण्युपपदे धातोर्नपुंसकलिङ्गे भावे ल्युट् प्रत्ययो भवति। पूर्वेणैव सिद्धे प्रत्यये नित्यसमासार्थं वचनम्। उपपदसमासादिर्नित्यः समासः। पयःपानं सुखम्। ओदनभोजनं सुखम्। कर्मणीति किम्। तूलिकाया उत्थानं सुखम्। संस्पर्शादिति किम्। अग्निकुण्डस्योपासनं सुखम्। कर्त्तुरिति किम्। गुरोः स्नापनं सुखम्। स्नापयतेर्न गुरुः कर्त्ता, किं तर्हि कर्म। शरीरग्रहणं किम्। पुत्रस्य परिष्वञ्जनं सुखम्। सुखं मानसी प्रीतिः। सुखमिति किम्। कण्टकानां मर्दनं दुःखम्। सर्वत्रासमासः प्रत्युदाह्रियते॥

करणाधिकरणयोश्च॥ ११७॥

करणे ऽधिकरणे च कारके धातोर्ल्युट् प्रत्ययो भवति। इध्मप्रव्रश्चनः। पलाशशातनः। अधिकरणे। गोदोहनी। सक्तुधानी॥

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण॥ ११८॥

करणाधिकरणयोरित्येव। पुंलिङ्गयोः करणाधिकरणयोरभिधेययोर्धातोर्घः प्रत्ययो भवति समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते। प्रायग्रहणमकार्त्स्न्यार्थम्। दन्तच्छदः। उरश्छदः। घटः। अधिकरणे खल्वपि। एत्य तस्मिन्कुर्वन्तीत्याकरः। आलयः। पुंसीति किम्। प्रसाधनम्। संज्ञायामिति किम्। प्रहरणो दण्डः। घकारश्छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य इति विशेषणार्थः॥

---

* शयितम्। भुक्तम्। आसितम्। इति क्व चित्पुस्तके ऽधिकम्।

गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ॥ ११९ ॥

गोचरादयः शब्दा घप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते पूर्वस्मिन्नेवार्थे । हलश्चेति घञं वक्ष्यति । तस्यायमपवादः । गावश्चरन्त्यस्मिन्निति, गोचरः । संचरन्ते ऽनेनेति, संचरः । वहन्ति तेन, वहः । व्रजन्ति तेन, व्रजः । व्यजन्ति तेन, व्यजः । निपातनादजेर्व्यघञपोरिति वीभावो न भवति । एत्य तस्मिन्नापणन्तइत्यापणः । निगच्छन्ति तस्मिन्निति, निगमः । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः । कषः । निकषः ॥

अवेतृस्त्रोर्घञ् ॥ १२० ॥

अवउपपदे तरतेस्तृणातेश्च धातोः करणाधिकरणयोः संज्ञायां घञ् प्रत्ययो भवति । घस्यापवादः । ञकारो वृद्ध्यर्थः, स्वरार्थश्च । घकार उत्तरत्र कुत्वार्थः । अवतारः । अवस्तारः । कथमवतारो नद्याः । नहीयं संज्ञा । प्रायानुवृत्तेरसंज्ञायामपि भवति ॥

हलश्च ॥ १२१ ॥

पुंसि संज्ञायां करणाधिकरणयोश्चेति सर्वमनुवर्त्तते । हलन्ताद्धातोः करणाधिकरणयोर्घञ् प्रत्ययो भवति । घस्यापवादः । लेखः । वेदः । वेषः । बन्धः । मार्गः । अपामार्गः ॥

अध्यायन्यायोद्यावसंहाराधारावायाश्च ॥ १२२ ॥

अध्यायादयः शब्दा घञन्ता निपात्यन्ते । पुंसि संज्ञायां घे प्राप्ते घञ्विधीयते । अहलन्तार्थ आरम्भः । अधीयतेस्मिन्नित्यध्यायः । नीयतेनेनेति न्यायः । उद्युवन्ति अस्मिन्नित्युद्यावः । संह्रियन्ते ऽनेनेति संहारः । आध्रियते ऽस्मिन्नित्याधारः । आवयन्त्यस्मिन्नित्यावायः । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः । अवहारः ॥

उदङ्को ऽनुदके ॥ १२३ ॥

उदङ्क इति निपात्यते, अनुदकविषयश्चेद्धात्वर्थो भवति । उत्पूर्वादञ्चतेर्घञ्निपात्यते । ननु च हलश्चेति सिद्ध एव घञ् । उदके प्रतिषेधार्थमिदं वचनम् । तैलोदङ्कः । अनुदकइति किम् । उदकोदञ्चनः । घः कस्मान्न प्रत्युदाह्रियते । विशेषाभावात् । घञ्यपि थाथादिस्वरेणान्तोदात्त एव ॥

जालमानायः ॥ १२४ ॥

आनाय इति निपात्यते जालं चेत्तद्भवति । आङ्पूर्वान्नयतेः करणे घञ् निपात्यते । आनायो मत्स्यानाम् । आनायो मृगाणाम् * ॥

खनो घ च ॥ १२५ ॥

---

* जालमिति किम् । आनयः । इति क्व चिदधिकमत्र ।

खनतेर्धातोः करणाधिकरणयोर्घः प्रत्ययो भवति । चकाराद् घञ् च । आखनः । आखानः ॥ डो वक्तव्यः ॥ * ॥ आखः ॥ डरो वक्तव्यः ॥ * ॥ आखरः ॥ इको वक्तव्यः ॥ * ॥ आखनिकः ॥ इकवको वक्तव्यः ॥ * ॥ आखनिकवकः* ॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥ १२६ ॥

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । ईषत् दुस् सु इत्येतेषूपपदेषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु धातोः खल् प्रत्ययो भवति । कृच्छ्रं दुःखम् । तद् दुरो विशेषणम् । अकृच्छ्रं सुखम् । तदितरयोर्विशेषणं, संभवात् । ईषत्करो भवता कटः । दुष्करः । सुकरः । ईषद्भोजः । दुर्भोजः । सुभोजः । ईषदादिष्विति किम् । कृच्छ्रेण कार्यः कटः । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्विति किम् । ईषत्कार्यः । लकारः स्वरार्थः । खित्करणमुत्तरत्र मुमर्थम् ॥

कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ १२७ ॥

भवतेः करोतेश्च धातोर्यथासंख्यं कर्त्तरि कर्मणि चोपपदे चकारादीषदादिषु च खल् प्रत्ययो भवति । ईषदाढ्यंभवं भवता । दुराढ्यं भवम् । स्वाढ्यंकरो देवदत्तो भवता ॥ कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । स्वाढ्येन भूयते† ॥

आतो युच् ॥ १२८ ॥

ईषदादयोनुवर्त्तन्ते । कर्तृकर्मणोरिति न स्वर्यते । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषदादिषूपपदेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति । खलोपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः । ईषद्दानो गौर्भवता । दुर्दानः सुदानः ॥

छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ १२९ ॥

ईषदादिषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये युच्प्रत्ययो भवति । खलोपवादः । सूपसदनोग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् ॥

अन्येभ्योपि दृश्यते ॥ १३० ॥

अन्येभ्योपि धातुभ्यो गत्यर्थेभ्यश्छन्दसि विषये युच्प्रत्ययो दृश्यते । सुदोहनामकृणोद्ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद्ब्रह्मणे गाम् ॥ भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज् वक्तव्यः ॥ * ॥ दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । दुर्मर्षणः ॥

---

* अत्र "खलो भगः पदं चेति वक्तव्यम्" इति वार्तिकरूपेण कुत्र चित्पठ्यते सो ऽपपाठः, पदमञ्जर्यां खनो घ चेति घित्करणमन्यतोपि ज्ञापनार्थं तेन खलो भगः पदं चेत्यादि सिध्यतीत्युक्तत्वात् ।

† स्वाढ्येन भूयतइति । प्रमादपाठोयम् । अत्र हि खलभावात्सुशब्दस्य धातोः प्राक् प्रयोगेण भाव्यं तस्मादाढ्येन सुभूयतइति पाठ इति पदमञ्जरी ।

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ॥ १३१ ॥ ॥

समीपमेव सामीप्यम् । ष्यञः स्वार्थिकत्वं ज्ञाप्यते चातुर्वर्ण्यादिसिद्ध्यर्थम् । वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वर्त्तमानाद् धातोर्वर्त्तमानवत्प्रत्यया वा भवन्ति । वर्त्तमाने लडित्यारभ्य यावदुणादयो बहुलमिति वर्त्तमाने प्रत्यया उक्तास्ते भूतभविष्यतोर्विधीयन्ते । कदा देवदत्तागतोसि । अयमागच्छामि । आगच्छन्तमेव । मां विद्धि । अयमागमम् एषोस्म्यागतः । कदा देवदत्त गमिष्यसि । एष गच्छामि । गच्छन्तमेव मां विद्धि । एष गमिष्यामि । गन्तास्मि । वत्करणं सर्वसादृश्यार्थम् । येन विशेषेण वर्त्तमाने प्रत्यया विहिताः प्रकृत्युपपदोपाधिना तथैवात्र भवन्ति । पवमानः । यजमानः । अलंकरिष्णुः । सामीप्यग्रहणं किम् । विप्रकर्षविवक्षायां मा भूत् । परुदगच्छत्पाटलपुत्रम् । वर्षेण गमिष्यति । यो मन्यते गच्छामीति पदं वर्त्तमाने कालएव वर्त्तते । कालान्तरगतिस्तु वाक्याद्भवति । न च वाक्यगम्यः कालः पदसंस्कारवेलायामुपयुज्यतइति तादृशं वाक्यार्थज्ञं प्रतिपत्तारं प्रति प्रकरणमिदं नारभ्यते । तथा च श्वः करिष्यति वर्षेण गमिष्यतीति सर्वमुपपद्यते ।

भूते आशंसायां तवच्च ॥ १३२ ॥

वेत्येव । वर्त्तमानसामीप्यइति नानुवर्त्तते । आशंसनमाशंसा । अप्राप्तस्य प्रियार्थस्य प्राप्तुमिच्छा । तस्याश्च भविष्यत्कालो विषयः । तत्र भविष्यति काले आशंसायां गम्यमानायां धातोर्वा भूतवत्प्रत्यया भवन्ति । चकाराद्वर्त्तमानवच्च । उपाध्यायश्चेदागमत् । आगतः । आगच्छति । आगमिष्यति । एते व्याकरणमध्यगीष्महि । एते व्याकरणमधीतवन्तः । अधीमहे । अध्येष्यामहे । सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशाल्लङ्लिटौ न भवतः । आशंसायामिति किम् । आगमिष्यति ॥

क्षिप्रवचने लृट् ॥ १३३ ॥

आशंसायामित्येव । क्षिप्रवचनउपपदे आशंसायां गम्यमानायां धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । भूतवच्चेत्यस्यायमपवादः । उपाध्यायश्चेत्क्षिप्रमागमिष्यति । क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे । वचनग्रहणं पर्यायार्थम् । क्षिप्रं शीघ्रमाशु त्वरितम् अध्येष्यामहे । नेति वक्तव्ये लृड्ग्रहणं लुटोपि विषये यथा स्यात् । श्वः क्षिप्रमध्येष्यामहे ॥

आशंसावचने लिङ् ॥ १३४ ॥

आशंसा येनोच्यते तदाशंसावचनं, तस्मिन्नुपपदे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । भूतवच्चेत्यस्यायमपवादः । उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आशंसे युक्तोधीयीय । आशंसे ऽवकल्पये युक्तोधीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥ १३५ ॥

भूतानद्यतने भविष्यदनद्यतने च लङ्लुटौ विहितौ, तयोरयं प्रतिषेधः। अनद्यतनवत्प्रत्ययविधिर्न भवति क्रियाप्रबन्धे सामीप्ये च गम्यमाने। क्रियाणां प्रबन्धः सातत्येनानुष्ठानम्। कालानां सामीप्यं तुल्यजातीयेनाव्यवधानम्। यावज्जीवं भृशमन्नमदात्। भृशमन्नं दास्यति। यावज्जीवं पुत्रानध्यापिपत्। यावज्जीवमध्यापयिष्यति। सामीप्ये खल्वपि। येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित। सोमेनायष्ट। गामदित। येयममावास्याऽऽगामिनी एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते। सोमेन यक्ष्यते। स गां दास्यते। द्वौ प्रतिषेधौ यथाप्राप्तस्याभ्यनुज्ञापनाय॥

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ॥ १३६ ॥

नानद्यतनवदिति वर्त्तते। अक्रियाप्रबन्धार्थमसामीप्यार्थं वचनम्। भविष्यति काले मर्यादावचनेऽवरस्मिन्प्रविभागेऽनद्यतनवत्प्रत्ययविधिर्न भवति। योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे। तत्र सक्तून्पास्यामः। भविष्यतीति किम्। योऽयमध्वा गत आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। तत्र द्विरोदनम् अभुञ्ज्महि। तत्र सक्तूनपिबाम। मर्यादावचनइति किम्। योऽयमध्वा निरवधिको गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्तास्महे। सक्तून् पातास्मः। अवरस्मिन्निति किम्। योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्तास्महे। तत्र सक्तून्पातास्मः। इह सूत्रे देशकृता मर्यादा उत्तरत्र कालकृता तत्र च विशेषं वक्ष्यति॥

कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥ १३७ ॥

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्निति वर्त्तते। कालमर्यादाविभागे सत्यवरस्मिन्प्रविभागे भविष्यति कालेऽनद्यतनवत्प्रत्ययविधिर्न भवति। न चेदहोरात्रसंबन्धी विभागस्तेषां च विभागे प्रतिषेधः। पूर्वेणैव सिद्धे वचनमिदमहोरात्रनिषेधार्थम्। योगविभाग उत्तरार्थः। योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। तत्रौदनं भोक्ष्यामहे। भविष्यतीत्येव। योऽयं वत्सरोऽतीतस्तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। तत्रौदनमभुञ्ज्महि। मर्यादावचनइत्येव। योऽयं निरवधिकः काल आगामी तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। तत्रौदनं भोक्तास्महे। अवरस्मिन्नित्येव। परस्मिन्विभाषां वक्ष्यति। अनहोरात्राणामिति किम्। त्रिविधमुदाहरणम्। योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रः, योऽयं त्रिंशद्रात्र आगामी

तस्य योवरोर्द्धमासः, योयं त्रिंशदहोरात्र आगामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। तत्र सक्तून्पातास्मः। सर्वथा ऽहोरात्रस्पर्शे प्रतिषेधः ॥

परस्मिन्विभाषा ॥ १३८ ॥

भविष्यति मर्यादावचने कालविभागे चानहोरात्राणामिति सर्वमनुवर्त्तते। कालमर्यादाविभागे सति भविष्यति काले परस्मिन्प्रविभागे विभाषा ऽनद्यतनवत्प्रत्ययविधिर्न भवति न चेदहोरात्रसंबन्धी प्रविभागः। अवरस्मिन्वर्जं पूर्वमनुवर्त्तते। अवरस्मिन्पूर्वेण प्रतिषेध उक्तः संप्रति परस्मिन्नप्राप्तएव विकल्प उच्यते। योयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे। तत्र सक्तून् पास्यामः। तत्र सक्तून्पातास्मः। अनहोरात्राणामित्येव। योयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य यः परः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। तत्र सक्तून् पातास्मः। भविष्यतीत्येव। योयं संवत्सरोतीतस्तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। तत्रौदनमभुञ्ज्महि। मर्यादावचनइत्येव। योयं संवत्सरो निरवधिकः काल आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता ध्येतास्महे। तत्र सक्तून्पातास्मः। कालविभागइत्येव। योयमध्वा गन्तव्यआपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। ओदनं भोक्तास्महे। इति सर्वत्रानद्यतनवत्प्रत्यया उदाहार्याः ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥ १३९ ॥

भविष्यतीत्यनुवर्त्तते। हेतुहेतुमतोर्लिङित्येवमादिकं लिङो निमित्तं, तत्र लिङ्निमित्ते भविष्यति काले लृङ् प्रत्ययो भवति क्रियातिपत्तौ सत्याम्। कुतश्चिद्वैगुण्यादनभिनिर्वृत्तिः क्रियायाः क्रियातिपत्तिः। दक्षिणेन चेदायास्यन्न शकटं पर्याभविष्यत्। यदि कमलक*माह्वास्यन्न शकटं पर्याभविष्यत्। अभोक्ष्यत भवान्घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्। भविष्यत्कालविषयमेतद्वचनम्। भविष्यदपर्याभवनं च हेतुमत् तत्र हेतुभूतं च कमलकाह्वानम्। लिङ्गिलिङ्गे बुद्ध्वा तदतिपत्तिं च प्रमाणान्तरादवगम्य वक्ता वाक्यं प्रयुङ्क्ते। यदि कमलकमाह्वास्यन्न शकटं पर्याभविष्यदिति, हेतुहेतुमतोराह्वानापर्याभवनयोर्भविष्यत्कालविषययोरतिपत्तिरितो वाक्यादवगम्यते ॥

भूते च ॥ १४० ॥

लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्ताविति सर्वमनुवर्त्तते। पूर्वेण भविष्यति विहितः संप्रति भूते विधीयते। भूते च काले लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां लृङ् प्रत्ययो भवति। उताप्योरित्यारभ्य लिङ्निमित्तेषु विधानमेतत्। प्राक्, ततो विकल्पं वक्ष्यति। दृष्टो मया भवत्पुत्रो ऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः। अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी,

* कमलकः कश्चित्पुरुष इति पदमञ्जरी।

यदि स तेन दृष्टो ऽभविष्यत् । तदा ऽभोक्ष्यत न तु भुक्तवान् । अन्येन पथा स गतः ॥

वोताप्योः ॥ १४१ ॥

भूते लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्ताविति सर्वमनुवर्त्तते । वा आ उताप्योः वोताप्योः । मर्यादायामयमाङ् नाभिविधौ । उताप्योः समर्थयोर्लिङिति वक्ष्यति प्रागेतस्मात् सूत्रावधेर्यदित ऊर्द्धमनुक्रमिष्यामः, तत्र भूते लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ लृङ् भवतीत्येतदधिकृतं वेदितव्यम् । वक्ष्यति विभाषा कथमि लिङ् च । कथं नाम तत्र भवान्वृषलमयाजयिष्यत् । यथाप्राप्तं च, याजयेत् ॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ १४२ ॥

गर्हा कुत्सेत्यनर्थान्तरम् । गर्हायां गम्यमानायाम् अपिजात्वोरुपपदयोर्धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । वर्त्तमाने लडुक्तः कालसामान्ये न प्राप्नोतीति विधीयते । कालविशेषविहितांश्चापि प्रत्ययानयं परत्वाद् अस्मिन्विषये बाधते । अपि तत्र भवान्वृषलं याजयति, जातु तत्र भवान्वृषलं याजयति । गर्हामहे । अहो अन्याय्यमेतत् । लिङ्निमित्ताभावादिह क्रियातिपत्तौ लृङ् न भवति ॥

विभाषा कथमि लिङ् च ॥ १४३ ॥

गर्हायामिति वर्त्तते । कथंशब्दउपपदे गर्हायां गम्यमानायां धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । चकाराल्लट् च । विभाषाग्रहणं यथास्वं कालविषये विहितानामबाधनार्थम् । कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयेत् । कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयति, कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति । कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिता । कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयेत् । कथं नाम तत्र भवान्वृषलमयाजयत् । कथं नाम तत्र भवान्वृषलं याजयांचकार । अत्र लिङ्निमित्तमस्तीति भूतविवक्षायां क्रियातिपत्तौ वा लृङ् । भविष्यद्विवक्षायां सर्वत्र नित्येनैव लृङा भवितव्यम् ॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ १४४ ॥

गर्हायामित्येव । विभाषा न स्वर्यते । किंवृत्तउपपदे गर्हायां गम्यमानायां धातोर्लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः । सर्वलकाराणामपवादः । लिङ्ग्रहणं लटो ऽपरिग्रहार्थम् । को नाम वृषलो यं तत्र भवान् याजयेत् । यं तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति । कतरो नाम कतमो नाम यं तत्र भवान्वृषलं याजयेत् । याजयिष्यति । भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङ् । भविष्यति तु नित्यम् । को नाम वृषलो यं तत्र भवानयाजयिष्यत् ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेपि ॥ १४५ ॥

गर्हायामिति निवृत्तम्। अनवक्लृप्तिरसंभावना। अमर्षो, ऽक्षमा। किंवृत्ते ऽकिंवृत्ते चोपपदे ऽनवक्लृप्त्यमर्षयोर्धातोर्लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः। सर्वलकाराणामपवादः। बह्वचः पूर्वनिपातो लक्षणाव्यभिचारचिह्नम्। तेन यथासंख्यं न भवति। अनवक्लृप्तौ तावत्। नावकल्पयामि। न संभावयामि। न श्रद्दधे, तत्र भवान्नाम वृषलं याजयेत्। तत्र भवान्नाम वृषलं याजयिष्यति। को नाम वृषलो, यं तत्र भवान् वृषलं याजयेत्। को नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति। अमर्षे। न मर्षयामि तत्र भवान्वृषलं याजयेत्, याजयिष्यति। को नाम वृषलो, यं तत्र भवान्याजयेत्, याजयिष्यति। भूतविवक्षायां तु क्रियातिपत्तौ वा लृङ् भवति। भविष्यति नित्यम्। नावकल्पयामि तत्र भवान्नाम वृषलमयाजयिष्यत्॥

किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्॥ १४६॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति वर्त्तते। किंकिलशब्दः समुदाय उपपदम्। अस्त्यर्थो, अस्तिभवतिविद्यतयः। किंकिलास्त्यर्थेषूपपदेषु अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति। लिङोपवादः। किंकिल नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति। अस्ति नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति। भवति नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति। विद्यते नाम तत्र भवान्वृषलं याजयिष्यति। न श्रद्दधे। न मर्षयामि। लिङ्निमित्तमिह नास्ति तेन लृङ् भवति॥

जातुयदोर्लिङ्॥ १४७॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्येव। जातु यदित्येतयोरुपपदयोरनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोर्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति। लृटो ऽपवादः। जातु तत्र भवान्वृषलं याजयेत्। यन्नाम तत्र भवान्वृषलं याजयेत्। न श्रद्दधे, न मर्षयामि॥ जातुयदोर्लिङ्विधाने यदायद्योरुपसंख्यानम्॥ * ॥ यदा भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत्। यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत्। न श्रद्दधे, न मर्षयामि। क्रियातिपत्तौ भूते वा लृङ्, भविष्यति नित्यम्॥

यच्चयत्रयोः॥ १४८॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्येव। यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोरनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोर्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति। लृटोपवादः। योगविभाग उत्तरार्थः। यथासंख्यं नेष्यते। यच्च तत्र भवान् वृषलं याजयेत्। यत्र तत्र भवान् वृषलं याजयेत्। क्रियातिपत्तौ यथायथं लृङ् भवति॥

गर्हायां च॥ १४९॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम्। गर्हा निन्दा कुत्सेत्यनर्थान्तरम्। यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोर्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति गर्हायां गम्यमानायाम्। सर्व-

लकाराणामपवादः। यच्च तत्र भवान् वृषलं याजयेत्। यत्र तत्र भवान् वृषलं याजयेद् श्रद्धो वृद्धः सन् ब्राह्मणः, गर्हामहे। अहो अन्याय्यमेतत्। क्रियातिपत्तौ यथायथं लृङ् भवति॥

चित्रीकरणे च॥ १५०॥

यच्चयत्रयोरित्येव। चित्रीकरणमाश्चर्यमद्भुतं विस्मयनीयम्। यच्चयत्रयोरुपपदयोश्चित्रीकरणे गम्यमाने धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति। सर्वलकाराणामपवादः। यच्च तत्र भवान्वृषलं याजयेत्। यत्र तत्र भवान्वृषलं याजयेत्। आश्चर्यमेतत्। क्रियातिपत्तौ यथायथं लृङ् भवति॥

शेषे लृडयदौ॥ १५१॥

यच्चयत्राभ्यामन्यत्र चित्रीकरणं शेषः। शेषे उपपदे चित्रीकरणे गम्यमाने धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति। यदिशब्दश्चेन्न प्रयुज्यते। सर्वलकाराणामपवादः। आश्चर्यं चित्रमद्भुतम्। अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति। बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते। अयदाविति किम्। आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। यदि सो ऽधीयीत। लिङ्निमित्ताभावादिह लृङ् भवति॥

उताप्योः समर्थयोर्लिङ्॥ १५२॥

उत अपि इत्येतयोः समर्थयोर्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति। सर्वलकाराणामपवादः। बाढमित्यस्मिन्नर्थे समानार्थत्वमनयोः। उत कुर्यात्। अपि कुर्यात्। उताधीयीत। अप्यधीयीत। बाढमध्येष्यत इत्यर्थः। समर्थयोरिति किम्। उत दण्डः पतिष्यति। अपि द्वारं धास्यति। प्रश्नः प्रच्छादनं च गम्यते। वोताप्योरिति विकल्पो निवृत्तः। इतः प्रभृति भूतेपि लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ नित्यं लृङ्। भविष्यति तु सर्वत्रैव नित्यः॥

कामप्रवेदने ऽकच्चिति॥ १५३॥

स्वाभिप्रायाविष्करणं कामप्रवेदनम्। काम इच्छा ऽभिलाष इत्यनर्थान्तरम्। तस्य प्रवेदनं प्रकाशनम्। तस्मिन् गम्यमाने ऽकच्चित्युपपदे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति। सर्वलकाराणामपवादः। कामो मे भुञ्जीत भवान्। अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान्। अकच्चितीति किम्।

कच्चिज्जीवति ते माता कच्चिज्जीवति ते पिता।
माराविद*त्वां पृच्छामि कच्चिज्जीवति पार्वती॥

संभावनेलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे॥ १५४॥

---

* माराविदेति शुकविशेषस्य संज्ञा, पार्वत्यपि शुकस्यैव का चिदिष्टेति पदमञ्जर्याम्।

लिङित्येव । संभावनं, क्रियासु योग्यताध्यवसानं शक्तिश्रद्धानम् । तदिदानीमलमर्थेन विशेष्यते । तच्चेत्संभावनं पर्याप्तमवितथं भवति । सिद्धाप्रयोगइत्यलमो विशेषणं, सिद्धश्चेदलमो ऽप्रयोगः. क्व चासौ सिद्धः । यत्र गम्यते चार्थो न चासौ प्रयुज्यते । तदीदृशे संभावनोपाधिकेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । सर्वलकाराणामपवादः । अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् । अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत । अलमिति किम् । विदेशस्थायी देवदत्तः प्रायेण गमिष्यति ग्रामम् । सिद्धाप्रयोगइति किम् । अलं देवदत्तो हस्तिनं हनिष्यति । क्रियातिपत्तौ भूते च भविष्यत्ति नित्यं लृङ् भवति ॥

विभाषा धातौ संभावनवचने ऽयदि ॥ १५५ ॥

संभावनेलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगइति सर्वमनुवर्त्तते । संभावनमुच्यते येन स संभावनवचनः । संभावनवचने धातावुपपदे यच्छब्दवर्ज्जिते धातोर्विभाषा लिङ् भवति । पूर्वेण नित्यप्राप्तौ विकल्पार्थं वचनम् । संभावयामि भुञ्जीत भवान् । संभावयामि भोक्ष्यते भवान् । अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् । श्रद्दधे भुञ्जीत भवान् । भोक्ष्यते भवान् । अयदीति किम् । संभावयामि यद्भुञ्जीत भवान् ॥

हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥ १५६ ॥

हेतुः कारणं, हेतुमत्फलम् । हेतुभूते हेतुमति चार्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । सर्वलकाराणामपवादः । दक्षिणेन चेद्यायात्र शकटं पर्याभवेत् । यदि कमलकमाह्वयेन्न शकटं पर्याभवेत् । दक्षिणेन यानं हेतुः । अपर्याभवनं हेतुमत् । विभाषा चायमिष्यते । भविष्यति च काले । तेन लृडपि भवति । दक्षिणेन चेद्यास्यति न शकटं पर्याभविष्यति । तत्र विभाषाग्रहणं तावदनन्तरमेवानुवर्त्तते । लिङिति वर्तमाने पुनर्लिङ्ग्रहणं कालविशेषप्रतिपत्त्यर्थम् । तेनेह न भवति । हन्तीति पलायते । वर्षतीति धावति । क्रियातिपत्तौ लृङ् भवति ॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ १५७ ॥

इच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः । सर्वलकाराणामपवादः । इच्छामि भुञ्जीत भवान् । इच्छामि भुङ्क्तां भवान् । कामये । प्रार्थये ॥ कामप्रवेदनइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । इच्छन् करोति ॥

समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ १५८ ॥

इच्छार्थेषु धातुषु समानकर्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति । तुमुन्प्रकृत्यपेक्षमेव समानकर्तृकत्वम् । इच्छति भोक्तुम् । कामयते भोक्तुम् । वष्टि भोक्तुम् । वाञ्छति भोक्तुम् । समानकर्तृकेष्विति किम् । देवदत्तं भुञ्जानमिच्छति यज्ञदत्तः । इह कस्मान्न भवति । इच्छन्करोति । अनभिधानात् ॥

लिङ् च ॥ १५९ ॥

इच्छार्थेषु समानकर्तृकेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । भुञ्जीयेतीच्छति । अधीयीयेतीच्छति । क्रियातिपत्तौ लृङ् भवति * ॥

इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने ॥ १६० ॥

इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने काले विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति । लटि प्राप्ते वचनम् । इच्छति । इच्छेत् । वष्टि । उश्यात् । कामयते । कामयेत ॥

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥१६१ ॥

विधिः प्रेरणम् । निमन्त्रणं नियोगकरणम् । आमन्त्रणं कामचारकरणम् । अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः । संप्रश्नः संप्रधारणम् । प्रार्थनं याच्ञा । विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । सर्वलकाराणामपवादः । विध्यादयश्च प्रत्ययार्थविशेषणम् । विध्यादिविशिष्टेषु कर्त्रादिषु लिङ् प्रत्ययो भवति । विधौ तावत् । कटं कुर्यात् । ग्रामं भवानागच्छेत् । निमन्त्रणे । इह भवान्भुञ्जीत । इह भवानासीत । आमन्त्रणे । इह भवानासीत । इह भवान्भुञ्जीत । अधीष्टे । अधीच्छामो भवन्तम् माणवकं भवानुपनयेत् । संप्रश्ने । किं नु खलु भो व्याकरणमधीयीय । प्रार्थने । भवति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय ।

लोट् च ॥ १६२ ॥

लोट् प्रत्ययो भवति धातोर्विध्यादिष्वर्थेषु । योगविभाग उत्तरार्थः । विधौ तावत् । कटं तावद्भवान्करोतु । ग्रामं भवानागच्छतु । निमन्त्रणे । अमुत्र भवानास्ताम् । अमुत्र भवान्भुङ्क्ताम् । आमन्त्रणे । इह भवान् भुङ्क्ताम् । अधीष्टे । अधीच्छामो भवन्तम् माणवकं भवानध्यापयतु । माणवकं भवानुपनयताम् । संप्रश्ने । किं नु खलु भो व्याकरणमध्ययै । प्रार्थने । भवति मे प्रार्थना व्याकरणमध्ययै । छन्दोऽध्ययै ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥ १६३ ॥

प्रेषणं प्रैषः । कामचाराभ्यनुज्ञानमतिसर्गः । निमित्तभूतस्य कालस्यावसरः प्राप्तकालता । एतेष्वर्थेषु धातोः कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया भवन्ति । चकाराल्लोट् च । भवता कटः करणीयः । कर्त्तव्यः । कृत्यः । कार्यः । लोट् खल्वपि । करोतु कटं भवानिह प्रेषितः । भवानतिसृष्टः । भवतः प्राप्तकालः कटकरणे । किमर्थं प्रैषादिषु कृत्या विधीयन्ते, न सामान्येन भावकर्मणोर्विहिता एव, ते प्रैषादिष्वन्यत्र च भविष्यन्ति । विशेषविहितेनानेन लोटा बाध्यन्ते । वासरूपविधिना भविष्यन्ति । एवं तर्हि ज्ञापयति स्त्र्यधिकारात्परेण वासरूपवि-

---

* योगविभाग उत्तरार्थ इति पुस्तकान्तरे ऽधिकः पाठः ।

धिर्नावश्यं भवतीति । विधिप्रैषयोः को विशेषः । केचिदाहुः । अज्ञातज्ञापनं विधिः । प्रेषणं प्रैष इति ॥

लिङ् चोर्द्ध्वमौहूर्तिके ॥ १६४ ॥

प्रैषादयो वर्त्तन्ते । प्रैषादिषु गम्यमानेषु ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकेऽर्थे वर्तमानाद्धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । चकाराद्यथाप्राप्तं च । ऊर्ध्वं मुहूर्त्तादुपरिमुहूर्तस्य भवता खलु कटः कर्त्तव्यः । करणीयः । कार्यः । भवान्खलु कटं कुर्यात् । भवान्खलु करोतु । भवानिह प्रेषितः । भवानतिसृष्टः । भवान्प्राप्तकालः ॥

स्मे लोट् ॥ १६५ ॥

प्रैषादिषूर्ध्वमौहूर्तिके इति वर्तते । स्मशब्दउपपदे प्रैषादिषु गम्यमानेषूर्ध्वमौहूर्तिकेऽर्थे वर्तमानाद्धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति । लिङ्कृत्यानामपवादः । ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्भवान्कटं करोतु स्म । ग्रामं गच्छतु स्म । माणवकमध्यापयतु स्म ॥

अधीष्टे च ॥ १६६ ॥

स्मइति वर्तते । अधीष्टं व्याख्यातम् । स्मशब्दउपपदे ऽधीष्टे गम्यमाने धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति । लिङोपवादः । अङ्ग स्म राजन्माणवकमध्यापय । अङ्ग स्म राजन्नग्निहोत्रं जुहुधि ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ १६७ ॥

कालादिषूपपदेषु धातोस्तुमुन्प्रत्ययो भवति । कालो भोक्तुम् । वेला भोक्तुम् । इह कस्मान्न भवति । कालः पचति भूतानीति । प्रैषादिग्रहणमिहाभिसंबध्यते । इह कस्मान्न भवति । कालो भोजनस्य । वासरूपेण ल्युडपि भवति । उक्तमिदं स्त्र्यधिकारात्परश्च वासरूपविधिरनित्य इति ॥

लिङ् यदि ॥ १६८ ॥

कालादयोनुवर्त्तन्ते । यच्छब्दे उपपदे कालादिषु धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति । तुमुनोपवादः । कालो यद्भुञ्जीत भवान् । समयो यद्भुञ्जीत भवान् । वेला यद्भुञ्जीत भवान् ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ १६९ ॥

अर्हतीत्यर्हः । तद्योग्यः । अर्हे कर्तरि वाच्ये गम्यमाने वा धातोः कृत्यतृचः प्रत्यया भवन्ति । चकाराल्लिङ् च । भवता खलु कन्या वोढव्या । वाह्या । वहनीया । भवान् खलु कन्याया वोढा । भवान् खलु कन्यां वहेत् । भवानेतदर्हेदिति । अथ कस्मादर्हे कृत्यतृचो विधीयन्ते । यावता सामान्येन विहितत्वादर्हेपि भविष्यन्ति । योयमिह लिङ्विधायते, तेन बाधा मा भूदिति । वासरूपविधिश्चानित्यः ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥ १७० ॥

अवश्यं भाव आवश्यकम् । उपाधिरयं नोपपदम् । अवश्यंभावविशिष्टे आधमर्ण्यविशिष्टे च कर्तरि वाच्ये धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति । अवश्यंकारी । मयूरव्यंसकादित्वात्समासः । आधमर्ण्ये खल्वपि । शतंदायी । सहस्रंदायी । निष्कंदायी ॥

कृत्याश्च ॥ १७१ ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोरिति वर्तते । कृत्यसंज्ञकाश्च प्रत्यया आवश्यकाधमर्ण्ययोरुपाधिभूतयोर्धातोर्भवन्ति । भवता खलु अवश्यं कटः कर्त्तव्यः । अवश्यं करणीयः । अवश्यं कार्यः । अवश्यं कृत्यः । आधमर्ण्ये । भवता शतं दातव्यम् । सहस्रं देयम् । किमर्थमिदम् । यावता सामान्येन विहिता अस्मिन्नपि विषये भविष्यन्ति । विशेषविहितेन णिनिना बाध्येरन् । कर्त्तरि णिनिः । भावकर्मणोः कृत्याः । तत्र कुतो बाधप्रसङ्गः । तत्र के चिदाहुः । भव्यगेयादयः कर्तृवाचिनः कृत्यास्तदिहोदाहरणमिति ॥

शकि लिङ् च ॥ १७२ ॥

शकीति प्रकृत्यर्थविशेषणम् । शक्नोत्यर्थोपाधिके धात्वर्थे लिङ् प्रत्ययो भवति । चकारात्कृत्याश्च । भवता खलु भारो वोढव्यः । वहनीयः । वाह्यः । भवान् खलु भारं वहेत् । भवानिह शक्तः । सामान्यविहितानां पुनर्वचनं लिङा बाधा मा भूदिति ॥

आशिषि लिङ्लोटौ ॥ १७३ ॥

आशंसनमाशीः । अप्राप्तस्येष्टस्यार्थस्य प्राप्तुमिच्छा । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्तमानाद्धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः । चिरं जीयाद्भवान् । चिरं जीवतु भवान् । आशिषीति किम् । चिरं जीवति देवदत्तः ॥

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ १७४ ॥

आशिषीत्येव । आशिषि विषये धातोः क्तिच्क्तौ प्रत्ययौ भवतः समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते । तनुतात् तन्तिः । सनुतात् सातिः । भवतात् भूतिः । मनुतात् मन्तिः । क्तः खल्वपि । देवा एनं देयासुर्देवदत्तः । सामान्येन विहितः क्तः पुनरुच्यते क्तिचा बाधा मा भूदिति । चकारो विशेषणार्थः न क्तिचि दीर्घश्चेति ॥

माङि लुङ् ॥ १७५ ॥

माङ्युपपदे धातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति । सर्वलकाराणामपवादः । मा कार्षीत् । मा हार्षीत् । कथं मा भवतु तस्य पापं मा भविष्यतीति । असाधुरेवायम् । के चिदाहुः । अङिदपरो माशब्दो विद्यते तस्यायं प्रयोगः ॥

स्मोत्तरे लङ् च ॥ १७६ ॥

स्मशब्दोत्तरे माङ्युपपदे धातोर्लङ् प्रत्ययो भवति । चकाराल्लुङ् च । मा स्म करोत् । मा स्म कार्षीत् । मा स्म हरत् । मा स्म हार्षीत् ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ तृतीयस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ १ ॥

धात्वर्थे धातुशब्दः । धात्वर्थानां संबन्धो धातुसंबन्धः । विशेषणविशेष्यभावः । तस्मिन्सति अयथाकालोक्ता अपि प्रत्ययाः साधवो भवन्ति । अग्निष्टोमयाज्यस्य पुत्रो जनिता । कृतः कटः श्वो भविता । भावि कृत्यमासीत् । अग्निष्टोमयाजीति भूतकालः, जनितेति भविष्यत्कालः, तत्र भूतः कालो भविष्यत्कालेनाभिसंबध्यमानः साधुर्भवति । विशेषणं गुणत्वाद्विशेष्यकालमनुरुध्यते, तेन विपर्ययो न भवति । प्रत्ययाधिकारे पुनः प्रत्ययग्रहणमधात्वधिकारविहिता अपि प्रत्ययास्तद्धिता धातुसंबन्धे सति कालभेदे साधवो यथा स्युरिति । गोमानासीत् । गोमान्भविता । गावो विद्यन्तेऽस्येति वर्तमानविहितो मतुबासीद् भवितेति संबन्धादतीते भविष्यति च साधुर्भवति ॥

क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ २ ॥

धातुसंबन्धइति वर्तते । पौनःपुन्यं भृशार्थो वा क्रियासमभिहारः । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । समभिहारविशिष्टक्रियावचनाद्धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति, सर्वेषु कालेषु, सर्वलकाराणामपवादः । तस्य च लोटो हि स्व इत्येतावादेशौ भवतः, तध्वंभाविनस्तु वा भवतः । योगविभागोऽत्र कर्तव्यः । क्रियासमभिहारे लोड् भवति । ततो लोटो हिस्वौ । लोडित्येव । लोड्धर्माणौ हिस्वौ भवत इत्यर्थः । तेनात्मनेपदपरस्मैपदत्वं भेदेनावतिष्ठते तिङ्त्वं च भवति । लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति । इमौ लुनीतः । इमे लुनन्ति । लुनीहिलुनीहीत्येव त्वं लुनासि । युवां लुनीथः । यूयं लुनीथ । अथ वा लुनीतलुनीतेत्येव यूयं लुनीथ । लुनीहिलुनीहीत्येवाहं लुनामि । आवां लुनीवः । वयं लुनीमः । भूते । लुनीहिलुनीहीत्येवायमलावीत् । अलाविष्टाम् । अलाविषुः । एवं मध्यमोत्तमयोरुदाहार्यम् । भविष्यति । लुनीहिलुनीहीत्येवायं लविष्यति । लविष्यतः । लविष्यन्ति । एवं मध्यमोत्तमयोरुदाहार्यम् । अधीष्वाधीष्वेत्येवा-

यमधीते। इमावधीयाते। इमे ऽधीयते। अधीष्वाधीष्वेत्येव त्वमधीषे। युवामधीयाथे। यूयमधीध्वे। अथ वा अधीध्वमधीध्वमित्येव यूयमधीध्वे। अधीष्वाधीष्वेत्येवाहमधीये। आवामधीवहे। वयमधीमहे। एवं सर्वेष्वेव लकारेषूदाहार्यम्। क्रियासमभिहाराभिव्यक्तौ द्विर्वचनमयं लोडपेक्षते क्रियासमभिहारे हि भवत इति। यङ्प्रत्ययः पुनरस्मिन्नेवार्थे विधीयमानः स्वयमेव शक्तत्वान्नापेक्षते द्विर्वचनम्॥

समुच्चये ऽन्यतरस्याम्॥ ३॥

अनेकक्रियाध्याहारः समुच्चयः। समुच्चीयमानक्रियावचनाद्धातोरन्यतरस्यां लोट् प्रत्ययो भवति। तस्य लोटो हिस्वावादेशौ भवतः। तध्वंभाविनस्तु वा भवतः। भ्राष्ट्रमट मठमट खदूरमट स्थाल्यपिधानमटेत्येवायमटति। इमावटतः। इमे ऽटन्ति। भ्राष्ट्रमट मठमट खदूरमट स्थाल्यपिधानमटेत्येव त्वमटसि। युवामटथः। यूयमटथ। अथ वाभ्राष्ट्रमटत मठमटत खदूरमटत स्थाल्यपिधानमटतेत्येव यूयमटथ। भ्राष्ट्रमट मठमट खदूरमट स्थाल्यपिधानमटेत्येवाहमटामि। आवामटावः। वयमटामः। अथ वा भ्राष्ट्रमटति मठमटति खदूरमटति स्थाल्यपिधानमटति इत्येवायमटति। इमावटतः। इमे ऽटन्ति। भ्राष्ट्रमटसि मठमटसि खदूरमटसि स्थाल्यपिधानमटसि इत्येव त्वमटसि। युवामटथः। यूयमटथ। भ्राष्ट्रमटामि मठमटामि खदूरमटामि स्थाल्यपिधानमटामीत्येवाहमटामि। आवामटावः। वयमटामः छन्दोधीष्व व्याकरणमधीष्व निरुक्तमधीष्वेत्येवायमधीते। इमावधीयाते। इमे ऽधीयते। छन्दोधीष्व व्याकरणमधीष्व निरुक्तमधीष्वेत्येव त्वमधीषे। युवामधीयाथे। यूयमधीध्वे। अथ वा छन्दोधीध्वं व्याकरणमधीध्वं निरुक्तमधीध्वमित्येव यूयमधीध्वे। छन्दोधीष्व व्याकरणमधीष्व निरुक्तमधीष्वेत्येवाहमधीये। आवामधीवहे। वयमधीमहे। अथ वा व्याकरणमधीते छन्दोधीते निरुक्तमधीते इत्येवायमधीते। इमावधीयाते। इमे ऽधीयते। छन्दोधीषे व्याकरणमधीषे निरुक्तमधीषे इत्येव त्वमधीषे। युवामधीयाथे। यूयमधीध्वे। छन्दोधीये व्याकरणमधीये निरुक्तमधीयइत्येवाहमधीये। आवामधीवहे। वयमधीमहे॥

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्॥ ४॥

पूर्वस्मिन् लोड्विधाने यथाविध्यनुप्रयोगो भवति। यस्माद्धातोर्लोड्विहितस्तस्य एव धातुरनुप्रयोक्तव्यः। धातुसंबन्धे प्रत्ययविधानादनुप्रयोगः सिद्ध एव। यथाविध्यर्थं तु वचनम्। तथा चैवोदाहृतम्। लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनातीति। छिनत्तीति नानुप्रयुज्यते। अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते। पठतीति नानुप्रयुज्यते॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य॥ ५॥

द्वितीये लोड्विधाने समुच्चये सामान्यवचनस्य धातोरनुप्रयोगः कर्तव्यः।

ओदनं भुङ्क्ष्व सक्तूनिपब धानाः खादेत्येवायमभ्यवहरति । सर्वविशेषानुप्रयोगनिवृत्त्यर्थं वचनम् । लाघवं च लौकिके शब्दव्यवहारे नाद्रियते । भ्राष्ट्रमट मठमट खदूरमट स्थाल्यपिधानमटेत्येवायमटतीत्यत्रापि कारकभेदात् क्रियाभेदे सति सामान्यवचनता सम्भवत्येव ॥

छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ ६ ॥

धातुसंबन्धे इत्येव । छन्दसि विषये धातुसंबन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ्लङ्लिटः प्रत्यया भवन्ति । अन्यतरस्यामिति वर्त्तते । तेनान्येपि लकारा यथायथं भवन्ति । लुङ् । शकलाङ्गुष्ठकोकरत् । अहं तेभ्योकरं नमः । लङ् । अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः । लिट् । अद्या ममार । अद्य म्रियते ॥

लिङर्थे लेट् ॥ ७ ॥

छन्दस्यन्यतरस्यामिति वर्त्तते । लिङर्थे यत्र लिङ्विधीयते विध्यादिर्हेतुहेतुमतोर्लिङित्येवमादिस्तत्र छन्दसि विषये ऽन्यतरस्यां लेट् प्रत्ययो भवति । जोषिषत् । तारिषत् । मन्दिषत् । नेता नेषत् । तक्षिषत् । पताति दिद्युत् । उदधिं च्यावयाति ॥

उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥ ८ ॥

उपसंवादः परिभाषणं, कर्त्तव्ये पणबन्धः । यदि मे भवानिदं कुर्याद् अहमपि भवतइदं दास्यामीति । कारणतः कार्यानुसरणं तर्क उत्प्रेक्षा आशङ्का । उपसंवादे आशङ्कायां च गम्यमानायां छन्दसि विषये लेट् प्रत्ययो भवति । उपसंवादे । अहमेव पशूनामीशै । मदया एव वो ग्रहा गृह्यान्तै इति । मद्वत्यान्येव वः पात्राण्युच्यान्तै । आशङ्कायां च । नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम । जिह्माचरणेन नरकपात आशङ्क्यते । लिङर्थेएवायं नित्यार्थं तु वचनम् । पूर्वसूत्रे ऽन्यतरस्यामिति वर्त्तते ॥

तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥ ९ ॥

छन्दसीत्येव । तुमुनो ऽर्थस्तुमर्थः । तत्र छन्दसि विषये धातोः सेआदयः प्रत्यया भवन्ति । तुमर्थो भावः । कथं ज्ञायते । वचनसामर्थ्यात् । तावदयं कर्त्तुरपकृष्यते । न चान्यस्मिन्नर्थे तुमुन्नादिश्यते । अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति स्वार्थश्च धातूनां भाव एव । से । वक्षे रायः । सेन् । ता वामेषे रथानाम् । असे । असेन् । क्रत्वे दक्षाय जीवसे । स्वरे विशेषः । क्से । कसेन् । प्रेषे भगाय । श्रियसे । अध्यै । अध्यैन् । कर्मण्युपाचरध्यै । स्वरे विशेषः । कध्यै । इन्द्राग्नी आहुवध्यै । कध्यैन् । श्रियध्यै । शध्यै । शध्यैन् । पिबध्यै । सह

मादयध्यै । तवै । सोममिन्द्राय पातवै । तवेङ् । दशमे मासि सूतवे । तवेन् । स्वर्देवेषु गन्तवे । कर्त्तवे । हर्त्तवे ॥

प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥ १० ॥

तुमर्थे छन्दसीत्येव । प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै इत्येते शब्दा निपात्यन्ते छन्दसि विषये । प्रपूर्वस्य यातेः कैप्रत्ययः । प्रयै देवेभ्यः । प्रयातुम् । रुहेः इष्यैप्रत्ययः । अपामोषधीनां रोहिष्यै । रोहणाय । व्यथेर्नञ्पूर्वस्य इष्यैप्रत्ययः । अव्यथिष्यै । अव्यथनाय ॥

दृशे विख्ये च ॥ ११ ॥

तुमर्थे छन्दसीत्येव । दृशे विख्ये इत्येतौ छन्दसि विषये निपात्येते । दृशेः के प्रत्ययः । दृशे विश्वाय सूर्यम् । द्रष्टुम् । विख्ये त्वा हरामि । विख्यातुम् ॥

शकि णमुल्कमुलौ ॥ १२ ॥

छन्दसीत्येव । शक्नोतौ धातावुपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे णमुल्कमुल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । णकारो वृद्ध्यर्थः । ककारो गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः । लकारः स्वरार्थः । अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन् । विभक्तुमित्यर्थः । अपलुपं नाशक्नुवन् । अपलोप्तुमित्यर्थः ॥

ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ १३ ॥

तुमर्थे छन्दसीत्येव । ईश्वरशब्द उपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे धातोस्तोसुन्कसुन्प्रत्ययौ भवतः । ईश्वरोभिचरितोः । अभिचरितुमित्यर्थः । ईश्वरो विलिखः । विलिखितुमित्यर्थः । ईश्वरो वितृदः । वितर्दितुमित्यर्थः ॥

कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ १४ ॥

छन्दसीत्येव । कृत्यानामर्थो भावकर्मणी । तस्मिन् कृत्यार्थे छन्दसि विषये तवै केन् केन्य त्वन् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अन्वेतवै । अन्वेतव्यम् । परिधातवै । परिधातव्यम् । केन् । नावगाहे । नावगाहितव्यम् । केन्य । दिदृक्षेण्यः । शुश्रूषेण्यः । दिदृक्षितव्यम् । शुश्रूषितव्यम् । त्वन् । कर्त्वं हविः । कर्त्तव्यम् । तुमर्थे छन्दसीति सयादिसूत्रेपि तवै विहितः । तस्य तुमर्थादन्यत्र कारके विधिर्द्रष्टव्यः ॥

अवचक्षे च ॥ १५ ॥

कृत्यार्थे छन्दसीत्येव । अवपूर्वाच्चक्षिङ एशप्रत्ययो निपात्यते । नावचक्षे । नावख्यातव्यमित्यर्थः ॥

भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥ १६ ॥

कृत्यार्थइति निवृत्तम् । तुमर्थइति वर्त्तते । प्रकृत्यर्थविशेषणं भावलक्षणग्रहणम् । भावो लक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्त्तमानेभ्यः स्थादिभ्यो धातुभ्यश्छ-

न्दसि विषये तुमर्थे तोसुन्प्रत्ययो भवति । आ संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति । आ समाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । इण् । पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । कृञ् । पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः । वदि । पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम् । चरि । पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम् । हु । आ होतोरप्रमत्तस्तिष्ठति । तमि । आ तमितोरासीत । जनि । आ विजनितोः संभवामेति ॥

सृपितृदोः कसुन् ॥ १७ ॥

भावलक्षणे छन्दसीति वर्त्तते । सृपितृदोर्धात्वोर्भावलक्षणेऽर्थे वर्त्तमानयोश्छन्दसि विषये तुमर्थे कसुन्प्रत्ययो भवति । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जर्तृभ्य आतृदः ॥

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ १८ ॥

छन्दसि भावलक्षणइति सर्वं निवृत्तम् । अलं खलु इत्येतयोः प्रतिषेधवाचिनोरुपपदयोर्धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन । अलं कृत्वा । खलु कृत्वा । अलं बाले रुदित्वा । अलंखल्वोरिति किम् । मा कार्षीः । प्रतिषेधयोरिति किम् । अलंकारः । प्राचांग्रहणं विकल्पार्थम् । अलं रोदनेन । वासरूपविधिश्चेत्पूजार्थम् ॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ १९ ॥

क्त्वा तु वर्त्तते । माङो धातोर्व्यतीहारे वर्त्तमानादुदीचामाचार्याणां मतेन क्त्वा प्रत्ययो भवति । अपमित्य याचते । अपमित्य हरति । अपूर्वकालत्वादप्राप्तः क्त्वा विधीयते। उदीचांग्रहणात्तु यथाप्राप्तमपि भवति । याचित्वा ऽपमयते । हृत्वा ऽपमयते । मेङः कृतात्वस्यायं निर्देशः कृतो ज्ञापनार्थो नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वमिति, तेन दाधा घ्वदाबिति दैपोपि प्रतिषेधो भवति ॥

परावरयोगे च ॥ २० ॥

परावराभ्यां योगः परावरयोगः । परेण पूर्वस्य योगे गम्यमाने अवरेण च परस्य धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति । परेण तावत् । अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः । परनदीयोगेन पर्वतो विशेष्यते । अपरयोगे । अतिक्रम्य तु पर्वतं नदी स्थिता । अवरपर्वतयोगेन नदी विशिष्यते ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ २१ ॥

समानः कर्त्ता ययोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्त्तमानाद्धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति । शक्तिशक्तिमतोर्भेदस्याविवक्षितत्वात् समानकर्तृकता । भुक्त्वा व्रजति । पीत्वाव्रजति । द्विवचनमतन्त्रम् । स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा दत्वा व्रजति । समानकर्त्तृकयोरिति किम् । भुक्तवति ब्राह्मणे गच्छति देव-

दत्तः । पूर्वकाले इति किम् । व्रजति च जल्पति च ॥ आस्यं व्यादाय स्वपिति संमील्य हसतीत्युपसंख्यानमपूर्वकालत्वात् ॥ * ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥ २२ ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकालइत्येव । आभीक्ष्ण्यं पौनःपुन्यम् । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । आभीक्ष्ण्यविशिष्टेर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । चकारात् क्त्वा च । द्विर्वचनसहितौ क्त्वाणमुलावाभीक्ष्ण्यं द्योतयतः न केवलौ । आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इत्युपसंख्यानाद् द्विर्वचनम् । भोजंभोजं व्रजति । भुक्त्वाभुक्त्वा व्रजति । पायंपायं व्रजति ॥

न यद्यनाकाङ्क्षे ॥ २३ ॥

यच्छब्दउपपदे धातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ न भवतो ऽनाकाङ्क्षे वाक्ये । यत्र ते पूर्वोत्तरे क्रिये स्तस्तच्चेद्वाक्यं न परं किं चिदाकाङ्क्षतइति । णमुलनन्तरः, क्त्वा तु पूर्वसूत्रविहितोपि प्रतिषिध्यते । यदयं भुङ्क्ते ततः पचति । यदयमधीते ततः शेते । अनाकाङ्क्षइति किम् । यदयं भुक्त्वा व्रजति अधीतएव ततः परम् ॥

विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ २४ ॥

अप्राप्तविभाषेयम् । आभीक्ष्ण्यइति नानुवर्त्तते । अग्रे प्रथम पूर्व इत्येतेषूपपदेषु समानकर्तृकयोः पूर्वकाले धातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ विभाषा भवतः । अग्रे भोजं व्रजति । अग्रे भुक्त्वा व्रजति । प्रथमं भोजं व्रजति । प्रथमं भुक्त्वा व्रजति । पूर्वं भोजं व्रजति । पूर्वं भुक्त्वा व्रजति । विभाषाग्रहणमेताभ्यां मुक्ते लडादयोपि यथा स्युः । अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति । ननु च वासरूप इति भविष्यति, क्त्वाणमुलौ यत्र सह विधीयेते तत्र वासरूपविधिर्नास्तीत्येतदनेन ज्ञाप्यते । तेनाभीक्ष्ण्ये लडादयो न भवन्ति । उपपदसमासः कस्मान्न क्रियते । उक्तं तत्रैवकारस्य प्रयोजनम् अमैव यत्तुल्यविधानमुपपदं तत्समस्यते नान्यदिति ॥

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ २५ ॥

कर्मण्युपपदे कृञो धातोः खमुञ् प्रत्ययो भवति आक्रोशे गम्यमाने । चोरंकारमाक्रोशति । चोरोसि दस्युरसि इत्याक्रोशति । चोरकरणमाक्रोशसंपादनार्थमेव न त्वसौ चोरः क्रियते ॥

स्वादुमि णमुल् ॥ २६ ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले कृञ इति चानुवर्त्तते । स्वादुमीत्यर्थग्रहणम् । स्वाद्वर्थेषूपपदेषु कृञो णमुल् प्रत्ययो भवति । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारं भुङ्क्ते । लवणंकारम् । स्वादुमीति मकारान्तनिपातनमीकाराभावार्थं, स्वन्तस्यापि मकारार्थं दीर्घाभावार्थं च । अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते स्वादुंकारं

भुङ्क्ते । व्यासरूपेण त्वापि भवति । स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते । तुमर्थाधिकाराच्च सर्वएते भावे प्रत्ययाः । यद्येवं स्वादुंकारं भुङ्क्ते देवदत्त इति णमुला कर्त्तुरनभिहितत्वात्कर्त्तरि कस्मात्तृतीया न भवति । भुजिप्रत्ययेनाभिहितः कर्त्ता । न चास्मिन्प्रकरणे शक्तिशक्तिमतोर्भेदो विवक्ष्यते । समानकर्त्तृत्वं हि विरुध्यते । प्रधानशक्त्यभिधाने वा गुणशक्तिरभिहितवत्प्रकाशते ॥

अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥ २७ ॥

कृञ इत्येव । अन्यथादिषूपपदेषु कृञो णमुल् प्रत्ययो भवति सिद्धाप्रयोगश्चेत्करोतिर्भवति । कथं पुनरसौ सिद्धाप्रयोगः । निरर्थकत्वाच्च प्रयोगमर्हतीति एवमेव प्रयुज्यते । अन्यथा भुङ्क्तइति यावानर्थस्तावानेवान्यथाकारं भुङ्क्तइति गम्यते । अन्यथाकारं भुङ्क्ते । एवंकारं भुङ्क्ते । कथंकारं भुङ्क्ते । इत्थंकारं भुङ्क्ते । सिद्धाप्रयोग इति किम् । अन्यथा कृत्वा शिरो भुङ्क्ते ॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ २८ ॥

कृञः सिद्धाप्रयोग इति वर्त्तते । यथातथाशब्दयोरुपपदयोः कृञो णमुल् प्रत्ययो भवति असूयाप्रतिवचने गम्यमाने । *यद्यसूयन्पृच्छति प्रतिवक्ति तत्र प्रतिवचनं, यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारमहं किं तवानेन । असूयाप्रतिवचनइति किम् । यथा कृत्वाऽहं भोक्ष्ये तथा त्वं द्रक्ष्यसि । सिद्धाप्रयोग इत्येव । यथा कृत्वाऽहं शिरो भोक्ष्ये किं तवानेन ॥

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ २९ ॥

कर्मण्युपपदे साकल्यविशिष्टेऽर्थे दृशिविदोर्धात्वोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । कन्यादर्शं वरयति । याया: कन्याः पश्यति तास्ता वरयतीत्यर्थः । ब्राह्मणवेदं भोजयति । यंयं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तान्सर्वान् भोजयतीत्यर्थः । साकल्यइति किम् । ब्राह्मणं दृष्ट्वा भोजयति ॥

यावति विन्दजीवोः ॥ ३० ॥

यावच्छब्दउपपदे विन्दतेर्जीवतेश्च णमुल् प्रत्ययो भवति । यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावद्भुङ्क्तइत्यर्थः । यावज्जीवमधीते । यावज्जीवति तावदधीतइत्यर्थः ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ॥ ३१ ॥

कर्मणीत्येव । चर्मोदरयोः कर्मणोरुपपदयोः पूरयतेर्णमुल् प्रत्ययो भवति । चर्मपूरं स्तृणाति । उदरपूरं भुङ्क्ते ॥

वर्षप्रमाणऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ३२ ॥

---

* असूया ज्ञमेति पुस्तकान्तरेऽधिकम् ।

कर्मणीत्येव । पूरयतेर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति, ऊलोपश्चास्य पूरयतेरन्यतरस्यां भवति समुदायेन चेद्वर्षस्य प्रमाणमियत्ता गम्यते । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः । गोष्पदप्रं वृष्टो देवः । सीतापूरं वृष्टो देवः । सीताप्रं वृष्टो देवः । अस्यग्रहणं किमर्थम् । उपपदस्य मा भूत् । मूषिकाबिलपूरं वृष्टो देवः । मूषिकाबिलप्रम् ॥

चेले क्नोपेः ॥ ३३ ॥

कर्मणि इत्येव । क्नूयी शब्दे उन्दने च । अस्माण्ण्यन्ताद्धातोश्चेलार्थेषु कर्मसु उपपदेषु णमुल् प्रत्ययो भवति वर्षप्रमाणे गम्यमाने । चेलक्नोपं वृष्टो देवः । वस्त्रक्नोपं, वसनक्नोपम् ॥

निमूलसमूलयोः कषः ॥ ३४ ॥

कर्मणीत्येव । निमूलसमूलशब्दयोः कर्मवाचिनोरुपपदयोः कषेर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निमूलं कषतीत्यर्थः । इतः प्रभृति कषादीन्यान्वक्ष्यति तत्र कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोग इति ॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ ३५ ॥

कर्मणीत्येव । शुष्कादिषु कर्मवाचिषूपपदेषु पिषेर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषं पिनष्टि । चूर्णं पिनष्टीत्यर्थः । रूक्षपेषं पिनष्टि । रूक्षं पिनष्टीत्यर्थः ॥

समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥ ३६ ॥

कर्मणीत्येव । समूल अकृत जीव इत्येतेषु शब्देषु कर्मसूपपदेषु यथासंख्यं हन् कृञ् ग्रह इत्येतेभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति । समूलघातं हन्ति । समूलं हन्तीत्यर्थः । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति ॥

करणे हनः ॥ ३७ ॥

करणउपपदे हन्तेर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । पाणिघातं वेदिं हन्ति । पादघातं भूमिं हन्ति । हिंसार्थानां च समानकर्मकाणामिति णमुलं वक्ष्यति । अहिंसार्थोयमारम्भः । नित्यसमासार्थो वा यथाविध्यनुप्रयोगार्थश्च ॥ पूर्वविप्रतिषेधेन हन्तेर्हिंसार्थस्यापि प्रत्ययोनेनैवेष्यते ॥ असिघातं हन्ति । शरघातं हन्ति ॥

स्नेहने पिषः ॥ ३८ ॥

करणइत्येव । स्निह्यते येन तत् स्नेहनम् । स्नेहनवाचिनि करणउपपदे पिषेर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि । तैलेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ ३९ ॥

करणइत्येव । हस्तइत्यर्थग्रहणम् । वर्त्तिण्यन्तः । हस्तवाचिनि करण-उपपदे वर्त्तयतेर्गृह्णातेश्च णमुल् प्रत्ययो भवति । हस्तेन वर्त्तयति । हस्तवर्त्तं वर्त्तयति । करवर्त्तम् । पाणिवर्त्तम् । ग्रहेः खल्वपि । हस्तेन गृह्णाति । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्राहम् ॥

स्वे पुषः ॥ ४० ॥

करणइत्येव । स्वइत्यर्थग्रहणम् । स्ववाचिनि करणे उपपदे पुषेर्धातोर्णमु-ल्प्रत्ययो भवति । आत्मीयज्ञातिधनवचनः स्वशब्दः । स्वपोषं पुष्णाति । आत्म-पोषम् । गोपोषम् । पितृपोषम् । मातृपोषम् । धनपोषम् । रैपोषम् ॥

अधिकरणे बन्धः ॥ ४१ ॥

अधिकरणवाचिन्युपपदे बध्नातेर्धातोर्णमुल्प्रत्ययो भवति । चक्रबन्धं बध्ना-ति । कूटबन्धं बध्नाति । मुष्टिबन्धं बध्नाति । चोरकबन्धं बध्नाति । चोरके बध्नातीत्यर्थः ॥

संज्ञायाम् ॥ ४२ ॥

संज्ञायां विषये बध्नातेर्धातोर्णमुल्प्रत्ययो भवति । क्रौञ्चबन्धं बध्नाति । मयूरिकाबन्धं बध्नाति । मयूरिकाबन्धं बद्धः । अट्टालिकाबन्धं बद्धः । बन्धवि-शेषाणां नामधेयान्येतानि ॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ ४३ ॥

जीवपुरुषयोः कर्त्तृवाचिनोरुपपदयोर्यथासंख्यं नशिवहोर्धात्वोर्णमुल् प्रत्य-यो भवति । जीवनाशं नश्यति । जीवो नश्यतीत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषः प्रेष्यो भूत्वा वहतीत्यर्थः । कर्त्तरीति किम् । जीवेन नष्टः । पुरुषेणोढः ॥

ऊर्द्ध्वे शुषिपूरोः ॥ ४४ ॥

कर्त्तृग्रहणमनुवर्त्तते ऊर्द्ध्वशब्दे कर्त्तृवाचिन्युपपदे शुषिपूरोर्धात्वोर्णमुल् प्रत्य-यो भवति । ऊर्द्ध्वशोषं शुष्यति । ऊर्द्ध्वं शुष्यतीत्यर्थः । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते । ऊर्ध्वं पूर्यतइत्यर्थः ॥

उपमाने कर्मणि च ॥ ४५ ॥

उपमीयते ऽनेनेत्युपमानम् । उपमाने कर्मण्युपपदे चकारात्कर्त्तरि धातो-र्णमुल् प्रत्ययो भवति । घृतनिधायं निहितः । घृतमिव निहित इत्यर्थः । सुव-र्णनिधायं निहितः । सुवर्णमिव निहितः । कर्त्तरि खल्वपि । अजकनाशं नष्टः । अजकइव नष्टः । चूडकनाशम् । दन्तनाशम् ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ ४६ ॥

निमूलसमूलयोरित्येतदारभ्य कषादयः। एतेषु यथाविध्यनुप्रयोगो भवति। यस्माद्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति स एवानु प्रयोक्तव्यः। ननु धातुसंबन्धे प्रत्ययविधानादनुप्रयोगः सिद्ध एव, यथाविधीति नियमार्थं वचनम्। तथा चैवोदाहृतम् ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ ४७ ॥

दंश दशने। अस्माद्धातोरुपपूर्वात्तृतीयान्तउपपदे णमुल्प्रत्ययो भवति। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशम्। आर्द्रकोपदंशम्। आर्द्रकेणोपदंशम्। अत्र विकल्पेनोपपदसमासस्तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्यामिति। मूलकादि चोपदंशेः कर्म। भुजेः करणम्। सर्वस्मिन्नेवात्र णमुल्प्रकरणे सति क्रियाभेदे वासरूपविधिना क्त्वापि भवति। मूलकेनोपदश्य भुङ्क्ते ॥

हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ ४८ ॥

तृतीयायामित्येव। हिंसा प्राण्युपघातः। तदर्थानां धातूनामनुप्रयोगधातुना समानकर्मकाणां तृतीयान्तउपपदे णमुल् प्रत्ययो भवति। दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातम्। दण्डताडम्। दण्डेन ताडम्। समानकर्मकाणामिति किम्। चोरं दण्डेनोपहत्य गोपालको गाः कालयति ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ ४९ ॥

उपशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। उपपूर्वेभ्यः पीडरुधकर्षेभ्यः सप्तम्यन्तउपपदे चकारात्तृतीयान्तउपपदे णमुल् प्रत्ययो भवति। पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडम्। पार्श्वाभ्यामुपपीडम्। व्रजोपरोधं गाः स्थापयति। व्रजे उपरोधम्। व्रजेनोपरोधम्। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। पाणावुपकर्षम्। पाणिनोपकर्षम्। कर्षतेरिदं ग्रहणं न कृषतेः ॥

समासत्तौ ॥ ५० ॥

सप्तम्यां तृतीयायामिति वर्त्तते। समासत्तिः सन्निकर्षः। समासत्तौ गम्यमानायां तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति। केशग्राहं युध्यन्ते। केशेषु ग्राहम्। केशैर्ग्राहम्। हस्तग्राहम्। हस्तेषु ग्राहम्। हस्तैर्ग्राहम्। युद्धसंरम्भादत्यन्तं सन्निकृष्यन्तइत्यर्थः ॥

प्रमाणे च ॥ ५१ ॥

तृतीयासप्तम्योरित्येव। प्रमाणमायामः दैर्घ्यम्। प्रमाणे गम्यमाने तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति। द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुले उत्कर्षं, द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम्। त्र्यङ्गुलोत्कर्षम् ॥

अपादाने परीप्सायाम् ॥ ५२ ॥

परीप्सा त्वरा । परीप्सायां गम्यमानायामपादानउपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । शय्योत्थायं धावति । शय्याया उत्थाय । एवं नाम त्वरते यदवश्यं कर्त्तव्यमपि नापेक्षते । शय्योत्थानमात्रमाद्रियते । रन्ध्रापकर्षं पयः पिबति । भ्राष्ट्रापकर्षमपूपान् भक्षयति । परीप्सायामिति किम् । आसनादुत्थाय गच्छति ॥

द्वितीयायां च ॥ ५३ ॥

परीप्सायामित्येव । द्वितीयान्तउपपदे परीप्सायां गम्यमानायां धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । यष्टिं ग्राहम् । लोष्टग्राहम् । लोष्टं ग्राहम् । एवं नाम त्वरते यदायुधग्रहणमपि नाद्रियते । लोष्टादिकं यत्किंचिदासन्नं तद् गृह्णाति ॥

स्वाङ्गे ऽध्रुवे ॥ ५४ ॥

द्वितीयायामित्येव । अध्रुवे स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्तउपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । अक्षिनिकाणं जल्पति । भ्रूविक्षेपं कथयति । अध्रुवइति किम् । उत्क्षिप्य शिरः कथयति । यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न म्रियते तदध्रुवम् । अद्रवं मूर्त्तिमत्स्वाङ्गम् ॥

परिक्लिश्यमाने च ॥ ५५ ॥

स्वाङ्ग द्वितीयायामित्येव । परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्तउपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । परिक्लेशः सर्वतो बाधनम्, दुःखनम् । उरःपेषं युद्ध्यन्ते । उरःप्रतिपेषं युद्ध्यन्ते । शिरःपेषम् । शिरःप्रतिपेषम् । कृत्स्नमुरः पीडयन्तो युध्यन्ते । ध्रुवार्थोयमारम्भः ॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ ५६ ॥

द्वितीयायामित्येव । द्वितीयान्तउपपदे विश्यादिभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति व्याप्यमाने आसेव्यमाने चार्थे गम्यमाने । विश्यादिभिः क्रियाभिरनवयवेन पदार्थानां संबन्धो व्याप्तिः । तात्पर्यमासेवा । द्रव्ये व्याप्तिः, क्रियायामासेवा । गेहानुप्रवेशमास्ते । समासेन व्याप्त्यासेवयोरुक्तत्वान्नित्यवीप्सयोरिति द्विर्वचनं न भवति । असमासपक्षे तु व्याप्यमानतायां द्रव्यवचनस्य द्विर्वचनम्, आसेव्यमानतायान्तु क्रियावचनस्य । तथा च वक्ष्यति । सुप्सु वीप्सा, तिङ्क्षु नित्यतेति । गेहंगेहमनुप्रवेशमास्ते । आसेवायाम् । गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते । पति । गेहानुप्रपातमास्ते । गेहंगेहमनुप्रपातमास्ते । गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते । पदि । गेहानुप्रपादमास्ते । गेहंगेहमनुप्रपादम् । गेहमनुप्रपादमनुप्रपादम् । स्कन्दि । गेहावस्कन्दमास्ते । गेहंगेहमवस्कन्दम् । गेह-

मवस्कन्दमवस्कन्दम् । व्याप्यमानासेव्यमानयोरिति किम् । गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते । ननु चाभीक्ष्ण्ये णमुल्विहित एव । आसेवा चाभीक्ष्ण्यमेव । किमर्थम्पुनरासेवायां णमुलुच्यते । क्त्वानिवृत्त्यर्थमिति चेत् । न, इष्टत्वात्तस्य । द्वितीयोपपदार्थं तर्हि वचनम् । उपपदसमासः पक्षे यथा स्यात् । तेन हि सत्युपपदाभावः ॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥ ५७ ॥

द्वितीयायामित्येव । क्रियामन्तरयति क्रियान्तरः, क्रियाव्यवधायकः । क्रियान्तरे धात्वर्थे वर्त्तमानाभ्यामस्यतितृषिभ्यां द्वितीयान्तेषु कालवाचिषूपपदेषु णमुल्प्रत्ययो भवति । द्व्याहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहमत्यासं गाः पाययति । त्र्यहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहतर्षं गाः पाययति । द्व्यहं तर्षं गाः पाययति । अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते । विच्छिद्यते । अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः । अस्यतितृषोरिति किम् । द्व्यहमुपोष्य भुङ्क्ते । क्रियान्तरइति किम् । अहरत्यस्येषून् गतः । न गतिर्व्यवधीयते । कालेष्विति किम् । योजनमत्यस्य गाः पाययति । अध्वकर्मकमत्यसनं व्यवधायकं न कालकर्मकम् ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ ५८ ॥

द्वितीयायामित्येव । नामशब्दे द्वितीयान्तउपपदे आदिशेर्ग्रहेश्च धातोर्णमुल्प्रत्ययो भवति । नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाचष्टे ॥

अव्यये ऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥ ५९ ॥

*अव्ययउपपदे ऽयथाभिप्रेताख्याने गम्यमाने करोतेः क्त्वाणमुलौ भवतः । ब्राह्मण पुत्रस्ते जातः, किं तर्हि वृषल नीचैः कृत्वाचक्षे । नीचैः कृत्वा । नीचैःकारम् । उच्चैर्नाम प्रियमाख्येयम् । ब्राह्मण कन्या ते गर्भिणी, किं तर्हि वृषलोच्चैः कृत्वाचक्षे । उच्चैः कृत्वा । उच्चैः कारम् । नीचैर्नामाप्रियमाख्येयम् । अयथाभिप्रेताख्यानइति किम् । उच्चैः कृत्वा ऽऽचष्टे पुत्रस्ते जात इति । क्त्वाग्रहणं किम् । यावता सर्वस्मिन्नेवात्र प्रकरणे वासरूपेण क्त्वा भवतीत्युक्तम् । समासार्थं वचनम् । तथा च क्त्वा चेत्यस्मिन्सूत्रे तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्यामिति वर्त्तते । णमुलधिकारे पुनर्णमुलग्रहणं तुल्यकक्षत्वज्ञापनार्थम् । तेनोत्तरत्र द्वयोरप्यनुवृत्तिर्भविष्यति ॥

तिर्यच्यपवर्गे ॥ ६० ॥

---

* द्वितीयायामित्येवेति कुत्र चिदधिकम् ।

तिर्यक्शब्दउपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतोऽपवर्गे गम्यमाने। अपवर्गः समाप्तिः। तिर्यक्कृत्य गतः। तिर्यक्कृत्वा गतः। तिर्यक्कारं गतः। समाप्य गत इत्यर्थः। अपवर्गइति किम्। तिर्यक्कृत्वा काष्ठं गतः। तिर्यचीति शब्दानुकरणम्। न च प्रकृतिवदनुकरणेन भवितव्यम्। अनुक्रियमाणरूपविनाशप्रसङ्गात्। एतदेश, अदसोमादिति॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः॥ ६१॥

तस्प्रत्ययो यतः स्वाङ्गात्तदेवमुच्यते। तस्प्रत्यये स्वाङ्गवाचिन्युपपदे करोतेर्भवतेश्च धात्वोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। यथासंख्यमत्र नेष्यते। अस्वरितत्वात्। मुखतःकृत्य गतः। मुखतः कृत्वा गतः मुखतःकारं गतः। पृष्ठतःकृत्य गतः। पृष्ठतः कृत्वा गतः। पृष्ठतःकारं गतः। मुखतोभूय तिष्ठति। मुखतो भूत्वा तिष्ठति। मुखतोभावं तिष्ठति। पृष्ठतोभूय गतः। पृष्ठतो भूत्वा। पृष्ठतोभावम्। स्वाङ्गइति किम्। सर्वतः कृत्वा गतः। तस्ग्रहणं किम्। मुखीकृत्य गतः। मुखीभूय गतः। प्रत्ययग्रहणं किम्। मुखे तस्यतीति मुखतः, मुखतः कृत्वा गतः॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे॥ ६२॥

नार्थो धार्थश्च प्रत्ययो यस्मात्स एवमुच्यते। नाधार्थप्रत्यये शब्दे च्व्यर्थउपपदे कृभ्वोर्धात्वोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। अनाना नाना कृत्वा गतः, नानाकृत्य गतः। नाना कृत्वा गतः। नानाकारं गतः। विनाकृत्य गतः। विना कृत्वा गतः। विनाकारं गतः। नानाभूय गतः। नाना भूत्वा गतः। नानाभावं गतः। विनाभूय गतः। विना भूत्वा गतः। विनाभावं गतः। द्विधाकृत्य गतः। द्विधाकारं गतः। द्विधा कृत्वा गतः। द्विधाभूय गतः। द्विधा भूत्वा गतः। द्विधाभावं गतः। द्वैधंकृत्य गतः। द्वैधं कृत्वा गतः। द्वैधंकारं गतः। द्वैधंभूय गतः। द्वैधं भूत्वा गतः। द्वैधंभावं गतः। प्रत्ययग्रहणं किम्। हिरुक् कृत्वा। पृथक् कृत्वा। च्व्यर्थइति किम्। नाना कृत्वा काष्ठानि गतः। धार्थमर्थग्रहणं, ना पुनरेक एव विनञ्भ्यां नानाञाविति॥

तूष्णीमि भुवः॥ ६३॥

तूष्णींशब्दउपपदे भवतेर्धातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। तूष्णींभूय। तूष्णीं भूत्वा। तूष्णींभावम्। भूग्रहणं कृञो निवृत्त्यर्थम्॥

अन्वच्यानुलोम्ये॥ ६४॥

अन्वक्शब्दउपपदे भवतेर्धातोरानुलोम्ये क्त्वाणमुलौ भवतः। आनुलोम्यमनुलोमता, अनुकूलत्वं परचित्तानुविधानम्। अन्वग्भूयास्ते। अन्वग्भूत्वास्ते। अन्वग्भावमास्ते। आनुलोम्यइति किम्। अन्वग्भूत्वा तिष्ठति॥

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषुतुमुन् ॥ ६५ ॥

शकादिषूपपदेषु अस्त्यर्थेषु वा धातुमात्रात्तुमुन् प्रत्ययो भवति । अक्रियार्थोपपदार्थोयमारम्भः । शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति भोक्तुम् । ग्लायति भोक्तुम् । घटते भोक्तुम् । आरभते भोक्तुम् । लभते भोक्तुम् । प्रक्रमते भोक्तुम् । सहते भोक्तुम् । अर्हति भोक्तुम् । अस्त्यर्थेषु खल्वपि । अस्ति भोक्तुम् । भवति भोक्तुम् । विद्यते भोक्तुम् ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ ६६ ॥

पर्याप्तिरन्यूनता । पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषूपपदेषु धातोस्तुमुन्प्रत्ययो भवति । पर्याप्तो भोक्तुम् । अलं भोक्तुम् । भोक्तुं पारयति । पर्याप्तिवचनेष्विति किम् । अलं कृत्वा । अलमर्थेष्विति किम् । पर्याप्तं भुङ्क्ते । पूर्वसूत्रे शकिग्रहणमनलमर्थम् । शक्यमेवं कर्त्तुमिति ॥

कर्त्तरि कृत् ॥ ६७ ॥

कृत्संज्ञकाः प्रत्ययाः कर्तरि कारके भवन्ति । कृदुत्पत्तिवाक्यानामयर्थशेषः । तत्र येष्वर्थादेशो नास्ति तत्रेदमुपतिष्ठते । अर्थाकाङ्क्षित्वात् । न ल्युनादिवाक्येषु । साक्षादर्थनिर्देशे सति तेषां निराकाङ्क्षत्वात् । कारकः । कर्त्ता । नन्दनः । ग्राही । पचः ॥

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥ ६८ ॥

भव्यादयः शब्दाः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते । तयोरेव कृत्यक्तखलर्था इति भावकर्मणोः प्राप्तयोः कर्त्ता च वाच्यः पक्षे उच्यते । भवत्यसौ भव्यः । भव्यमनेनेति वा । गेयो माणवकः साम्नां, गेयानि माणवकेन सामानीति वा । प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य । प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्याय इति वा । उपस्थानीयो ऽन्तेवासी गुरोः । उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः । जायते ऽसौ जन्यः । जन्यमनेनेति वा । आप्लवते ऽसावाप्लाव्यः । आप्लाव्यमनेनेति वा । आपतत्यसावापात्यः । आपात्यमनेनेति वा ॥

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ॥ ६९ ॥

ल इत्युत्सृष्टानुबन्धं सामान्यं गृह्यते । प्रथमाबहुवचनं चैतत् । लकाराः कर्मणि कारके भवन्ति । चकारात्कर्त्तरि च । अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो भावे भवन्ति । पुनश्चकारात्कर्त्तरि च । गम्यते ग्रामो देवदत्तेन । गच्छति ग्रामं देवदत्तः । अकर्मकेभ्यः । आस्यते देवदत्तेन । आस्ते देवदत्तः । सकर्मकेभ्यो भावे न भवन्ति ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ ७० ॥

तयोरेव भावकर्मणोः कृत्यसंज्ञकाः क्तखलर्थाश्च प्रत्यया भवन्ति । एवकारः कर्तुरपकर्षणार्थः । कृत्याः कर्मणि । कर्त्तव्यः कटो भवता । भोक्तव्य ओदनो भवता । भावे । आशितव्यं भवता । शयितव्यं भवता । क्तः कर्मणि । कृतः कटो भवता । भुक्त ओदनो भवता । भावे । आसितं भवता । शयितं भवता । खलर्थाः कर्मणि । ईषत्करः कटो भवता । सुकरः । दुष्करः । भावे । ईषदाढ्यंभवं भवता । स्वाढ्यंभवं भवता । भावे चाकर्मकेभ्य इत्यनुवृत्तेस्सकर्मकेभ्यो भावे न भवन्ति ॥

आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च ॥ ७१ ॥

आदिकर्मणि यः क्तो विहितः स कर्त्तरि भवति । चकाराद्यथाप्राप्तं भावकर्मणोः । आदिभूतः क्रियाक्षण आदिकर्म, तस्मिन्नादिकर्मणि भूतत्वेन विवक्षिते यः क्तो विहितस्तस्यायमर्थनिर्देशः । प्रकृतः कटं देवदत्तः । प्रकृतः कटो देवदत्तेन । प्रकृतं देवदत्तेन । प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः । प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन । प्रभुक्तं देवदत्तेन ॥

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥ ७२ ॥

गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो ऽकर्मकेभ्यः श्लिषादिभ्यश्च यः क्तः स कर्त्तरि भवति । चकाराद्यथाप्राप्तं च भावकर्मणोः । गतो देवदत्तो ग्रामम् । गतो देवदत्तेन ग्रामः । गतं देवदत्तेन । अकर्मकेभ्यः । ग्लानो भवान् । ग्लानं भवता । आसितो भवान् । आसितं भवता । श्लिष । उपश्लिष्टो गुरुं भवान् । उपश्लिष्टो गुरुर्भवता । उपश्लिष्टं भवता । शीङ् । उपशयितो गुरुं भवान् । उपशयितो गुरुर्भवता । उपशयितं भवता । उपस्थितो गुरुं भवान् । उपस्थितो गुरुर्भवता । उपस्थितं भवता । आस । उपासितो गुरुं भवान् । उपासितो गुरुर्भवता । उपासितं भवता । वस । अनूषितो गुरुं भवान् । अनूषितो गुरुर्भवता । अनूषितं भवता । जन । अनुजातो माणवको माणविकाम् । अनुजाता माणवकेन माणविका । अनुजातं माणवकेन । रुह । आरूढो वृक्षं भवान् । आरूढो वृक्षो भवता । आरूढं भवता । जीर्यति । अनुजीर्णो वृषलीं देवदत्तः । अनुजीर्णा वृषली देवदत्तेन । अनुजीर्णं देवदत्तेन । श्लिषादयस्सोपसर्गास्सकर्मका भवन्ति तदर्थमेषामुपादानम् ॥

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ ७३ ॥

दाशगोघ्नौ शब्दौ संप्रदाने कारके निपात्येते । दाश्ट दाने, ततः पचाद्यच् । स कृत्संज्ञकत्वात्कर्त्तरि प्राप्तः, संप्रदाने निपात्यते । दाशन्ति तस्मा-

इति दाशः । आगताय तस्मै दातुं गां घ्नन्तीति गोघ्नो ऽतिथिः । टगत्र निपात्यते । निपातनसामर्थ्यादेव गोघ्न ऋत्विगादिरुच्यते, न तु चण्डालादिः । असत्यपि च गोहनने तस्य योग्यतया गोघ्न इत्यभिधीयते ॥

भीमादयो ऽपादाने ॥ ७४ ॥

भीमादयः शब्दा अपादाने निपात्यन्ते । उणादिप्रत्ययान्ता एते । भ्याधूसूभ्यो मक् भियष्षुक्चेत्येवमादयः । ताभ्यामन्यत्रोणादय इति पर्युदासे प्राप्ते निपातनमारभ्यते । भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । स्रुचः । स्रुक् । खलतिः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ ७५ ॥

उणादयः शब्दास्ताभ्यामपादानसंप्रदानाभ्यामन्यत्र कारके भवन्ति । कृत्त्वात् कर्तर्येव प्राप्ताः कर्मादिषु कथ्यन्ते । ताभ्यामिति संप्रदानार्थं प्रत्यवमर्शः । अन्यथा ह्यपादानमेव पर्युदस्येत, अनन्तरत्वात् । कृषितो ऽसौ कृषिः । तन्यतइति तन्तुः । वृत्तमिति वर्त्म । चरितं चर्म ॥

क्तो ऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ ७६ ॥

ध्रौव्यार्था अकर्मकाः प्रत्यवसानार्था अभ्यवहारार्था इति स्वनिकायप्रसिद्धिः । ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यो यः क्तो विहितः सो ऽधिकरणे भवति । चकाराद्यथाप्राप्तं च ध्रौव्यार्थेभ्यः कर्तृभावाधिकरणेषु, गत्यर्थेभ्यः कर्तृकर्मभावाधिकरणेषु, प्रत्यवसानार्थेभ्यः कर्मभावाधिकरणेषु । ध्रौव्यार्थेभ्यस्तावत् । आसितो देवदत्तः । आसितं तेन । इदमेषामासितम् । गत्यर्थेभ्यः । यातो देवदत्तो ग्रामम् । यातो देवदत्तेन ग्रामः । यातं देवदत्तेन । इदमेषां यातम् । प्रत्यवसानार्थेभ्यः । भुक्त ओदनो देवदत्तेन । भुक्त ओदनं देवदत्तः । देवदत्तेन भुक्तम् । इदमेषां भुक्तम् । कथं भुक्ता ब्राह्मणाः, पीता गाव इति । अकारो मत्वर्थीयः । भुक्तमेषामस्ति पीतमेषामस्तीति ॥

लस्य ॥ ७७ ॥

लस्येत्ययमधिकारः । अकार उच्चारणार्थः । लकारमात्रं स्थानित्वेनाधिक्रियते । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो लस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । किं चेदं लस्येति । दश लकारा अनुबन्धविशिष्टा विहिता अर्थविशेषे कालविशेषे च, तेषां विशेषकराननुबन्धानुत्सृज्य यत्सामान्यं तद्गृह्यते । षट्टित,श्चत्वारो ङितः । अक्षरसमाम्नायवदानुपूर्व्या कथ्यन्ते । लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् । इति । लकारमात्रस्य ग्रहणं कस्मान्न भवति लुनाति चूडाल इति । धात्वधिकारो ऽनुवर्तते । कर्त्रादयश्च विशेषकाः ॥

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथां-ध्वमिड्वहिमहिङ् ॥ ७८ ॥

लस्य तिबादय आदेशा भवन्ति। तिप्सिप्मिपां पकारः स्वरार्थः। इटष्टकार इटोदिति विशेषणार्थः। तिबादिभिरादेशैस्तुल्यत्वाच्च देशविध्यर्थः। महिङो ङकारस्तिङिति प्रत्याहारग्रहणार्थः। पचति। पचतः। पचन्ति। पचसि। पचथः। पचथ। पचामि। पचावः। पचामः। पचते। पचेते। पचन्ते। पचसे। पचेथे। पचध्वे। पचे। पचावहे। पचामहे। एवमन्येष्वपि लकारेषूदाहार्यम् ॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ ७९ ॥

टितो लकारस्य स्थाने यान्यात्मनेपदानि तेषां टेरेकारादेशो भवति। तथा चैवोदाहृतम्। इह कस्मान्न भवति। पचमानो यजमानः। प्रकृतैस्तिबादिभिरात्मनेपदानि विशेष्यन्ते ॥

थासस्से ॥ ८० ॥

टित इत्येव। टितो लकारस्य यस्थासस्तस्य सेशब्द आदेशो भवति। पचसे। पेचिषे। पक्तासे। पक्ष्यसे ॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ ८१ ॥

लिडादेशयोस्तझयोर्यथासंख्यमेश् इरेच् इत्येतावादेशौ भवतः। शकारः सर्वादेशार्थः। चकारः स्वरार्थः। पेचे पेचाते। पेचिरे। लेभे। लेभाते। लेभिरे ॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥ ८२ ॥

लिट इत्येव। लिडादेशानां। परस्मैपदसंज्ञकानां यथासंख्यं तिबादीनां णलादयो नवादेशा भवन्ति। लकारः स्वरार्थः। णकारो वृद्ध्यर्थः। पपाच। पेचतुः। पेचुः। पेचिथ। पपक्थ। पेचथुः। पेच। पपाच। पपच। पेचिव। पेचिम ॥

विदो लटो वा ॥ ८३ ॥

परस्मैपदानामित्येव। विद ज्ञाने। अस्माद्धातोः परेषां लडादेशानां परस्मैपदानां णलादयो नव विकल्पेनादेशा भवन्ति। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। न च भवति। वेत्ति। वित्तः। विदन्ति। वेत्सि। वित्थः। वित्थ। वेद्मि। विद्वः। विद्मः ॥

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ ८४ ॥

परस्मैपदानामित्येव। लटो वेति च। ब्रुवः परस्य लटः परस्मैपदानां पञ्चानामादिभूतानां पञ्चैव णलादय आदेशा भवन्ति, तत्संनियोगेन च ब्रुव आहशब्द आदेशो भवति। आह। आहतुः। आहुः। आत्थ। आहथुः।

न च भवति । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि । ब्रूथः । पञ्चानामिति किम् । ब्रूथ । ब्रवीमि । ब्रूवः । ब्रूमः । आदित इति किम् । परेषां मा भूत । ब्रुव इति पुनर्वचनं स्थान्यर्थं, परस्मैपदानामेव हि स्यात् ॥

लोटो लङ्वत् ॥ ८५ ॥

अतिदेशोऽयम् । लोटो लङ्वत्कार्यं भवति । तामादयस्सलोपश्च । पचताम् । पचतम् । पचत । पचाव । पचाम । अडाटौ कस्मान्न भवतः, तथा ऋेर्जुसादेशो लङः शाकटायनस्यैवेति । वान्तु । यान्तु । विदो लटो वेत्यतो वाग्रहणमनुवर्तते । सा च व्यवस्थितविभाषा भविष्यति ॥

एरुः ॥ ८६ ॥

लोट इत्येव । लोडादेशानामिकारस्य उकारादेशो भवति । पचतु । पचन्तु ॥ हिन्योरुत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ न वोच्चारणसामर्थ्यात् । अथ वा वेति वर्त्तते, सा च व्यवस्थितविभाषा ॥

सेर्ह्यपिच्च ॥ ८७ ॥

लोट इत्येव । लोडादेशस्य सेर्हि इत्ययमादेशो भवति, अपिच्च भवति । स्थानिवद्भावात्पित्त्वं प्राप्तं प्रतिषिध्यते । लुनीहि । पुनीहि । राध्नुहि । तक्ष्णुहि ॥

वा छन्दसि ॥ ८८ ॥

अपित्त्वं विकल्प्यते । आदेशश्छन्दसि विषये हिशब्दो वाऽपिद्भवति । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः । प्रीणाहि । प्रीणीहि * ॥

मेर्निः ॥ ८९ ॥

लोट इत्येव । लोडादेशस्य मेर्निरादेशो भवति । उत्वलोपयोरपवादः । पचानि । पठानि ॥

आमेतः ॥ ९० ॥

लोट इत्येव । लोट्संबन्धिन एकारस्य आमित्ययमादेशो भवति । पचताम् । पचेताम् । पचन्ताम् ॥

सवाभ्यां वामौ ॥ ९१ ॥

लोट इत्येव । सकारवकाराभ्यामुत्तरस्य लोट्संबन्धिन एकारस्य यथासंख्यं व अम् इत्येतावादेशौ भवतः । आमोपवादः । पचस्व । पचध्वम् ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ॥ ९२ ॥

---

* युयुधि । बुबोधि । बुबुधि । इति पुस्तकान्तरेऽधिकम् ।

लोट इत्येव। लोट्संबन्धिन उत्तमपुरुषस्याडागमो भवति, स चोत्तमपुरुषः पिद्भवति। करवाणि। करवाव। करवाम। करवै। करवावहै। करवामहै ॥

एत ऐ ॥ ९३ ॥

लोडुत्तमस्येति वर्त्तते। लोडुत्तमसंबन्धिन एकारस्य ऐकारादेशो भवति। आमोपवादः। करवै। करवावहै। करवामहै। इह कस्मान्न भवति। पचावेदं, पचामेदम्। बहिरङ्गलक्षणत्वाद्गुणस्य ॥

लेटोऽडाटौ ॥ ९४ ॥

लेटोऽडाटावागमौ भवतः पर्यायेण। जोषिषत्। तारिषत्। मन्दिषत्। पताति विद्युत्। उदधिं च्यावयाति ॥

आत ऐ ॥ ९५ ॥

लेट इत्येव। लेट्संबन्धिन आकारस्य ऐकारादेशो भवति। प्रथमपुरुषमध्यमपुरुषात्मनेपदद्विवचनयोः। मन्त्रयैते। मन्त्रयैथे। करवैते। करवैथे। आटः कस्मान्न भवति। विधानसामर्थ्यात् ॥

वैतोऽन्यत्र ॥ ९६ ॥

लेट इत्येव। लेट्संबन्धिन एकारस्य वा ऐकारादेशो भवति। अन्यत्रेत्यनन्तरो विधिरपेक्ष्यते। आत ऐ इत्येतद्विषयं वर्जयित्वा एत ऐ भवति। सप्ताहानि शयै। अहमेव पशूनामीशै। मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै। मद्देवत्यान्येव वः पात्राण्युच्यान्तै। न च भवति। यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधसउत्तरम्। अन्यत्रेति किम्। मन्त्रयैते। मन्त्रयैथे ॥

इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ ९७ ॥

लेट इत्येव। लेट्संबन्धिन इकारस्य परस्मैपदविषयस्य लोपो भवति। वानुवृत्तेः पक्षे श्रवणमपि भवति। जोषिषत्। तारिषत्। मन्दिषत्। न च भवति। पताति दिद्युत्। उदधिं च्यावयाति। परस्मैपदग्रहणमिड्वहिमहिङां मा भूत् ॥

स उत्तमस्य ॥ ९८ ॥

लेट इत्येव वेति च। लेट्संबन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य वा लोपो भवति। करवाव। करवाम। न च भवति। करवावः। करवामः। उत्तमग्रहणं पुरुषान्तरे मा भूत् ॥

नित्यं ङितः ॥ ९९ ॥

लेट इति निवृत्तम्। ङितो लकारस्य य उत्तमस्तस्य नित्यं सकारस्य लोपो भवति। अपचाव। अपचाम। नित्यग्रहणं विकल्पनिवृत्त्यर्थम् ॥

इतश्च ॥ १०० ॥

ङित इत्येव । ङिल्लकारसंबन्धिन इकारस्य नित्यं लोपो भवति । अपचत् । अपाक्षीत् । परस्मैपदेष्वित्येव । अपचावहि । अपचामहि ॥

तस्थस्थमिपां तान्तंतामः ॥ १०१ ॥

ङित इत्येव । ङिल्लकारसंबन्धिनां चतुर्णां यथासंख्यं तामादय आदेशा भवन्ति । अपचताम् । अपचतम् । अपचत । अपचम् । अपाक्ताम् । अपाक्तम् । अपाक्त । अपाचम् ॥

लिङस्सीयुट् ॥ १०२ ॥

लिङादेशानां सीयुडागमो भवति । टकारो देशविध्यर्थः । उकार उच्चारणार्थः । पचेत । पचेयाताम् । पचेरन् । पक्षीष्ट । पक्षीयास्ताम् । पक्षीरन् ॥

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥ १०३ ॥

लिङ इत्येव । परस्मैपदविषयस्य लिङो यासुडागमो भवति, सीयुटोऽपवादः, स चोदात्तो भवति, ङिच्च । आगमानुदात्तत्वे प्राप्ते, ङित्त्वं तु लिङ एव विधीयते, तत्र तत्कार्याणां संभवात्, नागमस्य । कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः । स्थानिवद्भावादेव लिङादेशस्य ङित्त्वे सिद्धे यासुटो ङिद्वचनं ज्ञापनार्थं लकाराश्रयङित्त्वमादेशानां न भवतीति । अचिनवम् । अकरवम् ॥

किदाशिषि ॥ १०४ ॥

आशिषि यो लिङ् तस्य यासुडागमो भवति, स चोदात्तः, किद्भवति । प्रत्ययस्यैवेदं कित्त्वं नागमस्य प्रयोजनाभावात् । ङित्त्वे प्राप्ते कित्त्वं विधीयते । गुणवृद्धिप्रतिषेधस्तुल्यः, संप्रसारणं जागर्तेर्गुणे च विशेषः । इष्यात् । इष्यास्ताम् । इष्यासुः । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । आशिषीति किम् । वच्यात् । जागृयात् ॥

झस्य रन् ॥ १०५ ॥

लिङ इत्येव । झस्य लिङादेशस्य रन्नित्ययमादेशो भवति । झोन्तापवादः । पचेरन् । यजेरन् । कृषीरन् ॥

इटो ऽत् ॥ १०६ ॥

लिङादेशस्य इटो ऽदित्ययमादेशो भवति । पचेय । यजेय । कृषीय । हृषीय । तकारस्येत्संज्ञाप्रतिषेधः प्राप्नोति न विभक्तौ तुस्मा इति । नैवायमादेशावयवस्तकारः, किं तर्हि मुखसुखार्थं उच्चार्यते । आगमस्येटो ग्रहणं न भवति, अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्येति ॥

सुट् तिथोः ॥ १०७ ॥

लिङ इत्येव । लिङ्संबन्धिनोस्तकारथकारयोः सुडागमो भवति । तकारथकारावागमिनौ । लिङ् तद्विशेषणम् । सीयुटस्तु लिङेवागमी । तेन भिन्नविषयत्वात्सुटा बाधनं न भवति । तकारे इकार उच्चारणार्थः । कृषीष्ट कृषीयास्ताम् । कृषीरन् । कृषीष्ठाः । कृषीयास्थाम् ॥

झेर्जुस् ॥ १०८ ॥

लिङ इत्येव । लिङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति । झोन्तापवादः । पचेयुः । यजेयुः ॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ १०९ ॥

अलिङर्थ आरम्भः । सिचः परस्य अभ्यस्तसंज्ञकेभ्यो वेत्तेश्चोत्तरस्य जुस् आदेशो भवति । अभ्यस्तविदिग्रहणमसिजर्थम् । ङित इति चानुवर्त्तते । सिचस्तावत् । अकार्षुः । अहार्षुः । अभ्यस्तात् । अबिभयुः । अजिहयुः । अजागरुः । विदेः । अविदुः ॥

आतः ॥ ११० ॥

सिज्ग्रहणमनुवर्त्तते । सिच आकारान्ताच्च परस्य झेर्जुसादेशो भवति । कथमाभ्यामानन्तर्यं, सिज्लुकि कृते प्रत्ययलक्षणेन सिचोनन्तरः श्रुत्या चाकारान्तादिति । अदुः । अधुः । अस्थुः । तकारो मुखसुखार्थः । पूर्वेणैव सिद्धे नियमार्थं वचनम् । आत एव सिज्लुगन्तान्नान्यस्मादिति । अभूवन् । प्रत्ययलक्षणेन जुस्प्राप्तः प्रतिषिध्यते । तुल्यजातीयापेक्षत्वान्नियमस्य । श्रूयमाणे हि सिचि भवत्येव । अकार्षुः । अहार्षुः ॥

लङः शाकटायनस्यैव ॥ १११ ॥

आत इत्येव । आकारान्तादुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो भवति शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन । अयुः । अवुः । अन्येषां मते । अयान् । ननु ङित इत्यनुवर्त्तते । अत्र लङेवाकारान्तादनन्तरो ङित्संभवति नान्यः, तत्किं लङ्ग्रहणेन । एवं तर्हि लङेव यो लङ् विहितस्तस्य यथा स्यात् । लङ्वद्भावेन यस्तस्य मा भूत् । लोटो लङ्वदिति । यान्तु । वान्तु । सिजभ्यस्तविदिभ्यश्चेत्ययमपि झेर्जुस् लोटो न भवति । बिभ्यतु । जाग्रतु । विदन्तु । जुसभावमात्रं हि मुख्येन लङा विशेष्यते । एवकार उत्तरार्थः ॥

द्विषश्च ॥ ११२ ॥

लङः शाकटायनस्यैवेत्येव । द्विषः परस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो भवति शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन । अद्विषुः अन्येषां मते । अद्विषन् ॥

तिङ्शित्सार्वधातुकम् ॥ ११३ ॥

तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुकसंज्ञा भवन्ति । नयति । स्वपिति । रोदिति । पचमानः । यजमानः । सार्वधातुकप्रदेशाः सार्वधातुके यगित्येवमादयः ॥

आर्द्धधातुकं शेषः ॥ ११४ ॥

तिङः शितश्च वर्जयित्वा ऽन्यः प्रत्ययः शेषो धातुसंशब्दनेन विहित आर्द्धधातुकसंज्ञो भवति । लविता । लवितुम् । लवितव्यम् । धातोरित्येव । वृक्षत्वं वृक्षता ऽस्ति । लूभ्याम् । लूभिः । जुगुप्सते ॥

लिट् च ॥ ११५ ॥

लिडादेशस्तिङार्द्धधातुकसंज्ञो भवति । सार्वधातुकसंज्ञाया अपवादः । पेचिथ । शेकिथ । जग्ले । मम्ले । ननु चैकसंज्ञाधिकारादन्यत्र समावेशो भवति । सत्यम् । इह त्वेवकारो ऽनुवर्त्तते, स नियमं करिष्यति ॥

लिङाशिषि ॥ ११६ ॥

आशिषि विषये यो लिङ् स आर्द्धधातुकसंज्ञो भवति । सार्वधातुकसंज्ञाया अपवादः । समावेशश्चैवकारानुवृत्तेर्न भवति । लविषीष्ट । पविषीष्ट । आशिषीति किम् । लुनीयात् । पुनीयात् ॥

छन्दस्युभयथा ॥ ११७ ॥

छन्दसि विषये उभयथा भवति । सार्वधातुकमार्द्धधातुकं च । किं लिङेवानन्तरः संबध्यते । नैतदस्ति । सर्वमेव प्रकरणमपेक्ष्यैतदुच्यते । तिङ्शिदादि छन्दस्युभयथा भवति । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः । आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः । वर्धयन्त्विति प्राप्ते । शेषं च सार्वधातुकम् । स्वस्तये नावमिवारुहेम । लिङः सार्वधातुकत्वादस्तेर्भूभावो न भवति । लिट् सार्वधातुकम् । ससृवांसो विशृण्विरे । सोममिन्द्राय सुन्विरे । लिङ् उभयथा भवति । उपस्थेयाम शरणं बृहन्तम् । सार्वधातुकत्वाल्लिङः सलोपः । आर्द्धधातुकत्वादेत्वम् व्यत्ययो बहुलमित्यस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ तृतीयस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

समाप्तश्च तृतीयोध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ १ ॥

अधिकारोयम्। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्याम आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते-र्ङ्याप्प्रातिपदिकादित्येवं तद्वेदितव्यम्। स्वादिषु कप्पर्यन्तेषु प्रकृतिरधिक्रियते। ङीब्ङीष्ङीनां सामान्येन ग्रहणं ङीति। टाब्डाप्चापामाबिति। प्रातिपदिकमुक्तमर्थवत्कृत्तद्धितसमासाश्चेति। तेषांसमाहारनिर्देशो ङ्याप्प्रातिपदिकादिति। यद्यपि च प्रत्ययपरत्वेन पारिशेष्यादियमेव प्रकृतिर्लभ्यते, तथापि वृद्धावृद्धावर्णस्वरद्व्यज्लक्षणप्रत्ययविधौ तत्संप्रत्ययार्थं ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं कर्त्तव्यम्। इतरथा हि समर्थविशेषणमेतत्स्यात्। अथ ङ्याब्ग्रहणं किं, न प्रातिपदिकग्रहणेन लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवतीत्येव सिद्धम्। नैतदस्ति। स्वरूपविधिविषये परिभाषेयं प्रातिपदिकस्वरूपग्रहणे सति लिङ्गविशिष्टग्रहणं भवतीति। तथा च युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिरिति ज्ञापकमस्यास्तादृशमेव। किं च तदन्तात्तद्धितविधानार्थं ङ्याब्ग्रहणम्। कालितरा। हरिणितरा। खट्वातरा। मालातरा। इति। विप्रतिषेधात्तद्धितबलीयस्त्वं स्यात्॥

स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्-ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ॥ २ ॥

ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यधिकृतम्। ङ्याप्प्रातिपदिकात् स्वादयः प्रत्यया भवन्ति। उकारादयोऽनुबन्धा यथायोगमुच्चारणविशेषणार्थाः। पकारः सुबिति प्रत्याहारार्थः। संख्याकर्मादयश्च स्वादीनामर्थाः शास्त्रान्तरेण विहितास्तेन सहास्यैकवाक्यता। ङ्यन्तात्तावत्। कुमारी। गौरी। शार्ङ्गरवी। ङीब्ङीष्ङीनां क्रमेणोदाहरणम्। कुमारी। कुमार्यौ। कुमार्यः। कुमारीम्। कुमार्यौ। कुमारीः। कुमार्या। कुमारीभ्याम्। कुमारीभिः। कुमार्यै। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः। कुमार्याः। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः। कुमार्याः। कुमार्योः कुमारीणाम्। कुमार्याम्। कुमार्योः। कुमारीषु। एवं गौरी शार्ङ्गरवी चोदाहार्ये। आपः खल्वपि। खट्वा। बहुराजा। कारीषगन्ध्या। टाब्डाप्चापां क्रमेणोदाहरणम्। खट्वा। खट्वे। खट्वाः। खट्वाम्। खट्वे। खट्वाः। खट्वया। खट्वाभ्याम्। खट्वाभिः। खट्वायै। खट्वाभ्याम्। खट्वाभ्यः। खट्वायाः। खट्वाभ्याम्। खट्वाभ्यः। खट्वायाः। खट्वयोः। खट्वानाम्। खट्वायाम्। खट्वयोः। खट्वासु। एवं बहुराजाकारीषगन्ध्ये चोदाहार्ये। एवं प्रातिपदिकात्। दृषद्। दृषदौ। दृषदः। दृषदम्। दृषदौ। दृषदः। दृषदा। दृषद्भ्याम्। दृषद्भिः। दृषदे।

दृषद्भ्याम् । दृषद्भिः । दृषदः । दृषद्भ्याम् । दृषद्भ्यः । दृषदः । दृषदोः । दृषदाम् । दृषदि । दृषदोः । दृषत्सु ॥

स्त्रियाम् ॥ ३ ॥

अधिकारोयम् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः स्त्रियामित्येवं तद्वेदितव्यम् । ङ्याप्प्रातिपदिकादिति सर्वा धिकारेपि प्रातिपदिकमात्रमत्र प्रकरणे संबध्यते, ङ्यापोरनेनैव विधानात् । स्त्रियामित्युच्यते केयं स्त्री नाम । सामान्यविशेषाः स्त्रीत्वादयो गोत्वादयइव बहुप्रकारा व्यक्तयः । क्व चिदाश्रयविशेषाभावादुपदेशव्यङ्ग्या एव भवन्ति, यथा ब्राह्मणत्वादयः । स्त्रीत्वं च प्रत्ययार्थः प्रकृत्यर्थविशेषणं चेत्युभयथापि प्रयुज्यते । स्त्रियामभिधेयायां स्त्रियां वा यत्प्रातिपदिकं वर्त्ततइति । वक्ष्यति । अजाद्यतष्टाप् । अजा । देवदत्ता । स्त्रियामिति किम् । अजो देवदत्तः ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ ४ ॥

अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । पकारः स्वरसामान्यग्रहणार्थः । टकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थः । अजा । एडका । कोकिला । चटका । अश्वा । खट्वा । देवदत्ता । तपरकरणं तत्कालार्थम् । शुभंयाः कीलालपाः ब्राह्मणी । हल्ङ्याब्भ्य इति सुलोपः स्यात् । अजादिग्रहणं तु क्व चिज्जातिलक्षणे ङीषि प्राप्ते, क्व चित्तु पुंयोगलक्षणे, क्व चित्तु पुष्पफलोत्तरपदलक्षणे, क्व चित्तु वयोलक्षणे ङीपि, क्व चिट्टिल्लक्षणे । हलन्तानां त्वप्राप्त एव कस्मिंश्चिदाब् विधीयते । शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिरिति पठ्यते । तस्यायमर्थः । शूद्रशब्दष्टापमुत्पादयति जातिश्चेद्भवति । शूद्रा । पुंयोगे ङीषेव भवितव्यम् । शूद्रस्य भार्या शूद्री । महत्पूर्वस्य प्रतिषेधः । महाशूद्री । महाशूद्रशब्दो ह्याभीरजातिवचनस्तत्र तदन्तविधिना टाप् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नेति कथं तदन्तविधिः । एतदेव ज्ञापकं भवत्यस्मिन् प्रकरणे तदन्तविधिरिति, तेनातिधीवरी । अतिपीवरी । अतिभवती । इति भवति । अजा, एडका, चटका, अश्वा, मूषिकेति जातिः । बाला, होढा, पाका, वत्सा, मन्दा, विलातेति वयः । पूर्वापहरणा । अपरापहारणा । टित्, निपातनाण्णत्वम् ॥ संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ संफला । भस्त्रफला । अजिनफला । शणफला । पिण्डफला ॥ त्रिफला द्विगौ ॥ बहुव्रीहौ त्रिफली संहतिः * ॥ सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ॥ सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । काण्डपुष्पा । प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा । पाककर्णेति ङीषो ऽपवादः ॥ शूद्रा चामहत्पूर्वा जा-

* त्रिफलेत्यारभ्य संहतिरित्यन्तः पाठः पुस्तकान्तरे न दृश्यते ।

तिः ॥ क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । हलन्ताः । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । पुंयोगः । कोकिला जातिः ॥ मूलान्नञः ॥ अमूला ॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥ ५ ॥

ऋकारान्तेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । ङकारः सामान्यग्रहणार्थः । पकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थः । कर्त्री । हर्त्री । दण्डिनी । छत्रिणी ॥

उगितश्च ॥ ६ ॥

उग् इत्यत्र संभवति यथाकथंचित् तदुगिच्छब्दरूपं, तदन्तात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । भवती । अतिभवती । पचन्ती । यजन्ती ॥ धातोरुगितः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ उखास्रत् । पर्णध्वत् ब्राह्मणी ॥ अञ्चतेश्चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्राची । प्रतीची । उदीची ॥

वनो र च ॥ ७ ॥

वन्नन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, रेफश्चान्तादेशः । धीवरी । पीवरी । शर्वरी । परलोकदृश्वरी । ऋन्नेभ्य इत्येव ङीपि सिद्धे तत्सन्नियोगेन रेफविधानार्थं वचनम् ॥ वनो न हशः ॥ * ॥ प्राप्तौ ङीब्रावुभावपि प्रतिषिध्येते । सहयुध्वा ब्राह्मणी ॥

पादो ऽन्यतरस्याम् ॥ ८ ॥

पाद इति कृतसमासान्तः पादशब्दो निर्दिश्यते । पादन्तात्प्रातिपदिकादन्यतरस्यां स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । द्विपात् । द्विपदी । त्रिपात् । त्रिपदी । चतुष्पाद् । चतुष्पदी ॥

टाबृचि ॥ ९ ॥

पाद इत्येव । ऋचीत्यभिधेयनिर्देशः । ऋचि वाच्यायां पादन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । ङीपोपवादः । द्विपदा ऋक् । त्रिपदा ऋक् । चतुष्पदा ऋक् । ऋचीति किम् । द्विपदी देवदत्ता ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति । यो यः प्राप्नोति स सर्वः प्रतिषिध्यते । पञ्च ब्राह्मण्यः । सप्त । नव । दश । स्वस्रादिभ्यः । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः ॥

षट्संज्ञानामन्ते लुप्ते टाबुत्पत्तिः कस्मान्न स्यात् ।
प्रत्याहाराच्चापा सिद्धं दोषस्त्वित्त्वे तस्मान्नोभौ ॥

मनः ॥ ११ ॥

मन्नन्तात्प्रातिपदिकात् ङीप् प्रत्ययो न भवति । ऋन्नेभ्यो ङाबिति ङीप् प्राप्तो मन इति सूत्रेण प्रतिषिध्यते । दामा । दामानौ । दामानः । पामा । पामानौ । पामानः । अनिस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति । सीमा । सीमानौ । सीमानः । अतिमहिमा । अतिमहिमानौ । अतिमहिमानः ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ १२ ॥

अन्नन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति । अनुपधालोपी बहुव्रीहिरिहोदाहरणम् । उपधालोपिनो हि विकल्पं वक्ष्यति । सुपर्वा । सुपर्वाणौ । सुपर्वाणः । सुशर्मा । सुशर्माणौ । सुशर्माणः । बहुव्रीहेरिति किम् । अतिक्रान्ता राजानमतिराजी ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥

डाप् प्रत्ययो भवति उभाभ्यां मन्नन्तात्प्रातिपदिकादनन्ताच्च बहुव्रीहेरन्यतरस्याम् । पामा । पामे । पामाः । सीमा । सीमे । सीमाः । न च भवति । पामानः । सीमानः । बहुव्रीहौ । बहुराजा । बहुराजे । बहुराजाः । बहुतक्षा । बहुतक्षे । बहुतक्षाः । न च भवति । बहुराजानः । बहुतक्षाणः । अन्यतरस्यांग्रहणं किमर्थम् । बहुव्रीहौ वनो र चेत्यस्यापि विकल्पो यथा स्यात् । बहुधीवा । बहुधीवरी । बहुपीवा । बहुपीवरी ॥

अनुपसर्जनात् ॥ १४ ॥

अधिकारोयम् । उत्तर सूत्रेषूपसर्जने प्रतिषेधं करोति । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो ऽनुपसर्जनादित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । टिड्ढाणञिति ङीप् । कुरुचरी । मद्रचरी । अनुपसर्जनादिति किम् । बहुकुरुचरा बहुमद्रचरा मथुरा । जातेरिति ङीष् । कुक्कुटी । शूकरी । अनुपसर्जनादिति किम् । बहुकुक्कुटा बहुशूकरा मथुरा । कथं पुनरुपसर्जनात्प्रत्ययप्रसङ्गः । तदन्तविधिना । ज्ञापितं चैतदस्त्यत्र प्रकरणे तदन्तविधिरिति । तथा च प्रधानेन तदन्तविधिर्भवति । कुम्भकारी । नगरकारी । न चाणिति कृद्ग्रहणं तद्धितोप्यणस्ति ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् ॥ १५ ॥

अत इति सर्वत्रानुवर्त्तते । तत्सति संभवे विशेषणं भवति । टिड्ढादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । टापो ऽपवादः । टितस्तावत् । कुरुचरी । मद्रचरी । इह कस्मान्न भवति । पचमाना । यजमाना । लुनु-

बन्धकत्त्वाल्लटः । ल्युडादिषु कथं, टित्करणसामर्थ्यात् । इतरत्र तु टेरेत्वं फलम् । पठिता विद्येति आगमटित्त्वमनिमित्तं, ट्युट्युलौ तुट् चेति लिङ्गात् । ठ । सौपर्णेयी । वैनतेयी । निरनुबन्धको ढशब्दः स्त्रियां नास्तीति निरनुबन्धकपरिभाषा न प्रवर्तते । अण् । कुम्भकारी । नगरकारी । औपगवी । णो ऽपि क्वचिदण्कृतं कार्यं भवति । चौरी । तापसी । दाण्डा मौष्टेत्यत्र न भवति । अञ् । औत्सी । औदपानी । शार्ङ्गरवाद्यञ इति पुनरञो ग्रहणं जातिलक्षणं ङीषं बाधितुम् । द्वयसच् । ऊरुद्वयसी । जानुद्वयसी । दघ्नच् । ऊरुदघ्नी । जानुदघ्नी । मात्रच् । ऊरुमात्री । जानुमात्री । तयप् । पञ्चतयी । दशतयी । ठक् । आक्षिकी । शालाकिकी । ठञ् । लावणिकी । ठक्ठञोर्भेदेन ग्रहणं ठनादिनिवृत्त्यर्थम् । कञ् । यादृशी । तादृशी । क्वरप् । इत्वरी । नश्वरी । ख्युन् । आढ्यंकरणी । सुभगंकरणी ॥ नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तीकी । याष्टीकी । तरुणी । तलुनी ॥

यञश्च ॥ १६ ॥

ङीबित्येव । यञन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । गार्गी । वात्सी ॥ अपत्यग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । द्वीपादनुसमुद्रं यञ् । द्वैप्या । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

प्राचां ष्फ तद्धितः ॥ १७ ॥

यञ इत्येव । प्राचामाचार्याणां मतेन यञन्ताद् स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञः । षकारो ङीषर्थः । प्रत्ययद्वयेनेह स्त्रीत्वं व्यज्यते । तद्धितग्रहणं प्रातिपदिकसंज्ञार्थम् । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी । अन्येषाम् । गार्गी । वात्सी । सर्वत्र ग्रहणमुत्तरसूत्रादिहापकृष्यते, बाधकबाधनार्थम् । आवट्याच्चापं वक्ष्यति, तमपि बाधित्वा प्राचां ष्फ एव यथा स्यात् । आवट्यायनी

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ १८ ॥

यञ इत्येव । पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं वचनम् । सर्वत्र लोहितादिभ्यः कतपर्यन्तेभ्यो यञन्तेभ्यः स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति । कतशब्दः स्वतन्त्रं यत्प्रातिपदिकं तदवधित्वेन परिगृह्यते कपिशब्दात्परः कथिकतेति, न प्रातिपदिकावयवः कुरुकतेति । लौहित्यायनी । शांशित्यायनी । बाभ्रव्यायणी ॥

कण्वात्तु शकलः पूर्वः कतादुत्तर इष्यते ।
पूर्वोत्तरौ तदन्तादी ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम् ॥

प्रातिपदिकेष्वन्यथा पाठः स एवं व्यवस्थापयितव्य इति मन्यते । कतन्तेभ्य इति बहुव्रीहितत्पुरुषयोरेकशेष,स्तथा कण्वादिभ्यो गोत्रइति । तत्र

तत्पुरुषवृत्त्या संगृहीतो मध्यपाती शकलशब्दो यञन्तः प्रत्ययद्वयमपि प्रतिपद्यते । शाकल्यायनी । शाकल्यस्येमे छात्राः शाकलाः ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ १९ ॥

कौरव्य माण्डूक इत्येताभ्यां स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति । कुर्वादिभ्यो ण्ये कृते ढक्च मण्डूकादित्यणि च । यथाक्रमं टाब्ङीपोरपवादः । कौरव्यायणी । माण्डूकायनी । कथं कौरवी सेना, तस्येदंविवक्षायामणि कृते भविष्यति ॥ कौरव्यमाण्डूकयोरासुरेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ आसुरायणी । शैषिकेष्वर्थेषु इञश्चेत्यणि प्राप्ते छप्रत्यय इष्यते ॥ आसुरीयः कल्पः ॥

वयसि प्रथमे ॥ २० ॥

कालकृतशरीरावस्था यौवनादिर्वयः । प्रथमे वयसि यत्प्रातिपदिकं श्रुत्या वर्तते ततः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । कुमारी । किशोरी । बर्करी । प्रथमइति किम् । स्थविरा । वृद्धा । अत इत्येव । शिशुः ॥ वयस्यचरमइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वधूटी । चिरण्टी । द्वितीयवयोवचनावेतौ । प्राप्तयौवना स्त्र्यभिधीयते । कथं कन्या, कन्यायाः कनीन चेति ज्ञापकात् । उत्तानशया लोहितपादिकेति नैता वयःश्रुतयः ॥

द्विगोः ॥ २१ ॥

द्विगुसंज्ञकात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । पञ्चपूली । दशपूली । कथं त्रिफला । अजादिषु दृश्यते ॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ २२ ॥

पूर्वेण ङीप् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । अपरिमाणान्ताद् द्विगोर्बिस्ताचितकम्बल्यान्ताच्च तद्धितलुकि सति ङीप् प्रत्ययो न भवति । बिस्तादीनां परिमाणार्थं ग्रहणम् । सर्वतो मानं परिमाणम् । अपरिमाणान्तात्तावत् । पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा । दशाश्वा । तेन क्रीतम् । अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायामिति लुक् । कालः संख्या च न परिमाणम् । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता द्विशता । त्रिशता । बिस्तादिभ्यः । द्विबिस्ता । त्रिबिस्ता । द्व्याचिता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । त्रिकम्बल्या । अपरिमाणेति किम् । द्व्याढकी । त्र्याढकी । तद्धितलुकीति किम् । समाहारे पञ्चाश्वी । दशाश्वी ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ २३ ॥

काण्डशब्दान्ताद् द्विगोस्तद्धितलुकि सतिक्षेत्रे वाच्ये ङीप् प्रत्ययो न भवति । द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः क्षेत्रभक्तेः । प्रमाणे द्वयसजिति विहितस्य तद्धितस्य प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति लुकि कृते द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः । त्रिकाण्डा

त्रभक्तिः । काण्डशब्दस्यापरिमाणवाचित्वात्पूर्वेणैव प्रतिषेधे सिद्धे क्षेत्रे नियमार्थं वचनम् । इह मा भूत् । द्विकाण्डी रज्जुस्त्रिकाण्डी रज्जुरिति । प्रमाणविशेषः काण्डम् ॥

पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ २४ ॥

द्विगोस्तद्धितलुकीत्येव । प्रमाणे यः पुरुषशब्दस्तदन्ताद् द्विगोस्तद्धितलुकि सति अन्यतरस्यां न ङीप् प्रत्ययो भवति । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः द्विपुरुषा, द्विपुरुषी । त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी । अपरिमाणान्तत्वाच्चित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थं वचनम् । प्रमाणइति किम् । द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा । त्रिपुरुषा । तद्धितलुकीत्येव । समाहारे द्विपुरुषी, त्रिपुरुषी ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ २५ ॥

ऊधस्शब्दान्ताद्बहुव्रीहेः । स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । ऊधसोनङिति समासान्ते कृते अनो बहुव्रीहेरिति डाप्प्रतिषेधयोः प्राप्तयोरिदमुच्यते । घटोध्नी । कुण्डोध्नी । बहुव्रीहेरिति किम् । प्राप्ता ऊधः, प्राप्तोधाः । अन उपधालोपिन इत्यस्यापि ङीपोयमुत्तरत्रानुवृत्तेर्बाधक इष्यते । समासान्तश्च स्त्रियामेव, इह न भवति महोधाः पर्जन्य इति ॥

संख्याव्ययादेर्ङीप् ॥ २६ ॥

पूर्वेण ङीषि प्राप्ते ङीब्विधीयते । संख्यादेरव्ययादेश्च बहुव्रीहेरूधःशब्दान्ताद् ङीप् प्रत्ययो भवति । संख्यादेस्तावत् । द्व्यूध्नी । त्र्यूध्नी । अव्ययादेः । अत्यूध्नी । निरूध्नी । आदिग्रहणं किम् । द्विविधोध्नी त्रिविधोध्नीत्यत्रापि यथा स्यात् ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ २७ ॥

ऊधस इति निवृत्तम् । संख्याग्रहणमनुवर्त्तते नाव्ययग्रहणम् । संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामशब्दान्ताद्धायनशब्दान्ताच्च स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । दामान्तात् डाप्प्रतिषेधविकल्पेषु प्राप्तेषु नित्यार्थं वचनम् । द्विदाम्नी । त्रिदाम्नी । हायनान्तादपि प्राप्ते, द्विहायनी । त्रिहायणी । चतुर्हायणी ॥ हायनो वयसि स्मृतः ॥ * ॥ तेनेह न भवति, द्विहायना शाला । त्रिहायना । चतुर्हायना ॥ णत्वमपि त्रिचतुर्भ्यां हायनस्येति वयस्येव स्मर्यते ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥

बहुव्रीहेरित्येव । अवन्तो यो बहुव्रीहिरुपधालोपी तस्मादन्यतरस्यां ङीप् प्रत्ययो भवति । ङीपा मुक्ते डाप्प्रतिषेधौ भवतः । किमर्थं तर्हीदमुच्यते, ननु सिद्धा एव डाप्प्रतिषेधङीपः । अनुपधालोपिनो ङीप्प्रतिषेधार्थं

वचनम् । बहुराजा । बहुराज्ञा । बहुराजे । बहुतक्षा । बहुतक्ष्णी । बहुतक्षे । अन इति किम् । बहुमत्स्या । उपधालोपिनः किम् । सुपर्वा । सुपर्वे । सुपर्व्वा । सुपर्व्वाणौ । सुपर्व्वाणः । डाप्प्रतिषेधावेवात्र भवतः ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ २९ ॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनः संज्ञायां विषये छन्दसि च नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति । विकल्पस्यापवादः । सुराज्ञी । अतिराज्ञी नाम ग्रामः । छन्दसि । गौः पञ्चदाम्नी । एकदाम्नी । द्विदाम्नी । एकमूर्द्ध्नी । समानमूर्द्ध्नी ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमङ्गल-भेषजाच्च ॥ ३० ॥

संज्ञाछन्दसोरित्येव । केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संज्ञायां छन्दसि विषये स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । केवली । केवलेति भाषायाम् । मामकी । मामिकेति भाषायाम् । मित्रावरुणयोर्भागधेयी । भागधेयेति भाषायाम् । पापी त्वियम् । पापेति भाषायाम् । उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये । अपरेति भाषायाम् । समानी प्रवाणी । समानेति भाषायाम् * ॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ३१ ॥

जस्विषयादन्यत्र संज्ञायां छन्दसि च रात्रिशब्दाद् ङीप् प्रत्ययो भवति । या रात्री सृष्टा । रात्रीभिः । अजसाविति किम् । यास्ता रात्रयः ॥ अजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ रात्रिं सहोषित्वा । कथं तिमिरपटलैरवगुण्ठिताश्च रात्र्यः, ङीषयं बह्वादिलक्षणस्तत्र हि पठ्यते कृदिकारादक्तिनः, सर्वतोक्तिन्नर्थादित्येकेइति ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ३२ ॥

प्रकृतिर्निपात्यते नुगागमस्तु विधीयते । अन्तर्वत्पतिवतोर्नुग्भवति ङीप् च प्रत्ययः, स तु नकारान्तत्वादेव सिद्धः । निपातनसामर्थ्याच्च विशेषे वृत्तिर्भवति । अन्तर्वत्पतिवदिति गर्भभर्तृसंयोगे, इह न भवति । अन्तरस्यां शालायां विद्यते । पतिमती पृथिवी । अन्तर्वदिति मतुन्निपात्यते, वत्वं सिद्धम् । पतिवदिति वत्वं निपात्यते, मतुप्सिद्धः । अन्तर्वत्नी गर्भिणी । पतिवत्नी जीवत्पतिः ॥

अन्तर्वत्पतिवतोस्तु मतुब्वत्वे निपातनात् ।
गर्भिण्यां जीवत्पत्यां च वा छन्दसि तु नुग्विधिः ॥

---

* आर्यकृती, आर्यकृतेति भाषायाम् । सुमङ्गली, सुमङ्गलेति भाषायाम् । भेषजी, भेषजेति भाषायाम् । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

सान्तर्वत्नी देवानुपैत् । सान्तर्वती देवानुपैत् । पतिवत्नी तरुणवत्सा । पतिवती तरुणवत्सा ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ३३ ॥

पतिशब्दस्य नकारादेशः स्त्रियां विधीयते । ङीप् प्रत्ययस्तु नकारान्तत्वादेव सिद्धः । यज्ञसंयोगे, यज्ञेन संयोगो यज्ञसंयोगः । तत्साधनत्वात्फलग्रहीतृत्वाद्वा यजमानस्य पत्नी । पत्नि वाचं यच्छ । यज्ञसंयोगइति किम् । ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी । कथं वृषलस्य पत्नी । उपमानाद्भविष्यति ॥

विभाषा सपूर्वस्य ॥ ३४ ॥

पत्युर्न इति वर्त्तते । पतिशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य सपूर्वस्यानुपसर्जनस्य स्त्रियां विभाषा नकारादेशो भवति, ङीप् तु लभ्यतएव । वृद्धपतिः । वृद्धपत्नी । स्थूलपतिः । स्थूलपत्नी । अप्राप्तविभाषेयमयज्ञसंयोगत्त्वात् । सपूर्वस्येति किम् । पतिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ३५ ॥

सपत्न्यादिषु नित्यं पत्युर्नकारादेशो भवति, ङीप् तु लभ्यतएव । पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते वचनम् । नित्यग्रहणं विस्पष्टार्थम् । समानः पतिरस्याः सपत्नी । एकपत्नी । समानादिष्विति वक्तव्ये समानस्य सभावार्थं वचनम् । समान । एक । वीर । पिण्ड । भ्रातृ । पुत्र ॥ दासाच्छन्दसि ॥

पूतक्रतोरै च ॥ ३६ ॥

पूतक्रतुशब्दस्य स्त्रियामैकारश्चान्तादेशो भवति ङीप् प्रत्ययः । पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी । त्रय । एते योगाः पुंयोगप्रकरणे द्रष्टव्याः । यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥ ३७ ॥

वृषाकप्यादीनामुदात्त ऐकारादेशो भवति स्त्रियां ङीप् च प्रत्ययः । वृषाकपिशब्दो मध्योदात्त उदात्तत्वं प्रयोजयति । अग्न्यादिषु पुनरन्तोदात्तेषु स्थानिवद्भावादेव सिद्धम् । वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी । अग्नायी । कुसितायी । कुसीदायी । पुंयोगइत्येव । वृषाकपिः स्त्री ॥

मनोरौ वा ॥ ३८ ॥

ऐ उदात्त इति वर्त्तते । मनुशब्दात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति औकारश्चान्तादेश ऐकारश्चोदात्तः । वाग्रहणेन द्वावपि विकल्प्येते । तेन त्रैरूप्यं भवति । मनोः स्त्री मनायी । मनावी । मनुः । मनुशब्द आद्युदात्तः ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ३९ ॥

वेति वर्त्तते। वर्णवाचिनः प्रातिपदिकादनुदात्तान्तात्तकारोपधाद्वा ङीप् प्रत्ययो भवति, तकारस्य नकारादेशो भवति। एता। एनी। श्येता। श्येनी। हरिता। हरिणी। सर्वएते आद्युदात्ताः। वर्णानां तणतिनितान्तानामिति वचनात्। वर्णादिति किम्। प्रकृता। प्रसुता। गतिस्वरेणाद्युदात्तः। अनुदात्तादिति किम्। श्वेता। घृतादित्वादन्तोदात्तः। तोपधादिति किम्। अन्यतो ङीषं वक्ष्यति। अत इत्येव, शितिर्ब्राह्मणी॥ पिशङ्गादुपसंख्यानम्॥ * ॥ पिशङ्गी॥ असितपलितयोः प्रतिषेधः॥ * ॥ असिता। पलिता॥ छन्दसि क्नमित्येके॥ * ॥ असिक्नी। पलिक्नी॥ भाषायामपीष्यते॥ गतो गणस्तूर्णमसिक्निकानाम्॥

अन्यतो ङीष्॥ ४०॥

वेति निवृत्तं, वर्णादनुदात्तादिति वर्त्तते, तोपधापेक्षमन्यत्वम्। वर्णवाचिनः प्रातिपदिकादनुदात्तान्तात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। स्वरे विशेषः। सारङ्गी। कल्माषी। शबली। वर्णादित्येव। खट्वा। अनुदात्तादित्येव। कृष्णा। कपिला॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ ४१ ॥

ङीषनुवर्त्तते। षिद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। शिल्पिनि ष्वुन्। नर्त्तकी। खनकी। रजकी। गौरादिभ्यः। गौरी। मत्सी। गौर। मत्स्य। मनुष्य। शृङ्ग। हय। गवय। मुकय। ऋष्य। पुट। द्रुण। द्रोण। हरिण। कण। पटर। उकण। आमलक। कुवल। बदर। बिम्ब। तर्कार। शर्कार। पुष्कर। शिखण्ड। सुषम। सलन्द। गडुज। आनन्द। सृपाट। सृगेठ। आढक। शष्कुल। सूर्म। सुब। सूर्य्य। पूष। मूष। घातक। सकलूक। सल्लक। मालक। मालत। साल्वक। वेतस। अतस। पृस। मह। मठ। छेद। श्वन्। तक्षन्। अनडुही। अनड्वाही। एषण, करण। देह। काकादन। गवादन। तेजन। रजन। लवण। पान। मेध। गौतम। आप। स्थूण। भौरि। भौलिकि। भौलिङ्गि। औद्गाहमानि। आलिङ्गि। आपिच्छिक। आरट। टोट। नट। नाट। मूलाट। शातन। पातन। पावन। आस्तरण। अधिकरण। एत। अधिकार। आग्रहायणी। प्रत्यवरोहिणी। सेवन। सुमङ्गलात्संज्ञायाम्। सुन्दर। मण्डल। पट। पिण्ड। विटक। कुर्द्द। गूर्द्द। पाण्ट। लोफाण्ट। कन्दर। कन्दल। तरुण। तलुन। बृहत्। महत्। सौधर्म्म। रोहिणी, नक्षत्रे। रेवती, नक्षत्रे। विकल। निष्कल।

पुष्कल । कटाच्छ्रोणिवचने* । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली । हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरी । पृथिवी । क्रोष्ट्री । मातामह । पितामह । मातामहपितामहयोर्मातरि पिच्चेति षित्त्वादेव सिद्धे ज्ञापनार्थं वचनम् । अनित्यः षिल्लक्षणो ङीषिति, तेन दंष्ट्रेत्युपपन्नं भवति ॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद्वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥ ४२ ॥

जानपदादिभ्य एकादशभ्यः प्रातिपदिकेभ्य एकादशसु वृत्त्यादिष्वर्थेषु यथासंख्यं ङीष् प्रत्ययो भवति । जानपदी भवति वृत्तिश्चेत् । जानपदी अन्या, स्वरे विशेषः । उत्सादिपाठादञि कृते ङीपाद्युदात्तत्वं भवति । कुण्डी भवति, अमत्रं चेत् । कुण्डान्या । गोणी भवत्यावपनं चेत् । गोणान्या । स्थली भवति अकृत्रिमा चेत् । स्थलान्या । भाजी भवति श्राणा चेत्, पक्वेत्यर्थः । भाजाऽन्या । नागी भवति स्थौल्यं चेत् । नागाऽन्या । नागशब्दो गुणवचनः स्थौल्ये ङीषमुत्पादयति, अन्यत्र गुणएव टापम् । जातिवचनात्तु जातिलक्षणो ङीषेव भवति । नागी । काली भवति वर्णश्चेत् । कालाऽन्या । नीली भवति अनाच्छादनं चेत् । नीलाऽन्या । न च सर्वस्मिन्ननाच्छादनमिष्यते, किं तर्हि नीलाद्रोषधौ, प्राणिनि च । नीली ओषधिः । नीली गौः । नीली वडवा ॥ संज्ञायां वा ॥ नीली । नीला । कुशी भवत्ययोविकारश्चेत् । कुशान्या । कामुकी भवति मैथुनेच्छा चेत् । कामुकान्या । मैथुनेच्छावती भण्यते, नेच्छामात्रम् । कबरी भवति केशवेशश्चेत् । कबरान्या ॥

शोणात्प्राचाम् ॥ ४३ ॥

शोणशब्दात्प्राचामाचार्याणां मतेन स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । शोणी, शोणा वडवा ॥

वोतो गुणवचनात् ॥ ४४ ॥

गुणमुक्तवान् गुणवचनः । गुणवचनात्प्रातिपदिकाद् उकारान्तात् स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति । पटुः । पट्वी । मृदुः । मृद्वी । उत इति किम् । शुचिरियं ब्राह्मणी । गुणवचनादिति किम् । आखुः ॥ वसुशब्दाद्गुणवचनाद् ङीषा-

* पिङ्गल । भद्र । दहन । कन्द । काकण ।
एते शब्दा अत्र गणे पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ॥

र्थुदात्तर्थम् ॥ * ॥ वस्वी ॥ खरुसंयोगोपधात्प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ खरुरियं ब्राह्मणी । पाण्डुरियं ब्राह्मणी ॥

सत्त्वे निविशतेपैति पृथग् जातिषु दृश्यते ।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सो ऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः ॥

बह्वादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥

बहु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति । बह्वी । बहुः । पद्धति । अङ्कति । अञ्चति । अंहति । वहति । शकटि । शक्ति, शस्त्रे । शारि । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि ॥ इतः प्राण्यङ्गात् ॥ कृदिकारादक्तिनः ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ॥ चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशङ्कट । भरुज । ध्वज ॥ चन्द्रभागान्नद्याम् ॥ कल्याण । उदार । पुराण । अहन् । बहुशब्दो गुणवचन एव तस्येह पाठ उत्तरार्थः ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ४६ ॥

बह्वादिभ्यश्छन्दसि विषये नित्यं स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् । बह्वी नाम ओषधी भवति । नित्यग्रहणमुत्तरार्थम् ॥

भुवश्च ॥ ४७ ॥

छन्दसि विषये स्त्रियां भुवो नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति । विभ्वी च । प्रभ्वी च । सुभ्वी च * । इह कस्मान्न भवति स्वयंभूः । उत इति तपरकरणमनु वर्त्तते । ह्रस्वादेवेयं पञ्चमी । भुव इति सौत्रो निर्देशः ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः । पुंयोगाद्धेतोर्यत्प्रातिपदिकं स्त्रियां वर्त्तते पुंस आख्याभूतं तस्माद् ङीष् प्रत्ययो भवति । गणकस्य स्त्री गणकी महामात्री । प्रष्ठी । प्रचरी । पुंसि शब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य संभवात् पुंशब्दा एते, तद्योगात्स्त्रियां वर्त्तन्ते । पुंयोगादिति किम् । देवदत्ता । यज्ञदत्ता । आख्याग्रहणं किम् । परिसृष्टा । प्रजाता । पुंयोगादेते शब्दाः स्त्रियां वर्तन्ते, न तु पुमांसमाचक्षते ॥ गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥ * ॥ गोपालकस्य स्त्री गोपालिका ॥ सूर्याद्देवतायां चाब्वक्तव्यः ॥ * ॥ सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायामिति किम् । सूरी ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ॥ ४९ ॥

इन्द्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, आनुक्चा-

* शंभ्वीती पा० ।

गमः । येषामत्र पुंयोगएवेष्यते तेषामानुगागममात्रं विधीयते । प्रत्ययस्तु पूर्वेणैव सिद्धः । अन्येषां तूभयं विधीयते । इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ॥ हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥ * ॥ महद्धिमं हिमानी । महदरण्यमरण्यानी ॥ यवाद्दोषे ॥ * ॥ दुष्टो यवो यवानी ॥ यवनाल्लिप्याम् ॥ * ॥ यवनानी लिपिः ॥ * ॥ उपाध्यायमातुलाभ्यां वा ॥ * ॥ उपाध्यायी । उपाध्यायानी । मातुली । मातुलानी ॥ आचार्यादणत्वं च ॥ * ॥ आचार्यानी । आचार्या ॥ आर्यक्षत्रियाभ्यां वा ॥ * ॥ आर्याणी । आर्या । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया । विना पुंयोगेन स्वार्थएवायं विधिः । पुंयोगे तु ङीषेव भवितव्यम् । आर्यी । क्षत्रियी ॥ मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥ * ॥ रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ ॥

क्रीतात्करणपूर्वात् ॥ ५० ॥

करणं पूर्वमस्मिन्निति करणपूर्वं प्रातिपदिकम् । क्रीतशब्दान्तात्प्रातिपदिकात्करणपूर्वात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती । वसनक्रीती । करणपूर्वादिति किम् । सुक्रीता । दुष्क्रीता । इह कस्मान्न भवति ।

सा हि तस्य धनक्राता प्राणेभ्योपि गरीयसी ।

इति । ङीबन्तेन समासः । अत इति चानुवर्त्तते । गति कारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेरिति । बहुलं तदुच्यते, कर्तृकरणे कृता बहुलमिति ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ५१ ॥

करणपूर्वादित्येव । करणपूर्वात्प्रातिपदिकात् क्तान्तादल्पाख्यायां ङीष् प्रत्ययो भवति । अल्पाख्यायामिति समुदायोपाधिः । अभ्रविलिप्ती द्यौः । सूपविलिप्ती पात्री । अल्पसूपेत्यर्थः । अल्पाख्यायामिति किम् । चन्दनानुलिप्ता ब्राह्मणी ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ५२ ॥

क्तादित्येव । बहुव्रीहिर्योन्तोदात्तस्तस्मात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । स्वाङ्गपूर्वपदो बहुव्रीहिरिहोदाहरणम् । अस्वाङ्गपूर्वपदाद्विकल्पं वक्ष्यति । शङ्खभिन्नी । ऊरुभिन्नी । गलकोत्कृत्ती । केशलूनी । बहुव्रीहेरिति किम् । पादपतिता ॥ अन्तोदात्तज्जातप्रतिषेधः ॥ * ॥ दन्तजाता । स्तनजाता ॥ पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥ * ॥ पाणिगृहीती भार्या । यस्यास्तु कथं चित्पाणिर्गृह्यते पाणिगृहीता सा भवति ॥ अबहुनञ् सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बहुकृता । नञ् । अकृता । सु । सुकृता । काल । मासजाता । संवत्सरजाता । सुखादिः । सुखजाता । दुःखजाता । जातिकालसुखादिभ्योनाच्छादनादित्येवमादिना बहुव्रीहेरन्तोदात्तत्वम् ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ५३ ॥

अन्तोदात्तात् क्तान्तादित्यनुवर्त्तते। अस्वाङ्गपूर्वपदादन्तोदात्तात् क्तान्ताद्बहुव्रीहेः स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते। शार्ङ्गजग्धी। शार्ङ्गजग्धा। पलाण्डुभक्षिती। पलाण्डुभक्षिता। सुरापीती। सुरापीता। अस्वाङ्गपूर्वपदादिति किम्। शङ्खभिन्नी। ऊरुभिन्नी। अन्तोदात्तादित्येव। वस्त्रच्छन्ना वसनच्छन्ना॥ बहुलं संज्ञाछन्दसोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्रवृद्धविलूनी। प्रवृद्धविलूना। प्रवृद्धा चासौ विलूना चेति नायं बहुव्रीहिः॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ ५४ ॥

बहुव्रीहेः क्तान्तादन्तोदात्तादिति सर्वं निवृत्तम्। वाग्रहणमनुवर्तते। स्वाङ्गं यदुपसर्जनमसंयोगोपधं तदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति। चन्द्रमुखी। चन्द्रमुखा। अतिक्रान्ता केशान् अतिकेशी, अतिकेशा, माला। स्वाङ्गादिति किम्। बहुयवा। उपसर्जनादिति किम्। अशिखा। असंयोगोपधादिति किम्। सुगुल्फा। सुपार्श्वा॥ अङ्गगात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ मृद्वङ्गी। मृद्वङ्गा। सुगात्री। सुगात्रा। स्निग्धकण्ठी। स्निग्धकण्ठा॥

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं चेत्तेन चेत्तत्तथायुतम्॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ॥ ५५ ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्येव। बह्वच्लक्षणे संयोगोपधलक्षणे च प्रतिषेधे प्राप्ते वचनम्। सहनञ्विद्यमानलक्षणस्तु प्रतिषेधो भवत्येव। नासिकाद्यन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति। तुङ्गनासिकी। तुङ्गनासिका। तिलोदरी। तिलोदरा। बिम्बोष्ठी। बिम्बोष्ठा। दीर्घजङ्घी। दीर्घजङ्घा। समदन्ती। समदन्ता। चारुकर्णी। चारुकर्णा। तीक्ष्णशृङ्गी। तीक्ष्णशृङ्गा॥ पुच्छाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कल्याणपुच्छी। कल्याणपुच्छा॥ कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥ * ॥ कबरपुच्छी। मणिपुच्छी। विषपुच्छी। शरपुच्छी॥ उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥ * ॥ उलूकपक्षी सेना। उलूकपुच्छी शाला॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥ ५६ ॥

स्वाङ्गादिति ङीष् प्राप्तः प्रतिषिध्यते। क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति। कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। कल्याणोखा *। कल्याणबाला। कल्याणशफा। कल्याणगुदा। कल्याणघोणा।

---

* कल्याणोखेति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति।

कल्याणनखा । * कल्याणमुखा । क्रोडादिराकृतिगणः । सुभगा । सुगला । बह्वचः खल्वपि । पृथुजघना । महाललाटा ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ ५७ ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादिति नासिकोदरोष्ठजङ्घेति च प्राप्तो ङीष्प्रतिषिध्यते। सह नञ् विद्यमान इत्येवंपूर्वात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति । सकेशा। अकेशा। विद्यमानकेशा। सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका॥

नखमुखात्संज्ञायाम् ॥ ५८ ॥

नखमुखान्तात्प्रातिपदिकात्संज्ञायां स्त्रियां विषये ङीष् प्रत्ययो न भवति । शूर्पणखा । वज्रणखा । गौरमुखा । कालमुखा । संज्ञायामिति किम् । ताम्रनखी कन्या । चन्द्रमुखी ॥

दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥ ५९ ॥

दीर्घजिह्वी इति छन्दसि विषये निपात्यते । संयोगोपधत्वादप्राप्तो ङीष् विधीयते । दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट् । चकारः संज्ञानुकर्षणार्थः । दीर्घजिह्वीति निपातनं नित्यार्थम् ॥

दिक्पूर्वपदान् ङीप् ॥ ६० ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्येवमादिविधिप्रतिषेधविषयः सर्वोऽप्यपेक्ष्यते । यत्र ङीष् विहितस्तत्र तदपवादः । दिक्पूर्वपदात्प्रातिपदिकाद् ङीप् प्रत्ययो भवति । स्वरे विशेषः । प्राङ्मुखी । प्राङ्मुखा । प्राङ्नासिकी । प्राङ्नासिका । इह न भवति । प्राग्गुल्फा, प्राक्क्रोडा, प्राग्जघनेति ॥

वाहः ॥ ६१ ॥

ङीषेव स्वर्यते न ङीप् । वहेरयं ण्विप्रत्ययान्तस्य निर्देशः । सामर्थ्यात्तदन्तविज्ञानम् । वाहन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । दित्यौही । प्रष्ठौही ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ६२ ॥

सखी अशिश्वी इत्येतौ शब्दौ ङीषन्तौ भाषायां निपात्येते । सखीयं मे ब्राह्मणी । नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी । भाषायामिति किम् । सखा सप्तपदी भव । अशिशुमिव मामयं शिशुरभिमन्यते ॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ६३ ॥

जातिवाचि यत्प्रातिपदिकं न च स्त्रियामेव नियतमस्त्रीविषयमयकारोपधं च तस्मात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ॥

---

* एकस्मिन्पुस्तके कल्याणगुल्फेत्यपि दृश्यते, तच्चिन्त्यम् । संयोगोपधत्वात् ।

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक् ।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह ॥

कुक्कुटी । सूकरी । ब्राह्मणी । वृषली । नाडायनी । चारायणी । कठी । बह्वृची । जातेरिति किम् । मुण्डा । अस्त्रीविषयादिति किम् । मक्षिका । अयकारोपधादिति किम् । क्षत्रिया ॥ योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः ॥ * ॥ हयी । गवयी । मुकयी । मत्सी । मनुषी ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ॥ ६४ ॥

पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । स्त्रीविषयत्वादेतेषां पूर्वेणाप्राप्तः प्रत्ययो विधीयते । ओदनपाकी । शङ्कुकर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली । पुष्पफलमूलोत्तरपदात्तु यतो नेष्यते तदजादिषु पठ्यते । सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् । संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् । मूलान्नञ, इति ॥

इतो मनुष्यजातेः ॥ ६५ ॥

इकारान्तात्प्रातिपदिकान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । अवन्ती । कुन्ती । दाक्षी । प्लाक्षी । इत इति किम् । विट् । दरत् । मनुष्यग्रहणं किम् । तित्तिरिः । जातेरिति वर्त्तमाने पुनर्जातिग्रहणं योपधादपि यथा स्यात् । औदमेयी ॥ इञ उपसंख्यानमजात्यर्थम् ॥ * ॥ सौतङ्गमी । मौनचित्ती । सुतङ्गमादिभ्यश्चातुरर्थिक इञ् न जातिः ॥

ऊङुतः ॥ ६६ ॥

मनुष्यजातेरिति वर्त्तते । उकारान्तान्मनुष्यजातिवाचिनः प्रातिपदिकात्स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । कुरूः । ब्रह्मबन्धूः । वीरबन्धूः । ङकारो नोङ्धात्वोरिति विशेषणार्थः । दीर्घोच्चारणं कपो बाधनार्थम् अयोपधादित्येतदत्रापेक्ष्यते । अध्वर्युर्ब्राह्मणी ॥ अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अलाबूः । कर्कन्धूः । अप्राणिग्रहणं किम् । कृकवाकुः । अरज्ज्वादीनामिति किम् । रज्जुः । हनुः ॥

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ॥ ६७ ॥

बाहुशब्दान्तात्प्रातिपदिकात्संज्ञायां विषये स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । भद्रबाहूः । जालबाहूः । संज्ञायामिति किम् । वृत्तौ बाहू अस्याः वृत्तबाहुः ॥

पङ्गोश्च ॥ ६८ ॥

पङ्गुशब्दात्स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । पङ्गूः ॥ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ श्वश्रूः ॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ ६९ ॥

ऊरूत्तरपदात्प्रातिपदिकादौपम्ये गम्यमाने स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । कदलीस्तम्भोरूः । नागनासोरूः । करभोरूः । औपम्यइति किम् वृत्तोरुः स्त्री ॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥ ७० ॥

संहित शफ लक्षण वाम इत्येवमादेः प्रातिपदिकादूरूत्तरपदात्स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । अनौपम्यार्थ आरम्भः । संहितोरूः । शफोरूः । लक्षणोरूः । वामोरूः ॥ सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सहितोरूः । सहोरूः ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ ७१ ॥

कद्रुशब्दात्कमण्डलुशब्दाच्च छन्दसि विषये स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । कद्रूश्च वै सुपर्णी च । मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् । छन्दसीति किम् । कद्रुः । कमण्डलुः ॥ गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः ॥

संज्ञायाम् ॥ ७२ ॥

कद्रुकमण्डलुशब्दाभ्यां संज्ञायां विषये स्त्रियामूङ् प्रत्ययो भवति । अच्छन्दोर्थं वचनम् । कद्रूः । कमण्डलूः । संज्ञायामिति किम् । कद्रुः । कमण्डलुः ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिभ्यो ऽञन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति । शार्ङ्गरवी । कापटवी । अञन्तेभ्यः । बैदी । और्वी । जातिग्रहणं चात्रानुवर्त्तते । तेन जातिलक्षणो ङीषनेन बाध्यते, न पुंयोगलक्षणः । बैदस्य स्त्री बैदी । शार्ङ्गरव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण । गौतम । एते ऽणन्ताः । कामण्डलेय । ब्राह्मकृतेय । आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । एते ढगन्ताः । वात्स्यायन । मौञ्जायन । एतौ फगन्तौ जातिः । कैकसेयो ढगन्तः । काव्यशैव्यौ यञन्तौ । एहि, पर्येहि । इदिकारान्तौ । आश्मरथ्यो यञन्तः । औदपानः । उदपानशब्दः शुण्डिकाद्यणन्तः प्रयोजयति । अराल । चण्डाल । वतण्ड । जातिः ॥ भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम् ॥ घादिषु नित्यं ह्रस्वार्थम् ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ अत्र यथायोगं ङीबादिषु प्राप्तेषु ङीन्विधीयते ॥

यङश्चाप् ॥ ७४ ॥

यङन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति । ञ्यङः ष्यङश्च सामान्यग्रहणमेतत् । आम्बष्ठ्या । सौवीर्या । कौसल्या । ष्यङ् । कारीषगन्ध्या । वाराह्या । बालाक्या ॥ षाच्च यञः ॥ * ॥ षात्परो यो यञ् तदन्ताच्चाप्

वक्तव्यः । शार्कराक्ष्या । पौतिमाष्या । गौकक्ष्या । उत्तरसूत्रे चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः, तेन वा भविष्यति ॥

आवट्याच्च ॥ ७५ ॥

अवटशब्दो गर्गादिः । तस्माद्यञि कृते ङीपि प्राप्ते वचनमेतत् । आवट्याच्च स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति । आवट्या । प्राचां ष्फ एव, सर्वत्र यहणात् । आवट्यायनी ॥

तद्धिताः ॥ ७६ ॥

अधिकारो ऽयम् । आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेर्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तद्धितसंज्ञास्ते वेदितव्याः । वक्ष्यति । यूनस्तिः, युवतिः । बहुवचनमनुक्ततद्धितपरिग्रहार्थम् । पृथिव्या ञाञौ । अयादिपश्चाड्डिमजित्त्येवमादि लब्धं भवति । तद्धितप्रदेशाः कृत्तद्धितसमासाश्चेत्येवमादयः ॥

यूनस्तिः ॥ ७७ ॥

युवन्शब्दात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां तिः प्रत्ययो भवति । स च तद्धितसंज्ञो भवति । ङीपो ऽपवादः । युवतिः ॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥ ७८ ॥

गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोः प्रातिपदिकयोर्गुरूपोत्तमयोः स्त्रियां ष्यङादेशो भवति । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीत्यणिञोरेव विज्ञायते, न तु समुदायस्य । ङकारः सामान्यग्रहणार्थः । षकारस्तदविघातार्थः । यङश्चाबिति । उत्तमशब्दः स्वभावात् त्रिप्रभृतीनामन्त्यमक्षरमाह । उत्तमस्य समीपमुपोत्तमं, गुरुः उपोत्तमं यस्य तद्गुरूपोत्तमं प्रातिपदिकम् । करीषस्येव गन्धोस्य करीषगन्धिः । कुमुदगन्धिः । तस्यापत्यमित्यण् । तस्य ष्यङादेशः । कारीषगन्ध्या । कौमुदगन्ध्या । वराहस्यापत्यम् । अत इञ् । वाराहिः । तस्य ष्यङादेशः । वाराह्या । बालाक्या । अणिञोरिति किम् । ऋतभागस्यापत्यं, बिदादित्वादञ् । आर्त्तभागी । गुरूपोत्तमादिकं सर्वमस्तीति न त्वणिञौ । ठिड्ढाणञिति ङीबेव भवति । अनार्षयोरिति किम् । वासिष्ठी । वैश्वामित्री । गुरूपोत्तमयोरिति किम् । औपगवी । कापटवी । गोत्रइति किम् । तत्र जाता आहिच्छत्री कान्यकुब्जी ॥

गोत्रावयवात् ॥ ७९ ॥

अणिञोरित्येव । गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्याः पुणिकभुणिकमुखरप्रभृतय,स्ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशो भवति । अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः । पौणिक्या । भौणिक्या । मौखर्या । येषां त्वनन्तरापत्येपीष्यते दैवदत्त्या याज्ञदत्त्येति, ते क्रौड्यादिषु द्रष्टव्याः ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ ८० ॥

क्रौडि इत्येवमादिभ्यश्च स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति । अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः । अनणिञर्थश्च । क्रौड्या । लाड्या । क्रौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । आपक्षिति । चौपयत । चैटयत । शैकयत । बैल्वयत * । सौधातकि ॥ सूत, युवत्याम् ॥ भोज, क्षत्रिये ॥ भौरिकि । भौलिकि । शाल्मलि । शालास्थलि । कापिष्ठलि । गौलक्ष्या † ॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्यो ऽन्यतरस्याम् ॥ ८१ ॥

दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि काण्ठेविद्धि इत्येतेषामन्यतरस्यां ष्यङ् प्रत्ययो भवति । इञन्ता एते, गोत्रग्रहणं च नानुवर्त्तते । तेनोभयत्रविभाषेयम् । गोत्रे पूर्वेण ष्यङादेशः प्राप्तो विकल्प्यते, ऽगोत्रे त्वनन्तरे ऽपत्ये पक्षे विधीयते । तेन मुक्ते इतो मनुष्यजातेरिति ङीषेव भवति । दैवयज्ञ्या । दैवयज्ञी । शौचिवृक्ष्या । शौचिवृक्षी । सात्यमुग्र्या । सात्यमुग्री । काण्ठेविद्ध्या । काण्ठेविद्धी ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ ८२ ॥

त्रयमप्यधिक्रियते समर्थानामिति च प्रथमादिति च वेति च, स्वार्थिकप्रत्ययावधिश्चायमधिकारः । प्राग्दिशो विभक्तिरिति यावत् । स्वार्थिकेषु ह्यस्योपयोगो नास्ति विकल्पोपि तत्रानवस्थितः । के चिन्नित्यमेव भवन्ति । लक्षणवाक्यानि तस्यापत्यं, तेन रक्तं रागात्, तत्र भव, इत्येवमादीनि भविष्यन्ति । तेषु सामर्थ्ये सति प्रथमनिर्दिष्टादेव विकल्पेन प्रत्ययो भवतीति वेदितव्यम् । समर्थानामिति निर्द्धारणे षष्ठी । समर्थानां मध्ये प्रथमं प्रत्ययप्रकृतित्वेन निर्द्धार्यते । तस्येति सामान्यविशेषलक्षणार्थं तदीयं प्राथम्यं विशेषणं विज्ञायते । उपगोरपत्यम्, औपगवः । समर्थानामिति किम् । कम्बल उपगो,रपत्यं देवदत्तस्य । प्रथमादिति किम् । षष्ठ्यन्ताद्यथा स्यात्प्रथमान्तान्मा भूत् । वेति किम् । वाक्यमपि यथा स्यात् । उपगोरपत्यमिति । यद्येवं समासवृत्तिस्तद्धितवृत्त्या बाध्येत उपग्वपत्यमिति । नैष दोषः । पूर्वसूत्रादन्यतरस्यांग्रहणमनुवर्त्तते । तेनैतदपि भविष्यति ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ ८३ ॥

तेन दीव्यतीति वक्ष्यति । तदेकदेशो दीव्यच्छब्दो ऽवधित्वेन गृह्यते, प्राग्दीव्यत्संशब्दनाद् यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो ऽण्प्रत्ययस्तत्र भवतीति

---

* वैकल्पयत । पा० २ ।

† गौकक्ष्य । पा० २ ।

वेदितव्यम् । अधिकारः परिभाषा विधिर्वेति त्रिष्वपि दर्शनेष्वपवादविषयं परिहृत्याण् प्रवर्त्तते । वक्ष्यति । तस्यापत्यम् । औपगवः । कापटवः ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ ८४ ॥

अश्वपत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति। पत्युत्तरपदाद् ण्यं वक्ष्यति तस्यापवादः । आश्वपतम् । शातपतम् । अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति । कुलपति । गृहपति । धान्यपति । पशुपति । धर्मपति । सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति * ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥ ८५ ॥

प्राग्दीव्यत इत्येव । दिति अदिति आदित्य इत्येतेभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति । दैत्यः । आदित्यः । आदित्यम् । पत्युत्तरपदात् । प्राजापत्यम् । सैनापत्यम् ॥ यमाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ याम्यम् ॥ वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ वाच्यम् । मात्यम् । पैतृमत्यम् ॥ पृथिव्या ञाञौ ॥ * ॥ पार्थिवा । पार्थिवी ॥ देवाद्यञञौ ॥ * ॥ दैव्यम् । दैवम् ॥ बहिषष्टिलोपश्च ॥ * ॥ बाह्यः ॥ ईकक्च ॥ * ॥ बाहीकः ॥ ईकञ् छन्दसि ॥ * ॥ बाहीकः । स्वरे विशेषः । टिलोपवचनमव्ययानां भमात्रे टिलोपस्यानित्यत्वज्ञापनार्थम् । आरातीयः ॥ स्थाम्नोकारः ॥ * ॥ अश्वत्थामः ॥ लोम्नोपत्येषु बहुषु ॥ * ॥ उडुलोमाः । शरलोमाः । बहुष्विति किम् । औडुलोमिः । शारलोमिः ॥ सर्वत्र गोरजादिप्रत्ययप्रसङ्गे यत् ॥ * ॥ गव्यम् । अजादिप्रत्ययप्रसङ्ग इति किम् । गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम् । गोमयम् ॥ ण्यादयोर्थविशेषलक्षणादपवादात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ दितेरपत्यं, दैत्यः । वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम् । कथं दैतेयः । दितिशब्दात्कृदिकारादक्तिनः, सर्वतोक्तिन्नर्थादित्येकेइति ङीषं कृत्वा स्त्रीभ्यो ढक् क्रियते । लिङ्गविशिष्टपरिभाषा चानित्या † ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ ८६ ॥

प्राग्दीव्यत इत्येव । उत्सादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । अणस्तदपवादानां च बाधकः । औत्सः । औदपानः । उत्स । उदपान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तलुन ॥ वष्कयाऽसे ॥ धेनु । पृथिवी । पङ्क्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् । जनपद ।

---

* स्थानपति । यज्ञपति । धन्वपति । अधिपति । बन्धुपति । एते ऽत्र गणे पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

† विधानसामर्थ्यादेव टिलोपाभाव इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल ॥ उदस्थान, देशे ॥ पृष, दंशे ॥ भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् ॥ सत्त्वन्तु ॥ सद्शब्दो मतुबन्त आगतनुङ्को गृह्यते सत्त्वन्त्विति । कुरु । पञ्चाल । इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण* । देव ॥ ग्रीष्मादच्छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । ग्रैष्मी त्रिष्टुप् । छन्दश्चेह वृत्तं गृह्यते न वेदः ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ ८७ ॥

धान्यानां भवने इति वक्ष्यति । तस्य प्रागित्यनेनैव संबन्धः । प्राग्भवनसंशब्दनाद्येऽर्थास्तेषु स्त्रीशब्दात्पुंस्शब्दाच्च यथाक्रमं नञ्स्नञौ प्रत्ययौ भवतः । स्त्रीषु भवं, स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीणां समूहः, स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीभ्य आगतं, स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीभ्यो हितं, स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रियाः पुंवदिति ज्ञापकाद्वत्यर्थे न भवति । योगापेक्षं च ज्ञापकमिति स्त्रीवदित्यपि सिद्धम् ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ ८८ ॥

प्राग्दीव्यत इति वर्त्तते, न भवनादिति, द्विगोरिति षष्ठी । द्विगोर्यः संबन्धी निमित्तत्वेन तद्धितः प्राग्दीव्यतीयो ऽपत्यप्रत्ययं वर्जयित्वा तस्य लुग्भवति । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः । दशकपालः । द्वौ वेदावधीते, द्विवेदः । त्रिवेदः । अनपत्यइति किम् । द्वैदेवदत्तिः । त्रैदेवदत्तिः । प्राग्दीव्यत इत्येव । द्वैपारायणिकः । द्विगुनिमित्तविज्ञानादिह न भवति, पञ्चकपालस्येदं पाञ्चकपालम् । अथ वा द्विगोरेवायं लुग्विधीयते, द्विगोरिति स्थानषष्ठी । ननु च प्रत्ययादर्शनस्यैषा संज्ञा । सत्यमेतत् । उपचारेण लक्षणया द्विगुनिमित्तभूतः प्रत्यय एव द्विगुस्तस्य लुग्भवति । द्विगुनिमित्तकोपि तर्हि गुणकल्पनया कस्मान्न द्विगुरुच्यते पाञ्चकपालमिति, न तस्य द्विगुत्वं निमित्तम् । इतरस्तु द्विगुनिमित्तमित्यस्ति विशेषः । यद्येवमिह कथं पञ्चकपाल्यां संस्कृतः पञ्चकपाल इति, नैवात्र तद्धित उत्पद्यते । वाक्यमेव भवति । त्रैशब्द्यं हि साध्यं पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः, पञ्चकपाल्यां संस्कृतः, पञ्चकपाल इति तत्र द्वयोः शब्दयोः समानार्थयोरेकेन विग्रहः । अपरस्मादुत्पत्तिर्भविष्यति । अथेह कस्मान्न भवति । पञ्चभ्यो गर्गेभ्य आगतं, पञ्चगर्गरूप्यम्, पञ्चगर्गमयमिति । वेत्यनुवर्त्तते । सा च व्यवस्थितविभाषा विज्ञायते ॥

गोत्रे ऽलुगचि ॥ ८९ ॥

प्राग्दीव्यत इत्येव । यस्कादिभ्यो गोत्रइत्यादिना येषां गोत्रप्रत्ययानां लुगुक्तस्तेषामनादौ प्राग्दीव्यतीये विषयभूते प्रतिषिध्यते । गर्गाणां छात्रा

* सुपर्ण पा० २ ।

गार्गीयाः। वात्सीयाः। आत्रेयीयाः। खारपायणीयाः। गोत्रइति किम्। कौबलम्। बादरम्। अचीति किम्। गर्गेभ्य आगतम्। गर्गरूप्यम्। गर्गमयम्। प्राग्दीव्यत इत्येव। गर्गेभ्यो हितम्। गर्गीयम्। गोत्रस्य बहुषु लोपिनो बहुवचनान्तस्य प्रवृत्तौ द्व्येकयोरलुक्। बिदानामपत्यं युवा युवानौ। बैदः। बैदौ। बैदशब्दादत इञि कृते तस्य च इञः ण्यक्षत्रियार्षञित इति लुकि रूपम्। एकवचनद्विवचनान्तस्य प्रवृत्तौ बहुषु लोपो यूनि बैदस्य बैदयोर्वा ऽपत्यं बहवो माणवका, बिदाः। नह्यत्राञ् बहुषूत्पन्नः॥

यूनि लुक्॥ ९०॥

प्राग्दीव्यत इति वर्त्तते। अचीति च। प्राग्दीव्यतीये ऽजादौ प्रत्यये विवक्षिते बुद्धिस्थे ऽनुत्पन्नएव युवप्रत्ययस्य लुग्भवति। तस्मिन्निवृत्ते सति यो यतः प्राप्नोति स ततो भवति। फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्यापत्यं युवा, फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ, फाण्टाहृतः, तस्य छात्रा इति विवक्षितेर्थे बुद्धिस्थे युवप्रत्ययस्य लुग्भवति, तस्मिन्निवृत्ते इञन्तं प्रकृतिरूपं संपन्नं तस्मादिञश्चेत्यण् भवति। फाण्टाहृताः। भागवित्तस्यापत्यं, भागवित्तिः। तस्यापत्यं युवा। वृद्धाट्ठक्सौवीरेषु बहुलमिति ठक्। भागवित्तिकः। तस्य छात्राः, पूर्ववद् युवप्रत्यये निवृत्ते इञश्चेत्यण्, भागवित्ताः। तिकस्यापत्यं, तिकादिभ्यः फिञ्। तैकायनिः। तस्यापत्यं युवा। फेश्छ चेति छः, तैकायनीयस्तस्य छात्रा, युवप्रत्यये निवृत्ते वृद्धाच्छः, तैकायनीयाः। कापिञ्जलादस्यापत्यं कापिञ्जलादिस्तस्यापत्यं युवा। कुर्वादिभ्यो ण्यः। कापिञ्जलाद्यः। तस्य छात्रा, ण्ये निवृत्ते इञश्चेत्यण्। कापिञ्जलादाः। ग्लुचुकस्यापत्यं,प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलमिति ग्लुचुकायनि, स्तस्यापत्यं युवा, प्राग्दीव्यतो ऽण्, ग्लौचुकायन,स्तस्य छात्रा, युवप्रत्यये निवृत्ते स एवाण्, ग्लौचुकायनाः। अचीत्येव, फाण्टाहृतरूप्यम्। फाण्टाहृतमयम्। प्राग्दीव्यत इत्येव। भागवित्तिकाय हितं, भागवित्तीयम्॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम्॥ ९१॥

यूनीत्येव। पूर्वसूत्रेण नित्ये लुकि प्राप्ते विकल्प उच्यते। फक्फिञोर्युवप्रत्यययोः प्राग्दीव्यतीये ऽजादौ प्रत्यये विवक्षिते ऽन्यतरस्यां लुग्भवति। गर्गादिभ्यो यञि कृते यञिञोश्चेति फक्, गार्ग्यायणः। तस्य छात्राः, गार्गीयाः। गार्ग्यायणीयाः। वात्सीयाः। वात्स्यायनीयाः। फिञः खल्वपि, यस्कस्यापत्यं, शिवादिभ्यो ऽण्। यास्क, स्तस्यापत्यं युवा। अणो द्व्यच इति फिञ्। यास्कायनि,स्तस्य छात्राः। यास्कीयाः। यास्कायनीयाः॥

तस्यापत्यम्॥ ९२॥

अर्थनिर्द्देशोयं, पूर्वैरुत्तरैश्च प्रत्ययैरभिसंबद्ध्यते। तस्येति षष्ठीसमर्थादप-

त्यमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, प्रकृत्यर्थविशिष्टश्चायमर्थो ऽपत्यमात्रश्चेह गृह्यते। लिङ्गवचनादिकमन्यत्सर्वमविवक्षितम्। उपगोरपत्यमौपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः॥

तस्येदमित्यपत्येपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्॥

भानोरपत्यं भानवः। श्यामगवः॥

एको गोत्रे॥ ९३॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं, तस्मिन् विवक्षिते भेदेन प्रत्यपत्यं प्रत्ययोत्पत्तिप्रसङ्गे नियमः क्रियते। गोत्रे एक एव प्रत्ययो भवति, सर्वे ऽपत्येन युज्यन्ते। अपतनादपत्यं, योपि व्यवहितेन जनितः सोपि प्रथमप्रकृतेरपत्यं भवत्येव। गर्गस्यापत्यं, गार्गिः। गार्गेरपत्यं, गार्ग्यः। तत्पुत्रोपि गार्ग्यः। सर्वस्मिन् व्यवहितजनितेपि गोत्रापत्ये गर्गशब्दाद् यञेव भवतीति प्रत्ययो नियम्यते। अथ वा गोत्रापत्ये विवक्षिते एक एव शब्दः प्रथमा प्रकृतिः प्रत्ययमुत्पादयति प्रकृतिर्नियम्यते। गार्ग्यः। नाडायनः॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्॥ ९४॥

अयमपि नियमः। यूंन्यपत्ये विवक्षिते गोत्रादेव प्रत्ययो भवति, न परमप्रकृत्यनन्तरयुवभ्यः। गार्ग्यस्यापत्यं युवा, गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। दाक्षायणः। प्लाक्षायणः। औपगविः। नाडायनिः। अस्त्रियामिति किम्। दाक्षी। प्लाक्षी। किं पुनरत्र प्रतिषिध्यते। यदि नियमः, स्त्रियामनियमः प्राप्नोति। अथ युवप्रत्ययः, स्त्रियां गोत्रप्रत्ययेनाभिधानं न प्राप्नोति, गोत्रसंज्ञायाः युवसंज्ञया बाधितत्वात्। तस्माद्योगविभागः कर्तव्यः। गोत्राद्यूनि प्रत्ययो भवति। ततो ऽस्त्रियाम्। यूनि यदुक्तं तत्स्त्रियां न भवति। युवसंज्ञैव प्रतिषिध्यते, तेन स्त्री गोत्रप्रत्ययेनाभिधास्यते॥

अत इञ्॥ ९५॥

तस्यापत्यमित्येव। अकारान्तात्प्रातिपदिकादिञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। दक्षस्यापत्यं, दाक्षिः। तपरकरणं किम्। शुभंयाः। कीलालपाः। इत्यतो मा भूत्। कथं प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली। शेषविवक्षया भविष्यति॥

बाह्वादिभ्यश्च॥ ९६॥

बाहु इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो ऽपत्ये इञ् प्रत्ययो भवति। बाहविः। औपबाहविः। अनकारार्थ आरम्भः। क्वचिद्बाधकबाधनार्थः। बाहु। उपबाहु। विवाकु। शिवाकु। वटाकु। उपबिन्दु। वृक। चूडाला। मूषिका। बलाका।

भगला । छगला । ध्रुवका । धुवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्करसत् । अनुहरत् । देवशर्मन् । अग्निशर्मन् । कुनामन् । सुनामन् । पञ्चन् । सप्तन् । अष्टन् ॥ अमितौजसः सलोपश्च ॥ उदञ्चु । शिरस् । शराविन् । क्षेमवृद्धिन् । शृङ्खलतोदिन् । खरनादिन् । नगरमर्दिन् । प्राकारमर्दिन् । लोमन् । अजीगर्त्त । कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम ॥ उदङ्कः संज्ञायाम् ॥ संभूयोम्भसोः सलोपश्च * ॥ बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोन्यत्र तेषां प्रतिषेधः ॥ * ॥ बाहुर्नाम कश्चित्तस्यापत्यं, बाहवः ॥ संबन्धिशब्दानां च तत्सदृशात्प्रतिषेधः ॥ * ॥ संज्ञा । श्वशुरस्यापत्यं श्वाशुरिः † । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः, आकृतिगणतामस्य बोधयति । जाम्बिः । ऐन्द्रशर्मिः । आजधेनविः । आजबन्धविः । औडुलोमिः ॥

सुधातुरकङ् च ॥ ९७ ॥

सुधातृशब्दादपत्ये इञ् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च तस्याकङादेशो भवति । सुधातुरपत्यं,सौधातकिः ॥ व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वैयासकिः । वारुडकिः । नैषादकिः । चाण्डालकिः । बैम्बकिः ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ॥ ९८ ॥

तस्यापत्यमित्येव । गोत्रसंज्ञके ऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् प्रत्ययो भवति । इञो ऽपवादः । चकारो विशेषणार्थः, व्रातच्फञोरस्त्रियामिति । ञकारो वृद्ध्यर्थः । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । ब्राध्नायन्यः । ब्राध्नायन्यौ । ब्राध्नायनाः । गोत्रइति किम् । कुञ्जस्यापत्यमनन्तरं कौञ्जिः । एकवचनद्विवचनयोः सतिशिष्टत्वाद् ञित्स्वरेणैव भवितव्यम् । बहुवचने तु कौञ्जायना इति, परमपि ञित्स्वरं त्यक्त्वा चित्स्वर एवेष्यते । गोत्राधिकारश्च शिवादिभ्योणिति यावत् । कुञ्ज । ब्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण । लोमन् । शठ । शाक । शाकट । शुण्डा । शुभ । विपाश । स्कन्द । स्तम्भ ‡ ॥

नडादिभ्यः फक् ॥ ९९ ॥

नड इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नाडायनः । चारायणः । गोत्रइत्येव । नाडिः । शलङ्कु शलङ्कं चेत्यत्र पठ्यते । शालङ्कायनः । पैलादिषु च शालङ्किशब्दः पठ्यते । शालङ्किः पिता । शालङ्किः पुत्रः । तत्कथं गोत्रविशेषे कौशिके फकं स्मरन्ति । इञेवान्यत्र । शालङ्किरिति । अथ

---

* निवाकु । अवाकु । बिन्दु । चूडा । वृकला । भद्रशर्मन् । सुशर्मन् । सुधावन् । माष । एते शब्दा अधिकाः पुस्तकान्तरे ।

† राजश्वशुरादिति यत्र भवतीत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

‡ शुम्भा । शिव शुभंया । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

वा पैलादिपाठ एव ज्ञापक इञोभावस्य । नड । चर । बक्र । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ॥ शलङ्कु शलङ्कं च ॥ सप्तल । वाजप्य । तिक । अग्निशर्मन् वृषगणे । प्राण । नर । सायक । दास । मित्र । द्वीप । पिङ्गर । पिङ्गल । किङ्कर । किङ्कल । कातर । कातल । काश्य । काश्यप । काव्य । अज । अमुष्य ॥ कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः ॥ अमित्र । लिगु । चित्र । कुमार । क्रोष्टु क्रोष्टञ्च । लोह । दुर्ग । स्तम्भ । शिंशपा । अग्र । तृण । शकट । सुमनस् । सुमत । मिमत । ऋक् । जत् । युगन्धर । हंसक । दण्डिन् । हस्तिन् । पञ्चाल । चमसिन् । सुकृत्य । स्थिरक । ब्राह्मण । चटक । बदर । अश्वक । खरप । कामुक । ब्रह्मदत्त । उदुम्बर । शोण । अलोह । दण्ड * ॥

हरितादिभ्योऽञः ॥ १०० ॥

हरितादिर्बिदाद्यन्तर्गणः । हरितादिभ्यो ऽञन्तेभ्योपत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । इञोपवादः । हरितस्यापत्यं हारितायनः । कैदासायनः । ननु च गोत्रइति वर्त्तते । न च गोत्रादपरो गोत्रप्रत्ययो भवत्ये,को गोत्रइति वचनात् । सत्यमेतत् । इह तु गोत्राधिकारेपि सामर्थ्याद्यूनि प्रत्ययो विज्ञायते । गोत्राधिकारस्तूत्तरार्थः ॥

यञिञोश्च ॥ १०१ ॥

यञन्तादिञन्ताच्च प्रातिपदिकादपत्ये फक् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । इञन्तात् । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । द्वीपादनुसमुद्रं यञ् । सुतङ्गमादिभ्य इञित्यतो न भवति । गोत्रग्रहणेन यञिञौ विशेष्येते । तदन्तात्तु यून्येवायं प्रत्ययः । गोत्राद्यूनि प्रत्ययो भवति वचनात् ॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु ॥ १०२ ॥

गोत्रइत्येव । शरद्वत् शुनक दर्भ इत्येतेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति यथासंख्यं भृगुवत्साग्रायणेष्वर्थेष्वपत्यविशेषेषु । शारद्वतायनो भवति भार्गवश्चेत् । शारद्वतो ऽन्यः । शौनकायनो भवति वात्स्यश्चेत् । शौनको ऽन्यः । दार्भायणो भवति आग्रायणश्चेत् । दार्भिरन्यः । शरद्वच्छुनकशब्दौ बिदादी । ताभ्यामञो ऽपवादः फक् ॥

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ॥ १०३ ॥

गोत्रइत्येव । द्रोणादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये ऽन्यतरस्यां फक् प्रत्ययो भवति । इञोपवादः । द्रौणायनः । द्रौणिः । पार्वतायनः । पार्वतिः ।

---

* एक । वानव्य । शावक । नाव्य । अन्वजत् । अन्तजन । इत्वरा । अंशक । अश्वला । अध्वरादण्डय । एते शब्दा अत्र पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

जैवन्तायनः । जैवन्तिः । कथमनन्तरो ऽश्वत्थामा द्रौणायन इत्युच्यते । नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते । किं तर्ह्यन्नादिः । तत इदं गोत्रे प्रत्ययविधानम् । इदानीं श्रुतिसामान्यादध्यारोपेण तथाभिधानं भवति ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्यो ऽञ् ॥ १०४ ॥

गोत्रइत्येव । विदादिभ्यो गोत्रापत्ये ऽञ्प्रत्ययो भवति । बैदः । और्वः । ये पुनरत्रानृषिशब्दाः पुत्रादयस्तेभ्यो ऽनन्तरापत्यएव भवति । पौत्रः । दौहित्रः । अनृष्यानन्तर्यइत्यस्यायमर्थः, अनृषिभ्यो ऽनन्तरे भवतीति । यद्ययमर्थ ऋष्यपत्ये नैरन्तर्यप्रतिषेधो न कृतः स्यात् तत्रेदं न सिद्ध्यति । इन्द्रभूः सप्तमः काश्यपानाम् । अनन्तरापत्यरूपेणैव ऋष्यणाभिधानं भविष्यति । अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् । ऋष्यपत्ये नैरन्तर्यविषये प्रतिषेधे विज्ञायमाने कौशिको विश्वामित्र इति दुष्यति । गोत्रइत्येव । बैदिः । ननु च ऋष्यणा भवितव्यम् । बाह्वादिराकृतिगण,स्तेनेञेव भवति । बिद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋष्टिषेण । ऋतभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरद्वत् । शुनक । धेनु । गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यमाक । श्यापर्ण । हरित । किन्दास । वह्यस्क । अर्कलूष । वध्योष । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । मृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्दृ ॥ परस्त्री परशुं च * ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ॥ १०५ ॥

गोत्रइत्येव । गर्गादिभ्यो गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः । वात्स्यः । मनुशब्दोऽत्र पठ्यते । तत्र कथं मानवी प्रजा । गोत्रइत्युच्यते, अपत्यसामान्ये भविष्यति । कथमनन्तरो रामो जामदग्न्यः, व्यासः पाराशर्य इति । गोत्ररूपाध्यारोपेण भविष्यति । अनन्तरापत्यविवक्षायां तु ऋष्यणेव भवितव्यं जामदग्न्यः, पाराशर इति । गर्ग । वत्स ॥ वाजाऽसे † ॥ संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विदभृत् । प्राचीनयोग । अगस्ति । पुलस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । शठ । धूम । अवट । चमस । धनंजय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मक्षु । अलिगु । शङ्कु । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु तन्तु । मनायी । भूत । कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल । गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शण्डिल । वण । कचुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित । संहित ।

---

* किलात । संबक । शाबली । प्रयायक । अलस । एते ऽत्राधिकाः पुस्तकान्तरे ।

† असमासे । असे इति किम् । सौवाजिः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूरा । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चिकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पिप्पलू । वृहदग्नि । जमदग्नि । सुलोभिन् । उकत्थ । कुटीगु ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः ॥ १०६ ॥

मधुशब्दाद्बभ्रुशब्दाच्च गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति यथासंख्यं ब्राह्मणे कौशिके वाच्ये । माधव्यो भवति ब्राह्मणश्चेत् । माधव एवान्यः । बाभ्रव्यो भवति कौशिकश्चेत् । बाभ्रव एवान्यः । बभ्रुशब्दो गर्गादिषु पठ्यते, ततः सिद्धे यञि कौशिके नियमार्थं वचनम् । गर्गादिषु पाठोऽप्यन्तर्गणकार्यार्थः । सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्य इति । बाभ्रव्यायणी ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १०७ ॥

कपिबोधशब्दाभ्यामाङ्गिरसे ऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् प्रत्ययो भवति । काप्यः । बौध्यः । आङ्गिरसइति किम् । कापेयः । बौधिः । कपिशब्दो गर्गादिषु पठ्यते । तस्य नियमार्थं वचनम् । आङ्गिरसे यथा स्यात् । लोहितादिकार्यार्थं गणे पाठः । काप्यायनी ॥

वतण्डाच्च ॥ १०८ ॥

आङ्गिरसइत्येव । वतण्डशब्दादाङ्गिरसे ऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् प्रत्ययो भवति । वातण्ड्यः । आङ्गिरसइति किम् । वातण्डः । किमर्थमिदं यावता गर्गादिष्वयं पठ्यते । शिवादिष्वप्ययं पठ्यते । तत्राङ्गिरसे शिवाद्यणोऽपवादार्थं पुनर्वचनम् । अनाङ्गिरसे तूभयत्र पाठसामर्थ्यात्प्रत्ययद्वयमपि भवति । वातण्ड्यः । वातण्डः ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १०९ ॥

आङ्गिरसइत्येव । वतण्डशब्दादाङ्गिरस्यां स्त्रियां यञ्प्रत्ययस्य लुग्भवति लुकिकृते शार्ङ्गरवादिपाठान्ङीन् भवति । वतण्डी । आङ्गिरसइति किम् । वातण्ड्यायनी । शिवाद्यणि तु वातण्डी ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ ११० ॥

आङ्गिरसइति निवृत्तम् । अश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । आश्वायनः । आश्मायनः । ये त्वत्र प्रत्ययान्ताः पठ्यन्ते तेभ्यः सामर्थ्याद्यूनि प्रत्ययो विज्ञायते । अश्व । अश्मन् । शङ्ख । बिद । पुट । रोहिण । खर्जूर । खर्जूल । पिञ्जूर । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित । भण्डिक । प्रहृत । रामोद । क्षत्र । ग्रीवा । काश । गोलाङ्क । अर्क । स्वन । ध्वन । पाद ।

चक्र । कुल । पवित्र । गोमिन् । श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश । आत्रेय । नत्त । तड । नड । ग्रीष्म । अर्ह । विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैल्य । धर्म । आनडुह्य । पुंसिजात । अर्जुन । शूद्रक । सुमनस् । दुर्मनस् । चान्त । प्राच्य । कित । काण । चुम्प । श्रविष्ठा । वीच्य । पविन्दा ॥ आत्रेयभारद्वाजे ॥ कुत्स । आतव । कितव । शिव । खदिर ॥ भरद्वाज आत्रेये * ॥

भर्गात्त्रैगर्त्ते ॥ १११ ॥

भर्गशब्दादपत्ये विशेषे त्रैगर्ते गोत्रे फञ् प्रत्ययो भवति । भार्गायणो भवति त्रैगर्त्तश्चेत् । भार्गिरन्यः ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ ११२ ॥

गोत्रइति निवृत्तम् । अतः प्रभृति सामान्येन प्रत्यया विज्ञायन्ते । शिवादिभ्यो ऽपत्ये ऽण् प्रत्ययो भवति । यथायथमिञादीनामपवादः । शैवः । प्रौष्ठः । तक्षन् शब्दो ऽत्र पठ्यते कारिलक्षणमुदीचामिञं बाधितुम् । ण्यप्रत्ययस्य तु बाधो नेष्यते । तात्क्षः । तात्क्ष्ण्यः । गङ्गाशब्दः पठ्यते तिकादिफिञा शुभ्रादिढका च समावेशार्थम् । तेन त्रैरूप्यं भवति । गाङ्गः । गाङ्गायनिः । गाङ्गेयः । विपाशशब्दः पठ्यते कुञ्जादिलक्षणेन च्फञा समावेशार्थम् । वैपाशः । वैपाशायन्यः । शिव । प्रोष्ठ । प्रोष्ठिक । चण्ड । जम्भ † । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार । अनभिम्लान ‡ । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड । पिष्ट । हेहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कहूष । परिल । वतण्ड । तृण । कर्ण । क्षीरहृद । जलहृद । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका । मञ्जीरक । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । रवण । वर्त्तनाक्ष । पिटक । पिटाक । तृक्षाक । नभाक । ऊर्णनाभ । जरत्कारु । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत । सुपिष्ट । खर्ज्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूणकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टिषेण । गङ्गा । विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुघ । अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष । भूमि । इला । सपत्नी ॥ द्व्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी त्रिवणं च § ॥ ||

---

* पथ । कन्थु । ध्रुव । सूनु । कर्कटक । रुक्ष । तरुक्ष । तलुक्ष । प्रचुल । विलम्ब । विष्णुज । एते ऽत्राधिकाः पुस्तकान्तरे ।

† भाण्डेति पा० २ ।

‡ अनभिम्लानेति पा० २ ।

§ त्रिवेणीरेवाप्रभृतेस्तत्रामिकाणोपवादस्य द्व्यच इति ढको ऽपवाद इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

|| कहूय । कबोध । परल । ग्रीवाक्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥ ११३ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । अवृद्धाभ्य इति शब्दधर्मः । नदीमानुषीभ्य इत्यर्थधर्मः, स्तेनाभेदात्प्रकृतयो निर्दिश्यन्ते । तन्नामिकाभ्य इति सर्वनाम्ना प्रत्ययप्रकृतेः प्रत्यवमर्शः । अवृद्धानि यानि नदीनां मानुषीणां च नामधेयानि तेभ्यो ऽपत्ये ऽण्प्रत्ययो भवति । ढको ऽपवादः । यमुनाया अपत्यं यामुनः । इरावत्या अपत्यम्, ऐरावतः । वैतस्तः । नार्मदः । मानुषीभ्यः खल्वपि । शिक्षिताया अपत्यं, शैक्षितः । चिन्तिताया अपत्यं, चैन्तितः । अवृद्धाभ्यः किम् । चान्द्रभाग्याया अपत्यं, चान्द्रभागेयः । वासवदत्तेयः । नदीमानुषीभ्य इति किम् । सौपर्णेयः । वैनतेयः । तन्नामिकाभ्य इति किम् । शोभनायाः, शौभनेयः ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥ ११४ ॥

ऋषयः प्रसिद्धा वसिष्ठादयः । अन्धका वृष्णयः कुरव इति वंशाख्या । ऋष्यादिकुर्वन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽपत्ये ऽण्प्रत्ययो भवती,ञो ऽपवादः । अत्र्यादिभ्यस्तु परत्वाड्ढगादिभिरेव भवितव्यम् । ऋषिभ्यस्तावत् । वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः । श्वाफल्कः । रान्धसः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः । आनिरुद्धः । कुरुभ्यः । नाकुलः । साहदेवः । कथं पुनर्नित्यानां शब्दानामन्धकादिवंशसमाश्रयणेनान्वाख्यानं युज्यते । के चिदाहुः । कथमपि काकतालीयन्यायेन कुर्वादिवंशेष्वसंकरेणैव नकुलसहदेवादयः शब्दास्तु बहवः संकलितास्तानुपादाय पाणिनिना स्मृतिरूपनिबद्धेति । अथ वा ऽन्धकवृष्णिकुरुवंशा अपि नित्या एव, तेषु ये शब्दाः प्रयुज्यन्ते नकुलसहदेवादय, स्तत्रेदं प्रत्ययविधानमित्यदोषः ॥

मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः ॥ ११५ ॥

मातृशब्दात्संख्यापूर्वात्संपूर्वाद्भद्रपूर्वाच्चापत्ये ऽण् प्रत्ययो भवति, उकारश्चान्तादेशः । द्वयोर्मात्रोरपत्यं,द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः । उकारादेशार्थं वचनं, प्रत्ययः पुनरुत्सर्गेणैव सिद्धः । स्त्रीलिङ्गनिर्देशो ऽर्थापेक्षः, तेन धान्यमातुर्ग्रहणं न भवति । संख्यासंभद्रपूर्वाया इति किम् । सौमात्रः । शुभ्रादिषु पाठात्तु वैमात्रेयः ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ ११६ ॥

कन्याशब्दादपत्ये ऽण्प्रत्ययो भवति ढकोपवादः । तत्संनियोगेन कनीनशब्द आदेशो भवति । कन्याया अपत्यं, कानीनः कर्णः । कानीनो व्यासः ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥ ११७ ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलशब्देभ्यो यथासंख्यं वत्सभरद्वाजात्रिष्वपत्यविशेषेष्वण्प्रत्ययो भवति । वैकर्णो भवति वात्स्यश्चेत् । वैकर्णिरन्यः । शौङ्गो भवति

भारद्वाजश्चेत् । शौङ्गिरन्यः । छागलो भवत्यात्रेयश्चेत् । छागलिरन्यः । शुङ्गा-शब्दं स्त्रीलिङ्गमन्ये पठन्ति ततो ढकं प्रत्युदाहरन्ति शौङ्गेय इति । द्वयमपि चैतत्प्रमाणमुभयथा सूत्रप्रणयनात् ॥

पीलाया वा ॥ ११८ ॥

तत्रामिकाणो बाधके द्व्यच इति ढकि प्राप्ते ऽण्प्रत्ययः पक्षे विधीयते । पीलाया अपत्ये वाण्प्रत्ययो भवति । पीलाया अपत्यं, पैलः । पैलेयः ॥

ढक्च मण्डूकात् ॥ ११९ ॥

मण्डूकशब्दादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । चकारादण् च वा । तेन त्रैरूप्यं भवति । माण्डूकेयः । माण्डूकः । माण्डूकिः ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १२० ॥

स्त्रीग्रहणेन टाबादिप्रत्ययान्ताः शब्दा गृह्यन्ते । स्त्रीभ्यो ऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । सौपर्णेयः । वैनतेयः । स्त्रीप्रत्ययविज्ञापनादसत्यर्थग्रहणे इह न भवति । इडविडो ऽपत्यं, दरदो ऽपत्यम्, ऐडविडः, दारद,इति ॥ वड-वाया वृषे वाच्ये ॥ * ॥ वाडवेयो वृषः स्मृतः । अपत्ये प्राप्तस्ततो ऽपकृष्य विधीयते, तेनापत्ये वाडव इति भवति ॥ अण् क्रुञ्चाकोकिलात्स्मृतः ॥ * ॥ क्रुञ्चाया अपत्यं, क्रौञ्चः । कौकिलः ॥

द्व्यचः ॥ १२१ ॥

स्त्रीभ्य इत्येव । द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । तत्रामि-काणोपवादः । दत्ताया अपत्यं, दात्तेयः । गौपेयः । द्व्यच इति किम् । यामुनः ॥

इतश्चानिञः ॥ १२२ ॥

स्त्रीग्रहणं निवृत्तम् । चकारो द्व्यच इत्यस्यानुकर्षणार्थः । इकारान्ता-त्प्रातिपदिकादनिञन्तादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । आत्रेयः । नैधेयः । इत इति किम् । दाक्षिः । प्लाक्षिः । अनिञ इति किम् । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । द्व्यच इत्येव । मरीचेरपत्यं, मारीचः ॥

शुभ्रादिभ्यश्च ॥ १२३ ॥

शुभ्र इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ढक् प्रत्ययो भवति । यथायोग-मिञादीनामपवादः । शौभ्रेयः । वैष्टपुरेयः । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थ आकृतिगण-तामस्य बोधयति । गाङ्गेयः पाण्डवेय इत्येवमादि सिद्धं भवति । शुभ्र । विष्ट-पुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलाकाभ्रू । लेखाभ्रू । विमातृ । विधवा । कृकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । शालूक । अजवस्ति । शकन्धि ॥ लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे ॥ गोधा । कृकलास । अणीव ।

प्रवाहण । भरत । भारम* । मृकण्डु । मघष्टु । मकष्टु । कर्पूर । इतर । अन्यतर । आलीढ । सुदत्त । सुचक्षस् । सुनामन् । कद्रु । तुद । अकशाप । कुमारिका । किशोरिका । कुवेणिका । जिह्माशिन । परिधि । वायुदत्त । ककल । खट्वूर । अम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खडोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् । बलिवर्दिन् । वियज । बीज । श्वन् । अश्मन् । अश्व । अजिर† ॥

विकर्णकुषीतकात्काश्यपे ॥ १२४ ॥

विकर्णशब्दात्कुषीतकशब्दाच्च काश्यपे ऽपत्यविशेषे ढक् प्रत्ययो भवति । वैकर्णेयः । कौषीतकेयः । काश्यपइति किम् । वैकर्णिः । कौषीतकिः ॥

भ्रुवो वुक्च ॥ १२५ ॥

भ्रूशब्दादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च वुगागमः । भ्रौवेयः ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् ॥ १२६ ॥

कल्याणी इत्येवमादीनां शब्दानामपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च इनङादेशः । स्त्रीप्रत्ययान्तानामादेशार्थं ग्रहणं, प्रत्ययस्य सिद्धत्वा,-दन्येषामुभयार्थम् । काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः । दौर्भागिनेयः । हृद्भगसिन्ध्वन्तइत्युभयपदवृद्धिः । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । बन्धकी । अनुदृष्टि । अनुसृष्टि । जरती । बलीवर्दी । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । परस्त्री ॥

कुलटाया वा ॥ १२७ ॥

कुलान्यटतीति, कुलटा । पररूपं निपातनात् । कुलटाया अपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन च वा इनङादेशो भवति । आदेशार्थं वचनं, प्रत्ययः पूर्वेणैव सिद्धः । कौलटिनेयः । कौलटेयः । या तु कुलान्यटन्ती शीलं भिनत्ति, ततः क्षुद्राभ्यो वेति परत्वाड्ढ्रका भवितव्यम् । कौलटेरः ॥

चटकाया ऐरक् ॥ १२८ ॥

चटकाया अपत्ये ऐरक् प्रत्ययो भवति । चाटकैरः ॥ चटकाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चटकस्यापत्यं, चाटकैरः ॥ स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ चटकाया अपत्यं स्त्री, चटका‡ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ १२९ ॥

---

* भारतेति पा० २ ।

† स्थूल । सकपट्ठ । मकयु । यमष्टु । कष्टु । सकपड । मकण्ड । गुद । रुद । कुशेरिका । शकल । शबल । उग्र । अंजिन । एते शब्दा अधिकाः पुस्तकान्तरे ।

‡ चटकेत्यस्याग्रे ऽजादित्वाट्टाबित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

गोधाया अपत्ये ढ्रक् प्रत्ययो भवति । गौधेरः । शुभ्रादिष्वयं पठ्यते । तेन गौधेयोपि भवति ॥

आरगुदीचाम् ॥ १३० ॥

गोधाया अपत्ये उदीचामाचार्याणां मतेन आरक् प्रत्ययो भवति । गौधारः । आचार्यग्रहणं पूजार्थं, वचनसामर्थ्यादेव पूर्वेण समावेशो भविष्यति । आरग्वचनमनर्थकं,रका सिद्धत्वात् । ज्ञापकं त्वयमन्येभ्यो ऽपि भवतीति । जाडारः । पाण्डारः ॥

क्षुद्राभ्यो वा ॥ १३१ ॥

ढ्रगनुवर्तते, न आरक् । क्षुद्रा अङ्गहीना धर्महीना*श्च । अर्थधर्मेण तदभिधायिन्यः स्त्रीलिङ्गाः प्रकृतयो निर्दिश्यन्ते । क्षुद्राभ्यो वापत्ये ढ्रक् प्रत्ययो भवति । ढकोपवादः । काणेरः । काणेयः । दासेरः । दासेयः ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ १३२ ॥

पितृष्वसृशब्दादपत्ये छणप्रत्ययो भवति । अणोपवादः । पैतृष्वस्रीयः ॥

ढकि लोपः ॥ १३३ ॥

पितृष्वसुरपत्यप्रत्यये ढकि परतो लोपो भवति । पैतृष्वसेयः । कथं पुनरिह ढक् प्रत्ययः । एतदेव ज्ञापकं ढको भावस्य ॥

मातृष्वसुश्च ॥ १३४ ॥

पितृष्वसुरित्येतदपेक्षते, पितृष्वसुर्यदुक्तं तन्मातृष्वसुरपि भवति । छणप्रत्ययो ढकि लोपश्च । मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ १३५ ॥

चतुष्पादभिधायिनीभ्यः प्रकृतिभ्यो ऽपत्ये ढञ्प्रत्ययो भवति । अणादीनामपवादः । कामण्डलेयः । शैतिवाहेयः । जाम्बेयः ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ १३६ ॥

गृष्ट्यादिभ्यः शब्देभ्यो ऽपत्ये ढञ्प्रत्ययो भवति । अणादीनामपवादः । गार्ष्टेयः । हार्ष्टेयः । गृष्टिशब्दो यश्चतुष्पाद्वचनस्ततः पूर्वेणैव सिद्धः, अचतुष्पादर्थं वचनम् । गृष्टि । हृष्टि । हलि । बलि । विश्रि । कुद्रि । अजवस्ति । मित्रयु† ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥ १३७ ॥

---

* शीलहीनाश्चेति पा० २ ।

† फलि । अलि । द्रुष्टि । एते अधिकाः पुस्तकान्तरे ।

राजन्श्वशुरशब्दाभ्यामपत्ये यत्प्रत्ययो भवति । यथाक्रममणिञोरपवादः । राजन्यः । श्वशुर्यः ॥ राज्ञो ऽपत्ये जातिग्रहणम् ॥ * ॥ राजन्यो भवति, क्षत्रियश्चेत । राजनोऽन्यः ॥

क्षत्राद्घः ॥ १३८ ॥

क्षत्रशब्दादपत्ये घः प्रत्ययो भवति । क्षत्रियः । अयमपि जातिशब्द एव । क्षात्रिरन्यः ॥

कुलात्खः ॥ १३९ ॥

उत्तरसूत्रे पूर्वप्रतिषेधादिह तदन्तः केवलश्च दृश्यते । कुलशब्दान्तात्प्रातिपदिकात्केवलाच्चापत्ये खः प्रत्ययो भवति । आढ्यकुलीनः । श्रोत्रियकुलीनः । कुलीनः ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ॥ १४० ॥

कुलादित्येव । अविद्यमानं पूर्वपदं यस्य तदपूर्वपदं, समाससंबन्धिनः पूर्वपदस्याभावेन कुलशब्दो विशेष्यते । अपूर्वपदात्कुलशब्दादन्यतरस्यां यत् ढकञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । ताभ्यां मुक्ते खोपि भवति । कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः । पदग्रहणं किम् । बहुच्पूर्वादपि यथा स्यात् । बहुकुल्यः । बाहुकुलेयकः । बहुकुलीनः ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥ १४१ ॥

अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते । पक्षे खः* । माहाकुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥

दुष्कुलाड्ढक् ॥ १४२ ॥

दुष्कुलशब्दादपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तेः खश्च । दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥

स्वसुश्छः ॥ १४३ ॥

स्वसृशब्दादपत्ये छः प्रत्ययो भवति । अणोपवादः । स्वसुरपत्यं, स्वस्रीयः ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ १४४ ॥

भ्रातृशब्दादपत्ये व्यत् प्रत्ययो भवति । चकाराच्छश्च । अणोपवादः । भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः । तकारः स्वरार्थः ॥

व्यन्सपत्ने ॥ १४५ ॥

सपत्नशब्दः शत्रुपर्यायः शब्दान्तरमव्युत्पन्नमेव । सपत्नीशब्दादपरे ऽकारमिवार्थे निपातयन्ति । सपत्नीव सपत्नः । भ्रातृशब्दाद् व्यन्प्रत्ययो भवति

---

* महाकुलशब्दादञ्खञौ प्रत्ययौ भवतः । अन्यतरस्यांग्रहणानुवृत्तेः खश्चेति पा० २ ।

समुदायेन चेदमित्रः सपत्न उच्यते । अपत्यार्थोऽत्र नास्त्येव । पाप्मना भ्रातृव्येण । भ्रातृव्यः कण्टकः ॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ १४६ ॥

रेवतीत्येवमादिभ्यो ऽपत्ये ठक् प्रत्ययो भवति । यथायोगं ढगादीनामपवादः । रैवतिकः । आश्वपालिकः । रेवती । अश्वपाली । मणिपाली । द्वारपाली । वृकवञ्चिन् । वृकग्राह । कर्णग्राह । दण्डग्राह । कुक्कुटाक्ष * ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ १४७ ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं गृह्यते । गोत्रं या स्त्री तदभिधायिनः शब्दादपत्ये णः प्रत्ययो भवति चकाराट्ठक्च, कुत्सने गम्यमाने । पितुरसंविज्ञाने मात्रा व्यपदेशोपत्यस्य कुत्सा । गार्ग्या अपत्यं, गार्ग्यो जाल्मः । गार्गिकः । ग्लुचुकायन्या अपत्यं, ग्लौचुकायनः । ग्लौचुकायनिकः । गोत्राद्यूनीति यूनि प्रत्ययो भवति । गोत्रमिति किम् । कारिकेयो जाल्मः । स्त्रिया इति किम् । औपगविर्जाल्मः । कुत्सनइति किम् । गार्गेयो माणवकः ॥

वृद्धाट्ठक्सौवीरेषु बहुलम् ॥ १४८ ॥

कुत्सनइत्येव । सौवीरेष्विति प्रकृतिविशेषणम् । वृद्धात्सौवीरगोत्रादपत्ये बहुलं ठक् प्रत्ययो भवति कुत्सने गम्यमाने । भागवित्तेर्भागवित्तिकः । तार्णबिन्दवस्य तार्णबिन्दविकः । पक्षे यथाप्राप्तं फक् । भागवित्तायनः । पक्षे तार्णबिन्दविः । अकशापः शुभ्रादिः । आकशापेयः । तस्यापत्यमाकशापेयिकः । पक्षे आकशापेयिः ।

भागपूर्वपदो वित्तिर्द्वितीयस्तार्णबिन्दवः ।
तृतीयस्त्वाकशापेयो गोचाट्ठग्बहुलं ततः ॥

वृद्धग्रहणं स्त्रीनिवृत्त्यर्थम् । सौवीरेष्विति किम् । औपगविर्जाल्मः । कुत्सनइत्येव । भागवित्तायनो माणवकः । बहुलग्रहणमुपाधिवैचित्र्यार्थम् । गोत्रस्त्रिया इत्यारभ्य चत्वारो योगास्तेषु प्रथमः कुत्सनएव । अन्त्यः सौवीरगोत्रएव । मध्यमौ द्वयोरपि । तदेतद्बहुलग्रहणाल्लभ्यते ॥

फेश्छ च ॥ १४९ ॥

कुत्सनइत्येव, सौवीरेष्विति च । फेरिति फिञो ग्रहणं न फिनः, वृद्धाधिकारात् । फिञन्तात्प्रातिपदिकात्सौवीरगोत्रादपत्ये छः प्रत्ययो भवति चकाराट्ठक् कुत्सने गम्यमाने । यमुन्दस्यापत्यं, तिकादिभ्यः फिञ्, तस्यापत्यं, यामु-

---

* वृकबन्धु । चामरग्राह । ककुदाक्ष । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

न्दायनीयः । यामुन्दायनिकः । कुत्सनइत्येव । यामुन्दायनिः । फिञन्तादौत्सर्गिकस्याण आगतस्य एयदार्षत्रियार्षञित इति लुक् । सौवीरेष्वित्येव । तैकायनिः ।

यमुन्दश्च सुयामा च वार्ष्यायणिः फिञः स्मृताः ।
सौवीरेषु च कुत्सायां द्वौ योगौ शब्दवित् स्मरेत् ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥ १५० ॥

सौवीरेष्वित्येव । कुत्सनइति निवृत्तम् । फाण्टाहृतिमिमतशब्दाभ्यां सौवीरविषयाभ्यामपत्ये णफिञौ प्रत्ययौ भवतः । फकोपवादः । अल्पाच्तरस्यापूर्वनिपातो लक्षणव्यभिचारचिह्नं, तेन यथासंख्यमिह न भवतीति । फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतायनिः । मैमतः । मैमतायनिः । सौवीरेष्वित्येव । फाण्टाहृतायनः । मैमतायनः । फाण्टाहृतेर्यञिञोश्चेति फक् । मिमतशब्दोऽपि नडादिषु पठ्यते ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ १५१ ॥

सौवीरेषु बहुलमिति च निवृत्तम् । कुरु इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो ऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति । कौरव्यः । गार्ग्यः । कुरुनादिभ्यो ण्य इति कुरुशब्दादपरो ण्यप्रत्ययो भविष्यति । स तु क्षत्रियात्तद्राजसंज्ञकस्तस्य बहुषु लुका भवितव्यमयं तु श्रूयतएव । कौरव्याः । कौरव्यशब्दस्य क्षत्रियवचनस्य तिकादिषु पाठात्फिञपि भवति । कौरव्यायणिः । रथकारशब्दोऽत्र पठ्यते, स जातिवचनः । त्रैवर्णिकेभ्यः किं चिन्न्यूना रथकारजातिः । कारिणस्तु रथकारशब्दादुत्तरसूत्रेणैव ण्यः सिद्धः । केशिनीशब्दः पठ्यते, तस्य कैशिन्यः । पुंवद्भावो न भवति, स्त्रीप्रत्ययनिर्देशसामर्थ्यात् । वेनाच्छन्दसीति पठ्यते, कथं भाषायां वैन्यो राजेति । छान्दस एवायं प्रमादात्कविभिः प्रयुक्तः । वामरथशब्दः पठ्यते, तस्य कण्वादिवत्कार्यमिष्यते स्वरं वर्जयित्वा लुगादिकमतिदिश्यते । बहुषु वामरथाः । स्त्री वामरथी । वामरथ्यायनी । युवा वामरथ्यायनः । वामरथ्यस्य छात्रा वामरथाः । वामरथानि संघाङ्कलक्षणानि । स्वरस्तु ण्यप्रत्ययस्यैव भवति नातिदेशिकमाद्युदात्तत्वम् । कुरु । गर्ग । मङ्गुष । अजमारक । रथकार । वावदूक ॥ सम्राजः क्षत्रिये ॥ कवि । मति । वाक् । पितृमत् । इन्द्रजालि । दामोष्णीषि । गणकारि । कैशोरि । कापिञ्जलादि । कुट । शलाका । मुर । एरक । अभ्र । दर्भ । केशिनी ॥ वेनाच्छन्दसि ॥ शूर्पणाय । श्यावनाय । श्यावरथ । श्यावपुत्र । सत्यंकार । वडभीकार । शङ्कु । शाक । पथिकारिन् । मूढ । शकन्धु । कर्त्तृ । हर्तृ । शाकिन् । इनपिण्डी *॥ वामरथस्य कण्वादिवत्स्वरवर्जम् ॥

---

* विस्फोटक । काक । स्फाण्टक । शाकिन् घातकि । धेनुजि । बुद्धिकार । एते अधिकाः पुस्तकान्तरे ।

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ १५२ ॥

सेनान्तात्प्रातिपदिकाल्लक्षणशब्दात्कारिवचनेभ्यश्चापत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति । कारिशब्दः कारूणां तन्तुवायादीनां वाचकः । कारिषेण्यः । हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कारिभ्यः । तान्तुवाय्यः । कौम्भकार्यः । नापित्यः ॥

उदीचामिञ् ॥ १५३ ॥

ण्ये प्राप्ते इञपरो विधीयते । सेनान्तलक्षणकारिभ्यो ऽपत्ये इञ् प्रत्ययो भवति उदीचां मतेन । कारिषेणिः । हारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः * । कौम्भकारिः । वचनसामर्थ्यादेव प्रत्ययसमावेशे लब्धे आचार्यग्रहणं वैचित्र्यार्थम् । तक्षन्शब्दः शिवादिस्तेनाणायमिञ् बाध्यते न तु ण्यः । तक्षोऽपत्यं, ताक्ष्णः । ताक्षण्यः ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ १५४ ॥

तिक इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो ऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तैकायनिः । कैतवायनिः । वृषशब्दोऽत्र पठ्यते तस्य प्रत्ययसन्नियोगेन यकारान्तत्वमिष्यते । वार्ष्यायणिः । कौरव्यशब्दः पठ्यते स च क्षत्रियवचनः । औरसशब्देन क्षत्रियप्रत्ययान्तेन साहचर्यात् । यस्तु कुर्वादिभ्यो ण्यस्तदन्तादिञेव भवितव्यम् । तथा च ण्यक्षत्रियार्षञितः इत्यत्रोदाहृतं कौरव्यः पिता कौरव्यः पुत्र इति । तिक । कितव । संज्ञा । बाल । शिखा । उरस् । शाठ्य । सैन्धव । यमुन्द । रूप्य । ग्राम्य । नील । अमित्र । गौकक्ष्य । कुरु । देवरथ । तैतिल । औरस । कौरव्य । भौरिकि । भौलिकि । चौपयत । चैटयत । शैकयत । क्षैतयत । ध्वाजवत । चन्द्रमस् । शुभ । गङ्गा । वरेण्य । सुयामन् । आरद्ध । वह्यका । खल्य । वृष । लोमक । उदन्य । यज्ञ † ॥

कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥ १५५ ॥

कौशल्यकार्मार्यशब्दाभ्यामपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । इञोपवादः । कौसल्यायनिः । कार्मार्यायणिः ॥ परमप्रकृतेरेवायं प्रत्यय इष्यते ॥ कोसलस्यापत्यं कर्मारस्यापत्यमिति । प्रत्ययसन्नियोगेन तु प्रकृतिरूपं निपात्यते । तथा च स्मृत्यन्तरम् ॥ दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युड्वादिष्टस्येति ॥ दागव्यायनिः । कौसल्यायनिः । कार्मार्यायणिः । छाग्यायनिः । वार्ष्यायणिः ॥

अणो द्व्यचः ॥ १५६ ॥

---

* तैाचवायिरित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† काव्य । भीत । जाङ्गल । रस । लावक । ध्वजवद । वसु । बन्धु । आवन्धका । सुपामन् । एते ऽधिकाः शब्दाः पुस्तकान्तरे ।

अणन्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकादपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । इञोऽपवादः । कार्त्र्यायणिः । हार्त्र्यायणिः * । अण इति किम् । दाक्षायणः । द्व्यच इति किम् । औपगविः ॥ त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः ॥ * ॥ त्यादायनिः । त्यादः । यादायनिः । यादः । तादायनिः । तादः । अणच प्राप्तः ॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ १५७ ॥

वृद्धं यच्छब्दरूपमगोत्रं तस्मादपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति उदीचामाचार्याणां मतेन । आम्रगुप्तायनिः । ग्रामरक्षायणिः । कारिशब्दादपि वृद्धादगोत्रात्परत्वादनेनैव भवितव्यम् । नापितायनिः । उदीचामिति किम् । आम्रगुप्तिः । वृद्धादिति किम् । याज्ञदत्तिः । अगोत्रादिति किम् । औपगविः ॥

वाकिनादीनां कुक्च ॥ १५८ ॥

वाकिन इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन चैषां कुगागमः । यदिह वृद्धमगोत्रं शब्दरूपं तस्यागमार्थमेव ग्रहणमन्येषामुभयार्थम् । वाकिनकायनिः । गारेधकायनिः । इञोऽपवादो योगः । उदीचामित्यधिकारात्पक्षे तेऽपि भवन्ति । वाकिनिः । गारेधिः । वाकिन । गारेध । कार्कट्य । काक । लङ्का ॥ चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च ॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ १५९ ॥

उदीचां वृद्धादिति वर्त्तते । पुत्रान्तमगोत्रमिति पूर्वेणैव प्रत्ययः सिद्धस्तस्मिन्ननेन कुगागमोऽन्यतरस्यां विधीयते । पुत्रान्तात्प्रातिपदिकाद्यः फिञ्प्रत्ययस्तस्मिन् परभूतेऽन्यतरस्यां कुगागमो भवति पुत्रान्तस्य । तेन त्रैरूप्यं संपद्यते । गार्गीपुत्रकायणिः । गार्गीपुत्रायणिः । गार्गीपुत्रिः । वात्सीपुत्रकायणिः । वात्सीपुत्रायणिः । वात्सीपुत्रिः ॥

प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम् ॥ १६० ॥

अवृद्धाच्छब्दरूपादपत्ये फिन् प्रत्ययो भवति बहुलं प्राचां मतेन । ग्लुचुकायनिः । अहिचुम्बकायनिः । प्राचामिति । किम् । ग्लौचुकिः । अवृद्धादिति किम् । राजदन्तिः । उदीचां प्राचामन्यतरस्यां बहुलमिति सर्वएते विकल्पार्थास्तेषामेकेनैव सिद्ध्यति तत्राचार्यग्रहणं पूजार्थम् । बहुलग्रहणं वैचित्र्यार्थम् । क्वचिन्न भवत्येव । दाक्षिः । प्लाक्षिः ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च ॥ १६१ ॥

मनुशब्दादञ् यत् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतस्तत्सन्नियोगेन षुगागमः समुदायेन चेज्जातिर्गम्यते । मानुषः । मनुष्यः । जातिशब्दावेतौ । अपत्यार्थोऽत्र

* यास्क इति शिवादिभ्योऽण् । यास्कस्यापत्यं यास्कायनिः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

नास्त्येव । तथा च मानुषा इति बहुषु न लुग्भवति । अपत्यविवक्षायां त्वणेव भवितव्यम् । मानवी प्रजा ।

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिद्ध्यति माणवः ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥ १६२ ॥

पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद्गोत्रसंज्ञं भवति । संबन्धिवचनत्वादपत्यशब्दस्य यदपत्यं तदपेक्षया पौत्रप्रभृतेर्गोत्रसंज्ञा विधीयते। गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः। वात्स्यः । अपत्यमिति व्यपदेशोयं संज्ञिनः पौत्रप्रभृतेः । पौत्रप्रभृतीति किम् । अनन्तरस्य मा भूत् । कौञ्जिः । गार्गिः । गोत्रप्रदेशा एको गोत्रइत्येवमादयः ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥ १६३ ॥

अभिजनप्रबन्धो वंशः । तत्र भवो वंश्यः पित्रादि,तस्मिन् जीवति सति पौत्रप्रभृत्यपत्यं युवसंज्ञं भवति । पौत्रप्रभृतीति च न सामानाधिकरण्येनापत्यं विशेषयति, किं तर्हि षष्ठ्या विपरिणम्यते पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यमिति । तेन चतुर्थादारभ्य युवसंज्ञा विधीयते । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । तुशब्दोवधारणार्थो युवैव न गोत्रमिति ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ १६४ ॥

भ्रातरि ज्यायसि जीवति कनीयान् भ्राता युवसंज्ञो भवति पौत्रप्रभृतेरपत्यम् । गार्ग्यस्य द्वौ पुत्रौ तयोः कनीयान् मृते पित्रादौ वंश्ये भ्रातरि ज्यायसि जीवति युवसंज्ञो भवति । अवंश्यार्थोयमारम्भः । पूर्वजाः पित्रादयो वंश्या इत्युच्यन्ते । भ्राता तु न वंश्यः । अकारणत्वात् । गार्ग्ये जीवति गार्ग्यायणोस्य कनीयान्भ्राता । वात्स्यायनः । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः ॥

वान्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ॥ १६५ ॥

सप्तमपुरुषावधयः सपिण्डाः स्मर्यन्ते । येषाम्
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते * ।

इत्येवमादिकायां क्रियायामनधिकारः । भ्रातुरन्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसंज्ञं वा भवति । प्रकृतं जीवतिग्रहणं सपिण्डस्य विशेषणमिदं तु संज्ञिनः । तरब्निर्देश उभयोत्कर्षार्थः । स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे सपिण्डे यथा स्यात् । पितृव्ये पितामहे भ्रातरि वयसाधिके जीवति । गर्गस्यापत्यं गार्ग्यायणः । गार्ग्यो वा । वात्स्यायन । वात्स्यो वा ।

---

* दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते इति पद्यार्धमधिकं कुत्र चित् ।

दाक्षायणः । दाक्षिर्वा । स्थविरेति किम् । स्थानवयोन्यूने गार्ग्य एव भवति । जीवतीति किम् । मृते मृतो वा गार्ग्य एव भवति ॥

वृद्धस्य च पूजायाम् ॥ १६६ ॥

अपत्यमन्तर्हितं वृद्धमिति शास्त्रान्तरे परिभाषणाद्गोत्रं वृद्धमित्युच्यते । वृद्धस्य युवसंज्ञा वा भवति पूजायां गम्यमानायाम् । संज्ञासामर्थ्याद्गोत्रं युवप्रत्ययेन पुनरुच्यते । वृद्धस्येति षष्ठीनिर्देशो विचित्रा सूत्रस्य कृतिरिति । तत्र भवान् गार्ग्यायणः । गार्ग्यो वा । तत्र भवान् वात्स्यायनः । वात्स्यो वा । तत्र भवान् दाक्षायणः । दाक्षिर्वा । पूजायामिति किम् । गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

यूनश्च कुत्सायाम् ॥ १६७ ॥

कुत्सायां गम्यमानायां यूनो वा युवसंज्ञा भवति । निवृत्तिप्रधाने विकल्पो, युवसंज्ञायां प्रतिषिद्धायां पक्षे गोत्रसंज्ञैव भवति, प्रतिपक्षाभावात् । गार्ग्यो जाल्मः । गार्ग्यायणो वा । वात्स्यो जाल्मः । वात्स्यायनो वा । दाक्षिर्जाल्मः । दाक्षायणो वा । कुत्सायामिति किम् । गार्ग्यायणः ॥

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ॥ १६८ ॥

जनपदशब्दो यः क्षत्रियवाची तस्मादपत्ये ऽञ् प्रत्ययो भवति । पाञ्चालः । ऐक्ष्वाकः । वैदेहः । जनपदशब्दादिति किम् । द्रुह्योरपत्यं, द्रौह्यवः । पौरवः । क्षत्रियादिति किम् । ब्राह्मणस्य पञ्चालस्यापत्यं, पाञ्चालिः । वैदेहिः ॥ क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात्तस्य राजन्यपत्यवत् ॥ * ॥ पञ्चालानां राजा पाञ्चालः । वैदेहः । मागधः । अवृद्धादपीति प्राप्तस्य वुञोऽपवादः ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ १६९ ॥

साल्वेयगान्धारिशब्दाभ्यामपत्ये ऽञ् प्रत्ययो भवति । जनपदशब्दावेतौ क्षत्रियाभिधायिनौ ताभ्यामञपवादे वृद्धादिति ञ्यङि प्राप्ते पुनरञ्विधीयते । साल्वेयः । गान्धारः । तस्य राजनीत्येव । साल्वेयो राजा । गान्धारो राजा ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥ १७० ॥

जनपदशब्दात्क्षत्रियाभिधायिनो द्व्यचो मगध कलिङ्ग सूरमस इत्येतेभ्यश्चापत्ये ऽण् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । आङ्गः । वाङ्गः । सौरमसः । पौण्ड्रः । मागधः । कालिङ्गः । सौह्मः । तस्य राजनीत्येव । आङ्गो राजा ॥

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥ १७१ ॥

जनपदशब्दात्क्षत्रियादित्येव । वृद्धाच्च प्रातिपदिकादिकारान्ताच्च कोसलाजादशब्दाभ्यां चापत्ये ञ्यङ् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । वृद्धात्तावत् । आम्बष्ठ्यः । सौवीर्यः । इकारान्तात् । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कोसलाजादयो-

ऋद्व्यर्थं वचनम् । कौशल्यः । आजाद्यः । तपरकरणं किम् । कुमारी नाम जनपदसमानशब्दः क्षत्रियस्तस्यापत्यं कौमारः ॥ पाण्डोर्जनपदशब्दात् क्षत्रियाड् ड्यण् वक्तव्यः ॥ * ॥ पाण्ड्यः । अन्यस्मात्पाण्डव एव । तस्य राजनीत्येव । आम्बष्ठो राजा । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कौसल्यः । आजाद्यः ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ १७२ ॥

जनपदशब्दात्क्षत्रियादित्येव । कुरुशब्दान्नादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो ण्यः प्रत्ययो भवति । अणञोरपवादः । कौरव्यः । नकारादिभ्यः । नैषध्यः । नैपथ्यः । तस्य राजनीत्येव । कौरव्यो राजा ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥ १७३ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादित्येव । साल्वा नाम क्षत्रिया तन्नामिका तस्या अपत्यं, द्व्यचः इति ढक् । साल्वेयः ॥ अणपीष्यते ॥ साल्वः । तस्य निवासः साल्वो जनपदः । तदवयवा उदुम्बरादयस्तेभ्यः क्षत्रियवृत्तिभ्य इदं प्रत्ययविधानम् । साल्वावयवेभ्यः प्रत्यग्रथकलकूटाश्मकशब्देभ्यश्चापत्ये इञ् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । औदुम्बरिः । तैलखलिः । माद्रकारिः । यौगन्धरिः । भौलिङ्गिः । शारदण्डिः । प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । तस्य राजनीत्येव । औदुम्बरो राजा ।

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः ।
भुलिङ्गाः शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिताः ॥

तेतद्राजाः ॥ १७४ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञित्येवमादयः प्रत्ययाः सर्वनाम्ना प्रत्यवमृश्यन्ते न तु पूर्वे, गोत्रयुवसंज्ञाप्रकरणेन व्यवहितत्वात् । तेऽञादयस्तद्राजसंज्ञा भवन्ति । तथा चोदाहृतम् । तद्राजप्रदेशास्तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियामित्येवमादयः ॥

कम्बोजाल्लुक् ॥ १७५ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादित्यनेन विहितस्याञो लुगुच्यते । कम्बोजात्प्रत्ययस्य लुग् भवति । कम्बोजः ॥ कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥ * ॥ कम्बोजः । चोलः । केरलः । शकः । यवनः । तस्य राजनीत्येव । कम्बोजो राजा ॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च* ॥ १७५ ॥

अवन्तिकुन्तिकुरुशब्देभ्य उत्पन्नस्य तद्राजस्य स्त्रियामभिधेयायां लुग्भवति । अवन्तिकुन्तिभ्यां ञ्यङः कुरोर्ण्यस्य । अवन्ती । कुन्ती । कुरूः । स्त्रियामिति किम् । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कौरव्यः ॥

---

* अतिप्राचीनपुस्तकद्वये चशब्दरहितं सूत्रं दृश्यते ।

अतश्च ॥ १७७ ॥

स्त्रियामित्येव । अकारप्रत्ययस्य तद्राजस्य स्त्रियामभिधेयायां लुग्भवति । तकारो विस्पष्टार्थः । शूरसेनी । मद्री । दरत् । अवन्त्यादिभ्यो लुग्वचनात् तदन्तविधिरत्र नास्ति तेनेह न भवति । आम्बष्ठ्या । सौवीर्या ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ १७८ ॥

प्राच्येभ्यो भर्गादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य लुग्न भवति । अतश्चेत्यनेन स्त्रियां लुक् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । प्राच्येभ्यः क्षत्रियेभ्यस्तावत् । पाञ्चाली । वैदेही । आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । भर्गादिभ्यः । भार्गी । कारूषी । कैकेयी । यौधेयादिभ्यः । यौधेयी । शौभ्रेयी । शौक्रेयी । कस्य पुनरकारस्य प्रत्ययस्य यौधेयादिभ्यो लुक् प्राप्तः प्रतिषिध्यते । पाञ्चमिकस्याञः पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणाञावित्येतस्य । कथं पुनस्तस्य भिन्नप्रकरणस्थस्यानेन लुक् प्राप्नोति । एतदेव विज्ञापयति पाञ्चमिकस्यापि तद्राजस्यातश्चेत्यनेन लुग्भवतीति । किमेतस्य ज्ञापनेन प्रयोजनं पर्श्वाद्यणः स्त्रियां लुक् सिद्धो भवति । पर्शूः । रक्षाः । असुरी । तथा चोक्तं "यौधेयादिप्रतिषेधो ज्ञापकः पर्श्वाद्यणो लुगिति" । भर्ग । करूष । केकय । कश्मीर । साल्व । सुस्थाल । उरश * । कौरव्य । भर्गादिः । यौधेय । शौभ्रेय । शौक्रेय । ग्रावाणेय । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । यौधेयादिः ॥

॥ इति काशिकायां वृत्तौ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

॥ अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तेन रक्तं रागात् ॥ १ ॥

शुक्लस्य वर्णान्तरापादनमिह रञ्जेरर्थः । रज्यते ऽनेनेति रागः । तेनेति तृतीयासमर्थाद्रागविशेषवाचिनः शब्दाद्रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम् । माञ्जिष्ठम् । कौसुम्भम् । रागादिति किम् । देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् । कथं काषायौ गर्दभस्य कर्णौ हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादाविति । उपमानाद्भविष्यति, काषायाविव काषायौ । हारिद्राविव हारिद्रौ । द्वैपवैयाघ्रादञिति यावत्तृतीयासमर्थविभक्तिरनुवर्त्तते ॥

लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक् ॥ २ ॥

---

* उरस । पा० २ ।

लाक्षादिभ्यो रागवचनेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम् । रौचनिकम् । शाकलिकम् । कार्दमिकम् ॥ शकलकर्दमाभ्यामणपीष्यते ॥ शाकलम् । कार्दमम् ॥ नील्या अन् वक्तव्यः ॥ * ॥ नील्या रक्तं नीलं वस्त्रम् ॥ पीतात् कन् वक्तव्यः ॥ * ॥ पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्वक्तव्यः ॥ * ॥ हारिद्रम् । माहारजनम् ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ ३ ॥

तृतीया समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते । तेनेति तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रविशेषवाचिनः शब्दाद् युक्त इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । योऽसौ युक्तः, कालश्चेत्स भवति । कथं पुनर्नक्षत्रेण पुष्यादिना कालो युज्यते । पुष्यादिसमीपस्थे चन्द्रमसि वर्त्तमानाः पुष्यादिशब्दाः प्रत्ययमुत्पादयन्ति । पुष्येण युक्तः कालः । पुष्यसमीपस्थेन चन्द्रमसा युक्त इत्यर्थः । पौषी रात्रिः । पौषमहः । माघी रात्रिः । माघमहः । नक्षत्रेणेति किम् । चन्द्रमसा युक्ता रात्रिः । काल इति किम् । पुष्येण युक्तश्चन्द्रमाः ॥

लुबविशेषे ॥ ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति अविशेषे । न चेन्नक्षत्रयुक्तस्य कालस्य रात्र्यादिविशेषोऽभिधीयते । यावान् कालो नक्षत्रेण युज्यते ऽहोरात्रस्तस्याविशेषे लुब् भवति । अद्य पुष्यः । अद्य कृत्तिकाः । अविशेष इति किम् । पौषी रात्रिः । पौषमहः ॥

संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ॥ ५ ॥

अविशेषे लुब्विहितः पूर्वेण, विशेषार्थोऽयमारम्भः । श्रवणशब्दादश्वत्थशब्दाच्चोत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति संज्ञायां विषये । श्रवणा रात्रिः । अश्वत्थो मुहूर्त्तः । लुपि युक्तवद्भावः कस्मान्न भवति । निपातनाद् विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीति । संज्ञायामिति किम् । श्रावणी आश्वत्थी रात्रिः ॥

द्वन्द्वाच्छः ॥ ६ ॥

नक्षत्रद्वन्द्वात्तृतीयासमर्थाद्युक्ते काले छः प्रत्ययो भवति विशेषे चाविशेषे च । राधानुराधीया रात्रिः । तिष्यपुनर्वसवीयमहः । अविशेषे । अद्य राधानुराधीयम् । अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम् । लुपं परत्वाद् बाधते ॥

दृष्टं साम ॥ ७ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । यद् दृष्टं साम चेत्तद्भवति । क्रुञ्चेन दृष्टं, क्रौञ्चं साम । वासिष्ठम् । वैश्वामित्रम् ॥

कलेर्ढक् ॥ ८ ॥

कलिशब्दात्तृतीयासमर्थाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। कलिना दृष्टं साम, कालेयम् ॥ सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्निना दृष्टमाग्नेयम्। एवमग्नौ भवमग्नेरागतमग्नेः स्वमिति सर्वत्र ढगेव भवति। आग्नेयम्। तथा कालेयमपि प्रतिपत्तव्यम् ॥ दृष्टे सामनि अण् वा डिद्भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उशनसा दृष्टं साम, औशनसम्। औशनम् ॥ जाते चार्थे योऽन्येन बाधितः पुनरण्विधीयते स वा डिद्भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्राग्दीव्यतोऽण् प्राप्तः कालठञा बाधितः सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्य इति पुनर्विधीयते स वा डिद्भवतीति वक्तव्यम्। शतभिषजि जातः शतभिषः। शातभिषजः ॥ तीयादीकक् स्वार्थे वा वक्तव्यः ॥ * ॥ द्वैतीयीकम्। तार्तीयीकम्। द्वितीयकम्। तृतीयकम् ॥ न विद्यायाः ॥ * ॥ द्वितीया तृतीया विद्या ॥ गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ * ॥ दृष्टं सामेत्यस्मिन्नर्थे। औपगवेन दृष्टं साम, औपगवकम्। कापटवकम्। गोत्रचरणाद्वुञ् भवति।

दृष्टे सामनि जाते च द्विरण्डिद्वा विधीयते।
तीयादीकक् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ॥ ९ ॥

वामदेवशब्दात्तृतीयासमर्थाद्दृष्टं सामेत्यस्मिन्नर्थे ड्यत् ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः। अणोऽपवादः। वामदेवेन दृष्टं साम, वामदेव्यं साम। तित्करणं स्वरार्थम्। डित्करणं किमर्थं, ययतोश्चातदर्थे इति नञ उत्तरस्यान्तोदात्तत्वे विधीयमाने ऽनयोर्ग्रहणं मा भूत्। अननुबन्धकग्रहणपरिभाषया एकानुबन्धकग्रहणपरिभाषया चानयोर्निवृत्तिः क्रियते। अवामदेव्यम्।

सिद्धे यस्येतिलोपेन किमर्थं ययतौ डितौ।
ग्रहणं मा ऽतदर्थे भूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे ॥

परिवृतो रथः ॥ १० ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्परिवृत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत्स भवति। वस्त्रेण परिवृतो रथः, वास्त्रो रथः। काम्बलः। चार्मणः। रथ इति किम्। वस्त्रेण परिवृतः कायः। समन्ताद्वेष्टितः परिवृत उच्यते। यस्य न कश्चिदवयवो वस्त्रादिभिरवेष्टितः तेनेह न भवति। छात्रैः परिवृतो रथः ॥

पाण्डुकम्बलादिनिः ॥ ११ ॥

पाण्डुकम्बलशब्दात्तृतीयासमर्थात्परिवृतो रथ इत्येतस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। पाण्डुकम्बली। पाण्डुकम्बलिनौ। पाण्डुकम्बलिनः। पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणस्य वर्णकम्बलस्य वाचकः। मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्त्यर्थम् ॥

द्वैपवैयाघ्रादञ् ॥ १२ ॥

द्वीपिव्याघ्रयोर्विकारभूते चर्मणी द्वैपवैयाघ्रे, ताभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यां परिवृतो रथ इत्येतस्मिन्नर्थे ऽञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। स्वरे विशेषः। द्वैपेन परिवृतो रथो द्वैपः। वैयाघ्रः ॥

कौमारापूर्ववचने ॥ १३ ॥

कौमार इत्येतदण्प्रत्ययान्तं निपात्यते ऽपूर्ववचने। पाणिग्रहणस्यापूर्ववचनम्। उभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे निपातनमेतत्। अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारः पतिः। कुमारीशब्दाद् द्वितीयासमर्थादुपयन्तरि प्रत्ययः। अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या। प्रथमान्तादेव स्वार्थे प्रत्ययो ऽपूर्वत्वे द्योत्ये।

कौमारापूर्ववचने कुमार्या अण्विधीयते।
अपूर्वत्वं यदा तस्याः कुमार्या भवतीति वा ॥
कुमार्या भवः कौमारः, तस्य स्त्री कौमारी भार्येति सिद्धम् ॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ १४ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थादमत्रवाचिनः शब्दादुद्धृतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। भुक्तोच्छिष्टमुद्धृतमुच्यते, यस्योद्धरणमिति प्रसिद्धिः। अमत्रं भाजनं पात्रमुच्यते। शरावेषूद्धृतः शाराव ओदनः। माल्लिकः। कार्परः। अमत्रेभ्य इति किम्। पाणावुद्धृत ओदनः। तत्रेति सप्तमी समर्थविभक्तिः चीराद्दुजिति यावदनुवर्त्तते ॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ॥ १५ ॥

स्थण्डिलशब्दात्सप्तमीसमर्थात् शयितर्यभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति, समुदायेन चेद्व्रतं गम्यते। व्रतमिति शास्त्रतो नियम उच्यते। स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य स्थाण्डिलो भिक्षुः। स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी। व्रतइति किम्। स्थण्डिले शेते ब्रह्मदत्तः ॥

संस्कृतं भक्षाः ॥ १६ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थात्संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते भवन्ति। खरविशदमभ्यवहारार्थं भक्षमित्युच्यते। सत

उत्कर्षाधानं संस्कारः। भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षा भ्राष्ट्रा अपूपाः। कालशाः। कौम्भाः। भक्षा इति किम्। पुष्पपुटे संस्कृतो मालागुणः॥

शूलोखाद्यत् ॥ १७ ॥

शूलशब्दादुखाशब्दाच्च सप्तमीसमर्थात्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति। अणोपवादः। शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम्। उख्यम्॥

दध्नष्ठक् ॥ १८ ॥

दधिशब्दात्सप्तमीसमर्थात्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। दधनि संस्कृतं, दाधिकम्। ननु च संस्कृतार्थे प्राग्वहतेष्ठकं वक्ष्यति तेनैव सिद्धम्। न सिद्ध्यति। दध्ना हि तत्संस्कृतं यस्य दधिकृतमेवोत्कर्षाधानम्, इह तु दधि केवलमाधारभूतं द्रव्यान्तरेण लवणादिना संस्कारः क्रियते॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ॥ १९ ॥

उदश्विच्छब्दात्सप्तमीसमर्थात्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थेऽन्यतरस्यां ठक् प्रत्ययो भवति। पक्षे यथाप्राप्तमण् भवति। औदश्वितम्। औदश्वित्कम्॥

क्षीराड्ढञ् ॥ २० ॥

क्षीरशब्दात्सप्तमीसमर्थात्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति। अणोपवादः। क्षीरे संस्कृता, क्षैरेयी यवागूः॥

सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम् ॥ २१ ॥

सेति प्रथमासमर्थाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं पौर्णमासी चेद्भवति इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा। संज्ञायामिति समुदायोपाधिः, प्रत्ययान्तेन चेत्संज्ञा गम्यतइति। मासार्द्धमाससंवत्सराणामेषा संज्ञा। पौषी पौर्णमासी अस्मिन्पौषो मासः। पौषोर्द्धमासः। पौषः संवत्सरः। इह न भवति। पौषी पौर्णमासी अस्मिन्दशरात्रइति। भृतकमासे। च न भवति। इतिकरणस्य संज्ञाशब्दस्य च तुल्यमेव फलं प्रयोगानुसरणं, तत्र किमर्थं द्वयमुपादीयते, संज्ञाशब्देन तुल्यतामिति करणस्य ज्ञापयितुं, नह्ययं लोके तथा प्रसिद्धः। संज्ञार्थत्वे तु संप्रति ज्ञापिते यत्तत्रतत्रोच्यते इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षेति तदुपपन्नं भवति। अथ पौर्णमासीति कोयं शब्दः। पूर्णमासादण्, पौर्णमासी। अथ वा पूर्णो माः पूर्णमाः, पूर्णमास इयं पौर्णमासी। मा इति चन्द्र उच्यते॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥ २२ ॥

सास्मिन्पौर्णमासीति सर्वमनुवर्तते। आग्रहायणीशब्दादश्वत्थशब्दाच्च प्रथमासमर्थात्पौर्णमास्युपाधिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अणोपवादः। आग्रहायणिको मासः। अर्द्धमासः। संवत्सरः। एवमाश्वत्थिकः॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः ॥ २३ ॥

फाल्गुन्यादयः पौर्णमासीशब्दास्तेभ्यो विभाषा ठक् प्रत्ययो भवति, सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायामित्येतस्मिन्विषये। नित्यमणि प्राप्ते पक्षे ठग्विधीयते। फाल्गुनो मासः। फाल्गुनिकः। श्रावणः। श्रावणिकः। कार्त्तिकः। कार्तिकिकः। चैत्रः। चैत्रिकः॥

सास्य देवता ॥ २४ ॥

सेति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थं देवता चेत्सा भवति। यागसंप्रदानं देवता देयस्य पुरोडाशादेः स्वामिनी, तस्मिन्नभिधेये प्रत्ययः। इन्द्रो देवता ऽस्य ऐन्द्रं हविः। आदित्यम्। बार्हस्पत्यम्। प्राजापत्यम्। देवतेति किम्। कन्या देवता ऽस्य। कथमैन्द्रो मन्त्रः। मन्त्रस्तुत्यमपि देवतेत्युपचरन्ति। कथमाग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतयेति, उपमानाद्भविष्यति। महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञिति यावत्सास्य देवतेत्यधिकारः। सेति प्रकृते पुनः समर्थविभक्तिनिर्देशः संज्ञानिवृत्त्यर्थः॥

कस्येत् ॥ २५ ॥

कशब्दो देवतायां प्रजापतेर्वाचकस्ततः पूर्वेणैवाण्प्रत्ययः सिद्ध इकारादेशार्थं वचनम्। कस्य इकारादेशो भवति प्रत्ययसन्नियोगेन। कायं हविः। कायमेककपालं निर्वपेत्॥

शुक्राद् घन् ॥ २६ ॥

शुक्रशब्दात्सास्य देवतेत्यस्मिन्नर्थे घन् प्रत्ययो भवति। अणोपवादः। शुक्रियं हविः। शुक्रियोध्यायः॥

अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः ॥ २७ ॥

अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यां घः प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। अपोनप्त्रियं हविः। अपांनप्त्रियम्। अपोनपाद् आपांनपादिति देवताया नामधेये एते। तयोस्तु प्रत्ययसन्नियोगेन रूपमिदं निपात्यते॥

छ च ॥ २८ ॥

अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यां छकारः प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। अपोनप्त्रीयं हविः। अपान्नप्त्रीयम्। योगविभागः संख्यातानुदेशपरिहारार्थः॥ छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्॥ *॥ पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। तार्णबिन्दवीयम्॥ शतरुद्राच्छश्चघश्च॥ *॥ शतरुद्रीयम्। शतरुद्रियम्॥

महेन्द्राद् घाणौ च ॥ २९ ॥

महेन्द्रशब्दाद् घाणौ प्रत्ययौ भवतः, चकाराच्छश्च, सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । महेन्द्रो देवतास्य महेन्द्रियं हविः । माहेन्द्रम् । महेन्द्रीयम् ॥

सोमाट् ट्यण् ॥ ३० ॥

सोमशब्दात् ट्यण्प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । अणोऽपवादः । णकारो वृद्ध्यर्थः । टकारो ङीबर्थः । सोमो देवतास्य सौम्यं हविः । सौम्यं सूक्तम् । सौमी ऋक् ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥ ३१ ॥

वाय्वादिभ्यः शब्देभ्यो यत्प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्येतस्मिन्विषये । अणोऽपवादः । वायुर्देवतास्य वायव्यम् । ऋतव्यम् । पित्र्यम् । उषस्यम् ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ॥ ३२ ॥

द्यावापृथिव्यादिभ्यश्छः प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । अणो यतश्चापवादः । द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य, द्यावापृथिवीयम् । द्यावापृथिव्यम् । शुनश्च सीरश्च तौ देवते अस्येति, शुनासीरीयम् । शुनासीर्यम् । शुनो वायुः । सीर आदित्यः । मरुत्वान्देवतास्य, मरुत्वतीयम् । मरुत्वत्यम् । अग्नीषोमीयम् । अग्नीषोम्यम् । वास्तोष्पतीयम् । वास्तोष्पत्यम् । गृहमेधीयम् । गृहमेध्यम् ॥

अग्नेर्ढक् ॥ ३३ ॥

अग्निशब्दाद् ढक् प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । अणोऽपवादः अग्निर्देवतास्य, आग्नेयोऽष्टाकपालः ॥ प्राग्दीव्यतीयेषु तद्धितार्थेषु सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः ॥ * ॥

कालेभ्यो भववत् ॥ ३४ ॥

कालविशेषवाचिभ्यः शब्देभ्यो भववत्प्रत्यया भवन्ति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । कालाट्ठञिति प्रकरणे भवे प्रत्यया विधास्यन्ते ते सास्य देवतेत्यस्मिन्नर्थे तथैव स्युः, तदर्थमिदमुच्यते । वत्करणं सर्वसादृश्यपरिग्रहार्थम् । मासे भवं मासिकम् । आर्द्धमासिकम् । सांवत्सरिकम् । वासन्तम् । प्रावृषेण्यम् । तथा, मासो देवतास्य, मासिकम् । आर्द्धमासिकम् । सांवत्सरिकम् । वासन्तम् । प्रावृषेण्यम् ॥

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ॥ ३५ ॥

महाराजशब्दात्प्रोष्ठपदशब्दाच्च ठञ् प्रत्ययो भवति सास्य देवतेत्यस्मिन्विषये । महाराजो देवतास्य माहाराजिकम् । प्रौष्ठपदिकम् ॥ ठञ्प्रक-

रखो तदस्मिन्वर्ततइति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ नवयज्ञोऽस्मिन्वर्तते, नावयज्ञिकः कालः । पाकयज्ञिकः ॥ पूर्णमासादण् ॥ * ॥ पूर्णमासोऽस्यां वर्तते पौर्णमासी तिथिः ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥ ३६ ॥

पितृव्यादयो निपात्यन्ते । समर्थविभक्तिः प्रत्ययः प्रत्ययार्थो ऽनुबन्ध इति सर्वं निपातनाद्विज्ञेयम् । पितृमातृभ्यां भ्रातर्यभिधेये व्यत् डुलच् इत्येतौ प्रत्ययौ निपात्येते । पितुर्भ्राता पितृव्यः । मातुर्भ्राता मातुलः । ताभ्यां पितरि डामहच्, मातरि षिच्च । ताभ्यामेव पितरि डामहच् प्रत्ययो भवति । पितुः पिता, पितामहः । मातुः पिता, मातामहः । मातरि षिच्च । पितामही । मातामही ॥ अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः ॥ * ॥ अवेर्दुग्ध,मविसोढम् । अविदूसम् । अविमरीसम् ॥ तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ प्रत्ययौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ निष्फलस्तिल, स्तिलपिञ्जः । तिलपेजः ॥ पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥ * ॥ तिल्पिञ्जः ॥

तस्य समूहः ॥ ३७ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थात्समूह इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । किमिहोदाहरणम् । चित्तवदाद्युदात्तमगोत्रं यस्य च नान्यत्प्रतिपदं ग्रहणम् । अचित्ताट्ठकं वक्ष्यति, अनुदात्तादेरञ्. गोत्राद्वुञ्, प्रतिपदं च केदाराद्यञ्चेत्येव-मादि, तत्परिहारेणोदाहरणं द्रष्टव्यम् । काकानां समूहः, काकम् । बाकम् । इनित्रकट्यचश्चेति यावत्समूहाधिकारः ॥ गुणादिभ्यो ग्रामज्वक्तव्यः ॥ * ॥ गुण-ग्रामः । करणग्रामः । गुण । करण । तत्त्व । शब्द । इन्द्रिय । आकृतिगणः* ॥

भिक्षादिभ्यो ऽण् ॥ ३८ ॥

भिक्षेत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्वि-षये । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् । भिक्षाणां समूहो, भैक्षम् । गार्भिणम् । युव-तिशब्दोऽत्र पठ्यते, तस्य ग्रहणसामर्थ्याद् पुंवद्भावो न भवति भस्याढे तद्धितइति । युवतीनां समूहो, यौवतम् । भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । करीष । अङ्गार । चर्मिन् । धर्मिन् † । सहस्र । युवति । पदाति । पद्धति । अथर्वन् ‡ । दक्षिणा । भूत § ॥

---

* गुणादिभ्य इत्यारभ्याकृतिगण इत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† चर्मन् । धर्मन् । इति पा० २ ।

‡ अर्थन् । इति पा० २ ।

§ विषय । श्रोत्र ॥ वृक्षादिभ्यः खण्डः ॥ वृक्षखण्डः । तरुखण्डः । वृक्ष । तरु । पाद-प । इत्यधिकमत्र पुस्तकद्वये । तत्रैकस्मिन् पुस्तके"वृक्षादिभ्यः षण्डप्रत्ययो भवति । वृक्षषण्डः तरुषण्डः" । इति पा० २ ।

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥ ३९ ॥

गोत्रादिभ्यो वुञ्प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रं गृह्यते ऽपत्यमात्रं न तु पौत्रप्रभृत्येव । औपगवानां समूहः, औपगवकम् । कापटवकम् । उक्षन् । औक्षकम् । उष्ट्र । औष्ट्रकम् । उरभ्र । औरभ्रकम् । राजन् । राजकम् । राजन्य । राजन्यकम् । राजपुत्र । राजपुत्रकम् । वत्स । वात्सकम् । मनुष्य । मानुष्यकम् । अज । आजकम् । "प्रकृत्या ऽके राजन्यमनुष्ययुवान" इति यलोपो न भवति आपत्यस्य च तद्धिते नातीति ॥ वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वृद्धानां समूहो, वार्द्धकम् ॥

केदाराद्यञ्च ॥ ४० ॥

केदारशब्दाद् यञ्प्रत्ययो भवति, चकाराद् वुञ् च, तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । अचित्तलक्षणस्य ठको ऽपवादः । केदाराणां समूहः, कैदार्यम् । कैदारकम् ॥ गणिकायाश्च यञ्वक्तव्यः ॥ * ॥ गणिकानां समूहो, गाणिक्यम् ॥

ठञ् कवचिनश्च ॥ ४१ ॥

कवचिन्शब्दाट्ठञ् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । कवचिनां समूहः, कावचिकम् । चकारः केदारादित्यस्यानुकर्षणार्थः केदाराणां समूहः, कैदारिकम् ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणादिभ्यः शब्देभ्यो यन्प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । नकारः स्वरार्थः । ब्राह्मणानां समूहो, ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ॥ यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पृष्ठानां समूहः, पृष्ठ्यः ॥ अह्नः खः क्रतौ ॥ * ॥ अह्नां समूहो, ऽहीनः क्रतुः । क्रताविति किम् । आह्नः । खण्डिकादिषु दर्शनादञ्भवति ॥ पर्श्वा णस्वक्तव्यः ॥ * पर्शूनां समूहः, पार्श्वम् । पदसंज्ञकत्वाद् गुणो न भवति ॥ वातादूलः ॥ * ॥ वातानां समूहो, वातूलः* ॥

ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल् ॥ ४३ ॥

ग्रामादिभ्यस्तल्प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । ग्रामाणां समूहः, ग्रामता । जनता । बन्धुता । सहायता ॥ गजाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गजानां समूहो, गजता ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ४४ ॥

---

* वातादित्यारभ्यः वातूल इत्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

अनुदात्तादेः शब्दादञ् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये कपोतानां समूहः, कापोतम् । मायूरम् । तैत्तिरम् ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥

खण्डिका इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो ऽञ् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । आद्युदात्तार्थमचित्तार्थं च वचनम् । खण्डिकानां समूहः, खाण्डिकम् । वाडवम् । क्षुद्रकमालवशब्दोऽत्र पठ्यते । क्षुद्रकाश्च मालवाश्चेति क्षत्रियद्वन्द्वः । ततः पूर्वेणैवाञि सिद्धे वचनं गोत्रवुञ्बाधनार्थम् । ननु च परत्वादञा वुञ् बाधिष्यते । न च गोत्रसमुदायो गोत्रं, न च तदन्तविधिरत्रास्ति । एवं तर्हि एतज् ज्ञापयति वुञि पूर्वविप्रतिषेधः, सामूहिकेषु च तदन्तविधिरस्तीति । प्रयोजनमौपगवकं कापटवकमिति वुञ् भवति । वानहस्तिकं गौधेनुकमिति च तदन्तविधिः । क्षुद्रकमालवादित्येतावता योगविभागेन पूर्वविप्रतिषेधस्तदन्तविधिश्च ज्ञापितः, पुनरस्यैव नियमार्थमुच्यते सेनासंज्ञायामिति । क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायामेवाऽभवति । क्षौद्रकमालवी सेना । क्षौद्रकमालवकमन्यतत् * ।

अञ्सिद्धिरनुदात्तादेः को ऽर्थः क्षुद्रकमालवात् ।
गोत्राद्वुञ् न च तद्गोत्रं तदन्तान्न च सर्वतः ॥
ज्ञापकं स्यात्तदन्तत्वे तथा चापिशलेर्विधिः ।
सेनायां नियमार्थं च यथा बाध्येत चाञ् वुञा ॥

खण्डिका । वडवा ॥ क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ भिक्षुक । शुक । उलूक । श्वन् । युग । अहन् । वरत्रा । हलबन्ध ॥

चरणेभ्यो धर्मवत् ॥ ४६ ॥

चरणशब्दाः कठकलापादयः, तेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः समूहे धर्मवत् प्रत्यया भवन्ति । गोत्रचरणाद्वुञित्यारभ्य प्रत्यया वक्ष्यन्ते, तत्र चेदमुच्यते चरणाद्धर्माम्नाययोरिति, तेन धर्मवदित्यतिदेशः क्रियते । वतिः सर्वसादृश्यार्थः । कठानां धर्मः, काठकम् । कालापकम् । छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । आथर्वणम् । तथा समूहेपि । काठकम् । कालापकम् । छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । आथर्वणम् † ॥

---

* गोत्रलक्षणो वुञेव भवतीत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† ननु धर्मे न कोपि प्रत्ययो विधास्यते, कथं धर्मवदित्यतिदेशः । एतदेव ज्ञापयति वार्तिककारो गोत्रचरणाद्वुञित्यस्मिन्प्रकरणे सर्वयोगशेषं 'चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्ष्यति' तदभगवतः पाणिनेरप्यभिमतमिति । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ४७ ॥

अचित्तार्थेभ्यो हस्तिधेनुशब्दाभ्यां च ठक् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । अणञोरपवादः । अपूपानां समूह, आपूपिकम् । शाष्कुलिकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ॥ धेनोरनञ इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आधेनवम् ॥

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥

केश अश्व इत्येताभ्यां यथासंख्यं यञ् छ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतोऽन्यतरस्यां तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । केशानां समूहः, कैश्यम् । कैशिकम् । अश्वानां समूह, आश्वम् । आश्वीयम् ॥

पाशादिभ्यो यः ॥ ४९ ॥

पाशादिभ्यो यः प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । पाशानां समूहः, पाश्या । तृण्या * । पाश । तृण । धूम । वात । अङ्गार । पोत । बालक । पिटक । पिटाक । शकट । हल । नड । वन † ॥

खलगोरथात् ॥ ५० ॥

खलगोरथशब्देभ्यो यः प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । खलानां समूहः, खल्या । गव्या । रथ्या । पाशादिष्वपाठ उत्तरार्थः ‡ ॥

इनित्रकट्यचश्च ॥ ५१ ॥

खलगोरथशब्देभ्यो यथासंख्यम् इनि त्र कट्यच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति तस्य समूह इत्येतस्मिन्विषये । खलिनी । गोत्रा । रथकट्या ॥ खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ डाकिनी । कुण्डलिनी । कुटुम्बिनी ॥ कमलादिभ्यः खण्डच् प्रत्ययो भवति ॥ * ॥ कमलखण्डम् । अम्भोजखण्डम् । कमल । अम्भोज । पद्मिनी । कुमुद । सरोज । पद्म । नलिनी । कैरविणी । कमलादिराकृतिगणः ॥ नरकरितुरङ्गाणां स्कन्धच् प्रत्ययः ॥ * ॥ नरस्कन्धः । करिस्कन्धः । तुरङ्गस्कन्धः ॥ पूर्वादिभ्यः काण्डः प्रत्ययो भवति ॥ * ॥ पूर्वकाण्डम् । तृणकाण्डम् । कर्मकाण्डम् § ॥

विषयो देशे ॥ ५२ ॥

समूह इति निवृत्तम् । षष्ठी समर्थविभक्तिरनुवर्तते । तस्येति षष्ठीसमर्थाद् विषय इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ विषयो देश-

---

* अत्र स्त्रीलिङ्गत्वं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† पाटलका । गल । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

‡ योगविभाग उत्तरार्थः । पा० २ ।

§ कमलादिभ्य इत्यारभ्य कर्मकाण्डमित्यन्तः पाठ एकस्मिन्पुस्तके नास्ति ।

श्चेत्स भवति । विषयशब्दो बह्वर्थः । क्व चिद्ग्रामसमुदाये वर्त्तते, विषयो लब्ध इति । क्व चिदिन्द्रियग्राह्ये, चक्षुर्विषयो रूपमिति । क्व चिदत्यन्तशीलिते ज्ञेये, देवदत्तस्य विषयो ऽनुवाक इति । क्व चिदन्यत्राभावे, मत्स्यानां विषयो जलमिति । तत्र देशग्रहणं ग्रामसमुदायप्रतिपत्त्यर्थम् । शिबीनां विषयो देशः, शैबः । औष्ट्रः । देशइति किम् । देवदत्तस्य विषयो ऽनुवाकः ॥

राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ ५३ ॥

राजन्यादिभ्यः शब्देभ्यो वुञ्प्रत्ययो भवति विषयो देशइत्येतस्मिन्नर्थे । अणोपवादः । राजन्यानां विषयो देशः, राजन्यकः । दैवयानकः । आकृतिगणश्चायम् । मालवानां विषयो देशः, मालवकः । वैराटकः । त्रैगर्त्तकः । राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । आत्मकामेय । अम्बरीषपुत्र । वसाति । बैल्ववन । शैलूष । उदुम्बर । बैल्वल । आर्जुनायन । संप्रिय । दाक्षि । ऊर्णनाभ * ॥

भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥ ५४ ॥

भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च यथासंख्यं विधल् भक्तल् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो विषयो देशइत्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । भौरिकिविधः । वैपेयविधः । ऐषुकार्यादिभ्यः । ऐषुकारिभक्तः । सारस्यायनभक्तः । भौरिकि । वैपेय । भौलिकि । चैटयत । काणेय । वाणिजक । वालिज । वालिज्यक । शैकयत । वैकयत । भौरिक्यादिः ॥ ऐषुकारि । सारस्यायन । चान्द्रायण । द्व्याक्षायण । त्र्यायण । औडायन । जौलायन । खाडायन । सौवीर । दासमित्रि । दासमित्रायण । शौद्रायण । दाक्षायण । शयण्ड । तार्क्ष्यायण । शौभ्रायण । सायण्डि । शौण्डि । वैश्वमाणव । वैश्वधेनव । नद । तुण्डदेव । विशदेव † ॥

सोस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु ॥ ५५ ॥

स इति समर्थविभक्तिः । अस्येति प्रत्ययार्थः । आदिरिति प्रकृतिविशेषणम् । इतिकरणो विवक्षार्थः । छन्दस इति प्रकृतिनिर्देशः । प्रगाथेष्विति प्रत्ययार्थविशेषणम् । स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थं छन्दश्चेत्तदादिर्भवति, यत्तदस्येति निर्दिष्टं प्रगाथाश्चेत्ते भवन्ति, इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा । पङ्क्तिरादिरस्य, पाङ्क्तः प्रगाथः । आनुष्टुभः । जागतः । आदिरिति किम् । अनुष्टुम्मध्यमस्य प्रगाथस्य । छन्दस इति किम् । उदुत्यशब्द आदिरस्य प्रगाथस्य । प्रगाथेष्विति किम् । पङ्क्तिरादिरस्या-

---

* आप्रीत । अवीड । वैतिल । वात्रक । एते ऽत्राधिकाः पुस्तकान्तरे ।

† अलायत । औलालायत । शैयण्ड । शयाण्ड । वैश्वदेव । एते शब्दा अधिकाः पुस्तकान्तरे ।

नुवाकस्य। प्रगाथशब्दः क्रियानिमित्तकः क्व चिदेव मन्त्रविशेषे वर्तते। यत्र द्वे ऋचौ प्रग्रथनेन तिस्रः क्रियन्ते स प्रगाथनात्मकर्षगानाद्वा प्रगाथ इत्युच्यते ॥ छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसके स्वार्थेऽपसंख्यानम् ॥ * ॥ त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्। जागतम् ॥

संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ५६ ॥

सोऽस्येति समर्थविभक्तिः, प्रत्ययार्थश्चानुवर्तते। प्रथमासमर्थविशेषणं, प्रयोजनं योद्धारश्च। प्रत्ययार्थविशेषणं संग्रामः। प्रयोजनवाचिभ्यो योद्धृवाचिभ्यश्च शब्देभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यो ऽस्येति षष्ठ्यर्थे संग्रामे ऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। भद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्य भाद्रः संग्रामः। सौभद्रः। गौरिमित्रः। योद्धृभ्यः। अहिमाला योद्धारो ऽस्य संग्रामस्य, आहिमालः। स्यान्दनाश्वः। भारतः। संग्रामइति किम्। सुभद्रा प्रयोजनमस्य दानस्य। प्रयोजनयोद्धृभ्य इति किम्। सुभद्रा प्रेक्षिका ऽस्य संग्रामस्य ॥

तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ॥ ५७ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्यामिति सप्तम्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत्तदिति निर्दिष्टं प्रहरणं चेत्तद्भवति। यदस्यामिति निर्दिष्टं क्रीडा चेत्सा भवति। इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा। दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां, दाण्डा। मौष्टा। प्रहरणमिति किम्। माला भूषणमस्यां क्रीडायाम्। क्रीडायामिति किम्। खड्गः प्रहरणमस्यां सेनायाम् ॥

घञः सास्यां क्रियेति ञः ॥ ५८ ॥

सेति समर्थविभक्तिः। अस्यामिति प्रत्ययार्थः स्त्रीलिङ्गः। क्रियेति प्रकृत्यर्थविशेषणम्। घञ इति प्रकृतिनिर्देशः। इतिकरणो विवक्षार्थः। घञन्तात्क्रियावाचिनः प्रथमासमर्थादस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञः प्रत्ययो भवति। घञ इति कृद्ग्रहणं तत्र गतिकारकपूर्वमपि गृह्यते। श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते श्यैनंपाता। तैलंपाता। घञ इति किम्। श्येनपतनमस्यां वर्त्तते। क्रियेति किम्। प्राकारो ऽस्यां वर्तते। अथ समर्थविभक्तिः प्रत्ययार्थश्च कस्मात्पुनरुपादीयते। यावता द्वयमपि प्रकृतमेव। क्रीडायामित्यनेन तत्संबद्धम्, अतस्तदनुवृत्तौ क्रीडानुवृत्तिरपि संभाव्येत। सामान्येन चेदं विधानम्। दण्डपातो ऽस्यां तिथौ वर्त्तते दाण्डपाता तिथिः। मौसलपाता तिथिः ॥

तदधीते तद्वेद ॥ ५९ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादधीते वेद इत्येतयोरर्थयोर्यथाविहितं प्रत्ययो भवति। छन्दोऽधीते, छान्दसः। वैयाकरणः। नैरुक्तः। निमित्तानि वेद, नैमित्तः। मौहूर्त्तः। औत्पातः। द्विस्तद्ग्रहणमधीयानविदुषोः पृथग्विधानार्थम् ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ६० ॥

क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यश्च सूत्रान्ताच्च ठक्प्रत्ययो भवति तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। अग्निष्टोममधीते वेद वा, आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थादिभ्यः। औक्थिकः। लौकायतिकः। सूत्रान्तात्। वार्त्तिकसूत्रिकः। सांग्रहसूत्रिकः॥ सूत्रान्तादकल्पादेरिष्यते॥ कल्पसूत्रमधीते काल्पसूत्रः। अणेव भवति। उक्थशब्दः केषु चिदेव सामसु रूढः। यज्ञायज्ञीयात्परेण यानि गीयन्ते,न च तान्यधीयाने प्रत्यय दृष्यते, किं तर्हि सामलक्षणे औक्थिक्ये वर्तमान उक्थशब्दः प्रत्ययमुत्पादयति। उक्थमधीते, औक्थिकः। औक्थिक्यमधीतइत्यर्थः। औक्थिक्यशब्दाच्च प्रत्ययो न भवत्येव, अनभिधानात्॥ विद्यालक्षणकल्पान्तादिति वक्तव्यम्॥ * ॥ वायसविद्यिकः। सार्पविद्यिकः। गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। मातृकल्पिकः। पाराशरकल्पिकः॥ विद्या च नाङ्गक्षत्रधर्मसंसर्गत्रिपूर्वा॥ * ॥ अङ्गविद्यामधीते, आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्मविद्यः। सांसर्गविद्यः। त्रैविद्यः॥ आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यष्ठग्वक्तव्यः॥ * ॥ आख्यानाख्यायिकयोरर्थग्रहणं,मितिहासपुराणयोः स्वरूपग्रहणम्। यावक्रीतिकः। प्रैयङ्गविकः। वासवदत्तिकः। सौमनोत्तरिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः॥ सर्वसादेर्द्विगोश्च लः॥ * ॥ सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः। सादेः। सवार्त्तिकः। ससंग्रहः। द्विगोः। द्विवेदः। पञ्चव्याकरणः॥ अनुसूलक्ष्यलक्षणे च॥ * ॥ अनुसूर्नाम ग्रन्थ,स्तमधीते, आनुसुकः। लाक्षिकः। लाक्षणिकः॥ इकन्पदोत्तरपदात्॥ * ॥ पूर्वपदिकः *॥ शतषष्टेः षिकन् पथो बहुलम्॥ * ॥ शतपथिकः। शतपथिकी। षष्टिपथिकः। षष्टिपथिकी। बहुलग्रहणादणपि भवति। शातपथः। षाष्टिपथः। उक्थ। लोकायत। न्याय। न्यास। निमित्त। पुनरुक्त। निरुक्त। यज्ञ। चर्चा। धर्म। क्रमेतर। श्लक्ष्ण। संहिता। पद। क्रम। संघात। वृत्ति। संग्रह। गुणागुण। आयुर्वेद॥ विद्यालक्षणकल्पान्तात्सूत्रान्तादकल्पादे,र्विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मसंसर्गत्रिपूर्वा॥ आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च॥ द्विपदी, ज्योतिषि॥ अनुपद। अनुकल्प। अनुगुण॥ शतषष्टेः पथः षिकन् बहुलम्॥ इकन्पदोत्तरपदात्॥

क्रमादिभ्यो वुन्॥ ६१ ॥

क्रम इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो वुन्प्रत्ययो भवति तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। क्रमकः। पदकः। क्रम। पद। शिक्षा। मीमांसा। सामन्॥

अनुब्राह्मणादिनिः॥ ६२ ॥

---

* इकन् बहुलं पदोत्तरपदात्॥ पदोत्तरपदिकः। अन्ये तु पदोत्तरपदमदिति पदशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मादित्यर्थं व्याचक्षते। तन्मते पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः। पा० २।

अनुब्राह्मणशब्दादिनिः प्रत्ययो भवति तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। ब्राह्मणसदृशो ऽयं ग्रन्थो ऽनुब्राह्मणम्। तदधीते, ऽनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मणिनौ। अनुब्राह्मणिनः। मत्वर्थेनात इनिठनाविति इनिनासिद्धम्। तत्रैतस्माट्ठनपि प्राप्नोति, अनभिधानान्न भविष्यति। अणोनिवृत्त्यर्थं तर्हि वचनम्॥

वसन्तादिभ्यष्ठक्॥ ६३॥

वसन्त इत्येवमादिभ्यष्ठक्प्रत्ययो भवति तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन्विषये। अणोपवादः। वसन्तसहचरितोयं ग्रन्थो वसन्त,स्तमधीते, वासन्तिकः। वार्षिकः। वसन्त। वर्षा। शरद्। हेमन्त। शिशिर। प्रथम। गुण। चरम। अनुगुण। अपर्वन्। अथर्वन्॥

प्रोक्ताल्लुक्॥ ६४॥

प्रोक्तसहचरितः प्रत्ययः प्रोक्तः। प्रोक्तप्रत्ययान्तादध्येतृवेदित्रोरुत्पन्नस्य लुग्भवति। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तदधीते पाणिनीयः। आपिशलः। स्त्रियां स्वरे च विशेषः। पाणिनीया ब्राह्मणी॥

सूत्राच्च कोपधात्॥ ६५॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादुत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुग्भवति। अप्रोक्तार्थ आरम्भः। पाणिनीयमष्टकं सूत्रं तदधीते, अष्टकाः पाणिनीयाः दशका वैयाघ्रपदीयाः। त्रिकाः काशकृत्स्नाः॥ संख्याप्रकृतेरिति वक्तव्यम्॥ * ॥ इह मा भूत्। महावार्त्तिकं सूत्रमधीते, माहावार्त्तिकः। कालापकमधीते, कालापकः। कोपधादिति किम्। चतुष्टयमधीते, चातुष्टयः॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥ ६६॥

प्रोक्तग्रहणमनुवर्त्तते। छन्दांसि ब्राह्मणानि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाण्येव भवन्ति। अध्येतृवेदितृप्रत्ययविषयाणि। अनन्यभावो विषयार्थः। तेन स्वातन्त्र्यमुपाध्यन्तरयोगो वाक्यं च निवर्तते। कठेन प्रोक्तमधीयते, कठाः। मौदाः। पैप्पलादाः। आर्चाभिनः। वाजसनेयिनः। ब्राह्मणानि खल्वपि। ताण्डिनः। भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। ब्राह्मणग्रहणं किम्। यावता छन्द एव तद्। ब्राह्मणविशेषप्रतिपत्त्यर्थ,मिह तद्विषयता मा भूत्। याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि, याज्ञवल्क्यानि। सौलभानि। चकारो ऽनुक्तसमुच्चयार्थः। कल्पे। काश्यपिनः। कौशिकिनः। सूत्रे। पाराशरिणो भिक्षवः। शैलालिनो नटाः। कर्मन्दिनः। कृशाश्विनः। छन्दोब्राह्मणानीति किम्। पाणिनीयं व्याकरणम्। पैङ्गी कल्पः॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ६७ ॥

तदिति प्रथमा समर्थविभक्तिः। अस्मिन्निति प्रत्ययार्थः। अस्तीति प्रकृत्यर्थविशेषणम्। इतिकरणो विवक्षार्थः। देशे तन्नाम्नीति प्रत्ययार्थविशेषणम्। तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थमस्ति चेत्तद्भवति, यदस्मिन्निति निर्दिष्टं देशश्चेत्स तन्नामा भवति, प्रत्ययान्तनामा, इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा। उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्ति, औदुम्बरः। बाल्बजः। पार्वतः। मत्वर्थीयापवादो योगः॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ६८ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थान्निर्वृत्तमित्यस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति देशनामधेये गम्यमाने। देशे तन्नाम्नीति चतुर्ष्वपि योगेषु संबध्यते। सहस्रेण निर्वृत्ता, साहस्री परिखा। कुशाम्बेननिर्वृत्ता, कौशाम्बी नगरी। हेतौ कर्त्तरि च यथायोगं तृतीया समर्थविभक्तिः॥

तस्य निवासः ॥ ६९ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थान्निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति देशनामधेये गम्यमाने। निवसत्यस्मिन्निति निवासः। ऋजुनावान्निवासो देश, आर्जुनावो देशः। शैबः। औदिष्टः॥

अदूरभवश्च ॥ ७० ॥

पूर्वा समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते। तस्येति षष्ठीसमर्थाददूरभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। विदिशाया अदूरभवं नगरं, वैदिशम्। हैमवतम्। चकारः पूर्वेषां त्रयाणामर्थानामिह सन्निधानार्थः। तेनोत्तरेषु चत्वारोऽप्यर्थाः संबध्यन्ते॥

ओरञ् ॥ ७१ ॥

चत्वारोऽर्था अनुवर्त्तन्ते। उवर्णान्तात्प्रातिपदिकाद्यथाविहितं समर्थविभक्तियुक्तादञ् प्रत्ययो भवति तदस्मिन्नस्तीत्येवमादिष्वर्थेषु। अणोऽपवादः। अरडु। आरडवम्। कक्षतु। काक्षतवम्। कर्कटेलु। कार्कटेलवम्। नद्यां तु परत्वान्मतुब्भवति। इक्षुमती। अञधिकारः प्राक् सुवास्त्वादिभ्योऽणः॥

मतोश्च बह्वजङ्गात् ॥ ७२ ॥

बह्वज् अङ्गं यस्यासौ बह्वजङ्गो मतुप्, तदन्तात्प्रातिपदिकादञ्प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः। अणोऽपवादः। ऐषुकावतम्*। सैध्रकावतम्। बह्वजङ्ग-

* ऐकटावतम्। पा० २।

दिति किम् । आहिमतम् । यावमतम् । अङ्ग्रहणं बह्वजिति तद्विशेषणं यथा विज्ञायते, मत्वन्तविशेषणं मा विज्ञायीति । मालावतां निवासो, मालावतम् ॥

बह्वचः कूपेषु ॥ ७३ ॥

बह्वचः प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः कूपेष्वभिधेयेषु । अणोऽपवादः । यथासंभवमर्थाः संबध्यन्ते । दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः, दैर्घवरत्रः कापिलवरत्रः ॥

उदक्च विपाशः ॥ ७४ ॥

विपाश उत्तरे कूले ये कूपास्तेष्वभिधेयेष्वञ् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । अणोऽपवादः । अबह्वजर्थ आरम्भः । दत्तेन निर्वृत्तः कूपो, दात्तः । गौप्तः । उदगिति किम् । दक्षिणतो विपाशः कूपेष्वणेव । दात्तः । गौप्तः । स्वरे विशेषः । महती सूक्ष्मेक्षिका वर्त्तते सूत्रकारस्य ॥

संकलादिभ्यश्च ॥ ७५ ॥

कूपेष्विति निवृत्तम् । संकल इत्येवमादिभ्योऽञ् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । अणोऽपवादः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । संगतः कलः, संकलः । संकलेन निर्वृत्तः, सांकलः । पौष्कलः । संकल । पुष्कल । उडुप । उडुप । उत्पुट । कुम्भ । विधान । सुदक्ष । सुदत्त । सुभूत । सुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूतीकी । पूलास । कूलास । पलाश । निवेश । गवेष । गम्भीर । इतर । शर्मन् । अहन् । लोमन् । वेमन् । वरुण । बहुल । सद्योज । अभिषिक्त । गोभृत् । राजभृत् । गृह । भृत । भल्ल । माल । वृत् ॥

स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु ॥ ७६ ॥

देशे तन्नामेत्यस्य विशेषणं सौवीरादयः, स्त्रीत्वं च । ङ्याप्प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति चातुर्थिकः । अणो ऽपवादः । सौवीरे स्त्रीलिङ्गे देशे वाच्ये साल्वे प्राचि । सौवीरे तावत् । दत्तामित्रेण निर्वृत्ता नगरी, दात्तामित्री । साल्वे । विधूमाग्निना निर्वृत्ता, वैधूमाग्नी । प्राचिखल्वपि । ककन्देन निर्वृत्ता, काकन्दी । माकन्दी । माणिचरी । जारुषी ॥

सुवास्त्वादिभ्यो ऽण् ॥ ७७ ॥

सुवास्तु इत्येवमादिभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः* । अञ उवर्णान्तलक्षणस्य कूपलक्षणस्य चापवादः । सुवास्तोरदूरभवं नगरं, सौवास्तवम् वार्णवम् । अण्ग्रहणं नद्यां मतुपो बाधनार्थम् । सौवास्तवी नदी । सुवास्तु

* यथासंभवमर्थसंबन्ध इत्यधिकं कुत्र चित् ।

वर्णु । भण्डु । खण्डु * । सेचालिन् । कर्पूरिन् । शिखण्डिन् । गर्त । कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्धूमती । गोह्य † । अहिसक्थ । वृत् ॥

रोणी ॥ ७८ ॥

रोणीशब्दादणप्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । कूपलक्षणस्याञो ऽपवादः । रोणीति कोयं निर्देशो यावता प्रत्ययविधौ पञ्चमी युक्ता, सर्वावस्थप्रतिपत्त्यर्थमेवमुच्यते । रोणीशब्दः सर्वावस्थोऽणप्रत्ययमुत्पादयति, केवलस्तदन्तश्च । रौणः । आजकरोणः । सैंहिकरोणः ॥

कोपधाच्च ॥ ७९ ॥

ककारोपधाच्च प्रातिपदिकादणप्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः कूपलक्षणस्योवर्णलक्षणस्य चाञोपवादः । कार्णच्छिद्रिकः कूपः । कार्णवेष्टकः । कृकवाकुना निर्वृत्तं कार्कवाकवम् । त्रैशङ्कवम् ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठको ऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ८० ॥

वुञादयः सप्तदश प्रत्यया, अरीहणादयो ऽपि सप्तदशैव प्रातिपदिकगणाः । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । तत्र यथासंख्यं सप्तदशभ्यः प्रातिपदिकगणेभ्यः सप्तदश प्रत्यया भवन्ति चातुरर्थिकाः । अणोपवादः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । अरीहणादिभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । आरीहणकम् । द्रौघणकम् । अरीहण । द्रुघण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । साम्परायण । क्रौष्ट्रायण । भास्त्रायण । मैत्रायण । त्रैगर्त्तायन । रायस्पोष । विपथ । उद्दण्ड । उदञ्चन । खाडायन । खण्ड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिंशपा । किरण । रैवत । बैल्व । वैमतायन ‡ । सौसायन । शाण्डिल्यायन । शिरीष । बधिर § । अरीहणादिः ॥ कृशाश्वादिभ्यश्छण्प्रत्ययो भवति । कार्शाश्वीयः । आरिष्टीयः । कृशाश्व । अरिष्ट । अरीश्व । वेश्मन् । विशाल । रोमक । शबल । कूट । रोमन् । वर्वर । सुकर । सूकर । प्रतर । सदृश । पुरग । सुख । धूम । अजिन ।

---

* कण्डु । पा० २ ।

† गाह्वि । पा० २ ।

‡ मैमतायण । पा० २ ।

§ वैगर्तायण । गोमतायण । सैमतायण । खाण्डायण । विपाश । सुयज्ञ । जम्बु । सुशर्म । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

विनता * । अवनत । त्रिकुघास । अहस् । अवयास † । मौद्गल्य । कृशाश्वादिः ॥ ऋश्यादिभ्यः कः प्रत्ययो भवति । ऋश्यकः । न्यग्रोधकः । ऋश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निबद्ध । विबद्ध । परिगूढ । उपगूढ । उत्तराश्मन् । स्थूलबाहु । खदिर । शर्करा । अनडुह् । परिवंश । वेणु । वीरण ‡ । ऋश्यादिः ॥ कुमुदादिभ्यष्ठच्प्रत्ययो भवति । कुमुदिकम् । शर्करिकम् । कुमुद । शर्करा । न्यग्रोध । इत्कट § । गर्त्त । बीज । अश्वत्थ । बल्बज । परिवाप । शिरीष । यवाष । कूप । विकङ्कत ‖ । कुमुदादिः ॥ काशादिभ्य इलः प्रत्ययो भवति । काशिलम् । वाशिलम् । काश । वाश । अश्वत्थ । पलाश । पीयूष । विश ¶ । तृण । नर । चरण । कर्द्दम । कर्प्पूर । कण्टक । गूह । काशादिः ** ॥ तृणादिभ्यः शः प्रत्ययो भवति । तृणशः । नडशः । तृण । नड । बुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । बल । लव । वन । तृणादिः ॥ प्रेक्षादिभ्य इनिप्रत्ययो भवति । प्रेक्षी । हलकी । प्रेक्षा । हलका †† । बन्धुका । ध्रुवका । क्षिपका । न्यग्रोध । इर्कुट ‡‡ । प्रेक्षादिः ॥ अश्मादिभ्यो रप्रत्ययो भवति । अश्मरः । अश्मन् । यूष । रूष । मीन । दर्भ । वृन्द । गुड । खण्ड । नग । शिखा §§ । अश्मादिः ॥ सख्यादिभ्यो ढञ् प्रत्ययो भवति । साखेयम् । साखिदत्तेयम् । सखि । सखिदत्त । वायुदत्त । गोहित ‖‖ । भल्ल । पाल । चक्रपाल । चक्रवाल । छगल । अशोक । करवीर । सीकर । सकर । सरस । समल ¶¶ । सख्यादिः ॥ संकाशादिभ्यो ण्यप्रत्ययो भवति । सांकाश्यम् । काम्पिल्यम् । संकाश । काम्पिल्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सक्थच । यूप । अंश । एग । अश्मन् । कूट । मलिन । तीर्थ । अगस्ति । विरत । चिकार ।

---

* वनिता । पा० २ ।

† अयावस् । पा० २ ।

‡ खण्ड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

§ उत्कट । पा० २ ।

‖ कण्टक । कङ्कट । संकट । पलाश । त्रिक । कत । दशग्राम । पुस्तकान्तरे एते ऽधिका अत्र गणे ।

¶ विस । पा० २ ।

** आवास । नड । वन । वधूल । बर्बर । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

†† फलका । पा० २ ।

‡‡ बुधका । संकट । कूपका । कर्कटा । सुकटा । मंकट । सुक । मद्दा । एते ऽत्राधिकाः पुस्तकान्तरे ।

§§ यूथ । रूप । नद । नख । काट । पांम । एते । ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

‖‖ गोहिल । पा० २ ।

¶¶ चर्क । वक्रपाल । उशीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । सप्तल । एते शब्दा ऽत्र गणे ऽधिकाः ॥

विरह । नासिका । संकाशादिः ॥ बलादिभ्यो यः प्रत्ययो भवति । बल्यः । कुल्यम् । बल । वुल । तुल । उल । डुल । कवल । वन । कुल । बलादिः ॥ पक्षादिभ्यः फक् प्रत्ययो भवति । पाक्षायणः । तौषायनः । पक्ष । तुष । अण्ड । कम्बलिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् । पथिन्पन्थ च । * पक्षादिः ॥ कर्णादिभ्यः फिञ्प्रत्ययो भवति । कार्णायनिः । वासिष्ठायनिः । कर्ण । वसिष्ठ । अलुश । शल । डुपद । अनडुह्य । पाञ्चजन्य । स्थिरा । कुलिश । कुम्भी । जीवन्ती । जित्व । आण्डीवत् † । कर्णादिः ॥ सुतङ्गमादिभ्य इञ्प्रत्ययो भवति । सौतङ्गमिः । मौनिचित्तिः । सुतङ्गम । मुनिचित्त । विप्रचित्त । महापुत्र । श्वेत । गडिक । शुक्र । विग्र । बीजवापिन् । श्वन् । अर्ज्जुन । अजिर । जीव । सुतङ्गमादिः ॥ प्रगदिन्नादिभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति । प्रागद्यम् । प्रगदिन् । मगदिन् । शरदिन् । कलिव । खडिव । गडिव । चूडार । मार्जार । कोविदार । प्रगद्यादिः ॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययो भवति । वाराहकम् । पालाशकम् । वराह । पलाश । शिरीष । पिनद्ध । स्थूण । विदग्ध । विजग्ध । विभग्न । बाहु । खदिर । शर्करा ‡ । वराहादिः ॥ कुमुदादिभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति । कौमुदिकम् । कुमुद । गोमथ । रथकार । दशग्राम । अश्वत्थ । शाल्मली । कुण्डल । मुनिस्थूल । कूट । मुचुकर्ण § । कुमुदादिः ॥ शिरीषशब्दो ऽरीहणादिषु कुमुदादिषु वराहादिषु च पठ्यते, औत्सर्गिकोपि तत इष्यते, तस्य च वरणादिषु दर्शनाल्लुब्भवति । तथा चोक्तं शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषा, स्तस्य वनं, शिरीषवनमिति ॥

जनपदे लुप् ॥ ८१ ॥

देशे तन्नाम्नीति यश्चातुरर्थिकः प्रत्ययो भवति, तस्य देशविशेषे जनपदे ऽभिधेये लुब्भवति । ग्रामसमुदायो जनपदः । पञ्चालानां निवासो जनपदः, पञ्चालाः कुरवः । मत्स्याः । अङ्गाः । वङ्गाः । मगधाः । सुह्माः । पुण्ड्राः । इह कस्मान्न भवति । उदुम्बरा अस्मिन्सन्ति, औदुम्बरो जनपदः, वैदिशो ‖ जनपद, इति । तन्नाम्नीति वर्त्तते । न चात्र लुबन्तं तन्नामधेयं भवति ॥

वरणादिभ्यश्च ॥ ८२ ॥

---

* कुम्भ । सीरज । सीरक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् । लोमन् । हंसका । लोमक । सकण्डक । अस्तिबल । यमल । हस्त । सिंहक । एते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

† अर्क । लूप । स्फिक् । न्नावत् । एते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः ।

‡ विनद्ध । निबद्ध । विरुद्ध । मूल । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

§ कुन्द । मधुकर्ण । शुचिकर्ण । शिरीष । एते ऽधिका अत्र पुस्तकान्तरे ।

‖ वैतस । इति पा० २ ।

वरणा इत्येवमादिभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुब्भवति। अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं। वरणाः। शृङ्गी। शाल्मलयः। चकारोनुक्तसमुच्चयार्थं आकृतिगणतामस्य बोधयति। कटुक*बदर्या अदूरभवो ग्रामः, कटुकबदरी। शिरीषाः। काञ्ची। वरणाः, पूर्वा गोदौ†। आलिङ्गायन। पर्णी। शृङ्गी। शाल्मलयः। सदाखी। वणिकि। वणिक। जालपद। मथुरा। उज्जयिनी। गया। तक्षशिला। उरशा। आकृत्या॥

शर्कराया वा ॥ ८३ ॥

शर्कराशब्दादुत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य वा लुब्भवति। वाग्रहणं किम्। यावता शर्कराशब्दः कुमुदादिषु वराहादिषु च पठ्यते। तत्र पाठसामर्थ्यात्प्रत्ययस्य पक्षे श्रवणं भविष्यति। एवं तर्ह्येतज् ज्ञापयति। शर्कराशब्दादौत्सर्गिको भवति, तस्यायं विकल्पितो लुबिति। शर्करा। शार्करम्। गणपाठाच्च श्रवणमुत्तरसूत्रे विहितौ च द्वौ प्रत्ययौ तदेवं षड्रूपाणि भवन्ति। शर्करा। शार्करम्। शर्करिकम्। शार्करकम्। शार्करिकम्। शर्करीयमिति॥

ठक्छौ च ॥ ८४ ॥

शर्कराशब्दाट्ठक् छ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतश्चातुरर्थिकौ। यथासंभवमर्थसंबन्धः। शार्करिकम्। शर्करीयम्॥

नद्यां मतुप् ॥ ८५ ॥

नद्यामभिधेयायां मतुप्प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः। तन्नाम्नो देशस्य विशेषणं नदी। उदुम्बरा यस्यां सन्ति, उदुम्बरावती। मशकावती। वीरणावती। पुष्करावती। इक्षुमती। द्रुमती। इह कस्मान्न भवति। भागीरथी। भैमरथी। मतुबन्तस्यातन्नामधेयत्वात्॥

मध्वादिभ्यश्च ॥ ८६ ॥

मधु इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यो मतुप्प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः। अनद्यर्थ आरम्भः। मधुमान्। विसवान्। मधु। विस। स्थाणु। मुष्टि‡। इक्षु। वेणु। रम्य। ऋक्ष। कर्कन्धु। शमी। किरीर। हिम। किशरा। शर्पणा। मरुत्। मरुव। दार्वाघाट। शर। इष्टका। तक्षशिला। शक्ति। आसन्दी। आसुति। शलाका। आमिधी। खडा। वेटा। मध्वादिः॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ॥ ८७ ॥

कुमुद नड वेतस इत्येतेभ्यः शब्देभ्यो ड्मतुप् प्रत्ययो भवति चातुर

---

* कन्दुक। इति पा० २।

† पूर्वेण गोदौ। अपरेण गोदौ इति। पा० २।

‡ वृष्टि। इति पा० २।

र्थिकः । कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् ॥ महिशाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ महिष्मान्नाम देशः ॥

नडशादाड्ड्वलच् ॥ ८८ ॥

नडशादशब्दाभ्यां ड्वलच् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । नड्वलम् । शाद्वलम् ॥

शिखाया वलच् ॥ ८९ ॥

शिखाशब्दाद्वलच् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । शिखावलं ग्रामनगरम् । मतुप्प्रकरणेपि शिखाया वलज् वक्ष्यति । तददेशार्थं वचनम् ॥

उत्करादिभ्यश्छः ॥ ९० ॥

उत्कर इत्येवमादिभ्यश्छः प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । उत्करीयम् । शफरीयम् । उत्कर । संफल * । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क । पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अग्नि । तिक । कितव । आतप । अनेक । पलाश । तृणव । पिचुक । अश्वत्थ । शकाक्षुद्र । भस्त्रा । विशाला । अवरोहित । गर्त्त । शाल । अन्य । जन्या । अजिन । मञ्च । चर्मन् । उत्क्रोश । शान्त । खदिर । शूर्पणाय । श्यावनाय । नैव । बक । नितान्त । वृक्ष । इन्द्रवृक्ष । आर्द्रवृक्ष । अर्जुनवृक्ष । उत्करादिः ॥

नडादीनां कुक् च ॥ ९१ ॥

नड इत्येवमादीनां कुगागमो भवति, छश्च प्रत्ययश्चातुरर्थिकः । यथासंभवमर्थसंबन्धः । नडकीयम् । प्लक्षकीयम् । नड । प्लक्ष । बिल्व । वेणु । वेत्र । वेतस । तृण । इक्षु । काष्ठ । कपोत ॥ क्रुञ्चाया ह्रस्वत्वं च ॥ तक्षन्नलोपश्च ॥

शेषे ॥ ९२ ॥

शेषइत्यधिकारोयम् । यानित ऊर्ध्वं प्रत्ययाननुक्रमिष्यामः, शेषेर्थे ते वेदितव्याः । उपयुक्तादन्यः शेषः । अपत्यादिभ्यश्चतुरर्थपर्यन्तेभ्योन्योर्थः शेषः, तस्येदंविशेषा ह्यपत्यसमूहादयस्तेषु घादयो मा भूवन्निति शेषाधिकारः क्रियते । किं च सर्वेषु जातादिषु घादयो यथा स्युरनन्तरेणैवार्थादेशेन संबन्धित्वेन कृतार्थता मा ज्ञायीति साकल्यार्थं शेषवचनम् । वक्ष्यति । राष्ट्रावारपाराद् घखौ । राष्ट्रियः । अवारपारीणः । शेषइति लक्षणं चाधिकारश्च । चक्षुषा गृह्यते, चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः † । दृषदि पिष्टाः, दार्षदा सक्तवः । उलूखले क्षुण्णः, औलूखलो

---

* संकर । इति पा० २ ।

† रासनो रसः । स्पार्शनः स्पर्शः । इत्येकस्मिन्पुस्तके ऽधिकम् ।

यावकः । अश्वैरुह्यते, आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते, चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते, चातुर्दशं रक्ष इति ॥

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ॥ ९३ ॥

राष्ट्र अवारपार इत्येताभ्यां यथासंख्यं घखावित्येतौ प्रत्ययौ भवतः । राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥ विगृहीतादपीष्यते ॥ अवारीणः । पारीणः ॥ विपरीताच्च ॥ पारावारीणः । प्रकृतिविशेषोपादानमात्रेण तावत्प्रत्यया विधीयन्ते । तेषां तु जातादयोऽर्थाः समर्थविभक्तयश्च पुरस्तादुच्यन्ते ॥

ग्रामाद्यखञौ ॥ ९४ ॥

ग्रामशब्दाद्य खञ् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥

कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ् ॥ ९५ ॥

कत्त्रि इत्येवमादिभ्यो ढकञ् प्रत्ययो भवति । कात्त्रेयकः । औम्भेयकः । कत्त्रि । उम्भि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुण्डिन । नगर । वञ्जी । भक्ति । माहिष्मती । चर्मण्वती * । ग्राम । उख्या ॥ कुल्याया यलोपश्च ॥ कत्त्र्यादिः ॥

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु ॥ ९६ ॥

कुलकुक्षिग्रीवाशब्देभ्यो यथासंख्यं श्वन् असि अलंकार इत्येतेषु जातादिष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति । कौलेयको भवति श्वा चेत् । कौलोन्यः । कौक्षेयको भवत्यसिश्चेत् । कौक्षोन्यः । ग्रैवेयको भवत्यलंकारश्चेत् । ग्रैवोन्यः ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ॥ ९७ ॥

नदी इत्येवमादिभ्यो ढक् प्रत्ययो भवति । नादेयम् । माहेयम् । पूर्वनगरीशब्दोऽत्र पठ्यते । पौर्वनगरेयम् । केचित्तु पूर्वनगिरीति पठन्ति, विच्छिद्य च प्रत्ययं कुर्वन्ति । पौरेयम् । वानेयम् । गैरेयमिति । तदुभयमपि दर्शनं प्रमाणम् । नदी । मही । वाराणसी । श्रावस्ती । कौशाम्बी । नवकौशाम्बी । काशफरी । खादिरी । पूर्वनगरी । पावा । मावा । साल्वा । दार्वा । दाल्वा । वासेनकी ॥ वडवाया वृषे ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ९८ ॥

दक्षिणा पश्चात् पुरस् इत्येतेभ्यस्त्यक् प्रत्ययो भवति शैषिकः । दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ।

कापिश्याः ष्फक् ॥ ९९ ॥

---

* चर्मती । इति पा० २ ।

कापिशीशब्दात् ष्फक् प्रत्ययो भवति शैषिकः। षकारो ङीषर्थः। कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा ॥ बाह्ल्युर्दिपर्दिभ्यश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बाह्लायनी। और्द्दायनी। पार्द्दायनी ॥

रङ्कोरमनुष्ये ऽण् च ॥ १०० ॥

रङ्कुशब्दादण् प्रत्ययो भवति, चकारात्ष्फक्च शैषिको ऽमनुष्येऽभिधेये। राङ्कवो गौः। राङ्कवायणो गौः। अमनुष्यइति किम्। राङ्कवको मनुष्यः। ननु च रङ्कुशब्दः कच्छादिषु पठ्यते, तत्र च मनुष्यतत्स्थयोर्वुञिति मनुष्ये परत्वाद्वुञेव भवितव्यं, कच्छादिपाठादमनुष्ये ऽणपि सिद्धः, किमिह मनुष्यप्रतिषेधेनाणग्रहणेन च। तदुच्यते। नैवायं मनुष्यप्रतिषेधः किं तर्हि नञिवयुक्तन्यायेन मनुष्यसदृशे प्राणिनि प्रतिपत्तिः क्रियते। राङ्कवः कम्बल इति ष्फग् न भवति। विशेषविहितेन च फका ऽणो बाधा मा भूदित्यण्ग्रहणमपि क्रियते ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् १०१ ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् प्रत्यच् इत्येतेभ्यो यत्प्रत्ययो भवति शैषिकः। दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्। अव्ययात्तु कालवाचिनः परत्वात् ट्युट्युलौ भवतः। प्राक्तनम् ॥

कन्यायाष्ठक् ॥ १०२ ॥

कन्याशब्दाट्ठक् प्रत्ययो भवति शैषिकः। कान्यिकः ॥

वर्णौ वुक् ॥ १०३ ॥

कन्याया इत्येव। वर्णौ या कन्या तस्या वुक् प्रत्ययो भवति शैषिकः। ठकोपवादः। वर्णुर्नाम नदस्तत्समीपो देशो वर्णुः। तद्विषयार्थवाचिनः कन्याशब्दादयं प्रत्ययः तथाहि जातं हिमवत्सु कान्यकम् ॥

अव्ययात्त्यप् ॥ १०४ ॥

अव्ययात् त्यप् प्रत्ययो भवति शैषिकः।

अमेहक्वतसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्यो ऽव्ययात्स्मृतः।
निनिर्भ्यां ध्रुवगत्योश्च प्रवेशो नियमे तथा * ॥

अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। इतस्त्यः। तत्रत्यः। यत्रत्यः। परिगणनं किम्। औपरिष्टः। पौरस्तः। पारस्तः †। वृद्धात्तु छो भवति। आरातीयः ॥ त्यब्नेर्ध्रुवे ॥ * ॥ नियतं ध्रुवम्। नित्यम् ॥ निसो गते ॥ * ॥ निर्गतो वर्णा-

* इदं पद्यार्धं कुत्र चिन्नास्ति।

† पारस्त इत्यस्याग्रे ऽव्ययानां भमात्रे टिलोप इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके।

ग्रामेभ्यो निष्प्रश्चण्डालादिः ॥ आविसश्छन्दसि ॥ * ॥ आविस्शब्दाच्छन्दसि त्यप् प्रत्ययो भवति । आविष्ट्यो वर्द्धते ॥ अरण्याण्णो वक्तव्यः ॥ * ॥ आरण्याः सुमनसः ॥ दूरादेत्यः ॥ * ॥ दूरेत्यः पथिकः ॥ उत्तरादाहञ् ॥ * ॥ औत्तराहः ॥

ऐषमोह्यःश्वसो ऽन्यतरस्याम् ॥ १०५ ॥

ऐषमस् ह्यस् श्वस् इत्येतेभ्यो ऽन्यतरस्यां त्यप् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ऐषमस्त्यम् । ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यम् । ह्यस्तनम् । श्वस्त्यम् । श्वस्तनम् । श्वसस्तुट् चेति ठञपि तृतीयो भवति । शौवस्तिकम् ॥

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ ॥ १०६ ॥

तीरोत्तरपदाद् रूप्योत्तरपदाच्च प्रातिपदिकाद्यथासंख्यमञ् ञ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ । अणोपवादौ । काकतीरम् । पाल्वलतीरम् । रूप्योत्तरपदात् । वार्करूप्यम् । शैवरूप्यम् । तीररूप्यान्तादिति नोक्तं, बहुच्प्रत्ययपूर्वाद् मा भूदिति । बाहुरूप्यम् । अणेव भवति * ॥

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ॥ १०७ ॥

असंज्ञायामिति प्रकृतिविशेषणम् । दिक्पूर्वपदात्प्रातिपदिकादसंज्ञाविषयाद् ञः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । पौर्वशालः । दाक्षिणशालः । आपरशालः । असंज्ञायामिति किम् । पूर्वेषुकामशमः । अपरेषुकामशमः । दिक्संख्ये संज्ञायामिति समासः । प्राचां ग्रामनगराणामित्युत्तरपदवृद्धिः । पदग्रहणं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

मद्रेभ्यो ऽञ् ॥ १०८ ॥

दिक्पूर्वपदादित्येव । दिक्पूर्वपदान्मद्रशब्दादञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । पौर्वमद्रः । आपरमद्रः । दिशो मद्राणामिति पर्युदासादादिवृद्धिरेव ॥

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोन्तोदात्तात् ॥ १०९ ॥

दिग्ग्रहणं निवृत्तम् । उदीच्यग्रामवाचिनः प्रातिपदिकाद् बह्वचो ऽन्तोदात्ताद् अञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । शैवपुरम् । माण्डवपुरम् । उदीच्यग्रामादिति किम् । माथुरम् † । बह्वच इति किम् । ध्वजी । ध्वाजम् । अन्तोदात्तादिति किम् । शार्करीधानम् । शार्करीधानशब्दे लित्स्वरेण धाशब्द उदात्तः ॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥ ११० ॥

प्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः ककारोपधाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो

---

* स्वरे विशेष इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† माथुरमिति पा० २ ।

भवति शैषिकः। उदीच्यग्रामलक्षणस्याञोपवादः। माद्रीप्रस्थः। माहकीप्रस्थः। पलद्यादिभ्यः। पालदः। पारिषदः। ककारोपधात्। नैलीनकः। चैयातकः *। पलद्यादिषु यो वाहीकग्रामस्ततष्ठञ्ञ्ठिठयोरपवादः। यथा। गौष्ठी, नैतकीति †। गोमतीशब्दः पठ्यते, ततो रोपधेतोः प्राचामिति वुञोपवादः। वाहीकशब्दः कोपधोऽपि पुनः पठ्यते परं छं बाधितुम्। अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम्। पलदी। परिषत्। यक्नल्लोमन्। रोमक। कालकूट। पटच्चर। वाहीक। कलकीट। मलकीट। कमलकीट। कमलभिदा। कमलकीर। बाहुकीट। नैतकी। परिखा। शूरसेन। गोमती। उदयान ‡। पलद्यादिः॥

कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ १११ ॥

गोत्रमिह न प्रत्ययार्थो न च प्रकृतिविशेषणं, तर्ह्येवं संबध्यते, कण्वादिभ्यो। गोत्रे यः प्रत्ययो विहितस्तदन्तेभ्य एवाण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। छस्यापवादः। काण्वाश्छात्राः। गौकक्षाः §॥

इञश्च ॥ ११२ ॥

गोत्रइत्येव। गोत्रे य इञ् विहितस्तदन्तात्प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। छस्यापवादः। दाक्षाः। प्लाक्षाः। माहकाः। गोत्रइत्येव। सौतङ्गमेरिदं सौतङ्गमीयम्॥

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ॥ ११३ ॥

द्व्यचः प्रातिपदिकात्प्राच्यभरतगोत्रादिञन्तादण् प्रत्ययो न भवति। पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते। चैदीयाः ‖। पौष्पीयाः। काशीयाः। द्व्यच इति किम्। पानागाराः। प्राच्यभरतेष्विति किम्। दाक्षाः। काशीया इति कथमुदाहृतं, यावता काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठाभ्यां भवितव्यम्। नैतदस्ति। देशवाचिनः काशिशब्दस्य तत्र ग्रहणं चैदि¶शब्देन साहचर्यात्। गोत्रात्तु वृद्धाच्छ एव भवति। ज्ञापकादन्यत्र प्राच्यग्रहणेन भरतग्रहणं न भवतीति स्वशब्देन भरतानामुपादानं कृतम्॥

वृद्धाच्छः ॥ ११४ ॥

---

* वैयतक इति पा० २।

† नैकेतीति पा० २। एकस्मिन्पुस्तके, ऽपरस्मिन्नैधिकीति पा० २।

‡ पक्ष। कललकीट। कललकीकटा। गौष्ठी। नैधिकी। नैकेती। एकल्लोमन्। इत्यधिकमत्र पुस्तकान्तरे।

§ गोत्रइति किम्। कण्वो देवता ऽस्य काण्व,स्तस्येदं काण्वीयम्। कण्वादिर्गर्गाद्यन्तर्गणः। इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

‖ वैदीया इति पा० २।

¶ वैदीति पा० २।

गोत्रइति नानुवर्त्तते । सामान्येन विधानम् । वृद्धात्प्रातिपदिकाच् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोऽपवादः । गार्गीयः । वात्सीयः । शालीयः । मालीयः । अव्ययतीररूप्योत्तरपदोदीच्यग्रामकोपधविधींस्तु परत्वाद्बाधते ॥

भवतष्ठक्छसौ ॥ ११५ ॥

वृद्धादित्येव । भवच्छब्दाद् वृद्धात् ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ । छस्यापवादौ । सकारः पदसंज्ञार्थः । भवतस्त्यदादित्वाद्वृद्धसंज्ञा । भावत्कः । भवदीयः । अवृद्धात्तु भवतः शतुरणेव भवति । भावतः ॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ ११६ ॥

काशि इत्येवमादिभ्यष्ठञ् ञिठ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ । इकार उच्चारणार्थः । ञकार एवोभयत्र विपर्यस्तदेशोऽनुबन्धः । स्त्रीप्रत्यये विशेषः । काशिकी । काशिका । बैदिकी । बैदिका । वृद्धादित्यत्रानुवर्त्तते, ये त्ववृद्धाः पठ्यन्ते वचनप्रामाण्यात्तेभ्यः प्रत्ययविधिः । देवदत्तशब्दः पठ्यते तस्य एङ् प्राचां देशइति वृद्धसंज्ञा । दैवदत्तिकः । वाहीकग्रामस्य तु नास्ति वृद्धसंज्ञा । दैवदत्तः । कथं भाष्यउदाहृतं वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वेदितव्या देवदत्तीया दैवदत्ता इति, यावता वृद्धसंज्ञापक्षे काश्यादित्वाट्ठञ्ञिठाभ्यां भवितव्यम् । तत्रैवं वर्णयन्ति वा नामधेयस्येति व्यवस्थितविभाषेयं, सा छे कर्त्तव्ये भवति ठञ्ञिठयोर्न भवतीति । काशि । चेदि * । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्तिकर्षू । कुदामन् † । हिरण्य । करण । गोधाशन । भौरिकि । भौलिङ्गि । अरिन्दम । सर्वमित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासमित्र । दासग्राम । सौधावतान । युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज ॥ आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् ॥ आपत्कालिकी । आपत्कालिका । और्ध्वकालिकी । और्ध्वकालिका । तात्कालिकी । तात्कालिका ॥

वाहीकग्रामेभ्यश्च ॥ ११७ ॥

वृद्धादित्येव । वाहीकग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ । छस्यापवादौ । शाकलिकी । शाकलिका । मान्थविकी । मान्थविका ॥

विभाषोशीनरेषु ॥ ११८ ॥

वृद्धादिति वर्तते, वाहीकग्रामेभ्य इति च । उशीनरेषु ये वाहीकग्रामास्तद्वाचिभ्यो वृद्धेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विभाषा ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः । आह्वजालिकी । आह्वजालिका । आह्वजालीया । सौदर्शनिकी । सौदर्शनिका । सौदर्शनीया ॥

* बैदीति पा० २ ।
† कुनामन्निति पा० २ ।

ओर्देशे ठञ् ॥ ११९ ॥

वृद्धादिति नानुवर्त्तते । उत्तरसूत्रे पुनर्वृद्धग्रहणात् । उवर्णान्ताद् देशवाचिनः प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । नैषादकर्षुकः । शावरजम्बुकः * । देशइति किम् । पटोश्छात्राः, पाटवाः । ठञ्ञिठयोः प्रकरणे ठञः केवलस्यानुवृत्तिर्न लभ्यतइति ठञ्ग्रहणं कृतम् ॥

वृद्धात्प्राचाम् ॥ १२० ॥

ओर्देशइत्येव । उवर्णान्ताद् वृद्धात्प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकाट्ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । आढ़कजम्बुकः । शाकजम्बुकः † । नापितवास्तुकः । पूर्वेणैव ठञि सिद्धे नियमार्थं वचनं वृद्धादेव प्राचामवृद्धाच्च भवतीति । मल्लवास्तु । माल्लवास्तवः ॥

धन्वयोपधाद्वुञ् ॥ १२१ ॥

वृद्धादिति वर्तते, देशइति च । धन्ववाचिनो यकारोपधाच्च देशाभिधायिनो वृद्धात्प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । धन्वशब्दो मरुदेशवचनः । पारेधन्वकः । ऐरावतकः । योपधात् । सांकाश्यकः । काम्पिल्यकः ॥

प्रस्थपुरवहान्ताच्च ॥ १२२ ॥

वृद्धादित्येव, देशइति च । अन्तशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्धयते । प्रस्थ पुर वह इत्येवमन्ताद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाद्वृद्धाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । छस्यापवादः । मालाप्रस्थकः । नान्दीपुरकः । कान्तीपुरकः । पैलुवहकः । फाल्गुनीवहकः । पुरान्तो रोपधस्तत उत्तरसूत्रेणैव सिद्धमप्रागर्थमिह ग्रहणम् ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ १२३ ॥

वृद्धादित्येव, देशइति च । तद्विशेषणं प्राग्ग्रहणम् । रोपधादीकारान्ताच्च प्राग्देशवाचिनो वृद्धाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । छस्यापवादः । पाटलिपुत्रकाः । ऐकचक्रकाः । ईतः खल्वपि । काकन्दी । काकन्दकः । माकन्दी । माकन्दकः । प्राचामिति किम् । दात्तामित्त्रीयः । तपरकरणं विस्पष्टार्थम् ॥

जनपदतदवध्योश्च ॥ १२४ ॥

वृद्धादित्येव, देशइति च । तद्विशेषणं जनपदतदवधी । वृद्धाज्जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । छस्यापवादः । आभिसारकः । आदर्शकः । जनपदावधेः खल्वपि । औपुष्टकः । श्यामा-

---

* केण इति ह्रस्व इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

† शालजम्बुक इति पा॰ २ ।

यनकः । तदवधिरपि जनपद एव गृह्यते न ग्रामः । किमर्थं तर्हि ग्रहणं, बाधकबाधनार्थं गर्त्तोत्तरपदाच्छं बाधित्वा वुञेव जनपदावधेर्भवति । त्रैगर्त्तकः ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥ १२५ ॥

जनपदतदवध्योरित्येव । अवृद्धाद्वृद्धाच्च जनपदात्तदवधिवाचिनश्च बहुवचनविषयात्प्रातिपदिकाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणछयोरपवादः । अवृद्धाज्जनपदात्तावत् । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः । आङ्गकः । वाङ्गकः । कालिङ्गकः । अवृद्धाज्जनपदावधेः । अजमीढाः । अजक्रन्दाः । आजमीढकः । आजक्रन्दकः । वृद्धाज्जनपदात् । दार्वाः । जाम्बाः । दार्वकः । जाम्बकः । वृद्धाज्जनपदावधेः । कालञ्जराः । वैकुलिशाः । कालञ्जरकः । वैकुलिशकः । विषयग्रहणमनन्यत्र भावार्थम् । जनपदैकशेषबहुत्वे मा भूत् । वर्त्तन्यः । वार्त्तनः * । अपिग्रहणं किम् । यावता वृद्धात्पूर्वेणैव सिद्धं तत्कोपिडन्यन्यायेन बाधा मा विज्ञायीति समुच्चीयते ॥

कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् ॥ १२६ ॥

देशइत्येव । उत्तरपदशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । कच्छाद्युत्तरपदाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्चावृद्धादवृद्धाच्च वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । छाणोऽपवादः । दारुकच्छकः । पैप्पलीकच्छकः । काण्डाग्नकः । वैभुजाग्नकः । ऐन्द्रवक्त्रकः । सैन्धुवक्त्रकः । बाहुगर्त्तकः । चाक्रगर्त्तकः ॥

धूमादिभ्यश्च ॥ १२७ ॥

धूमादिभ्यो देशवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणादेरपवादः । धौमकः । खाण्डकः † । पाथेयशब्दः पठ्यते तस्य योपधात्वादेव वुञि सिद्धे सामर्थ्याददेशार्थं ग्रहणम् । तथा विदेहानर्त्तशब्दयोर्जनपदलक्षणे वुञि सिद्धे ऽदेशार्थः पाठः । विदेहानां क्षत्रियाणां स्वं, वैदेहकम् । आनर्त्तकम् । समुद्रशब्दः पठ्यते तस्य नावि मनुष्ये च वुञिष्यते । सामुद्रिका नौः । सामुद्रको मनुष्यः । अन्यत्र न भवति, सामुद्रं जलमिति । धूम । खण्ड ‡ । शशादन । आर्ज्जुनाद । दाण्डायनस्थली । माहकस्थली । घोषस्थली । माषस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भक्षास्थली । मद्रकूल । गर्त्तकूल । आञ्जीकूल । द्व्याहाव । त्र्याहाव । संहीय । वर्वर । वर्चगर्त्त । विदेह । आनर्त्त । माठर । पाथेय । घोष । शिष्य । मित्र । वल । आराज्ञी । धार्तराज्ञी । अव-

---

* वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्यः, वर्तनीषु भव इति वुञ् न भवति । बहुविवक्षाया अभावे बहुवचनाभावात् । वर्तन्यः । वार्तनः । इति पा० २ ।

† खाण्डकः । पा० २ ।

‡ खण्ड इति पा० २ ।

यात । तीर्थ ॥ कूलात्सौवीरेषु ॥ समुद्राचावि मनुष्ये च ॥ कुक्षि । अन्तरीप । द्वीप । अरण्य । उज्जयिनी । दक्षिणापथ । साकेत * ॥

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥ १२८ ॥

नगरशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः कुत्सने प्रावीण्ये च गम्यमाने । प्रत्ययार्थविशेषणं चैतत् । कुत्सने प्रावीण्ये च जातादौ प्रत्ययार्थइति कुत्सनं निन्दनम् । प्रावीण्यं नैपुण्यम् ॥

केनायं मुषितः पन्था गात्रे पक्ष्मालिधूसरः ।

इह नगरे मनुष्येण संभाव्यतएतन्नागरकेण । चौरा हि नागरका भवन्ति ।

केनेदं लिखितं चित्रं मनोनेत्रविकाशि यत् ।

इह नगरे मनुष्येण संभाव्यतएतन्नागरकेण । प्रवीणा हि नागरका भवन्ति । कुत्सनप्रावीण्ययोरिति किम् । नागरा ब्राह्मणाः । कत्र्यादिषु तु संज्ञाशब्देन साहचर्यात्संज्ञानगरं पठ्यते, तस्मिन्नागरेयकमिति प्रत्युदाहार्यम् ॥

अरण्यान्मनुष्ये ॥ १२९ ॥

अरण्यशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिको मनुष्ये ऽभिधेये । औपसंख्यानिकस्य णस्यापवादः । आरण्यको मनुष्यः ॥ पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आरण्यकः पन्थाः । आरण्यको ऽध्यायः । आरण्यको न्यायः । आरण्यको विहारः । आरण्यको मनुष्यः । आरण्यकोहस्ती ॥ वा गोमयेषु ॥ * ॥ आरण्या आरण्यका गोमयाः । एतेष्विति किम् । आरण्याः । पशवः ॥

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ॥ १३० ॥

कुरु युगन्धर इत्येताभ्यां विभाषा वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । कौरवकः । कौरवः । यौगन्धरकः । यौगन्धरः । जनपदशब्दावेतौ ताभ्यामवृद्धादपीति नित्ये वुञि प्राप्ते विकल्प उच्यते । कुरुशब्दः कच्छादिष्वपि पठ्यते तत्र वचनादणपि भविष्यति । पारिशेष्याद्युगन्धरार्था विभाषा † । मनुष्यतस्थयोस्तु कुरुशब्दान्नित्यएववुञ् प्रत्ययो भवति । कौरवको मनुष्यः, कौरवकमस्य हसितमिति ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ १३१ ॥

मद्रवृजिशब्दाभ्यां कन् प्रत्ययो भवति शैषिकः । जनपदवुञोपवादः । मद्रेषु जातः, मद्रकः । वृजिकः ॥

कोपधादण् ॥ १३२ ॥

---

* मानवल्ली । वल्ली । सुराज्ञी । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः कुत्र चित्

† शेषा युगन्धरार्था विभाषा । पा० २ ।

देशइत्येव । ककारोपधात्प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः । जनपदवुञोपवादः । अन्यत्र जनपदं मुक्त्वा पूर्वेणैव कोपधादणि सिद्धम् । ऋषिकेषु जातः, आर्षिकः । माहिषिकः । अण्ग्रहणमुवर्णान्तादपि स्यात् । इक्ष्वाकुषु जातः, ऐक्ष्वाकः ॥

कच्छादिभ्यश्च ॥ १३३ ॥

देशइत्येव । कच्छ इत्येवमादिभ्यो देशवाचिभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति शैषिकः । वुञादेरपवादः । काच्छः । सैन्धवः । वार्णवः । कच्छशब्दो न बहुवचनविषयस्तस्य मनुष्यतस्ययोर्वुञर्थः पाठः । विजापकशब्दः पठ्यते । तस्य कोपधत्वादेवाणि सिद्धे ग्रहणमुत्तरार्थम् । कच्छ । सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । कुरु । रङ्कु । अणु * । खण्ड । द्वीप । अनूप । अजवाह । विजापक । कुलून । कच्छादिः ॥

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ॥ १३४ ॥

कच्छादिभ्य इत्येव । मनुष्ये मनुष्यस्थे च जातादौ प्रत्ययार्थे कच्छादिभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । अणोपवादः । काच्छको मनुष्यः । काच्छकमस्य हसितं जल्पितम् । काच्छिका चूडा । सैन्धवको मनुष्यः । सैन्धवकमस्य हसितं जल्पितम् । सैन्धविका चूडा । मनुष्यतत्स्थयोरिति किम् । काच्छो गौः । सैन्धवो वार्णवः ॥

अपदातौ साल्वात् ॥ १३५ ॥

साल्वशब्दः कच्छादिषु पठ्यते ततः पूर्वेणैव मनुष्यतत्स्थयोर्वुञि सिद्धे नियमार्थं वचनम् । अपदातावेव मनुष्ये मनुष्यस्थे साल्वशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति । साल्वको मनुष्यः । साल्वकमस्य हसितं जल्पितम् । अपदाताविति किम् । साल्वः पदातिर्व्रजति ॥

गोयवाग्वोश्च ॥ १३६ ॥

गवि यवाग्वां च जातादौ प्रत्ययार्थे साल्वशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । कच्छाद्यणोपवादः । साल्वको गौः । साल्विका यवागूः । साल्वमन्यत् ॥

गर्त्तोत्तरपदाच्छः ॥ १३७ ॥

देशइत्येव । गर्त्तोत्तरपदाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । वाहीकग्रामलक्षणं तु प्रत्ययं परत्वाद्बाधते । वृकगर्त्तीयम् । शृगालगर्त्तीयम् । श्वाविद्गर्त्तीयम् । उत्तरपदग्रहणं । बहुच्पूर्वनिरासार्थम् । बाहुगर्तम् ॥

---

* अण्ड इति पा० २ ।

गहादिभ्यश्च ॥ १३८ ॥

गह इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणत्रो-ऽपवादः * । गहीयः । अन्तःस्थीयः । देशाधिकारेऽपि संभवापेक्षं विशेषणं न सर्वेषाम् । मध्यमध्यमं चाण् चरणइति पठ्यते, तस्यायमर्थः । मध्यशब्दः प्रत्ययसन्नियोगेन मध्यममापद्यते । मध्यमीयाः । चरणे तु प्रत्ययार्थे ऽण् भवति, माध्यमा इति । तदेतद्विशेषणएव स्मर्यते पृथिवीमध्यस्य मध्यमभावः । चरणसंबन्धेन निवासलक्षणो ऽणिति च ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च ॥ मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् ॥ कुग्जनस्य परस्य च ॥ * ॥ जनकीयम् । परकीयम् ॥ देवस्य चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ देवकीयम् ॥ वेणुकादिभ्यश्छण्वक्तव्यः ॥ आकृतिगणोयम् । वैणुकीयम् । वैत्रकीयम् । औत्तरपदकीयम् । प्रास्थकीयम् † । माध्यमकीयम् । गह अन्तःस्थ । सम । विषम ॥ मध्यमध्यमं चाण्चरणे ॥ उत्तम । अङ्ग । वङ्ग । मगध । पूर्वपक्ष । अपरपक्ष । अधमशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एकग्राम । एकवृक्ष । एकपलाश । इष्वग्र । इष्वनी ‡ । अवस्यन्दी § । कामप्रस्थ । खाडायनि ‖ । कावेरणि ¶ । शैशिरि । शौङ्गि । आसुरि । आहिंसि । आमित्रि । व्याडि । वैदजि । भौजि । आढ्यश्वि । आनृशंसि । सौवि । पारकि । अग्निशर्मन् । देवशर्मन् । औति । आरटकि । वाल्मीकि । क्षेमवृद्धिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपः ॥ जनपरयोः । कुक्च ॥ देवस्य च ॥ वेणुकादिभ्यश्छण् ॥ गहादिः ॥

प्राचां कटादेः ॥ १३९ ॥

देशइत्येव । तद्विशेषणं प्राग्ग्रहणम् । प्राग्देशवाचिनः कटादेः प्रातिपदिकाच् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । कटनगरीयम् । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् ॥

राज्ञः क च ॥ १४० ॥

असंभवाद्देशाधिकारो न विशेषणम् । राज्ञः ककारश्चान्तादेशो भवति छश्च प्रत्ययः । राजकीयम् । आदेशमात्रमिह विधेयं प्रत्ययस्तु वृद्धाच्छ इत्येव सिद्धः ॥

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ॥ १४१ ॥

---

* अणादेरपवादः । पा० २ ।

† प्रास्थीयम् । पा० २ ।

‡ इष्वनीक । पा० २ ।

§ अवस्कन्द । पा० २ ।

‖ खाण्डायनी । पा० २ ।

¶ कामवेरणि । पा० २ ।

देशइत्येव । वृद्धाद्देशवाचिनो ऽक इक इत्येवमन्तात् खकारोपधाच्च प्रातिपदिकाच् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । कोपधलक्षणस्याणोपवादः । वाहीकग्रामलक्षणस्य च प्रत्ययस्य रोपधेतोः प्राचामिति च । अकान्तात्तावत् । आरीहणकीयम् । द्रौघणकीयम् । इकान्तात् । आश्वपथिकीयम् । शाल्मलिकीयम् । खोपधात् । कौटिशिखीयम् । आयोमुखीयम् ॥ अकेकान्तग्रहणे कोपधग्रहणं सैसुकाद्यर्थम् ॥ * ॥ सैसुकीयम् । मैसुकीयम् । ऐन्द्रवेणुकीयम् ॥

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् ॥ १४२ ॥

देशइत्येव, वृद्धादिति च । कन्थाद्युत्तरपदाद्देशवाचिनो वृद्धात्प्रातिपदिकाच् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । वाहीकग्रामादिलक्षणस्य प्रत्ययस्यापवादः । दाक्षिकन्थीयम् । माहिकिकन्थीयम् । दाक्षिपलदीयम् । माहिकिपलदीयम् । दाक्षिनगरीयम् । माहकिनगरीयम् । दाक्षिग्रामीयम् । माहकिग्रामीयम् । दाक्षिह्रदीयम् । माहकिह्रदीयम् ॥

पर्वताच्च ॥ १४३ ॥

पर्वतशब्दाच् छः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । पर्वतीयो राजा । पर्वतीयः पुरुषः ॥

विभाषा ऽमनुष्ये ॥ १४४ ॥

पर्वतशब्दाच् छः प्रत्ययो भवति वा ऽमनुष्ये वाच्ये । पूर्वेण । नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते । पर्वतीयानि फलानि । पार्वतानि फलानि । पर्वतीयमुदकम् । पार्वतमुदकम् । अमनुष्यइति किम् । पर्वतीयो मनुष्यः ॥

कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ॥ १४५ ॥

देशइत्येव । भारद्वाजशब्दोऽपि देशवचन एव न गोत्रशब्दः । प्रकृतिविशेषणं चैतच्च प्रत्ययार्थः । कृकणपर्णशब्दाभ्यां भारद्वाजदेशवाचिभ्यां छः प्रत्ययो भवति शैषिकः * । कृकणीयम् । पर्णीयम् । भारद्वाजइति किम् । कार्कणम् । पार्णम् ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥ १ ॥

* शैषिक इत्यस्याग्रे ऽणोपवाद इत्यधिकं कुत्र चित् ।

देशाधिकारो निवृत्तः । युष्मदस्मदोः खञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । चकाराच्छश्च । अन्यतरस्यां ग्रहणाद्यथाप्राप्तम् । तदेते त्रयः प्रत्यया भवन्ति तत्र वैषम्याद्यथासंख्यं न भवति । त्यदादित्वाद्वृद्धसंज्ञकयोर्युष्मदस्मदोश्छे प्राप्ते प्रत्येकं प्रत्ययत्रयं विधीयते । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । युष्मदीयः । अस्मदीयः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ २ ॥

तस्मिन्निति साक्षाद्विहितः खञ् निर्दिश्यते न चकारानुकृष्टश्छः । तस्मिन्खञि अणि च युष्मदस्मदोर्यथासंख्यं युष्माक अस्माक इत्येतावादेशौ भवतः । निमित्तयोरादेशौ प्रति यथासंख्यं कस्मान्न भवति । योगविभागः करिष्यते, तस्मिन् । खञि युष्मदस्मदोर्युष्माकास्माकौ भवतः । ततोऽणि चेति । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः । तस्मिन्नणि चेति किम् । युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३ ॥

एकवचनपरयोर्युष्मदस्मदोस्तवक ममक इत्येतावादेशौ भवतो यथासंख्यं तस्मिन्खञि अणि च परतः । निमित्तयोस्तु यथासंख्यं पूर्ववदेव न भवति । ननु च न लुमताङ्गस्येति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधादेकवचनपरता युष्मदस्मदोर्न संभवति । वचनात्प्रत्ययलक्षणं भविष्यति * । अथ वा नैवेदं प्रत्ययलक्षणं किं तर्ह्यन्वर्थग्रहणम् । एकवचने युष्मदस्मदी एकस्यार्थस्य वाचके तवकममकावादेशौ प्रतिपद्येते इति सूत्रार्थः । तावकीनः । मामकीनः । तावकः । मामकः । तस्मिन्नणि चेत्येव । त्वदीयो, मदीयः ॥

अर्धाद्यत् ॥ ४ ॥

अर्द्धशब्दाद् यत् प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । अर्द्ध्यम् । सपूर्वपदाट्ठञ्वक्तव्यः ॥ * ॥ बालेयार्द्धिकम् । गौतमार्द्धिकम् ॥

परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ॥ ५ ॥

पर अवर अधम उत्तम इत्येवं पूर्वाच्चार्धाद्यत् प्रत्ययो भवति शैषिकः । परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् । पूर्वग्रहणं किम् । परावराधमोत्तमेभ्य इत्येवोच्यते, अर्द्धादिति वर्त्तते । तस्य तत्पूर्वता विज्ञास्यते । पराशब्दावदिग्ग्रहणावपि स्तः, परं सुखमवरं सुखमिति । तत्र कृतार्थत्वाद् दिक्शब्दपक्षे परेण ठञ्यतौ स्याताम्, अस्मात्पूर्वग्रहणाद्यत्प्रत्ययो भवति परार्द्ध्यमवरार्द्ध्यमिति ॥

---

* वचनात्प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधो न संभवति । पा॰ २ ।

दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ॥ ६ ॥

दिक्पूर्वपदादर्धान्तात्प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति चकाराद्यच्च शैषिकः । अणोपवादः । पूर्वार्द्धम् । पौर्वार्द्धिकम् । दक्षिणार्द्धम् । दाक्षिणार्द्धिकम् । पदग्रहणं स्वरूपविधिनिवारणार्थम् ॥

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ॥ ७ ॥

दिक्पूर्वपदादित्येव । ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च प्रातिपदिकाद्दिक्पूर्वपदादर्द्धान्तादञ्ठञौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ यतोपवादौ । इमे खल्वस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धाः पौर्वार्द्धिकाः । दाक्षिणार्द्धाः दाक्षिणार्द्धिकाः ॥

मध्यान्मः ॥ ८ ॥

मध्यशब्दान्मः प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । मध्यमः ॥ आदेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आदिमः ॥ अवोधसोर्लोपश्च ॥ * ॥ अवमम् । अधमम् ॥

अ सांप्रतिके ॥ ९ ॥

अकारः प्रत्ययो भवति मध्यशब्दात्सांप्रतिके जातादौ प्रत्ययार्थे । मस्यापवादः । सांप्रतिकं न्याय्यं युक्तमुचितं सममुच्यते । नातिदीर्घं नातिह्रस्वं मध्यं काष्ठम् । नात्युत्कृष्टो नात्यवकृष्टो मध्यो वैयाकरणः । मध्या स्त्री ॥

द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ॥ १० ॥

समुद्रसमीपे यो द्वीपस्तस्माद् यञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । कच्छादिपाठाद् अणो मनुष्यवुञश्चापवादः । द्वैप्यम् । द्वैप्यं भवन्तोनुचरन्ति चक्रम् । अनुसमुद्रमिति किम् । द्वैपकम् । द्वैपमन्यत् ॥

कालाट्ठञ् ॥ ११ ॥

कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । अणोपवादः । वृद्धात् तु छं परत्वाद्बाधते । मासिकः । आर्द्धमासिकः । सांवत्सरिकः ॥ यथाकथं चिद्गुणवृत्त्यापि काले वर्त्तमानात्प्रत्यय इष्यते ॥ कादम्बपुष्पिकम् । व्रैहिपलालिकम् । तत्र जात इति प्रागतः कालाधिकारः ॥

श्राद्धे शरदः ॥ १२ ॥

शरच्छब्दात् ठञ् प्रत्ययो भवति श्राद्धे ऽभिधेये शैषिकः । ऋत्वणोपवादः । श्राद्धमिति च कर्म गृह्यते न श्रद्धावान्पुरुषो ऽनभिधानात् । शारदिकं श्राद्धम् । शारदमन्यत् ॥

विभाषा रोगातपयोः ॥ १३ ॥

शरद इत्येव । रोगे आतपे चाभिधेये शरच्छब्दाट्ठञ् प्रत्ययो वा भवति शैषिकः । ऋत्वणोऽपवादः । शारदिको रोगः । शारदिक आतपः । शारदो रोगः । शारद आतपः । रोगातपयोरिति किम् । शारदं दधि ॥

निशाप्रदोषाभ्यां च ॥ १४ ॥

निशाप्रदोषशब्दाभ्यां विभाषा ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । कालाट्ठञिति नित्ये ठञि प्राप्ते विकल्प उच्यते । नैशम् । नैशिकम् । प्रादोषम् । प्रादोषिकम् ॥

श्वसस्तुट् च ॥ १५ ॥

विभाषेत्येव । श्वःशब्दाद्विभाषा ठञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च तुडागमो भवति । त्यप्प्रत्ययोऽप्यतो विहित ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्यामिति । एताभ्यां मुक्ते ट्युट्युलावपि भवतः । शौवस्तिकः । श्वस्त्यः । श्वस्तनः ॥

संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ १६ ॥

कालादित्येव संधिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ठञोऽपवादः । अण्ग्रहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । संधिवेलादिभ्यस्तावत् । सांधिवेलम् । सांध्यम् । ऋतुभ्यः । ग्रैष्मम् । शैशिरम् । नक्षत्रेभ्यः । तैषम् । पौषम् । संधिवेला । संध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पञ्चदशी । पौर्णमासी । प्रतिपत् ॥ संवत्सरात्फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व ॥

प्रावृष एण्यः ॥ १७ ॥

प्रावृष्शब्दादेण्यः प्रत्ययो भवति शैषिकः । ऋत्वणोऽपवादः । प्रावृषेण्यो बलाहकः ॥

वर्षाभ्यष्ठक् ॥ १८ ॥

वर्षाशब्दाट्ठक् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ऋत्वणोऽपवादः । वार्षिकं वासः । वार्षिकमनुलेपनम् ॥

छन्दसि ठञ् ॥ १९ ॥

वर्षाशब्दाच् छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ठकोऽपवादः । स्वरे भेदः । नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ॥

वसन्ताच्च ॥ २० ॥

छन्दसीत्येव । वसन्तशब्दाच् छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ऋत्वणोऽपवादः । मधुश्चमाधवश्च वासन्तिकावृतू ॥

हैमन्ताच्च ॥ २१ ॥

छन्दसीत्येव । हेमन्तशब्दाच् छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः । ऋत्वणोपवादः । सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

सर्वत्राण् च तलोपश्च ॥ २२ ॥

हेमन्तशब्दादण् प्रत्ययो भवति तत्संनियोगेन चास्य तकारलोपः । हैमनं वासः । हैमनमुपलेपनम् । सर्वत्रग्रहणं छन्दोधिकारनिवृत्त्यर्थम् । छन्दसि भाषायां च सर्वत्रैतद्भवति । ननु च छन्दसीति नानुवर्तिष्यते । सैवाननुवृत्तिः शब्देनाख्यायते प्रयत्नाधिक्येन पूर्वसूत्रेपि संबन्धार्थम् । हैमन्तिकमिति भाषायामपि ठञं स्मरन्ति । अथाणचेति चकारः किमर्थः । अण् यथाप्राप्तं च ऋत्वणिति, कः पुनरनयोर्विशेषः । ऋत्वणि हि तकारलोपो नास्ति हैमन्ती पङ्क्तिरिति । तदेवं त्रीणि रूपाणि भवन्ति । हैमन्तिकं हैमन्तं हैमनमिति ॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ॥ २३ ॥

कालादित्येव । सायंतनम् । चिरंतनम् । प्राह्णेतनम् । अव्ययेभ्यः । दोषातनम् । दिवातनम् । सायमिति मकारान्तं पदमव्ययं, ततोऽव्ययत्वादेव सिद्धः प्रत्ययः । यस्तु स्यतेरन्तकर्मणो घञि सायशब्दस्तस्येदं मकारान्तत्वं प्रत्ययसंनियोगेन निपात्यते । दिवसावसानं सायः । चिरशब्दस्यापि मकारान्तत्वं निपात्यते । प्राह्णे प्रगे इत्येकारान्तत्वम् ॥ चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः ॥ * ॥ चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ॥ प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च ॥ * ॥ प्रत्नम् ॥ अग्रपश्चाड्डिमच् ॥ * ॥ अग्रिमम् । पश्चिमम् ॥ अन्ताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अन्तिमम् ॥

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ॥ २४ ॥

पूर्वाह्णापराह्णशब्दाभ्यां विभाषा ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवत,स्तुट् च तयोरागमः । कालाट्ठञिति ठञि प्राप्ते वचनं पक्षे सोपि भवति । पूर्वाह्णेतनम् । अपराह्णेतनम् । पौर्वाह्णिकम् । आपराह्णिकम् । घकालतनेषु कालनाम्न इति सप्तम्या अलुक् । यदा तु न सप्तमी समर्थविभक्तिः पूर्वाह्णः सोढोस्येति तदा पूर्वाह्णतन इति भवितव्यम् ॥

तत्र जातः ॥ २५ ॥

अणादयो घादयश्च प्रत्ययाः प्रकृतास्तेषामतः प्रभृत्यर्थाः समर्थविभक्तयश्च निर्दिश्यन्ते । तत्रेति सप्तमीसमर्थाज्जात इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । स्रुघ्ने जातः, स्रौघ्नः । माथुरः । औत्सः । औदपानः । राष्ट्रियः । अवारपारीणः । शाकलिकः । ग्राम्यः । ग्रामीणः । कात्रेयकः । औम्भेयकः ॥

प्रावृषष्ठप् ॥ २६ ॥

प्रावृट्शब्दात्सप्तमीसमर्थाज्जात इत्येतस्मिन्नर्थे ठप् प्रत्ययो भवति । एण्यस्यापवादः । पकारः स्वरार्थः । प्रावृषि जातः, प्रावृषिकः ॥

संज्ञायां शरदो वुञ् ॥ २७ ॥

शरच्छब्दात्सप्तमीसमर्थाज्जात इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, ऋत्वणोपवादः समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते । शारदका दर्भाः । शारदका मुद्गाः । दर्भविशेषस्य मुद्गविशेषस्य चेयं संज्ञा । संज्ञायामिति किम् । शारदं सस्यम् । संज्ञाधिकारं के चि'त्कृतलब्धक्रीतकुशलाः' इति यावदनुवर्त्तयन्ति ॥

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन् ॥ २८ ॥

पूर्वाह्णादिभ्यः शब्देभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये संज्ञायां गम्यमानायाम् । पूर्वाह्णकः । अपराह्णकः । विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्यामित्यस्यापवादः । आर्द्रकः । मूलकः । नक्षत्राणोपवादः । प्रदोषकः । नैशाप्रदोषाभ्यां चेत्यस्यापवादः । अवस्करकः । औत्सर्गिकस्याणोपवादः । असंज्ञायां तु यथाप्राप्तं ठञादय एव भवन्ति ॥

पथः पन्थ च ॥ २९ ॥

पथिशब्दाद्वुन् प्रत्ययो भवति तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये ऽणोपवादः, प्रत्ययसंनियोगेन च पथः पन्थ इत्ययमादेशो भवति । पथि जातः, पन्थकः ॥

अमावास्याया वा ॥ ३० ॥

अमावास्याशब्दाद् वुन् प्रत्ययो भवति वा तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये । संधिवेलादिषु पाठादणोपवादः । अमावास्यकः । आमावास्यः । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वादमावस्यशब्दादपि भवति । अमावस्यकः । आमावस्यः ॥

अ च ॥ ३१ ॥

अमावास्याशब्दादकारः प्रत्ययो भवति तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये । पूर्वेण वुनणोः प्राप्तयोरयं तृतीयः प्रत्ययो विधीयते । अमावास्यः । अमावास्यकः । आमावास्यः । अमावस्यः । अमावस्यकः । आमावस्यः ॥

सिन्ध्वपकराभ्यां कन् ॥ ३२ ॥

सिन्धुशब्दादपकरशब्दाच्च कन् प्रत्ययो भवति तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये । सिन्धुशब्दः कच्छादि,स्ततोऽणि मनुष्यवुञि च प्राप्ते विधानम्, अपकरशब्दादप्यौत्सर्गिके ऽणि । सिन्धुकः । अपकरकः ॥

अणञौ च ॥ ३३ ॥

सिन्धवपकरशब्दाभ्यां यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतस्तत्र जात इत्येतस्मिन्विषये। पूर्वेण कनि प्राप्ते वचनम्। सैन्धवः। आपकरः॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्॥ ३४॥

श्रविष्ठादिभ्यः शब्देभ्यो नक्षत्रेभ्य आगतस्य जातार्थे लुग्भवति। तस्मिंस्त्रीप्रत्ययस्यापि लुक्तद्धितलुकीति भवति। श्रविष्ठासु जातः, श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिष्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। अषाढः। बहुलः॥ लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्॥ *॥ चित्रायां जाता, चित्रा। रेवती। रोहिणी। स्त्रीप्रत्ययस्य लुकि कृते गौरादित्वात् ङीष्॥ फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ॥ *॥ फल्गुनी॥ अषाढा॥ श्रविष्ठाषाढाभ्यां छणपि वक्तव्यः॥ *॥ श्राविष्ठीयः। आषाढीयः॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च॥ ३५॥

स्थानान्तात्प्रातिपदिकाद् गोशालशब्दात्खरशालशब्दाज्जातार्थे प्रत्ययस्य लुग्भवति। गोस्थाने जातः, गोस्थानः। अश्वस्थानः। गोशालः। खरशालः॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा॥ ३६॥

वत्सशालादिभ्यः परस्य जातार्थे प्रत्ययस्य लुग् वा भवति। वत्सशालायां जातः, वत्सशालः। वात्सशालः। अभिजित्। आभिजितः। अश्वयुक्। आश्वयुजः। शतभिषक्। शातभिषजः। बहुलग्रहणस्यायं प्रपञ्चः॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम्॥ ३७॥

नक्षत्रेभ्य उत्तरस्य जातार्थे प्रत्ययस्य बहुलं लुग्भवति। रोहिणः। रौहिणः। मृगशिराः। मार्गशीर्षः॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः॥ ३८॥

तत्रेत्येव। सप्तमीसमर्थात्कृतादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति। स्रुघ्ने कृतो वा लब्धो वा क्रीतो वा कुशलो वा, स्रौघ्नः। माथुरः। राष्ट्रियः। ननु च यद्यत्र कृतं जातमपि तत्र भवति यच्च यत्र क्रीतं लब्धमपि तत्रैव भवति किमर्थं भेदेनोपादानं क्रियते। शब्दार्थस्य भिन्नत्वाद्वस्तुमात्रेण क्रीतं लब्धं भवति शब्दार्थस्तु भिद्यत एव॥

प्रायभवः॥ ३९॥

तत्रेत्येव। सप्तमीसमर्थान् ङ्याप्प्रातिपदिकात्प्रायभव इत्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्रायशब्दः साकल्यस्य किं चिदूनतामाह। स्रुघ्ने

प्रायेण बाहुल्येन भवति, स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । प्रायग्रहणमनर्थकं, तत्रभवेन कृतत्वात् । अनित्यभवः प्रायभव इति चेद् मुक्तसंशयेन तुल्यम् ॥

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ॥ ४० ॥

उपजान्वादिभ्यः शब्देभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रायभव इत्येतस्मिन्विषये ठक् प्रत्ययो भवति । अणोपवादः । औपजानुकः । औपकर्णिकः । औपनीविकः ॥

संभूते ॥ ४१ ॥

तत्रेत्येव । सप्तमीसमर्थाद् ङ्याप्प्रातिपदिकात् संभूतइत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । अवक्लृप्तिः प्रमाणानतिरेकश्च संभवत्यर्थ इह गृह्यते नोत्पत्तिः सत्ता वा, जातभवाभ्यां गतत्वात् । स्रुघ्ने संभवति, स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः ।

कोशाड्ढञ् ॥ ४२ ॥

कोशशब्दाद् ढञ् प्रत्ययो भवति तत्र संभूतइत्यस्मिन्विषये । अणोपवादः । कोशे संभूतं, कौशेयं वस्त्रम् । रूढिरेषा तेन क्रिमौ न भवति, खड्गकोशाच्च ॥

कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥ ४३ ॥

तत्रेत्येव । कालविशेषवाचिभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः साध्वादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । हेमन्ते साधुः, हैमन्तः प्राकारः । शैशिरमनुलेपनम् । वसन्ते पुष्प्यन्ति, वासन्त्यः कुन्दलताः । ग्रैष्म्यः पाटलाः । शरदि पच्यन्ते, शारदाः शालयः । ग्रैष्मा यवाः ॥

उप्ते च ॥ ४४ ॥

तत्रेत्येव, कालादिति च । सप्तमीसमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकादुप्ते यथाविहितं प्रत्ययो भवति । हेमन्ते उप्यन्ते, हैमन्ता यवाः । ग्रैष्मा व्रीहयः । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥ ४५ ॥

आश्वयुजीशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति । उप्तेर्थे । ठञोपवादः । आश्वयुज्यामुप्ता, आश्वयुजका माषाः । अश्विनीभ्यां युक्ता पौर्णमासी, आश्वयुजी । अश्विनीपर्यायो ऽश्वयुक्शब्दः ॥

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ॥ ४६ ॥

ग्रीष्मवसन्तशब्दाभ्यामन्यतरस्यां वुञ् प्रत्ययो भवति उप्तेर्थे । ऋत्वणोपवादः । ग्रैष्मं सस्यम् । ग्रैष्मकम् । वासन्तम् । वासन्तकम् ॥

देयमृणे ॥ ४७ ॥

तत्रेत्येव, कालादिति च। सप्तमीसमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकाद्देय-मित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यद्देयमृणं चेत्तद्भवति। मासे देयमृणं, मासिकम्। आर्द्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्। ऋणमिति किम्। मासे देया भिक्षा॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन्॥ ४८॥

कालादित्येव। कलापि अश्वत्थ यवबुस इत्येतेभ्यः कालवाचिभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यो देयमृणमित्येतस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति। कलाप्यादयः शब्दाः साहचर्यात्काले वर्त्तन्ते। यस्मिन्काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स कलापी। यस्मिन्नश्वत्थाः फलन्ति सोऽश्वत्थः। यस्मिन्यवबुसं संपद्यते स यवबुसशब्देनोच्यते। कलापिनि काले देयमृणं, कलापकम्। अश्वत्थकम्। यवबुसकम्॥

ग्रीष्मावरसमाद्वुञ्॥ ४९॥

ग्रीष्मावरसमशब्दाभ्यां वुञ् प्रत्ययो भवति देयमृणमित्येतस्मिन्नर्थे। अणृठञोरपवादः। ग्रीष्मे देयमृणं, ग्रैष्मकम्। आवरसमकम्। प्रत्ययान्तरकरणं वृद्ध्यर्थम्। समाशब्दो वर्षपर्यायः॥

संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च॥ ५०॥

संवत्सराग्रहायणीशब्दाभ्यां ठञ् प्रत्ययो भवति, चकाराद्वुञ्च देयमृण-मित्येतस्मिन्नर्थे। संवत्सरे देयमृणं, सांवत्सरिकम्। सांवत्सरकम्। आग्रहायणिकम्। आग्रहायणकम्। वेति वक्तव्ये ठञ्ग्रहणं संधिवेलादिषु संवत्सरात्फलपर्वणोरिति पठ्यते, तत्र फले ऋणत्वेन विवक्षिते ऽणं बाधित्वा ठञेव यथा स्यादिति॥

व्याहरति मृगः॥ ५१॥

तत्रेत्येव, कालादिति च। कालवाचिनः सप्तमीसमर्थात्प्रातिपदिकाद् व्याहरति मृग इत्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। निशायां व्याहरति मृगः, नैशः। नैशिकः। प्रादोषः। प्रादोषिकः। मृग इति किम्। निशायां व्याहरत्युलूकः॥

तदस्य सोढम्॥ ५२॥

कालादित्येव। तदिति प्रथमासमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्प्रथमासमर्थं सोढञ्चेत्तद्भवति, सोढं जितमभ्यस्तमित्यर्थः। निशासहचरितमध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य छात्रस्य, नैशः। नैशिकः। प्रादोषः। प्रादोषिकः॥

तत्र भवः॥ ५३॥

कालादिति निवृत्तम्। तत्रेति सप्तमीसमर्थाद् ङ्याप्प्रातिपदिकाद्भव

इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । सत्ता भवत्यर्थो गृह्यते न जन्म, तत्र जात इति गतार्थत्वात् । स्रुघ्ने भवः, स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । पुनस्तत्रग्रहणं तदस्येति निवृत्त्यर्थम् ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥ ५४ ॥

दिश् इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत्प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अणाद्यस्य चापवादः । दिशि भवं, दिश्यम् । वर्ग्यम् । मुखजघनशब्दयोरशरीरावयवार्थः पाठः, सेनामुख्यं, सेनाजघन्यमिति * । दिश् । वर्ग । पूग । गण । पक्ष । धाय्या । मित्र । मेधा । अन्तर । पथिन् । रहस् । अलीक । उखा । साक्षिन् । आदि । अन्त । मुख । जघन । मेघ । यूथ ॥ उदकात्संज्ञायाम् † ॥ न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश । दिगादिः ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ५५ ॥

शरीरं प्राणिकायः । शरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद् यत्प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । दन्तेषु भवं, दन्त्यम् । कर्ण्यम् । ओष्ठ्यम् ॥

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ॥ ५६ ॥

दृत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ढञ् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । दृतौ भवं, दार्तेयम् । कौक्षेयम् । कालशेयम् । वास्तेयम् । आस्तेयम् । आहेयमजरं विषम् । अस्तिशब्दः प्रातिपदिकं, न तिङन्तः ॥

ग्रीवाभ्योऽण् च ॥ ५७ ॥

ग्रीवाशब्दादण्प्रत्ययो भवति चकाराड्ढञ्च, तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये, शरीरावयवाद्यतोपवादः । ग्रीवासु भवं, ग्रैवेयम् । ग्रैवम् । ग्रीवाशब्दो धमनीवचनस्तासां बहुत्वाद्बहुवचनं कृतम् ।

गम्भीराञ्ञ्यः ॥ ५८ ॥

गम्भीरशब्दाद् ञ्यः प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । गम्भीरे भवं, गाम्भीर्यम् ॥ बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बाह्यम् । दैव्यम् । पाञ्चजन्यम् ‡ ॥

---

* मुखजघनाभ्यां सेनाया अग्रभागपश्चाद्भागावुच्येते इत्यधिकः पाठः कुत्र चित्पुस्तके ।

† उदकात्संज्ञायामित्यस्याग्रे उदक्या रजस्वला । संज्ञायामिति किम् । औदको मत्स्यः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

‡ चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे ञ्यो वक्तव्यः ॥ * ॥ चातुर्मास्यानि व्रतानि । चातुर्मास्यो यज्ञः । चातुर्मासोऽन्यत्र । इत्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु ।

अव्ययीभावाच्च ॥ ५९ ॥

अव्ययीभावसंज्ञकात्प्रातिपदिकाच्च ञ्यः प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये। अणोपवादः। न च सर्वस्मादव्ययीभावाद्भवति, किं तर्हि परिमुखादेः, परिमुखादीनां च गणपाठस्यैतदेव प्रयोजनं तेषां विशेषणमव्ययीभावग्रहणम्। परिमुखं भवं, पारिमुख्यम्। पारिहनव्यम्। परिमुखादेरन्यत्र न भवति। औपकूलम्। परिमुख। परिहनु। पर्योष्ठ। पर्युलू। औपमूल। खल। परिसीर। अनुसीर। उपसीर। उपस्थल। उपकलाप। अनुपथ। अनुखङ्ग। अनुतिल। अनुशीत। अनुमाष। अनुयव। अनुयूप। अनुवंश * ॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ॥ ६० ॥

अव्ययीभावादित्येव। अन्तःशब्दो विभक्त्यर्थे समस्यते, तत्पूर्वपदादव्ययीभावाट्ठञ् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये। अणोपवादः। आन्तर्वेश्मिकम्। आन्तर्गेहिकम् † ॥ समानशब्दाट्ठञ् वक्तव्यः ॥ * ॥ समाने भवं सामानिकम् ॥ तदादेश्च ॥ * ॥ सामानग्रामिकम्। सामानदेशिकम् ॥ अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ * ॥ आध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम् ‡। अध्यात्मादिराकृतिगणः ॥ ऊर्ध्वंदमाच्च ठञ् वक्तव्यः ॥ * ॥ और्ध्वंदमिकः। उर्ध्वंशब्देन समानार्थ उर्ध्वंदमशब्दः ॥ ऊर्ध्वदेहाच्च ॥ * ॥ और्ध्वदेहिकम् ॥ * ॥ लोकोत्तरपदाच्च ॥ * ॥ ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम् ॥ मुखपार्श्वशब्दाभ्यां तसन्ताभ्यामीयः प्रत्ययो वक्तव्यः ॥ * ॥ मुखतीयम्। पार्श्वतीयम् ॥ जनपरयोः कुक्च ॥ * ॥ जनकीयम्। परकीयम् ॥ मध्यशब्दादीयः ॥ * ॥ मध्यीयः ॥ मणमीयौ च प्रत्ययौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ माध्यमम्। मध्यमीयम् ॥ मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात् ॥ * ॥ मध्ये भवं, माध्यंदिनम् ॥ स्थाम्नो लुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ अश्वत्थामा ॥ अजिनान्ताच्च ॥ * ॥ वृकाजिनः। सिंहाजिनः ॥

समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते।
ऊर्ध्वंदमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च ॥
मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च।
ईयः कार्योथ मध्यस्य मणमीयौ प्रत्ययौ तथा ॥
मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा ॥

ग्रामात्पर्यनुपूर्वात् ॥ ६१ ॥

* अनुखङ्ग। पुस्तकान्तरे ऽयं शब्दोधिकोत्र गणे।

† आन्तरगारिकम्। इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

‡ अनुशतिकादीनां चेत्युभयपदवृद्धिरित्यधिकं कुत्र चित्।

अव्ययीभावादित्येव । ग्रामशब्दान्तादव्ययीभावात्परि अनु इत्येवंपूर्वा-ट्ठञ् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । पारिग्रामिकः । आनुग्रामिकः ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ६२ ॥

जिह्वामूलशब्दादङ्गुलिशब्दाच्च छः प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मि-न्विषये । यतोपवादः । जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

वर्गान्ताच्च ॥ ६३ ॥

वर्गशब्दान्ताच्च प्रातिपदिकाच् छः प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येत-स्मिन्विषये । अणोपवादः । कवर्गीयम् । चवर्गीयम् ॥

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ॥ ६४ ॥

वर्गान्तादित्येव । शब्दादन्यस्मिन्प्रत्ययार्थे वर्गान्तात्प्रातिपदिकादन्यत-रस्यां यत्खौ प्रत्ययौ भवतः तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । छे प्राप्ते वचनं, पक्षे सोपि भवति । वासुदेववर्ग्यः । वासुदेववर्गीणः । वासुदेववर्गीयः * । युधिष्ठिरवर्ग्यः । युधिष्ठिरवर्गीणः । युधिष्ठिरवर्गीयः । अशब्दइति किम् । कवर्गीयो वर्णः ॥

कर्णललाटात्कनलंकारे ॥ ६५ ॥

कर्णललाटशब्दाभ्यां कन् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये ऽलंकारे ऽभिधेये । यतोपवादः । कर्णिका । ललाटिका । अलंकारइति किम् । कर्ण्यम् । ललाट्यम् ॥

तस्य व्याख्यानइति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥ ६६ ॥

व्याख्यायते ऽनेनेति व्याख्यानं, व्याख्यातव्यस्य नाम व्याख्यातव्यनाम । तस्येति षष्ठीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनाम्नः प्रातिपदिकाद्व्याख्याने ऽभिधेये यथा-विहितं प्रत्ययो भवति तत्र भवे च । वाक्यार्थसमीपे चकारः श्रूयमाणः पूर्व-वाक्यार्थमेव समुच्चिनोति तत्र भव इति । सुपां व्याख्यानः, सौपो ग्रन्थः । तैङः । कार्त्तः । सुप्सु भवं, सौपम् । तैङम् । कार्त्तम् । व्याख्यातव्यनाम्न इति किम् । पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानी सुकोसला, पाटलिपुत्रः सुकोसलया व्याख्या-यते, एवंसंनिवेशं पाटलिपुत्रमिति, न तु पाटलिपुत्रो व्याख्यातव्यनाम । भव-व्याख्यानयोर्युगपदधिकारो ऽपवादविधानार्थः । कृतनिर्देशौहि तौ ॥

बह्वचोन्तोदात्ताट्ठञ् ॥ ६७ ॥

बह्वचो व्याख्यातव्यनाम्नः प्रातिपदिकादन्तोदात्ताद्भवव्याख्यानयोष्ठञ् प्रत्ययो भवति । अणोपवादः । षात्वणत्विकम् । नातानतिकम् । समासस्व-

* अर्जुनवर्ग्यः । अर्जुनवर्गीणः । अर्जुनवर्गीयः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

रेणान्तोदात्ताः प्रकृतयः। बह्वच इति किम्। द्व्यचष्ठकं वक्ष्यति। एकाच् प्रत्युदाह्रियते। सैपम्। तैडम्। कार्त्तम्। अन्तोदात्तादिति किम्। संहितायाः सांहितम्। संहिताशब्दो हि गतिस्वरेणाद्युदात्तः ॥

क्रतुयज्ञेभ्यश्च ॥ ६८ ॥

क्रतुभ्यो यज्ञेभ्यश्च व्याख्यातव्यनामभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। क्रतुभ्यस्तावत्। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भव, आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। राजसूयिकः। यज्ञेभ्यः। पाकयज्ञिकः। नावयज्ञिकः। अनन्तोदात्तार्थ आरम्भः। क्रतुभ्य इत्येव सिद्धे यज्ञग्रहणमसोमयागेभ्योऽपि यथा स्यात्, पाञ्चौदनिकः। दाशौदनिकः। बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

अध्यायेष्वेवर्षेः ॥ ६९ ॥

ऋषिशब्दाः प्रवरनामधेयानि तेभ्य ऋषिशब्देभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। अध्यायेष्वेव प्रत्ययार्थविशेषणेषु। व्याख्यातव्यनाम्न इत्यनुवर्त्तते तत्साहचर्य्यादृषिशब्दैर्ग्रन्थ उच्यते। वसिष्ठस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा वासिष्ठिकोऽध्यायः। वैश्वामित्रिकः। अध्यायेष्विति किम्। वासिष्ठी ऋक् ॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ॥ ७० ॥

पौरोडाशशब्दात्पुरोडाशशब्दाच्च भवव्याख्यानयोरर्थयोः ष्ठन् प्रत्ययो भवति। पुरोडाशाः पिष्टपिण्डास्तेषां संस्कारको मन्त्रः पौरोडाशस्तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पौरोडाशिकः। पौरोडाशिकी। पुरोडाशसहचरितो ग्रन्थः पुरोडाशस्तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पुरोडाशिकः। पुरोडाशिकी। षकारो ङीषर्थः ॥

छन्दसो यदणौ ॥ ७१ ॥

छन्दःशब्दाद्भवव्याख्यानयोरर्थयोर्यदणौ प्रत्ययौ भवतः। द्व्यच इति ठकि प्राप्ते वचनम्। छन्दस्यः। छान्दसः ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ॥ ७२ ॥

द्व्यजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति। अणादेरपवादः। द्व्यचस्तावत्, ऐष्टिकः। पाशुकः। ऋकारान्तात्। चातुर्होतृकः। पाञ्चहोतृकः। ब्राह्मण। ब्राह्मणिकः। ऋक्। आर्चिकः। प्रथम। प्राथमिकः। अध्वर। आध्वरिकः। पुरश्चरण। पौरश्चर-

णिकः । नामाख्यातग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् । नामिकः । आख्यातिकः । नामाख्यातिकः ॥

ऋगयनादिभ्यः ॥ ७३ ॥

ऋगयनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति। ठञादेरपवादः । आर्गयनः, । पादव्याख्यानः । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् । वास्तुविद्यः। ऋगयन। पदव्याख्यान। छन्दोमान। छन्दोभाषा। छन्दोविचिति। न्याय। पुनरुक्त । व्याकरण । निगम । वास्तुविद्या । अङ्गविद्या । क्षत्रविद्या । उत्पात। उत्पाद। संवत्सर। मुहूर्त्त। निमित्त। उपनिषत्। शिक्षा *। ऋगयनादिः॥

तत आगतः ॥ ७४ ॥

तत इति पञ्चमीसमर्थादागत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । तत इति मुख्यमपादानं विवक्षितं यत्तदिह गृह्यते, न नान्तरीयकम् । स्रुघ्नादागच्छन्वृक्षमूलादागत इति ॥

ठगायस्थानेभ्यः ॥ ७५ ॥

आय इति स्वामिग्राह्यो भाग उच्यते स यस्मिन्नुत्पद्यते तदायस्थानम् । आयस्थानवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये, अणोऽपवादः । छं तु परत्वाद्बाधते । शुल्कशालाया आगतः, शौल्कशालिकः । आकरिकम् † । बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

शुण्डिक इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । आयस्थानठकोऽपवादः । शुण्डिकादागतः, शौण्डिकः । कार्कणः । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् । औदपानः । शुण्डिक । कृकण । स्थण्डिल । उदपान । उपल । तीर्थ । भूमि । तृण । पर्ण । शुण्डिकादिः ॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ॥ ७७ ॥

विद्यायोनिकृतः संबन्धो येषां ते विद्यायोनिसंबन्धाः । तद्वाचिभ्यः शब्देभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । अणोऽपवादः । छं तु परत्वाद्बाधते। विद्यासंबन्धेभ्यस्तावत्। उपाध्यायादागतम्, औपाध्यायकम्। शैष्यकम्। आचार्यकम्। योनिसंबन्धेभ्यः। मातामहकः। पैतामहकः। मातुलकः ‡॥

---

* छन्दोविजिनी। न्याय। निरुक्त। विद्या। उत्पाव। भिक्षा। एते शब्दा अधिक अत्र गणे पुस्तकान्तरे।

† नागरिकम्। आपणिकम्। इत्यपि कुत्र चित्पुस्तके।

‡ मातुलक इत्युदाहरणं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति।

ऋतष्ठञ् ॥ ७८ ॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्य इत्येव । ऋकारान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विद्यायोनिसंबन्धवाचिभ्यष्ठञ् प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । वुञोऽपवादः । विद्यासंबन्धवाचिभ्यस्तावत् । होतुरागतं, हौतृकम् । पौतृकम् । योनिसंबन्धवाचिभ्यः । भ्रातृकम् । स्वासृकम् । मातृकम् । तपरकरणं सुखार्थम् । विद्यायोनिभ्यामन्यत्र सावित्रम् ॥

पितुर्यच्च ॥ ७९ ॥

पितृशब्दाद् यत् प्रत्ययो भवति चकाराट्ठञ्च तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । पितुरागतं, पित्र्यम् । पैतृकम् ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ८० ॥

अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रं गृह्यते । गोत्रप्रत्ययान्तात्प्रातिपदिकादङ्कवत्प्रत्ययविधिर्भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । अङ्कग्रहणेन तस्येदमर्थसामान्यं लक्ष्यते । तस्माद्वुञतिदिश्यते* नाणेव संघाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामणिति । औपगवानामङ्कः, औपगवकः । कापटवकः । नाडायनकः । चारायणकः । एवमौपगवेभ्य आगतमौपगवकम् । कापटवकम् । नाडायनकम् । चारायणकम् ॥

हेतुमनुष्येभ्यो ऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥ ८१ ॥

हेतुभ्यो मनुष्येभ्यश्चान्यतरस्यां रूप्यः प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । मनुष्यग्रहणमहेत्वर्थम् । हेतुः कारणम् । हेतुभ्यस्तावत् । समादागतं, समरूप्यम् । समीयम् । विषमरूप्यम् । विषमीयम् । गहादित्वाच्छः । मनुष्येभ्यः । देवदत्तरूप्यम् । यज्ञदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् । याज्ञदत्तम् । बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

मयट् च ॥ ८२ ॥

हेतुभ्यो मनुष्येभ्यश्च मयट् प्रत्ययो भवति तत आगत इत्येतस्मिन्विषये । सममयम् । विषममयम् । मनुष्येभ्यः । देवदत्तमयम् । यज्ञदत्तमयम् । टकारो ङीबर्थः । सममयी । योगविभागो यथासंख्यनिरासार्थः ॥

प्रभवति ॥ ८३ ॥

तत इत्येव । पञ्चमीसमर्थाद् ङ्याप्प्रातिपदिकात्प्रभवतीत्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति । प्रभवति प्रकाशते प्रथमत उपलभ्यत इत्यर्थः । हिमवतः प्रभवति, हैमवती गङ्गा । दारदी सिन्धुः ॥

---

* गोत्रचरणाद्वुञितीत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

विदूराञ्ञ्यः ॥ ८४ ॥

विदूरशब्दाञ् ञ्यः प्रत्ययो भवति ततः प्रभवतीत्येतस्मिन्विषये । अणो-पवादः । विदूरात्प्रभवति, वैदूर्यो मणिः । ननु च वालवायादसौ प्रभवति न विदूरात् तत्र तु संस्क्रियते । एवं तर्हि

वालवायो विदूरं च प्रकृत्यन्तरमेव वा ।
न वै तत्रेति चेद्ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत् ॥

तद्गच्छति पथिदूतयोः ॥ ८५ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थाद्गच्छतीत्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ गच्छति पन्थाश्चेत्स भवति दूतो वा । स्रुघ्नं गच्छति, स्रौघ्नः पन्था दूतो वा । माथुरः* । तत्स्थेषु गच्छत्सु पन्था गच्छतीत्युच्यते । अथ वा स्रुघ्नप्राप्तिः पथो गमनम् । पथिदूतयोरिति किम् । स्रुघ्नं गच्छति सार्थः ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ८६ ॥

तदित्येव । द्वितीयासमर्थादभिनिष्क्रामतीत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तदभिनिष्क्रामति द्वारं चेद्भवति । आभिमुख्येन निष्क्रामति, अभिनिष्क्रामति, स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारं स्रौघ्नम् । माथुरम् । राष्ट्रि-यम् । द्वारमभिनिष्क्रमणक्रियायां करणं प्रसिद्धं तदिह स्वातन्त्र्येण विवक्ष्यते यथा साध्वसिश्छिनत्तीति । द्वारमिति किम् । स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति पुरुषः ॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥ ८७ ॥

तदित्येव । अधिकृत्येतदपेक्ष्य द्वितीया । अधिकृत्य, प्रस्तुत्य, आगूर्य-त्यर्थः । तदिति द्वितीयासमर्थादधिकृत्य कृतइत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत्कृतं ग्रन्थश्चेत्स भवति । सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौभद्रः । गौरि-मित्रः । यायातः । ग्रन्थइति किम् । सुभद्रामधिकृत्य कृतः प्रासादः ॥ लुबा-ख्यायिकार्थस्य प्रत्ययस्य बहुलम् ॥ * ॥ वासवदत्तामधिकृत्य कृता ऽऽख्यायिका वासवदत्ता । सुमनोत्तरा । उर्वशी । न च भवति, भैमरथी ॥

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ॥ ८८ ॥

तदित्येव । अधिकृत्य कृते ग्रन्थइति च । शिशुक्रन्दादिभ्यो द्वितीयास-मर्थेभ्यश्छः प्रत्ययो भवति अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । अणोऽपवादः । शिशूनां क्रन्दनं शिशुक्रन्दः । तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, शिशुक्रन्दीयः । यमस्य सभा यमसभं, यमसभीयः । द्वन्द्वात् । अग्निकाश्यपीयः । श्येनकपोतीयः । शब्दार्थसंबन्धीयं

* राष्ट्रिय इत्यधिकमन्यत्र ।

प्रकरणम् । वाक्यपदीयम् । इन्द्रजननादिभ्यः । इन्द्रजननीयम् । प्रद्युम्नागमनीयम् * । इन्द्रजननादिराकृतिगणः प्रयोगतो ऽनुसर्त्तव्यः, प्रातिपदिकेषु न पठ्यते ॥ द्वन्द्वे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ * ॥ दैवासुरम् । राक्षोसुरम् । गौणमुख्यम् । इन्द्रजननादेराकृतिगणत्वात् शिशुक्रन्दादयोपि तत्रैव द्रष्टव्याः । प्रपञ्चार्थमेषां ग्रहणम् । एवं सति देवासुरादिप्रतिषेधोपि न वक्तव्यः, ततश्छप्रत्ययस्यादर्शनात् ॥

सोस्य निवासः ॥ ८९ ॥

स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्प्रथमासमर्थं निवासश्चेत्स भवति, निवसन्त्यस्मिन्निवासो देश उच्यते । स्रुघ्नो निवासो ऽस्य स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः ॥

अभिजनश्च ॥ ९० ॥

सोस्येत्येव । स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्प्रथमासमर्थमभिजनश्चेत्स भवति । अभिजनः पूर्वबान्धवः । तत्संबन्धाद्देशोप्यभिजन इत्युच्यते । यस्मिन्पूर्वबान्धवैरुषितं तस्मादिह देशवाचिनः प्रत्ययो, न बन्धुभ्यो निवासप्रत्यासत्तेः । स्रुघ्नोभिजनोस्य स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । निवासाभिजनयोः को विशेषः । यत्र संप्रत्युष्यते स निवासः । यत्र पूर्वैरुषितं सोभिजनः । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ९१ ॥

सोस्याभिजन इति वर्त्तते । आयुधजीविभ्य इति तादर्थ्ये चतुर्थी, पर्वत इति प्रकृतिविशेषणम् । पर्वतवाचिनः प्रथमासमर्थादभिजनादस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति । आयुधजीविभ्यश्च आयुधजीव्यर्थमायुधजीविनोभिधातुं प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । हृद्गोलः पर्वतोभिजन एषामायुधजीविनां हृद्गोलीयाः । अन्धकवर्त्तीयाः । रोहितगिरीयाः । आयुधजीविभ्य इति किम् । ऋक्षोदः पर्वतोभिजन एषां ब्राह्मणानाम्, आर्क्षोदा ब्राह्मणाः । पर्वतइति किम् । सांकाश्यका आयुधजीविनः ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ॥ ९२ ॥

शण्डिक इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति सोस्याभिजन इत्येतस्मिन्विषये । अणादेरपवादः । शाण्डिक्यः । सार्वसेन्यः । शण्डिक । सर्वकेश । सर्वसेन । शक । सट । रक्ष । शङ्ख । बोध । शण्डिकादिः ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्यो ऽणञौ ॥ ९३ ॥

---

* सीतान्वेषणीयः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। सिन्ध्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्च यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः सोस्याभिजन इत्येतस्मिन्विषये। सैन्धवः। वार्णवः। सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। किष्किन्धा। गब्दिका। उरस। दरत्*। ये तु कच्छादिषु पठ्यन्ते सिन्धुवर्णुप्रभृतयस्तेभ्यस्तत एवाणि सिद्धे मनुष्यवुञो बाधनार्थं वचनम्। तक्षशिलादिभ्यः खल्वपि। ताक्षशिलः। वात्सोद्धरणः। तक्षशिला। वत्सोद्धरण। कौमेदुर। काण्डवारण। ग्रामणी। सरालक। कंस। किन्नर। संकुचित। सिंहकोष्ठ। कर्णकोष्ठ। बर्बर। अवसान॥

तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः॥ ९४॥

तूद्यादिभ्यश्चतुर्भ्यः शब्देभ्यो यथासंख्यं चत्वार एव ढक् छण् ढञ् यक् इत्येते प्रत्यया भवन्ति सोस्याभिजन इत्येतस्मिन्विषये। अणोपवादः। तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः। कौचवार्य्यः॥

भक्तिः॥ ९५॥

समर्थविभक्तिः प्रत्ययार्थश्चानुवर्तते। अभिजन इति निवृत्तम्। स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत्तद्भवति। भज्यते सेव्यतइति भक्तिः। स्रुघ्नो भक्तिरस्य स्रौघ्नः। माथुरः। राष्ट्रियः।

अचित्ताददेशकालाट्ठक्॥ ९६॥

देशकालव्यतिरिक्तादचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाट्ठक् प्रत्ययो भवति सोस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये। अणोपवादः। वृद्धाच्छं परत्वाद्बाधते। अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः। शाष्कुलिकः। पायसिकः। अचित्तादिति किम्। दैवदत्तः। अदेशादिति किम्। स्रौघ्नः। अकालादिति किम्। ग्रैष्मः॥

महाराजाट्ठञ्॥ ९७॥

महाराजशब्दाट् ठञ् प्रत्ययो भवति सोस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये। अणोपवादः। महाराजो भक्तिरस्य माहाराजिकः। प्रत्ययान्तरकरणं स्वरार्थम्॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्॥ ९८॥

वासुदेवार्जुनशब्दाभ्यां वुन् प्रत्ययो भवति सोस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये। छाणोरपवादः। वासुदेवो भक्तिरस्य वासुदेवकः। अर्जुनकः। ननु वासुदेवशब्दाद्गोत्रक्षत्रियाख्येभ्य इति वुञस्त्येव। न चात्र वुन्वुञोर्विशेषो विद्यते किमर्थं वासुदेवग्रहणम्। संज्ञैषा देवताविशेषस्य न क्षत्रियाख्या। अल्पाच्तरमजाद्यदन्तमिति वार्जुनशब्दस्य पूर्वनिपातमकुर्वन् ज्ञापयत्यभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति॥

* कुलून। दिरसा। एतौ शब्दौ पुस्तकान्तरे ऽत्र गणे ऽधिकौ।

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ॥ ९९ ॥

गोत्राख्येभ्यः क्षत्रियाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो बहुलं वुञ् प्रत्ययो भवति सोऽस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये। अणोऽपवादः। वृद्धाच्छं परत्वाद्बाधते। ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनकः। औपगवकः। कापटवकः। क्षत्रियाख्येभ्यः। नाकुलकः। साहदेवकः। साम्बकः। आख्याग्रहणं प्रसिद्धक्षत्रियशब्दपरिग्रहार्थं, यथाकथंचित् क्षत्रियवृत्तिभ्यो मा भूत्। बहुलग्रहणात् क्व चिदप्रवृत्तिरेव। पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीयः। पौरवीयः॥

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ १०० ॥

जनपदिनो ये बहुवचने जनपदेन समानशब्दास्तेषां जनपदवत्सर्वं भवति प्रत्ययः प्रकृतिश्च सोऽस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये। जनपदतदवध्योश्चेत्यत्र प्रकरणे ये प्रत्यया विहितास्ते जनपदिभ्यो ऽस्मिन्नर्थे ऽतिदिश्यन्ते। जनपदिनो जनपदस्वामिनः क्षत्रियाः। अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य आङ्गकः। वाङ्गकः। सौह्मकः। पौण्ड्रकः। तद्वदङ्गाः क्षत्रिया भक्तिरस्य आङ्गकः। वाङ्गकः। सौह्मकः। पौण्ड्रकः। जनपदिनामिति किम्। पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य पाञ्चालः। सर्वग्रहणं प्रकृत्यतिदेशार्थं स च द्व्येकयोरतिदेशं प्रयोजयति। वृद्धिनिमित्तेषु च वुञादिषु विशेषो नास्तीति। मद्रवृज्योः कनि विशेषः। मद्रस्यापत्यं, द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्, माद्रः। वृजिशब्दादपि वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्, वार्ज्यः। स भक्तिरस्येति प्रकृतिनिर्ह्रासे कृते मद्रकः। वृजिकः। जनपदेन समानशब्दानामिति किम्। अनुषण्डो जनपदः, पौरवो राजा स भक्तिरस्य पौरवीयः। बहुवचनग्रहणं समानशब्दताविषयलक्षणार्थम्, अन्यथा हि यत्रैव समानशब्दता तत्रैवातिदेशः स्याद्, एकवचनद्विवचनयोर्न स्यात्, वाङ्गि वाङ्गौ वा भक्तिरस्येति। बहुवचने तु बहुवचने समानशब्दानामेकवचनद्विवचनयोः सत्यपि शब्दभेदे ऽतिदेशो भवति। वाङ्गः वाङ्गौ वा भक्तिरस्य वाङ्गकः॥

तेन प्रोक्तम् ॥ १०१ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्रकर्षेणोक्तं प्रोक्तमित्युच्यते, न तु कृतम्। कृते ग्रन्थ इत्यनेन गतत्वात्। अन्येन कृता माथुरेण प्रोक्ता माथुरी वृत्तिः। पाणिनीयम्। आपिशलम्। काशकृत्स्नम्॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ॥ १०२ ॥

तित्तिर्यादिभ्यः शब्देभ्यश्छण् प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये। अणोऽपवादः। तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः। वारतन्तवीयाः।

खाण्डिकीयाः । औखीयाः ॥ छन्दसि वायमिष्यते ॥ तित्तिरिणा प्रोक्तः श्लोक इत्यत्र न भवति । शौनकादिभ्यश्छन्दसीत्यत्रास्यानुवृत्तेश्छन्दोधिकारविहितानां च तद्विषयतेष्यते * ॥

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ॥ १०३ ॥

काश्यपकौशिकशब्दाभ्यामृषिवाचिभ्यां णिनिः प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । णकार उत्तरत्र वृद्ध्यर्थः कल्पस्ताभ्यां प्रोक्त इति स्मर्यते । तस्यापि च तद्विषयता भवत्येव । शौनकादिभ्यश्छन्दसीत्यत्रानु वृत्तेश्छन्दोधिकारविहितानां च तत्र तद्विषयतेष्यते । काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते काश्यपिनः † ऋषिभ्यामिति किम् । इदानींतनेन गोत्रकाश्यपेन प्रोक्तं काश्यपीयम् ॥

कलापिवैशंपायनान्तेवासिभ्यश्च ॥ १०४ ॥

कलाप्यन्तेवासिनां वैशंपायनान्तेवासिनां च ये वाचकाः शब्दास्तेभ्यो णिनिः प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । छं तु परत्वाद्बाधते । तत्र कलाप्यन्तेवासिनश्चत्वारः, हरिद्रुः । छगली । तुम्बुरुः । उलपः । इति । वैशंपायनान्तेवासिनो नव । आलम्बि । पलङ्ग । कमल । ऋचाभ । आरुणि । ताण्ड्य । श्यामायन । कठ । कलापी । इति । प्रत्यचकारिणो गृह्यन्ते न तु व्यवहिताः शिष्यशिष्याः । कुतः । कलापिखाडायनग्रहणात् । तथाहि, वैशंपायनान्तेवासी कलापी तदन्तेवासिनो वैशंपायनान्तेवासिन एव भवन्ति किं कलापिग्रहणेन तथा वैशंपायनान्तेवासी कठस्तदन्तेवासी खाडायनस्तस्य किं शौनकादिषु पाठेन । तदेतत्प्रत्यचकारिग्रहणस्य लिङ्गम् । कलाप्यन्तेवासिभ्यस्तावत् । हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः । तौम्बुरविणः । औलपिनः । छागलिनो ढिनुकं वक्ष्यति । वैशंपायनान्तेवासिभ्यः । आलम्बिनः पालङ्गिनः । कामलिनः । आर्चाभिनः । आरुणिनः । ताण्डिनः । श्यामायनिनः । कठाल्लुकं वक्ष्यति । कलापिनश्चाणम् ॥

हरिद्रुरेषां प्रथमस्ततश्छगलितुम्बुरू ।
उलपेन चतुर्थेन कालापकमिहोच्यते ॥
आलम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्गकमलावुभौ ।
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयोऽपरे ॥
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनोः ।

---

* शौनकेत्याद्येष्यतइत्यन्तग्रन्थस्य स्थाने शौनकादिभ्यश्छन्दसीत्यत्रेदमनुवर्तयितव्यमित्याहुरिति पाठो बहुषु पुस्तकेषु ।

† कौशिकिन इत्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु ।

चरक इति वैशंपायनस्याख्या तत्संबन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ १०५ ॥

प्रत्ययार्थविशेषणमेतत् । तृतीयासमर्थात्प्रोक्ते णिनिः प्रत्ययो भवति यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद्ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति । पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना-प्रोक्ताः । ब्राह्मणेषु तावत् । भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः । कल्पे-षु । पैङ्गी कल्पः । आरुणपराजी । पुराणप्रोक्तेष्विति किम् । याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि । आश्मरथः कल्पः । याज्ञवल्कादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्त्ता । तया व्यवहरति सूत्रकारः । तद्विषयता कस्मान्न भवति । प्रतिपदं ब्राह्मणेषु यः प्रत्ययस्तस्य तद्विषयता विधीयते णिनेः । अयं तु याज्ञवल्क्यश-ब्दस्य कण्वादिषु पाठादण् । न वायं योगश्छन्दोधिकारमनुवर्त्तयति, तेन कल्पेष्वपि न भवति । पुराणइति निपातनात्तुडभावः । न वात्यन्तबाधैव, तेन पुरातनमित्यपि भवति ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ १०६ ॥

शौनक इत्येवमादिभ्यो णिनिः प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मि-न्विषये छन्दस्यभिधेये । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः । वाजसनेयिनः । छन्दसीति किम् । शौनकीया शिक्षा । कठशाठ इत्यत्र पठ्यते । तत्संघातार्थं, केवलाद्धि लुकं वक्ष्यति । कठशाठाभ्यां प्रोक्तमधीयते काठशाठिनः । शौनक । वाजसनेय । साङ्गरव । शार्ङ्गरव । सांपेय । शाखेय । खाडायन । स्कन्ध । स्कन्द । देवदत्तशठ । रज्जुकण्ठ । रज्जुभार । कठशाठ । कशाय । तलवकार । पुरुषासक । अश्वपेय । शौनकादिः * ॥

कठचरकाल्लुक् ॥ १०७ ॥

कठचरकशब्दाभ्यां परस्य प्रोक्तप्रत्ययस्य लुग्भवति । कठशब्दाद्वैशंपाय-नान्तेवासिभ्य इति णिनेश्चरकशब्दादण्णः । कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः । चरकाः । छन्दसीत्येव । काठाः । चारकाः † ॥

कलापिनो ऽण् ॥ १०८ ॥

कलापिशब्दादण् प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये । वैशं-पायनान्तेवासित्वाण्णिनेरपवादः । कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः । इन-ण्यनपत्यइति प्रकृतिभावे प्राप्ते, नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापि-

---

* स्कम्भ । अयं पुस्तकान्तरे ऽत्र गणेधिकः ।

† श्लोका इत्यधिकं कुत्र चित् ।

कुथुमि*तैतलिजाजलिजाङ्गलि†लाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ इति टिलोपः । अथाणग्रहणं किम्, यथाप्राप्तमित्येव सिद्धम् । अधिकविधानार्थं, तेन माथुरी वृत्तिः, सैलभानि ब्राह्मणानीत्यादि सिद्धम् ॥

छगलिनो ढिनुक् ॥ १०९ ॥

छगलिन्शब्दाद् ढिनुक् प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये । कलाप्यन्तेवासित्वाणिनेरपवादः । छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः ॥

पाराशर्य्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ॥ ११० ॥

णिनिरिहानुवर्त्तते, न ढिनुक् । पराशर्यशिलालिभ्यां णिनिः प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये । भिक्षुनट सूत्रयोरिति यथासंख्यं प्रत्ययार्थविशेषणं, सूत्रशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते तद्विषयता चात्रेष्यते, तदर्थं छन्दोग्रहणमनुवर्त्यं, गुणकल्पनया च भिक्षुनटसूत्रयोश्छन्दस्त्वम् । पाराशर्येण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः । भिक्षुनटसूत्रयोरिति किम् । पाराशरम् । शैलालम् ॥

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ॥ १११ ॥

भिक्षुनटसूत्रयोरित्येव । कर्मन्दकृशाश्वशब्दाभ्यामिनिः प्रत्ययो भवति । अणोपवादः । तेन प्रोक्तमित्येतस्मिन्विषये यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोरभिधेययोः, अत्रापि तद्विषयतार्थं छन्दोग्रहणमनुवर्त्यम् । कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः । कृशाश्विनो नटाः । भिक्षुनटसूत्रयोरित्येव । कार्मन्दम् । कार्शाश्वम् ।

तेनैकदिक् ॥ ११२ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थादेकदिगित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । एकदिक् तुल्यदिक्, समानदिगित्यर्थः । सुदाम्ना एकदिक् सौदामनी विद्युत् । हैमवती । त्रैककुदी । पैलुमूली । तेनेति । प्रकृते पुनः समर्थविभक्तिग्रहणं छन्दोधिकारनिवृत्त्यर्थम् । पूर्वत्र हि छन्दोधिकारात् तद्विषयता साध्यते ॥

तसिश्च ॥ ११३ ॥

तसिश्च प्रत्ययो भवति तेनैकदिगित्येतस्मिन्विषये । पूर्वेण घादिषु अणादिषु च प्राप्तेष्वयमपरः प्रत्ययो विधीयते स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । सुदामतः । हिमवत्तः । पीलुमूलतः ॥

उरसो यच्च ॥ ११४ ॥

उरःशब्दाद्यत् प्रत्ययो भवति चकारात्तसिश्च, तेनैकदिगित्येतस्मिन्विषये । अणोपवादः । उरसा एकदिग् उरस्यः । उरस्तः ॥

---

* कौथुमीति पा० ।

† जाङ्गलीति बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।

उपज्ञाते ॥ ११५ ॥

तेनेत्येव । तृतीयासमर्थादुपज्ञातइत्येतस्मिन्विषये । यथाविहितं प्रत्ययो भवति । विनोपदेशेन ज्ञातमुपज्ञातं स्वयमभिसंबद्धमित्यर्थः । पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयमकालकं व्याकरणम् । काशकृत्स्नम् । गुरुलाघवम् । आपिशलम् । पुष्करणम् ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ११६ ॥

तेनेत्येव । तृतीयासमर्थात्कृतइत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत्कृतं ग्रन्थश्चेत्स भवति । वररुचिना कृता वाररुचाः श्लोकाः । हैकुपादो ग्रन्थः । भैकुराटो ग्रन्थः । जालूकः । ग्रन्थइति किम् । तक्षकृतः प्रासादः । उत्पादितं कृतं, विद्यमानमेव ज्ञातमुपज्ञातमित्ययमनयोर्विशेषः ॥

संज्ञायाम् ॥ ११७ ॥

तृतीयासमर्थात्कृतइत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति समुदायेन चेत्संज्ञा ज्ञायते । मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम् । कार्मुकम्* । सारघम् । पौत्तिकम् । मधुनः संज्ञा एताः ॥

कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ ११८ ॥

तेन कृते संज्ञायामिति चैतत्सर्वमनुवर्तते । कुलालादिभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति तेन कृतमित्येतस्मिन्नर्थे संज्ञायां गम्यमानायाम् । कौलालकम् । वारुडकम् । कुलाल । वरुड । चण्डाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध्र । सैन्द्रिय । देवराज । परिषत् । वधू । रुरु । ध्रुव । रुद्र । अनडुह् । ब्रह्मन् । कुम्भकार । श्वपाक । कुलालादिः ॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ॥ ११९ ॥

तेन कृते संज्ञायामिति सर्वमनुवर्तते । क्षुद्रादिभ्यो ऽञ् प्रत्ययो भवति तेन कृतइत्येतस्मिन्विषये संज्ञायां गम्यमानायाम् । अणोपवादः । स्वरे विशेषः । क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ॥

तस्येदम् ॥ १२० ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थादिदमित्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवत्य,णादयः पञ्च महोत्सर्गाः । घादयश्च प्रत्यया यथाविहितं विधीयन्ते । प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः षष्ठ्यर्थमात्रं तत्संबन्धिमात्रं च विवक्षितं यदपरं लिङ्गसंख्याप्रत्यक्षपरोक्षादिकं तत्सर्वमविवक्षितम् । उपगोरिदमौपगवम् । कापटवम् । राष्ट्रियम् । अवारपारीणम् । अनन्तरादिष्वनभिधानान्न भवति । देवदत्तस्यान-

---

* कार्मुतमिति पा० २ ।

त्तरमिति ॥ वहस्तुरणिट् च ॥ * ॥ संवोढुः स्वं सांवहित्रम् । सिद्ध एवात्राण् इडर्थमुपसंख्यानम् ॥ अग्नीधः शरणे रण् भं च ॥ * ॥ आग्नीध्रम् ॥ समिधामाधाने षेण्यण् ॥ * ॥ सामिधेन्यो मन्त्रः । सामिधेनी ऋक् ॥

रथाद्यत् ॥ १२१ ॥

रथशब्दाद्यत् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । अणोऽपवादः । रथस्येदं रथ्यं, चक्रं वा युगं वा ॥ रथाङ्ग एवेष्यते नान्यत्र,नभिधानात् ॥ रथसीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्तविधिरुपसंख्यायते ॥ * ॥ परमरथ्यम् । उत्तमरथ्यम् ॥

पत्त्रपूर्वादञ् ॥ १२२ ॥

पतन्ति तेनेति पत्त्रमश्वादिकं वाहनमुच्यते । तत्पूर्वाद्रथशब्दादञ् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । पूर्वस्य यतोऽपवादः । आश्वरथं चक्रम् । औष्ट्ररथम् । गार्दभरथम् * ॥

पत्त्राध्वर्युपरिषदश्च ॥ १२३ ॥

पत्त्रं वाहनं तद्वाचिनः प्रातिपदिकादध्वर्युपरिषच्छब्दाभ्यां चाऽप्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये, ऽणोऽपवादः ॥ पत्त्राद्वाह्ये ॥ * ॥ अश्वस्येदं वहनीयमाश्वम् । औष्ट्रम् । गार्दभम् । आध्वर्यवम् । पारिषदम् ॥

हलसीराट्ठक् ॥ १२४ ॥

हलसीरशब्दाभ्यां ठक् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्यस्मिन्विषये, ऽणोऽपवादः । हलस्येदं, हालिकम् । सैरिकम् ॥

द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयोः ॥ १२५ ॥

द्वन्द्वसंज्ञकाद् वुन् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये, वैरमैथुनिकयोः प्रत्ययार्थविशेषणयोः । अणोऽपवादः । छं तु परत्वाद्बाधते । वैरे तावत् । बाभ्रव्य † शालङ्कायनिका । काकोलूकिका । मैथुनिकायाम् । अत्रिभरद्वाजिका । कुत्सकुशिकिका । विवहनमैथुनिका । वैरस्य नपुंसकत्वेप्यमी स्वभावतः स्त्रीलिङ्गाः ‡ ॥ वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ दैवासुरम् । राक्षोऽसुरं वैरम् ॥

गोत्रचरणाद्वुञ् ॥ १२६ ॥

गोत्रवाचिभ्यश्चरणवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये, ऽणोऽपवादः । छं तु परत्वाद्बाधते । गोत्रात्तावत् ।

---

* गार्दभरथमित्यस्याग्रे 'रासभरथम् । छं परत्वाद्बाधत' इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।
† बाभ्रवेति पा० २ ।
‡ वैरस्येत्यारभ्य स्त्रीलिङ्गा इत्यन्तं क्व चिन्न दृश्यते ।

लौचुकायनकम् औपगवकम् ॥ चरणाद्धर्माम्नाययोरिष्यते ॥ काठकं, कालापकम् । मौदकम् । पैप्पलादकम् ॥

संघाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ १२७ ॥

संघादिषु प्रत्ययार्थविशेषणेष्वञन्ताद् यञन्ताद् इञन्ताच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । पूर्वस्य वुञो ऽपवादः ॥ घोषग्रहणमत्र कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ तेन वैषम्याद्यथासंख्यं न भवति । अञन्तात् । बैदः संघः । बैदोऽङ्कः । बैदं लक्षणं, बैदो घोषः । यञन्तात् । गार्गः संघः । गार्गोऽङ्कः । गार्गं लक्षणम् । गार्गो घोषः । इञन्तात् । दाक्षः संघः । दाक्षोऽङ्कः । दाक्षं लक्षणम् । दाक्षो घोषः । अङ्कलक्षणयोः को विशेषः । लक्षणं लक्ष्यभूतस्यैव चिह्नभूतं स्वं यथा विद्धाबिदानाम्, अङ्कस्तु गवादिस्थोऽपि गवादीनां स्वं न भवति । णित्करणं ङीबर्थं पुंवद्भावप्रतिषेधार्थं च । बैदी विद्या ऽस्य, बैदीविद्यः ॥

शाकलाद्वा ॥ १२८ ॥

शाकलशब्दात्संघादिषु प्रत्ययार्थविशेषणेषु वाणप्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । वुञोपवादः । शाकलेन प्रोक्तमधीयते, शाकलाः । तेषां संघः शाकलः । शाकलकः । शाकलो ऽङ्कः । शाकलकोऽङ्कः । शाकलं लक्षणम् । शाकलकं लक्षणम् । शाकलो घोषः । शाकलको घोषः ॥

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः ॥ १२९ ॥

संघादयो निवृत्ताः, सामान्येन विधानम् । छन्दोगादिभ्यः शब्देभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । वुञणोरपवादः । चरणाद्धर्माम्नाययोः,स्तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि धर्माम्नाययोरेव भवति । छन्दोगानां धर्मो वा ऽऽम्नायो वा छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम् । नाट्यम् । अन्यत्र छान्दोगं कुलमित्यादि ॥

नदण्डमाणवान्तेवासिषु ॥ १३० ॥

दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवाः, अन्तेवासिनः शिष्यास्तेष्वभिधेयेषु वुञ् प्रत्ययो न भवति । गोत्रग्रहणमिहानुवर्त्तते तेन वुञ्प्रतिषेधो विज्ञायते । गौकक्षाः दण्डमाणवा अन्तेवासिनो वा । दाक्षाः । माहकाः ।

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ १३१ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । गोत्रप्रत्ययान्ता एते, ततः पूर्वेण वुञि प्राप्ते छविधानार्थं वचनम् । रैवतिकीयः । स्वापिशीयः । रैवतिक । स्वापिशि । क्षैमवृद्धि । गौरग्रीवि । औदमेयि । औदवाहि । बैजवापि ॥

कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ॥ १३२ ॥

कौपिञ्जलहास्तिपदशब्दाभ्यामण् प्रत्ययो भवति तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । गोत्रवुञोपवादः । गोत्राधिकारात् । कौपिञ्जलः । हास्तिपदः ॥

आथर्वणिकस्येकलोपश्च ॥ १३३ ॥

अणित्येव । आथर्वणिकशब्दादण् प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन चेकलोपः, तस्येदमित्येतस्मिन्विषये । चरणवुञोपवादः । आथर्वणिकस्याय,माथर्वणो धर्म आम्नायो वा । चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥

तस्य विकारः ॥ १३४ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाद्विकार इत्येतस्मिन्विषये यथाविहितं प्रत्ययो भवति । प्रकृतेरवस्थान्तरं विकारः । किमिहोदाहरणम्, अप्राण्याद्युदात्तमवृद्धं यस्य च नान्यत्र प्रतिपदं ग्रहणम् । अश्मनो विकारः, आश्मनः । आश्मः । अश्मनो विकारइति टिलोपः पाक्षिकः । भास्मनः । मार्त्तिकः । नित्स्वरेणाद्युदात्ता एते । तस्यप्रकरणे तस्येति पुनर्वचनं शैषिकनिवृत्त्यर्थम् । विकारावयवयोघादयो न भवन्ति । हालः । सैरः ।

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥ १३५ ॥

प्राण्योषधिवृक्षवाचिभ्यः शब्देभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो ऽवयवे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, चकाराद्विकारे च । तत्र प्राणिभ्यो ऽञं वक्ष्यति । कपोतस्य विकारो ऽवयवो वा, कापोतः । मायूरः । तैत्तिरः । ओषधिभ्यः । मौर्वं काण्डं, मौर्वं भस्म । वृक्षेभ्यः । कारीरं काण्डं, कारीरं भस्म । इत उत्तरे प्रत्ययाः प्राण्योषधिवृक्षेभ्यो विकारावयवयोर्भवन्ति * । अन्येभ्यस्तु विकारमात्रे । कथं द्वयमप्यधिक्रियते तस्य विकारः, अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य, इति । विकारावयवयोर्युगपदधिकारो ऽपवादविधानार्थः । कृतनिर्देशौ हि तौ ॥

बिल्वादिभ्यो ऽण् ॥ १३६ ॥

बिल्व इत्येवमादिभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । यथायोगमञ्मयटोरपवादः । बिल्वस्यावयवो विकारो वा, बैल्वः । गवेधुकाशब्दोऽत्र पठ्यते, ततः कोपधादेव सिद्धे मयड्बाधनार्थं ग्रहणम् । बिल्व । व्रीहि । काण्ड । मुद्ग । मसूर । गोधूम । इक्षु । वेणु । गवेधुका । कर्पासी । पाटली । कर्कन्धू । कुटीर । बिल्वादिः ॥

---

* भवन्तीत्यस्याग्रे 'वृक्षशब्देन वनस्पतयो ऽपि गृह्यन्ते । न्यग्रोधस्य विकारो ऽवयवो वा, नैयग्रोधः । पैप्पलः । औदुम्बरः । ओषधिशब्दाल्लतादयो ऽपि गृह्यन्ते । ताम्बूल्या विकारो ऽवयवो वा, ताम्बूलः । गान्दूचः । एभ्यो विकारावयवयोर्भवन्ति' इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

कोपधाच्च ॥ १३७ ॥

ककारोपधात्प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति यथायोगं विकारावयवयोरर्थयोः। अञोऽपवादः। तर्कु। तार्क्कवम्। तित्तिडीक। तैत्तिडीकम्। माण्डूकम्। दार्दुरूकम्। माधूकम्॥

त्रपुजतुनोः षुक् ॥ १३८ ॥

त्रपुजतुशब्दाभ्यामण् प्रत्ययो भवति विकारे, तत्सन्नियोगेन तयोः षुगागमो भवति। ओरञोऽपवादः। त्रपुणो विकारः, त्रापुषम्। जातुषम्। अप्राण्यादित्वान्नावयवे॥

ओरञ् ॥ १३९ ॥

उवर्णान्तात्प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयो, रणोऽपवादः। अनुदात्तादेरन्यदिहोदाहरणम्। दैवदारवम्। भाद्रदारवम्॥

अनुदात्तादेश्च ॥ १४० ॥

अनुदात्तादेः प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयो,रणोऽपादः। दाधित्थम्। कापित्थम्। माहित्थम्॥

पलाशादिभ्यो वा ॥ १४१ ॥

पलाशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वा ऽञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः। पालाशम्। खादिरम्। यवासम्। उभयत्र विभाषेयम्। पलाशखदिरशिंशपास्यन्दनानामनुदात्तादित्वात्प्राप्ते ऽन्येषामप्राप्ते। पलाश। खदिर। शिंशपा। स्यन्दन। करीर। शिरीष। यवास। विकङ्कत। पलाशादिः॥

शम्याष्ट्लञ् ॥ १४२ ॥

शमीशब्दाट् ट्लञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः। अञोऽपवादः। शामीलं भस्म। शामीली स्रुक्॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ १४३ ॥

प्रकृतिमात्राद्वा मयट् प्रत्ययो भवति भक्ष्याच्छादनवर्जितयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्भाषायां विषये यथायथं प्रत्ययेषु प्राप्तेषु। अश्ममयम्। आश्मनम्। मूर्वामयं, मौर्वम्। भाषायामिति किम्। बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्। अभक्ष्याच्छादनयोरिति किम्। मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्। एतयोरित्यनेन किम्। यावता विकारावयवौ प्रकृतावेव। ये विशेषप्रत्ययाः प्राणिरजतादिभ्योऽञित्येवमादयस्तद्विषयेऽपि यथा स्यात्। कपोतमयम्। कापोतम्। लोहमयम्। लौहमिति॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ १४४ ॥

भाषायामभक्ष्याच्छादनयोरित्येव । वृद्धेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शरादिभ्यश्चाभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति । वृद्धेभ्यस्तावत् । आम्रमयम् । शालमयम् । शाकमयम् । शरादिभ्यः । शरमयम् । दर्भमयम् । मृन्मयम् । नित्यग्रहणं किम् । यावता ऽऽरम्भसामर्थ्यादेव नित्यं भविष्यति । एकाचो नित्यं मयटमिच्छन्ति, तदनेन क्रियते । त्वङ्मयम् । स्रङ्मयम् । वाङ्मयमिति । शर । दर्भ । मृत् । कुटी । तृण । सोम । बल्वज ॥

गोश्च पुरीषे ॥ १४५ ॥

गोशब्दात्पुरीषे ऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति । गोमयम् । पुरीषइति किम् । गव्यं पयः । पुरीषं न विकारो न चावयवस्तस्येदंविषये विधानम् । विकारावयवयोस्तु गोपयसोर्यतं वक्ष्यति ॥

पिष्टाच्च ॥ १४६ ॥

पिष्टशब्दान्नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति तस्य विकार इत्येतस्मिन्विषये, ऽणोपवादः । पिष्टमयं भस्म ॥

संज्ञायां कन् ॥ १४७ ॥

पिष्टशब्दात्कन् प्रत्ययो भवति विकारे संज्ञायां विषये । मयटोपवादः । पिष्टकः ॥

व्रीहेः पुरोडाशे ॥ १४८ ॥

व्रीहिशब्दान्मयट् प्रत्ययो भवति पुरोडाशे विकारे । बिल्वाद्यणोपवादः । व्रीहिमयः पुरोडाशः । व्रैहमन्यत् ॥

असंज्ञायां तिलयवाभ्याम् ॥ १४९ ॥

तिलयवशब्दाभ्यामसंज्ञाविषये मयट् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । तिलमयम् । यवमयम् । असंज्ञायामिति किम् । तैलम् । यावकः । यावादिभ्यः कन् ॥

द्व्यचश्छन्दसि ॥ १५० ॥

द्व्यचः प्रातिपदिकाच् छन्दसि विषये मयट् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । भाषायां मयडुक्तः छन्दस्यप्राप्तो विधीयते । यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति । दर्भमयं वासो भवति । शरमयं बर्हिर्भवति ॥

नोत्त्वद्वर्ध्रबिल्वात् ॥ १५१ ॥

उत्त्वतः प्रातिपदिकाद्वर्ध्रबिल्वशब्दाभ्यां च मयट् प्रत्ययो न भवति ।

द्व्यचश्छन्दसीति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । मौञ्जं शिक्यम् । गार्मुतं चरुम् । वाध्रीं बालप्रग्रथिता भवति । बैल्वो ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यः । तपरकरणं तत्कालार्थम् । धूममयान्यभ्राणि । मतुब्निर्देशस्तदन्तविधिनिरासार्थः । इहैव स्यात् । वैणवी यष्टिरिति ॥

तालादिभ्योऽण् ॥ १५२ ॥

तालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । मयडादीनामपवादः । तालं धनुः । बार्हिणम् । ऐन्द्रालिशम् ॥ ताला-द्धनुषि* ॥ बार्हिण । इन्द्रालिश । इन्द्राद्वृश । इन्द्रायुध । चाप † श्यामाक । पायुक्षा । तालादिः ॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ १५३ ॥

जातरूपं सुवर्णम् । बहुवचननिर्देशात्तद्वाचिनः सर्वे गृह्यन्ते । जातरूप-वाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति परिमाणे विकारे । मयडादीना-मपवादः । हाटको निष्कः । हाटकं कार्षापणम् । जातरूपम् । तापनीयम् । परिमाणइति किम् । यष्टिरियं हाटकमयी ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो रजतादिभ्यश्चाञ् प्रत्ययो भवति विका-रावयवयोरर्थयोः । अणादीनामपवादः । अनुदात्तादेरञ् विहित एव, परिशि-ष्टमिहोदाहरणम् । प्राणिभ्यस्तावत् । कापोतम् । मायूरम् । तैत्तिरम् । रज-तादिभ्यः । राजतम् । सैसम् । लौहम् । रजतादिषु येऽनुदात्तादयः पठ्यन्ते रजतकण्टकारप्रभृतयस्तेभ्योऽञि सिद्धे पुनर्वचनं मयड्बाधनार्थम् । रजत । सीस । लोह । उदुम्बर । नीच ‡ । दारु । रोहितक । बिभीतक । कपीत । दारु । तीव्रदारु । त्रिकण्टक । कण्टकार ॥

ञितश्च तत्प्रत्ययात् ॥ १५५ ॥

अञित्येव । तदिति विकारावयवयोरर्थयोः प्रत्यवमर्शः । ञितो विका-रावयवप्रत्ययस्तदन्तात्प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरेव § । मयटोपवादः । ओरञ् । शम्याष्ट्लञ् । प्राणिरजतादिभ्योऽञ् । उष्ट्राद्वुञ् । एण्या ढञ् । कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ । इत्येते प्रत्यया गृह्यन्ते । देवदारवस्य

---

* तालाद्धनुषीत्यस्याग्रे तालमयमन्यत् । नित्यं वृद्धेति मयट् । इत्यधिकमेक-स्मिन्पुस्तके ।

† चर्मेति पा० २ ।

‡ नीलेति पा० २ ।

§ वकारावयवयोरित्येवेति पा० २ ।

विकारो ऽवयवो वा, दैवदारवम् । दाधित्थस्य, दाधित्थम् । पालाशस्य, पालाशम् । शामीलस्य, शामीलम् । कापोतम् । औष्ट्रकस्य, औष्ट्रकम् । ऐणेयस्य, ऐणेयम् । कांस्यस्य, कांस्यम् । पारशवस्य, पारशवम् । ञित इति किम् । बैल्वमयम् । तत्प्रत्ययादिति किम् । बैदमयम् ॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥ १५६ ॥

प्राग्वतेष्ठञित्यत आरभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्ययाः परिमाणाद्विहितास्ते विकारे ऽतिदिश्यन्ते । परिमाणात् क्रीतइव प्रत्यया भवन्ति तस्य विकार इत्येतस्मिन्विषये । अणादीनामपवादः । संख्या परिमाणग्रहणेन गृह्यते, न रूढिपरिमाणमेव । निष्केण क्रीतं, नैष्किकम् । एवं निष्कस्य विकारो, नैष्किकः । शतेन क्रीतं, शत्यं, शतिकम् । शतस्य विकारः, शत्यः, शतिकः । साहस्रः । वतिः सर्वसादृश्यार्थः । अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायामित्येवमादिकमप्यतिदिश्यते । द्विसहस्रः । द्विसाहस्रः । द्विनिष्कः । द्विनैष्किकः ।

उष्ट्राद्वुञ् ॥ १५७ ॥

उष्ट्रशब्दाद्वुञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । प्राग्यञोपवादः । उष्ट्रस्य विकारो ऽवयवो वा औष्ट्रकः ॥

उमोर्णयोर्वा ॥ १५८ ॥

उमाशब्दादूर्णाशब्दाच्च वा वुञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । औमम् । औमकम् । और्णम् । और्णकम् ॥

एण्या ढञ् ॥ १५९ ॥

एणीशब्दाद् ढञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । प्राग्यञोपवादः । ऐणेयं मांसम् । पुंसस्त्वञेव भवति । एणस्य मांसमैणम् * ॥

गोपयसोर्यत् ॥ १६० ॥

गोपयःशब्दाभ्यां यत् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । गव्यम् । पयस्यम् । सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यदस्त्येव, मयड्विषये तु विधीयते ॥

द्रोश्च ॥ १६१ ॥

द्रुशब्दाद्यत्प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः । ओरञोपवादः । द्रव्यम् ॥

माने वयः ॥ १६२ ॥

द्रुशब्दान्माने विकारविशेषे वयः प्रत्ययो भवति । यतोपवादः । द्रुवयम् ॥

---

* एणस्य मांसमैणमित्यस्याग्रे 'कोशाड्ढञ् वक्तव्यः ॥ * ॥ कौशेयं वासः सूत्रं च' इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

फले लुक् ॥ १६३ ॥

विकारावयवयोरुत्पन्नस्य फले तद्विशेषे विवक्षिते लुग्भवति। आमलक्याः फल,मामलकम्। कुवलम्। बदरम्। फलितस्य वृक्षस्य फलमवयवो भवति विकारश्च। पल्लवितस्यव पल्लवः॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ १६४ ॥

फलइत्येव। प्लक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः फले विकारावयवत्वेन विवक्षिते ऽण् प्रत्ययो भवति। अञोपवादः। विधानसामर्थ्यात्तस्य न लुग्भवति। प्लाक्षम्। नैयग्रोधम्। प्लक्ष। न्यग्रोध। अश्वत्थ। इङ्गुदी। शिग्रु। कर्कन्धु *। बृहती †॥

जम्ब्वा वा ॥ १६५ ॥

फलइत्येव। जम्बूशब्दात्फले ऽभिधेये वा ऽण् प्रत्ययो भवति। अञोपवादः। अत्राणो विधानसामर्थ्याल्लुग्न भवति। अञस्तु भवत्येव। जाम्बवानि फलानि। जम्बूनि वा॥

लुप् च ॥ १६६ ॥

वेत्येव। जम्ब्वाः फलेभिधेये प्रत्ययस्य वा लुब्भवति। युक्तवद्भावे विशेषः। जम्ब्वाः फलं, जम्बूः फलम्। जम्बु फलम्। जाम्बवमिति वा॥ लुप्प्रकरणे फलपाकशुषामुपसंख्यानम्॥ * ॥ व्रीहयः। यवाः। माषाः। मुद्गाः। तिलाः॥ पुष्पमूलेषु बहुलम्॥ * ॥ मल्लिकायाः पुष्पं, मल्लिका। नवमल्लिका ‡ जातिः। विदार्याः मूलं, विदारी। अंशुमती। बृहती। न च भवति पाटलानि पुष्पाणि, शाल्वानि मूलानि। बहुलवचनात्क्व चिदन्यदपि भवति। कदम्बं पुष्पम्। अशोकम्। करवीरम्। बैल्वानि फलानीति॥

हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ १६७ ॥

हरीतकी इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्यः फले प्रत्ययस्य लुब् भवति। लुकि प्राप्ते लुपो विधाने युक्तवद्भावे स्त्रीप्रत्ययश्रवणे च विशेषः। हरीतक्याः फलं हरीतकी। कोशातकी। नखरजनी। अत्र च व्यक्तिर्युक्तवद्भावेनेष्यते, वचनं त्वभिधेयवदेव भवति। हरीतक्याः फलानि, हरीतक्यः। हरीतकी। कोशातकी। नखरजनी §। शष्कण्डी ‖। दाडी। दोडी। दडी। श्वेतपाकी।

---

* खर्कतु। पा० २ द्वितीयपुस्तके कर्कन्तु। पा० ३।
† काच। तुरुक। इत्यधिकं कुत्र चित्।
‡ नवमालिका पा० २।
§ नखररजनी। पा० २।
‖ शाकपण्डी। पा० २।

अर्जुनपाकी । काला । द्राक्षा । ध्वाङ्क्षा । गर्गरिका । कण्टकारिका । शेफालिका * ॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च ॥ १६८ ॥

प्राक्क्रीताच्छेन कंसीयः । उगवादिभ्यो यत् । परशव्यः । कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यां यथासंख्यं यञञौ प्रत्ययौ भवतस्तस्यविकार इत्येतस्मिन्विषये, तत्संनियोगेन च कंसीयपरशव्ययोर्लुग्भवति । कंसीयस्य विकारः, कांस्यः । परशव्यस्य विकारः, पारशवः । प्रातिपदिकाधिकाराद्धातुप्रत्ययस्य न लुग्भवति । परशव्यशब्दादनुदात्तादित्वादेवाञि सिद्धे लुगर्थं वचनम् । ननु च यस्येति लोपे कृते हलस्तद्धितस्येति यलोपो भविष्यति । नैतदस्ति । ईतीति तत्र वर्त्तते ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

प्राग्वहतेष्ठक् ॥ १ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गमिति वक्ष्यति । प्रागेतस्माद्वहतिसंशब्दनाद्यानर्थाननुक्रमिष्यामः, ठक् प्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः । वक्ष्यति । दीव्यति खनति जयति जितमिति । अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः ॥ ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ माशब्द इत्याह माशब्दिकः । नैत्यशब्दिकः । कार्यशब्दिकः । वाक्यादेतत्प्रत्ययविधानम् ॥ आहौप्रभूतादिभ्यः ॥ * ॥ प्रभूतमाह, प्राभूतिकः । पार्याप्तिकः । क्रियाविशेषणात्प्रत्ययः ॥ पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ * ॥ सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः । सौखशायनिकः ॥ गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ * ॥ परदारान् गच्छति पारदारिकः । गौरुतल्पिकः ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ॥ २ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाद् दीव्यति खनति जयति जितमित्येतेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । अक्षैर्दीव्यति,आक्षिकः । शालाकिकः । अभ्र्या खनति, आभ्रिकः । कौद्दालिकः । अक्षैर्जयति, आक्षिकः । अक्षैर्जितमाक्षिकम् । शालाकिकम् । सर्वत्र करणे तृतीया समर्थविभक्तिः । देवदत्तेन जितमिति प्रत्ययो न भवति, अनभिधानात् । अङ्गुल्या खनतीति च । प्रत्ययार्थे संख्याकालयोरेव विवक्षा । क्रियाप्रधानत्वेपि चाख्यातस्य तद्धितः स्वभावात्साधनप्रधानः ॥

---

* शेफालिकेत्यस्याग्रे 'येषां च फलपाकनिमित्तः शोषः ॥ पुष्पमूलेषु बहुलम्' इत्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु ।

संस्कृतम् ॥ ३ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्संस्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। सत उत्कर्षाधानं संस्कारः। दध्ना संस्कृतं, दाधिकम्। शार्ङ्गवेरिकम्। मारिचिकम्। योगविभाग उत्तरार्थः॥

कुलत्थकोपधादण् ॥ ४ ॥

कुलत्थशब्दात्ककारोपधाच्छब्दाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति संस्कृतमित्येतस्मिन्विषये। ठकोऽपवादः। कुलत्थैः संस्कृतं, कौलत्थम्। ककारोपधात्। तैत्तिडीकम् *। दार्दभकम्॥

तरति ॥ ५ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्तरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। तरति प्लवते इत्यर्थः। काण्डप्लवेन तरति, काण्डप्लविकः। औडुपिकः॥

गोपुच्छाट्ठञ् ॥ ६ ॥

गोपुच्छशब्दात् ठञ्प्रत्ययो भवति तरतीत्येतस्मिन्नर्थे। ठकोऽपवादः। स्वरे विशेषः। गौपुच्छिकः॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ७ ॥

नौशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् ठन् प्रत्ययो भवति तरतीत्येतस्मिन्नर्थे। ठकोऽपवादः। नावा तरति, नाविकः। द्व्यचः खल्वपि। घटिकः। प्लविकः। बाहुकः। षकारः सांहितिको नानुबन्धः। बाहुका स्त्री॥

आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।
आवसथात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥

विधिवाक्यापेक्षं च षट्त्वं प्रत्ययास्तु सप्त॥

चरति ॥ ८ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाच्चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। चरतिर्भक्षणे गतौ च वर्त्तते। दध्ना चरति, दाधिकः। हास्तिकः। शाकटिकः॥

आकर्षात्ष्ठल् ॥ ९ ॥

आकर्षशब्दात् ष्ठल् प्रत्ययो भवति चरतीत्येतस्मिन्नर्थे। ठकोऽपवादः। लकारः स्वरार्थः। षकारो ङीषर्थः। आकर्षेण चरति, आकर्षिकः। आकर्षिकी। आकर्ष इति सुवर्णपरीक्षार्थो निकषोपल उच्यते॥

---

* तैत्तिरीकम्। पा० २।

पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ १० ॥

पर्प इत्येवमादिभ्यः ष्ठन् प्रत्ययो भवति चरतीत्येतस्मिन्नर्थे । ठकोऽपवादः । नकारः स्वरार्थः । षकारो ङीषर्थः । पर्पिकः । पर्पिकी । अश्विकः । अश्विकी । पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्याल ॥ पादः पच्च ॥ पदिकः ॥

श्वगणाट्ठञ्च ॥ ११ ॥

श्वगणशब्दाट्ठञ् प्रत्ययो भवति, चकारात् ष्ठन्, चरतीत्येतस्मिन्नर्थे । ठकोऽपवादः । श्वगणेन चरति, श्वागणिकः । श्वागणिकी । ठन् । श्वगणिकः । श्वगणिका । श्वादेरिञीत्यत्र वक्ष्यति, इकारादिग्रहणं च कर्त्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थमिति । तेन ठञि द्वारादिकार्यं न भवति ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ॥ १२ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थेभ्यो वेतनादिभ्यः शब्देभ्यो जीवतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति वैतनिकः कर्मकरः । धनुर्दण्डग्रहणमत्र संघातविगृहीतार्थम् । धानुर्दण्डिकः । धानुष्कः । दाण्डिकः । वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धनुर्दण्ड । जाल । वेस । उपवेस । प्रेषण । उपस्ति । सुख । शय्या । शक्ति । उपनिषत् । उपवेष । स्रक् । पाद । उपस्थान ॥

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ॥ १३ ॥

वस्नक्रयविक्रयशब्दाभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यां ठन् प्रत्ययो भवति जीवतीत्येतस्मिन्विषये । ठकोऽपवादः । वस्नेन जीवति, वस्निकः । क्रयविक्रयग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् । क्रयविक्रयिकः । क्रयिकः । विक्रयिकः ॥

आयुधाच्छ च ॥ १४ ॥

आयुधशब्दाच्छप्रत्ययो भवति, चकाराट्ठश्च जीवतीत्येतस्मिन्विषये । आयुधेन जीवति, आयुधीयः । आयुधिकः ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ १५ ॥

तेनेत्येव । उत्सङ्गादिभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो हरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । हरतिर्देशान्तरप्रापणे वर्त्तते । उत्सङ्गेन हरति, औत्सङ्गिकः । औडुपिकः । उत्सङ्ग । उडुप । उत्पत । पिटक । उत्सङ्गादिः* ॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥ १६ ॥

भस्त्रेत्येवमादिभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो हरतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठन्प्रत्ययो भव-

* उडप । पिटाक । एतौ शब्दावत्र पुस्तकान्तरेऽधिकौ ।

ति । भस्त्रया हरति, भस्त्रिकः । भस्त्रिकी । भरटिकः । भरटिकी । भस्त्रा । भरट । भरण* शीर्षभार । शीर्षेभार । अंसभार । अंसेभार ॥

विभाषा विवधवीवधात् ॥ १७ ॥

हरतीत्येव । विवधवीवधशब्दाभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यां विभाषा ष्ठन् प्रत्ययो भवति । तेन मुक्ते प्रकृतष्ठग्भवति । विवधेन हरति, विवधिकः । विवधिकी । वीवधिकः । वीवधिकी । ठक् खल्वपि । वैवधिकः । वैवधिकी । विवधवीवधशब्दौ समानार्थौ पथि पर्य्याहारे च वर्त्तेते ॥

अण्कुटिलिकायाः ॥ १८ ॥

हरतीत्येव । कुटिलिकाशब्दात्तृतीयासमर्थादण् प्रत्ययो भवति हरतीत्येतस्मिन्नर्थे । कुटिलिकया हरति मृगो व्याधं, कौटिलिको मृगः । कुटिलिकया हरत्यङ्गारान्, कौटिलिकः कर्मारः । कुटिलिका वक्रगतिः कर्माराणामायुधकर्षणी लोहमयी यष्टिरुच्यते ॥

निर्वृत्ते ऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ १९ ॥

तेनेत्येव । अक्षद्यूतादिभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो निर्वृत्तइत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्, आक्षद्यूतिकं वैरम् । जानुप्रहृतिकम् । अक्षद्यूत । जानुप्रहृत । जङ्घाप्रहृत । पादस्वेदन । कण्टकमर्द्दन । गतागत । यातोपयात । अनुगत ॥

त्रेर्मम्नित्यम् ॥ २० ॥

निर्वृत्तइत्येव, ड्वितः क्त्रिरित्ययं त्रिशब्दो गृह्यते । त्र्यन्तान्नित्यं मप् प्रत्ययो भवति तेन निर्वृत्तइत्येतस्मिन्नर्थे । डुपचष्पाके । पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् । डुकृञ् । कृत्रिमम् । नित्यग्रहणं स्वातन्त्र्यनिवृत्त्यर्थम् । तेन त्र्यन्तं नित्यं मप्प्रत्ययान्तमेव भवति । विषयान्तरे न प्रयोक्तव्यमिति ॥ भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः ॥ * ॥ पाकेन निर्वृत्तं, पाकिमम् । त्यागिमम् । सेकिमम् । कुट्टिमम् ॥

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ॥ २१ ॥

निर्वृत्तइत्येव । अपमित्ययाचितशब्दाभ्यां यथासंख्यं कक् कन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो निर्वृत्तइत्येतस्मिन्नर्थे । आपमित्यकम् । याचितकम् ॥

संसृष्टे ॥ २२ ॥

तेनेत्येव । तृतीयासमर्थात्संसृष्टइत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । संसृष्टमेकीभूतमभिन्नमित्यर्थः । दध्ना संसृष्टं, दाधिकम् । मारिचिकम् । शार्ङ्गवेरिकम् । पैप्पलिकम् ॥

---

* भरण । पा० २ ।

चूर्णादिनिः ॥ २३ ॥

चूर्णशब्दादिनिः प्रत्ययो भवति संसृष्टे । ठकोपवादः । चूर्णैः संसृष्टाश्चूर्णिनो ऽपूपाः । चूर्णिनो धानाः ॥

लवणाल्लुक् ॥ २४ ॥

संसृष्टइत्यनेनोत्पन्नस्य ठको लवणशब्दाल्लुग्भवति । लवणः सूपः । लवणं शाकम् । लवणा यवागूः । द्रव्यवाची लवणशब्दोलुकं प्रयोजयति न गुणवाची ॥

मुद्गादण् ॥ २५ ॥

मुद्गशब्दादण् प्रत्ययो भवति संसृष्टइत्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादः । मौद्ग ओदनः । मौद्गी यवागूः ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ २६ ॥

तेनेत्येव । व्यञ्जनवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्य उपसिक्तइत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । दध्ना उपसिक्तं दाधिकम् । सौपिकम् । खारिकम् । व्यञ्जनैरिति किम् । उदकेनोपसिक्त ओदनः ॥

ओजःसहोम्भसा वर्तते ॥ २७ ॥

ओजस् सहस् अम्भस् इत्येतेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो वर्त्ततइत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । ओजसा वर्त्तते, औजसिकः शूरः । साहसिकश्चौरः । आम्भसिको मत्स्यः ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ २८ ॥

तदिति द्वितीया समर्थविभक्तिः । प्रति अनु इत्येवंपूर्वेभ्य ईपलोमकूलशब्देभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो वर्त्ततइत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । ननु च वृतिरकर्मकः, तस्य कथं कर्मणा संबन्धः, क्रियाविशेषणमकर्मकाणामपि कर्म भवति । प्रतीपं वर्त्तते, प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः । आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥

परिमुखं च ॥ २९ ॥

परिमुखशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्वर्त्ततइत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । परिमुखं वर्तते, पारिमुखिकः । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः । पारिपार्श्विकः ॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ३० ॥

तदिति द्वितीयासमर्थात्प्रयच्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत्तद्द्वितीया समर्थं गर्ह्यं चेत्तद्भवति । द्विगुणार्थं द्विगुणं, तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यम् । द्विगुणं प्रयच्छति, द्वैगुणिकः । त्रैगुणिकः ॥ वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ वार्द्धु-

षिकः । प्रकृत्यन्तरं वा वृद्धिपर्यायो वृधुषिशब्दः । गर्ह्यमिति किम् । द्विगुणं प्रयच्छत्यधमर्णः ॥

कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ ॥ ३१ ॥

प्रयच्छति गर्ह्यमित्येव । कुसीदं वृद्धि,स्तदर्थं द्रव्यं कुसीदम् । एकादशार्थाः दश दशैकादशशब्देनोच्यन्ते । कुसीददशैकादशशब्दाभ्यां यथासंख्यं ष्ठन् ष्ठच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः प्रयच्छति गर्ह्यमित्यस्मिन्विषये । ठकोपवादौ । कुसीदं प्रयच्छति, कुसीदिकः । कुसीदिकी । दशैकादशिकः । दशैकादशिकी ॥

उञ्छति ॥ ३२ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादुञ्छतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । बदराण्युञ्छति, बादरिकः । श्यामाकिकः । भूमौ पतितस्यैकैकस्य कणस्योपादानमुञ्छः । कणानुञ्छति, काणिकः * ॥

रक्षति ॥ ३३ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थाद्रक्षतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । समाजं रक्षति, सामाजिकः । सांनिवेशिकः ॥

शब्ददर्दुरं करोति ॥ ३४ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थाभ्यां शब्ददर्दुरशब्दाभ्यां करोतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । शब्दं करोति, शाब्दिको वैयाकरणः । दार्दुरिकः कुम्भकारः ॥

पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति ॥ ३५ ॥

तदित्येव । पक्ष्यादिभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो हन्तीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ॥ स्वरूपस्य पर्यायाणां तद्विशेषाणां च ग्रहणमिष्यते ॥ पक्षिणो हन्ति, पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । तैत्तिरिकः । मत्स्य । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाफरिकः । शाकुलिकः । मृग । मार्गिकः । हारिणिकः । सौकरिकः । सारङ्गिकः ॥

परिपन्थं च तिष्ठति ॥ ३६ ॥

परिपन्थशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थात्तिष्ठतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । परिपन्थं तिष्ठति, पारिपन्थिकश्चोरः । चकारो भिन्नक्रमः प्रत्ययार्थं समुच्चिनोति । परिपन्थं हन्ति, पारिपन्थिकः । समर्थविभक्तिप्रकरणे पुनर्द्वितीयोच्चारणं लौकिकवाक्यप्रदर्शनार्थम् । परिपथशब्दपर्यायः परिपन्थशब्दोऽस्तीति ज्ञापयति,स विषयान्तरेपि प्रयोक्तव्यः ॥

---

* भूमावित्यारभ्य काणिक इत्यन्तं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥ ३७ ॥

माथशब्दोत्तरपदात्प्रातिपदिकात्पदवी अनुपद इत्येताभ्यां च धावतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । दण्डमाथं धावति, दाण्डमाथिकः । शौल्कमाथिकः । पादविकः । आनुपदिकः । माथशब्दः पथिपर्यायः ॥

आक्रन्दाट्ठञ्च ॥ ३८ ॥

आक्रन्दन्त्येतस्मिन्नित्याक्रन्दो देशः । अथ वा ऽऽक्रन्द्यतइत्याक्रन्द, आर्त्तायनमुच्यते । विशेषाभावाद् द्वयोरपि ग्रहणम् । आक्रन्दशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थाद्धावतीत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, चकाराट्ठक्च । स्वरे विशेषः । आक्रन्दं धावति आक्रन्दिकः । आक्रन्दिकी ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ३९ ॥

पदशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मात्पदोत्तरपदशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थाद्गृह्णातीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । पूर्वपदं गृह्णाति, पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः । पदान्तादिति नोक्तं, बहुच्पूर्वान्मा भूदिति ॥

प्रतिकण्ठार्थललामं च ॥ ४० ॥

प्रतिकण्ठार्थललामशब्देभ्यस्तदिति द्वितीयासमर्थेभ्यो गृह्णातीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । प्रतिकण्ठं गृह्णाति, प्रातिकण्ठिकः । आर्थिकः । लालामिकः ॥

धर्मं चरति ॥ ४१ ॥

धर्मशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थाच्चरतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । चरतिरासेवायां नानुष्ठानमात्रे । धर्मं चरति, धार्मिकः ॥ अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आधर्मिकः ॥

प्रतिपथमेति ठंश्च ॥ ४२ ॥

प्रतिपथशब्दाद्द्वितीयासमर्थाद् एतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति, चकाराट्ठक् च । प्रतिपथमेति, प्रतिपथिकः । प्रातिपथिकः ॥

समवायान् समवैति ॥ ४३ ॥

समवायवाचिभ्यः शब्देभ्यस्तदिति द्वितीयासमर्थेभ्यः समवैतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । समवायः समूह उच्यते न संप्रधारणा । समवायानिति बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् । समवैति आगत्य तदेकदेशी भवतीत्यर्थः । समवायान्समवैति, सामवायिकः । सामाजिकः । सामूहिकः । सान्निवेशिकः ॥

परिषदो ण्यः ॥ ४४ ॥

* परिषदो ण्यः प्रत्ययो भवति समवायान्समवैतीत्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादः । परिषदं समवैति, पारिषद्यः ॥

सेनाया वा ॥ ४५ ॥

सेनाशब्दाद् वा ण्यः प्रत्ययो भवति समवायान्समवैतीत्येतस्मिन्नर्थे । ठकोपवादः । पक्षे सोऽपि भवति । सेनां समवैति, सैन्यः । सैनिकः ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥ ४६ ॥

ललाटकुक्कुटीशब्दाभ्यां तदिति द्वितीयासमर्थाभ्यां पश्यतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये । संज्ञाग्रहणमभिधेयनियमार्थं, न तु रूढ्यर्थम् । ललाटं पश्यति, लालाटिकः सेवकः । कौक्कुटिको भिक्षुः । सर्वावयवेभ्यो ललाटं दूरे दृश्यते, तदनेन ललाटदर्शनेन सेवकस्य स्वामिनं प्रत्यनुपश्लेषः कार्येष्वनुपस्थायित्वं लक्ष्यते । लालाटिकः सेवकः । स्वामिनः कार्येषु नोपतिष्ठतइत्यर्थः । कुक्कुटीशब्देनापि कुक्कुटीपातो लक्ष्यते । देशस्याल्पतया हि भिक्षुरविक्षिप्तदृष्टिः पादविक्षेपदेशे चक्षुः संयम्य गच्छति स उच्यते कौक्कुटिक इति † ॥

तस्य धर्म्यम् ॥ ४७ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाद् धर्म्यमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । धर्म्यं न्याय्यम् । आचारयुक्तमित्यर्थः । शुल्कशालाया धर्म्यं शौल्कशालिकम् । आकरिकम् । आपणिकम् । गौल्मिकम् ॥

अण् महिष्यादिभ्यः ॥ ४८ ॥

महिषीत्येवमादिभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति तस्य धर्म्यमित्येतस्मिन् विषये । ठकोपवादः । महिष्या धर्म्यं, माहिषम् । प्राजावतम् । महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । अनुलेपिका । पुरोहित । मणिपाली । अनुचारक । होतृ । यजमान ॥

ऋतो ऽञ् ४९ ॥

ऋकारान्तात्प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति तस्य धर्म्यमित्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादः । पोतुर्धर्म्यं पौत्रम् । औद्गात्रम् ॥ नराच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥

---

* परिषदो ण्य इत्यस्याग्रे परिषीदन्त्यस्मिन्नित्यधिकरणे क्विप् । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

† कौक्कुटिक इतीत्यस्याग्रे तदयमभिधेयनियमः संज्ञाग्रहणेन क्रियते, कुक्कुटी दाम्भिकचेष्टा ।

नरस्य धर्म्या, नारी । विशसितुरिड्लोपश्च ॥ * ॥ विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ विभाजयितुर्णिलोपश्च ॥ * ॥ विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥

अवक्रयः ॥ ५० ॥

तस्येत्येव । षष्ठीसमर्थादवक्रय इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अवक्रीणीते ऽनेनेत्यवक्रयः पिण्डक उच्यते । शुल्कशालाया अवक्रयः, शौल्कशालिकः । आकरिकः * । आपणिकः । गौल्मिकः । नन्ववक्रयोपि धर्म्यमेव । नैतदस्ति । लोकपीडया धर्मातिक्रमेणाप्यवक्रयो भवति ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ५१ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं पण्यं चेत्तद्भवति । अपूपाः पण्यमस्य, आपूपिकः । शाष्कुलिकः । मौदकिकः । पण्यमिति विशेषणं तद्धितवृत्तावन्तर्भूतमतः पण्यशब्दो न प्रयुज्यते ॥

लवणाट्ठञ् ॥ ५२ ॥

लवणशब्दाट्ठञ् प्रत्ययो भवति तदस्य पण्यमित्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादः । स्वरे विशेषः । लवणं पण्यमस्य, लावणिकः ॥

किशरादिभ्य ष्ठन् ॥ ५३ ॥

किशर इत्येवमादिभ्यः ष्ठन् प्रत्ययो भवति तदस्य पण्यमित्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादः । किशरादयो गन्धविशेषवचनाः । किशराः पण्यमस्य, किशरिकः । किशरिकी । नरदिकः । नरदिकी । किशर । नरद । नलद । सुमङ्गल । तगर । गुग्गुलु । उशीर । हरिद्रा । हरिद्रायणी ॥

शलालुनो ऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

शलालुशब्दादन्यतरस्यां ष्ठन् प्रत्ययो भवति तदस्य पण्यमित्येतद्विषये । ठकोपवादः । पक्षे सोपि भवति । शलालुशब्दो गन्धविशेषवचनः । शलालु पण्यमस्य, शलालुकः । शलालुकी । शालालुकः । शालालुकी ॥

शिल्पम् ॥ ५५ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं शिल्पं चेत्तद्भवति । शिल्पं कौशलम् । मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य, मार्दङ्गिकः । पाणविकः । वैणिकः । मृदङ्गवादने वर्तमानो मृदङ्गशब्दः प्रत्ययमुत्पादयति । शिल्पं तद्धितवृत्तावन्तर्भवति ॥

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

---

* आन्तरगारिक इति पा० २ ।

मड्डुकझर्झरशब्दाभ्यामन्यतरस्यामण् प्रत्ययो भवति तदस्य शिल्पमित्येतस्मिन्विषये। ठकोपवादः। पक्षे सोपि भवति। मड्डुकवादनं शिल्पमस्य, माड्डुकः। माड्डुकिकः। झार्झरः। झार्झरिकः॥

प्रहरणम् ॥ ५७ ॥

तदस्येत्येव। तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत्तद्भवति। असिः प्रहरणमस्य, आसिकः। प्रासिकः। चाक्रिकः। धानुष्कः॥

परश्वधाट्ठञ् च ॥ ५८ ॥

परश्वधशब्दात् ठञ् प्रत्ययो भवति, चकारात् ठक्। स्वरे विशेषः। परश्वधः प्रहरणमस्य, पारश्वधिकः॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ५९ ॥

शक्तियष्टिशब्दाभ्यामीकक् प्रत्ययो भवति तदस्य प्रहरणमित्येतस्मिन्विषये। ठकोपवादः। शक्तिः प्रहरणमस्य, शाक्तीकः। याष्टीकः॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ६० ॥

तदस्येत्येव। तदिति प्रथमासमर्थेभ्यो ऽस्ति नास्ति दिष्ट इत्येतेभ्यः शब्देभ्यो ऽस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं मतिश्चेत्तद्भवति। अस्ति मतिरस्य, आस्तिकः। नास्ति मतिरस्य, नास्तिकः। दैष्टिकः। न च मतिसत्तामात्रे प्रत्यय इष्यते, किं तर्हि परलोकोस्तीति यस्य मतिरस्ति स आस्तिकः। तद्विपरीतो नास्तिकः। प्रमाणानुपातिनी यस्य मतिः स दैष्टिकः। तदेतदभिधानशक्तिस्वभावाल्लभ्यते। अस्तिनास्तिशब्दौ निपातौ, वचनसामर्थ्याद्वा आख्याताद्वाक्याच्च प्रत्ययः॥

शीलम् ॥ ६१ ॥

तदस्येत्येव। तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं शीलं चेद्भवति। शीलं स्वभावः। अपूपभक्षणं शीलमस्य, आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः। भक्षणक्रिया तद्विशेषणं च शीलं तद्धितवृत्तावन्तर्भवति॥

छत्रादिभ्यो णः ॥ ६२ ॥

छत्र इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो णः प्रत्ययो भवति तदस्य शीलमित्येतस्मिन्विषये। ठकोपवादः। छत्रं शीलमस्य, छात्रः। छादनादावरणाच्छत्रम्। गुरुकार्येष्ववहितस्तच्छिद्रावरणप्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्रः। स्थाशब्दो ऽत्र पठ्यते स उपसर्गपूर्वोत्र गृह्यते। आस्था संस्था अव स्थेति। छत्र।

बुभुक्षा । शिक्षा । पुरोह । स्था । चुरा । उपस्थान । ऋषि । कर्मन् । विश्वधा । तपस् । सत्य । अनृत । शिबिका ॥

कर्माध्ययने वृत्तम् ॥ ६३ ॥

तदस्येत्येव । तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं कर्म चेद्वृत्तमध्ययनविषयं भवति । एकमन्यदध्ययने कर्म वृत्तमस्य, ऐकान्यिकः । द्वैयन्यिकः । त्रैयन्यिकः । एकमन्यदिति विगृह्य तद्धितार्थे इति समासः । ततश्च ठक् प्रत्ययः । अध्ययने कर्म वृत्तमित्येतत्सर्वं तद्धितवृत्तावन्तर्भवति । यस्याध्ययने नियुक्तस्य परीक्षाकाले पठतः स्खलितमपपाठरूपमेकं जातं स उच्यते ऐकान्यिक इति । एवं द्वैयन्यिकः । त्रैयन्यिक इति ॥

बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ॥ ६४ ॥

बह्वच् पूर्वपदं यस्य तस्माद्बह्वच्पूर्वपदात्प्रातिपदिकाट्ठच् प्रत्ययो भवति तदस्य कर्माध्ययने वृत्तमित्येतस्मिन्नर्थे । ठकोपवादः । द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य, द्वादशान्यिकः । त्रयोदशान्यिकः । चतुर्दशान्यिक इति । चतुर्दशापपाठा अस्य जाता इत्यर्थः । उदात्ते कर्त्तव्ये यो ऽनुदात्तं करोति स उच्यते ऽन्यत्त्वं करोतीति ॥

हितं भक्षाः ॥ ६५ ॥

तदस्येत्येव । तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं हितं चेत्तद्भवति तच्च भक्षाः । ननु च हितयोगे चतुर्थ्या भवितव्यं तत्र कथं षष्ठ्यर्थे प्रत्ययो विधीयते । एवं तर्हि सामर्थ्याद्विभक्तिपरिणामो भविष्यति । अपूपभक्षणं हितमस्मै, आपूपिकः । शाष्कुलिकः । मौदकिकः । हितार्थक्रिया च तद्धितवृत्तावन्तर्भवति ॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ६६ ॥

तदिति प्रथमासमर्थाद् अस्मादिति चतुर्थ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं तच्चेद्दीयते नियुक्तम् । नियोगेनाव्यभिचारेण दीयतइत्यर्थः । अव्यभिचारो नियोगः । अग्रे भोजनमस्मै नियुक्तं दीयते, आग्रभोजनिकः । आपूपिकः । शाष्कुलिकः । के चित्तु नियुक्तं नित्यमाहुः । अपूपा नित्यमस्मै दीयन्ते, आपूपिकः ॥

श्राणामांसौदनाट्टिठन् ॥ ६७ ॥

श्राणामांसौदनशब्दाभ्यां टिठन् प्रत्ययो भवति तदस्मै दीयते नियुक्तमित्येतस्मिन्नर्थे । ठकोपवादः । इकार उच्चारणार्थः । टकारो ङीबर्थः । श्राणा नियुक्तमस्मै दीयते, श्राणिकः । श्राणिकी । मांसौदनिकः । मांसौदनिकी । ननु च

ठञेव कस्मान्नोच्यते नह्यत्र ठञष्ठिठनो वा विशेषोस्ति। मांसौदनग्रहणं संघातविगृहीतार्थं केचिदिच्छन्ति। तत्र वृद्धभावो विशेषः। ओदनिकः। ओदनिकी॥

भक्तादणन्यतरस्याम्॥ ६८॥

भक्तशब्दादण् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्यां तदस्मै दीयते नियुक्तमित्येतस्मिन्विषये। ठकोपवादः। पक्षे सोपि भवति। भक्तमस्मै दीयते नियुक्तं, भाक्तः। भाक्तिकः॥

तत्र नियुक्तः॥ ६९॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थान्नियुक्त इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। नियुक्तो ऽधिकृतो व्यापारित इत्यर्थः। शुल्कशालायां नियुक्तः, शौल्कशालिकः। आकरिकः*। आपणिकः। गौल्मिकः। दौवारिकः॥

अगारान्ताट्ठन्॥ ७०॥

अगारशब्दान्तात्प्रातिपदिकाट्ठन् प्रत्ययो भवति तत्र नियुक्त इत्येतस्मिन्विषये। ठकोपवादः। देवागारे नियुक्तो, देवागारिकः। कोष्ठागारिकः। भाण्डागारिकः॥

अध्यायिन्यदेशकालात्॥ ७१॥

तत्रेत्येव। सप्तमीसमर्थाददेशवाचिनः प्रातिपदिकादकालवाचिनश्चाध्यायिन्यभिधेये ठक् प्रत्ययो भवति। अध्ययनस्य यौ देशकालौ। शास्त्रेण प्रतिषिद्धौ तावदेशकालशब्देनोच्येते तत इदं प्रत्ययविधानम्। श्मशाने ऽधीते, श्माशानिकः। चातुष्पथिकः। अकालात्। चतुर्दश्यामधीते, चातुर्दशिकः। आमावास्यिकः अदेशकालादिति किम्। स्रुघ्ने ऽधीते। पूर्वाह्णे ऽधीते॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति॥ ७२॥

तत्रेत्येव। कठिनशब्दान्तात्सप्तमीसमर्थात् प्रस्तारसंस्थानशब्दाभ्यां च ठक् प्रत्ययो भवति व्यवहरतीत्येतस्मिन्नर्थे। व्यवहारः क्रियातत्त्वम्। यथा लौकिकव्यवहार इति। वंशकठिने व्यवहरति, वांशकठिनिकः। वार्ध्रकठिनिकः, प्रास्तारिकः। सांस्थानिकः॥

निकटे वसति॥ ७३॥

निकटशब्दात्सप्तमीसमर्थाद्वसतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। यस्य शास्त्रतो निकटवासस्तत्रायं विधिः। आरण्यकेन भिक्षुणा ग्रामात्क्रोशे वस्तव्यमिति शास्त्रम्। निकटे वसति, नैकटिको भिक्षुः॥

* आन्तरिक इति पा० २।

आवसथात् ष्ठल् ॥ ७४ ॥

तत्रेत्येव । आवसथशब्दात्सप्तमीसमर्थाद् वसतीत्येतस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति । लकारः स्वरार्थः । षकारो ङीषर्थः । आवसथे वसति, आवसथिकः । आवसथिकी । ठकः पूर्वो ऽवधिरतः परमन्यः प्रत्ययो विधीयते ॥

प्राग्घिताद्यत् ॥ ७५ ॥

तस्मै हितमिति वक्ष्यति । प्रागेतस्माद्धितसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो यत्प्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः । वक्ष्यति । तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् । रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ ७६ ॥

तदिति द्वितीया समर्थेभ्यो रथयुगप्रासङ्गेभ्यो वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । रथं वहति, रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः । रथसीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्तविध्युपसंख्यानात् परमरथ्य इत्यपि भवति ॥

धुरो यड्ढकौ ॥ ७७ ॥

तद्वहतीत्येव । धुर् इत्येतस्माद् द्वितीयासमर्थाद्वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् ढक् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । धुरं वहति, धुर्यः । धौरेयः ॥

खः सर्वधुरात् ॥ ७८ ॥

तद्वहतीत्येव । सर्वधुराशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्वहतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति । सर्वधुरां वहति, सर्वधुरीणः । स्त्रीलिङ्गे न्याय्ये सर्वधुरादिति प्रातिपदिकमात्रापेक्षो निर्देशः । ख इति योगविभागः कर्त्तव्य इष्टसंग्रहार्थः । उत्तरधुरीणः । दक्षिणधुरीणः ॥

एकधुराल्लुक् च ॥ ७९ ॥

तद्वहतीत्येव । एकधुराशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्वहतीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति तस्य लुग्भवति । वचनसामर्थ्यात्पक्षे लुग्विधीयते । एकधुरां वहति, एकधुरीणः । एकधुरः ॥

शकटादण् ॥ ८० ॥

तद्वहतीत्येव । शकटशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्वहतीत्येतस्मिन्नर्थे ऽण् प्रत्ययो भवति । शकटं वहति, शाकटो गौः ।

हलसीराट्ठक् ॥ ८१ ॥

तद्वहतीत्येव । हलसीरशब्दाभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां वहतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । हलं वहति, हालिकः । सैरिकः ॥

संज्ञायां जन्याः ॥ ८२ ॥

तद्वहतीत्येव। जनीशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्वहतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते। जनीं वहति, जन्या जामातुर्वयस्या। सा हि विहारादिषु जामातृसमीपं प्रापयति। जनी वधूरुच्यते।

विध्यत्यधनुषा ॥ ८३ ॥

तदिति द्वितायासमर्थाद् विध्यतीत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति न चेद्धनुष्करणं भवति। पादौ विध्यन्ति, पद्याः शर्कराः। ऊरव्याः कण्टकाः। अधनुषेति किम्। पादौ विध्यति धनुषा। नन्वसमर्थत्वादनभिधानाच्च प्रत्ययो न भवति। नहि धनुषा पद्य इत्युक्ते विवक्षितोर्थः प्रतीयते। एवं तर्हि धनुःप्रतिषेधेन व्यधनक्रिया विशेष्यते यस्यां धनुष्करणं न संभाव्यते इति। तेनेह न भवति चौरं विध्यति शत्रुं विध्यति देवदत्त इति॥

धनगणं लब्धा ॥ ८४ ॥

तदित्येव। धनगणशब्दाभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां लब्धेत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति। धन्यः। गण्यः। लब्धेति तृन्नतं, तेन द्वितीया समर्था विभक्तिर्युज्यते॥

अन्नाण्णः ॥ ८५ ॥

अन्नशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थाल्लब्धेत्येतस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति। अन्नं लब्धा, आन्नः॥

वशं गतः ॥ ८६ ॥

वशशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थाद्गत इत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति। वशं गतः, वश्यः। कामप्राप्तो विधेय इत्यर्थः॥

पदमस्मिन् दृश्यम् ॥ ८७ ॥

निर्देशादेव प्रथमा समर्थविभक्तिः। पदशब्दात्प्रथमासमर्थाद् दृश्यार्थोपाधिकादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति। पदं दृश्यमस्मिन्, पद्यः कर्दमः। पद्याः पांसवः। शक्यार्थे कृत्यः। शक्यते यस्मिन् पदं द्रष्टुं प्रतिमुद्रोत्पादनेन स पद्यः कर्दमः। कर्दमस्यावस्थोच्यते नातिद्रवो नातिशुष्क इति॥

मूलमस्याबर्हि ॥ ८८ ॥

मूलशब्दात्प्रथमासमर्थादाबर्हीत्येवमुपाधिकादस्येति षष्ठ्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति। मूलमेषामाबर्हि मूल्या माषाः। मूल्या मुद्गाः। बृह उद्यमे, येषां मूलमाबृह्यते उत्पाट्यते ते मूल्याः, सुष्ठु निष्पन्नाः। मूलोत्पाटनेन विना ग्रहीतुं न शक्यन्ते इत्यर्थः॥

संज्ञायां धेनुष्या ॥ ८९ ॥

धेनुष्येति निपात्यते संज्ञायां विषये । संज्ञाग्रहणमभिधेयनियमार्थम् । धेनोः षुगागमो यश्च प्रत्ययः । अन्तोदात्तोपि ह्ययमिष्यते । या धेनुरुत्तमर्णाय ऋणप्रदानाद्दोहनार्थं दीयते सा धेनुष्या । पीतदुग्धेति यस्याः प्रसिद्धिः । धेनुष्यां भवते ददामि ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ९० ॥

निर्देशादेव तृतीया समर्थविभक्तिः । गृहपतिशब्दात्तृतीयासमर्थात्संयुक्तइत्येतस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति । गृहपतिना संयुक्तः, गार्हपत्योग्निः । अन्यस्यापि गृहपतिना संयोगो ऽस्ति तत्र संज्ञाधिकारादतिप्रसङ्गनिवृत्तिः ॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु ॥ ९१ ॥

नावादिभ्यो ऽष्टभ्यः शब्देभ्यो ऽष्टस्वेव तार्यादिष्वर्थेषु यथासंख्यं यत्प्रत्ययो भवति । प्रत्ययार्थद्वारेण तृतीया समर्थविभक्तिर्लभ्यते । नावा तार्यं, नाव्यमुदकम् । नाव्या नदी । शक्यार्थे कृत्यः । वयसा तुल्यो, वयस्यः सखा । संज्ञाधिकारो ऽभिधेयनियमार्थः । तेन वयसा तुल्ये शत्रौ न भवति । धर्मेण प्राप्यं, धर्म्यम् । ननु च धर्मादनपेतइति वक्ष्यमाणेनैव सिद्धम् । नैतदस्ति । धर्मं यदनुवर्त्तते तद्धर्मादनपेतमित्युच्यते । फलं तु धर्मादपेत्येव कार्यविरोधित्वाद्धर्मस्य । विषेण वध्यो, विष्यः । विषेण वधमर्हतीत्यर्थः । मूलेनानाम्यं, मूल्यम् । आनाम्यमभिभवनीयम् । पटादीनामुत्पत्तिकारणं मूलं तेन तदभिभूयते शेषी क्रियते । मूल्यं हि सगुणं मूलं करोति । पोरदुपधादिति यति प्राप्ते आनाम्यमिति निपातनाद् ण्यत् । मूलेन । समो, मूल्यः पटः । उपादानेन समानफल इत्यर्थः । सीतया समितं, सीत्यं क्षेत्रम् । समितं संगतमित्यर्थः ॥ रथसीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्तविधिरपीष्यते ॥ परमसीत्यम् । उत्तमसीत्यम् । द्विसीत्यम् । त्रिसीत्यम् । तुलया संमितं, तुल्यम् । संमितं समानं सदृशमित्यर्थः । यथा तुला परिच्छिनत्ति परमेवं तदपीति ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ९२ ॥

निर्देशादेव पञ्चमी समर्थविभक्तिः । धर्मादिभ्यः पञ्चमीसमर्थेभ्यो ऽनपेतइत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । धर्मादनपेतं, धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् । संज्ञाधिकारादभिधेयनियमः ॥

छन्दसो निर्मिते ॥ ९३ ॥

प्रत्ययार्थसामर्थ्यलभ्या समर्थविभक्तिः । छन्दःशब्दात्तृतीयासमर्थान्नि-

मितइत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति। निर्मित उत्पादितः। छन्दसा निर्मित,-श्छन्दस्यः। छन्दसा कृत इत्यर्थः। इच्छापर्यायश्छन्दःशब्द इह गृह्यते॥

उरसो ऽण् च ॥ ९४ ॥

उरःशब्दात्तृतीयासमर्थान्निर्मित इत्येतस्मिन्नर्थे ऽण् प्रत्ययो भवति चकाराद्यच्च। उरसा निर्मित, औरसः पुत्रः। उरस्यः पुत्रः। संज्ञाधिकारादभिधेयनियमः॥

हृदयस्य प्रियः ॥ ९५ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः। हृदयशब्दात्षष्ठीसमर्थात् प्रिय इत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति। हृदयस्य प्रियो, हृद्यो देशः। हृद्यं वनम्। संज्ञाधिकारादभिधेयनियमः। इह न भवति हृदयस्य प्रियः पुत्र इति॥

बन्धने चर्षौ ॥ ९६ ॥

हृदयस्येत्येव। बन्धनइति प्रत्ययार्थः। तद्विशेषणमृषिग्रहणम्। बध्यते येन तद्बन्धनम्। हृदयशब्दात्षष्ठीसमर्थाद्बन्धने ऋषावभिधेये यत् प्रत्ययो भवति। ऋषिर्वेदो गृह्यते। हृदयस्य बन्धनमृषिः, हृद्यः। परहृदयं येन बध्यते वशीक्रियते स वशीकरणमन्त्रो हृद्य इत्युच्यते॥

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु ॥ ९७ ॥

मतादिभ्यस्त्रिभ्यः शब्देभ्यस्त्रिष्वेव करणादिष्वर्थेषु यथासंख्यं यत्प्रत्ययो भवति। प्रत्ययार्थसामर्थ्याल्लब्धा षष्ठी समर्थविभक्तिः। मतं ज्ञानं तस्य करणं, मत्यम्। भावसाधनं वा। जनस्य जल्पो, जन्यः। हलस्य कर्षो, हल्यः। द्विहल्यः। त्रिहल्यः। कर्षणं कर्षः। भावसाधनं वा॥

तत्र साधुः ॥ ९८ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थात्साधुरित्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति। सामसु साधुः, सामन्यः। वेमन्यः। कर्मण्यः। शरण्यः। साधुरिह प्रवीणो योग्यो वा गृह्यते नोपकारकः। तत्र हि परत्वात्तस्मै हितमित्यनेन विधिना भवितव्यम्॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ ९९ ॥

प्रतिजनादिभ्यः शब्देभ्यः खञ् प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्नर्थे। यतोऽपवादः। प्रतिजने साधुः, प्रातिजनीनः। जनेजने साधुरित्यर्थः। ऐदंयुगीनः। सांयुगीनः। प्रतिजन। इदंयुग। संयुग। समयुग। परयुग। परकुल। परस्यकुल। अमुष्यकुल। सर्वजन। विश्वजन। पञ्चजन। महाजन। यत्र हितार्थ एव साध्वर्थस्तत्र वचनात्प्राक्क्रीतीया बाध्यन्ते॥

भक्ताण्णः ॥ १०० ॥

भक्तशब्दाद् णः प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये। यतोपवादः। भक्ते साधुः, भाक्तः शालिः। भाक्तास्तण्डुलाः॥

परिषदो ण्यः ॥ १०१ ॥

परिषद्शब्दाद् ण्यः प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये। यतोपवादः। परिषदि साधुः, पारिषद्यः॥ णप्रत्ययोप्यत्रेष्यते॥ तदर्थं योगविभागः क्रियते। परिषदो णो भवति। परिषदि साधुः, पारिषदः॥

कथादिभ्यष्ठक् ॥ १०२ ॥

कथादिभ्यः शब्देभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये। यतोपवादः। कथायां साधुः, काथिकः। वैकथिकः। कथा। विकथा। वितण्डा। कुष्टचित्। जनवाद। जनेवाद। वृत्ति। सङ्गृह। गुण। गण। आयुर्वेद। कथादिः॥

गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ १०३ ॥

गुडादिभ्यः शब्देभ्यष्ठञ् प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये। यतोपवादः। गुडे साधुः, गौडिक इक्षुः। कौल्माषिको मुद्गः। साक्तुको यवः। गुड। कुल्माष। सक्तु। अपूप। मांसौदन। इक्षु। वेणु। संग्राम। संघात। प्रवास। निवास। उपवास॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ॥ १०४ ॥

पथ्यादिभ्यः शब्देभ्यो ढञ् प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये। यतोपवादः। पथि साधु, पाथेयम्। आतिथेयम्। वासतेयम्। स्वापतेयम्॥

सभाया यः ॥ १०५ ॥

सभाशब्दाद्यः प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये यतोपवादः। स्वरे विशेषः। सभायां साधुः, सभ्यः॥

ढश्छन्दसि ॥ १०६ ॥

सभाशब्दाड्ढः प्रत्ययो भवति तत्र साधुरित्येतस्मिन्विषये छन्दसि। यस्यापवादः। सभेयोस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम्॥

समानतीर्थे वासी ॥ १०७ ॥

साधुरिति निवृत्तम्। वासीति प्रत्ययार्थः। समानतीर्थशब्दात्तत्रेति सप्तमीसमर्थाद्वासीत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति। समाने तीर्थे वासीति, सतीर्थ्यः। समानोपाध्याय इत्यर्थः *॥

* 'तीर्थशब्देनेह गुरुरुच्यते। समानस्य सभावस्तीर्थे य इति'। इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥ १०८ ॥

समानोदरशब्दात्सप्तमीसमर्थाच्छयित इत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति ओकारश्चोदात्तः । शयितः स्थित इत्यर्थः । समानोदरे शयितः, समानोदर्यो भ्राता ॥

सोदराद्यः ॥ १०९ ॥

सोदरशब्दात्सप्तमीसमर्थात् शयित इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । विभाषोदरइति सूत्रेण यकारादौ प्रत्यये विवक्षिते प्रागेव समानस्य सभावः । समानोदरे शयितः, सोदर्यो भ्राता । ओचोदात्त इति नानुवर्त्तते । यकारे स्वरः ॥

भवे छन्दसि ॥ ११० ॥

तत्रेत्येव । सप्तमीसमर्थाद्भव इत्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये यत्प्रत्ययो भवति । अणादीनां घादीनां चापवादः । सतिदर्शने ते ऽपि भवन्ति, सर्वविधीनां छन्दसि व्यभिचारात् । मेघ्याय च विद्युत्याय च नमः । आपादपरिसमाप्तेश्छन्दोधिकारो, भवाधिकारश्च समुद्राभ्राद्घ इति यावत् ॥

पाथोनदीभ्यां ड्यण् ॥ १११ ॥

पाथशब्दान्नदीशब्दाच्च ड्यण् प्रत्ययो भवति । तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे । यतोपवादः । पार्थसि भवः, पाथ्यो वृषा । नाद्यो गिरो मे प्रयच्छति । पाथो ऽन्तरिक्षम् ॥

वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ॥ ११२ ॥

वेशन्तशब्दाद्धिमवच्छब्दाच्चाण् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । यतोपवादः । वैशन्तीभ्यः स्वाहा । हैमवतीभ्यः स्वाहा ॥

स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ ॥ ११३ ॥

स्रोतश्शब्दाद्विभाषा ड्यत् ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतस्तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । यतोपवादः । पक्षे सोपि भवति । स्रोतसिभवः, स्रोत्यः । स्रोतस्यः । ड्यड्ड्ययोः स्वरे विशेषः ॥

सगर्भसयूथसनुताद्यन् ॥ ११४ ॥

सगर्भसयूथसनुतशब्देभ्यो यन् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । यतोपवादः । स्वरे विशेषः । अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्यः । सर्वत्र समानस्य छन्दसीति सभावः ॥

तुग्राद् घन् ॥ ११५ ॥

तुग्रशब्दाद्घन् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । यतोपवादः । त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम् । अन्तरिक्षयज्ञवरिष्ठेषु तुग्रशब्दः ॥

अग्राद्यत् ॥ ११६ ॥

अग्रशब्दाद्यत् प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अग्रे भवमग्र्यम् । किमर्थमिदं यावता सामान्येन यद्विहित एव । घच्छौ चेति वक्ष्यति ताभ्यां बाधा मा भूदिति पुनर्विधीयते ॥

घच्छौ च ॥ ११७ ॥

अग्रशब्दाद्यत् घच्छौ प्रत्ययौ भवतस्तत्र भव इत्येतस्मिन्विषये । अग्र्यम् । अग्रियम् । अग्रीयम् । चकारस्तु यद्वनित्यस्यानुकर्षणार्थः । अग्रियम् । स्वरे विशेषः ॥

समुद्राभ्राद् घः ॥ ११८ ॥

समुद्रशब्दादभ्रशब्दाच्च घः प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे । यतोपवादः । समुद्रियाणां नदीनाम् । अभ्रियस्येव घोषः । अभ्रशब्दस्यापूर्वनिपातस्तस्य लक्षणस्य व्यभिचारित्वात् ॥

बर्हिषि दत्तम् ॥ ११९ ॥

भव इति निवृत्तम् । बर्हिःशब्दात्सप्तमीसमर्थाद्दत्तमित्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति । बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ॥

दूतस्य भागकर्मणी ॥ १२० ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । दूतशब्दात् षष्ठीसमर्थाद्भागे कर्मणि चाभिधेये यत्प्रत्ययो भवति । भागो ऽशः । कर्म क्रिया । यत्ते अग्ने दूत्यम् । दूतभागः, दूतकर्म वा ॥

रक्षोयातूनां हननी ॥ १२१ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । रक्षःशब्दाद्यातुशब्दाच्च षष्ठीसमर्थाद्धननीत्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । हन्यते ऽनयेति हननी । याते अग्ने रक्षस्या तनूः । रक्षसां हननी । यातव्या यातूनां हननी । बहुवचनं स्तुतिवैशिष्ट्यज्ञापनार्थम् । बहूनां रक्षसां हननेन तनूस्तूयते ॥

रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये ॥ १२२ ॥

रेवत्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रशस्ये वाच्ये यत्प्रत्ययो भवति । प्रशंसनं प्रशस्यम् । भावे क्यप् प्रत्ययो भवति । यद्वा रेवती रेवत्यम् । यद्वा जगती जगत्यम् । यद्वा हविष्या हविष्यम् । हविषे हिता हविष्यास्तासां प्रशंसनं हविष्यम् । यस्येति लोपे कृते हलो यमां यमीति लोपः ॥

असुरस्य स्वम् ॥ १२३ ॥

असुरशब्दात्षष्ठीसमर्थात्स्वमित्येतस्मिन्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । अखोपवादः । असुर्यं वा एतत्पात्रं, यच्चक्रधृतं कुलालकृतम् ॥

मायायामण् ॥ १२४ ॥

असुरशब्दात्षष्ठीसमर्थान्मायायां स्वविशेषे ऽण् प्रत्ययो भवति । पूर्वस्य यतोपवादः । आसुरी माया स्वधया कृतासि ॥

तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः ॥ १२५ ॥

तद्वानिति निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । मतुबन्तात्प्रातिपदिकात्प्रथमासमर्थादासामिति षष्ठ्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति । यत्प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति । यत्तदासामिति निर्दिष्टमिष्टकाश्चेत्ता भवन्ति । लुक्च मतोरिति प्रकृतिनिर्ह्रासः । इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा । तद्वानित्यवयवेन समुदायो व्यपदिश्यते । वर्चःशब्दो यस्मिन्मन्त्रे ऽस्ति स वर्चस्वान् । उपधीयते येन स उपधानः । चयनवचन इत्यर्थः । वर्चस्वानुपधानमन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्य यति विहिते मतोर्लुकि कृते वर्चस्या उपदधाति तेजस्या उपदधाति । पयस्याः । रेतस्याः । तद्वानिति किम् । मन्त्रसमुदायादेव मा भूत् । उपधान इति किम् । वर्चस्वानुपस्थानमन्त्र आसामित्यत्र मा भूत् । मन्त्र इति किम् । अङ्गुलिमानुपधानो हस्त आसामित्यत्र मा भूत् । इष्टकास्विति किम् । वर्चस्वानुपधानो मन्त्र एषां कपालानामित्यत्र मा भूत् । इतिकरणो नियमार्थः । अनेकपदसंभवेपि केन चिदेव पदेन तद्वान्मन्त्रो गृह्यते न सर्वेण ॥

अश्विमानण् ॥ १२६ ॥

अश्विशब्दो यस्मिन्मन्त्रे ऽस्ति सोऽश्विमान् । अश्विमच्छब्दादण् प्रत्ययो भवति । पूर्वस्य यतोपवादः । अश्विमानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्याणिवधीयते तत्र मतुपो लुकि कृते इनण्यनपत्यइति प्रकृतिभावः । आश्विनीरुपदधाति ॥

वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ॥ १२७ ॥

वयस्वानुपधानो मन्त्रो यासां ता वयस्यास्तास्वभिधेयासु मूर्ध्नो मतुप् प्रत्ययो भवति । पूर्वस्य यतोपवादः । यस्मिन्मन्त्रे वयः शब्दो मूर्द्धन् शब्दश्च विद्यते स वयस्वानपि भवति मूर्द्धन्वानपि । यथा मूर्द्धा वयः प्रजापतिच्छन्द इति । तत्र वयस्वच्छब्दादिव मूर्द्धन्वच्छब्दादपि यति प्राप्ते मतुब् विधायते । मूर्द्धन्वतीरुपदधाति । वयस्या एव मूर्द्धन्वत्यः । वयस्यास्विति किम् । यत्र

मूर्द्धशब्द एव केवलो न वयःशब्दस्तत्र मा भूत् । मूर्द्धवत इति वक्तव्ये मूर्ध्न इत्युक्तं मतुपो लुकं भाविनं चित्ते कृत्वा ॥

मत्वर्थे मासतन्वोः ॥ १२८ ॥

यस्मिन्नर्थे मतुब्विहितस्तस्मिंश्छन्दसि विषये यत्प्रत्ययो भवति मासतन्वोः प्रत्ययार्थविशेषणयोः । प्रथमासमर्थादस्त्युपाधिकात्षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च तत्प्रत्ययो भवति । मत्वर्थीयानामपवादः । नभांसि विद्यन्ते यस्मिन्मासे, नभस्यो मासः । सहस्यः । तपस्यः । मधव्यः । नभःशब्दोऽभ्रेषु वर्त्तते । तन्वां खल्वपि । ओजोस्यां विद्यते, ओजस्या तनूः रक्षस्या । मासतन्वोरिति किम् । मधुमता पात्रेण चरति । मासतन्वोरनन्तरार्थे वा । मध्वस्मिन्नस्ति मध्वस्मिन्ननन्तरमिति वा मधव्या मासः ॥ लुगकारेकाररेफाश्च वक्तव्याः ॥ * ॥ लुक्-तावत् । तपश्च तपस्यश्च । नभश्च नभस्यश्च । सहश्च सहस्यश्च । नपुंसकलिङ्गं छान्दसत्वात् । अकारः । इषो मासः । ऊर्जो मासः । इकारः । शुचिर्मासः । रेफः । शुक्रो मासः ॥

मधोर्ञ च ॥ १२९ ॥

मधुशब्दान्मत्वर्थे ञः प्रत्ययो भवति चकाराद्यच्च । उपसंख्यानाल्लुक्च । माधवः । मधव्यः । मधुः । तन्वां खल्वपि । माधवा । मधव्या । मधुः । तनूः ॥

ओजसोऽहनि यत्खौ ॥ १३० ॥

मत्वर्थइत्येव । ओजःशब्दान्मत्वर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतोऽहन्यभिधेये । ओजस्यमहः । ओजसीनमहः ।

वेशोयशआदेर्भगाद्यल् ॥ १३१ ॥

मत्वर्थइत्येव । वेशोयशसी आदी यस्य प्रातिपदिकस्य तस्माद्वेशोयशआदेर्भगान्तात्प्रातिपदिकान्मत्वर्थे यल् प्रत्ययो भवति । लकारः स्वरार्थः । वेशोभगो विद्यते यस्य स, वेशोभग्यः । यशोभग्यः । वेश इति बलमुच्यते । श्रीकामप्रयत्नमाहात्म्यवीर्ययशस्सु भगशब्दः । वेशश्चासौ भगश्च श्रीप्रभृतिर्वेशोभगः, सोस्यास्तीति वेशोभग्यः ॥

ख च ॥ १३२ ॥

वेशोयशआदेर्भगान्तात्प्रातिपदिकान्मत्वर्थे खः प्रत्ययो भवति । योगविभागो यथासंख्यनिरासार्थ उत्तरार्थश्च । चकाराद्यत् । वेशोभग्यः । वेशोभगीनः । यशोभग्यः । यशोभगीनः ॥

पूर्वैः कृतमिनयौ च ॥ १३३ ॥

मत्वर्थइति निवृत्तम् । निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । पूर्वशब्दात्तृतीया-समर्थात्कृतमित्येतस्मिन्नर्थे इन य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । चकारात्ख च । पथिभिः पूर्विणः । पूर्व्यः । पूर्वीणः पूर्वैरिति बहुवचनान्तेन पूर्वपुरुषा उच्यन्ते । तत्कृताः पन्थानः प्रशस्ता इति पथां प्रशंसा ॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥ १३४ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । अप्शब्दात्तृतीयासमर्थात्संस्कृतमित्येतस्मि-न्नर्थे यत्प्रत्ययो भवति । यस्येदमप्यं हविः । अद्भिः संस्कृतमिति ॥

सहस्रेण संमितौ घः ॥ १३५ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । सहस्रशब्दात्तृतीयासमर्थात्सम्मिताद्इत्येत-स्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति । सम्मितस्तुल्यः सदृशः । अयमग्निः सहस्रियः । सहस्रतुल्य इत्यर्थः । के चित्तु समिताविति पठन्ति । तत्रापि समित्या सम्मित एव लक्षयितव्यः । तत्र छन्दसि प्रयोगदर्शनात् ॥

मतौ च ॥ १३६ ॥

मत्वर्थे च सहस्रशब्दाद् घः प्रत्ययो भवति । सहस्रमस्य विद्यते, सह-स्रियः । तपःसहस्राभ्यां विनीनी, अण् चेत्यस्यापवादः ॥

सोममर्हति यः ॥ १३७ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । सोमशब्दाद् द्वितीयासमर्थादर्हतीत्येतस्मि-न्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । सोममर्हन्ति, सोम्या ब्राह्मणाः । यज्ञार्हा इत्यर्थः । यति प्रकृते ययहणं स्वरे विशेषः ॥

मये च ॥ १३८ ॥

सोमयहणं, यश्चानुवर्त्तते । मय इति मयडर्थो लक्ष्यते । सोमशब्दान्म-यडर्थे यः प्रत्ययो भवति । आगतविकारावयवप्रकृता मयडर्थाः । हेतुमनुष्येभ्यो ऽन्यतरस्यां रूप्यः । मयट् च । मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः । तत्प्रकृत-वचने मयडिति । तत्र यथायोगं समर्थविभक्तिः । सोम्यं मधु पिबन्ति । सोम-मयमित्यर्थः ॥

मधोः ॥ १३९ ॥

यशब्दो निवृत्तः। मधुशब्दान्मयडर्थे यत्प्रत्ययो भवति। मधव्यान् स्तोकान्। मधुमयानित्यर्थः॥

वसोः समूहे च ॥ १४०

वसुशब्दात्समूहे वाच्ये यत्प्रत्ययो भवति चकारान्मयडर्थे च। यथायोगं समर्थविभक्तिः। वसव्यः समूहः। मयडर्थो वा॥ अक्षरसमूहे छन्दसः स्वार्थेउपसंख्यानम्॥ * ॥ ओश्रावयेति चतुरक्षरम्। अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्। यजेति द्व्यक्षरम्। ये यजामहइति पञ्चाक्षरम्। द्व्यक्षरो वषट्कारः। एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिर्यज्ञो मन्त्रे विहितः। सप्तदशाक्षराण्येव छन्दस्य इत्यर्थः। छन्दःशब्दादक्षरसमूहे वर्त्तमानात्स्वार्थे यत्प्रत्ययः॥ वसुशब्दादपि यद्वक्तव्यः॥ * ॥ हस्तौ पृहीतस्य बहुभिर्वसव्यैः। वसुभिरित्यर्थः। अग्निरीशे वसव्यस्य। वसोरित्यर्थः॥

नक्षत्राद् घः ॥ १४१ ॥

नक्षत्रशब्दाद्घः प्रत्ययो भवति स्वार्थे। समूहइति नानुवर्त्तते। नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा॥

सर्वदेवात्तातिल् ॥ १४२ ॥

सर्वदेवशब्दाभ्यां तातिल् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये स्वार्थिकः। सर्वतातिः। देवतातिः॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥ १४३ ॥

करोतीति करः प्रत्ययार्थः। तत्सामर्थ्यलभ्या षष्ठी समर्थविभक्तिः। शिवादिभ्यः शब्देभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः कर इत्येतस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति। शिवं करोतीति, शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः॥

भावे च ॥ १४४ ॥

भावे चार्थे छन्दसि विषये शिवादिभ्यस्तातिल् प्रत्ययो भवति। शिवस्य भावः, शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः यतः पूर्णावधिरतः। परमन्यः प्रत्ययो ऽधिक्रियते॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः॥

समाप्तश्च चतुर्थो ऽध्यायः॥

॥ शुभम् ॥

ओ३म्
स्वामित्वमल चन्द्र देवस्य (श्री भूषाणस्य)

॥ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

प्राक् क्रीताच्छः ॥ १ ॥

तेन क्रीतमिति वक्ष्यति, प्रागेतस्मात्क्रीतसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामश्छप्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः। वक्ष्यति। तस्मै हितमिति। वत्सेभ्यो हितो, वत्सीयो गोधुक्। करभीय उष्ट्रः। अकरभीयः। अवत्सीयः। अर्थोऽवधित्वेन गृहीतः, न प्रत्ययः। तेन प्राक् ठञः छ इति नोक्तम् ॥

उगवादिभ्यो यत् ॥ २ ॥

प्राक् क्रीतादित्येव। उवर्णान्तात्प्रातिपदिकाद्गवादिभ्यश्च यत्प्रत्ययो भवति। प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु। छस्यापवादः। शङ्कव्यं दारु। पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलव्या मृत्तिका*। गवादिभ्यः खल्वपि। गव्यम्। हविष्यम्। सनङ्गुर्नाम चर्मविकारः। ततः परत्वाच्चर्मणोऽञित्येष विधिः प्राप्नोति। तथा चरुर्नाम हविः। सक्तुरन्नविकारः। अपूपादिष्वन्नविकारेभ्यश्चेति पठ्यते। ततो विभाषा हविरपूपादिभ्यश्चेत्येष विधिः प्राप्नोति। तत्र पूर्वविप्रतिषेधेन यत्प्रत्यय एवेष्यते। सनङ्गव्यं चर्म। चरव्यास्तण्डुलाः। सक्तव्या धाना इति। गवादिषु नाभि नभं चेति पठ्यते। तस्यायमर्थः। नाभिशब्दो यत्प्रत्ययमुत्पादयति नभं चादेशमापद्यत इति। नाभये हितः, नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। यस्तु शरीरावयवो नाभिशब्दः ततः शरीरावयवादिति यति कृते नाभये हितं नाभ्यं तैलमिति भवितव्यम्। गवादिषु यता सन्नियुक्तो नभभावोऽत्र न भवति। गो। हविस्। बर्हिष्। खट। अष्टका। युग। मेधा। स्रक् ॥ नाभि नभं च ॥ शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम् ॥ शुन्यम्। शून्यम्। चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाच्चस्तद्धित इति लोपो न स्यात् ॥ ऊधसोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः कूपः। उदर। खर। खद। अक्षर। विष†। गवादिः ॥

कम्बलाच्च संज्ञायाम् ॥ ३

कम्बलात्प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत्प्रत्ययो भवति छस्यापवादः संज्ञायां विषये। कम्बल्यमूर्णापलशतम्। संज्ञायामिति किम्। कम्बलीया ऊर्णा ॥

विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ ४ ॥

हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् प्रत्ययो भवति। आमिक्ष्यं दधि। आमिक्षीयं दधि। पुरोडाश्या-

---

* कमण्डलव्या मृत्तिकेति पुस्तकान्तरे नास्ति।

† स्कन्द। अक्षा। एतावन्त गणे पुस्तकान्तरे ऽधिकौ।

स्तण्डुलाः । पुरोडाशीयाः । हविश्शब्दात्तु गवादिपाठाद्यत्यमेव भवति । अपूपादिभ्यः । अपूप्यम् । अपूपीयम् । तण्डुल्यम् । तण्डुलीयम् । अपूप । तण्डुल । अभ्यूष । अभ्योष । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । सूप । कटक । कर्णवेष्टक । किण्व ॥ अन्नविकारेभ्यश्च ॥ यूप । स्थूणा । पीप । अश्व । पत्र * । अपूपादिः ॥

तस्मै हितम् ॥ ५ ॥

तस्मादिति चतुर्थीसमर्थाद्धितमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वत्सेभ्यो हितो गोधुक्, वत्सीयः । अवत्सीयः । पट्यम् । गव्यम् । हविष्यम् । अपूप्यम् । अपूपीयम् ॥

शरीरावयवाद्यत् ॥ ६ ॥

शरीरं प्राणिकायः । शरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद्यत् प्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् । नाभ्यम् । नस्यम् ॥

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ॥ ७ ॥

खलादिभ्यो यत्प्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । खलाय हितं, खल्यम् । यव्यम् । माष्यम् । तिल्यम् । वृष्यम् । ब्रह्मण्यम् । वृष्णे हितम्, ब्राह्मणेभ्यो हितमिति वाक्यमेव भवति । छप्रत्ययोऽपि न भवति । अनभिधानात् । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । रथाय हिता, रथ्या ॥

अजाविभ्यां थ्यन् ॥ ८ ॥

अज अवि इत्येताभ्यां थ्यन् प्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । अजथ्या यूथिः । अविथ्या ॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ॥ ९ ॥

आत्मन् विश्वजन इत्येताभ्यां भोगोत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात्खः प्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । आत्मन्निति नलोपो न कृतः प्रकृतिपरिमाणज्ञापनार्थम् । तेनोत्तरपदग्रहणं भोगशब्देनैव संबध्यते, न तु प्रत्येकम् । आत्मने हितम्, आत्मनीनम् । आत्माध्वानौ खे इति प्रकृतिभावः । विश्वजनेभ्यो हितं, विश्वजनीनम् ॥ कर्मधारयादिष्यते ॥ षष्ठीसमासाद्बहुव्रीहेश्छ एव भवति । विश्वजनाय हितं, विश्वजनीयम् ॥ पञ्चजनादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पञ्चजनाच्च खः । अत्रापि कर्मधारयादिष्यते । पञ्चजनीनम् । अन्यत्र पञ्चजनीयम् ॥ सर्वजनाट्ठञ् खश्च ॥ * ॥ † सार्वजनिकम् । सर्वजनीनम् ।

* कठ । प्रयः स्थूणा । ओदन । अवोष । प्रदीप । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे अत्र गणे अधिकाः ।
† सर्वजनाट्ठञ् च । चकारात्खश्चेति पा० २ ।

अत्रापि कर्मधारयादेव । सर्वजनीयमन्यत् ॥ महाजनाच्चित्यं ठञ्वक्तव्यः ॥ * ॥ महाजनाय हितं, माहाजनिकम् । तत्पुरुषादेव । बहुव्रीहेस्तु छ एव भवति । महाजनीयम् । भोगोत्तरपदात्खल्वपि । मातृभोगीणः । पितृभोगीणः । भोगशब्दः शरीरवाची केवलेभ्यो मात्रादिभ्यः छ एव भवति । मात्रीयः । पित्रीयः । राजाचार्याभ्यां तु नित्यम् । भोगोत्तरपदाभ्यामेव खः प्रत्यय इष्यते, न केवलाभ्याम् । राजभोगीनः । आचार्यभोगीनः ॥ आचार्यादणत्वं च ॥ * ॥ केवलाभ्यां वाक्यमेव भवति । राज्ञे हितम् । आचार्याय हितमिति ॥

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ॥ १० ॥

सर्वपुरुषाभ्यां यथासंख्यं णढञौ प्रत्ययौ भवतः तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । सर्वस्मै हितं, सार्वम् । पौरुषेयम् ॥ सर्वाण्णस्य वा वचनम् ॥ * ॥ सर्वीयम् ॥ पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पौरुषेयो वधः विकारः समूहो वातेन कृते । पौरुषेयः ग्रन्थः ॥

माणवचरकाभ्यां खञ् ॥ ११ ॥

माणवचरकशब्दाभ्यां खञ् प्रत्ययो भवति तस्मै हितमित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । माणवाय हितं, माणवीनम् । चारकीणम् ॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥ १२ ॥

प्रकृतिरुपादानकारणं, तस्यैव उत्तरमवस्थान्तरं विकृतिः । विकृतिवाचिनः प्रातिपदिकात्प्रकृतावभिधेयायां यथाविहितं प्रत्ययो भवति । तदर्थमिति प्रत्ययार्थविशेषणम् । तदिति सर्वनाम्ना विकृतिः परामृश्यते । विकृत्यर्थायां प्रकृतौ प्रत्ययः । तदर्थग्रहणेन प्रकृतेरनन्यार्थताख्यायते । न प्रकृतिविकारसंभवमात्रे प्रत्ययः । किं तर्हि प्रकृतेरनन्यार्थत्वे विवक्षिते । प्रत्ययार्थस्य च तदर्थत्वे सति सामर्थ्याल्लभ्या चतुर्थी समर्थविभक्तिः । के चित्तु तस्मै हितमित्यनुवर्त्तयन्ति । अङ्गारेभ्यो हितानि एतानि काष्ठानि, अङ्गारीयाणि काष्ठानि । प्राकारीया इष्टकाः । शङ्कव्यं दारु । पिचव्यः कार्पासः । तदर्थमिति किम् । यवानां धानाः । धानानां सक्तवः । प्रकृत्यन्तरनिवृत्तिरत्र विवक्षिता न तादर्थ्यम् । धानानां सक्तवो न लाजानामिति । विकृतेरिति किम् । उदकार्थः कूपः । विकृतिग्रहणे ऽक्रियमाणे या का चित्प्रकृतिर्गृह्यते नोपादानकारणमेव । भवति च कूप उदकस्य प्रकृतिः । तत्रोत्पादनात् । न तु उदकं तस्य विकृतिः । अत्यन्तभेदात् । प्रकृताविति किम् । असयर्थो कोशी । असिरयसो विकृतिर्भवति । न तु कोशी तस्य प्रकृतिर्भवति । द्वयोरपि प्रकृतिविकृत्योर्ग्रहणे विवक्षितः प्रकृतिविकारभावो लभ्यते ॥

छदिरुपधिबलेर्ढञ् ॥ १३ ॥

छदिरादिभ्यः शब्देभ्यो ढञ प्रत्ययो भवति तदर्थं विकृतेः प्रकृताविल्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । छादिषेयाणि तृणानि । औपधेयं दारु । बालेयास्तण्डुलाः । उपधिशब्दात्स्वार्थे प्रत्ययः । उपधीयतइत्युपधिः रथाङ्गम् । औपधेयमपितदेव दारु ॥

ऋषभोपानहोर्ञ्यः ॥ १४ ॥

ऋषभ उपानह् इत्येताभ्यां ञ्यः प्रत्ययो भवति तदर्थं विकृतेः प्रकृतावित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । आर्षभ्यो वत्सः । औपानह्यो मुञ्जः ॥ चर्मण्यपि प्रकृतित्वेन विवक्षिते पूर्व्वविप्रतिषेधादयमेवेष्यते ॥ औपानह्यं चर्म ॥

चर्म्मणोञ् ॥ १५ ॥

चर्मण इति षष्ठी । चर्मणो या विकृतिः तद्वाचिनः प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति तदर्थं विकृतेः प्रकृतावित्येतस्मिन्विषये । छस्यापवादः । वार्ध्रं चर्म । वारत्रं चर्म ॥

तदस्य तदस्मिन्स्यादिति ॥ १६ ॥

तदिति प्रथमा समर्थविभक्तिः, अस्येति प्रत्ययार्थः, स्यादिति प्रकृतिविशेषणम् । इति करणो विवक्षार्थः । एवं द्वितीयेपि वाक्ये । सप्तम्यर्थे तु प्रत्यय इत्येतावान्विशेषः । प्रथमासमर्थात्षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च यथाविहितं प्रत्ययो भवति । यत्तत्प्रथमासमर्थं स्याच्चेत्तद्भवति । इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा । प्राकार आसामिष्टकानां स्यात्, प्राकारीया इष्टकाः । प्रासादीयं दारु । सप्तम्यर्थे खल्वपि । प्राकारोस्मिन्देशे स्यात्, प्राकारीयो देशः । प्रासादीया भूमिः । स्यादिति संभावनायां लिङ् संभावने ऽलमिति चेदित्यादिना, इष्टकानां बहुत्वेन तत्संभाव्यते । प्राकार आसामिष्टकानां स्यादिति । देशस्य च गुणेन संभाव्यते । प्रासादोस्मिन्देशे स्यादिति । प्रकृतिविकारभावस्तादर्थ्यं चेह न विवक्षितम् । किं तर्हि योग्यतामात्रं तेन पूर्वस्यायमविषयः । द्विस्तद्ग्रहणं न्यायप्रदर्शनार्थम् । अनेकस्मिन्प्रत्ययार्थे प्रत्येकं समर्थविभक्तिः संबन्धनीयेति । अथेह कस्मान्न भवति । प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति । गुणवानयं संभाव्यते, प्रासादलाभोस्येति । इतिकरणो विवक्षार्थ इत्युक्तम् ॥

परिखाया ढञ् ॥ १७ ॥

परिखाशब्दाद् ढञ् प्रत्ययो भवति तदस्य तदस्मिन्स्यादित्येतस्मिन्वर्थे । छस्यापवादः । पारिखेयी भूमिः ॥ छयतोः पूर्णोवधिः ॥ इतः परमन्य प्रत्ययो विधीयते ॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥ १८ ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिरिति वक्ष्यति । प्रागेतस्माद्वतिसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः ठञ् प्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः । वक्ष्यति, पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति । पारायणिकः । तौरायणिकः । चान्द्रायणिकः ॥

आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ॥ १९ ॥

तदर्हतीति वक्ष्यति । आ एतस्मादर्हसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः ठक् प्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः गोपुच्छादीन्वर्जयित्वा । अभिविधावयमाकारः, तेनार्हत्यर्थेऽपि ठक् भवत्येव । ठञधिकारमध्ये तदपवादः ठग्विधीयते, वक्ष्यति । तेन क्रीतम् । नैष्किकम् । पाणिकम् । अगोपुच्छसंख्यापरिमाणादिति किम् । गोपुच्छेन क्रीतं, गौपुच्छिकम् । संख्या । षाष्टिकम् । परिमाण । प्रास्थिकम् । कौडविकम् । ठञ् प्रत्युदाह्रियते । संख्यापरिमाणयोः को विशेषः । भेदगणन संख्या एकत्वादिः । गुरुत्वमानमुन्मानं पलादिः । आयाममानं प्रमाणं वितस्त्यादिः । आरोहपरिणाहमानं परिमाणं प्रस्थादि ॥

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः ।

आयामस्तु प्रमाणं स्यात्संख्या बाह्या तु सर्वतः ॥

असमासे निष्कादिभ्यः ॥ २० ॥

आर्हादित्येव । निष्कादिभ्यः शब्देभ्यो ऽसमासे ठक् प्रत्ययो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । ठञोपवादः । नैष्किकम् । पाणिकम् । पादिकम् । माषिकम् । असमासइति किम् । परमनैष्किकम् । उत्तमनैष्किकम् । ठञेव भवति, परिमाणान्तस्येत्युत्तरपदवृद्धिः । अथ किमर्थमसमासइत्युच्यते यावता ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते । निष्कादिष्वसमासग्रहणं ज्ञापकं पूर्वत्र तदन्ताप्रतिषेधस्य । उगवादिभ्यो यत् । गव्यम् । सुगव्यम् । अतिसुगव्यम् । विभाषा हविरपूपादिभ्यः । अपूप्यम् । अपूपीयम् । यवापूप्यम् । यवापूपीयम् । शरीरावयवाद्यत् । दन्त्यम् । राजदन्त्यमित्येवमादि सिद्धं भवति ॥ इत उत्तरं च संख्यापूर्वपदानां तदन्तविधिरिष्यते ॥ पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति । द्वैपारायणिकः । त्रैपारायणिकः ॥ लुगन्तायास्तु प्रकृतेर्नेष्यते ॥ द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम् । त्रिशूर्पम् । द्विशूर्पेण क्रीतमिति तदन्तविधिप्रतिषेधात् शूर्पादञन्यतरस्यामित्यञ् न भवति । सामान्यविहितष्ठञेवभवति । द्विशौर्पिकम् । ठञो द्विगुंप्रत्यनिमित्ताल्लुगभावः * । तथा चोक्तम्, प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकीति । निष्क । पण । पाद । माष । वाहद्रोण । षष्टि । निष्कादिः ॥

* ठञो द्विगुं प्रतीत्येष ग्रन्थः पुस्तकान्तरे नास्ति ।

शताच्च ठन्यतावशते ॥ २१ ॥

अर्हाद् इत्येव । शतशब्दात् ठन्यतौ प्रत्ययौ भवतः अशते ऽभिधेये । आर्हीयेष्वर्थेषु । कनोपवादः । शतेन क्रीतं, शत्यम् । शतिकम् । अशतइति किम् । शतं परिमाणमस्य, शतकं निदानम् । प्रत्ययार्थश्च संघः शतमेव वस्तुतः प्रकृत्यर्थान्न भिद्यते । इह तु न भवति । शतेन क्रीतं, शत्यं शाटकशतम् । शतिकं शाटकशतमिति, वाक्येन ह्यत्र प्रत्ययार्थस्य तत्त्वं गम्यते न श्रुत्या । तथा चोक्तम् । शतप्रतिषेधे ऽन्यशतत्वे ऽप्रतिषेध इति । चकारो ऽसमासइत्यनुकर्षणार्थः । द्वौ च शतं च द्विशतं द्विशतेन क्रीतं, द्विशतकम् । त्रिशतकम् । प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकीत्यनया इष्ट्या समासादपि प्राप्नोति ॥

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥ २२ ॥

आर्हादित्येव । संख्याया अत्यन्ताया अशदन्तायाश्च कन् प्रत्ययो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । ठञो ऽपवादः । पञ्चभिः क्रीतः, पञ्चकः । बहुकः । गणकः । अतिशदन्ताया इति किम् । साप्ततिकः । चात्वारिंशत्कः । अर्थवतस्तिशब्दस्य ग्रहणाद्युतेः पर्युदासो न भवति । कतिकः ॥

वतोरिड् वा ॥ २३ ॥

वत्वन्तस्य संख्यात्वात् कन् सिद्ध एव तस्य त्वनेन वा इडागमो विधीयते । वतोः परस्य कनो वा इडागमो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । तावतिकः । तावत्कः । यावतिकः । यावत्कः ॥

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुनसंज्ञायाम् ॥ २४ ॥

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन् प्रत्ययो भवति असंज्ञायां विषये आर्हीयेष्वर्थेषु । विंशकः । त्रिंशकः । ति विंशतेर्डितीति तिलोपः । असंज्ञायामिति किम् । विंशतिकः । त्रिंशत्कः । कथं पुनरत्र कन् यावता अतिशदन्ताया इति पर्युदासेन भवितव्यम् । योगविभागः करिष्यते । विंशतित्रिंशद्भ्यां कन्प्रत्ययो भवति । ततो ड्वुनसंज्ञायामिति ॥

कंसाट्टिठन् ॥ २५ ॥

कंसाट्टिठन् प्रत्ययो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । ठञोपवादः । टकारो ङीबर्थः । इकार उच्चारणार्थः । नकारः स्वरार्थः । कंसिकः । कंसिकी ॥ अर्द्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अर्द्धिकः । अर्द्धिकी ॥ कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः ॥ * ॥ कार्षापणिकः । कार्षापणिकी ॥ प्रतिशब्दश्चास्यादेशो वा वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रतिकः । प्रतिकी ॥

शूर्पादञन्यतरस्याम् ॥ २६ ॥

शूर्पशब्दादन्यतरस्यामञ् प्रत्ययो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । ठञोपवादः । पक्षे सोपि भवति । शूर्पेण क्रीतं, शौर्पम् । शौर्पिकम् ॥

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ॥ २७ ॥

शतमानादिभ्यः शब्देभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति आर्हीयेष्वर्थेषु । ठक्ठञ्कनामपवादः । शतमानेन क्रीतं, शातमानं शतम् । वैंशतिकम् । साहस्रम् । वासनम् ॥

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥ २८ ॥

आर्हादित्येव । अध्यर्धशब्दः पूर्वो यस्मिन्तस्मादध्यर्द्धपूर्वात्प्रातिपदिकाद् द्विगोश्च परस्य आर्हीयस्य लुग् भवति असंज्ञायां विषये । अध्यर्द्धकंसम् । द्विकंसम् । त्रिकंसम् । अध्यर्द्धशूर्पम् । द्विशूर्पम् । त्रिशूर्पम् । असंज्ञायामिति किम् । पञ्चलौहितिकम् । पाञ्चकलायिकम् । लोहिनीशब्दस्य भस्याढे तद्धितइति पुंवद्भावः * । प्रत्ययान्तस्य विशेषणमसंज्ञाग्रहणं न चेत्प्रत्ययान्तं संज्ञेति । अध्यर्द्धशब्दः संख्यैव । किमर्थं भेदेनोपादीयते । ज्ञापकार्थं क्व चिदस्य संख्याकार्यं न भवति । संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुजिति ॥

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ॥ २९ ॥

अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोश्च कार्षापणसहस्रान्तादुत्तरस्यार्हीयप्रत्ययस्य विभाषा लुग्भवति । पूर्वेण लुकि नित्ये प्राप्ते विकल्प्यते । अध्यर्धकार्षापणम् । अध्यर्द्धकार्षापणिकम् । द्विकार्षापणम् । द्विकार्षापणिकम् । औपसंख्यानिकस्य टिठनो लुक् । अलुक्पक्षे च प्रतिरादेशो विकल्पितः । अध्यर्द्धप्रतिकम् । द्विप्रतिकम् । त्रिप्रतिकम् । सहस्रात् । अध्यर्धसहस्रम् । अध्यर्धसाहस्रम् । द्विसहस्रम् । द्विसाहस्रम् । अलुक्पक्षे संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य चेत्युत्तरपदवृद्धिः ॥ सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ अध्यर्धसुवर्णम् । अध्यर्द्धसौवर्णिकम् । द्विसुवर्णम् । द्विसौवर्णिकम् । अध्यर्धशतमानम् । अध्यर्धशातमानम् । द्विशतमानम् । द्विशातमानम् । परिमाणान्तस्येत्युत्तरपदवृद्धिः ॥

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ॥ ३० ॥

द्विगोरित्येव । द्वित्रिपूर्वाद्विगोर्निष्कान्तादार्हीयप्रत्ययस्य विभाषा लुग्भवति । द्विनिष्कम् । द्विनैष्किकम् । त्रिनिष्कम् । त्रिनैष्किकम् ॥ बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बहुनिष्कम् । बहुनैष्किकम् परिमाणान्तस्येत्युत्तरपदवृद्धिः ॥

बिस्ताच्च ॥ ३१ ॥

---

* लोहिनीशब्दस्येत्यारभ्य पुंवद्भाव इत्यन्तो ग्रन्थः प्रक्षिप्तोत्र मूले । पदमञ्जर्यां दर्शनात् ।

द्वित्रिपूर्वादिति चकारेणानुकृष्यते, द्वित्रिपूर्वाद्विस्तान्ताद्विगोः परस्यार्हीयप्रत्ययस्य विभाषा लुग्भवति । द्विबिस्तम् । द्विबैस्तिकम् । त्रिबिस्तम् । त्रिबैस्तिकम् । बहुबिस्तम् । बहुबैस्तिकम् * ॥

विंशतिकात्खः ॥ ३२ ॥

अध्यर्धपूर्वात्प्रातिपदिकाद्द्विगोश्च विंशतिकशब्दान्तादार्हीयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति । अध्यर्धविंशतिकीनम् । द्विविंशतिकीनम् । त्रिविंशतिकीनम् । विधानसामर्थ्याल्लुङ्न भवति ॥

खार्या ईकन् ॥ ३३ ॥

अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोरित्येव । अध्यर्द्धपूर्वात्प्रातिपदिकाद्द्विगोश्च खारीशब्दान्तादार्हीयेष्वर्थेषु ईकन् प्रत्ययो भवति । अध्यर्द्धखारीकम् । द्विखारीकम् ॥ केवलाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ खारीकम् ॥ काकिण्याश्चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ अध्यर्धकाकिणीकम् । द्विकाकिणीकम् । त्रिकाकिणीकम् ॥ केवलायाश्च ॥ * ॥ काकिणीकम् ॥

पणपादमाषशताद्यत् ॥ ३४ ॥

अध्यर्धपूर्वाद्विगोरित्येव । अध्यर्द्धपूर्वाद्द्विगोश्च पणपादमाषशतशब्दान्तादार्हीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति । अध्यर्धपण्यम् । द्विपण्यम् । त्रिपण्यम् । अध्यर्द्धपाद्यम् । द्विपाद्यम् । त्रिपाद्यम् । पद्भावो न भवति पद्यत्यतदर्थे इति । प्राण्यङ्गस्य स इष्यते । इदं तु परिमाणम् । माष । अध्यर्द्धमाष्यम् । द्विमाष्यम् । त्रिमाष्यम् । शत । अध्यर्द्धशत्यम् । द्विशत्यम् । त्रिशत्यम् ॥

शाणाद्वा ॥ ३५ ॥

अध्यर्द्धपूर्वाद्द्विगोरित्येव । शाणशब्दादध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोरार्हीयेष्वर्थेषु वा यत् प्रत्ययो भवति । ठञोऽपवादः । पक्षे सोऽपि भवति । तस्य च लुक् । अध्यर्द्धशाण्यम् । अध्यर्धशाणम् । द्विशाण्यम् । द्विशाणम् । त्रिशाण्यम् । त्रिशाणम् ॥ शताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अध्यर्द्धशत्यम् । अध्यर्धशतम् । द्विशत्यम् । द्विशतम् । त्रिशत्यम् । त्रिशतम् ॥

द्वित्रिपूर्वादण्च ॥ ३६ ॥

शाणाद्वेत्येव, द्वित्रिपूर्वाच्छाणान्तात्प्रातिपदिकादार्हीयेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, चकाराद्यच्च वा । तेन त्रैरूप्यं भवति । द्विशाण्यम् । द्वैशाणम् । द्विशाणम् । त्रिशाण्यम् । त्रैशाणम् । त्रिशाणम् । परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोरिति पर्युदासादादिवृद्धिरेव भवति ॥

---

* योगविभाग उत्तरार्थ इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

तेन क्रीतम् ॥ ३७ ॥

ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रकृताः तेषामितः प्रभृति समर्थविभक्तयः प्रत्ययार्थाश्च निर्दिश्यन्ते । तेनेति तृतीयासमर्थात् क्रीतमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । सप्तत्या क्रीतं, साप्ततिकम् । आशीतिकम् । नैष्किकम् । पाणिकम् । पादिकम् । माषिकम् । शत्यम् । शतिकम् । द्विकम् । त्रिकम् । तेनेति मूल्यात्करणे तृतीया समर्थविभक्तिः । अन्यत्रानभिधानाच्च भवति । देवदत्तेन क्रीतं, पाणिना क्रीतमिति । द्विवचनबहुवचनान्तात्प्रत्ययो न भवति । प्रस्थाभ्यां क्रीतं, प्रस्थैः क्रीतमिति, अनभिधानादेव । यत्र तु प्रकृत्यर्थस्य संख्याभेदावगमे प्रमाणमस्ति तत्र द्विवचनबहुवचनान्तादपि प्रत्ययो भवति । द्वाभ्यां क्रीतं, द्विकम् । त्रिकम् । पञ्चकम् । तथा मुद्गैः क्रीतं मौद्गिकम् । माषिकम् । नह्येकेन मुद्गेन क्रयः संभवति ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ॥ ३८ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थान्निमित्तमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तन्निमित्तं संयोगश्चेत्स भवति उत्पातो वा । संयोगः संबन्धः प्राणिनां शुभाशुभसूचकः । महाभूतपरिणाम उत्पातः । शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः, शत्यः । शतिकः । साहस्रः । उत्पातः । खल्वपि । शतस्य निमित्तमुत्पातो दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्, शत्यम् । शतिकम् । साहस्रम् ॥ तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वातस्य शमनं कोपनं वा, वातिकम् । पैत्तिकम् । श्लैष्मिकम् ॥ सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सान्निपातिकम् ॥

गोद्व्यचोसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥ ३९ ॥

गोशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात्संख्यापरिमाणाश्वादिविवर्जिताद्यत् प्रत्ययो भवति तस्य निमित्तं संयोगोत्पाताविस्येतस्मिन्नर्थे । ठञादीनामपवादः । गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा, गव्यः । द्व्यचः खल्वपि । धन्यम् । स्वर्ग्यम् । यशस्यम् । आयुष्यम् । असंख्यापरिमाणाश्वादेरिति किम् । पञ्चानां निमित्तं पञ्चकम् । सप्तकम् । अष्टकम् । परिमाण । प्रास्थिकम् । खारीकम् । अश्वादिः । आश्विकः ॥ ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ ब्रह्मवर्चसस्य निमित्तं गुरुणा संयोगः, ब्रह्मवर्चस्यम् । अश्व । अश्मन् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । भङ्ग । अश्वादिः ॥

पुत्राच्छ च ॥ ४० ॥

पुत्रशब्दाच्छः प्रत्ययो भवति चकाराद्यच्च तस्य निमित्तं संयोगोत्पाता-

वित्येतस्मिन्विषये । ठ्यच् इति नित्ये यति प्राप्ते वचनम् । पुच्छस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा, पूच्छायम् । पुच्छ्यम् ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥ ४१ ॥

सर्वभूमिपृथिवीशब्दाभ्यां यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः तस्य निमित्तं संयोगोत्पातावित्येतस्मिन्विषये । ठकोपवादौ । सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा, सार्वभौमः । पार्थिवः । सर्वभूमेरनुशतिकादिपाठादुभयपदवृद्धिः ॥

तस्येश्वरः ॥ ४२ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीशब्दाभ्यामणञौ प्रत्ययौ भवत ईश्वर इत्येतस्मिन्विषये । सर्वभूमेरीश्वरः, सार्वभौमः । पार्थिवः । षष्ठीप्रकरणे पुनः षष्ठीसमर्थविभक्तिनिर्देशः प्रत्ययार्थस्य निवृत्तये । अन्यथा संयोगोत्पाताविव ईश्वरोऽपि प्रत्ययार्थस्य निमित्तस्य विशेषणं संभाव्येत ॥

तत्र विदित इति च ॥ ४३ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीशब्दाभ्यां यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः विदित इत्येतस्मिन्नर्थे । विदितो ज्ञातः, प्रकाशित इत्यर्थः । सर्वभूमौ विदितः, सार्वभौमः । पार्थिवः ॥

लोकसर्वलोकाट्ठञ् ॥ ४४ ॥

लोकसर्वलोकशब्दाभ्यां तत्रेति सप्तमीसमर्थाभ्यां विदित इत्येतस्मिन्विषये ठञ् प्रत्ययो भवति । लोके विदितः, लौकिकः । सार्वलौकिकः । अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः ॥

(तस्य वापः) ॥ ४५ ॥

तस्येति सप्तमीसमर्थाद्वाप इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । उप्यते ऽस्मिन्वापः । क्षेत्रमुच्यते । प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं, प्रास्थिकम् । द्रौणिकम् । खारीकम् ॥

पात्रात्ष्ठन् ॥ ४६ ॥

पात्रशब्दात् ष्ठन् प्रत्ययो भवति तस्य वाप इत्येतस्मिन्विषये । ठञो-पवादः । नकारः स्वरार्थः । षकारो ङीषर्थः । पात्रशब्दः परिमाणवाची । पात्रस्य वापः, पात्रिकं क्षेत्रम् । पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः ॥

तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ॥ ४७ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं वृद्ध्यादि चेत्तद्दीयते । दीयते इत्येकवचनान्तं वृद्ध्यादिभिः

प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्र यदधमर्णेन उत्तमर्णाय मूलधनातिरिक्तं देयं तद् वृद्धिः। ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आयः। पटादीनामुपादानमूलादतिरिक्तं द्रव्यं लाभः। रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः। उत्कोच उपदा। पञ्चास्मिन्वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते, पञ्चकः। सप्तकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः॥ चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम् ॥ * ॥ पञ्चास्मै वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते, पञ्चको देवदत्तः। सिद्धं त्वधिकरणत्वेन विवक्षितत्वात्। सममब्राह्मणे दानमिति यथा॥

पूरणार्द्धाट्ठन् ॥ ४८ ॥

पूरणवाचिनः शब्दादर्द्धशब्दाच्च ठन् प्रत्ययो भवति तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदादीयतइत्येतस्मिन्नर्थे। यथायथं ठक्ठिठनोरपवादः। द्वितीयो वृद्ध्यादिरस्मिन्दीयते, द्वितीयिकः। तृतीयिकः। पञ्चमिकः। सप्तमिकः। अर्द्धिकः। अर्द्धशब्दो रूपकार्द्धस्य रूढिः॥

भागाद्यच्च ॥ ४९ ॥

भागशब्दाद्यत् प्रत्ययो भवति। चकाराट्ठंश्च। तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयतइत्येतस्मिन्नर्थे। ठञोपवादः। भागो वृद्ध्यादिरस्मिन्दीयते, भाग्यं, भागिकं शतम्। भाग्या भागिका विंशतिः। भागशब्दोपि रूपकार्द्धस्य वाचकः॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥ ५० ॥

तदिति द्वितीयासमर्थाद्धरत्यादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्रकृतिविशेषणं भाराद्वंशादिभ्य इति। वंशादिभ्यः परो यो भारशब्दस्तदन्तात्प्रातिपदिकादिति। वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः। कौटजभारिकः। बाल्वजभारिकः। भारादिति किम्। वंशं हरति। वंशादिभ्य इति किम्। व्रीहिभारं हरति। अपरा वृत्तिः। भाराद्वंशादिभ्य इति, भारभूतेभ्यो वंशादिभ्य इत्यर्थः। भारशब्दोर्थद्वारेण वंशादीनां विशेषणम्। भारभूतान्वंशान् हरति, वांशिकः। कौटजिकः। बाल्वजिकः। भारादिति किम्। वंशं हरति। वंशादिभ्य इति किम्। भारभूतान्व्रीहीन्वहति। सूत्रार्थद्वयमपि चैतदाचार्येण शिष्याः प्रतिपादिताः। तदुभयमपि ग्राह्यम्। हरति देशान्तरं प्रापयति चोरयति वा। वहत्युत्क्षिप्य धारयतीत्यर्थः। आवहति उत्पादयतीत्यर्थः। वंश। कुटज। बल्वज। मूल। अक्ष। स्थूणा। अश्मन्। अश्व। इक्षु। खट्वा। वंशादि॥

वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ ॥ ५१ ॥

वस्त्रद्रव्यशब्दाभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां यथासंख्यं ठन् कन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो हरत्यादिष्वर्थेषु । वस्त्रं हरति वहतिवा, वस्त्रिकः । द्रव्यकः ॥

संभवत्यवहरति पचति ॥ ५२ ॥

तदिति द्वितीया समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते । तदिति द्वितीयासमर्थात्संभवत्यादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । तत्राधेयस्य प्रमाणानतिरेकः संभवः । उपसंहरणमवहारः । विक्लेदनं पाकः । प्रस्थं संभवति अवहरति पचति वा, प्रास्थिकः । कौडविकः । खारीकः । ननु च पाके च संभवोस्ति । नास्त्यत्र नियोगः । प्रस्थं पचति ब्राह्मणी, प्रास्थिकी ॥ तत्पचतीति द्रोणादण्च ॥ * ॥ द्रोणं पचति, द्रौणी । द्रौणिकी ॥

आढकाचितपात्रात्खोन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥

आढकाचितपात्रशब्देभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो ऽन्यतरस्यां संभवादिष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति । ठञोपवादः । पक्षे सोपि भवति । आढकं संभवत्यवहरति पचति वा, आढकीना । आढकिकी । आचितीना । आचितिकी । पात्रीणा । पात्रिकी ॥

द्विगोष्ठंश्च ॥ ५४ ॥

आढकाचितपात्रादित्येव । आढकाचितपात्रान्ताद् द्विगोः संभवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन् प्रत्ययो भवति, चकारात्खः, अन्यतरस्याम् । विधानसामर्थ्यादेवानयोर्लुङ्न भवति । ठञस्तु पक्षे ऽनुज्ञातस्याद्धर्धपूर्वद्विगोरिति लुग्भवत्येव । नकारः स्वरार्थः । षकारो ङीषर्थः । द्व्याढकिकी । द्व्याढकीना । द्व्याढकी । द्व्याचितिकी । द्व्याचितीना । द्व्याचिता । अपरिमाणबिस्ताचितेति ङीपः प्रतिषेधः । द्विपात्रिकी । द्विपात्रीणा । द्विपात्री ॥

कुलिजाल्लुक्खौ च ॥ ५५ ॥

द्विगोरित्येव । कुलिजशब्दान्ताद् द्विगोः संभवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ भवतः । चकारात्ष्ठंश्च । अन्यतरस्यां ग्रहणानुवृत्त्या लुगपि विकल्प्यते । ठञः पक्षे श्रवणं भवति । तेन चातूरूप्यं संपद्यते । द्वे कुलिजे संभवत्यवहरति पचति वा, द्विकुलिजिकी । द्विकुलिजीनां । द्विकुलिजा । द्वैकुलिजिकी । परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोरित्यत्र कुलिजग्रहणमपीष्यते । तेनोत्तरपदवृद्धिरपि न भवति ॥

सोस्यांशवस्नभृतयः ॥ ५६ ॥

स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्तत् प्रथमासमर्थमंशवस्नभृतयश्चेत्ता भवन्ति । अंशो भागः । वस्नं मूल्यम् । भृतिर्वेतनम् । पञ्च अंशो वस्नो वा भृतिर्वास्य, पञ्चकः । सप्तकः । साहस्रः ॥

तदस्य परिमाणम् ॥ ५७ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत्तद्भवति । प्रस्थः परिमाणमस्य, प्रास्थिको राशिः । खारीकः । शत्यः । शतिकः । साहस्रः । द्रौणिकः । कौडविकः । वर्षशतं परिमाणमस्य, वार्षशतिकः । वार्षसहस्रिकः । षष्टिर्जीवितपरिमाणमस्येति, षाष्टिकः । द्विसाप्ततिकः । समर्थविभक्तिः प्रत्ययार्थश्च पूर्वसूत्रादेवानुवर्त्तिष्यते किमर्थं पुनरनयोरुपादानम् । पुनर्विधानार्थम् । द्वे षष्टी जीवितपरिमाणमस्य द्विषाष्टिकः । द्विसाप्ततिकः । पुनर्विधानसामर्थ्यादध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुङ् भवति ॥

संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु ॥ ५८ ॥

तदस्य परिमाणमिति वर्त्तते । संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात्परिमाणोपाधिकात्प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । संज्ञासंघसूत्राध्ययनेष्विति प्रत्ययार्थविशेषणम् । तत्र संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः । पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः । त्रिकाः शालङ्कायनाः । संघ । पञ्च परिमाणमस्य, पञ्चकः संघः । अष्टकः । सूत्र । अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य, अष्टकं पाणिनीयम् । दशकं वैयाघ्रपदीयम् । त्रिकं काशकृत्स्नम् । ननु चाध्यायसमूहः सूत्रसंघ एव भवति । नैतदस्ति । प्राणिसमूहे संघशब्दो रूढः । अध्ययने । पञ्चको ऽधीतः । सप्तको ऽधीतः । अष्टकः । नवकः । अधीतिरध्ययनम् । तस्य संख्यापरिमाणं पञ्चावृत्तयः पञ्चवाराः पञ्चरूपाण्यस्याध्ययनस्य, पञ्चकमध्ययनम् ॥ स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः ॥ * ॥ पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य, पञ्चदशः स्तोमः । सप्तदशः । एकविंशः ॥ शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि ॥ * ॥ पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः । त्रिंशिनो मासाः ॥ विंशतेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ विंशिनो ऽङ्गिरसः ॥

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ॥ ५९ ॥

तदस्य परिमाणमिति वर्त्तते । पङ्क्त्यादयः शब्दा निपात्यन्ते । यदिह लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । पञ्चानां टिलोपः, तिः प्रत्ययः । पञ्च परिमाणमस्य, पङ्क्तिश्छन्दः । द्वयोर्द्दशतोर्विन्भावः शतिच् प्रत्ययः । द्वौ दशतौ परिमाणमस्य संघस्य, विंशतिः । त्रयाणां दशतां त्रिन्भावः शच्च प्रत्ययः । त्रयो दशतः परिमाणमस्य, त्रिंशत् । चतुर्णां दशतां चत्वारिन्भावः शच्च प्रत्ययः । चत्वारो दशतः परिमाणमस्य, चत्वारिंशत् । पञ्चानां दशतां पञ्चाभावः शच्च प्रत्ययः । पञ्च दशतः परिमाणमस्य, पञ्चाशत् । षण्णां

दशतां षड्भावस्तिः प्रत्ययो ऽपदत्वं च । षड् दशतः परिमाणमस्य, षष्टिः । सप्तानां दशतां सप्तभावः तिः प्रत्ययः । सप्त दशतः परिमाणमस्य, सप्ततिः । अष्टानां दशतामशीभावस्तिः प्रत्ययश्च । अष्टौ दशतः परिमाणमस्य, अशीतिः । नवानां दशतां नवभावस्तिः प्रत्ययः । नव दशतः परिमाणमस्य, नवतिः । दशानां दशतां शभावः तश्च प्रत्ययः । दश दशतः परिमाणमस्य संघस्य, शतम् । विंशत्यादयो गुणशब्दास्ते यथाकथंचिद्व्युत्पाद्याः । नात्रावयवार्थेऽभिनिवेष्टव्यम् । तथाहि । पङ्क्तिरिति क्रमसंनिवेशेऽपि वर्तते । ब्राह्मणपङ्क्तिः । पिपीलिकापङ्क्तिरिति । न चात्रावयवार्थः कश्चिदस्ति । या चैषां विषयभेदेन गुणमात्रे गुणिनि च वृत्तिस्वलिङ्गसंख्यानुविधानं च । एतदपि सर्वं स्वाभाविकमेव । सहस्रादयोऽप्येवंजातीयकास्तद्वदेव द्रष्टव्याः । उदाहरणमात्रमेतदिति ॥

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ॥ ६० ॥

पञ्चत् दशत् इत्येतौ निपात्येते तदस्य परिमाणमित्यस्मिन्विषये वर्गेऽभिधेये । संख्याया इति कनि प्राप्ते डतिर्निपात्यते । वावचनात्पक्षे सोऽपि भवति । पञ्च परिमाणमस्य, पञ्चद् वर्गः, दशद्वर्गः । पञ्चको वर्गः, दशको वर्गः ॥

सप्तनोऽञ् छन्दसि ॥ ६१ ॥

वर्ग इत्येव । तदस्य परिमाणमिति च । सप्तन्शब्दाच्छन्दसि विषये ऽञ् प्रत्ययो भवति वर्गेऽभिधेये । सप्त साप्तान्यसृजत् ॥

त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् ॥ ६२ ॥

तदस्य परिमाणमित्येव । वर्ग इति निवृत्तम् । त्रिंशच्चत्वारिंशच्छब्दाभ्यां संज्ञायां विषये डण् प्रत्ययो भवति तदस्य परिमाणमित्येतस्मिन्विषये ब्राह्मणेऽभिधेये । अभिधेयसप्तम्येषा न विषयसप्तमी । तेन मन्त्रभाष्ययोरपि भवति । त्रिंशदध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानां, त्रैंशानि ब्राह्मणानि । चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि । कानि चिदेव ब्राह्मणान्युच्यन्ते ॥

तदर्हति ॥ ६३ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादर्हति इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । श्वेतच्छत्रमर्हति, श्वैतच्छत्रिकः । वास्त्रयुग्मिकः । शत्यः । शतिकः । साहस्रः ।

छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ ६४ ॥

नित्यग्रहणं प्रत्ययार्थविशेषणम् । छेदादिभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो नित्यमर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । छेदं नित्यमर्हति, छैदिकः । भैदिकः । छेद । भेद । द्रोह । दोह । वर्त्त । कर्ष । संप्रयोग । विप्रयोग । प्रेषण । संप्रश्न । विप्रकर्ष ॥ विराग विरङ्गं च ॥ वैरङ्गिकः ॥

शीर्षच्छेदाद्यच्च ॥ ६५ ॥

शीर्षच्छेदशब्दाद् द्वितीयासमर्थान्नित्यमर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति चकाराद्यथाविहितश्च । शिरश्छेदं नित्यमर्हति, शीर्षच्छेद्यः । शैर्षच्छेदिकः । प्रत्ययसन्नियोगेन शिरसः शीर्षभावो निपात्यते ॥

दण्डादिभ्यो यः* ॥ ६६ ॥

नित्यमिति निवृत्तम् । दण्डादिभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो ऽर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । ठकोपवादः । दण्डमर्हति, दण्ड्यः । मुसल्यः । दण्ड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेधा । मेघ । युग । उदक । वध । गुहा । भाग । इभ । दण्डादिः ॥

छन्दसि च ॥ ६७ ॥

प्रातिपदिकमात्राच्छन्दसि विषये तदर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति । ठञादीनामपवादः । उदक्या वृत्तयः । यूप्यः पलाशः । गर्त्यो देशः ॥

पात्राद् घंश्च ॥ ६८ ॥

पात्रशब्दाद् घन् प्रत्ययो भवति चकाराद्यच्च, तदर्हतीत्यस्मिन्नर्थे । ठक्ठञोरपवादः । पात्रं परिमाणमर्प्यास्ति । पात्रमर्हति, पात्र्यः । पात्रियः ॥

कडङ्करदक्षिणाच्छ च ॥ ६९ ॥

कडङ्करदक्षिणाशब्दाभ्यां छः प्रत्ययो भवति, चकाराद्यच्च तदर्हतीत्यस्मिन्विषये । ठकोपवादः । कडङ्करमर्हति, कडङ्करीयो गौः । कडङ्कर्यः । दक्षिणामर्हति, दक्षिणीयो भिक्षुः । दक्षिण्यो ब्राह्मणः । दक्षिणाशब्दस्याल्पाच्तरस्य पूर्वनिपातेन लक्षणव्यभिचारचिह्नेन यथासंख्याभावं सूचयति ॥

स्थालीबिलात् ॥ ७० ॥

छयतावनुवर्त्तेते । स्थालीबिलशब्दाच्छयतौ प्रत्ययौ भवतः तदर्हतीत्यस्मिन्नर्थे । ठकोपवादौ स्थालीबिलमर्हन्ति, स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः । स्थालीबिल्याः । पाकयोग्या इत्यर्थः ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥ ७१ ॥

यज्ञशब्दादृत्विक्शब्दाच्च यथासंख्यं घखञौ प्रत्ययौ भवतः तदर्हती-

---

* दण्डादिभ्य इत्येव सूत्रम् । अनन्तरश्च यत्प्रत्ययो विधीयते । तथा च वध्यशब्दव्युत्पादनाय कर्याब्विधावुक्तं, हनो वध च तद्धितो वेति । यदि चात्र यद्विधीयते तत एव तदुपपद्यते तद्धितो वेति, कथम् । क्वाप्यप्याद्युदात्तत्वं, यत्यपि यतो नाव इत्याद्युदात्तत्वं, यदि त्वत्र यो विधीयेत ततः स्वरे विशेषादनुपपन्नमेतत्स्यादिति पदमञ्जरी । दीक्षितनागेशयोरप्येतदेव संमतम् ।

त्यस्मिन्विषये । ठञोऽपवादौ । यज्ञियो ब्राह्मणः । आर्त्विजीनो ब्राह्मणः ॥ यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ यज्ञकर्मार्हति, यज्ञियो देशः । ऋत्विक्कर्मार्हति, आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम् । आर्हीयाणां ठगादीनां पूर्णोऽवधिः ॥ अतः परं प्राग्वतीयष्ठञेव भवति ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ॥ ७२ ॥

समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते । अर्हतीति निवृत्तम् । पारायणादिभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो वर्त्तयतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । पारायणं वर्त्तयत्यधीते, पारायणिकश्छात्रः । तौरायणिको यजमानः । चान्द्रायणिकस्तपस्वी ॥

संशयमापन्नः ॥ ७३ ॥

संशयशब्दाद्द्वितीयासमर्थादापन्न इत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । संशयमापन्नः प्राप्तः सांशयिकः स्थाणुः ॥

योजनं गच्छति ॥ ७४ ॥

योजनशब्दाद्द्वितीयासमर्थाद्गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । योजनं गच्छति, यौजनिकः ॥ क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ क्रोशशतं गच्छति, क्रौशशतिकः । यौजनशतिकः ॥ ततोऽभिगमनमर्हतीति च क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ क्रोशशतादभिगमनमर्हति, क्रौशशतिको भिक्षुः । यौजनशतिक आचार्यः ॥

पथः ष्कन् ॥ ७५ ॥

पथिन्शब्दाद् द्वितीयासमर्थाद्गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे ष्कन्प्रत्ययो भवति । नकारः स्वरार्थः । षकारो ङीषर्थः । पन्थानं गच्छति पथिकः । पथिकी ॥

पन्थो ण नित्यम् ॥ ७६ ॥

नित्यग्रहणं प्रत्ययार्थविशेषणम् । पथः पन्थ इत्ययमादेशो भवति णश्च प्रत्ययो नित्यं गच्छतीत्यस्मिन्विषये । पन्थानं नित्यं गच्छति, पान्थो भिक्षां याचते । नित्यमिति किम् । पथिकः ॥

उत्तरपथेनाहृतं च ॥ ७७ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । उत्तरपथशब्दात्तृतीयासमर्थादाहृतमित्येतस्मिन्विषये ठञ् प्रत्ययो भवति । चकारः प्रत्ययार्थसमुच्चये, गच्छतीति च । अत्रापि तृतीयैव समर्थविभक्तिः । उत्तरपथेनाहृत,मौत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति, औत्तरपथिकः ॥ आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वारिपथेनाहृतं, वारिपथिकम् । वारिपथेन गच्छति, वारिपथिकः । जङ्गलपथेनाहृतं, जाङ्गलपथिकम् । जङ्गलपथेन गच्छति, जाङ्गलप-

थिकः । स्थलपथेनाहृतं, स्थालपथिकम् । स्थलपथेन गच्छति, स्थालपथिकः । कान्तारपथेनाहृतं, कान्तारपथिकम् । कान्तारपथेन गच्छती, कान्तारपथिकः ॥ अजपथशङ्कुपथाभ्यां चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ अजपथेनाहृतं,गच्छति वा, ऽऽजपथिकः । शङ्कुपथेनाहृतं, गच्छति वा, शाङ्कुपथिकः ॥ मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ॥ * ॥ स्थलपथेनाहृतं स्थालपथं मधुकम् । स्थालपथं मरिचम् ॥

कालात् ॥ ७८ ॥

कालादित्यधिकारः । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः कालादित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । तेन निर्वृत्तम् । मासेन निर्वृत्तं, मासिकम् । आर्द्धमासिकम् । सांवत्सरिकम् । कालादित्यधिकारो व्युष्टादिभ्योऽणिति यावत् ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ७९ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकान्निर्वृत्तमित्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अह्ना निर्वृत्त,माह्निकम् । आर्द्धमासिकम् । सांवत्सरिकम् ॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥ ८० ॥

तमिति द्वितीयासमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकादधीष्टो भृतो भूतो वा भावीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । अधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः । भृतो, वेतनेन क्रीतः । भूतः स्वसत्तया व्याप्तकालः । भावी तादृश एवानागतः । कालाध्वनोरिति द्वितीया । मासमधीष्टो, मासिको ऽध्यापकः । मासं भृतो, मासिकः कर्मकरः । मासं भूतो, मासिको व्याधिः । मासं भावी, मासिक उत्सवः । ननु चाध्येषणं भरणं च मुहूर्त्तं क्रियते तेन कथं मासो व्याप्यते । अध्येषणभरणे क्रियार्थे, तत्र फलभूतया क्रियया मासो व्याप्यमानस्ताभ्यामेव व्याप्त इत्युच्यते ॥

मासाद्वयसि यत्खञौ ॥ ८१ ॥

मासशब्दाद्वयस्यभिधेये यत्खञौ प्रत्ययौ भवतः । ठञो ऽपवादौ । अधीष्टादीनां चतुर्णामधिकारेऽपि सामर्थ्याद्भूत इत्येतदभिसंबध्यते । मासं भूतो, मास्यो, मासीनः । वयसीति किम् । मासिकम् ॥

द्विगोर्यप् ॥ ८२ ॥

मासाद्वयसीति वर्तते । मासान्ताद् द्विगोर्यप् प्रत्ययो भवति वयस्यभिधेये । द्वौ मासौ भूतः, द्विमास्यः । त्रिमास्यः ॥

षण्मासाण्ण्यच्च ॥ ८३ ॥

वयसीत्येव । षण्मासशब्दाद्वयस्यभिधेये ण्यत् प्रत्ययो भवति, यप् च । चौत्सर्गिकष्ठञपीष्यते, स चकारेण समुच्चेतव्यः । स्वरितत्वाच्चानन्तरो ऽनुवर्त्तिष्यते । तेन त्रैरूप्यं भवति । षाण्मास्यः । षण्मास्यः । षाण्मासिकः ॥

अवयसि ठंश्च ॥ ८४ ॥

षण्मासशब्दादवयस्यभिधेये ठञ् प्रत्ययो भवति । चकारेणानन्तरण्यस्य समुच्चयः क्रियते * । षण्मासिको रोगः । षाण्मास्यः ॥

समायाः खः ॥ ८५ ॥

अधीष्टादयश्चत्वारो ऽर्था अनुवर्त्तन्ते । समाशब्दाद् द्वितीयासमर्थाद् अधीष्टादिष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति । ठञोऽपवादः । सममधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, समीनः । केचित्तु तेन निर्वृत्तमिति सर्वत्रानुवर्त्तयन्ति । समया निर्वृत्तः, समीनः ॥

द्विगोर्वा ॥ ८६ ॥

समायाः ख इत्येव । समाशब्दान्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषु पञ्चसु वा खः प्रत्ययो भवति । पूर्वेण नित्यः प्राप्तो विकल्प्यते । प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकीति प्राप्तिरस्त्येव । खेन मुक्ते पक्षे ठञपि भवति । द्विसमीनः । द्वैसमिकः । त्रिसमीनः । त्रैसमिकः ॥

रात्र्यहस्संवत्सराच्च ॥ ८७ ॥

† रात्रि अहः संवत्सर इत्येवमन्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषु वा खः प्रत्ययो भवति । खेन मुक्ते पक्षे ठञपि भवति । द्विरात्रीणः । द्वैरात्रिकः । त्रिरात्रीणः । त्रैरात्रिकः । द्व्यहीनः, द्वैयह्निकः । त्र्यहीणः । त्रैयह्निकः । द्विसंवत्सरीणः । द्विसांवत्सरिकः । त्रिसंवत्सरीणः । त्रिसांवत्सरिकः । संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य चेत्युत्तरपदवृद्धिः ॥

वर्षाल्लुक् च ॥ ८८ ॥

द्विगोरित्येव । वर्षान्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषु वा खः प्रत्ययो भवति । पक्षे ठञ् । तयोश्च वा लुग्भवति । एवं त्रीणि रूपाणि भवन्ति । द्विवर्षीणो व्याधिः । द्विवार्षिकः । द्विवर्षः । त्रिवर्षीणः । त्रिवार्षिकः । त्रिवर्षः । वर्षस्याभविष्यतीत्युत्तरपदवृद्धिः । भाविनि तु त्रैवर्षिकः ॥

चित्तवति नित्यम् ॥ ८९ ॥

चित्तवति प्रत्ययार्थे ऽभिधेये वर्षशब्दान्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषूत्पन्नस्य प्रत्ययस्य ‡ नित्यं लुग्भवति । पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते वचनम् । द्विवर्षो दारकः । चित्तवतीति किम् । द्विवर्षीणो व्याधिः ॥

---

* चकारो ऽनन्तरस्य यतः समुच्चयार्थः । पा० २ ।

† द्विगोरित्येवेत्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु ।

‡ निर्वृत्तादिष्वर्थेषूत्पन्नस्य प्रत्ययस्येति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ॥ ९० ॥

षष्टिकशब्दो निपात्यते, बहुवचनमतन्त्रम् । षष्टिरात्रशब्दात्तृतीयासमर्थात्कन् प्रत्ययो निपात्यते पच्यन्तइत्येतस्मिन्नर्थे, रात्रिशब्दस्य च लोपः । षष्टिरात्रेण पच्यन्ते षष्टिकाः । संज्ञैषा धान्यविशेषस्य । तेन मुद्गादिष्वतिप्रसङ्गो न भवति ॥

वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि ॥ ९१ ॥

वत्सरान्तात्प्रातिपदिकान्निर्वृत्तादिष्वर्थेषु छन्दसि विषये छः प्रत्ययो भवति । ठञोपवादः । इद्वत्सरीयः । इदावत्सरीयः ॥

संपरिपूर्वात्ख च ॥ ९२ ॥

संपरिपूर्वाद्वत्सरान्तात्प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये निर्वृत्तादिष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति, चकाराच्छश्च । संवत्सरीणः । परिवत्सरीणः । संवत्सरीयः । परिवत्सरीयः ॥

तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ॥ ९३ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकात्परिजय्य लभ्य कार्य सुकर इत्येतेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति । मासेन परिजय्यः, शक्यते जेतुं, मासिको व्याधिः । सांवत्सरिकः । मासेन लभ्यः, मासिकः पटः । मासेन कार्यं, मासिकं चान्द्रायणम् । मासेन सुकरो, मासिकः प्रासादः ॥

तदस्य ब्रह्मचर्यम् ॥ ९४ ॥

तदिति द्वितीया समर्थविभक्तिः । सा चात्यन्तसंयोगे । अस्येति प्रत्ययार्थः । ब्रह्मचर्यमिति द्वाभ्यामपि संबध्यते । कालस्य व्यापकं, प्रत्ययार्थस्य च स्वमिति । तदिति द्वितीयासमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति ब्रह्मचर्यं चेद्गम्यते । मासं ब्रह्मचर्यमस्य, मासिको ब्रह्मचारी । आर्द्धमासिकः । सांवत्सरिकः । अपरा वृत्तिः । तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत्तदस्येति निर्द्दिष्टं ब्रह्मचर्यं चेद्भवति । मासोस्य ब्रह्मचर्यस्य मासिकं ब्रह्मचर्यम् । आर्द्धमासिकम् । सांवत्सरिकम् । पूर्वत्र ब्रह्मचारी प्रत्ययार्थ, उत्तरत्र ब्रह्मचर्यमेव । उभयमपि प्रमाणमुभयथा सूत्रप्रणयनात् ॥ महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ माहानामिकम् । गौदानिकम् । आदित्यव्रतिकम् ॥ तच्चरतीति च * ॥ * ॥ महानाम्न्य ऋचः, तत्सहचरितं व्रतं तच्छब्देनोच्यते । महानाम्नीश्चरति माहानामिकः । आदित्यव्रतिको, गौदानिकः । भस्याढेति पुंवद्भावेन ङीपि निवृत्ते

---

* तच्चरतीति महानाम्न्यादिभ्य उपसंख्यानम् । पा० २ ।

नस्तद्धितइति टिलोपः * ॥ अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ अवान्तरदीक्षां चरति, अवान्तरदीक्षी । तिलव्रती ॥ अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च डिनिश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतं चरति, अष्टाचत्वारिंशकः । अष्टाचत्वारिंशी ॥ चातुर्मास्यानां यलोपश्च ड्वुंश्च डिनिश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ चातुर्मास्यानि चरति, चातुर्मासकः । चातुर्मासी ॥ चतुर्मासाद् ण्यो यज्ञे ॥ * ॥ तत्र भवे । चतुर्षु मासेषु भवानि, चातुर्मास्यानि ॥ संज्ञायामण्वक्तव्यः ॥ * ॥ चतुर्षु मासेषु भवा, चातुर्मासी पौर्णमासी । आषाढी । कार्त्तिकी । फाल्गुनी ॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ९५ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थेभ्यो यज्ञाख्येभ्यो दक्षिणेत्येतस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अग्निष्टोमस्य दक्षिणा, आग्निष्टोमिकी । वाजपेयिकी । राजसूयिकी । आख्याग्रहणमकालादपि यज्ञवाचिनो यथा स्यादिति । इतरथा हि कालाधिकारादेकाहद्वादशाहप्रभृतय एव यज्ञा गृह्येरन् । प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकीति कालाधिकारेऽपि द्वादशाहादिष्वस्ति प्राप्तिः ॥

तत्र च दीयते कार्यं भववत् ॥ ९६ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थात्कालवाचिनः प्रातिपदिकाद्दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोर्भववत्प्रत्ययो भवति । यथा । मासे भवं, मासिकम् । सांवत्सरिकम् । प्रावृषेण्यम् । वासन्तिकम् । वासन्तम् । हैमनम् । हैमन्तम् । हैमन्तिकम् । शारदम् । वतिः सर्वसादृश्यार्थः । योगविभागश्चात्र कर्तव्यः । तत्र च दीयते, यज्ञाख्येभ्य इति । आग्निष्टोमिकं भक्तम् । राजसूयिकम् । वाजपेयिकम् । कालाधिकारस्य पूर्वो ऽवधिः ॥ अतः परं सामान्येन प्रत्ययविधानम् ॥

व्युष्टादिभ्यो ऽण् ॥ ९७ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थेभ्यो व्युष्टादिभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोरण् प्रत्ययो भवति । व्युष्टे दीयते कार्यं वा, वैयुष्टम् । नैत्यम् ॥ अण्प्रकरणे अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ † अत्रैव ते पठितव्याः । व्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संभ्रम । आस्तरण । संग्राम । संघात । अग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । ‡ व्युष्टादिः ॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ९८ ॥

---

* भस्याढ इति पुंवद्भावेन ङीपि निवृत्ते नस्तद्धितइति टिलोप इत्यधिकमत्र । परं त्वयमपपाठः । पदमञ्जर्यां दर्शनात् ।

† उपसंख्यानमित्यस्याग्रे आग्निपदम् । पैलुमूलम् । किं वक्तव्यम् । न वक्तव्यमित्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु ।

‡ दीर्घ । उपवास । इत्येतौ शब्दावत्र गणे ऽधिकौ कुत्र चित् ।

दीयते कार्यमिति वर्त्तते। तेनेति तृतीयासमर्थाभ्यां यथाकथाचहस्तश-ब्दाभ्यां यथासंख्यं णयतौ प्रत्ययौ भवतः। दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोः प्रत्ये-कमभिसंबन्धो, यथासंख्यं नेष्यते। यथाकथाचशब्दो ऽव्ययसमुदायो ऽनादरे वर्त्तते। तृतीयार्थमात्रं चात्रसंभवति, न तु तृतीया समर्थविभक्तिः। यथाकथाच दीयते कार्यं वा, याथाकथाचम्। हस्तेन दीयते कार्यं वा, हस्त्यम् ॥

संपादिनि ॥ ९९ ॥

तेनेत्येव। तृतीयासमर्थात्संपादिन्यभिधेये ठञ् प्रत्ययो भवति। गुणो-त्कर्षः संपत्तिः। आवश्यके णिनिः। कर्णवेष्टकाभ्यां संपादि मुखं, कार्णवेष्टकिकं मुखम्। वास्त्रयुगिकं शरीरम्। वस्त्रयुगेन विशेषतः शोभतइत्यर्थः ॥

कर्मवेषाद्यत् ॥ १०० ॥

कर्मवेषशब्दाभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यां यत्प्रत्ययो भवति संपादिनीत्येत-स्मिन्विषये। ठञोपवादः। कर्मणा संपद्यते, कर्मण्यं शरीरम्। वेषेण संप-द्यते, वेष्यो नटः ॥

तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ १०१ ॥

तस्मादिति चतुर्थीसमर्थेभ्यः संतापादिभ्यः प्रभवतीत्यस्मिन्विषये ठञ् प्रत्ययो भवति। समर्थः शक्तः प्रभवतीत्युच्यते। अलमर्थे चतुर्थी। संतापाय प्रभवति, सांतापिकः। सान्नाहिकः। संताप। संनाह। संग्राम। संयोग। संप-राय। संपेष। निष्पेष। निसर्ग। असर्ग। विसर्ग। उपसर्ग। उपवास। प्रवास। संघात। संमोदन। सक्तु ॥ मांसौदनाद्विगृहीतादपि * ॥

योगाद्यच्च ॥ १०२ ॥

योगशब्दाद्यत्प्रत्ययो भवति, चकाराद् ठञ्, तस्मै प्रभवतीत्यस्मिन्वि-षये। योगाय प्रभवति, योग्यः। यौगिकः ॥

कर्मण उकञ् ॥ १०३ ॥

कर्मशब्दादुकञ् प्रत्ययो भवति तस्मै प्रभवतीत्येतस्मिन्नर्थे। ठञो ऽप-वादः। कर्मणे प्रभवति, कार्मुकं धनुः। धनुषोन्यत्र न भवति, अनभिधानात् † ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥ १०४ ॥

समयशब्दात् तदिति प्रथमासमर्थाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति

* निर्घोष। सर्ग। संपात। संवाद। संवेशन। इत्येते शब्दा अत्र गणे ऽधिका बहुषु पुस्तकेषु। तत्रैकस्मिन्पुस्तके संवेशनेत्यत्र संवेशेति पा० २।

† धनुषोन्येत्यारभ्य अनभिधानादित्यन्तो ग्रन्थो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति। अपपाठः, पद-मञ्जर्यां दर्शनात्।

यत्तत्प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेद्भवति । समयः प्राप्तोऽस्य, सामयिकं कार्यम् । उपनतकालमित्यर्थः । समर्थविभक्तिनिर्देशउत्तरार्थः ॥

ऋतोरण् ॥ १०५ ॥

तदस्य प्राप्तमित्यनुवर्त्तते । ऋतुशब्दात्तदिति प्रथमा समर्थाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ऽण् प्रत्ययो भवति तदस्य प्राप्तमित्येतस्मिन् विषये * । ऋतुः प्राप्तोऽस्य, आर्त्तवं पुष्पम् ॥ तदस्य प्रकरणे उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ उपवस्ता प्राप्तोऽस्य औपवस्त्रम् । प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम् ॥

छन्दसि घस् ॥ १०६ ॥

ऋतुशब्दाच्छन्दसि विषये घस् प्रत्ययो भवति तदस्य प्राप्तमित्यस्मिन्विषये । अणोपवादः । अयं ते योनिर्ऋत्वियः ॥

कालाद्यत् ॥ १०७ ॥

कालशब्दाद्यत्प्रत्ययो भवति तदस्य प्राप्तमित्यस्मिन्विषये । कालः प्राप्तोऽस्य काल्यस्तापः । काल्यं शीतम् † ॥

प्रकृष्टे ठञ् ॥ १०८ ॥

कालादित्येव, तदस्येति च । प्राप्तमिति निवृत्तम् । प्रकर्षेण कालो विशेष्यते । प्रकर्षे वर्तमानात्कालात्प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । प्रकृष्टो दीर्घः कालोऽस्य, कालिकमृणम् । कालिकं वैरम् । ठञ्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् ॥

प्रयोजनम् ॥ १०९ ॥

तदस्येत्येव । तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत्तद्भवति । इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य, ऐन्द्रमहिकम् गाङ्गामहिकम् ॥

विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः ॥ ११० ॥

विशाखाषाढाशब्दाभ्यामण् प्रत्ययो भवति तदस्य प्रयोजनमित्येतस्मिन्विषये यथासंख्यं मन्थदण्डयोरभिधेययोः । विशाखा प्रयोजनमस्य, वैशाखो मन्थः । आषाढो दण्डः ॥ चूडादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ चूडा प्रयोजनमस्य चौडम् । श्रद्धा प्रयोजनमस्य, श्राद्धम् ॥

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ १११ ॥

---

* ऋतुशब्दात्प्रथमासमर्थात्प्राप्तोपाधिकादस्येति षष्ठ्यर्थे अण् प्रत्ययो भवति । पा० २ अयमेव च पाठो युक्तः ।

† गीतम् । पा० २ ।

अनुप्रवचनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छः प्रत्ययो भवति तदस्य प्रयोजनमित्यस्मिन्विषये। ठञोपवादः। अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, अनुप्रवचनीयम्। उत्थापनीयम् ॥ विशिपूरिपतिरुहि*प्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य, गृहप्रवेशनीयम्। प्रपापूरणीयम्। अश्वप्रपतनीयम्। प्रासादारोहणीयम् ॥ स्वर्गादिभ्यो यद्वक्तव्यः ॥ * ॥ स्वर्गः प्रयोजनमस्य, स्वर्ग्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्। काम्यम्। धन्यम् ॥ पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य, पुण्याहवाचनम्। स्वस्तिवाचनम्। शान्तिवाचनम्। अनुप्रवचन। उत्थापन। प्रवेशन। अनुप्रवेशन। उपस्थापन। संवेशन। अनुवेशन। अनुवचन। अनुवादन। अनुवासन। आरम्भण। आरोहण। प्ररोहण। अन्वारोहण। अनुप्रवचनादिः ॥

समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ११२ ॥

समापनशब्दात्सपूर्वपदाद्विद्यमानपूर्वपदाच्छः प्रत्ययो भवति तदस्य प्रयोजनमित्येतस्मिन्विषये। ठञोपवादः। छन्दस्समापनं प्रयोजनमस्य छन्दःसमापनीयम्। व्याकरणसमापनीयम्। पदग्रहणं बहुच्पूर्वनिरासार्थम् ॥

ऐकागारिकट् चौरे ॥ ११३ ॥

ऐकागारिकड् इति निपात्यते चौरेऽभिधेये। एकागारं प्रयोजनमस्य, ऐकागारिकः चौरः। ऐकागारिकी। किमर्थमिदं निपात्यते। यावता प्रयोजनमित्येव सिद्धष्ठञ्। चौरे नियमार्थं वचनम्। इह मा भूत्। एकागारं प्रयोजनमस्य भिक्षोरिति। टकारः कार्यावधारणार्थः। ङीबेव भवति, न ञित्स्वर इति। अपरे पुनरिकट् प्रत्ययं वृद्धिं च निपातयन्ति ॥

आकालिकडाद्यन्तवचने ॥ ११४ ॥

आकालिकड् इति निपात्यते आद्यन्तवचने। समानकालशब्दस्याकालशब्द आदेशः। आद्यन्तयोश्चैतद्विशेषणम्। इकट् प्रत्ययश्च निपात्यते। समानकालावाद्यन्तावस्य, आकालिकः स्तनयित्नुः। आकालिकी विद्युत्। जन्मना तुल्यकालविनाशा। उत्पत्त्यानन्तरं विनाशीत्यर्थः ॥ आकालाट्‌ ठंश्च, ॥ * ॥ चात् ठञ् च। आकालिका विद्युत्। ठञः पूर्णावधिः ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥ ११५ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थात्तुल्यमित्यर्थे वतिः प्रत्ययो भवति यत्तुल्यं क्रिया चेत्सा भवति। ब्राह्मणेन तुल्यं वर्तते, ब्राह्मणवत्। राजवत्। क्रियाग्रहणं

* रुहीत्यस्याग्रे पदीत्यधिकं, प्रपदनीयमित्युदाहरणं चाधिकमेकस्मिन्पुस्तके। परं तु पदमञ्जर्यसंमतस्तस्य पाठः। भाष्यपुस्तकेषु तु विशिपूरिपदीत्येव पाठ उपलभ्यते।

किम् । गुणद्रव्य*तुल्ये मा भूत् । पुत्रेण सह स्थूलः । पुत्रेण तुल्यः पिङ्गलः । पुत्रेण तुल्यो गोमान्† ॥

तत्र तस्येव ॥ ११६ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थात्तस्येति षष्ठीसमर्थाच्च इवार्थे वतिः प्रत्ययो भवति । मथुरायामिव, मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः‡ । पाटलिपुत्रवत्साकेते परिखा । षष्ठीसमर्थात् । देवदत्तस्येव देवदत्तवद् यज्ञदत्तस्य गावः । यज्ञ, दत्तस्येव देवदत्तस्य दन्ताः यज्ञदत्तवत्§ ॥

तदर्हम् ॥ ११७ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादर्हमित्येतस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति । राजानमर्हति, राजवत्पालनम् । ब्राह्मणवत् । ऋषिवत् । क्षत्रियवत् ॥

उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ॥ ११८ ॥

उपसर्गात्साधने धात्वर्थे वर्त्तमानात्स्वार्थे वतिः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये । यदुद्वतो निवतो यासि वप्सद्, उद्गतानि निगतानि च ॥

तस्य भावस्त्वतलौ ॥ ११९ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाद् भाव इत्येतस्मिन्नर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ भवतोऽस्मादभिधानप्रत्ययाविति भावः । शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावशब्देनोच्यते । अश्वस्य भावो, ऽश्वत्वम् । अश्वता । गोत्वम् । गोता ॥

आ च त्वात् ॥ १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इति वक्ष्यति । आ एतस्मात्त्वसंशब्दनाद् यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्याम,स्तत्र त्वतलौ प्रत्ययावधिकृतौ वेदितव्यौ । वक्ष्यति । पृथ्वादिभ्य इमनिज्वेति । प्रथिमा । पार्थवम् । पृथुत्वम् । पृथुता । म्रदिमा । मार्दवम् । मृदुत्वम् । मृदुता । अपवादैः सह समावेशार्थं वचनम् । कर्मणि च विधानार्थं गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चेति । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रियाः भावः,स्त्रैणम् । स्त्रीत्वम् । स्त्रीता । पुंसो भावः, पुंस्त्वम् । पुंस्ता । पौंस्नम् ॥

न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटबुधकतरसलसेभ्यः ॥ १२१ ॥

इत उत्तरे ये भावप्रत्ययास्ते नञ्पूर्वात्तत्पुरुषान्न भवन्ति चतुरादीन्वर्ज-

---

* द्रव्येति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† पुत्रेण तुल्या गोमानिति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

‡ प्रासाद इति पा० २ ।

§ देवदत्तवद्यज्ञदत्तस्य दन्ता इति पा० २ ।

यित्वा । वक्ष्यति । पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यगिति । अपतित्वम् । अपतिता । अपटुत्वम् । अपटुता । अरमणीयत्वम् । अरमणीयता । नञ्पूर्वादिति किम् । बार्हस्पत्यम् । प्राजापत्यम् । तत्पुरुषादिति किम् । नास्य पटवः सन्तीत्यपटुः, तस्य भाव आपटवम् । आलघवम् । अचतुरादिभ्य इति किम् । आचतुर्यम् । आसंगत्यम् । आलवण्यम् । आवट्यम् । आबुध्यम् । आकत्यम् । आरस्यम् । आलस्यम् ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ १२२ ॥

पृथु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इमनिच्प्रत्ययो भवति वा तस्य भाव इत्येतस्मिन्नर्थे । वावचनमणादेः समावेशार्थम् । पृथोर्भावः, प्रथिमा । पार्थवम् । म्रदिमा । मार्दवम् । तुरिष्ठेमेयस्सु टेरिति टिलोपः । र ऋतो हलादेर्लघोरिति रेफादेशः* । त्वतलौ सर्वत्र भवत एव । पृथुत्वम् । पृथुता । मृदुत्वम् । मृदुता । पृथु । मृदु । महत् । पटु । तनु । लघु । बहु । साधु । वेणु । आसु । बहुल । गुरु । दण्ड । ऊरु । खण्ड । चण्ड । बाल । अकिंचन । होड । पाक । वत्स । मन्द । स्वादु । ह्रस्व । दीर्घ । प्रिय । वृष । ऋजु । क्षिप्र । क्षुद्र । पृथ्वादिः ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ १२३ ॥

वर्णविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दृढादिभ्यश्च ष्यञ् प्रत्ययो भवति, चकारादिमनिच्च, तस्य भाव इत्येतस्मिन्विषये । शुक्लस्य भावः, शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । कार्ष्ण्यम् । कृष्णिमा । कृष्णत्वम् । कृष्णता । दृढादिभ्यः । दार्ढ्यम् । द्रढिमा । दृढत्वम् । दृढता । षकारो ङीषर्थः । औचिती । यथाकामी । दृढ । परिवृढ । भृश । कृश । चक्र । आम्र । लवण । ताम्र । अम्ल । शीत । उष्ण । जड । बधिर । पण्डित । मधुर । मूर्ख । मूक । वेर्यातलाभमतिमनःशारदानाम् ॥ समो मतिमनसोर्जवने†‡ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ १२४ ॥

गुणमुक्तवन्तो गुणवचनाः । गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च तस्येति षष्ठीसमर्थेभ्यः कर्मण्यभिधेये ष्यञ्प्रत्ययो भवति । चकाराद् भावे च । कर्मशब्दः क्रियावचनः । जडस्य भावः कर्म वा, जाड्यम् । ब्राह्मणादिभ्यः खल्वपि । ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । आ पादपरिसमाप्तेर्भावकर्माधिकारः ।

---

* तुरिष्ठेमेयस्स्वित्यारभ्य रेफादेश इत्यन्तं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† जवन इति बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते ।

‡ बाल । तरुण । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मूढ । आकृष्ट । इत्येते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः ।

ब्राह्मणादिराकृतिगणः । आदिशब्दः प्रकारवचनः ॥ चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ-उपसंख्यानम् ॥ * ॥ चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैलोक्यम् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् । सौख्यम् । ब्राह्मण । वाडव । माणव । चोर । मूक । आराधय । विराधय । अपराधय । उपराधय । एकभाव । द्विभाव । त्रिभाव । अन्यभाव । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ । मध्यमस्थ । अनीश्वर । कुशल । कपि । चपल । क्षेत्रज्ञ । निपुण ॥ अर्हतो नुम् च ॥ आर्हन्त्यम् । संवादिन् । संवेशिन् । बहुभाषिन् । बालिश । दुष्पुरुष । कापुरुष । दायाद । विशसि । धूर्त्त । राजन् । संभाषिन् । शीर्षपातिन् । अधिपति । अलस । पिशाच । पिशुन । विशाल । गणपति । धनपति । नरपति । गडुल । निव । निधान । विष ॥ सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे ॥ चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ॥ चातुर्वैद्यम् * ॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥ १२५ ॥

स्तेनशब्दात्षष्ठीसमर्थाद्भावकर्मणोर्यत्प्रत्ययो भवति, नशब्दस्य लोपश्च भवति । स्तेनस्य भावः कर्म वा, स्तेयम् । स्तेनादिति केचिद् योगविभागं कुर्वन्ति । स्तेनात्ष्यञ्भवति । स्तैन्यम् । ततो यन्नलोपश्च, स्तेयम् ॥

सख्युर्यः ॥ १२६ ॥

शखिशब्दाद् यः प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः सख्युर्भावः कर्म वा, सख्यम् ॥ दूतवणिग्भ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ दूत्यम् । वणिज्यम् । कथं वाणिज्यम् । ब्राह्मणादित्वात् ॥

कपिज्ञात्योर्ढक् ॥ १२७ ॥

कपिज्ञातिशब्दाभ्यां ढक् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः । कपेर्भावः कर्म वा, कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥ यथासंख्यमर्थयोः सर्वत्रैवात्र प्रकरणे नेष्यते ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ १२८ ॥

पत्यन्तात्प्रातिपदिकात्पुरोहितादिभ्यश्च यक् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः । सेनापतेर्भावः कर्म वा, सैनापत्यम् । गार्हपत्यम् । प्राजापत्यम् । पौरोहित्यम् । राज्यम् । पुरोहित । राजन् । संग्रामिक । एषिक । वर्मित ।

---

* स्वभाव । निघातिन् । विघातिन् । राजपुरुष । विग्रस्ति । विशाय । विशात । विजान । नयात । सुहित । दीन । विदग्ध । उचित । शमय । शली । तत्पर । इदंपर । यथातथा । पुरस् । पुनःपुनर् । अभीक्ष्ण । तरतम । प्रकाम । यथाकाम । निष्कुल । स्वराज । महाराज । युवराज । सम्राज् । अविदूर । अपिशुन । अनृशंस । अयथातथ । अयथापुर । स्वधर्म । अनुकूल परिमण्डल । विश्वरूप । ऋत्विज् । उदासीन । ईश्वर । प्रतिभू । साक्षि । मानुष । आस्तिक नास्तिक । युगपत् । पूर्वापर । उत्तराधर । एते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

खण्डिक । दण्डिक । छत्रिक । मिलिक । पिण्डिक । बाल । मन्द । स्तनिक । चूडितिक । कृषिक । पूतिक । पत्रिक । प्रतिक । अजानिक । सलनिक । सूचिक । राक्षर । सूचक । पत्तिक । सारथिक । नलिक । सूतिक । अञ्जलिक । सूचक * ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ १२९ ॥

प्राणभृज्जातिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्चाञ् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः । अश्वस्य भावः कर्म वा, आश्वम् । औष्ट्रम् । वयोवचनेभ्यः । कौमारम् । कैशोरम् । उद्गात्रादिभ्यः । औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् । उद्गातृ । उन्नेतृ । प्रतिहर्तृ । रथगणक । पक्षिगणक † । सुष्ठु । दुष्ठु । अध्वर्यु । वधू ॥ सुभगमन्त्रे ‡ ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥ १३० ॥

हायनान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः युवादिभ्यश्चाण् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोरर्थयोः । द्विहायनस्य भावः कर्म वा, द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । युवादिभ्यः । यौवनम् । स्थाविरम् ॥ श्रोत्रियस्य यलोपश्च वाच्यः ॥ * ॥ श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा, श्रौत्रम् । युवन् । स्थविर । होतृ । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषासे ॥ सुहृत् । यातृ । श्रवण । कुस्त्री । सुस्त्री । सुहृदय । सुभ्रातृ । वृषल । दुर्भ्रातृ ॥ हृदयासे ॥ चेत्रज्ञ । कृतक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशुन । सब्रह्मचारिन् । कुतूहल । अनृशंस § । युवादिः ॥

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ॥ १३१ ॥

इगन्ताच्च लघुपूर्वादण् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोः । लघुपूर्वग्रहणेन प्रातिपदिकसमुदायो विशेष्यते । लघुः पूर्वो ऽवयवो ऽस्येति लघुपूर्वः । कुतः पुनरसौ लघुः पूर्वः । इक्संनिधानादिक इति विज्ञायते । लघुपूर्वो यस्मादिकः तदन्तात्प्रातिपदिकादित्ययमर्थो विवक्षितः । अपरे तत्पुरुषकर्मधारयं वर्णयन्ति । इक्चासावन्तश्चेतीगन्तः । लघुपूर्वग्रहणेन स एव विशेष्यते । पश्चात्तेन प्रातिपदिकस्य तदन्तविधिरिति । अस्मिन्व्याख्याने ऽन्तग्रहणमतिरिच्यते । लघुपूर्वादिक । इत्येतावदेव वाच्यं स्यात् । शुचेर्भावः कर्म वा, शौचम् ।

---

* शर्मिक । चर्मिक । कार्मिक । शौलिक । मूलिक । तिलिका । तिष्यिक । अञ्जलिका । ऋषिक । पुत्रक । पथिका । प्रचिक । प्रविक । परिचक । पूजनिक ॥ राजासे ॥ मूचिक । स्वरिक । चूडिक । एते शब्दा अत्र गणे पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

† पत्रिगणक । पा० २ ।

‡ प्रशास्तृ । होतृ । पोतृ । कर्तृ । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः कुत्र चित् ।

§ भ्रातृ । कुचुक । कन्दुक । दुःस्त्री । दुर्हृदय । दुर्हृत् । मिथुन । कुलली । मक्षव । कतक । कितव । पोत । एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

मौनम् । नागरम् । हारीतकम् । पाटवम् । लाघवम् । इगन्तादिति किम् । पटुत्वम् । लघुत्वम् । लघुपूर्वादिति किम् । कण्डूत्वम् । पाण्डुत्वम् । कथं काव्यमिति । ब्राह्मणादिषु कविशब्दो द्रष्टव्यः ॥

योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् ॥ १३२ ॥

त्रिप्रभृतीनामन्त्यस्य समीपमुपोत्तमम् । गुरूरुपोत्तमं यस्य तद्गुरूपोत्तमम् । यकारोपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोः । रमणीयस्य भावः कर्म वा, रामणीयकम् । वासनीयकम् । योपधादिति किम् । विमानत्वम् * । गुरूपोत्तमादिति किम् । क्षत्रियत्वम् ॥ सहायाद्वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ साहायकम् । साहाय्यम् ॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ १३३ ॥

द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च वुञ् प्रत्ययो भवति भावकर्मणोः । गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा, गौपालपशुपालिका । शैष्योपाध्यायिका । कौत्सकुशिकिका । मनोज्ञादिभ्यः । मानोज्ञकम् । काल्याणकम् । मनोज्ञ । कल्याण । प्रियरूप । छान्दस । छात्र । मेधाविन् । अभिरूप । आढ्य । कुलपुत्र । श्रोत्रिय । चोर । धूर्त । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्रामखण्ड । ग्रामकुमार । अमुष्यपुत्र । अमुष्यकुल । शतपुत्र । कुशल । मनोज्ञादिः † ॥

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ॥ १३४ ॥

गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति प्रत्येकं भावकर्मणोरर्थयोः श्लाघादिषु विषयभूतेषु । तत्र श्लाघा विकत्थनम् । अत्याकारः पराधिक्षेपः तदवेतस्तत्प्राप्तस्तज्ज्ञो वा । तदिति गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी निर्दिश्येते । तत्प्राप्तस्तदवगतवान् तदवेत इत्युच्यते । श्लाघायां तावत् । गार्गिकया श्लाघते । काठिकया श्लाघते । गार्ग्यत्वेन कठत्वे विकत्थनइत्यर्थः । अत्याकारे । गार्गिकयात्याकुरुते । काठिकयात्याकुरुते । गार्ग्यत्वेन कठत्वेन परानधिक्षिपतीत्यर्थः । तदवेतः । गार्गिकामवेतः । काठिकामवेतः । गार्ग्यत्वं कठत्वं च प्राप्त इत्यर्थः । तद्वा ऽवगतवानित्यर्थः । श्लाघादिष्विति किम् । गार्ग्यत्वम् । कठत्वम् ॥

होत्राभ्यश्छः ॥ १३५ ॥

होत्राशब्द ऋत्विग्विशेषवचनः । ऋत्विग्विशेषवाचिभ्यश्छः प्रत्ययो भवति भावकर्मणोः । अच्छावाकस्य भावः कर्म वा, ऽच्छावाकीयम् । मित्रा-

---

* कुलीनत्वम् । पा० २ ।

† बहुल । अवश्य । अहोपुरुष । एते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः कुत्र चित् ।

वरुणीयम् । ब्राह्मणाच्छंसीयम् । आग्नीध्रम् । प्रतिप्रस्थात्रीयम् । त्वष्ट्रीयम् । पोत्रीयम् । बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

ब्रह्मणस्त्वः ॥ १३६ ॥

होत्राभ्य इत्यनुवर्त्तते । ब्रह्मन्शब्दाद्धोत्रावाचिनस्त्वः प्रत्ययो भवति भावकर्मणोः । छस्यापवादः । ब्रह्मणो भावः कर्म वा, ब्रह्मत्वम् । नेति वक्तव्ये त्ववचनं तलो बाधनार्थम् । यस्तु जातिशब्दो ब्राह्मणपर्यायो ब्रह्मन्शब्दस्ततस्त्वतलौ भवत एव । ब्रह्मत्वम् । ब्रह्मता । भवनावधिकयोर्नञ्स्नञोरधिकारः समाप्तः ॥

॥ इति काशिकायां वृत्तौ पञ्चमस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

॥ अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥ १ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । धान्यविशेषवाचिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो भवनेऽभिधेये खञ् प्रत्ययो भवति, तच्चेद्भवनं क्षेत्रं भवति । भवनमिति भवन्ति जायन्ते ऽस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् । कौद्रवीणम् । कौलत्थीनम् । धान्यानामिति किम् । तृणानां भवनं क्षेत्रमित्यत्र न भवति । क्षेत्रमिति किम् । मुद्गानां भवनं कुशूलम् । बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् ॥

व्रीहिशाल्योर्ढक् ॥ २ ॥

व्रीहिशालिशब्दाभ्यां ढक् प्रत्ययो भवति भवने क्षेत्रे ऽभिधेये । खञोऽपवादः । व्रीहीणां भवनं क्षेत्रं व्रैहेयम् । शालेयम् ॥

यवयवकषष्टिकाद्यत् ॥ ३ ॥

यवादिभ्यः शब्देभ्यो यत्प्रत्ययो भवति भवने क्षेत्रे ऽभिधेये । खञोऽपवादः । यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् ॥

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ॥ ४ ॥

तिल माष उमा भङ्गा अणु इत्येतेभ्यो * विभाषा यत्प्रत्ययो भवति भवने क्षेत्रे ऽभिधेये । खञि प्राप्ते वचनं पक्षे सोऽपि भवति । उमाभङ्गयोरपि धान्यत्वमाश्रितमेव । तिल माष उमा एषां भवनं क्षेत्रं, † तिल्यम् । तैलीनम् । माष्यम् । माषीणम् । उम्यम् । औमानम् । भङ्ग्यम् । भाङ्गीनम् । अणव्यम् । आणवीनम् ॥

* तिलादिभ्यः शब्देभ्य इति पा० २ ।
† तिलानां भवनं क्षेत्रमिति पा० २ ।

सर्वचर्मणः कृतः खखञौ ॥ ५ ॥

सर्वचर्मन्शब्दात्तृतीयासमर्थात्कृत इत्यस्मिन्नर्थे खखञौ प्रत्ययौ भवतः। सर्वशब्दश्चात्र प्रत्ययार्थेन कृतेन संबध्यते, न चर्मणा । तत्रायमसमर्थसमासो द्रष्टव्यः। सर्वश्चर्मणा कृत इत्येतस्मिन्वाक्यार्थे वृत्तिः। सर्वचर्मीणः। सार्वचर्मीणः ॥

यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः ॥ ६ ॥

यथामुखशब्दात्संमुखशब्दात्षष्ठीसमर्थाद्दर्शन इत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। दृश्यते ऽस्मिन्निति दर्शनः। आदर्शादिः प्रतिबिम्बाश्रय उच्यते। निपातनात्सादृश्ये ऽव्ययीभावः। यथामुखं दर्शनः, यथा मुखीनः। सर्वस्य मुखस्य दर्शनः, सम्मुखीनः ॥

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥ ७ ॥

तदिति द्वितीया समर्थविभक्तिः। व्याप्नोतीति प्रत्ययार्थः। परिशिष्टः प्रकृतिविशेषणम्। सर्वादेः प्रातिपदिकात् पथि अङ्ग कर्मन् पत्र पात्र इत्येवमन्ताद् द्वितीयासमर्थाद्व्याप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। सर्वपथं व्याप्नोति, सर्वपथीनो रथः। सर्वाङ्गीणस्तापः। सर्वकर्मीणः पुरुषः। सर्वपत्रीणः सारथिः। सर्वपात्रीण ओदनः ॥

आप्रपदं प्राप्नोति ॥ ८ ॥

प्रपदमिति पादस्यायमुच्यते। आङ्मर्यादायां, तयोरव्ययीभावः। आप्रपदशब्दात्तदिति द्वितीयासमर्थात्प्राप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। आप्रपदं प्राप्नोति, आप्रपदीनः पटः। शरीरेण संबद्धस्यापि पटस्य प्रमाणमाख्यायते ॥

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ॥ ९ ॥

अनुपदादिभ्यः शब्देभ्यस्तदिति द्वितीयासमर्थेभ्यो यथासंख्यं बद्धा भक्षयति नेय इत्येतेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति। अनुरायामे सादृश्येवा। अनुपदं बद्धा ऽनुपदीना उपानत्। पदप्रमाणेत्यर्थः। सर्वान्नानि भक्षयति, सर्वान्नीनो भिक्षुः। अयः प्रदक्षिणं,* मनयः प्रसव्यम्। प्रदक्षिणप्रसव्यगामिनां शाराणां यस्मिन्परशारैः पदानामसमावेशो ऽयानयः। अयानयं नेयो ऽयानयीनः शारः। फलकशिरस्थित इत्यर्थः ॥

परोवरपरम्परपुत्त्रपौत्त्रमनुभवति ॥ १० ॥

परोवर परम्पर पुत्त्रपौत्त्र इत्येतेभ्यस्तदिति द्वितीयासमर्थेभ्यो ऽनुभव-

---

* प्रदक्षिणगमनमित्यपि कुत्र चित्पाठ उपलभ्यते परं तु स न युक्तः। अयः प्रदक्षिणमिति प्रतीकमुपादाय प्रदक्षिणं गमनमित्यर्थ इति पदमञ्जर्यां विवृतत्वात्।

तीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। परोवरेति परस्योत्वं प्रत्ययसंनियोगेन निपात्यते*। परांश्चावरांश्चानुभवति, परोवरीणः। परम्परतराणां च परम्परभावो निपात्यते। परांश्च परतरांश्चानुभवति परम्परीणः। पुत्रपौत्रानानुभवति, पुत्रपौत्रीणः। परम्परशब्दो विनापि प्रत्ययेन दृश्यते। मन्त्रिपरम्परा मन्त्रं भिनत्तीति। तच्छब्दान्तरमेव द्रष्टव्यम् ॥

अवारपारात्यन्तानुकामं गामी ॥ ११ ॥

अवारपार अत्यन्त अनुकाम इत्येतेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो गामीत्येतस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति। गमिष्यतीति गामी। भविष्यति गम्यादय इति। अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोरिति षष्ठीप्रतिषेधः। अवारपारं गामी, अवारपारीणः ॥ विपरीताच्च ॥ * ॥ पारावारीणः ॥ विगृहीतादपीष्यते ॥ अवारीणः। अत्यन्तं गामी अत्यन्तीनः। भृशं गन्तेत्यर्थः। अनुकामं गामी अनुकामीनः। यथेष्टं गन्तेत्यर्थः ॥

समांसमां विजायते ॥ १२ ॥

समांसमामिति वीप्सायां सुबन्तसमुदायः प्रकृतिः। विजायते गर्भं धारयतीति प्रत्ययार्थः। गर्भधारणेन सकलापि समा व्याप्यतइति अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। समांसमां विजायते, समांसमीना गौः। समांसमीना वडवा ॥ पूर्वपदे सुपो ऽलुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ के चित्तु समायांसमायां विजायतइति विगृह्णन्ति, गर्भमोचने तु विजनिर्वर्तेतइत्याहुः। तेषां पूर्वपदे यलोपमात्रं निपात्यते परिशिष्टस्यालुग्वक्तव्यः ॥ अनुत्पत्तावुत्तरपदस्य च वा यलोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ समांसमां विजायते समायांसमायां विजायतइति वा ॥

अद्यश्वीनावष्टब्धे ॥ १३ ॥

विजायतइति वर्तते। अद्यश्वीन इति निपात्यते अवष्टब्धे विजने। आसन्ने प्रसवे। आविदूर्ये हि मूर्धन्यो विधीयते, आवाच्चालम्बनाविदूर्ययोरिति। अद्य वा श्वो वा विजायते ऽद्यश्वीना गौः। अद्यश्वीना वडवा। के चित्तु विजायतइति नानुवर्तयन्ति अवष्टब्धमात्रे निपातनमित्याहुः। अद्यश्वीनं मरणम्। अद्यश्वीनो वियोग इति ॥

आगवीनः ॥ १४ ॥

आगवीन इति निपात्यते। आङ्पूर्वाद् आ तस्य गोः प्रतिपादनात् कर्मकारिणि खः प्रत्ययो निपात्यते। आगवीनः कर्मकरः। यो गवा भृतः कर्म करोति आ तस्य गोः प्रत्यर्पणात् ॥

---

* परोवरेति परस्योत्ववचनमिति पा०। अयमेव च पाठो युक्तः। परस्योत्ववचनमिति प्रतीकस्य पदमञ्जर्यां दर्शनात्।

अनुग्वलंगामी ॥ १५ ॥

गोः पश्चाद् अनुगु । अनुगुशब्दादलंगामीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति । अनुगु पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालकः ॥

अध्वनो यत्खौ ॥ १६ ॥

तदिति द्वितीया समर्थविभक्तिरनुवर्त्तते । अलंगामीति च प्रत्ययार्थः । अध्वन्शब्दाद् द्वितीयासमर्थादलंगामीत्येतस्मिन्नर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतः । अध्वानमलंगामी, अध्वनीनः । अध्वन्यः । ये चाभावकर्मणोः । आत्माध्वानौ ख इति प्रकृतिभावः ॥

अभ्यमित्राच्छ च ॥ १७ ॥

अभ्यमित्रशब्दाद्द्वितीयासमर्थादलंगामीत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति । चकाराद्यत्खौ च । अभ्यमित्रमलंगामी, अभ्यमित्रीयः । अभ्यमित्र्यः । अभ्यमित्रीणः । अमित्राभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः ॥

गोष्ठात्खञ् भूतपूर्वे ॥ १८ ॥

गावस्तिष्ठन्त्यत्रेति गोष्ठम् । गोष्ठशब्देन सन्निहितगोसमूहो देश उच्यते । भूतपूर्वग्रहणं तस्यैव विशेषणम् । गोष्ठशब्दाद्भूतपूर्वोपाधिकात्स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति । गोष्ठो भूतपूर्वः, गौष्ठीनो देशः * । भूतपूर्वग्रहणं किम् । गोष्ठो वर्तते ॥

अश्वस्यैकाहगमः ॥ १९ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । अश्वशब्दात्षष्ठीसमर्थादेकाहगम इत्येतदर्थे खञ् प्रत्ययो भवति । एकाहेन गम्यत इत्येकाहगमः । अश्वस्यैकाहगमोऽध्वा, आश्वीनः । आश्वीनानि शतं पतित्वा ॥

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ॥ २० ॥

शालीनकौपीनशब्दौ निपात्येते यथासंख्यमधृष्टेऽकार्ये चाभिधेये । अधृष्टोऽप्रगल्भः । अकार्यमकरणार्हं विरुद्धम् † । शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः पर्यायौ यथाकथं चिद् व्युत्पादयितव्यौ । शालाप्रवेशनमर्हति कूपावतारमर्हति इति खञ् प्रत्यय उत्तरपदलोपश्च निपात्येते । शालीनो जडः । कौपीनं पापम् ॥

व्रातेन जीवति ॥ २१ ॥

निर्देशादेव तृतीया समर्थविभक्तिः । व्रातशब्दात्तृतीयासमर्थाज्जीवतीत्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति । नानाजातीया अनियतवृत्तय उत्सेधजीविनः संघा व्राताः । उत्सेधः शरीरं, तदायासेन ये जीवन्ति ते उत्सेधजीविनः, तेषां

---

* लिङ्गविशिष्टतया गोष्ठीशब्दस्यापि ग्रहणमित्यधिकं क्व चित् ।

† विरूपमिति पा० २ ।

कर्म व्रातम् । तेन व्रातेन जीवति व्रातीनः । तेषामेव व्रातानामन्यतम उच्यते । यस्त्वन्यस्तदीयेन जीवति तत्र नेष्यते ॥

साप्तपदीनं सख्यम् ॥ २२ ॥

साप्तपदीनमिति निपात्यते सख्ये ऽभिधेये सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम् । सख्यं जनाः साप्तपदीनमाहुः । कथं साप्तपदीनः सखा, साप्तपदीनं मित्रमिति । यदा गुणप्रधानः साप्तपदीनशब्दः सखिभावे सत्कर्मणीव वर्त्तते तदा सख्यशब्देन समानाधिकरणो भवति, यदा तु लक्षणायां वर्त्तते तदा पुरुषेण सामानाधिकरण्यं भवति ॥

हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ॥ २३ ॥

हैयङ्गवीनं निपात्यते संज्ञायां विषये । ह्योगोदोहस्य ह्वियङ्ग्वादेशः, तस्य विकारे खञ् प्रत्ययो भवति संज्ञायाम् । ह्योगोदोहस्य विकारः, हैयङ्गवीनम् । घृतस्य संज्ञा । तेनेह न भवति, ह्योगोदोहस्य विकार उदश्वित् ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ २४ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थेभ्यः पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणब् जाहच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । पीलूनां पाकः, पीलुकुणः । कर्कन्धुकुणः । कर्णादिभ्यः । कर्णस्य मूलं, कर्णजाहम् । पीलु । कर्कन्धु । शमी । करीर । कुवल । बदर । अश्वत्थ । खदिर । पील्वादिः ॥ कर्ण । अक्षि । नख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । भ्रूभङ्ग । दन्त । ओष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ । कर्णादिः ॥

पक्षात्तिः ॥ २५ ॥

तस्येत्येव । तस्येति षष्ठीसमर्थात्पक्षशब्दाद् मूलेभिधेये तिः प्रत्ययो भवति । मूलग्रहणमनुवर्त्तते न पाकग्रहण,मेकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशोनुवर्त्ततइति । पक्षस्य मूलं, पक्षतिः प्रतिपत् ॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ २६ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाद्वित्त इत्येतस्मिन्नर्थे चुञ्चुप् चणप् इत्येतौ प्रत्ययो भवतः । वित्तः प्रतीतो ज्ञात इत्यर्थः । विद्यया वित्तः । विद्याचुञ्चुः । केशचणः ॥

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह ॥ २७ ॥

वि नञ् इत्येताभ्यां यथासंख्यं ना नाञ् इत्येतौ भवतः । नसहेति प्रकृ-

तिविशेषणम् । असहार्थे पृथग्भावे वर्त्तमानाभ्यां विनञ्भ्यां स्वार्थे नानाञौ प्रत्ययौ भवतः । विना । नाना ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ २८ ॥

विशब्दात् शालच् शङ्कटच् इत्येतौ भवतः । साधनक्रियावचनादुपसर्गात्स्वार्थे प्रत्ययौ भवतः । विगते शृङ्गे विशाले । विशङ्कटे । तद्योगाद्गौरपि विशालो विशङ्कट इत्युच्यते । परमार्थतस्तु गुणशब्दा एते यथाकथंचिद्व्युत्पाद्यन्ते । नात्र प्रकृतिप्रत्ययार्थयोरभिनिवेशः ॥

संप्रोदश्च कटच् ॥ २९ ॥

सम् प्र उद् इत्येतेभ्यः कटच् प्रत्ययो भवति । चकाराद्वेश्च । संकटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । विकटम् ॥ कटच्प्रकरणे ऽलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अलाबूनां रजो ऽलाबूकटम् । तिलकटम् । उमाकटम् । भङ्गाकटम् ॥ गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ गवां स्थानं, गोगोष्ठम् । महिषीगोष्ठम् ॥ संघाते कटच् वक्तव्यः ॥ * ॥ अवीनां संघातः, अविकटम् ॥ विस्तारे पटच् वक्तव्यः ॥ * ॥ अविपटम् ॥ द्वित्वे गोयुगच् ॥ * ॥ उष्ट्रगोयुगम् । अश्वगोयुगम् ॥ प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ * ॥ हस्तिषड्गवम् । अश्वषड्गवम् ॥ विकारे स्नेहने तैलच्* ॥ * ॥ एरण्डतैलम् । इङ्गुदीतैलम् । तिलतैलम् ॥ भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥ * ॥ इक्षुशाकटम् । मूलकशाकटम् । इक्षुशाकिनम् । मूलकशाकिनम् ॥

अवात्कुटारच्च ॥ ३० ॥

अवशब्दात् कुटारच् प्रत्ययो भवति । चकारात् कटच् । अवकुटारम् । अवकटम् ॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ् नाटज्भ्रटचः ॥ ३१ ॥

अवादित्येव । नमनं नतम् । नासिकायाः संबन्धिनि नते ऽभिधेये टीटच् नाटच् भ्रटच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति संज्ञायां विषये । नासिकाया नत,मवटीटम् । अवनाटम् । अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिकापि, पुरुषोपि तथोच्यते । अवटीटा । अवनाटः । अवभ्रट इति ॥

नेर्बिडज्बिरीसचौ ॥ ३२ ॥

नते नासिकाया इत्यनुवर्त्तते, संज्ञायामिति च । निशब्दान्नासिकाया नते ऽभिधेये बिडच् बिरीसच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । निबिडम् । निबिरी-

* स्नेहे तैलच् ॥ पा० २ । अयमेव च प्राचः पाठः ।

सम् । तद्योगान्नासिकापि, पुरुषोपि निबिडो, निबिरीसः । कथं निबिडाः केशाः । निबिडं वस्त्रम् । उपमानाद्भविष्यति * ॥

इनच्पिटच्चिक चि च ॥ ३३ ॥

नेरित्येव, नते नासिकाया इति च । निशब्दान्नासिकाया नतेभिधेये इनच् पिटच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतस्तत्संनियोगेन च निशब्दस्य यथासंख्यं चिक चि इत्येतावादेशौ भवतः । चिकिनः । चिपिटः ॥ कप्रत्ययो वक्तव्यश्चिकच प्रकृत्या देशः ॥ * ॥ चिक्कः । तथा चोक्तम् ॥ इनच् पिटच्काश्चिकचिचिकादेशाश्च वक्तव्या इति ॥ क्लिन्नस्य चिल् पिल्लश्चास्य चक्षुषी ॥ * ॥ क्लिन्नस्य चिल् पिल् इत्येतावादेशौ भवतो लश्च प्रत्ययोऽस्य चक्षुषी इत्येतस्मिन्नर्थे । क्लिन्ने अस्य चक्षुषी, चिल्लः । पिल्लः ॥ चुलादेशो वक्तव्यः ॥ * ॥ चुल्लः । अस्येत्यनेन नार्थः । चक्षुषोरेवाभिधाने प्रत्यय इष्यते । क्लिन्ने चक्षुषी, चिल्ले । पिल्ले । चुल्ले । तद्योगात्तु पुरुषस्तथोच्यते ॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ३४ ॥

उप अधि इत्येताभ्यां यथासंख्यमासन्नारूढयोर्वर्त्तमानाभ्यांस्वार्थे त्यकन्प्रत्ययो भवति। संज्ञाधिकाराच्च नियतविषयमासन्नारूढं गम्यते । पर्वतस्यासन्न,-मुपत्यका । तस्यैवारूढ,मधित्यका । प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्येतीत्वमत्र न भवति संज्ञाधिकारादेव † ॥

कर्मणि घटोऽठच् ॥ ३५ ॥

निर्देशादेव समर्थविभक्तिः । कर्मशब्दात्सप्तमीसमर्थाद् घट इत्येतस्मिन्नर्थे ऽठच् प्रत्ययो भवति । घटतइति घटः ‡ । कर्मणि घटते, कर्मठः पुरुषः ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ ३६ ॥

तदिति प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिभ्यः शब्देभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति । संजातग्रहणं प्रकृतिविशेषणम् । तारकाः संजाता अस्य नभस,स्तारकितं नभः । पुष्पितो वृक्षः । तारका । पुष्प । मुकुल । कण्टक । पिपासा । सुख । दुःख । ऋजीष । कुड्मल । सूचक । रोग । विचार । व्याधि । निष्क्रमण । मूत्र । पुरीष । किसलय । कुसुम ।

---

* भविष्यतीत्यस्याग्रे घनत्वसाधर्म्यादित्यधिकं कुत्र चित् ।

† नहि कते इत्वे संज्ञा प्रतीयते । इत्यधिकं कुत्र चित् ।

‡ घट इत्यस्याग्रे पचाद्यजित्यधिकं बहुषु पुस्तकेषु । परं त्वयमपपाठः, पदमञ्जर्यां दर्शनात् ।

प्रचार । तन्द्रा । वेग । पुष्प । श्रद्धा । उत्कण्ठ । भर । द्रोह ॥ गर्भादप्राणिनि * ॥ तारकादिराकृतिगणः ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥ ३७ ॥

तदस्येत्यनुवर्त्तते । तदिति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति यत्तत्प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत्तद्भवति । ऊरुः प्रमाणमस्य, ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् । जानुमात्रम् । जानुद्वयसम् । जानुदघ्नम् ।

"प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम" ।

ऊरुद्वयसमुदकम् । ऊरुदघ्नमुदकम् । मात्रच्पुनरविशेषेण, प्रस्थमात्रमित्यपि भवति ॥ प्रमाणे लो वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रमाणशब्दा इति ये प्रसिद्धास्तेभ्य उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुग्भवति । शमः प्रमाणमस्य, शमः । दिष्टिः । वितस्तिः ॥ द्विगोर्नित्यम् ॥ * ॥ द्वौ शमौ प्रमाणमस्य, द्विशमः । त्रिशमः । द्विवितस्तिः । नित्यग्रहणं किम् । संशये श्राविणं † वक्ष्यति । तत्रापि द्विगोर्लुगेव यथा स्यात् । द्वे दिष्टी स्यातां वा न वा, द्विदिष्टिः ॥ डट् स्तोमे वक्तव्यः ॥ * ॥ पञ्चदशस्तोमः । पञ्चदशी रात्रिः । टित्वाद् ङीप् ॥ शनशतोर्डिनिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः । त्रिंशिनो मासाः ॥ विंशतेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ विंशिनोऽङ्गिरसः ॥ प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः ॥ * ॥ शममात्रम् । दिष्टिमात्रम् । प्रस्थमात्रम् । कुडवमात्रम् । पञ्चमात्रम् । दशमात्रा गावः ॥ वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ * ॥ तावदेव, तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् । एतावद्द्वयसम् । एतावन्मात्रम् । यावद्द्वयसम् । यावन्मात्रम् ॥

पुरुषहस्तिभ्यामण् च ॥ ३८ ॥

तदस्येत्येव, प्रमाणइति च । पुरुषहस्तिभ्यां प्रथमासमर्थाभ्यां प्रमाणोपाधिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे ऽण् प्रत्ययो भवति, चकाराद् द्वयसजादयश्च । पुरुषः प्रमाणमस्य, पौरुषम् । पुरुषद्वयसम् । पुरुषदघ्नम् । पुरुषमात्रम् । हस्तिद्वयसम् । हस्तिदघ्नम् । हस्तिमात्रम् । हास्तिनम् । द्विगोर्नित्यं लुक् ।

---

* फल । उच्चार । स्तबक । पल्लव । खण्ड । धेनुष्या । अभ्र । अङ्गारक । अङ्गार । वर्णक । पुलक । कुवलय । शैवल । गर्व । तरङ्ग । कल्लोल । पण्डा । चन्द्र । सवक । मुद्रा । राग । कण्टक । हस्त । कर । सीमन्त । कर्दम । कज्जल । कलङ्क । कुतूहल । कन्दल । आन्दोल । अन्धकार । कोरक । अङ्कुर । रोमाञ्च । हर्ष । उत्कर्ष । क्षुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । मुकुर । तिलक । बुभुक्षा । निद्रा । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽत्र गणे ऽधिकाः ।

† श्रवणं श्रावः, कृत्यल्युट इति घञ्, सो ऽस्यास्तीति श्रावी, मात्रजित्यर्थः ।

द्विपुरुषमुदकम् । त्रिपुरुषमुदकम् । द्विहस्ति । त्रिहस्ति । द्विपुरुषी । त्रिपुरुषी । द्विहस्तिनी । त्रिहस्तिनी ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ३९ ॥

तदस्येत्येव । यत्तदेतेभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यः परिमाणोपाधिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति । यत्परिमाणमस्य, यावान् । तावान् । एतावान् । प्रमाणग्रहणे ऽनुवर्त्तमाने परिमाणग्रहणं प्रमाणपरिमाणयोर्भेदात् ॥

डावतावर्थवैशेष्यान्निर्देशः पृथगुच्यते ।
मात्राद्यप्रतिघाताय भावः सिद्धश्च डावतोः ॥

वतुप्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्यउपसंख्यानम् ॥ * ॥ न त्वावा अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । त्वावतः पुरूवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः । त्वत्सदृशस्य मत्सदृशस्येत्यर्थः ॥

किमिदंभ्यां वो घः ॥ ४० ॥

किमिदंभ्यामुत्तरस्य वतुपो वकारस्य घकारादेशो भवति । कियान् । इयान् । एतदेव चादेशविधानं ज्ञापकं किमिदंभ्यां वतुप्प्रत्ययो भवतीति । अथ वा योगविभागेन वा वतुपं विधाय पश्चाद्वो घो विधीयते ॥

किमः संख्यापरिमाणे डति च ॥ ४१ ॥

संख्यायाः परिमाणं, संख्यापरिच्छेद इत्यर्थः । संख्यापरिमाणे वर्त्तमानात् किमः प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे डतिः प्रत्ययो भवति । चकाराद्वतुप् । तस्य च वकारस्य घादेशो भवति । पृच्छ्यमानत्वात्परिच्छेदोपाधिकायां संख्यायां वर्त्तमानात्किमः प्रत्ययो विज्ञायते । का संख्या परिमाणमेषां ब्राह्मणानां, कति ब्राह्मणाः । कियन्तो ब्राह्मणाः । अथ वा संख्यैव परिमाणात्मिका परिच्छेदस्वभावा गृह्यते । का संख्या परिमाणं येषामिति । ननु च संख्या परिमाणात्मिकैव परिच्छेदस्वभावा, सा किमर्थं परिमाणेन विशेष्यते । यत्रापरिच्छेदकत्वेन विवक्ष्यते तत्र मा भूदिति । क्षेपे हि परिच्छेदो नास्ति । केयमेषां संख्या दशानामिति ॥

संख्याया अवयवे तयप् ॥ ४२ ॥

तदस्येत्येव । संख्याया अवयवे वर्त्तमानाया अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति । अवयवा अयविनः संबन्धिन इति सामर्थ्यादवयवी प्रत्ययार्थो विज्ञायते । पञ्च अवयवा अस्य, पञ्चतयम् । दशतयम् । चतुष्टयम् । चतुष्टयी ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ४३ ॥

पूर्वेण विहितस्य तयस्य द्वित्रिभ्यां परस्य वा ऽयजादेशो भवति। द्वाववयवावस्य, द्वयम्। द्वितयम्। त्रयम्। त्रितयम्। तयग्रहणं स्थानिनिर्देशार्थम्। अन्यथा प्रत्ययान्तरमयज्विज्ञायेत। तत्र को दोषः। त्रयी गतिरिति तयनिबन्धन ईकारो न स्यात्। प्रथमचरमतयेत्येष विधिर्न स्यात्। द्वये। द्वयाः। चकारः स्वरार्थः॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ४४ ॥

उभशब्दात्परस्य तयपो नित्यमयजादेशो भवति स चोदात्तः। वचनसामर्थ्यादादेरुदात्तत्वं विज्ञायते। उभशब्दो यदि लौकिकी संख्या ततः पूर्वेणैव विहितस्य तयप आदेशविधानार्थं वचनम्। अथ न संख्या, ततो योगविभागेन तयपं विधाय तस्य नित्यमयजादेशो विधीयते। उभयो मणिः। उभये देवमनुष्याः॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥ ४५ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे दशान्तात्प्रातिपदिकाद् डः प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थमधिकं चेत्तद्भवति। इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा। एकादश अधिका अस्मिन् शते, एकादशं शतम्। एकादशं सहस्रम्। द्वादशं शतम्। द्वादशं सहस्रम्। दशान्तादिति किम्। पञ्चाधिका अस्मिन् शते। अन्तग्रहणं किम्। दशाधिका अस्मिन् शते॥ प्रत्ययार्थेन च समानजातीये प्रकृत्यर्थे सति प्रत्यय इष्यते॥ एकादश कार्षापणा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते, एकादशं कार्षापणशतमिति। इह तु न भवति। एकादश माषा अधिका अस्मिन्कार्षापणशतइति॥ शतसहस्रयोश्चेष्यते॥ इह न भवति। एकादशाधिका अस्यां त्रिंशतीति। इतिकरणो विवक्षार्थ इत्युक्तं तत इदं सर्वं लभ्यते। कथमेकादशं शतसहस्रमिति। शतानां सहस्रं सहस्राणां वा शतमिति शतसहस्रमित्युच्यते। तत्र शतसहस्रयोरित्येव सिद्धम्॥

अधिके समानजातात्विष्टं शतसहस्रयोः।
यस्य संख्या तदाधिक्ये डः कर्त्तव्यो मतो मम॥

शदन्तविंशतेश्च ॥ ४६ ॥

तदस्मिन्नधिकमित्यनुवर्त्तते, ड इति च। शदन्तात्प्रातिपदिकाद्विंशतेश्च डः प्रत्ययो भवति तदस्मिन्नधिकमित्येतस्मिन्विषये। त्रिंशदधिका अस्मिञ्छते, त्रिंशं शतम्। शतग्रहणे ऽन्तग्रहणं प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेरधिकार्थम्। एकत्रिंशं शतम्। एकचत्वारिंशं शतम्। संख्याग्रहणं च कर्त्तव्यम्। इह मा भूद् गोत्रिंशदधिका अस्मिन् गोशते इति। विंशतेश्च॥ तदन्तादपीति

वक्तव्यम् ॥ * ॥ एकविंशं शतम् । संख्याग्रहणं च कर्त्तव्यम् । इह मा भूत् । गोर्विंशतिरधिका ऽस्मिन्गोशतमिति ॥

संख्याया गुणस्य निमाने मयट् ॥ ४७ ॥

तदस्येत्यनुवर्त्तते तदस्य संजातमित्यतः । तदिति प्रथमासमर्थात्संख्यावाचिनः प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे मयट् प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थं गुणस्य चेन्निमाने वर्त्तते । गुणो भागः । निमानं मूल्यम् । गुणो येन निमीयते मूल्यभूतेन सोपि सामर्थ्याद्भाग एव विज्ञायते । यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य, द्विमयमुदश्विद्यवानाम् । त्रिमयम् । चतुर्मयम् । भागे ऽपि तु विधीयमानः प्रत्ययः प्राधान्येन भागवन्तमाचष्टे । तेन सामानाधिकरण्यं भवति द्विमयमुदश्विदिति । गुणस्येति चैकत्वं विवक्षितं, तेनेह न भवति । द्वौ भागौ यवानां त्रय उदश्वित इति ॥ भूयस्त्ववाचिकायाः संख्यायाः प्रत्यय इष्यते ॥ इह न भवति । एको भागो निमानमस्येति । भूयस इति च प्रत्ययार्थात्प्रकृत्यर्थस्याधिक्यमात्रं विवक्षितम्, बहुत्वमतन्त्रं तेन द्विशब्दादपि भवति । गुणशब्दः समानावयववचनः । तेनेह न भवति । द्वौ भागौ यवानामध्यर्द्ध उदश्वित इति ॥ निमेये चापि दृश्यते ॥ निमेये वर्त्तमानायाः संख्याया निमाने प्रत्ययो दृश्यते । उदश्वितो द्वौ भागौ निमेयमस्य यवभागस्य, द्विमया यवा उदश्वितः । त्रिमया यवा उदश्वितः । चतुर्मयाः । गुणस्येति किम् । द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः । निमानइति किम् । द्वौ गुणौ क्षीरस्यैकस्तैलस्य द्विगुणं पच्यते तैलं क्षीरेणेत्यत्र मा भूत् ॥

तस्य पूरणे डट् ॥ ४८ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थात्संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात्पूरणइत्यस्मिन्नर्थे डट् प्रत्ययो भवति । पूर्यते ऽनेनेति पूरणम् । येन संख्या संख्यानं पूर्यते संपद्यते स तस्याः पूरणः । एकादशानां पूरणः, एकादशः । त्रयोदशः । यस्मिन्नुपसंजाते ऽन्या संख्या संपद्यते स प्रत्ययार्थः । इह न भवति । पञ्चानां मुष्टिकानां पूरणो घट इति ॥

नान्तादसंख्यादेर्मट् ॥ ४९ ॥

डडिति वर्त्तते । नकारान्तात्संख्यावाचिनः प्रातिपदिकादसंख्यादेः परस्य डटो मडागमो भवति । नान्तादिति पञ्चमी डट आगमसंबन्धे षष्ठीं प्रकल्पयति । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । सप्तमः । नान्तादिति किम् । विंशतेः पूरणो विंशः । असंख्यादेरिति किम् । एकादशानां पूरण एकादशः ॥

थट् च च्छन्दसि ॥ ५० ॥

नान्तादसंख्यादेः परस्य डटश्छन्दसि विषये थडागमो भवति, चकारात्पक्षे मडपि भवति । पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति । पञ्चथः । सप्तथः । मट् । पञ्चमर्मिन्द्रियमस्यापाक्रामत् ॥

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ॥ ५१ ॥

डडित्यनुवर्त्तते तत्सप्तम्या विपरिणाम्यते । षट् कति कतिपय चतुर् इत्येतेषां डटि परतस्थुगागमो भवति । कतिपयशब्दो न संख्या । तस्मादस्मादेव ज्ञापकाद् डट् प्रत्ययो विज्ञायते । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयथः । चतुर्थः ॥ चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ * ॥ चतुर्णां पूरणः, । तुरीयः । तुर्यः ॥

बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ॥ ५२ ॥

डडित्येव । बहु पूग गण संघ इत्येतेषां डटि परतस्तिथुगागमो भवति । पूगसंघशब्दयोरसंख्यावाचित्वादिदमेव ज्ञापकं डटो भावस्य । बहूनां पूरणो, बहुतिथः । पूगतिथः । गणतिथः । संघतिथः ॥

वतोरिथुक् ॥ ५३ ॥

डडित्येव । वतोर्डटि परत इथुगागमो भवति । वत्वन्तस्य संख्यात्वात्पूर्वेण डड्विहितस्तस्मिन्नयमागमो विधीयते । यावतां पूरणो, यावतिथः । तावतिथः । एतावतिथः ॥

द्वेस्तीयः ॥ ५४ ॥

द्विशब्दात्तीयः प्रत्ययो भवति तस्य पूरणइत्यस्मिन्विषये । डटोपवादः । द्वयोः पूरणो, द्वितीयः ॥

त्रेः संप्रसारणं च ॥ ५५ ॥

त्रिशब्दात्तीयः प्रत्ययो भवति तस्य पूरणइत्येतद्विषये । डटोपवादः । तत्संनियोगेन त्रेः संप्रसारणं च भवति । त्रयाणांपूरण स्तृतीयः । हल इति संप्रसारणस्य दीर्घत्वं न भवति । अण इति तत्रानुवर्त्तते ढ्लोप इत्यतः, पूर्वेण च णकारेणाण्ग्रहणम् ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

विंशत्यादिभ्यः परस्य डटस्तमडागमो भवत्यन्यतरस्याम् । पूरणाधिकाराद् डट् प्रत्यय आगमी विज्ञायते । विंशतेः पूरणः, विंशतितमः । विंशः । एकविंशतितमः । एकविंशः । त्रिविंशतितमः । त्रिविंशः । त्रिंशत्तमः । त्रिंशः । एकत्रिंशत्तमः । एकत्रिंशः । विंशत्यादयो लौकिकाः संख्याशब्दा गृह्यन्ते न पङ्क्त्यादिसूत्रसंनिविष्टाः, तद्ग्रहणे ह्येकविंशतिप्रभृतिभ्यो न स्यात् । ग्रहणवता

प्रातिपदिकेन तदन्तविधिप्रतिषेधात् । एवं च सति षष्ट्यादेश्चासंख्यादेरिति पर्युदासो युज्यतएव ॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥ ५७ ॥

शतादयः संख्याशब्दा लौकिका गृह्यन्ते । शतादिभ्यो मासार्द्धमाससंवत्सरशब्देभ्यश्च परस्य डटो नित्यं तमडागमो भवति । मासादयः संख्याशब्दा न भवन्ति तेभ्यो ऽस्मादेव ज्ञापकाद् डट् प्रत्ययो विज्ञायते । शतस्य पूरणः-शततमः । सहस्रतमः । लक्षतमः । मासस्य पूरणो, मासतमो दिवसः । अर्द्धमासतमः । संवत्सरतमः । षष्ट्यादेश्चासंख्यादेरिति वक्ष्यमाणेन सिद्धे शतादिग्रहणं संख्याद्यर्थम् । एकशततमः । द्विशततमः ॥

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ॥ ५८ ॥

षष्ट्यादेः संख्याशब्दादसंख्यादेः परस्य डटो नित्यं तमडागमो भवति । विंशत्यादिभ्य इति विकल्पेन प्राप्ते नित्यार्थम् । षष्टितमः । सप्ततितमः* । असंख्यादेरिति किम् । एकषष्टः । एकषष्टितमः । एकसप्ततः । एकसप्ततितमः ॥

मतौ छः सूक्तसाम्नोः ॥ ५९ ॥

मताविति मत्वर्थ उच्यते । प्रातिपदिकान्मत्वर्थे छः प्रत्ययो भवति सूक्ते साम्नि चाभिधेये । मत्वर्थग्रहणेन समर्थविभक्तिः प्रकृतिविशेषणं प्रत्ययार्थ इति सर्वमाक्षिप्यते । अच्छावाकशब्दोस्मिन्निति, अच्छावाकीयं सूक्तम् । मित्रावरुणीयम् । यज्ञायज्ञीयं साम । वारवन्तीयम् । अनुकरणशब्दाश्च स्वरूपमात्रप्रधानाः प्रत्ययमुत्पादयन्ति । तेनानेकपदादपि सिद्धम् । अस्यवामीयम् । कयाशुभीयम् ॥

अध्यायानुवाकयोर्लुक् ॥ ६० ॥

मतावित्येव । मत्वर्थउत्पन्नस्य छस्य लुग् भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः । केन पुनरध्यायानुवाकयोः प्रत्ययः । इदमेव लुग्वचनं ज्ञापकं तद्विधानस्य । विकल्पेन लुगयमिष्यते । गर्दभाण्डशब्दोस्मिन्नस्ति, गर्दभाण्डो ऽध्यायः । अनुवाको वा गर्दभाण्डीयः । दीर्घजीवितः । दीर्घजीवितीयः । पलितस्तम्भः । पलितस्तम्भीयः ॥

विमुक्तादिभ्यो ऽण् ॥ ६१ ॥

मतावित्येव, अध्यायानुवाकयोरिति च । विमुक्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽण् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः । विमुक्तशब्दोस्मिन्नस्ति, वैमुक्तो ऽध्यायो ऽनुवाको वा । दैवासुरः । विमुक्त । देवासुर । वसु

* अशीतितमः । नवतितमः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

मत् । सत्वत् । उपसत् । दशार्हपयस् । हविर्द्धान । मित्री । सोमापूषन् । अग्नाविष्णू । वृत्रहति । इडा । रक्षोसुर । सदसत् । परिवादक् । वसु । मरुत्वत् । पत्नीवत् । महीयल । सत्वत् । दशार्ह । वयस् । पतत्रि । सोम । महित्री । हेतु * विमुक्तादिः ॥

गोषदादिभ्यो वुन् ॥ ६२ ॥

मतावितत्येव, अध्यायानुवाकयोरिति च । गोषदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वुन्प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ऽध्यायानुवाकयोः । गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्ति, गोषदको ऽध्यायो ऽनुवाको वा । इषेत्वकः । मातरिश्वकः । गोषद । इषेत्व । मातरिश्वन् । देवस्यत्वा । देवीरापः । कृष्णोस्याखरेष्ठः । देवींधियम् । रक्षोहण । अञ्जन । प्रभूत । प्रतूर्त्त । कृशान । † गोषदादिः ॥

तत्र कुशलः पथः ॥ ६३ ॥

वुनित्येव । तत्रेति सप्तमीसमर्थात्पथिन् शब्दात्कुशल इत्यस्मिन्नर्थे वुन्प्रत्ययो भवति । पथि कुशलः, पथकः ॥

आकर्षादिभ्यः कन् ॥ ६४ ॥

तत्रेत्येव, कुशल इति च । आकर्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः कुशल इत्येतस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति । आकर्षे कुशल, आकर्षकः । त्सरुकः । आकर्ष । त्सरु । पिपासा । पिचण्ड । अशनि । अश्मन् । विचय । चय । जय । आचय । अय । नय । निपाद । गद्गद । दीप । ह्रद । ह्राद । ह्लाद । शकुनि ‡ ॥

धनहिरण्यात्कामे ॥ ६५ ॥

तत्रेत्येव, कनिति च । धनहिरण्यशब्दाभ्यां तत्रेति सप्तमीसमर्थाभ्यां काम इत्यस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति । काम इच्छा ऽभिलाषः । धने कामः, धनको देवदत्तस्य । हिरण्य को देवदत्तस्य ॥

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ॥ ६६ ॥

तत्रेत्येव, कनिति च । स्वाङ्गवाचिभ्यः शब्देभ्यस्तत्रेति सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रसितइत्येतस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति । प्रसितः प्रसक्तस्तत्पर इत्यर्थः । केशेषु प्रसितः, केशकः । केशादिरचनायां प्रसक्त एवमुच्यते । बहुवचन स्वाङ्गसमुदायशब्दादपि यथा स्यात् । दन्तौष्ठकः । केशनखकः ॥

---

* अस्यहत्य । दशार्ण । उर्वशी । सुपर्ण । एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽत्र गणे ऽधिकाः ।

† युञ्जान । सहस्रशीर्षा । वातस्यते । कृशाश्व । स्वाहाप्राण । प्रसुप्त । एते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

‡ पिशाच । पिण्ड । एतौ शब्दौ पुस्तकान्तरे ऽत्र गणे ऽधिकौ ।

उदराट्ठगाद्यूने ॥ ६७ ॥

तत्रेत्येव, प्रसितइति च । उदरशब्दात्सप्तमीसमर्थात्प्रसितइत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । आद्यूनइति प्रत्ययार्थविशेषणम् । उदरे ऽविजिगीषुर्भक्षयते । यो बुभुक्षया ऽत्यन्तं पीड्यते स एवमुच्यते । उदरे प्रसित, औदरिक आद्यूनः । आद्यूनइति किम् । उदरकः ॥

सस्येन परिजातः ॥ ६८ ॥

कन्प्रत्यय इत्येव स्मर्यते, न ठक् । निर्द्देशादेव तृतीया समर्थविभक्तिः । सस्यशब्दात्तृतीयासमर्थात्परिजात इत्यस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति । सस्यशब्दोयं गुणवाची । परिः सर्वतो भावे वर्त्तते । यो गुणैः संबद्धो जायते यस्य किंचिदपि वैगुण्यं नास्ति तस्येदमभिधानम् । सस्येन परिजातः, सस्यकः शालिः । सस्यकः साधुः । सस्यको मणिः । आकारशुद्ध इत्यर्थः ॥

अंशं हारी ॥ ६९ ॥

अंशशब्दान्निर्द्देशादेव द्वितीयासमर्थाद्धारीत्येतस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति । अंशं हारी, अंशको दायादः । अंशकः पुत्रः । हारीत्यावश्यके णिनिः । तत्र षष्ठीप्रतिषेधाद् कर्मणि द्वितीयैव भवति ॥

तन्त्रादचिरापहृते ॥ ७० ॥

तन्त्रशब्दान्निर्द्देशादेव पञ्चमीसमर्थादचिरापहृतइत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति । अचिरापहृतस्तोककालापहृत इत्यर्थः । तन्त्रादचिरापहृतः, तन्त्रकः पटः । तन्त्रकः प्रावारः । प्रत्ययो नव उच्यते ॥

ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मणक उष्णिक इत्येतौ शब्दौ निपात्येते कन्प्रत्ययान्तौ संज्ञायां विषये । ब्राह्मणको देशः । उष्णिका यवागूः । यत्रायुधजीविनो ब्राह्मणाः सन्ति तत्र ब्राह्मणक इति संज्ञा । अल्पान्ना यवागूरुष्णिकेत्युच्यते ॥

शीतोष्णाभ्यां कारिणि ॥ ७२ ॥

शीतोष्णशब्दाभ्यां कारिण्यभिधेये कन्प्रत्ययो भवति । क्रियाविशेषणाद् द्वितीयासमर्थादयं प्रत्ययः । शीतं करोति, शीतकः । अलसो जड उच्यते । उष्णं करोति, उष्णकः । शीघ्रकारी दक्ष उच्यते ॥

अधिकम् ॥ ७३ ॥

अधिकमिति निपात्यते । अध्यारूढस्योत्तरपदलोपः कंश्च प्रत्ययः । अधिको द्रोणः खार्या, मधिका खारी द्रोणेन । कर्त्तरि कर्मणि वा ऽध्यारूढशब्दः ॥

अनुकाभिकाभीकः कमिता ॥ ७४ ॥

अनुक अभिक अभीक इत्येते शब्दाः कन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते कमितेत्येतस्मिन्नर्थे। अभेः पक्षे दीर्घत्वं च निपात्यते। अनुकामयते, अनुकः। अभिकः। अभीकः॥

पार्श्वेनान्विच्छति ॥ ७५ ॥

पार्श्वशब्दात्तृतीयासमर्थादन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे कन्प्रत्ययो भवति। अनृजुरुपायः पार्श्वम्। तेनार्थानन्विच्छति, पार्श्वकः। मायावी कौसृतिको जालिक उच्यते॥

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ॥ ७६ ॥

अन्विच्छतीत्येव। अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यामन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे ठक्ठञौ प्रत्ययौ भवतः। तीक्ष्ण उपायो ऽयःशूलमुच्यते। तेनान्विच्छति, आयःशूलिकः। साहसिक इत्यर्थः। दम्भो दण्डाजिनं, तेनान्विच्छति, दाण्डाजिनिकः। दाम्भिक इत्यर्थः॥

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ॥ ७७ ॥

तावतां पूरणं तावतिथम्। गृह्यते ऽनेनेति ग्रहणम्। प्रकृतिविशेषणं चैतत्। पूरणप्रत्ययान्तात्प्रातिपदिकाद्ग्रहणोपाधिकात्स्वार्थे कन्प्रत्ययो भवति। पूरणस्य प्रत्ययस्य वा लुक्। द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति द्विकं ग्रहणम्। द्वितीयकम्। त्रिकम्। तृतीयकम्। चतुष्कम्। चतुर्थकम्॥ तावतिथेन गृह्णातीति कन्वक्तव्यः, पूरणप्रत्ययस्य च नित्यं लुक्॥ * ॥ षष्ठेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति, षट्को देवदत्तः। पञ्चकः। चतुष्कः। इतिकरणो विवक्षार्थः। तेन ग्रन्थविषयमेव ग्रहणं विज्ञायते नान्यविषयम्॥

स एषां ग्रामणीः ॥ ७८ ॥

स इति प्रथमासमर्थादेषामिति षष्ठ्यर्थे कन्प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं ग्रामणीश्चेत्स भवति। ग्रामणीः। प्रधानो मुख्य इत्यर्थः। देवदत्तो ग्रामणीरेषां, देवदत्तकाः। यज्ञदत्तकाः। ग्रामणीरिति किम्। देवदत्तः शत्रुरेषाम्॥

शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे ॥ ७९ ॥

शृङ्खलशब्दात्प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे कन्प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थं बन्धनं चेत्तद्भवति, यत्तदस्येति निर्दिष्टं करभश्चेत्स भवति। शृङ्खलं बन्धनमस्य, करभस्य, शृङ्खलकः। उष्ट्राणां बालकाः करभाः। तेषां काष्ठमयं पाशकं पादे व्यतिषज्यते तदुच्यते शृङ्खलमिति। यद्यपि रज्ज्वादिकमपि तत्रास्ति तथापि शृङ्खलमस्यास्वतन्त्रीकरणे भवति साधनमिति बन्धनमित्युच्यते॥

उत्क उन्मनाः ॥ ८० ॥

उत्क इति निपात्यते उन्मनाश्चेत्स भवति। उद्गतं मनो यस्य स, उन्मनाः। उच्छब्दात्संसाधनक्रियावचनात्तद्धति कन्प्रत्ययो निपात्यते। उत्को देवदत्तः। उत्कः प्रवासी। उत्सुक इत्यर्थः॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ८१ ॥

अर्थाभ्यां समर्थविभक्तिः। कालात्प्रयोजनाच्च यथायोगं समर्थविभक्तियुक्ताद्रोगेऽभिधेये कन्प्रत्ययो भवति। कालो दिवसादिः। प्रयोजनं कारणं रोगस्य फलं वा। द्वितीयेऽह्नि भवो, द्वितीयको ज्वरः। चतुर्थकः। प्रयोजनात्। विषपुष्पैर्जनितो, विषपुष्पको ज्वरः। काशपुष्पकः। उष्णं कार्यमस्य उष्णकः। शीतको ज्वरः। उत्तरसूत्रात्संज्ञाग्रहणमनुकृष्यते। तेनायं प्रकारनियमः सर्वो लभ्यते॥

तदस्मिन्नन्नं प्रायेण संज्ञायाम् ॥ ८२ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थमन्नं चेत्प्रायविषयं तद् भवति। प्रायेण बाहुल्येन। संज्ञाग्रहणं तदन्तोपाधिः। गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्यां पौर्णमास्यां गुडापूपिका। तिलापूपिका पौर्णमासी *॥ वटकेभ्य इनिर्वक्तव्यः॥ *॥ वटकिनी पौर्णमासी॥

कुल्माषादञ् ॥ ८३ ॥

कुल्माषशब्दादञ् प्रत्ययो भवति, तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायामित्येतस्मिन्नर्थे। ञकारो वृद्धिस्वरार्थः। कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां, कौल्माषी पौर्णमासी।

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ॥ ८४ ॥

श्रोत्रियन्निति निपात्यते छन्दोऽधीत इत्यस्मिन्नर्थे। नकारः स्वरार्थः। श्रोत्रियो ब्राह्मणः। श्रोत्रियंश्छन्दोधीतइति वाक्यार्थे पदवचनं, छन्दसो वा श्रोत्रभावस्तदधीतइति घंश्च प्रत्ययः। कथं छन्दोधीते छान्दसः। वाग्रहणमनुवर्त्तते तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वेत्यतः॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥ ८५ ॥

श्राद्धमिति प्रकृतिः। अनेनेति प्रत्ययार्थः। भुक्तमिति प्रकृतिविशेषणम्। श्राद्धशब्दाद्भुक्तोपाधिकादनेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः। श्रद्धाशब्दः कर्मनामधेयं तत्साधनद्रव्ये वर्तित्वा प्रत्ययमुत्पादति। श्राद्धं भुक्तमनेन, श्राद्धी। श्राद्धिकः। इनिठनोः समानकालग्रहणम्। अद्य भुक्ते श्राद्धे श्वः श्राद्धिक इति मा भूत्॥

---

* कशरिका। त्रिपुटिका। इत्युदाहरणद्वयमधिकं पुस्तकान्तरे।

पूर्वादिनिः ॥ ८६ ॥

अनेनेति प्रत्ययार्थः कर्तानुवर्त्तते । न च क्रियामन्तरेण कर्त्ता संभवतीति यां कां चित्क्रियामध्याहृत्य प्रत्ययो विधेयः । पूर्वादनेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । पूर्वं गतमनेन भुक्तं पीतं वा, पूर्वी । पूर्विणौ । पूर्विणः ॥

सपूर्वाच्च ॥ ८७ ॥

विद्यमानं पूर्वं यस्मादिति सपूर्वं प्रातिपदिकम् । तस्य पूर्वशब्देन तदन्तविधिः । सपूर्वात्प्रातिपदिकात्पूर्वशब्दान्तादनेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । पूर्वं कृतमनेन कृतपूर्वी कटम् । भुक्तपूर्वी ओदनम् । सुप्सुपेति समासं कृत्वा तद्धित उत्पाद्यते । योगद्वयेन चानेन पूर्वादिनिः सपूर्वाच्चेति परिभाषाद्वयं ज्ञाप्यते । व्यपदेशिवद्भावो ऽप्रातिपदिकेन । ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्तीति ॥

इष्टादिभ्यश्च ॥ ८८ ॥

अनेनेत्येव । इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽनेनेत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । इष्टमनेन, इष्टी यज्ञे । पूर्त्ती श्राद्धे । क्तस्येन्विषयस्य कर्मणीति सप्तम्युपसंख्यायते । इष्ट । पूर्त्त । उपसादित । निगदित । परिवादित । निकथित । परिकथित । संकलित । निपठित । संकल्पित । अनर्च्चित । विकलित । संरचित । निपतित । पठित । परिकलित । संरक्षित । अर्चित । परिरचित । पूजित । परिगणित । उपगणित । अवकीर्ण । परित । आयुक्त । आम्नात । श्रुत । अधीत । आसेवित । अपवारित । अवकल्पित । निराकृत । उपकृत । उपाकृत । अनुयुक्त । उपनत । अनुगुणित । अनुपठित । व्याकुलित । निगृहीत * । इष्टादिः ॥

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ॥ ८९ ॥

परिपन्थिन परिपरिन् इत्येतौ शब्दौ छन्दसि विषये निपात्येते पर्यवस्थातरि वाच्ये । पर्यवस्थाता प्रतिपक्षः संपक्ष उच्यते । मा त्वा परिपरिणो विदन् । मा त्वा परिपन्थिनोविदन् ॥

अनुपद्यन्वेष्टा ॥ ९० ॥

अनुपदीति निपात्यते ऽन्वेष्टा चेत्स भवति । पदस्य पश्चादनुपदम् । अनुपदी गवाम् । अनुपदी उष्ट्राणाम् ॥ पदचिह्न (पैड़) पीछे चलने वाला

साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ९१ ॥

---

* अवधारित । अपचित । एतौ शब्दावत्र गणे पुस्तकान्तरे अधिकौ ।

साक्षाच्छब्दो ऽव्ययम् । तस्मादिनिः प्रत्ययो भवति द्रष्टरि वाच्ये । संज्ञाग्रहणमभिधेयनियमार्थम् । साक्षाद् द्रष्टा साक्षी । साक्षिणौ । साक्षिणः । संज्ञाग्रहणादुपद्रष्टैवोच्यते न दाता ग्रहीता वा ॥

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ॥ ९२ ॥

क्षेत्रियजिति निपात्यते । परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्येतस्मिन् वाक्यार्थे पदवचनम् । परक्षेत्राद्वा तत्रेति सप्तमीसमर्थात् चिकित्स्य इत्येतस्मिन्नर्थे घच् प्रत्ययः परशब्दलोपश्च निपात्यते । परक्षेत्रे चिकित्स्यः, क्षेत्रियो व्याधिः । क्षेत्रियं कुष्ठम् । परक्षेत्रं जन्मान्तरशरीरम् । तत्र चिकित्स्यः क्षेत्रियः । असाध्यऽप्रत्याख्येयो व्याधिरुच्यते । नामृतस्य निवर्त्तत इत्यर्थः । अथ वा क्षेत्रियं विषम् । यत्परक्षेत्रे परशरीरे संक्रमय्य चिकित्स्यते । अथ वा क्षेत्रियाणि तृणानि । यानि सस्यार्थे क्षेत्रे जातानि चिकित्स्यानि नाशयितव्यानि । अथ वा क्षेत्रियः पारदारिकः । परदाराः परक्षेत्रं, तत्र चिकित्स्यः निग्रहीतव्यः । सर्वं चैतत्प्रमाणम् ॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ ९३ ॥

इन्द्रियमित्यन्तोदात्तं शब्दरूपं निपात्यते । रूढिरेषा चक्षुरादीनां करणानां, तथा च व्युत्पत्तेरनियमं दर्शयति । इन्द्रशब्दात्षष्ठीसमर्थाल्लिङ्गमित्येतस्मिन्नर्थे घच्प्रत्ययो । भवति । इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम् । इन्द्र आत्मा स चक्षुरादिना करणेनानुमीयते । नाकर्तृकं करणमस्ति । इन्द्रेण दृष्टम् । तृतीयासमर्थात्प्रत्ययः । आत्मना दृष्टमित्यर्थः । इन्द्रेण सृष्टम् । आत्मना सृष्टम् । तत्कृतेन शुभाशुभेन कर्मणोत्पन्नमिति कृत्वा । इन्द्रेण जुष्टम् । आत्मना जुष्टम्, सेवितं तद्द्वारेण विज्ञानोत्पादनाद् । इन्द्रदत्त,मात्मना विषयेभ्यो दत्तं यथायथं ग्रहणाय । इतिकरणः प्रकारार्थः । सति संभवे व्युत्पत्तिरन्यथापि कर्त्तव्या, रूढेरनियमादिति । वाशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यमानो विकल्पानां स्वातन्त्र्यं दर्शयति ॥

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ९४ ॥

तदिति प्रथमा समर्थविभक्तिः । अस्यास्मिन्निति प्रत्ययार्थः, अस्तीति प्रकृतिविशेषणम् । इतिकरणो विवक्षार्थः तदितिप्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति सप्तम्यर्थे वा मतुप् प्रत्ययो भवति, यत्तत्प्रथमासमर्थमस्ति चेत्तद्भवति । अस्त्यर्थोपाधिकं चेत्तद्भवतीत्यर्थः । इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा । गावोऽस्य सन्ति, वृक्षा अस्मिन्सन्ति, गोमान्देवदत्तः । वृक्षवान्पर्वतः । यवमान् । प्लक्षवान् । इतिकरणाद्विषयनियमः ।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगे ऽतिशायने ।
संसर्गे ऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥

भूम्नि तावत् । गोमान् । निन्दायाम् । कुष्ठी । ककुदावर्त्तिनी । प्रशंसायाम् । रूपवती कन्या । नित्ययोगे । क्षीरिणो वृक्षाः । अतिशायने । उदरिणी कन्या । संसर्गे । दण्डी । छत्री । अस्तिविवक्षायाम् । अस्तिमान् ॥ गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ शुक्लो गुणोऽस्यास्ति, शुक्लः पटः । कृष्णः । श्वेतः ॥

रसादिभ्यश्च ॥ ९५ ॥

रसादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मतुप् प्रत्ययो भवति, तदस्यास्त्यस्मिन्नित्येतस्मिन्विषये । रसवान् । रूपवान् । किमर्थमिदमुच्यते, न पूर्वसूत्रेणैव मतुप् सिद्धः । रसादिभ्यः पुनर्वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् । अन्येमत्वर्थीया मा भूवन्निति । कथं रूपिणी कन्या । रूपिको दारकः । प्रायिकमेतद्वचनम् । इतिकरणो विवक्षार्थो ऽनुवर्त्तते । अथ वा गुणादित्यत्र पठ्यते । तेन ये रसनेन्द्रियादिग्राह्या गुणास्तेषामत्र पाठः । इह मा भूत्, रूपिणी, रूपिक इति, शोभायोग्यता गम्यते । रसिको नट इत्यत्र भावयोगः । रस । रूप । गन्ध । स्पर्श । शब्द । स्नेह । गुणात् । एकाचः । गुणग्रहणं रसादीनां विशेषणम् ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ९६ ॥

प्राणिस्थवाचिनः शब्दादाकारान्ताल्लच् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्यां मत्वर्थे । चूडालः । चूडावान् । कर्णिकालः । कर्णिकावान् । प्राणिस्थादिति किम् । शिखावान्प्रदीपः । आदिति किम् । हस्तवान् । पादवान् ॥ प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । चिकीर्षा ऽस्यास्ति, जिहीर्षा ऽस्यास्ति, चिकीर्षावान्, जिहीर्षावान् । प्रत्ययस्वरेणैवान्तोदात्तत्वे सिद्धे चकारश्चूडालोस्तीत्यत्र स्वरितो वा ऽनुदात्ते पदादाविति स्वरितबाधनार्थः ॥

सिध्मादिभ्यश्च ॥ ९७ ॥

लजन्यतरस्यामिति वर्त्तते । सिध्मादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो लच् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्यां मत्वर्थे । सिध्मलः । सिध्मवान् । गडुलः । गडुमान् अन्यतरस्यांग्रहणेन मतुप्समुच्चीयते, न तु प्रत्ययो विकल्प्यते । तस्मादकारान्तेभ्य इनिठनौ प्रत्ययौ न भवतः । सिध्म । गडु । मणि । नाभि । जीव । निष्पाव । पांसु । सक्तु । हनु । मांस । परशु ॥ पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च । पार्ष्णीलः । धमनीलः । पर्ण । उदक । प्रज्ञा । मण्ड । पार्श्व । गण्ड । ग्रन्थि ॥ वातदन्तबलललाटगलानामूङ् च * ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः । ललाटूलः ।

* वातदन्तेति गणसूत्रे गलेति, तदुदाहरणं गलूल इति च पुस्तकान्तरे, पदमञ्जर्यां च नास्ति ।

गलूलः ॥ जटाघटाकालाः क्षेपे ॥ जटालः । घटालः । सक्थि । कर्ण । स्नेह । शीत । श्याम । पिङ्ग । पित्त । शुष्क । पृथु । मृदु । मञ्जु । पत्र । चटु । कपि । कण्डु । संज्ञा ॥ क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेष्यते ॥ क्षुद्रजन्तुः । यूकालः । मक्षिकालः ॥ उपतापाच्च ॥ विचर्चिकालः । विपादिकालः । मूर्छालः । सिध्मादिः ॥

वत्सांसाभ्यां कामबले ॥ ९८ ॥

वत्सांसशब्दाभ्यां लच्प्रत्ययो भवति यथासंख्यं कामवति बलवति चार्थे । वत्सलः । अंसलः । वृत्तिविषये वत्सांसशब्दौ स्वभावात्कामबलयोर्वर्त्तमानौ तद्वति प्रत्ययमुत्पादयतः । नह्यत्र वत्सार्थो ऽसार्थो वा विद्यते, वत्सल इति स्नेहवानुच्यते । वत्सलः स्वामी । वत्सलः पितेति । अंसल इति चोपचितमांसो बलवानुच्यते । न चायमर्थो मतुपि संभवतीति नित्यं लजेव भवति । अन्यत्रांसवती गौः । अंसवान् दुर्बलः ॥

फेनादिलच्च ॥ ९९ ॥

फेनशब्दादिलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । चकाराल्लच्च । अन्यतरस्यांग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थं सर्वत्रैवानुवर्त्तते । फेनिलः । फेनलः । फेनवान् ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ १०० ॥

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च त्रिभ्यो गणेभ्यो यथासंख्यं श न इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति मत्वर्थे, मतुप् च । लोमादिभ्यः शो भवति । लोमशः । लोमवान् । पामादिभ्यो नो भवति । पामनः । पामवान् । पिच्छादिभ्य इलच् भवति । पिच्छिलः । पिच्छवान् । उरसिलः । उरस्वान् । लोमन् । रोमन् । वल्गु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । लोमादिः ॥ पामन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कद्रु । बलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् ॥ अङ्गात्कल्याणे ॥ शाकी पलाली दद्र्वां ह्रस्वत्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः लक्ष्म्या अच्च ॥ पामादिः ॥ पिच्छ । उरस् ध्रुवका । क्षुवका ॥ जटाघटाकालात्क्षेपे ॥ वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । पिच्छादिः ॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो णः ॥ १०१ ॥ वृत्ते २४

प्रज्ञा श्रद्धा ऽर्चा वृत्ति इत्येतेभ्यो णः प्रत्ययो भवति मतुबर्थे । मतुप्सर्वत्र समुच्चीयते । प्राज्ञः । प्रज्ञावान् । श्राद्धः । श्रद्धावान् । आर्चः । अर्चावान् । वार्त्तः । वृत्तिमान् ॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ १०२ ॥

तपःसहस्रशब्दाभ्यां विनि इनि इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे ॥ प्रत्ययार्थयोस्तु यथासंख्यं सर्वत्रैवास्मिन् प्रकरणे नेष्यते ॥ तपो ऽस्यास्मिन् वा

विद्यते, तपस्वी । सहस्री । असन्तत्वाददन्तत्वाच्च सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनमणा वक्ष्यमाणेन बाधा मा भूदिति । सहस्रात्तु ठनपि बाध्यते ॥

अण् च ॥ १०३ ॥

तपःसहस्राभ्यामणच्च प्रत्ययो भवति । तापसः । साहस्रः । योगविभाग उत्तरार्थो, यथासंख्यार्थश्च ॥ अणप्रकरणे ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ ज्योत्स्ना विद्यते ऽस्मिन्पक्षे, ज्यौत्स्नः पक्षः । तामिस्रः । कौण्डिनः । कौतपः । वैसर्पः । वैपादिकः ॥

सिकताशर्कराभ्यां च ॥ १०४ ॥

सिकताशर्कराभ्यामण्प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । सैकतो घटः । शार्करं मधु । अदेश इहोदाहरणम् । देशे तु लुबिलचौ भविष्यतः ॥

देशे लुबिलचौ च ॥ १०५ ॥

सिकताशर्कराभ्यां देशे ऽभिधेये लुबिलचौ भवतः । चकारादण् च, मतुप् च । कस्य पुनरयं लुप् । मतुबादीनामन्यतमस्य, विशेषाभावात् । सिकता अस्मिन्विद्यन्ते सिकता देशः । सिकतिलः । सैकतः । सिकतावान् । शर्करा देशः । शर्करिलः । शार्करः । शर्करावान् । देशइति किम् । सैकतो घटः । शार्करं मधु ॥

दन्त उन्नत उरच् ॥ १०६ ॥

उन्नत इति प्रकृतिविशेषणम् । दन्तशब्दादुन्नतोपाधिकादुरच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । दन्ता उन्नता अस्य सन्ति, दन्तुरः । उन्नत इति किम् । दन्तवान् ॥

ऊषसुषिमुष्कमधो रः ॥ १०७ ॥

ऊष सुषि मुष्क मधु इत्येतेभ्यो रः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । ऊषरं क्षेत्रम् । सुषिरं काष्ठम् । मुष्करः पशुः । मधुरो गुडः ॥ इतिकरणो विवक्षार्थः सर्वत्राभिधेयनियमं करोति । इह न भवति । ऊषो ऽस्मिन् घटे विद्यते मध्वस्मिन्घटे विद्यते इति ॥ रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ खमस्यास्ति कण्ठविवरं महत्, खरः । मुखमस्यास्तीति सर्वस्मिन्वक्तव्ये, मुखरः । कुञ्जावस्य स्तः कुञ्जरः । हस्तिहनू कुञ्जशब्देनोच्येते ॥ नगपांसुपाण्डुभ्यश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ नगरम् । पांसुरम् । पाण्डुरम् ॥ कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ॥ * ॥ कच्छुरम् ॥

द्युद्रुभ्यां मः ॥ १०८ ॥

द्युद्रुशब्दाभ्यां मः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे द्युमः । द्रुमः । रूढिशब्दावेतौ । रूढिषु च न मतुब्विकल्प्यते ॥

केशाद्वो ऽन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥

केशशब्दाद्वः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे ऽन्यतरस्याम् । ननु च प्रकृतमन्यतरस्यांग्रहणमनुवर्त्ततएव मतुप्समुच्चयार्थं तदित्युक्तम् । अनेन त्विनिठनौ प्राप्येते । ततस्त्रातूरूप्यं भवति । केशवः । केशी । केशिकः । केशवानिति ॥ वप्रकरणे ऽन्येभ्योपि दृश्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ मणिवः । हिरण्यवः । कररावः कुमारवः । राजीवम् । कुञ्जावः । इष्टकावः * ॥ अर्णसो लोपश्च ॥ * ॥ अर्णवः ॥ छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ ॥ * ॥ वश्च मतुप् च । रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ । सुमङ्गलीरियं वधूः । वनिप् । मघवानमीमहे । वकारमतुपौ च उद्वा च । उद्वती च ॥ मेधारथाभ्यामिरचिरचौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ मेधिरः । रथिरः ॥

गाण्डचजगात्संज्ञायाम् ॥ ११० ॥

गाण्डी अजग इत्येताभ्यां वः प्रत्ययः भवति संज्ञायां विषये मत्वर्थे । गाण्डीवं धनुः । अजगवं धनुः । ह्रस्वादपि भवति । गाण्डिवं धनुरिति । तुल्या हि संहिता दीर्घह्रस्वयोः । उभयथा च सूत्रं प्रणीतम् ॥

काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ॥ १११ ॥

काण्ड अण्ड इत्येताभ्यां यथासंख्यमीरन्नीरचौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे । काण्डीरः । अण्डीरः ॥

रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ११२ ॥

रजःप्रभृतिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । रजस्वला स्त्री । कृषीवलः कुटुम्बी । आसुतीवलः शौण्डिकः । परिषद्वलो राजा । वलइति दीर्घत्वम् । इतिकरणो विषयनियमार्थः सर्वत्र संबध्यते । तेनेह न भवति । रजोस्मिन् ग्रामे विद्यतइति ॥ वलच्प्रकरणे ऽन्येभ्योपि दृश्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भ्रातृवलः । पुत्रवलः । उत्साहवलः † ॥

दन्तशिखात्संज्ञायाम् ॥ ११३ ॥

दन्तशिखाशब्दाभ्यां वलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे संज्ञायां विषये । दन्तावलः सैन्यः । दन्तावलो गजः । शिखावलं नगरम् । शिखावला स्थूणा ॥

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ॥ ११४ ॥

ज्योत्स्नादयः शब्दा मत्वर्थे निपात्यन्ते मत्वर्थे संज्ञायां विषये । ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययो निपात्यते । ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा । तमस । उप-

---

* बिम्बाव इत्युदाहरणमन्यत्राधिकम् ।

* उत्सङ्गवल इत्यधिके पुस्तकान्तरे ।

धाया इकारो रश्च । तमिस्रा रात्रिः । स्त्रीत्वमतन्त्रम् । अन्यत्रापि दृश्यते । तमिस्रं नभः । शृङ्गादिनच्प्रत्ययो निपात्यते । शृङ्गिणः । ऊर्जो ऽसुगागमो निपात्यते विनिवलचौ प्रत्ययौ । ऊर्जस्वी । ऊर्जस्वलः । गोर्मिनिप्रत्ययो निपात्यते । गोमी । मलशब्दादिनजीमसचौ प्रत्ययौ निपात्येते । मलिनः । मलीमसः ॥

अत इनिठनौ ॥ ११५ ॥

अकारान्तात्प्रातिपदिकादिनिठनौ प्रत्ययौ भवतः । दण्डी । दण्डिकः । छत्री । छत्रिकः । अन्यतरस्यामित्यधिकारान्मतुबपि भवति । दण्डवान् । छत्रवान् । तपरकरणं किम् । खट्वावान् ।

एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ ॥

एकाक्षरात्तावत् । स्ववान् । खवान् । कृतः । कारकवान् । जातेः । व्याघ्रवान् । सिंहवान् । सप्तम्याम् । दण्डा अस्यां सन्ति, दण्डवती शालेति । इतिकरणो विषयनियमार्थः सर्वत्र संबध्यतइत्युक्तं, तेन क्व चिद्भवत्यपि । कार्यी । हार्यी । तण्डुली । तण्डुलिक इति ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ११६ ॥

व्रीह्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इनिठनौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे, मतुब्भवत्येव । व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहिमान् । मायी । मायिकः । मायावान् ॥ न च व्रीह्यादिभ्यः सर्वेभ्यः प्रत्ययद्वयमिष्यते । किं तर्हि शिखादिभ्य इनिर्वाच्य, इकन्यवखदादिभ्यः । परिशिष्टेभ्य उभयम् ॥ शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । माला । वीणा । वडवा । अष्टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । हंसा । इत्येतेभ्य इनिरेवेष्यते । यवखद । कुमारी । नौ इत्येतेभ्य इकन्नेवेष्यते । परिशिष्टेभ्यो द्वावपि प्रत्ययौ भवतः । व्रीहिग्रहणं किमर्थम् । यावता तुन्दादिषु व्रीहिशब्दः पठ्यते । तत्र इनिठनौ चकारेण विधीयेते । एवं तर्हि तुन्दादिषु व्रीहिग्रहणमर्थग्रहणं विज्ञायते । शालयोस्यसन्ति, शालिनः । शाली । शालिकः । शालिमान् इति । व्रीहिशिखादयः पूर्वं पठिताः । यवखद । कुमारी । नौ ॥ शीर्षान्नञः ॥ अशीर्षी । अशीर्षिकः ॥

तुन्दादिभ्य इलच्च ॥ ११७ ॥

तुन्दादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इलच् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । चकारादिनिठनौ मतुप् च । तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् । उदरिलः । उदरी । उदरिकः । उदरवान् । तुन्द । उदर । पिचण्ड । घट । यव । व्रीहि ॥ स्वाङ्गाद्विवृद्धौ च ॥

एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ॥ ११८ ॥

एकपूर्वाद्गोपूर्वाच्च प्रातिपदिकान्नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे। एकशतमस्यास्तीति, ऐकशतिकः। ऐकसहस्रिकः। गोपूर्वाच्च। गौशतिकः। गौसहस्रिकः। अत इत्येव, एकविंशतिरस्यास्तीति न भवति। कथमैकगविकः, समासान्ते कृतेभविष्यति। कथं गौशकटिकः। शकटीशब्देन समानार्थः शकटशब्दोस्ति ततो भविष्यति। अवश्यं चात इत्यनुवर्त्यम्। द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् इत्येवमाद्यर्थम्। नित्यग्रहणं मतुपो बाधनार्थम्। कथमेकद्रव्यवत्त्वादिति। नैवायं साधुः। एकेन वा द्रव्यवत्त्वादिति समर्थनीयम्॥

शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्॥ ११९॥

शतान्तात् सहस्रान्ताच्च प्रातिपदिकाट्ठञ् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे। तौ चेच्छतसहस्रशब्दौ निष्कात्परौ भवतः। निष्कशतमस्यास्ति, नैष्कशतिकः। नैष्कसहस्रिकः। सुवर्णनिष्कशतमस्यास्तीत्यनभिधानान्न भवति॥

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्॥ १२०॥

आहतप्रशंसे प्रकृत्युपाधीः आहतप्रशंसाविशिष्टार्थे वर्त्तमानाद्रूपशब्दाद्यप् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे। आहतं रूपमस्य रूप्यो। दीनारः। रूप्यः केदारः। रूप्यं कार्षापणम्। प्रशस्तं रूपमस्यास्ति रूप्यः पुरुषः। निघातिकाताडनादिना दीनारादिषु रूपं यदुत्पद्यते तदाहतमित्युच्यते। आहतप्रशंसयोरिति किम्। रूपवान्॥ यप्प्रकरणे ऽन्येभ्योपि दृश्यतइति वक्तव्यम्॥ * ॥ हिम्याः पर्वताः। गुण्या ब्राह्मणाः॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः॥ १२१॥

असन्तात्प्रातिपदिकान्मायां मेधा स्रज् इत्येतेभ्यश्च विनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे। मतुप् सर्वत्र समुच्चीयतएव। असन्तात्तावत्। पयस्वी। यशस्वी। मायावी। मेधावी। स्रग्वी। मायाशब्दाद्व्रीह्यादिषु पाठादिनिठनावपि भवतः। मायी। मायिकः॥

बहुलं छन्दसि॥ १२२॥

छन्दसि विषये बहुलं विनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे। अग्ने तेजस्विन्। न भवति, सूर्यो वर्चस्वान्॥ छन्दसि विनिप्रकरणे ऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घत्वं वेति वक्तव्यम्॥ * ॥ अष्ट्रावी। मेखलावी। द्वयावी। उभयावी। रुजावी। हृदयावी। द्वयोभयहृदयानि दीर्घत्वं प्रयोजयन्ति॥ मर्मणश्चेतिवक्तव्यम्॥ * ॥ मर्मावी॥ सर्वत्रामयस्योपसंख्यानम्॥ * ॥ छन्दसि भाषायां च। आमयावी॥ शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्वक्तव्यः॥ * ॥ शृङ्गारकः॥ वृन्दारकः॥ फलबर्हाभ्यामिनज्वक्तव्यः॥ * ॥ फलिनः। बर्हिणः॥ हृदया-

च्चालुरन्यतरस्याम् ॥ * ॥ हृदयालुः । हृदयी । हृदयिकः । हृदयवान् ॥ शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहतइत्यालुज्वक्तव्यः ॥ * ॥ शीतं न सहते शीतालुः । उष्णालुः । तृप्रालुः ॥ तन्न सहतइति हिमाच्चेलुः ॥ * ॥ हिमं न सहते हिमेलुः ॥ बलाच्चोलच् ॥ * ॥ बलं न सहते बलूलः ॥ वातात्समूहे च ॥ * ॥ वातं न सहतइति च ॥ वातानां समूहः, वातं न सहतइति वा वातूलः ॥ तप् पर्वमरुद्भ्यां वक्तव्यः ॥ * पर्वतः । मरुत्तः ॥ अर्थात्तदभावे इनिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ अर्थी । तदभावइत्येव । अर्थवान् । तदेतद्बहुलग्रहणेन लभ्यते ॥

ऊर्णाया युस् ॥ १२३ ॥

ऊर्णाशब्दाद्युस् प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । सकारः पदसंज्ञार्थः । ऊर्णास्य विद्यते ऊर्णायुः । केचिच्छन्दोग्रहणमनुवर्त्तयन्ति ॥

वाचो ग्मिनिः ॥ १२४ ॥

वाक्शब्दात् ग्मिनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । वाग्मी । वाग्मिनौ । वाग्मिनः ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥ १२५ ॥

वाक्शब्दात्प्रथमासमर्थादालच् आटच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो मत्वर्थे बहुभाषिण्यभिधेये । ग्मिनेरपवादः । वाचालः । वाचाटः ॥ कुत्सितइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ यो हि सम्यग् बहु भाषते स वाग्मीत्येव भवति ॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ॥ १२६ ॥

स्वामिन्निति निपात्यते ऐश्वर्ये गम्यमाने । स्वशब्दादैश्वर्यवाचिनो मत्वर्थे आमिन्प्रत्ययो निपात्यते । स्वमस्यास्तीति, ऐश्वर्यमस्यास्तीति, स्वामी । स्वामिनः । ऐश्वर्यइति किम् । स्ववान् ॥

अर्शआदिभ्यो ऽच् ॥ १२७ ॥

अर्शस् इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ऽच्प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । अर्शांसि अस्य विद्यन्ते अर्शसः । उरसः । आकृतिगणश्चायम् । यत्राभिचरूपेण शब्देन तद्वतो ऽभिधानं तत्सर्वमिह द्रष्टव्यम् । अर्शस् । उरस् । तुन्द । चतुर । पलित । जटा । घटा । अभ्र । कर्दम । आम । लवण ॥ स्वाङ्गाद्धीनात् ॥ वर्णात् ॥ अर्शआदिः ॥

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः ॥ १२८ ॥

द्वन्द्वः समासः । उपतापो रोगः । गर्ह्यं निन्द्यं, तद्विषयेभ्यः शब्देभ्यः प्राणिस्थार्थवाचिभ्य इनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । द्वन्द्वात्तावत् । कटकवलयिनी । शङ्खनूपुरिणी । उपतापात् । कुष्ठी । किलासी । गर्ह्यात् । ककुदावर्त्ती । काक-

तालुकी । प्राणिस्थादिति किम् । पुष्पफलवान् वृक्षः ॥ प्राण्यङ्गाच्चेष्यते ॥ पाणि-पादवती । अत इत्यनुवर्त्तते, तेनेह न भवति, चित्रललाटिकावती । सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम् ॥

वातातिसाराभ्यां कुक् च ॥ १२९ ॥

वातातिसारशब्दाभ्यामिनिः प्रत्ययो भवति, तत्संनियोगेन च तयोः कुगागमो भवति । वातातिसारयोरुपतापत्वात्पूर्वेणैवेनिप्रत्यये सिद्धे कुगर्थमेवेदं वचनम् । वातकी । अतिसारकी ॥ पिशाचाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पिशाचकी वैश्रवणः ॥ रोगे चायमिष्यते ॥ इह न भवति, वातवती गुहेति ॥

वयसि पूरणात् ॥ १३० ॥

इनिरनुवर्त्तते । पूरणप्रत्ययान्तात्प्रातिपदिकादिनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे वयसि द्योत्ये । पञ्चमो ऽस्यास्ति मासः संवत्सरो वा, पञ्चमी उष्ट्रः । नवमी । दशमी । सिद्धे सति नियमार्थं वचनमिनिरेव भवति ठच भवतीति । वयसीति किम् । पञ्चमवान् ग्रामरागः ॥

सुखादिभ्यश्च ॥ १३१ ॥

सुख इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इनिः प्रत्ययो नियम्यते मत्वर्थे । सुखी । दुःखी । माला क्षेपइति पठ्यते, व्रीह्यादिषु च मालाशब्दो ऽस्ति तदिह क्षेपे मतुब्बाधनार्थं वचनम् । सुख । दुःख । तृप्र । कृच्छ्र । आस्र । अलीक । करुणा । कृपण । सोढ । प्रमीप । शील । हल ॥ माला क्षेपे ॥ प्रणय ॥

धर्मशीलवर्णान्ताच्च ॥ १३२ ॥

अन्तशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, धर्माद्यन्तात्प्रातिपदिकादिनिः प्रत्ययो नियम्यते । ब्राह्मणानां धर्मो ब्राह्मणधर्मः, सो ऽस्यास्तीति ब्राह्मणधर्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी ॥

हस्ताज्जातौ ॥ १३३ ॥

हस्तशब्दादिनिः प्रत्ययो नियम्यते मत्वर्थे समुदायेन चेज्जातिरभि-धीयते । हस्तो ऽस्यास्तीति, हस्ती । हस्तिनौ । हस्तिनः । जाताविति किम् । हस्तवान्पुरुषः ॥

वर्णाद्ब्रह्मचारिणि ॥ १३४ ॥

वर्णशब्दादिनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे समुदायेन चेद्ब्रह्मचारी भण्यते । ब्रह्मचारी । त्रैवर्णिको ऽभिप्रेतः स हि विद्याग्रहणार्थमुपनीतो ब्रह्म चरति नियममासेवतइत्यर्थः । वर्णी । वर्णिनौ । वर्णिनः । ब्रह्मचारिणीति किम् । वर्णवान् । ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा वर्णिन उच्यन्ते ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ॥ १३५ ॥

पुष्कर इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इनिः प्रत्ययो भवति समुदायेन चेद्देशो ऽभिधीयते । पुष्करिणी । पद्मिनी । देशइति किम् । पुष्करवान्हस्ती ॥ इनिप्रकरणे बलाद्बाहूरुपूर्वादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ बाहुबली । ऊरुबली ॥ सर्वादेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सर्वधनी । सर्वबीजी । सर्वकेशी नटः ॥ अर्थाच्चासन्निहिते ॥ * ॥ अर्थी । असन्निहितइति किम् । अर्थवान् ॥ तदन्ताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ धान्यार्थी । हिरण्यार्थी । पुष्कर । पद्म । उत्पल । तमाल । कुमुद । नड । कपित्थ । बिस । मृणाल । कर्दम । शालूक । विगर्ह । करीष । शिरीष । यवास । प्रवास । हिरण्य * ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ १३६ ॥

बलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मतुप्प्रत्ययो भवति । अन्यतरस्यांग्रहणेन प्रकृत इनिः समुच्चीयते । बलवान् । बली । उत्साहवान् । उत्साही । बल । उत्साह । उद्भाव । उद्वास । उद्वाम । शिखाबल । वृगमूल । दंश । कुल । आयाम । व्यायाम । उपयाम । आरोह । अवरोह । परिणाह । युद्ध ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥ १३७ ॥

मन्नन्तात्प्रातिपदिकान्मशब्दान्ताच्च इनिः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे, समुदायेन चेत्संज्ञा गम्यते । प्रथिमिनी दामिनी । मशब्दान्तात् । होमिनी । सोमिनी । संज्ञायामिति किम् । सोमवान् । तोमवान् ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ १३८ ॥

कंशमिति मकारान्तावुदकसुखयोर्वाचकौ, ताभ्यां ब भ युस् ति तु त यस् इत्येते सप्त प्रत्यया भवन्ति मत्वर्थे । कम्बः । शम्बः । कम्भः । शम्भः । कंयुः । शंयुः । कन्तिः । शन्तिः । कन्तुः । शन्तुः । कन्तः । शन्तः । कंयः । शंयः । सकारः पदसंज्ञार्थस्तेनानुस्वारपरसवर्णौ सिद्धौ भवतः । संज्ञायां हि सत्यां कम्यः शम्य इति स्यात् ॥

तुन्दिवलिवटेर्भः ॥ १३९ ॥

तुन्दि वलि वटि इत्येतेभ्यो भः प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । तुन्दिरिति वृद्धा नाभिरुच्यते, सास्यास्ति तुन्दिभः । वलिभः । वटिभः । वलिशब्दः पामादिषु पठ्यते, तेन वलिन इत्यपि भवति ॥

अहंशुभमोर्युस् ॥ १४० ॥

---

* कैरव । कल्लोल । तरङ्ग । वयस । एते शब्दा अत्र गणे पुस्तकान्तरे ऽधिकाः ।

अहमिति शब्दान्तरमहंकारे वर्त्तते, शुभमित्यव्ययं शुभपर्याय, ताभ्यां युस्प्रत्ययो भवति मत्वर्थे । सकारः पदसंज्ञार्थः । अहंयुः । अहंकारवानित्यर्थः । शुभंयुः । कल्याणवानित्यर्थः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ पञ्चमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ १ ॥

दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य इति वक्ष्यति, प्रागेतस्माद्दिक्संशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो विभक्तिसंज्ञास्ते वेदितव्याः । वक्ष्यति । पञ्चम्यास्तसिल् । ततः । यतः । कुतः । तसिलादीनां विभक्तित्वे प्रयोजनं त्यदादिविधयः, इदमो विभक्तिस्वरश्च । इह । ऊडिदमिति विभक्त्युदात्तत्वं सिद्धं भवति । इतः परं स्वार्थिकाः प्रत्ययास्तेषु समर्थाधिकारः प्रथमग्रहणं च प्रतियोग्यपेक्षत्वाचोपयुज्यतइति निवृत्तम् । वावचनमनुवर्त्ततएव, तेन विकल्पेन तसिलादयो भवन्ति । कुतः । कस्मात् । कुत्र । कस्मिन्निति ॥

किंसर्वनामबहुभ्यो ऽद्व्यादिभ्यः ॥ २ ॥

प्राग्दिश इत्येव । किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्च प्राग्दिशः प्रत्यया वेदितव्याः । सर्वनामत्वात्प्राप्ते ग्रहणे द्व्यादिपर्युदासः क्रियते । कुतः । कुत्र । यतः । यत्र । ततः । तत्र । बहुतः । बहुत्र । अद्व्यादिभ्य इति किम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । प्रकृतिपरिसंख्यानं किम् । वृक्षात् । वृक्षे । प्राग्दिश इत्येव । वैयाकरणपाशः । सर्वनामत्वादेव सिद्धे किमो ग्रहणं द्व्यादिपर्युदासाद् ॥ बहुग्रहणे संख्याग्रहणम् ॥ * ॥ इह न भवति । बहोः सूपात् । बहौ सूपइति ॥

इदम इश् ॥ ३ ॥

प्राग्दिश इत्येव । इदम इश् इत्ययमादेशो भवति प्राग्दिशीयेषु प्रत्ययेषु परतः । शकारः सर्वादेशार्थः । इह ॥

एतेतौ रथोः ॥ ४ ॥

रेफथकारादौ प्राग्दिशीये प्रत्यये परत इदम एतेतावादेशौ भवतः । इशोऽपवादः । रेफे ऽकार उच्चारणार्थः । इदमो र्हिल् । एतर्हि । इदमस्थमुः । इत्थम् ॥

एतदोऽश् ॥ ५ ॥

प्राग्दिशइत्येव । एतदः प्राग्दिशीये परतो ऽशित्ययमादेशो भवति । शकारः सर्वादेशार्थः । अतः । अत्र । एतद इति योगविभागः कर्त्तव्यः । एतदो रथोः परत एत इत् इत्येतावादेशौ भवतः । एतर्हि । इत्थम् । रेफादिरनद्यतने र्हिलन्यतरस्यामिति विद्यतएव । थमुप्रत्ययः पुनरेतद उपसंख्येयः ॥

सर्वस्य सो ऽन्यतरस्यां दि ॥ ६ ॥

सर्वस्य स इत्ययमादेशो भवति प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्यये परतो ऽन्यतरस्याम् । सर्वदा । सदा । प्राग्दिशीयइत्येव । सर्वं ददातीति सर्वदा ब्राह्मणी ॥

पञ्चम्यास्तसिल् ॥ ७ ॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसिलप्रत्ययो भवति । कुतः । यतः । ततः । बहुतः ।

तसेश्च ॥ ८ ॥

५।४।४४ ४५

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः, अपादाने चाहीयरुहोरिति वक्ष्यति । तस्य तसेः किंसर्वनामबहुभ्यः परस्य तसिलादेशोभवति । कुत आगतः । यतः । ततः । बहुत आगतः । तसेस्तसिल्वचनं स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च ॥

पर्यभिभ्यां च ॥ ९ ॥

परि अभि इत्येताभ्यां तसिल् प्रत्ययो भवति ॥ सर्वोभयार्थे वर्त्तमानाभ्यां प्रत्यय इष्यते ॥ परितः सर्वत इत्यर्थः । अभितः । उभयत इत्यर्थः ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ १० ॥

किंसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः त्रल् प्रत्ययो भवति । कुत्र । तत्र । बहुत्र ॥

इदमो हः ॥ ११ ॥

इदम: ५।३।-३

इदमः सप्तम्यन्ताद्धः प्रत्ययो भवति । त्रलो ऽपवादः । इह ॥

किमो ऽत् ॥ १२ ॥

किमः सप्तम्यन्तादत्प्रत्ययो भवति । त्रलो ऽपवादः । क्व भोक्ष्यसे । क्वाध्येष्यसे । त्रलमपि के चिदिच्छन्ति । कुत्र । तत्कथ,मुत्तरसूत्राद्वावचनं पुरस्तादपकृष्यते ॥

वा ह च च्छन्दसि ॥ १३ ॥

किमः सप्तम्यन्ताद्वा हः प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये । यथाप्राप्तं च । क्व । कुह । कुत्र चिदस्य सा दूरे क्व ब्राह्मणस्य चावकाः ॥

इतराभ्योपि दृश्यन्ते ॥ १४ ॥

सप्तमीपञ्चम्यपेक्षमितरत्वम् । इतराभ्यो विभक्तिभ्यस्तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणं प्रायिकविध्यर्थं, तेन भवदादिभियोगएवैतद्विधानम् । के पुनर्भवदादयः । भवान्दीर्घायुरायुष्मान् देवानांप्रिय इति । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तेन भवता । तत्र भवता । ततो भवता । तस्मै भवते । ततो भवते । तत्र भवते । तस्माद्भवतः । ततो भवतः । तत्र भवतः । तस्य भवतः । ततो भवतः । तत्र भवतः । तस्मिन् भवति । ततो भवति । तत्र भवति । एवं दीर्घायुष्प्रभृतिष्वप्युदाहार्यम् ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥ १५ ॥

सप्तम्या इति वर्त्तते, न त्वितराभ्य इति । सर्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दा प्रत्ययो भवति । त्रलोपवादः । सर्वस्मिन्काले, सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । तदा । कालइति किम् । सर्वत्र देशे ॥

इदमो र्हिल् ॥ १६ ॥

सप्तम्या इत्येव । काल इति च । इदमः सप्तम्यन्तात्काले वर्त्तमानाद् र्हिल् प्रत्ययो भवति । हस्यापवादः । लकारः स्वरार्थः । अस्मिन् काले, एतर्हि । कालइत्येव । इह देशे ॥

अधुना ॥ १७ ॥

अधुनेति निपात्यते । इदमो ऽशभावो धुना च प्रत्ययः । अस्मिन्काले, अधुना ॥

दानीं च ॥ १८ ॥

इदमः सप्तम्यन्तात्काले वर्त्तमानाद्दानीं प्रत्ययो भवति । अस्मिन्काले, इदानीम् ॥

तदो दा च ॥ १९ ॥

तदः सप्तम्यन्तात्काले वर्त्तमनाद् दा प्रत्ययो भवति, चकाराद्दाना च । तस्मिन्काले, तदा । तदानीम् । तदो दावचनमनर्थकं, विहितत्वात् ॥

तयोर्दार्हिलौ चच्छन्दसि ॥ २० ॥

तयोरिति प्रातिपदिकनिर्देशः । तयोरिदमः तदश्च यथासंख्यं दार्हिलौ प्रत्ययौ भवतश्छन्दसि विषये । चकाराद्यथाप्राप्तं च । इदावत्सरीयः । इदं तर्हि । इदानीम् । तदानीम् ॥

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

छन्दसीति न स्वर्यते । सामान्येन विधानम् । किंसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यो ऽनद्यतने कालविशेषे वर्त्तमानेभ्यो र्हिल् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम् । कर्हि । कदा । यर्हि । यदा । तर्हि । तदा ॥

सद्यःपरुत्परार्य्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥ २२ ॥

सप्तम्याः कालइति वर्त्तते । सद्यःप्रभृतयः शब्दा निपात्यन्ते । प्रकृतिप्रत्यय आदेशः कालविशेषइति सर्वमेतन्निपातनाल्लभ्यते । समानस्य सभावो निपात्यते द्यश्च प्रत्ययः, अहन्यभिधेये । समाने ऽहनि, सद्यः । पूर्वपूर्वतरयोः परभावो निपात्यते उदारी च प्रत्ययौ संवत्सरे ऽभिधेये । पूर्वस्मिन्संवत्सरे, परुत् । पूर्वतरे संवत्सरे, परारि । इदम इशभावः समसण् प्रत्ययो निपात्यते संवत्सरे ऽभिधेये । अस्मिन्संवत्सरे, ऐषमः । परस्मादेद्यविः प्रत्ययो ऽहनि । परस्मिन्नहनि, परेद्यवि । इदमो ऽश्भावो द्यश्च प्रत्ययो ऽहनि । अस्मिन्नहनि, अद्य । पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् प्रत्ययो निपात्यते ऽहन्यभिधेये । पूर्वस्मिन्नहनि, पूर्वेद्युः । अन्यस्मिन्नहनि, अन्येद्युः । अन्यतरस्मिन्नहनि, अन्यतरेद्युः । इतरस्मिन्नहनि, इतरेद्युः । अपरस्मिन्नहनि, अपरेद्युः । अधरस्मिन्नहनि, अधरेद्युः । उभयोरह्नोः, उभयेद्युः । उत्तरस्मिन्नहनि, उत्तरेद्युः ॥ द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः ॥ * ॥ उभयद्युः ॥

प्रकारवचने थाल् ॥ २३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्यो ऽद्व्यादिभ्य इति वर्त्तते । सप्तम्याः कालइति निवृत्तम् । सामान्यस्य विशेषो भेदकः प्रकारः । प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत् । प्रकारवृत्तिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति । तेन प्रकारेण, तथा । यथा । सर्वथा । जातीयरोपीदृशमेव लक्षणं, स तु स्वभावात्प्रकारवति वर्त्तते थाल्पुनः प्रकारमात्रे ॥

इदमस्थमुः ॥ २४ ॥

इदंशब्दात्प्रकारवचने थमुः प्रत्ययो भवति । थालोपवादः । अनेन प्रकारेण, इत्थम् । उकारो मकारपरित्राणार्थः ॥

किमश्च ॥ २५ ॥

किंशब्दात् प्रकारवचने थमुः प्रत्ययो भवति * । केन प्रकारेण, कथम् ॥

---

* थालो ऽपवादः । योगविभाग उत्तरार्थ । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

था हेतौ चच्छन्दसि ॥ २६ ॥

किंशब्दाद्धेतौ वर्त्तमानात्था प्रत्ययो भवति, चकारात्प्रकारवचने । छन्दसि विषये । हेतौ तावत् । कथा ग्रामं न पृच्छसि । केन हेतुना न पृच्छसीत्यर्थः । प्रकारवचने । कथा देवा आसन्पुरा विदः । विभक्तिसंज्ञायाः पूर्णावधिः ॥

दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥ २७ ॥

दिशां शब्दाः, दिक्शब्दाः । तेभ्यो दिक्शब्देभ्यो दिग्देशकालेषु वर्त्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो ऽस्तातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ॥ यथासंख्यमत्र नेष्यते ॥ पुरस्ताद्वसति । पुरस्तादागतः । पुरस्ताद्रमणीयम् । अधस्ताद्वसति । अधस्तादागतः । अधस्ताद्रमणीयम् । दिक्शब्देभ्य इति किम् । ऐन्द्र्यां दिशि वसति । सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य इति किम् । पूर्वं ग्रामं गतः । दिग्देशकालेष्विति किम् । पूर्वस्मिन्गुरौ वसति । इकारस्तकारपरित्राणार्थः ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥ २८ ॥

दक्षिणोत्तराभ्यां दिग्देशकालेषु वर्त्तमानाभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां स्वार्थे ऽतसुच् प्रत्ययो भवति । अस्तातेरपवादः । दक्षिणाशब्दः काले न संभवतीति दिग्देशवृत्तिः परिगृह्यते । दक्षिणतो वसति । दक्षिणत आगतः । दक्षिणतो रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः । उत्तरतो रमणीयम् । अकारो विशेषणार्थः पञ्चतसर्थप्रत्ययेनेति ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥ २९ ॥

परावरशब्दाभ्यां विभाषा ऽतसुच्प्रत्ययो भवति अस्तातेरर्थे । परतो वसति । परत आगतः । परतो रमणीयम् । परस्ताद्वसति । परस्तादागतः । परस्ताद्रमणीयम् । अवरतो वसति । अवरत आगतः । अवरतो रमणीयम् । अवस्ताद्वसति । अवस्तादागतः । अवस्ताद्रमणीयम् ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ३० ॥

अञ्चत्यन्तेभ्यो दिक्शब्देभ्य उत्तरस्यास्तातिप्रत्ययस्य लुग् भवति । प्राच्यां दिशि वसति । लुक्तद्धितलुकीति स्त्रीप्रत्ययोपि निवर्त्तते । प्राग्वसति । प्रागागतः । प्राग्रमणीयम् * ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ३१ ॥

उपरि उपरिष्टात् इत्येतौ शब्दौ निपात्येते अस्तातेरर्थे । ऊर्ध्वस्योप-

---

* प्रत्यग्वसति । प्रत्यगागतः । प्रत्यग्रमणीयम् । इत्यधिकमन्यत्र ।

भावः रिल्रिष्टातिलौ च प्रत्ययौ निपात्येते । ऊर्ध्वायां दिशि वसति, उपरि वसति । उपर्यागतः । उपरि रमणीयम् । उपरिष्टाद्वसति । उपरिष्टादागतः । उपरिष्टाद्रमणीयम् ॥

पश्चात् ॥ ३२ ॥

पश्चादित्ययं शब्दो निपात्यते ऽस्तातेरर्थे । अपरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययः । अपरस्यां दिशि वसति । पश्चाद्दिशि वसति । पश्चादागतः । पश्चाद्रमणीयम् ॥ दिक्पूर्वपदस्यापरस्य पश्चभावो वक्तव्यः, आतिश्च प्रत्ययः ॥ * ॥ दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ अर्द्धोत्तरपदस्य दिक्पूर्वपदस्य पश्चभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ दक्षिणपश्चार्द्धः । उत्तरपश्चार्द्धः ॥ विनापि पूर्वपदेन पश्चभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ पश्चार्द्धः ॥

पश्च पश्चा चच्छन्दसि ॥ ३३ ॥

पश्चापश्चाशब्दौ निपात्येते छन्दसि विषये, अस्तातेरर्थे । चकारात्पश्चादित्यपि भवति । अपरस्य पश्चभावो ऽकाराकारौ च प्रत्ययौ निपात्येते । परो व्याप्तो जायते, पश्च सिंहः । पश्चा सिंहः । पश्चात्सिंहः ॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ३४ ॥

उत्तराधरदक्षिणशब्देभ्य आतिः प्रत्ययो भवति अस्तातेरर्थे । उत्तरस्यां दिशि वसति, उत्तराद्वसति । उत्तरादागतः । उत्तराद्रमणीयम् । अधराद्वसति । अधरादागतः । अधराद्रमणीयम् । दक्षिणाद्वसति । दक्षिणादागतः । दक्षिणाद्रमणीयम् ॥

एनबन्यतरस्यामदूरे ऽपञ्चम्याः ॥ ३५ ॥

उत्तराधरदक्षिणशब्देभ्य एनप् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्यामस्तातेरर्थे । अदूरे चेदवधिमानवधेर्भवति । विभक्तित्रये प्रकृते ऽपञ्चम्या इति पञ्चमी पर्युदस्यते । तेनायं सप्तमीप्रथमान्ताद्विज्ञायते प्रत्ययः । उत्तरेण वसति । उत्तराद्वसति । उत्तरतो वसति । उत्तरेण रमणीयम् । उत्तराद्रमणीयम् । उत्तरतो रमणीयम् । अधरेण वसति । अधराद्वसति । अधस्ताद्वसति । अधरेण रमणीयम् । अधराद्रमणीयम् । अधस्ताद्रमणीयम् । दक्षिणेन वसति । दक्षिणाद्वसति । दक्षिणतो वसति । दक्षिणेन रमणीयम् । दक्षिणाद्रमणीयम् । दक्षिणतो रमणीयम् । अदूरइति किम् । उत्तराद्वसति । अपञ्चम्या इति किम् । उत्तरादागतः । अपञ्चम्या इति प्रागसेः । असिप्रत्ययस्तु पञ्चम्यन्तादपि भवति । के चिदिहोत्तरादिग्रहणं नानुवर्त्तयन्ति । दिक्छब्दमात्रात्प्रत्ययं मन्यन्ते । पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण ग्रामम् ॥

दक्षिणादाच् ॥ ३६ ॥

अदूरइति न स्वर्यते । अपञ्चम्या इति वर्त्तते । दक्षिणशब्दादाच् प्रत्ययो भवति अस्तातेरर्थे । दक्षिणा वसति । दक्षिणा रमणीयम् । अपञ्चम्या इत्येव । दक्षिणत आगतः । चकारो विशेषणार्थः, अञ्चूत्तरपदाजाहियुक्तइति ॥

आहि च दूरे ॥ ३७ ॥

दक्षिणशब्दादाहिः प्रत्ययो भवति अस्तातेरर्थे, चकारादाच् । दूरे चेदवधिमानवधेर्भवति । दक्षिणाहि वसति । दक्षिणा वसति । दक्षिणाहि रमणीयम् । दक्षिणा रमणीयम् । दूरइति किम् । दक्षिणतो वसति । अपञ्चम्या इत्येव । दक्षिणत आगतः ॥

उत्तराच्च ॥ ३८ ॥

उत्तरशब्दादाजाही प्रत्ययौ भवतः, अस्तातेरर्थे, दूरे चेदवधिमानवधेर्भवति । उत्तरा वसति । उत्तराहि वसति । उत्तरा रमणीयम् । उत्तराहि रमणीयम् । दूरइत्येव । उत्तरेण प्रयाति । अपञ्चम्या इत्येव । उत्तरादागतः ॥

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ॥ ३९ ॥

अपञ्चम्या इति निवृत्तम् । तिसृणां विभक्तीनामिह ग्रहणम् । पूर्वाधरावराणामसिः प्रत्ययो भवति अस्तातेरर्थे । तत्सन्नियोगेन चैषां यथासंख्यं पुर् अध् अव् इत्येते आदेशा भवन्ति । असीत्यविभक्तिको निर्देशः । पुरो वसति । पुर आगतः । पुरो रमणीयम् । अधो वसति अध आगतः । अधो रमणीयम् । अवो वसति । अव आगतः । अवो रमणीयम् ॥

अस्ताति च ॥ ४० ॥

सप्तम्यन्तमेतत् । अस्तातिप्रत्यये परतः पूर्वादीनां यथासंख्यं पुरादय आदेशा भवन्ति । इदमेवादेशविधानं ज्ञापकमस्तातिरेभ्यो भवति, असिप्रत्ययेन न बाध्यतइति । पुरस्ताद्वसति । पुरस्तादागतः । पुरस्ताद्रमणीयम् । अधस्ताद्वसति । अधस्तादागतः । अधस्ताद्रमणीयम् ॥

विभाषा ऽवरस्य ॥ ४१ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते । अवरस्यास्तातौ परतो विभाषा अव् इत्ययमादेशो भवति । अवस्ताद्वसति । अवस्तादागतः । अवस्ताद्रमणीयम् । अवरस्ताद्वसति । अवरस्तादागतः । अवरस्ताद्रमणीयम् ॥

संख्याया विधार्थे धा ॥ ४२ ॥

संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विधार्थे वर्त्तमानेभ्यो धा प्रत्ययो भवति

स्वार्थे । विधा प्रकारः सर्वेक्रियाविषय एव गृह्यते । क्रियाप्रकारे वर्त्तमानायाः संख्याया धा प्रत्ययः। एकधा भुङ्क्ते। द्विधा गच्छति। त्रिधा । चतुर्द्धा । पञ्चधा ॥

अधिकरणविचाले च ॥ ४३ ॥

संख्याया इत्येव । अधिकरणं द्रव्यं, तस्य विचालः संख्यान्तरापादनम् । एकस्यानेकीकरणमनेकस्य वा एकीकरणम् । अधिकरणविचाले गम्यमाने संख्यायाः स्वार्थे धा प्रत्ययो भवति । एकं राशिं पञ्चधा कुरु । अष्टधा कुरु । अनेकमेकधा कुरु ॥

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

एकशब्दात्परस्य धाप्रत्ययस्य ध्यमुञादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । एकधा राशिं कुरु । ऐकध्यं कुरु । एकधा भुङ्क्ते । ऐकध्यं भुङ्क्ते । धाप्रकरणादेव लब्धे पुनर्द्धाग्रहणं विधार्थे विहितस्यापि यथा स्यात् । अनन्तरस्यैवैतत्प्राप्नोति ॥

द्वित्र्योश्च धमुञ् ॥ ४५ ॥

धा इत्यनुवर्तते । द्वित्र्योः संबन्धिनो धाप्रत्ययस्य विधार्थे ऽधिकरण-विचाले च विहितस्य धमुञादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । चकारो विकल्पानुकर्षणार्थः। द्विधा । द्वैधम् । त्रिधा । त्रैधम् ॥ धमुञन्तात्स्वार्थे डदर्शनम् ॥ * ॥ पथि द्वैधानि संश्रयन्ते । पथि त्रैधानि संश्रयन्ते ॥

एधाच्च ॥ ४६ ॥

द्वित्र्योः संबन्धिनो धाप्रत्ययस्य एधाजादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । चकारो विकल्पानुकर्षणार्थः । द्वेधा । द्वैधम् । द्विधा । त्रेधा । त्रैधम् । त्रिधा *॥

याप्ये पाशप् ॥ ४७ ॥

याप्यः कुत्सित उच्यते । याप्ये वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्स्वार्थे पाशप् प्रत्ययो भवति । याप्यो वैयाकरणः । कुत्सितो वैयाकरणो, वैयाकरणपाशः । याज्ञिकपाशः। यो व्याकरणशास्त्रे प्रवीणो दुःशीलस्तत्र कस्मान्न भवति । यस्य गुणस्य सद्भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तत्कुत्सायां प्रत्ययः ॥

पूरणाद्भागे तीयादन् ॥ ४८ ॥

पूरणप्रत्ययो यस्तीयस्तदन्तात्प्रातिपदिकाद्भागे वर्त्तमानात्स्वार्थे ऽन् प्रत्ययो भवति । स्वरार्थं वचनम् । द्वितीयो भागः । द्वितीयः । तृतीयः । भागइति किम् । द्वितीयम् । तृतीयम् । पूरणग्रहणमुत्तरार्थम् । नह्यपूरणस्तीयो ऽस्ति । मुखतीयादिरनर्थकः ॥

---

* योगविभागो यथासंख्यनिरासार्थः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

प्रागेकादशभ्यो ऽच्छन्दसि ॥ ४९ ॥

पूरणाद्भागइत्येव । प्रागेकादशभ्यः संख्यावाचिभ्यः पूरणप्रत्ययान्तेभ्यो भागे वर्त्तमानेभ्यः स्वार्थे ऽन् प्रत्ययो भवति अच्छन्दसि विषये । स्वरार्थं वचनम् । पञ्चमः । सप्तमः । नवमः । दशमः । प्रागेका दशभ्य इति किम् । एकादशः । द्वादशः । अच्छन्दसीति किम् । पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत् ॥

षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ॥ ५० ॥

भागइत्येव । अच्छन्दसीति च । षष्ठाष्टमाभ्यां भागे ऽभिधेये ऽच्छन्दसि विषये ञः प्रत्ययो भवति । चकारादंश्च । षष्ठो भागः । षाष्ठः । आष्टमः । अष्टमः ॥

मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ॥ ५१ ॥

भागइत्येव । षष्ठाष्टमाभ्यां यथासंख्यं कन्लुकौ च भवतो मानपश्वङ्गयोर्भागयोरभिधेययोः । षष्ठको भागो मानं चेत्तद्भवति । अष्टमो भागः पश्वङ्गं चेत्तद्भवति । कस्य लुक् । ञस्य लुक्, अनो वा । चकाराद्यथाप्राप्तं च । षाष्ठः । षष्ठः । आष्टमः । अष्टमः । मानपश्वङ्गयोरिति किम् । षाष्ठः । षष्ठः । आष्टमः । अष्टमः ॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ५२ ॥

एकशब्दादसहायवाचिनः स्वार्थे आकिनिच् प्रत्ययो भवति । चकारात्कन्लुकौ च । आकिनिचः कनो वा लुग्विज्ञायते । स च विधानसामर्थ्यात्पक्षे भवति । एकाकी । एककः । एकः । असहायग्रहणं संख्यानिरासार्थम् । तदुपादाने हि द्विबह्वोर्न स्यात् । एकाकिनौ । एकाकिनः ॥

भूतपूर्वे चरट् ॥ ५३ ॥

पूर्वं भूत इति विगृह्य सुप्सुपेति समासः । भूतपूर्वशब्दोतिक्रान्तकालवचनः । प्रकृतिविशेषणं चेतत् । भूतपूर्वत्वविशिष्टेर्थे वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्स्वार्थे चरट् प्रत्ययो भवति । आढ्यो भूतपूर्वः, आढ्यचरः । सुकुमारचरः । टकारो ङीबर्थः । आढ्यचरी ॥

षष्ठ्या रूप्य च ॥ ५४ ॥

षष्ठ्यन्तात्प्रातिपदिकाद्रूप्यः प्रत्ययो भवति चकाराच्चरट् च । षष्ठ्यन्तात्प्रत्ययविधानात् संप्रति भूतपूर्वग्रहणं प्रत्ययार्थस्य विशेषणं, न तु प्रकृत्यर्थविशेषणम् । देवदत्तस्य भूतपूर्वो गौः, देवदत्तरूप्यः । देवदत्तचरः ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ५५ ॥

अतिशयनमतिशायनं, प्रकर्षः । निपातनाद्दीर्घः । प्रकृत्यर्थविशेषणं चेतत् । अतिशायनविशिष्टेर्थे वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्स्वार्थे तमबिष्ठनौ प्रत्ययौ

भवतः । प्रकृत्यर्थविशेषणं च स्वार्थिकानां द्योत्यं भवति । सर्वइमे आढ्याः, अयमेषामतिशयेनाढ्य,आढ्यतमः । दर्शनीयतमः । सुकुमारतमः । अयमेषामतिशयेन पटुः, पटिष्ठः । लघिष्ठः । गरिष्ठः । यदा च प्रकर्षवतां पुनः प्रकर्षो विवक्ष्यते तदातिशायिकान्तादपरः प्रत्ययो भवत्येव । देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे । युधिष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरूणामिति ॥

तिङश्च ॥ ५६ ॥

तिङन्ताच्चातिशायने द्योत्ये तमप् प्रत्ययो भवति । ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यधिकारात्तिङो न प्राप्नोतीति इदं वचनम् । सर्वइमे पचन्तीति अयमेषामतिशयेन पचति, पचतितमाम् । जल्पतितमाम् । इष्ठचोदाह्रियते । गुणवचने नियमितत्वात् ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ५७ ॥

द्वयोरर्थयोर्वचनं द्विवचनम् । विभक्तव्यो विभज्यः । निपातनाद्यत् । द्व्यर्थे विभज्ये चोपपदे प्रातिपदिकात्तिङन्ताच्चातिशायने तरबीयसुनौ प्रत्ययौ भवतः । तमबिष्ठनोरपवादौ ॥ यथासंख्यमत्र नेष्यते ॥ द्वाविमावाढ्यौ, अयमनयोरतिशयेनाढ्यतरः । सुकुमारतरः । पचतितराम् । जल्पतितराम् । ईयसुन्खल्वपि । द्वाविमौ पटू । अयमनयोरतिशयेन पटुः, पटीयान् । लघीयान् । विभज्ये चोपपदे । माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः । दर्शनीयतराः । पटीयांसः । लघीयांसः ॥

अजादी गुणवचनादेव ॥ ५८ ॥

इष्ठनीयसुनावजादी सामान्येन विहितौ तयोरयं विषयनियमः क्रियते । गुणवचनादेव भवतस्तौ नान्यस्मादिति पटीयान् । लघीयान् । पटिष्ठः । लघिष्ठः । इह न भवतः । पाचकतरः । पाचकतम इति । एवकार इष्टतोऽवधारणार्थः । प्रत्ययनियमोऽयं न प्रकृतिनियम इति । पटुतरः पटुतमः ॥

तुश्छन्दसि ॥ ५९ ॥

तुरिति तृन्तृचोः सामान्येन ग्रहणम् । तृन्ताच्छन्दसि विषये अजादी प्रत्ययौ भवतः पूर्वेण गुणवचनादेव नियमे कृते छन्दसि प्रकृत्यन्तराण्यभ्यनुज्ञायन्ते तृन्तादप्यजादी भवत इति । आसुतिं करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः । भस्याढे तद्धितइति पुंवद्भावे कृते तुरिष्ठेमेयस्स्विति तृचो निवृत्तिः ॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥ ६० ॥

प्रशस्यशब्दस्य श्र इत्ययमादेशो भवति अजाद्योः प्रत्यययोः परतः । अजादी इति प्रकृतस्य सप्तमी विभक्तिर्विपरिणम्यते । ननु च प्रशस्यशब्द

स्यागुणवचनत्वादजादी न संभवतः, एवं तर्हि आदेशविधानसामर्थ्यात्तद्विषयो नियमो न प्रवर्त्तते ऽजादी गुणवचनादेवेति । एवमुत्तरेष्वपि योगेषु विज्ञेयम् । सर्वइमे प्रशस्या अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः, श्रेष्ठः । उभाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः, श्रेयान् प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावाच्छ्रशब्दस्य टिलोपयस्येतिलोपौ न भवतः ॥

ज्य च ॥ ६१ ॥

प्रशस्यशब्दस्य ज्य इत्ययमादेशो भवति अजाद्योः प्रत्यययोः परतः । सर्वइमे प्रशस्या अयमतिशयेन प्रशस्यः, ज्येष्ठः । उभाविमौ प्रशस्यावयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः, अयमस्मात् ज्यायान् । ज्यादादीयस इत्याकारः ॥

वृद्धस्य च ॥ ६२ ॥

वृद्धशब्दस्य च ज्य इत्ययमादेशो भवत्यजाद्योः प्रत्यययोः परतः । तयोश्च सत्त्वं नियमाभावेन पूर्ववत् ज्ञाप्यते । सर्वइमे वृद्धा अयमेषामतिशयेन वृद्धः, ज्येष्ठः । उभाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः, ज्यायान् । अयमस्मात् ज्यायान् । प्रियस्थिरेत्यादिना वृद्धशब्दस्य वर्षादेशो विधीयते । वचनसामर्थ्यात्पक्षे सोऽपि भवति । वर्षिष्ठः । वर्षीयानिति ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥ ६३ ॥

अन्तिकबाढयोर्यथासंख्यं नेद साध इत्येतावादेशौ भवतो ऽजाद्योः परतः । तयोश्च सत्त्वं पूर्ववद्विज्ञेयम् ॥ निमित्तभूतयोर्यथासंख्यमत्र नेष्यते ॥ सर्वाणीमान्यन्तिकानि इदमेषामतिशयेन, नेदिष्ठम् । उभे इमे अन्तिके इदमनयोरतिशयेन नेदीयः । इदमस्मान्नेदीयः । सर्वइमे बाढमधीयते । अयमस्मात्साधीयोऽधीते ॥

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥ ६४ ॥

युवाल्पशब्दयोः कनित्ययमादेशो भवत्यन्यतरस्यामजाद्योः परतः । तयोश्च सत्त्वं पूर्ववत् ज्ञेयम् । सर्वइमे युवानः, अयमेषामतिशयेन, कनिष्ठः । द्वाविमौ युवानौ अयमनयोरतिशयेन, कनीयान् । यविष्ठः । यवीयान् । सर्वइमेऽल्पाः । अयमेषामतिशयेन, कनिष्ठः । उभाविमावल्पावयमनयोरतिशयेन कनीयान् । अयमस्मात्कनीयान् । अल्पिष्ठः, अल्पीयानिति वा ॥

विन्मतोर्लुक् ॥ ६५ ॥

विनो मतुपश्च लुग् भवति अजाद्योः प्रत्यययोः परतः । इदमेव वचनं ज्ञापकमजादिसद्भावस्य । सर्वइमे स्रग्विणः, अयमेषामतिशयेन, स्रजिष्ठः । उभाविमौ स्रग्विणौ, अयमनयोरतिशयेन, स्रजीयान् । अयमस्मात् स्रजीयान् ।

सर्वइमे त्वग्वन्तः अयमेषामतिशयेन, त्वचिष्ठः। उभाविमौ त्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन, त्वचीयान्। अयमस्मात्त्वचीयान् ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥ ६६ ॥

प्रशंसा स्तुतिः। प्रकृत्यर्थस्य विशेषणं चैतत्। प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेरूपप् प्रत्ययो भवति। स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृत्यर्थविशेषस्य द्योतका भवन्ति। प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः। याज्ञिकरूपः। प्रकृत्यर्थस्य वैशिष्ट्ये प्रशंसा भवति। वृषलरूपोऽयं, यः पलाण्डुना सुरां पिबति। चोररूपः। दस्युरूपः। यो ऽक्ष्णोरप्यञ्जनमपहरेत्। तिङश्चेत्यनुवर्त्तते। पचतिरूपम्। पचतोरूपम्। क्रियाप्रधानमाख्यातम्। एका च क्रियेति रूपप्प्रत्ययान्ताद् द्विवचनबहुवचने न भवतः। नपुंसकलिङ्गन्तु भवति लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥ ६७ ॥

संपूर्णता, पदार्थानां समाप्तिः। स्तोकेनासंपूर्णता, ईषदसमाप्तिः। प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत्। ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कल्पब् देश्य देशीयर् इत्येते प्रत्यया भवन्ति। ईषदसमाप्तः पटुः, पटुकल्पः। पटुदेश्यः। पटुदेशीयः। मृदुकल्पः। मृदुदेश्यः। मृदुदेशीयः। तिङश्चेत्येव। पचतिकल्पम्। जल्पतिकल्पम् ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ६८ ॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् सुबन्ताद्विभाषा बहुच् प्रत्ययो भवति, स च पुरस्तादेव भवति, न परतः चित्करणमन्तोदात्तार्थम्। ईषदसमाप्तः पटुः, बहुपटुः। बहुमृदुः। बहुगुडा द्राक्षा। विभाषावचनात् कल्पबादयोऽपि भवन्ति। सुब्ग्रहणं तिङन्तान्मा भूदिति ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥ ६९ ॥

सामान्यस्य भेदको विशेषः प्रकारः, तस्य वचने, प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत्। सुबन्तात्प्रकारविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति। प्रकारवति चायं प्रत्ययः। थाल्पुनः प्रकारमात्रएव भवति। पटुप्रकारः, पटुजातीयः। मृदुजातीयः। दर्शनीयजातीयः ॥

प्रागिवात्कः ॥ ७० ॥

इवे प्रतिकृताविति वक्ष्यति। प्रागेतस्मादिवसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः, कप्रत्ययस्तेष्वधिकृतो वेदितव्यः। वक्ष्यति अज्ञातइति। अश्वकः। गर्दभकः ॥ तिङन्तादयं प्रत्ययो नेष्यते ॥ अकजिष्यते ॥ तिङश्चेत्यनुवृत्तमुत्तरसूत्रेणैव संबन्धनीयम् ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः ॥ ७१ ॥

तिङश्चेत्येव। अव्ययानां सर्वनाम्नां च प्रागिवीयेष्वर्थेष्वकच्प्रत्ययो भवति, स च प्राक् टेः, न परतः। कस्यापवादः। उच्चकैः। नीचकैः। शनकैः। सर्वनाम्नः खल्वपि। सर्वके। विश्वके। उभयके। प्रातिपदिकात्सुप इति द्वयमिहानुवर्त्तते। तत्राभिधानतो व्यवस्था भवति। क्व चित्प्रातिपदिकस्य प्राक् टेः प्रत्ययो भवति। क्व चित्सुबन्तस्य। युष्मकाभिः। अस्मकाभिः। युष्मकासु। अस्मकासु। युवकयोः। आवकयोः। इत्यत्र प्रातिपदिकस्य। त्वयका। मयका। त्वयकि। मयकीत्यत्र सुबन्तस्य॥ अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम् प्रत्ययो वक्तव्यः॥ * ॥ स च मित्त्वादन्त्यादचः परो भवति। तूष्णीकामास्ते। तूष्णीकां तिष्ठति॥ शीले को मलोपश्च वक्तव्यः॥ * ॥ तूष्णीशीलः, तूष्णीकः। तिङश्चेति प्रकृतमत्र संबध्यते पचतकि। जल्पतकि॥

कस्य च दः ॥ ७२ ॥

ककारान्तस्य प्रातिपदिकस्याकच्सन्नियोगेन दकारादेशो भवति। चकारः सन्नियोगार्थः। सामर्थ्याच्चाव्ययग्रहणमनुवर्त्तते, न सर्वनामग्रहणम्। ककारान्तस्य सर्वनाम्नो ऽसंभवात्। धिक्। धकित्। हिरुक्। हिरकुत्। पृथक्। पृथकक्॥

अज्ञाते ॥ ७३ ॥

अज्ञातविशेषो ऽज्ञातः। अज्ञातत्वोपाधिके ऽर्थे वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। स्वेन रूपेण ज्ञाते पदार्थे विशेषरूपेणाज्ञाते प्रत्ययविधानमेतत्। कस्यायमश्व इति स्वस्वामिसंबन्धेनाज्ञाते ऽश्वे प्रत्ययः। अश्वकः। गर्द्दभकः। उष्ट्रकः। एवमन्यत्रापि यथायोगमज्ञातता विज्ञेया। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके। विश्वके। पचतकि। जल्पतकि॥

कुत्सिते ॥ ७४ ॥

कुत्सितो गर्हितो निन्दितः। प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत्। कुत्सितत्वोपाधिके ऽर्थ वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। कुत्सितो ऽश्वः, अश्वकः। उष्ट्रकः। गर्द्दभकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके। विश्वके। पचतकि। जल्पतकि॥

संज्ञायां कन् ॥ ७५ ॥

कुत्सितइत्येव। कुत्सितत्वोपाधिके ऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति। कस्यापवादः। प्रत्ययान्तेन चेत्संज्ञा गम्यते। शूद्रकः। धारकः। पूर्णकः॥

अनुकम्पायाम् ॥ ७६ ॥

कारुण्येनाभ्युपपत्तिः परस्यानुकम्पा । तस्यां गम्यमानायां सुबन्तात्तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति । पुत्रकः । वत्सकः । दुर्बलकः । बुभुक्षितकः * । विश्वसितकि । स्वपितकि ॥ ५८ से

नीतौ च तद्युक्तात् ॥ ७७ ॥

सामदानादिरुपायो नीतिः । नीतौ च गम्यमानायां तद्युक्तादनुकम्पायुक्ताद्यथाविहितं प्रत्ययो भवति । हन्त ते धानकाः । हन्त ते तिलकाः । एहकि । अद्धकि । अनुकम्पमानो दानेनाराधयति । पूर्वेणाप्रत्यासत्त्यानुकम्पासंबन्धादनुकम्प्यमानादेव प्रत्ययो विहितः । संप्रति व्यवहितादपि यथा स्यादिति वचनम् ॥

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ॥ ७८ ॥

अनुकम्पायां नीतौ च तद्युक्तादिति वर्त्तते । बह्वचः प्रातिपदिकान्मनुष्यनामधेयाद्वा ठच्प्रत्ययो भवति अनुकम्पायां गम्यमानायां नीतौ च । देविकः । देवदत्तकः । यज्ञिकः । यज्ञदत्तकः । बह्वच इति किम् । दत्तकः । गुप्तकः । मनुष्यनाम्न इति किम् । मद्रबाहुकः । भद्रबाहुकः ॥ ८५ से तोर

घनिलचौ च ॥ ७९ ॥

अनुकम्पायामित्यादि सर्वमनुवर्त्तते । पूर्वेण ठचि विकल्पेन प्राप्ते वचनम् । बह्वचो मनुष्यनाम्नो घन् इलच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । चकाराद्यथाप्राप्तम् । देवियः । देविलः । देविकः । देवदत्तकः । यज्ञियः । यज्ञिलः । यज्ञिकः । यज्ञदत्तकः ॥

प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ॥ ८० ॥

पूर्ववत् सर्वमनुवर्त्तते । उपशब्द आदिर्यस्य तस्मादुपादेः प्रातिपदिकाद् बह्वचो मनुष्यनाम्नो ऽडच् वुच् प्रत्ययौ भवतः । चकाराद् घनिलचौ प्रत्ययौ भवतः । ठच्च वा । उपडः । उपकः । उपियः । उपिलः । उपिकः । उपेन्द्रदत्तकः । प्राचांग्रहणं पूजार्थम् । वेत्येव हि वर्त्तते ॥

जातिनाम्नः कन् ॥ ८१ ॥

बह्वच इति नानुवर्त्तते । सामान्येन विधानं, जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयो व्याघ्र सिंह इत्येवमादिः, तस्मादनुकम्पायां नीतौ च कन्प्रत्ययो भवति । व्याघ्रकः । सिंहकः । शरभकः । वावचनानुवृत्तेर्यथादर्शनमन्यो ऽपि भवति । व्याघ्रिलः । सिंहिलः । नामग्रहणं स्वरूपनिवृत्त्यर्थम् ॥

---

* ज्वरितकः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।
† यथासंभवमिति पा० २ ।

अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ॥ ८२ ॥

कनित्यनुवर्त्तते, मनुष्यनाम्न इति च। अजिनशब्दान्तात्प्रातिपदिकान्मनुष्यनाम्नो ऽनुकम्पायां कन्प्रत्ययो भवति तस्य चोत्तरपदलोपः। व्याघ्राजिनो नाम कश्चिन्मनुष्यः। सोऽनुकम्पितः। व्याघ्रकः। सिंहकः॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ८३ ॥

लोप इत्यनुवर्त्तते। अस्मिन्प्रकरणे यष्ठो ऽजादिश्च प्रत्ययस्तस्मिन्परतः प्रकृतेर्द्वितीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति। ऊर्ध्वग्रहणं सर्वलोपार्थम्। अनुकम्पितो देवदत्तः, देविकः। देवियः। देविलः। यज्ञिकः। यज्ञियः। यज्ञिलः। उपडः। उपकः। उपेन्द्रदत्तकः। ठग्रहणमुक्तो द्वितीयत्वे कविधानार्थम्। अजादिलक्षणे हि माथितिकादिवत्प्रसङ्गः। वायुदत्तः। वायुकः। पितृदत्तः। पितृकः॥ चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वक्तव्यः॥ * ॥ अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तः, बृहस्पतिकः। बृहस्पतियः। बृहस्पतिलः॥ अनजादौ विभाषा लोपो वक्तव्यः॥ * ॥ देवदत्तकः। देवकः। यज्ञदत्तकः। यज्ञकः॥ लोपः पूर्वपदस्य च ठाजादावनजादौ च वक्तव्यः॥ * ॥ दत्तिकः। दत्तिलः। दत्तियः। दत्तकः॥ विना ऽपि प्रत्ययेन पूर्वोत्तरपदयोर्विभाषा लोपो वक्तव्यः॥ * ॥ देवदत्तो, दत्तः। देव इति वा॥ उवर्णाल्ल इलस्य च॥ * ॥ भानुदत्तो, भानुलः। वसुदत्तो, वसुलः॥

चतुर्थादनजादौ च लोपः पूर्व्वपदस्य च।
अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च॥

द्वितीयादचो लोपे सन्ध्यक्षरद्वितीयत्वे तदादेर्लोपवचनम्॥ * ॥ लहोडः। लहिकः। कहोडः। कहिकः॥ एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः॥ * ॥ वागाशीः, वाचिकः। स्रुचिकः। त्वचिकः। कथं षडङ्गुलिदत्तः, षडिक इति। षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम्॥

शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्॥ ८४ ॥

शेवलादीनां मनुष्यनाम्नां ठाजादौ प्रत्यये परतः तृतीयादच ऊर्ध्वस्य लोपो भवति। पूर्वस्यायमपवादः। अनुकम्पितः शेवलदत्तः, शेवलिकः। शेवलियः। शेवलिलः। सुपरिकः। सुपरियः। सुपरिलः। विशालिकः। विशालियः। विशालिलः। वरुणिकः। वरुणियः। वरुणिलः। अर्यमिकः। अर्यमियः। अर्यमिलः॥ शेवलादीनां तृतीयादचो लोपः स चाकृतसन्धीनामिति वक्तव्यम्॥ * ॥ शेवलेन्द्रदत्तः। सुपर्याशीर्दत्तः। शेवलिकः। सुपरिक इति यथा स्यात्। शेवलयिकः। सुपर्यिक इति मा भूत्॥

अल्पे ॥ ८५ ॥

परिमाणापचये अल्पशब्दः, प्रकृतिविशेषणं चैतत् । अल्पत्वविशिष्टे ऽर्थे वर्त्तमानात्प्रातिपदिकाद्यथाविहितं प्रत्ययो भवति । अल्पं तैलं, तैलकम् । घृतकम् । सर्वकम् । विश्वकम् । उच्चकैः । नीचकैः । पचतकि । जल्पतकि ॥

ह्रस्वे ॥ ८६ ॥

ह्रस्वत्वविशिष्टे ऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति । दीर्घप्रतियोगी ह्रस्वः । ह्रस्वो वृक्षो, वृक्षकः । प्लक्षकः । स्तम्भकः ॥

संज्ञायां कन् ॥ ८७ ॥

ह्रस्वइत्येव । ह्रस्वत्वहेतुका या संज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन् प्रत्ययो भवति । पूर्वस्यायमपवादः । वंशकः । वेणुकः । दण्डकः ॥

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ॥ ८८ ॥

ह्रस्वइत्येव । संज्ञाग्रहणं नानुवर्त्तते, सामान्येन विधानम् । कुटीशमीशुण्डाभ्यो ह्रस्वार्थे द्योत्ये रः प्रत्ययो भवति । कस्यापवादः । ह्रस्वा कुटी, कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः । स्वार्थिकत्वे ऽपि पुंल्लिङ्गता लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य ॥

कुत्वा डुपच् ॥ ८९ ॥

ह्रस्वइत्येव । कुतूशब्दाद्ध्रस्वत्वेद्योत्ये डुपच्प्रत्ययो भवति । कस्यापवादः । ह्रस्वा कूतूः कुतुपश्चर्म्ममयं स्नेहभाजनमुच्यते । कूतूरित्यावपनस्याख्या ॥

कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ॥ ९० ॥

ह्रस्वइत्येव । कासूगोणीशब्दाभ्यां ह्रस्वत्वे द्योत्ये ष्टरच्प्रत्ययो भवति । कस्यापवादः । षकारो ङीषर्थः । ह्रस्वा कासूः, कासूतरी । गोणीतरी । कासूरिति शक्तिरायुधविशेष उच्यते ॥

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ॥ ९१ ॥

ह्रस्वइति निवृत्तम् । वत्स उक्षन् अश्व ऋषभ इत्येतेभ्यस्तनुत्वे द्योत्ये ष्टरच्प्रत्ययो भवति । यस्य गुणस्य हि भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशः, तस्य तनुत्वे प्रत्ययः । वत्सतरः । उक्षतरः । अश्वतरः । ऋषभतरः । प्रथमवया वत्सः तस्य तनुत्वं द्वितीयवयःप्राप्तिः । तरुण उक्षा । तस्य तनुत्वं तृतीयवयःप्राप्तिः । अश्वेनाश्वायामुत्पन्नो ऽश्वस्तस्य तनुत्वमन्यपितृकता । अनड्वानृषभः । तस्य तनुत्वं भारवहने मन्दशक्तिता ॥

किंयत्तदोनिर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥ ९२ ॥

किं यत् तत् इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे डतरच् प्रत्ययो भवति। निर्द्धार्यमाणवाचिभ्यः स्वार्थे प्रत्ययः। जात्या * क्रियया गुणेन वा संज्ञया वा समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्। कतरो भवतोः कठः। कतरो भवतोः कारकः। कतरो भवतोः पटुः। कतरो भवतोर्द्देवदत्तः। यतरो भवतोः कारकः। यतरो भवतोः पटुः। यतरो भवतोर्द्देवदत्तः। ततर आगच्छतु। महाविभाषया ऽत्र प्रत्ययो विकल्प्यते। को भवतोर्द्देवदत्तः, स आगच्छतु। निर्धारणइति विषयसप्तमीनिर्देशः। द्वयोरिति समुदायान्निर्धारणविभक्तिः। एकस्येति निर्द्देशः निधार्यमाणनिर्द्देशः॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्॥ ९३॥

किंयत्तद इति वर्त्तते, निर्धारणे एकस्येति च। बहूनामिति निर्धारणे षष्ठी। बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे गम्यमाने जातिपरिप्रश्नविषयेभ्यः किमादिभ्यः वा डतमच् प्रत्ययो भवति। कतमो भवतां कठः। यतमो भवतां कठः। ततम आगच्छतु। वावचनमकजर्थम्, यको भवतां कठः। सक आगच्छतु। महाविभाषा च प्रत्ययविकल्पार्थानुवर्त्ततएव। को भवतां कठः। योभवतां कठः। स आगच्छतु। जातिपरिप्रश्नइति किम्। को भवतां देवदत्तः। परिप्रश्नग्रहणं च किम एव विशेषणं,न यत्तदोरसंभवात्। जातिग्रहणं तु सर्वैरेव संबध्यते। किमो ऽस्मिन्विषये डतरमपीच्छन्ति के चित्। कतरो भवतां कठः। कतरो भवतां कालाप इति। तत्र कतरकतमौ जातिपरिप्रश्नइति वचनात्सिद्धम्॥

एकाच्च प्राचाम्॥ ९४॥

एकशब्दात्प्राचामाचार्याणां मतेन डतरच् डतमच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः स्वस्मिन्विषये। चकारो डतरचो ऽनुकर्षणार्थः। द्वयोर्निर्द्धारणे डतरच्। बहूनां निर्द्धारणे डतमच्। जातिपरिप्रश्नइति नानुवर्त्तते। सामान्येन विधानम्। एकतरो भवतोर्द्देवदत्तः। एकतमो भवतां देवदत्तः। प्राचांग्रहणं पूजार्थं, विकल्पोनुवर्त्तते॥

अवक्षेपणे कन्॥ ९५॥

अवक्षिप्यते येन तदवक्षेपणम्। तस्मिन्वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्कन्प्रत्ययो भवति। व्याकरणकेन नाम त्वं गर्वितः। याज्ञिक्यकेन नाम त्वं गर्वितः। परस्य कुत्सार्थं यदुपादीयते तदिहोदाहरणम्। यत्पुनः स्वयमेव कुत्सितं तत्र कुत्सितइत्यनेन कन्प्रत्ययो भवति। देवदत्तको, यज्ञदत्तक इति। प्रागिवीयस्य पूर्णो ऽवधिः॥

* जात्येत्येकस्मिन् पुस्तके नास्ति, कतरो भवतोः कठ इति तदुदाहरणं च। तथैव युक्तमपदमञ्जर्यां जात्या वेत्यपि द्रष्टव्यं, कतरो भवतोः कठ इत्यादेरपि संभवादिति दर्शनात्।

इवे प्रतिकृतौ ॥ ९६ ॥

कनित्यनुवर्त्तते । इवार्थे यत्प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्मात्कन् प्रत्ययो भवति इवार्थः सादृश्यं तस्य विशेषणं प्रतिकृतिग्रहणम् । प्रतिकृतिः प्रतिरूपकं प्रतिच्छन्दकम् । अश्व इवायमश्वप्रतिकृतिः, अश्वकः । उष्ट्रकः । गर्दभकः । प्रतिकृताविति किम् । गौरिव गवयः ॥

संज्ञायां च ॥ ९७ ॥

इवेत्यनुवर्त्तते, कनिति च । इवार्थे गम्यमाने कन्प्रत्ययो भवति समुदायेन चेत् संज्ञा गम्यते । अप्रतिकृत्यर्थ आरम्भः । अश्वसदृशस्य संज्ञा, अश्वकः । उष्ट्रकः । गर्दभकः ॥

लुम्मनुष्ये ॥ ९८ ॥

संज्ञायामित्येव । संज्ञायां विहितस्य कनो मनुष्ये ऽभिधेये लुब् भवति । चञ्चेव मनुष्यः, चञ्चा । दासी । खरकुटी । मनुष्यइति किम् । अश्वकः । उष्ट्रकः । गर्दभकः । देवपथादेराकृतिगणत्वात्तस्यैवायं प्रपञ्चो वेदितव्यः ॥

जीविकार्थे चापण्ये ॥ ९९ ॥

जीविकार्थे यदपण्यं तस्मिन्नभिधेये कनो लुब् भवति । विक्रीयते यत्तत्पण्यम् । वासुदेवः । शिवः । स्कन्दः । विष्णुः । आदित्यः । देवलकादीनां जीविकार्था देवप्रतिकृतय उच्यन्ते । अपण्यइति किम् । हस्तिकान्विक्रीणीते । अश्वकान् । रथकान् । देवपथादेरेवायं प्रपञ्चः ॥

था देवपथादिभ्यश्च ॥ १०० ॥

इवे प्रकृतिकृतौ संज्ञायां च विहितस्य कनो देवपथादिभ्य उत्तरस्य लुब् भवति । आदिशब्दः प्रकारे । आकृतिगणश्चायम् । देवपथः । हंसपथः ।

अर्च्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्म्मध्वजेषु च ।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु ॥

अर्च्चासु तावत् । शिवः । विष्णुः । चित्रकर्म्मणि । अर्जुनः । दुर्योधनः । ध्वजेषु । कपिः । गरुडः । सिंहः । देवपथ । हंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । सिंहगति । उष्ट्रग्रीवा । चामरज्जुः । रज्जुः । हस्त । इन्द्र । दण्ड । पुष्प । मत्स्य* ॥

वस्तेर्ढञ् ॥ १०१ ॥

इवेत्यनुवर्त्तते, इतः प्रभृति प्रत्ययाः सामान्येन भवन्ति प्रतिकृतौ चाप्रतिकृतौ च । वस्तिशब्दादिवार्थे द्योत्ये ढञ्प्रत्ययो भवति । वस्तिरिव वास्तेयः । वास्तेया ॥

---

* रथपथ । शङ्कुपथ । सिंहपथ । इत्येते शब्दा अत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे ।

शिलाया ढः ॥ १०२ ॥

शिलाशब्दादिवार्थे ढः प्रत्ययो भवति। शिलेव, शिलेयं दधि। केचिदत्र ढञमपीच्छन्ति, तदर्थं योगविभागः कर्त्तव्यः। शिलाया ढञ्प्रत्ययो भवति। शैलेयम्। ततो ढः। शिलेयम् ॥

शाखादिभ्यो यत् ॥ १०३ ॥

शाखा इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत्प्रत्ययो भवति इवार्थे। शाखेव, शाख्यः। मुख्यः। जघन्यः। शाखा। मुख। जघन। शृङ्ग। मेघ। चरण। स्कन्ध। शिरस्। उरस्। अग्र। शरण। शाखादिः ॥

द्रव्यं च भव्ये ॥ १०४ ॥

द्रव्यशब्दो निपात्यते भव्ये ऽभिधेये। द्रुशब्दादिवार्थे यत्प्रत्ययो निपात्यते। द्रव्यम्। भव्य आत्मवान्। अभिप्रेतानामर्थानां पात्रभूत उच्यते। द्रव्योयं राजपुत्रः। द्रव्योयं माणवकः ॥

कुशाग्राच्छः ॥ १०५ ॥

कुशाग्रशब्दादिवार्थे छः प्रत्ययो भवति। कुशाग्रमिव सूक्ष्मत्वात्, कुशाग्रीया बुद्धिः। कुशाग्रीयं वस्त्रम् ॥

समासाच्च तद्विषयात् ॥ १०६ ॥

तदित्यनेन प्रकृत इवार्थो निर्दिश्यते। इवार्थविषयात्समासादपरस्मिन्निवार्थे एव छः प्रत्ययो भवति। काकतालीयम्। अजाकृपाणीयम्। अन्धकवर्त्तकीयम्। अतर्कितोपनतं चित्रीकरणमुच्यते। तत्कथम्। काकस्यागमनं यादृच्छिकम्। तालस्य पतनं च, तेन तालेन पतता काकस्य वधः कृतः। एवमेव देवदत्तस्य तत्रागमनं, दस्यूनां चोपनिपातः। तैश्च तस्य वधः कृतः तत्र यो देवदत्तस्य दस्यूनां च समागमः स काकतालसमागमसदृश इत्येक उपमार्थः। अतश्च देवदत्तस्य वधः, स काकतालवधसदृश इति द्वितीय उपमार्थः। तत्र प्रथमे समासः, द्वितीये प्रत्ययः। समासश्चायमस्मादेव ज्ञापकात्। नह्यस्यापरं लक्षणमस्ति। सुप्सुपेति वा समासः। स चैवंविषय एव ॥

शर्करादिभ्यो ऽण् ॥ १०७ ॥

शर्करा इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इवार्थे ऽण् प्रत्ययो भवति। शर्करेव शार्करम्। कापालिकम्। शर्करा। कपालिका। पिष्टिका*। पुण्डरीक। शतपत्र। गोलोमन्। गोपुच्छ। नराचि। नकुला। सिकता। शर्करादिः ॥

---

* कनिष्ठिक इति पा॰ २। अपरस्मिन्पुस्तके कपिष्ठिक। पा० २।

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ॥ १०८ ॥

अङ्गुल्यादिभ्य इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अङ्गुलीवाङ्गुलिकः । भारुजिकः । अङ्गुलि । भरुज । बभ्रु । वल्गु । मण्डर । मण्डल । शष्कुल । कपि । उदश्वित् । गोणी । उरस् । शिखा । कुलिश । अङ्गुल्यादिः ॥

एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥

एकशालाशब्दादिवार्थे ऽन्यतरस्यां ठच् प्रत्ययो भवति । अन्यतरस्यांग्रहणेनानन्तरष्ठक् प्राप्यते । एकशालेव, एकशालिकः । ऐकशालिकः ॥

कर्कलोहितादीकक् ॥ ११० ॥

कर्कलोहितशब्दाभ्यामिवार्थे ईकक् प्रत्ययो भवति । कर्कः शुक्लो ऽश्वः, तेन सदृशः, कार्कीकः । लौहितीकः स्फटिकः । स्वयमलोहितोऽप्युपाश्रयवशात्तथा प्रतीयते ॥

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि ॥ १११ ॥

प्रत्न पूर्व विश्व इम इत्येतेभ्य इवार्थे थाल् प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये । तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ॥

पूगाञ् ञ्यो ऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ११२ ॥

इवार्थे इति निवृत्तम् । नानाजातीया अनियतवृत्तयो ऽर्थकामप्रधानाः संघाः पूगाः । पूगवाचिनः प्रातिपदिकादग्रामणीपूर्वात्स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति । लौहध्वज्यः । लौहध्वज्यौ । लोहध्वजाः । शैब्यः । शैब्यौ । शिबयः । चातक्यः । चातक्यौ । चातकाः । अग्रामणीपूर्वादिति किम् । देवदत्तो ग्रामणीरेषां त इमे देवदत्तकाः । यज्ञदत्तकाः ॥

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ११३ ॥

नानाजातीया अनियतवृत्तयउत्सेधजीविनः संघा व्राताः । व्रातवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवत्यस्त्रियाम् । कापोतपाक्यः । कापोतपाक्यौ । कपोतपाकाः । व्रैहिमत्यः । व्रैहिमत्यौ । व्रीहिमताः । च्फञः खल्वपि । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । ब्राध्नायन्यः । ब्राध्नायन्यौ । ब्राध्नायनाः । अस्त्रियामिति किम् । कपोतपाकी । व्रीहिमती । कौञ्जायनी । ब्राध्नायनी ॥

आयुधजीविसंघाञ् ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ॥ ११४ ॥

आयुधजीविनां संघः आयुधजीविसंघः । स वाहीकैर्विशेष्यते । वाही-

केषु य आयुधजीविसंघस्तद्वाचिनः प्रातिपदिकाद्ब्राह्मणराजन्यवर्जितात्स्वार्थे ञ्यट् प्रत्ययो भवति। ब्राह्मणे तद्विशेषग्रहणम्। राजन्ये तु स्वरूपग्रहणमेव। टकारो ङीबर्थः। तेनास्त्रियामिति नानुवर्त्तते। कौण्डीबृस्यः। कौण्डीबृस्यौ। कौण्डीबृसाः। क्षौद्रक्यः। क्षौद्रक्यौ। क्षुद्रकाः। मालव्यः। मालव्यौ। मालवाः। स्त्रियां कौण्डीबृसी। क्षौद्रकी। मालवी। आयुधजीविग्रहणं किम्। मल्लाः। शयण्डाः। संघग्रहणं किम्। सम्राट्। वाहीकेष्विति किम्। शबराः। पुलिन्दाः। अब्राह्मणराजन्यादिति किम्। गोपालवा ब्राह्मणाः शालङ्कायना राजन्याः॥

वृकाट्टेण्यण्॥ ११५॥

आयुधजीविसंघादिति वर्त्तते। वृकशब्दादायुधजीविनः स्वार्थे टेण्यण् प्रत्ययो भवति। टकारो ङीबर्थो, णकारो वृद्ध्यर्थः। वार्केण्यः। वार्केण्यौ। वृकाः। आयुधजीविसंघविशेषणं जातिशब्दान्मा भूत्।

कामक्रोधौ मनुष्याणां खादितारौ वृकाविव॥

दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः॥ ११६॥

आयुधजीविसंघादिति वर्त्तते। दामन्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति। येषामायुधजीविनां संघानां षडन्तर्वर्गास्तत्र च त्रिगर्त्तः षष्ठः। त्रिगर्त्तः षष्ठो येषां, ते त्रिगर्त्तषष्ठा इत्युच्यन्ते। तेषु चेयं स्मृतिः।

आहुस्त्रिगर्त्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
कौष्टकिर्ज्जालमानिश्च ब्राह्मगुप्तोथ जानकिः॥

इति। दामन्यादिभ्यस्तावत्। दामनीयः। दामनीयौ। दामनयः। औलपीयः। औलपीयौ। उलपयः। त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यः खल्वपि। कौण्डोपरथीयः। कौण्डोपरथीयौ। कौण्डोपरथाः। दाण्डकीयः। दाण्डकीयौ। दाण्डकयः। क्रौष्टकीयः। जालमानीयः। ब्रह्मगुप्तीयः। जानकीयः। दामनी। औलपि। आकिदन्ती। काकरन्ति। काकदन्ति। शत्रुन्तपि। सार्वसेनि। बिन्दु। मौञ्जायन। उलभ। सावित्रीपुत्र*॥

पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ॥ ११७॥

आयुधजीविसंघादित्येव। पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आयुधजीविसंघवाचिभ्यः स्वार्थे ऽणञौ प्रत्ययौ भवतः। पार्शवः। पार्शवौ। पर्शवः। आसुरः। आसुरौ। असुराः। यौधेयः। शौक्रेयः। पर्शु। असुर।

---

* अच्युतन्ति। कोकतन्ती। तुलभ। देववापि। औतकी। अपच्युतकी। कर्की। पिण्ड। एते ऽत्र गणे ऽधिकाः पुस्तकान्तरे।

रक्षस् । बाल्हीक । वयस् । मरुत् । दशार्ह । पिशाच । विशाल । अशनि । कार्षापण । सत्वत् । वसु । पर्श्वादिः ॥ यौधेय । कौशेय । क्रौशेय । शौक्रेय । शौभ्रेय । धार्त्तेय । वार्त्तेय । जाबालेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । यौधेयादिः ॥

अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रु- मदणो यञ् ॥ ११८ ॥

आयुधजीविसंघादिति निवृत्तम् । अभिजिदादिभ्यो ऽणन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यञ् प्रत्ययो भवति । अभिजितो ऽपत्यमित्यण् । तदन्ताद्यञ् । आभिजित्यः । आभिजित्यौ । आभिजिताः । वैदभृत्यः । वैदभृत्यौ । वैदभृताः । शालावत्यः । शालावत्यौ । शालावताः । शैखावत्यः । शामीवत्यः । और्णावत्यः । श्रौमत्यः ॥ गोत्रप्रत्ययस्यात्राणो ग्रहणमिष्यते ॥ अभिजितो मुहूर्त्तः । आभिजितः । स्थालीपाक इत्यत्र न भवति ॥

ञ्यादयस्तद्राजाः ॥ ११९ ॥

पूगाञ्ञ्यो ग्रामणीपूर्वादित्यतः प्रभृति ये प्रत्ययाः ते तद्राजसंज्ञाभवन्ति । तथा चैवोदाहृतम् । तद्राजप्रदेशाः तद्राजस्य बहुष्वित्येवमादयः ॥

इति श्रीजयादित्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ पञ्चमस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ पञ्चमस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ॥ १ ॥

पादशतान्तस्य संख्यादेः प्रातिपदिकस्य वीप्सायां द्योत्यायां वुन् प्रत्ययो भवति । तत्सन्नियोगेन चान्तस्य लोपो भवति । यस्येति लोपेनैव सिद्धेपुनर्वचनमनैमित्तिकार्थम् । यस्येति लोपः परनिमित्तकः । तस्य स्थानिवद्भावात्पादः पदिति पद्भावो न स्यात् । अस्य त्वनैमित्तिकत्वाच्च स्थानिवत्त्वम् । द्वौद्वौ पादौ ददाति, द्विपदिकां ददाति । द्वेद्वे शते ददाति, द्विशतिकां ददाति । तद्धितार्थइति समासः । ततः प्रत्ययः । स्वभावाच्च वुन्प्रत्ययान्तं स्त्रियामेव वर्त्तते । पादशतस्येति किम् । द्वौद्वौ माषौ ददाति । संख्यादेरिति किम् । पादंपादं ददाति । वीप्सायामिति किम् । द्वौपादौ ददाति । द्वे शते ददाति । पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनात् । द्विमोदकिकां ददाति, त्रिमोदकिकां ददाति ॥

दण्डव्यवसर्गयोश्च ॥ २ ॥

दमनं दण्डः। दानं व्यवसर्गः। दण्डव्यवसर्गयोर्गम्यमानयोः पादशतान्तस्य प्रातिपदिकस्य संख्यादेर्वुन् प्रत्ययो भवति, अन्तलोपश्च। अवीप्सार्थोयमारम्भः। द्वौ पादौ दण्डितः। द्विपदिकान्दण्डितः। द्वौ पादौ व्यवसृजति। द्विपदिकां व्यवसृजति। द्विशतिकां दण्डितः। त्रिशतिकाम्। द्विशतिकां व्यवसृजति। त्रिशतिकाम्॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ ३ ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने द्योत्ये कन् प्रत्ययो भवति। जातीयरोपवादः। प्रकारो विशेषः। स्थूलप्रकारः, स्थूलकः। अणुकः। माषकः॥ कन्प्रकरणे चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्॥ * ॥ चञ्चत्प्रकारः, चञ्चत्कः। बृहत्कः। चञ्चबृहयोरिति के चित्पठन्ति। तेषां चञ्चकः, बृहक इति उदाहरणं द्रष्टव्यम्। केण इति ह्रस्वः *। स्थूल। अणु। माष। इषु। कृष्ण तिलेषु। यव व्रीहिषु॥ इक्षुतिलपाद्यकालावदाताः सुरायाम्॥ गोमूत्र आच्छादने॥ सुराया अहौ॥ जीर्ण शालिषु। पत्रमूले समस्तव्यस्ते। कुमारीपुत्र। कुमार। श्वशुर। मणि। स्थूलादिः॥

अनत्यन्तगतौ क्तात् ॥ ४ ॥

अत्यन्तगतिरशेषेण संबन्धः तदभावो ऽनत्यन्तगतिः। अनत्यन्तगतौ गम्यमानायां क्तान्तात्कन्प्रत्ययो भवति। भिन्नकः। छिन्नकः। अनत्यन्तगताविति किम्। भिन्नम्। छिन्नम्॥

न सामिवचने ॥ ५ ॥

सामिवचने उपपदे क्तान्तात्कन्प्रत्ययो न भवति। सामिकृतम्। सामिभुक्तम्। वचनग्रहणं पर्यायार्थम्। अर्द्धकृतम्। नेमकृतम्। सामिवचने प्रतिषेधानर्थक्यं प्रकृत्याभिहितत्वात्। एवं तर्हि नैवायमनत्यन्तगतौ विहितस्य कनः प्रतिषेधः, किं तर्हि स्वार्थिकस्य। केन पुनः स्वार्थिकः कन्विहितः। एतदेव ज्ञापकं भवति स्वार्थे कन्निति। तत्र यदेतदुच्यते। एवं हि सूत्रमभिन्नतरकं भवति। एतर्हि बहुतरकं व्याप्यतइत्येवमादि तदुपपन्नं भवति†॥

बृहत्या आच्छादने ॥ ६ ॥

कन्ननुवर्त्तते, न प्रतिषेधः। बृहतीशब्दादाच्छादने वर्त्तमानात्स्वार्थे कन्प्रत्ययो भवति। बृहतिका। आच्छादने इति किम्। बृहती छन्दः॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥ ७ ॥

---

* केण इति ह्रस्व इत्यपपाठः, पदमञ्जर्यां दर्शनात्।

† एतर्हि बहुतरकं व्याकरणमधीतमित्येवमाद्युपपन्नं भवति। पा० २।

अषडक्ष आशितङ्गु अलंकर्म अलंपुरुष इत्येतेभ्यो ऽध्युत्तरपदाच्च स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति । अविद्यमानानि षडक्षीण्यस्येति बहुव्रीहिः । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच् । ततः खप्रत्ययः । अषडक्षीणो मन्त्रः । यो द्वाभ्यामेव क्रियते न बहुभिः । आशिता गावो ऽस्मिन्नरण्ये आशितंगवीनमरण्यम् । निपातनात्पूर्वपदस्य मुमागमः । अलंकर्मीणः । अलंपुरुषीणः इति । पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्येति समासः । अलंकर्मणे,ऽलंकर्मीणः । अलंपुरुषाय, अलंपुरुषीणः । अध्युत्तरपदस्तत्पुरुषः । अधिशब्दः शौण्डादिषु पठ्यते । राजाधीनः । नित्यश्चायं प्रत्ययः । उत्तरत्र विभाषाग्रहणात् । अन्येपि स्वार्थिका नित्याः प्रत्ययाः स्मर्यन्ते । तमबादयः प्राक्कनः । ऽयादयः प्राग्वुनः । आमादयः प्राङ् मयटः । बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्चेति ॥

विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ॥ ८ ॥

अञ्चत्यन्तात्प्रातिपदिकाददिक्स्त्रियां वर्तमानात्स्वार्थे विभाषा खः प्रत्ययो भवति । प्राक् । प्राचीनम् । अर्वाक् । अर्वाचीनम् । अदिक्स्त्रियामिति किम् । प्राची दिक् । प्रतीची दिक् । दिग्ग्रहणं किम् । प्राचीना ब्राह्मणी । अवाचीना शिखा । स्त्रीग्रहणं किम् । प्राचीनं दियमणीयम् । उदीचीनं दियमणीयम् ॥

जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ॥ ९ ॥

जात्यन्तात्प्रातिपदिकाद्बन्धुनि वर्तमानात्स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । बध्यते ऽस्मिञ्जातिरिति बन्धुशब्देन द्रव्यमुच्यते । येन ब्राह्मणत्वादिजातिर्व्यज्यते तद्बन्धु द्रव्यम् । ब्राह्मणजातीयः । क्षत्रियजातीयः । वैश्यजातीयः । इति । ब्राह्मणादिरेवोच्यते । बन्धुनीति किम् । ब्राह्मणजातिः शोभना ॥

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ १० ॥

स्थानान्तात्प्रातिपदिकाद्विभाषा छः प्रत्ययो भवति सस्थानेन चेत् स्थानान्तमर्थवद्भवति । सस्थान इति तुल्य उच्यते, समानं स्थानमस्येति कृत्वा । पित्रा तुल्यः, पितृस्थानीयः । पितृस्थानः । मातृस्थानीयो, मातृस्थानः । राजस्थानीयो, राजस्थानः । सस्थानेनेति किम् । गोस्थानमश्वस्थानम् । इतिकरणो विवक्षार्थः । तेन बहुव्रीहिः सस्थानशब्दोर्थमुपस्थापयति, न तत्पुरुषः । चेच्छब्दः संबन्धार्थः । द्वयोर्विभाषयोर्नित्या विधय इति पूर्वत्र नित्यविधयः ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥ ११ ॥

किम एकारान्तात्तिङन्तादव्ययेभ्यश्च यो विहितो घः स किमेत्तिङव्ययघः तदन्तात्प्रातिपदिकादद्रव्यप्रकर्षे आम् प्रत्ययो भवति । यद्यपि द्रव्यस्य

स्वतः प्रकर्षो नास्ति तथापि गुणक्रियास्थः प्रकर्षो यदा द्रव्यउपचर्यते तदाऽयं प्रतिषेधः। क्रियागुणयोरेवायं प्रकर्षे प्रत्ययः। किंतराम्। किंतमाम्। पूर्वाह्णेतराम्। पूर्वाह्णेतमाम्। पचतितराम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तराम्। उच्चैस्तमाम्। अद्रव्यप्रकर्ष इति किम्। उच्चैस्तरः। उच्चैस्तमः॥

अमु च च्छन्दसि ॥ १२ ॥

किमेत्तिङव्ययघादद्रव्यप्रकर्षे अमु, प्रत्ययो भवति छन्दसिविषये। चकारादामु च। प्रतरं नयामः। प्रतरां वस्यः। स्वरादिषु अम् आम् इति पठ्यते। तस्मात्तदन्तस्याव्ययत्वम्॥

अनुगादिनष्ठक् ॥ १३ ॥

अनुगदतीत्यनुगादी। अनुगादिन्शब्दात्स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। आनुगादिकः॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ १४ ॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियामिति णज्विहितः, तदन्तात्स्वार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति स्त्रियां विषये। व्यावक्रोशी। व्यावहासी वर्त्तते। स्त्रीग्रहणं किमर्थं यावता णच् स्त्रियामेव विहितः। ततः स्वार्थिकस्तत्रैव भविष्यति। एवं तर्ह्येतज् ज्ञापयति स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्तेऽपीति। तेन गुडकल्पा द्राक्षा। तैलकल्पा प्रसन्ना। देव एव देवतेत्येवमादिउपपन्नं भवति॥

अणिनुणः ॥ १५ ॥

अभिविधौ भावइनुण् विहितस्तदन्तात्स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति। सांराविणं वर्त्तते। सांकूटिनम्॥

विसारिणो मत्स्ये ॥ १६ ॥

विसरतीति विसारी। विसारिन्शब्दात्स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति मत्स्येऽभिधेये। वैसारिणो मत्स्यः। मत्स्यइति किम्। विसारी देवदत्तः॥

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ १७ ॥

संख्याशब्देभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानेभ्यः स्वार्थे कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति। पौनः पुन्यमभ्यावृत्तिः। एककर्त्तृकाणां तुल्यजातीयानां क्रियाणां जन्मसंख्यानं क्रियाभ्यावृत्तिगणनं तत्र प्रत्ययः। पञ्च वारान्भुङ्क्ते पञ्चकृत्वः। सप्तकृत्वः। संख्याया इति किम्। भूरीन्वारान्भुङ्क्ते। क्रियाग्रहणं किमर्थम्। यावताभ्यावृत्तिः क्रियाया एव संभवति न द्रव्यगुणयोः। उत्तरार्थं क्रियाग्रहम्। एकस्य सकृच्चेत्यत्र क्रियैव गण्यते नाभ्यावृत्तिः, असंभवात्। अभ्यावृत्तिग्रहणं

किम् । क्रियामात्रगणने मा भूत् । पञ्चपाकाः । दशपाकाः । गणनग्रहणं किमर्थम् । यावता गणनात्मिकैव संख्या । अक्रियमाणे गणनग्रहणे क्रियाभ्यावृत्तौ वर्त्तमानेभ्यः संख्येयवचनेभ्य एव प्रत्ययः स्यात् । शतवारान्भुङ्क्ते, शतकृत्व इति । इह न स्यात् । शतं वाराणां भुङ्क्तइति । नह्यत्राभ्यावृत्तौ शतशब्दः । संख्यानमात्रवृत्तित्वात् । गणनग्रहणात्तु सर्वत्र सिद्धं भवति ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ १८ ॥

द्वि त्रि चतुर् इत्येतेभ्यः संख्याशब्देभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानेभ्यः सुच् प्रत्ययो भवति । कृत्वसुचो ऽपवादः । द्विर्भुङ्क्ते । त्रिर्भुङ्क्ते । चतुर्भुङ्क्ते । चकारः स्वरार्थः ॥

एकस्य सकृच्च ॥ १९ ॥

एकशब्दस्य सकृदित्ययमादेशो भवति सुच्च प्रत्ययः क्रियागणने । कृत्वसुचो ऽपवादः । अभ्यावृत्तिस्त्विह न संभवति । सकृद्भुङ्क्ते । सकृदधीते । एकः पाक इत्यत्र न भवति, अनभिधानात् ॥

विभाषा बहोर्धा ऽविप्रकृष्टकाले ॥ २० ॥

बहुशब्दात् क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्त्तमानात् विभाषा धा प्रत्ययो भवति । कृत्वसुचो ऽपवादः । पक्षे सोपि भवति । अविप्रकृष्टग्रहणं क्रियाभ्यावृत्तिविशेषणम् । क्रियाणामुत्पत्तयश्चेदासन्नकालाः भवन्ति, न विप्रकृष्टकालाः । बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते । बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते । अविप्रकृष्टकालइति किम् । बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥ २१ ॥

तदिति प्रथमा समर्थविभक्तिः, प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम् । प्रथमासमर्थात् प्रकृतोपाधिकेर्थे वर्त्तमानात्स्वार्थे मयट प्रत्ययो भवति । टकारो ङीबर्थः । अन्नं प्रकृतम्, अन्नमयम् । अपूपमयम् । अपरे पुनरेवं सूत्रार्थमाहुः । प्रकृतमित्युच्यतेस्मिन्निति प्रकृतवचनं, तदिति प्रथमासमर्थात्प्रकृतवचने ऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति । अन्नं प्रकृतमस्मिन्नन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व । वटकमयी यात्रा । द्वयमपि प्रमाणमुभयथा सूत्रप्रणयनात् ॥

समूहवच्च बहुषु ॥ २२ ॥

तत्प्रकृतवचनइत्येव । बहुषु प्रकृतेषूच्यमानेषु समूहवत्प्रत्यया भवन्ति । चकारान्मयट् च । मोदकाः प्रकृताः प्राचुर्येण प्रस्तुताः, मौदकिकम् । मोदकमयम् । शाष्कुलिकम् । शष्कुलीमयम् । अतिवर्त्तन्तेपि स्वार्थिकाः प्रकृतितो

लिङ्गवचनानि। द्वितीये सूत्रार्थे मोदकाः प्रकृता अस्मिन्यज्ञे, मौदकिको यज्ञः। मोदकमयः। शाष्कुलिकः। शष्कुलीमयः॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ् ञ्यः ॥ २३ ॥

अनन्तादिभ्यः स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति। अनन्त एव, आनन्त्यम्। आवसथ एवावसथ्यम्। इति ह, ऐतिह्यम्। निपातसमुदायोऽयमुपदेशपारम्पर्ये वर्त्तते। भेषजमेव, भैषज्यम्। महाविभाषया विकल्पते प्रत्ययः॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ २४ ॥

देवताशब्दान्तात्प्रातिपदिकाच्चतुर्थीसमर्थात्तदर्थ्ये यत् प्रत्ययो भवति। तदर्थ एव तादर्थ्यम्। चातुर्वर्ण्यादित्वात्ष्यञ्। तदिति प्रकृत्यर्थो निर्दिश्यते। अग्निदेवतायै इदम्, अग्निदेवत्यम्। पितृदेवत्यम्। वायुदेवत्यम्॥

पादार्घाभ्यां च ॥ २५ ॥

तादर्थ्यइत्येव। पादार्घशब्दाभ्यां चतुर्थीसमर्थाभ्यां तादर्थ्येभिधेये यत्प्रत्ययो भवति। पादार्थमुदकं पाद्यम्। अर्घ्यम्। अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः। यथादर्शनमन्यत्रापि प्रत्ययो भवति। एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिः। वसु। अयस्। ओक। कवि। क्षेम। उदक। वर्चस्। निष्केवल। उक्थ। जन। पूर्व। नव। सूर। मर्त। यविष्ठ। इत्येतेभ्यः छन्दसि स्वार्थे यत्प्रत्ययो भवति। अग्निरीशेवसव्यस्य। अयस्यो वसानाः। द्वितीयाबहुवचनस्यालुक्। अपो वसाना इत्यर्थः। स्वओक्ये। कव्योसि। क्षेम्यस्य वस्यति। वायुर्वर्चस्यः। निष्केवल्यं शंसति। उक्थ्यं शंसति। जन्यं ताभिः। पूर्व्याविशः। स्तोमैर्जनयामि नव्यम्। सूर्यः। मर्त्यः। यविष्ठ्यः॥ आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकेत्युपसंख्यानम्॥ * ॥ समशब्दादावतुप्रत्ययोवक्तव्यः॥ * ॥ समावद्वसतु॥ नवस्य नू आदेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्ययाः॥ * ॥ नूत्नम्। नूतनम् नवीनम्॥ न श्च पुराणे प्रात्॥ * ॥ पुराणे वर्त्तमानात्प्रशब्दान्नः प्रत्ययो भवति। चकारात्त्नप्तनप्खाश्च। प्रणम्। प्रत्नम्। प्रतनम्। प्रीणम्॥ भागरूपनामभ्यो धेयः प्रत्ययो वक्तव्यः॥ * ॥ भागधेयम्। रूपधेयम्। नामधेयम्॥ मित्राच्छन्दसि॥ * ॥ मित्रधेयं यतस्व॥ आग्नीध्रसाधारणादञ्॥ * ॥ आग्नीध्रम्। साधारणम्। स्त्रियां ङीप्। आग्नीध्री। साधारणी। वाप्रकरणाच्च विकल्पन्त एतान्युपसंख्यानानि तेन यथाप्राप्तमपि भवति। आग्नीध्रा शाला। साधारणा भूरिति॥ अयवसमरुद्भ्यां छन्दस्यञ्वक्तव्यः॥ * ॥ आयवसे रमन्ते। मारुतं शर्द्धः * ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ २६ ॥

---

* आयवसः सामः। मारुतः पर्वतः। पा॰ २।

तादर्थ्यइत्येव । अतिथिशब्दाच्चतुर्थीसमर्थात्तादर्थ्ये ऽभिधेये ञ्यः प्रत्ययो भवति । अतिथये इदम् । आतिथ्यम् ॥

देवात्तल् ॥ २७ ॥

तादर्थ्यइति निवृत्तम् । देवशब्दात् स्वार्थे तल् प्रत्ययो भवति । देव एव देवता ॥

अवेः कः २८ ॥

अविशब्दात् स्वार्थे कः प्रत्ययो भवति । अविरेवाविकः ॥

यावादिभ्यः कन् ॥ २९ ॥

याव इत्येवमादिभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव, यावकः । मणिकः । याव । मणि । अस्थि । चण्ड । पीतस्तम्ब ॥ ऋतावुष्णशीते ॥ पशौ लूनवियाते ॥ अणु निपुणे ॥ पुत्र कृत्रिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्य रिक्ते ॥ दानकुत्सिते ॥ तनु सूत्रे ॥ ईयसश्च ॥ श्रेयस्कः । ज्ञात ॥ कुमारीक्रीडनकानि च ॥

लोहितान्मणौ ॥ ३० ॥

लोहितशब्दान्मणौ वर्त्तमानात्स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । लोहितो मणिः । लोहितकः । मणाविति किम् । लोहितः ॥

वर्णे चानित्ये ॥ ३१ ॥

अनित्ये वर्णे वर्त्तमानाल्लोहितशब्दात्स्वार्थे कन्प्रत्ययो भवति । लोहितकः कोपेन । लोहितकः पीडनेन । अनित्य इति किम् । लोहितो गौः । लोहितं रुधिरम् ॥ लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा वक्तव्यम् ॥ * ॥ लोहितिका कोपेन । लोहिनिका कोपेन ॥

रक्ते ॥ ३२ ॥

लाक्षादिना रक्ते यो लोहितशब्दस्तस्मात्कन्प्रत्ययो भवति । लोहितकः कम्बलः । लोहितकः पटः । लिङ्गबाधनं वेत्येव । लोहितिका । लोहिनिका शाटी ॥

कालाच्च ॥ ३३ ॥

वर्णे चानित्ये रक्तइति द्वयमप्यनुवर्त्तते । कालशब्दादनित्ये वर्त्तमानाद्रक्ते च कन् प्रत्ययो भवति । कालकं मुखं वैलक्ष्येण । रक्ते । कालकः पटः । कालिका शाटी ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ॥ ३४ ॥

विनय इत्येवमादिभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । विनय एव, वैनयिकः । सामयिकः । औपयिकः । विभाषाग्रहणेन विकल्प्यते प्रत्ययः । विनय । समय ॥ उपायाद्ध्रस्वत्वं च ॥ संगति । कथंचित् । अकस्मात् । समयाचार ।

उपचार। समाचार। व्यवहार। संप्रदान। समुत्कर्ष। समूह। विशेष। अत्यय *। विनयादिः ॥

वाचो व्याहृतार्थायाम् ॥ ३५ ॥

व्याहृतः प्रकाशितो ऽर्थो यस्यास्तस्यां वाचि वर्त्तमानाद्वाक्शब्दात्स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। पूर्वमन्येनोक्तार्थत्वात् संदेशवाग् व्याहृतार्थेत्युच्यते। वाचिकं कथयति। वाचिकं श्रद्दधे। व्याहृतार्थायामिति किम्। मधुरा वाक् देवदत्तस्य ॥

तद्युक्तात्कर्मणो ऽण् ॥ ३६ ॥

व्याहृतार्थया वाचा यत्कर्म युक्तं तदभिधायिनः कर्मशब्दात्स्वार्थे ऽण् प्रत्ययो भवति। कर्मैव, कार्मणम्। वाचिकं श्रुत्वा तथैव यत्कर्म क्रियते तत्कार्मणमित्युच्यते। अण्प्रकरणे कुलालवरुडनिषादकर्मार† चण्डालमित्रामित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम्॥ * ॥ कुलाल एव, कौलालः। वारुडः। नैषादः। कार्मारः। चाण्डालः। मैत्रः। आमित्रः। सान्नाय्यानुजावरानुषूकाष्टुभचातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयातवैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनाः। एते ऽणन्ताः स्वार्थिकाश्छन्दसि भाषायां चेष्यन्ते ॥

ओषधेरजातौ ॥ ३७ ॥

ओषधिशब्दादजातौ वर्त्तमानात्स्वार्थे ऽण् प्रत्ययो भवति। औषधं पिबति। औषधं ददाति। अजाताविति किम्। ओषधयः क्षेत्रे रूढा भवन्ति ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ ३८ ॥

प्रजानातीति प्रज्ञः। प्रज्ञ इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ऽण् प्रत्ययो भवति। प्रज्ञ एव, प्राज्ञः। प्राज्ञी स्त्री। यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति। प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो ण इति विदश्चेत्यत्र पठ्यते। शत्रन्तस्य विदेर्ग्रहणं, विदेः शतुर्वसुरित्यत एव ज्ञापकात् पाक्षिको वस्वादेशः। अन्यतरस्यांग्रहणं वा तत्रानुवर्त्तते। तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्यामिति। प्रज्ञ। वणिक्। उशिक्। उष्णिक्। प्रत्यक्ष। विद्वस्। विदन्। षोडन्। षोडश। विद्या। मनस् ॥ श्रोत्र शरीरे ॥ श्रोत्रम्। जुहृत् ॥ कृष्ण मृगे ॥ चिकीर्षत्। चोर। शत्रु। योध। चक्षस् ‡। धूर्त्त। वस्। एत्। मरुत्। क्रुङ्। राजा। सत्वन्तु। दशार्ह। वयस्। आतुर §। रक्षस्। पिशाच। अशनि। कार्षापण। देवता। बन्धु ॥

---

* आस्य। कण्डु। एतौ शब्दावत्र गणे ऽधिकौ कुत्र चित्।
† बहुषु पुस्तकेषु वार्त्तिके कर्मार इति तदुदाहरणे च कार्मार इति नास्ति।
‡ चक्षप्। पा॰ २।
§ असुर पा॰ २।

मृदस्तिकन् ॥ ३९ ॥

मृच्छब्दात्स्वार्थे तिकन् प्रत्ययो भवति । विकल्पः सर्वत्रानुवर्त्तते । मृदेव, मृत्तिका ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ४० ॥

प्रशंसोपाधिकेर्थे वर्त्तमानाद् मृच्छब्दात्स स्न इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । रूपपोपवादः । प्रशस्ता मृद्, मृत्सा । मृत्स्ना । नित्यश्चायं प्रत्ययः । उत्तरसूत्रे ऽन्यतरस्यांग्रहणात् ॥

बृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि ॥ ४१ ॥

प्रशंसायामित्येव । वृकज्येष्ठाभ्यां प्रशंसोपाधिकेर्थे वर्त्तमानाभ्यां यथासंख्यं तिल्तातिलौ प्रत्ययौ भवतश्छन्दसि विषये । रूपपोपवादौ । वृकतिः । ज्येष्ठतातिः ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥ ४२ ॥

बह्वर्थादल्पार्थाच्च कारकाभिधायिनः शब्दाच् छस् प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् । विशेषानभिधानाच्च सर्वं कर्मादिकारकं गृह्यते । बहूनि ददाति, बहुशो ददाति । अल्पं ददाति । अल्पशो ददाति ॥ बहुभिर्द्ददाति बहुशो ददाति । अल्पेन, अल्पशः । बहुभ्यः, बहुशः । अल्पशः । इत्येवमाद्युदाहार्यम् । बह्वल्पार्थादिति किम् । गां ददाति । अश्वं ददाति । कारकादिति किम् । बहूनां स्वामी । अल्पानां स्वामी । अर्थग्रहणात्पर्यायेभ्योपि भवति । भूरिशो ददाति । स्तोकशो ददाति । बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥ यत्र मङ्गलं गम्यते तत्रायं प्रत्यय इष्यते । बहुशो ददातीत्याभ्युदयिकेषु कर्मसु । अल्पशो ददातीत्यनिष्टेषु कर्मसु ॥

संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ॥ ४३ ॥

संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य एकवचनाच्च वीप्सायां द्योत्यायां शस् प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् । द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति, द्विशः । त्रिशः । एकवचनात्खल्वपि । कार्षापणं ददाति, कार्षापणशः । माषशः । पादशो ददाति । एकोर्थ उच्यते येन तदेकवचनम् । कार्षापणादयश्च परिमाणशब्दा वृत्तावेकार्था एव भवन्ति । संख्यैकवचनादिति किम् । घटंघटं ददाति । वीप्सायामिति किम् । द्वौ ददाति । कार्षापणं ददाति । कारकादित्येव । द्वयोर्द्वयोः स्वामी । कार्षापणस्यकार्षापणस्य स्वामी ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥ ४४ ॥

प्रतिना कर्म्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः प्रत्ययो

भवति । प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति । अभिमन्युरर्जुनतः प्रति । वायंहणानुवृत्ते-र्विकल्पेन भवति । वासुदेवादर्जुनादित्यपि भवति । तसिप्रकरण आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ आदौ आदितः । मध्यतः । पार्श्वतः । पृष्ठतः । आकृतिगणश्चायम् ॥

अपादाने चाहीयरुहोः ॥ ४५ ॥

अपादाने या पञ्चमी तस्याः पञ्चम्या वा तसिः प्रत्ययो भवति । तच्चेदपादानं हीयरुहोः संबन्धि न भवति । ग्रामत आगच्छति । ग्रामात् । चोरतो बिभेति । चोरात् । अध्ययनतः पराजयते । अध्ययनात् । अहीयरुहोरिति किम् । सार्थाद्धीयते । पर्वतादवरोहति । हीयते इति विकारनिर्देशो जहातेः प्रतिपत्त्यर्थः । जिहातेर्मा भूत् । भूमित उज्जिहीते । भूमेरुज्जिहीते । कथं मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वेति । नैषा पञ्चमी । किं तर्हि, तृतीया । स्वरेण वर्णेन वा हीन इत्यर्थः ॥

अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्त्तरि तृतीयायाः ॥ ४६ ॥

अतिक्रम्य ग्रहो ऽतिग्रहः । अचलनमव्यथनम् । क्षेपो निन्दा । अतिग्रहादिविषये या तृतीया तदन्ताद्वा तसिः प्रत्ययो भवति सा चेत्कर्त्तरि न भवति । वृत्तेनातिगृह्यते, वृत्ततो ऽतिगृह्यते । चारित्रेणातिगृह्यते, चारित्रतो ऽतिगृह्यते । सुष्ठुवृत्तवानन्यानतिक्रम्य वृत्तेन गृह्यतइत्यर्थः । अव्यथने । वृत्तेन न व्यथते वृत्ततो न व्यथते । चारित्रेण न व्यथते चारित्रतो न व्यथते । वृत्तेन न चलतीत्यर्थः । क्षेपे । वृत्तेन क्षिप्तो वृत्ततः क्षिप्तः । चारित्रेण क्षिप्तः, चारित्रतः क्षिप्तः । वृत्तेन निन्दित इत्यर्थः । अकर्त्तरीति किम् । देवदत्तेन क्षिप्तः ॥

हीयमानपापयोगाच्च ॥ ४७ ॥

अकर्त्तरि तृतीयाया इत्येव । हीयमानेन पापेन च योगो यस्य तद्वाचिनः शब्दात्परा या तृतीया विभक्तिरकर्त्तरि तदन्ताद्वा तसिः प्रत्ययो भवति । वृत्तेन हीयते, वृत्ततो हीयते । चारित्रेण हीयते, चारित्रतो हीयते । पापयोगात् । वृत्तेन पापः, वृत्ततः पापः । चारित्रेण पापः । चारित्रतः पापः । क्षेपस्याविवक्षायां तत्त्वाख्यायामिदमुदाहरणम् । क्षेपे हि पूर्वेणैव सिद्धम् । अकर्त्तरीत्येव । देवदत्तेन हीयते ॥

षष्ठ्या व्याश्रये ॥ ४८ ॥

नानापक्षसमाश्रयो व्याश्रयः । व्याश्रये गम्यमाने षष्ठ्यन्ताद् वा तसिः प्रत्ययो भवति । देवा अर्जुनतो ऽभवन् । आदित्याः कर्णतो ऽभवन् । षष्ठी चात्र पक्षार्थैव । अर्जुनस्य पक्षे कर्णस्य पक्षइत्यर्थः । व्याश्रयइति किम् । वृक्षस्य शाखा ॥

रोगाच्चापनयने ॥ ४९ ॥

रोगो व्याधिः। तद्वाचिनः शब्दाद्या षष्ठी विभक्तिः तदन्ताद्वा तसिः प्रत्ययो भवति अपनयने गम्यमाने। अपनयनं प्रतीकारः, चिकित्सेत्यर्थः। प्रवाहिकातः कुरु। कासतः कुरु। छर्दिकातः कुरु। प्रतीकारमस्याः कुर्वित्यर्थः। अपनयनइति किम्। प्रवाहिकायाः प्रकोपनं कुरु॥

अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगेसंपद्यकर्त्तरि च्विः ॥ ५० ॥

कारणस्य विकाररूपेण भूतस्य तदात्मना भावो ऽभूततद्भावः। संपद्यतेः कर्त्ता संपद्यकर्त्ता। संपद्यकर्त्तरि वर्त्तमानात्प्रातिपदिकादभूततद्भावे गम्यमाने कृभ्वस्तिभिर्धातुभिर्योगे च्विः प्रत्ययो भवति। अशुक्लः शुक्लः संपद्यते, तं करोति शुक्ली करोति। मलिनं शुक्ली भवति। शुक्ली स्यात्। घटी करोति मृदम्। घटी भवति। घटीस्यात्। अभूततद्भावइति किम्। शुक्लं करोति। नात्र प्रकृतिर्विवक्षिता। कृभ्वस्तियोगइति किम्। अशुक्लः शुक्लो जायते। संपद्यकर्त्तरीति किम्। यावता अभूततद्भावसामर्थ्याल्लभ्यतएव संपद्यकर्तृत्वम्। कारकान्तरसंपत्तौ मा भूत्। अदेवगृहे देवगृहे संपद्यते। देवगृहस्याधेयविशेषसंबन्धेनाभूततद्भावः सत्त्वाधिकरणस्य न कर्त्तुरिति॥

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ॥ ५१ ॥

अरुः प्रभृतीनामन्तस्य लोपो भवति च्विश्च प्रत्ययः। सर्वविशेषणासंबन्धात्पूर्वेणैव प्रत्ययः सिद्धो लोपमात्रार्थं आरम्भः। अनरुरुः संपद्यते तं करोति, अरू करोति। अरू भवति। अरू स्यात्। मनस्। उन्मनी करोति। उन्मनी भवति। उन्मनी स्यात्। चक्षुस्। उच्चक्षू करोति। उच्चक्षू भवति। उच्चक्षू स्यात्। चेतस्। विचेती करोति। विचेती भवति। विचेती स्यात्। रहस्। विरही करोति। विरही भवति। विरही स्यात्। रजस्। विरजी करोति विरजी भवति। विरजी स्यात्॥

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ॥ ५२ ॥

अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरीति सर्वमनुवर्त्तते। अस्मिन्विषये विभाषा सातिः प्रत्ययो भवति कार्त्स्न्ये गम्यमाने। यदि प्रकृतिः कृत्स्ना विकारात्मतामापद्यतइत्यर्थः। अग्निसाद्भवति शस्त्रम्। अग्नीभवति शस्त्रम्। उदकसाद्भवति लवणम्। उदकीभवति लवणम्। कार्त्स्न्ये इति किम्। एकदेशेन पटः शुक्ली भवति। विभाषायहणं च्वेः प्रापकम्। प्रत्ययविकल्पस्तु महाविभाषयैव सिद्धः॥

अभिविधौ संपदा च ॥ ५३ ॥

अभिविधिरभिव्याप्तिः। अभिविधौ गम्यमाने च्विविषये सातिः प्रत्ययो भवति संपदा योगे, चकारात्कृभ्वस्तिभिश्च। विभाषाग्रहणानुवृत्तेश्च्विरप्यभ्यनुज्ञायते। स च कृभ्वस्तियोगएव भवति न संपदा। अग्निसात्संपद्यते। अग्निसाद्भवति। उदकसात्संपद्यते। उदकसाद्भवति लवणम्। अग्नीभवति। उदकीभवति। अथाभिविधेः कार्त्स्न्यस्य च को विशेषः। यत्रैकदेशेनापि सर्वा प्रकृतिर्विकारमापद्यते सोभिविधिः। यथा ऽस्यां सेनायामुत्पातेन सर्वं शस्त्रमग्निसात्संपद्यते। वर्षासु सर्वं लवणमुदकसात्संपद्यतइति। कार्त्स्न्यं तु सर्वात्मना द्रव्यस्य विकाररूपापत्तौ भवति॥

तदधीनवचने ॥ ५४ ॥

अभूततद्भावइति निवृत्तम् अर्थान्तरोपादानात्। कृभ्वस्तियोगे संपदा चेति वर्तते। तदधीनं तदायत्तं तत्स्वामिकमित्यर्थः। स्वामिसामान्यमीशितव्यसामान्यं च तदधीनशब्देन निर्दिश्यते। स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकादीशितव्ये ऽभिधेये सातिः प्रत्ययो भवति कृभ्वस्तिभिः संपदा च योगे। राजाधीनं करोति, राजसात्करोति। राजसाद्भवति। राजसात्स्यात्। राजसात्संपद्यते। ब्राह्मणसात्करोति। ब्राह्मणसाद्भवति। ब्राह्मणसात्स्यात्। ब्राह्मणसात्संपद्यते॥

देये त्रा च ॥ ५५ ॥

तदधीनवचनइत्यनुवर्त्तते। तस्य विशेषणं देयग्रहणम्। दातव्यं देयं, तदधीने देये त्रा प्रत्ययो भवति चकारात्सातिश्च कृभ्वस्तिभिः संपदा च योगे। ब्राह्मणेभ्यो देयमिति यद्विज्ञातं तद्यदा तेषां समर्पणेन तदधीनं क्रियते तदा त्रा प्रत्ययः। ब्राह्मणाधीनं देयं करोति, ब्राह्मणसात्करोति। ब्राह्मणत्रा करोति। ब्राह्मणत्रा भवति। ब्राह्मणत्रा स्यात्। ब्राह्मणत्रा संपद्यते। देयइति किम्। राजसाद्भवति राष्ट्रम्॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ५६ ॥

सातिर्निवृत्तः त्राप्रत्ययो ऽनुवर्त्तते। देवादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो द्वितीयासप्तम्यन्तेभ्यः त्रा प्रत्ययो भवति बहुलम्। कृभ्वस्तिभिरिति नात्र संबध्यते। सामान्येन विधानम्। देवान् गच्छति, देवत्रा गच्छति। देवेषु वसति, देवत्रा वसति। मनुष्यान् गच्छति, मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु वसति, मनुष्यत्रा वसति। एवमन्येष्वुदाहार्याः। पुरुषान्गच्छति, पुरुषत्रा गच्छति। पुरुषेषु वसति, पुरुषत्रा वसति। पुरून्गच्छति, पुरुत्रा गच्छति। पुरुषु वसति, पुरुत्रा वसति। मर्त्यान्वसति, मर्त्यत्रा वसति। मर्त्येषु वसति, मर्त्यत्रा वसति। बहुलवचनादन्यत्रापि भवति। बहुत्रा जीवतो मन इति॥

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् ॥ ५७ ॥

यत्र ध्वनावकारादयो वर्णा विशेषरूपेण न व्यज्यन्ते सो ऽव्यक्तः । तस्यानुकरणमव्यक्तानुकरणम् । द्व्यच् अवरार्द्धं यस्य तद् द्व्यजवरार्धम् । अवरशब्दोऽपकर्षे । यस्यापकर्षे क्रियमाणे सुष्ठु न्यूनमर्द्धं द्व्यच्कं संपद्यते तस्मादव्यक्तानुकरणादनितिपराड्डाच्प्रत्ययो भवति । कृभ्वस्तियोगइत्यनुवर्त्तते । यस्य च द्विर्वचने कृते द्व्यजवरार्द्धं ततः प्रत्ययः । डाचि बहुलं द्वे भवत इति विषयसप्तमी । डाचि विवक्षिते द्विर्वचनमेव पूर्वं क्रियते पश्चात्प्रत्ययः । पटपटा करोति । पटपटा भवति । पटपटा स्यात् । दमदमा करोति । दमदमा भवति । दमदमा स्यात् । अव्यक्तानुकरणादिति किम् । दृषत्करोति । द्व्यजवरार्द्धादिति किम् । श्रत्करोति । अवरग्रहणं किम् । खरटखरटा करोति । त्रपटत्रपटा करोति । अनिताविति किम् । पटिति करोति । चकारः स्वरार्थः स्वरितबाधनार्थः । पटपटासि । अत्र स्वरितो वा ऽनुदात्ते पदादाविति स्वरितो न भवति । केचिद्द्व्यजवरार्ध्यादिति यकारं पठन्ति स स्वार्थिको विज्ञेयः ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥ ५८ ॥

द्वितीयतृतीयादिभ्यः शब्देभ्यः कृषावभिधेयायां डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे नान्यत्र । पुनः कृञ्ग्रहणं भ्वस्त्योर्निवृत्त्यर्थम् । द्वितीया करोति । द्वितीयं कर्षणं विलेखनं करोतीत्यर्थः । तृतीया करोति । शम्बा करोति । अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कृषतीत्यर्थः । बीजा करोति । सह बीजेन विलेखनं करोतीत्यर्थः । कृषाविति किम् । द्वितीयं करोति पदम् ॥

संख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥ ५९ ॥

कृञ इत्यनुवर्त्तते, कृषाविति च । संख्यावाचिनः शब्दस्य गुण शब्दोऽन्ते समीपे यत्र संभवति सा संख्या गुणान्तेत्युच्यते । तादृशात्प्रातिपदिकात्कृषावभिधेयायां डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । द्विगुणं विलेखनं करोति क्षेत्रस्य, द्विगुणा करोति क्षेत्रम् । त्रिगुणा करोति । कृषाविति किम् । द्विगुणां करोति रज्जुम् ॥

समयाच्च यापनायाम् ॥ ६० ॥

कृञ इत्येव । कृषाविति निवृत्तम् । कर्तव्यस्यावसरप्राप्तिः समयस्तस्यातिक्रमणं यापना । समयशब्दाद्यापनायां गम्यमानायां डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । समया करोति । यापयति, कालक्षेपं करोतीत्यर्थः । यापनायामिति किम् । समयं करोति ॥

सपत्त्रनिष्पत्त्रादतिव्यथने ॥ ६१ ॥

कृञ इत्येव । सपत्रनिष्पत्रशब्दाभ्यामतिव्यथने डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे सति । अतिव्यथनमतिपीडनम् । सपत्रा करोति मृगं व्याधः । सपत्रं शरमस्य शरीरे प्रवेशयतीत्यर्थः । निष्पत्रा करोति । शरीराच्छरमपरपार्श्वे निष्क्रामयतीत्यर्थः । अतिव्यथनइति किम् । सपत्रं वृक्षं करोति जलसेचकः । निष्पत्रं वृक्षतलं करोति भूमिशोधकः ॥

निष्कुलान्निष्कोषणे ॥ ६२ ॥

कृञ इत्येव । निष्कुलशब्दान्निष्कोषणे वर्त्तमानात्कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति । निष्कोषणमन्तरवयवानां बहिर्निष्कासनम् । निष्कुला करोति पशून् । निष्कुष्णातीत्यर्थः । निष्कोषणइति किम् । निष्कुलान्करोति शत्रून् ॥

सुखप्रियादानुलोम्ये ॥ ६३ ॥

सुखप्रियशब्दाभ्यामानुलोम्ये वर्त्तमानाभ्यां कृञो योगे डाच् प्रत्ययो भवति । आनुलोम्यमनुकूलता, आराध्यचित्तानुवर्त्तनम् । सुखा करोति । प्रिया करोति । स्वाम्यादेश्चित्तमाराधयतीत्यर्थः । सुखं प्रियं वा कुर्वन्नप्यानुलोम्ये ऽवस्थित एवमुच्यते । आनुलोम्यइति किम् । सुखं करोति, प्रियं करोत्यौषधपानम् ॥

दुःखात्प्रातिलोम्ये ॥ ६४ ॥

कृञ इत्येव । दुःखशब्दात्प्रातिपदिकात्प्रातिलोम्ये गम्यमाने डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । प्रातिलोम्यं प्रतिकूलता । स्वाम्यादेश्चित्तपीडनम् । दुःखा करोति भृत्यः । प्रातिलोम्यइति किम् । दुःखं करोति कदन्नम् ॥

शूलात्पाके ॥ ६५ ॥

कृञ इत्येव । शूलशब्दात्पाकविषये डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । शूले पचति, शूला करोति मांसम् । पाकइति किम् । शूलं करोति कदन्नम् ॥

सत्यादशपथे ॥ ६६ ॥

कृञ इत्येव । सत्यशब्दादशपथे डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । सत्यशब्दो ऽनृतप्रतिपक्षवचनः क्व चित्तु शपथे च वर्त्तते सत्येन शापयेद्विप्रमिति, तस्यायं प्रतिषेधः । सत्या करोति वणिक् भाण्डम् । मयैतत्क्रेतव्यमिति तथ्यं करोति । अशपथइति किम् । सत्यं करोति ब्राह्मणः ॥

मद्रात्परिवापणे ॥ ६७ ॥

कृञ इत्येव । मद्रशब्दात्परिवापणे डाच् प्रत्ययो भवति कृञो योगे । परिवापणं मुण्डनम् । मद्रशब्दो मङ्गलार्थः । मङ्गलं मुण्डनं करोति, मद्रा करोति ॥ भद्राच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भद्रा करोति नापितः कुमारम् । परिवापणइति किम् । भद्रं करोति ॥

समासान्ताः ॥ ६८ ॥

अधिकारोयमापादपरिसमाप्ते,र्ये प्रत्यया विहितास्ते समासस्यान्तावयवा एकदेशा भवन्ति, तद्ग्रहणेन गृह्यन्तइति वेदितव्यम्। प्रयोजनमव्ययीभावद्विगुद्वन्द्वतत्पुरुषबहुव्रीहिसंज्ञाः। उपराज,मधिराजम्। नाव्ययीभावादित्येष विधिर्भवति। अनश्चेति टच्। द्विपुरी, त्रिपुरीति। द्विगोरिति ङीब्भवति। कटकवलयिनी। शङ्खनूपुरिणी *। द्वन्द्वोपतापगर्ह्यादितीनिर्भवति। विधुरः। प्रधुरः। तत्पुरुषे तुल्येत्येष स्वरो भवति। उच्चैर्धुरः। नीचैर्धुरः। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदमित्येतद्भवति ॥

न पूजनात् ॥ ६९ ॥

यान् शब्दानुपादाय समासान्ता विधीयन्ते राजाहः सखिभ्यष्टजित्येवमादीन् यदा ते पूजनात् पूजनवचनात्परे भवन्ति तदा समासान्तो न भवति। सुराजा। अतिराजा। सुगौः। अतिगौः॥ पूजायां स्वतिग्रहणं कर्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत्। परमराजः। परमगवइति ॥ प्राग्बहुव्रीहिग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरित्येवमादौ प्रतिषेधो न भवति। सुसक्थः। अतिसक्थः। स्वक्षः। अत्यक्षः ॥

किमः क्षेपे ॥ ७० ॥

क्षेपे यः किंशब्दस्ततः परस्य समासान्तो न भवति। किंराजा यो न रक्षति। किंसखा योऽभिद्रुह्यति। किंगौर्यो न वहति। किं क्षेपइति समासः †। क्षेपइति किम्। कस्य राजा, किंराजः। किंसखः। किंगवः ॥

नञस्तत्पुरुषात् ॥ ७१ ॥

नञः परे वक्ष्यमाणा ये राजादयस्तदन्तात्तत्पुरुषात्समासान्तो न भवति। अराजा। असखा। अगौः। तत्पुरुषादिति। किम्। अनृचो माणवकः। अधुरं शकटम् ॥

पथो विभाषा ॥ ७२ ॥

नञस्तत्पुरुषादिति वर्त्तते। नञः परो यः पथिन्शब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषात्समासान्तो विभाषा न भवति। पूर्वेण नित्यः प्रतिषेधः प्राप्तो विकल्प्यते। अपथम्। अपन्थाः ॥

बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ॥ ७३ ॥

संख्येये यो बहुव्रीहिर्वर्त्तते तस्मादबहुगणान्ताड्डच् प्रत्ययो भवति।

---

* कोशनिर्णदिनी। सकृत्वचिनी। पा० २।

† किं क्षेपइति समास इत्यधिकमत्र, परं त्वयपपाठः पदमञ्जर्यां दर्शनात्।

संख्ययाव्ययासन्नेति यो बहुव्रीहिस्तस्येदं ग्रहणम् । उपदशाः । उपविंशाः । उपत्रिंशाः । आसन्नदशाः । अदूरदशाः । अधिकदशाः । द्वित्राः । पञ्चषाः । पञ्चदशाः । संख्येयइति किम् । चित्रगुः । शबलगुः । अबहुगणादिति किम् । उपबहवः । उपगणाः । अत्र स्वरे विशेषः ॥ डच्प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्तव्यं निस्त्रिंशाद्यर्थम् ॥ * ॥ निर्गतानि त्रिंशतः, निस्त्रिंशानि वर्षाणि देवदत्तस्य । निश्चत्वारिंशानि यज्ञदत्तस्य । निर्गतस्त्रिंशताङ्गुलिभ्यो, निस्त्रिंशः खड्गः ॥

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ॥ ७४ ॥

बहुव्रीहाविति न स्वर्यते । सामान्येन विधानम् । ऋक् पुर् अप् धुर् पथिन् इत्येवमन्तानां समासानामकारः प्रत्ययो भवति समासान्तो ऽक्षे न । सामर्थ्याद्धुर एतद्विशेषणमृगादीनाञ्च भवति । अक्षसंबन्धिनी या धूस्तदन्तस्य न भवति । अनृचः । बह्वृचः । अर्द्धर्चः । पुर् । ललाटपुरम् । नान्दीपुरम् । अप् । द्वीपम् । अन्तरीपम् । समीपम् । धुर् । राजधुरा । महाधुरा । पथिन् । जलपथः । अनक्षइति किम् । अक्षस्य धूः, अक्षधूः । दृढधूरक्षः ॥ अनृचो माणवके ज्ञेयो, बह्वृचश्चरणाख्यायाम् ॥ अनृचो माणवकः । बह्वृचो ब्राह्मणः । अनृक् साम । बह्वृक् सूक्तमित्यत्र न भवति ॥

अच् प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः ॥ ७५ ॥

प्रति अनु अव इत्येवंपूर्वात्सामान्ताल्लोमान्ताच्च समासादच् प्रत्ययो भवति । प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ॥

कृष्णोदक्पाण्डुपूर्वाया भूमेरच्प्रत्ययः स्मृतः ।
गोदावर्याश्च नद्याश्च संख्याया उत्तरे यदि ॥

कृष्णभूमः । पाण्डुभूमः । उदग्भूमः । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । नदीभिश्चेत्यव्ययीभावः ॥ भूमेरपि संख्यापूर्वाया अच् प्रत्यय इष्यते ॥ द्विभूमः प्रासादः । त्रिभूमः । दशभूमकं सूत्रम् ॥ अन्यत्रापि च दृश्यते ॥ पद्मनाभः । ऊर्णनाभः । दीर्घरात्रः । समरात्रः । अरात्रः । तदेतत्सर्वमिह योगविभागं कृत्वा साधयन्ति ॥

अक्ष्णो ऽदर्शनात् ॥ ७६ ॥

अजित्यनुवर्त्तते । दर्शनादन्यत्र यो ऽक्षिशब्दस्तदन्तादच् प्रत्ययो भवति लवणाक्षम् । पुष्कराक्षम् । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः * । अद-

* उपमितमित्यादिश्च समास इत्यन्तोयमपपाठः पदमञ्जर्यां दर्शनात् ।

र्शनादिति किम्। ब्राह्मणाक्षि। कथं कबराक्षं गवाक्षमिति। अश्वादीनां मुखप्रच्छादनार्थे बहुच्छिद्रं कबराक्षं तेनापि हि दृश्यते गवाक्षेण च। नैष दोषः। चक्षुःपर्यायवचनो दर्शनशब्दः, प्राण्यङ्गवचन इहाश्रीयते॥

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ॥ ७७ ॥

अच्प्रत्ययान्ता एते शब्दा निपात्यन्ते। समासे व्यवस्थापि निपातनादेवं प्रतिपत्तव्या। आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः। अदृश्यान्यविद्यमानानि वा चत्वारि यस्य सोऽचतुरः। विगतानि चत्वारि यस्य स विचतुरः। शोभनानि चत्वारि यस्य स सुचतुरः। ततः परे एकादश द्वन्द्वाः। स्त्री च पुमांश्च, स्त्रीपुंसौ। इह न भवति स्त्रियाः पुमान् स्त्रीपुमानिति। धेनुश्च अनड्वांश्च, धेन्वनडुहौ। ऋक्च साम च ऋक्सामे। वाक्च मनश्च, वाङ्मनसे। अक्षि च भ्रुवौ च, अक्षिभ्रुवम्। दाराश्च गावश्च, दारगवम्। ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम्। टिलोपो निपात्यते। पादौ च अष्ठीवन्तौ च पदष्ठीवम्। पादस्य पद्भावो निपात्यते। नक्तं च दिवा च, नक्तंदिवम्। सप्तम्यर्थवृत्तयोरव्यययोः समासोऽपि निपातनादेव। रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवम्। पूर्वपदस्य मान्तत्वं निपात्यते। अहनि च दिवा च, अहर्दिवम्। ननु च पर्यायावेतौ कथमनयोर्द्वन्द्वः, वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते। अहन्यहनीत्यर्थः। एकोऽव्ययीभावः। साकल्ये। सरजसमभ्यवहरति। बहुव्रीहौ न भवति। सह रजसा, सरजः पङ्कजमिति। ततस्तत्पुरुषः। निश्चितं श्रेयो, निःश्रेयसम्। निःश्रेयस्कः पुरुष इत्यत्र न भवति। ततः षष्ठीसमासः। पुरुषस्यायुः, पुरुषायुषम्। द्वन्द्वे न भवति। पुरुषश्च आयुश्च पुरुषायुषी। ततो द्विगू। द्वे आयुषी समाहृते द्व्यायुषम्। त्र्यायुषम्। इह न भवति द्वयोरायुः, द्व्यायु, त्र्यायुरिति। ततो द्वन्द्वः। ऋक्च यजुश्च ऋग्यजुषम्। इह न भवति। ऋग्यजुरस्योन्मुग्धस्य ऋग्यजुरुन्मुग्धः। जातादिपूर्वपदा उक्षशब्दान्तास्त्रयः कर्मधारयाः। जातोक्षः। महोक्षः। वृद्धोक्षः। बहुव्रीहौ न भवति। जातोक्षा ब्राह्मणः। महोक्षा, वृद्धोक्षेति। ततोऽव्ययीभावः। शुनः समीप, मुपशुनम्। टिलोपाभावः संप्रसारणं निपातनादेव। ततः सप्तमीसमासः। गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः॥ चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानम्॥ * ॥ त्रिचतुराः। उपचतुराः॥

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ॥ ७८ ॥

ब्रह्महस्तिभ्यां परो यो वर्च्चःशब्दस्तदन्तात्समासादच्प्रत्ययो भवति। ब्रह्मवर्च्चसम्। हस्तिवर्च्चसम् ॥ पल्ल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पल्ल्यवर्च्चसम्। राजवर्च्चसम् ॥

अवसमन्धेभ्यस्तमसः ॥ ७९ ॥

अव सम् अन्ध इत्येतेभ्यो यः परस्तमःशब्दस्तदन्तात्समासादच् प्रत्ययो भवति। अवतमसम्। सन्तमसम्। अन्धतमसम् ॥

श्वसो वसीयःश्रेयसः ॥ ८० ॥

श्वसः परौ यौ वसीयःश्रेयःशब्दौ तदन्तात्समासादच् प्रत्ययो भवति। श्वोवसीयसम्। श्वःश्रेयसम्। मयूरव्यंसकादित्वात्समासः। श्वभावाच्चेह श्वःशब्द उत्तरपदार्थस्य प्रशंसामाशीर्विषयामाचष्टे। श्वःश्रेयसं ते भूयात्। शोभनं श्रेयस्ते भूयादित्यर्थः। श्वोवसीयसमित्यस्यैव पर्यायः ॥

अन्ववतप्ताद्रहसः ॥ ८१ ॥

अनु अव तप्त इत्येतेभ्यः परो यो रहश्शब्दस्तदन्तात्समासादच् प्रत्ययो भवति। अनुरहसम्। अवरहसम्। तप्तरहसम् ॥

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥ ८२ ॥

प्रतेः परो य उरःशब्दस्तदन्तात्समासादच् प्रत्ययो भवति स चेदुरःशब्दः सप्तमीस्थो भवति। सप्तम्यर्थे वर्त्तत इत्यर्थः। उरसि वर्त्तते। विभक्त्यर्थे यदव्ययमिति समासः, प्रत्युरसम्। सप्तमीस्थादिति किम्। प्रतिगतमुरः, प्रत्युरः ॥

अनुगवमायामे ॥ ८३ ॥

अनुगवमित्यच्प्रत्ययान्तं निपात्यते आयामे ऽभिधेये। अनुगवं यानम्। यस्य चायाम इति समासः। आयामइति किम्। गवां पश्चादनुगु ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ ८४ ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावेति निपात्यते वेदिश्चेदभिधेया भवति। अच्प्रत्ययष्टिलोपः समासश्च निपात्यते। यावती प्रकृतौ वेदिस्ततो द्विगुणा वा त्रिगुणा वा कस्याञ्चिद्विकृतौ तत्रेदं निपातनम्। द्विस्तावा वेदिः। त्रिस्तावा वेदिः। वेदिरिति किम्। द्विस्तावती त्रिस्तावती रज्जुः ॥

उपसर्गादध्वनः ॥ ८५ ॥

उपसर्गात्परो यो ऽध्वन्शब्दस्तदन्तात्समासाद् अच् प्रत्ययो भवति। प्रगतो ऽध्वानं, प्राध्वो रथः। प्राध्वं शकटम्। निरध्वम्। प्रत्यध्वम्। उपसर्गादिति किम्। परमाध्वा। उत्तमाध्वा ॥

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ॥ ८६ ॥

अङ्गुलिशब्दान्तस्य तत्पुरुषस्य संख्यादेरव्ययादेश्चाच् प्रत्ययो भवति। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य, द्व्यङ्गुलम्। त्र्यङ्गुलम्। तद्धितार्थे इति समासः। प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति मात्रचो लोपः। अव्ययादेः। निर्गतमङ्गुलिभ्यो, निरङ्गुलम्। अत्यङ्गुलम्। तत्पुरुषस्येति किम्। पञ्चाङ्गुलिः। अत्यङ्गुलिः पुरुषः। तत्पुरुषाधिकारश्च द्वन्द्वाच्चुदषहान्तादिति यावत् ॥

अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ॥ ८७ ॥

अहरादिभ्यः परो यो रात्रिशब्दस्तदन्तस्य तत्पुरुषस्याच् पत्ययो भवति चकारात्संख्यादेरव्ययादेश्च। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्। अहश्च रात्रिश्च, अहोरात्रः। सर्वरात्रः। एकदेशे। पूर्वं रात्रेः, पूर्वरात्रः। अपररात्रः। पूर्वपराधरेति समासः। संख्याता रात्रिः, संख्यातरात्रः। विशेषणं विशेष्येणेति समासः। एवं पुण्या रात्रिः, पुण्यरात्रः। संख्याव्ययादेः खल्वपि। द्वे रात्री समाहृते, द्विरात्रः। त्रिरात्रः। अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः। नीरात्रः ॥

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥ ८८ ॥

राजाहःसखिभ्यष्टजिति वक्ष्यति। तस्मिन् परभूते अहन्नित्येतस्याह्न इत्ययमादेशो भवति एतेभ्य उत्तरस्य। संख्याव्ययादयः प्रक्रान्ताः सर्वनाम्ना प्रत्यवमृश्यन्ते। सामर्थ्याच्चाहःशब्दः पूर्वत्वेन नाश्रीयते। परिशिष्टानां ग्रहणम्। नह्यहः शब्दात्परोहः शब्दः संभवति। संख्यायास्तावत्। द्वयोरह्नोर्भवः, द्व्यह्नः त्र्यह्नः। अव्ययात्। अहरतिक्रान्तः, अत्यह्नः। निरह्नः। सर्वाह्णः। पूर्वाह्णः। अपराह्णः। संख्याताह्नः। पुण्यशब्दात्प्रतिषेधं वक्ष्यति ॥

न संख्यादेः समाहारे ॥ ८९ ॥

संख्यादेस्तत्पुरुषस्य समाहारे वर्तमानस्याहःशब्दस्याह्नादेशो न भवति। पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते। द्वे अहनी समाहृते, द्व्यहः। त्र्यहः। समाहार इति किम्। द्वयोरह्नोर्भवो, द्व्यह्नः। त्र्यह्नः। तद्धितार्थे इति समासे कृते ऽण आगतस्य द्विगोरिति लुक् ॥

उत्तमैकाभ्यां च ॥ ९० ॥

उत्तमैकशब्दाभ्यां च परस्याह्न इत्ययमादेशो न भवति। उत्तमशब्दोऽन्त्यवचनः पुण्यशब्दमाचष्टे, पुण्यग्रहणमेव न कृतं वैचित्र्यार्थम्। पुण्याहः। एकाहः। केचित्तु उपोत्तमस्यापि प्रतिपत्त्यर्थं वर्णयन्ति। तेन संख्यातशब्दादपि परस्य न भवति। संख्याताह इति ॥

राजाहस्सखिभ्यष्टच् ॥ ९१ ॥

राजन् अहन् सखि इत्येवमन्तात्प्रातिपदिकात् टच् प्रत्ययो भवति। महाराजः। मद्रराजः। परमाहः। उत्तमाहः। राज्ञः सखा, राजसखः। ब्राह्मणसखः। इह कस्मान्न भवति मद्राणां राज्ञी, मद्रराज्ञी, लिङ्गविशिष्टपरिभाषया प्राप्नोति। लघ्वक्षरस्य पूर्वनिपाते प्राप्ते राजशब्दस्य सवर्णदीर्घार्थं प्रथमं प्रयोगं कुर्वन्नेतद् ज्ञापयति यस्याकारेण सवर्णदीर्घत्वं संभवति तस्येदं ग्रहणमिति ॥

गोरतद्धितलुकि ॥ ९२ ॥

गोशब्दान्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति स चेत्तत्पुरुषस्तद्धितलुग्विषयो न भवति। परमगवः। उत्तमगवः। पञ्चगवम्। दशगवम्। अतद्धितलुकीति किम्। पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः, पञ्चगुः। दशगुः। तेन क्रीतमित्यागतस्यार्हीयस्य ठञो ऽध्यर्द्धपूर्वद्विगोरिति लुक्। तद्धितग्रहणं किम्। सुब्लुकि प्रतिषेधो मा भूत्। राजगवमिच्छति, राजगवीयति। लुग्ग्रहणं किम्। तद्धितएव मा भूत्। पञ्चभ्यो गोभ्य आगतं पञ्चगवरूप्यम्। पञ्चगवमयम्। दशगवरूप्यम्। दशगवमयम् ॥

अग्राख्यायामुरसः ॥ ९३ ॥

उरः शब्दान्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति स चेदुरःशब्दो ऽग्राख्यायां भवति। अग्रं प्रधानमुच्यते। यथा शरीरावयवानामुच्यते उरः प्रधानम्। एवमन्यो ऽपि प्रधानभूत उरश्शब्देनोच्यते। अश्वानामुरः, अश्वोरसम्। हस्त्युरसम्। अग्राख्यायामिति किम्। देवदत्तस्योरः, देवदत्तोरः ॥

अनोश्मायस्सरसां जातिसंज्ञयोः ॥ ९४ ॥

अनस् अश्मन् अयस् सरस् इत्येवमन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति जातौ संज्ञायां च विषये। उपानसमिति जातिः। महानसमिति संज्ञा। अमृताश्म इति जातिः। पिण्डाश्म इति संज्ञा। कालायसमिति जातिः। लोहितायसमिति संज्ञा। मण्डूकसरसमिति जातिः। जलसरसमिति संज्ञा। जातिसंज्ञयोरिति किम्। सदनः। सदश्मा। सत्सरः ॥

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥ ९५ ॥

जातिसंज्ञयोरिति नानुवर्त्तते। ग्रामकौटाभ्यां परो यस्तक्षन्शब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति। ग्रामस्य तक्षा, ग्रामतक्षः। बहूनां साधारण इत्यर्थः। कुट्यां भवः कौटः, तस्य तक्षा, कौटतक्षः। स्वतन्त्रः कर्मजीवी। न कस्यचित्प्रतिबद्ध इत्यर्थः। ग्रामकौटाभ्यामिति किम्। राज्ञस्तक्षा ॥

अतेः शुनः ॥ ९६ ॥

अतिशब्दात्परो यः श्वन्शब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति।

अतिक्रान्तः श्वान,मतिश्वो वराहः । जववानित्यर्थः । अतिश्वः सेवकः । सुष्ठु स्वामिभक्त इत्यर्थः । अतिश्वी सेवा । अतिनीचेत्यर्थः ॥

उपमानादप्राणिषु ॥ ९७ ॥

उपमानवाची यः श्वशब्दोऽप्राणिषु वर्त्तते तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति । आकर्षः श्वेव, आकर्षश्वः । फलकश्वः । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । उपमानादिति किम् । न श्वा, अश्वा लोष्टः । अप्राणिष्विति किम् । वानरः श्वेव, वानरश्वा ॥

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ॥ ९८ ॥

उत्तर मृग पूर्व इत्येतेभ्यः परो यः सक्थिशब्दश्चकारादुपमानाच्च, तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । उपमानात्खल्वपि । फलकमिव सक्थि, फलकसक्थम् ॥

नावो द्विगोः ॥ ९९ ॥

नौशब्दान्ताद् द्विगोष्टच्प्रत्ययो भवति समासान्तः । द्वे नावौ समाहृते, द्विनावम् । त्रिनावम् । द्विनावधनः । पञ्चनावप्रियः । द्वाभ्यां नौभ्यामागतं, द्विनावरूप्यम् । द्विनावमयम् । द्विगोरिति किम् । राजनौः । अतद्धितलुकीत्येव । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः, पञ्चनौः । दशनौः ॥

अर्द्धाच्च ॥ १०० ॥

अर्द्धशब्दात्परो यो नौशब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच्प्रत्ययो भवति । अर्द्धं नावः, अर्द्धनावम् । अर्द्धं नपुंसकमिति समासः । परवल्लिङ्गं न भवति लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य ॥

खार्याः प्राचाम् ॥ १०१ ॥

द्विगोरर्द्धाच्चेति द्वयमप्यनुवर्त्तते । खारीशब्दान्ताद् द्विगोरर्द्धाच्च परो यः खारीशब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन । द्वे खार्यौ समाहृते, द्विखारम् । द्विखारि । त्रिखारम् । त्रिखारि । अर्द्धं खार्या, अर्द्धखारम् । अर्द्धखारी ॥

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥ १०२ ॥

द्वित्रिभ्यां परो योऽञ्जलिशब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच्प्रत्ययो भवति । द्वावञ्जली समाहृतौ, द्व्यञ्जलम् । त्र्यञ्जलम् । द्विगोरित्येव । द्वयोरञ्जलिः, द्व्यञ्जलिः । अतद्धितलुकीत्येव । द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतो, द्व्यञ्जलिः । त्र्यञ्जलिः । प्राचामित्येव । द्व्यञ्जलिप्रियः ॥

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ॥ १०३ ॥

अवन्तादसन्ताच्च नपुंसकलिङ्गात्तत्पुरुषाट्टच्प्रत्ययो भवति छन्दसि विषये। हस्तिचर्मे जुहोति। ऋषभचर्मे ऽभिषिच्यते। असन्तात्। देवच्छन्दसानि। मनुष्यच्छन्दसानि। अनसन्तादिति किम्। बिल्वदारुजुहोति। नपुंसकादिति किम्। सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम्॥ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि वावचनम्॥ * ॥ ब्रह्मसाम। देवच्छन्दः। ब्रह्मसामम्। देवच्छन्दसम्॥

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्॥ १०४॥

ब्रह्मन्शब्दान्तात्तत्पुरुषाट्टच्प्रत्ययो भवति समासेन चेद्ब्रह्मणो जानपदत्वमाख्यायते। जनपदेषु भवो, जानपदः। यस्य तत्पुरुषस्य जनपद शब्दः पूर्वपदं तस्मादेतत्प्रत्ययविधानम्। सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा, सुराष्ट्रब्रह्मः। अवन्तिब्रह्मः।* योगविभागात्सप्तमीसमासः। जानपदाख्यायामिति किम्। देवब्रह्मा नारदः॥

कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्॥ १०५॥

कुमहद्भ्यां परो यो ब्रह्मा तदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम्। कुब्रह्मः। कुब्रह्मा। महाब्रह्मः। महाब्रह्मा। ब्राह्मणपर्यायो ब्रह्मन्शब्दः॥

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे॥ १०६॥

तत्पुरुषाधिकारो निवृत्तः। द्वन्द्वाच्चवर्गान्ताद् दकारान्तात् षकारान्तात् हकारान्ताच्च टच् प्रत्ययो भवति स चेद् द्वन्द्वः समाहारे वर्त्तते नेतरेतरयोगे। वाक्च त्वक्च, वाक्त्वचम्। स्रक्च त्वक्च, स्रक्त्वचम्। श्रीस्रजम्। इडूर्जम्। वागूर्जम्। समिद्दृषदम्। संपद्विपदम्। वाग्विप्रुषम्। छत्रोपानहम्। धेनुगोदुहम्। द्वन्द्वादिति किम्। तत्पुरुषान्मा भूत्। पञ्च वाचः समाहृताः, पञ्चवाक्। चुदषहान्तादिति किम्। वाक्समित्। समाहारइति किम्। प्रावृट्शरदौ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः॥ १०७॥

शरदित्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्टच् प्रत्ययो भवत्यव्ययीभावे। शरदः समीपम्, उपशरदम्। प्रतिशरदम्। उपविपाशम्। प्रतिविपाशम्। अव्ययीभावइति किम्। परमशरत्। ये ऽत्र झयन्ताः पठ्यन्ते तेषां नित्यार्थं ग्रहणम्। स्वर्यते चेदमव्ययीभावग्रहणं प्राग्बहुव्रीहेः। शरत्। विपाश्। अनस्। मनस्। उपानह्। दिव्। हिमवत्। अनडुह्। दिश्। दृश्। चतुर्। यद्। तद्॥ जराया जरस्॥ सदृश्॥ प्रतिपरसमनुभ्यो ऽक्ष्णः॥ पथिन्। प्रत्यक्षम्। परोक्षम्। समक्षम्। अन्वक्षम्। प्रतिपथम्। परपथम्। संपथम्। अनुपथम्॥

अनश्च॥ १०८॥

---

* काशीब्रह्मः। इत्यधिकमन्यत्र।

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । उपराजम् । अध्यात्मम् । प्रत्यात्मम् ॥

नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥

अन इत्येव । नपुंसकग्रहणमुत्तरपदविशेषणम् । अन्नन्तं यन्नपुंसकं तदन्तादव्ययीभावादन्यतरस्यां टच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प्यते । प्रतिचर्मम् । प्रतिचर्म । उपचर्मम् । उपचर्म ॥

नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥ ११० ॥

नदी पौर्णमासी आग्रहायणी इत्येवमन्तादव्ययीभावादन्यतरस्यां टच् प्रत्ययो भवति । नद्याः समीपम्, उपनदम् । उपनदि । उपपौर्णमासम् । उपपौर्णमासि । उपाग्रहायणम् । उपाग्रहायणि ॥

झयः ॥ १११ ॥

झय इति प्रत्याहारग्रहणम् । झयन्तादव्ययीभावादन्यतरस्यां टच् प्रत्ययो भवति । उपसमिधम् । उपसमित् । उपदृषदम् । उपदृषत् ॥

गिरेश्च सेनकस्य ॥ ११२ ॥

गिरिशब्दान्तादव्ययीभावाट्टच् प्रत्ययो भवति सेनकस्याचार्यस्य मतेन । अन्तर्गिरम् । अन्तर्गिरि । उपगिरम् । उपगिरि । सेनकग्रहणं पूजार्थम् । विकल्पो ऽनुवर्त्ततएव ॥

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् ॥ ११३ ॥

स्वाङ्गवाची यः सक्थिशब्दो ऽक्षिशब्दश्च तदन्ताद्बहुव्रीहेः षच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । अयमर्थोऽभिप्रेतः । सूत्रे तु दुःश्लिष्टविभक्तीनि पदानि । दीर्घं सक्थि यस्य, दीर्घसक्थः । कल्याणाक्षः । लोहिताक्षः । विशालाक्षः । बहुव्रीहाविति किम् । परमसक्थि: । परमाक्षिः । सक्थ्यक्ष्णोरिति किम् । दीर्घजानुः । सुबाहुः । स्वाङ्गादिति किम् । दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षिरिक्षुः । टचि प्रकृते षज्ग्रहणं स्वरार्थम् । चक्रसक्थी स्त्री । दीर्घसक्थी स्त्री । सक्थं चाक्रान्तादिति विभाषयोत्तरपदस्यान्तोदात्तता विधीयते तत्र यस्मिन्पक्षे नास्त्युदात्तत्वं तत्र ङीपि सत्युदात्तनिवृत्तिस्वरस्याभावादनुदात्तः श्रूयेत । ङीषि तु सर्वत्रोदात्तः सिद्धो भवति । बहुव्रीहिग्रहणमापादपरिसमाप्तेरनुवर्त्तते ॥

अङ्गुलेर्दारुणि ॥ ११४ ॥

अङ्गुलिशब्दान्ताद्बहुव्रीहेः षच्प्रत्ययो भवति समासान्तो दारुणि समासार्थे । द्व्यङ्गुलं दारु । त्र्यङ्गुलं दारु । पञ्चाङ्गुलम् । अङ्गुलिसदृशावयवं धान्यादीनां विक्षेपणकाष्ठमुच्यते । यस्य तु द्वे अङ्गुली प्रमाणं दारुणस्तत्र तद्धितार्थे

इति समासे कृते तत्पुरुषस्याङ्गुलेरित्यचा भवितव्यम् । दारुणीति किम् । पञ्चाङ्गुलिर्हस्तः ॥

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ॥ ११५ ॥

द्वित्रिभ्यां परो यो मूर्द्धन्शब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेः षः प्रत्ययो भवति समासान्तः । द्विमूर्धः । त्रिमूर्द्धः । द्वित्रिभ्यामिति किम् । उच्चैर्मूर्द्धा ॥

अप्पूरणीप्रमाण्योः ॥ ११६ ॥

पूरणप्रत्ययान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दाः पूरणीग्रहणेन गृह्यन्ते । प्रमाणीति स्वरूपग्रहणम् । पूरण्यन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्प्रत्ययो भवति समासान्तः । कल्याणी पञ्चमी आसां रात्रीणां ताः, कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । कल्याणीदशमा रात्रयः । स्त्री प्रमाणी एषां, स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः । भार्याप्रधाना इत्यर्थः ॥ अपि प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ यत्रान्यपदार्थे पूरणनुप्रविशति न केवलं वर्त्तिपदार्थ एव तत्र पूरण्याः प्राधान्यम् । पुंवद्भावप्रतिषेधेपि प्रधानपूरण्येव गृह्यते । इह न भवति । कल्याणी पञ्चमी अस्मिन्पक्षे कल्याणपञ्चमीकः पक्ष इति ॥ नेतुर्नक्षत्रउपसंख्यानम् ॥ * ॥ मृगो नेता आसां रात्रीणां, मृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः । नक्षत्रइति किम् । देवदत्तनेतृकाः ॥ छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ बृहस्पतिनेत्रा देवाः । सोमनेत्राः ॥ मासाद्भृतिप्रत्ययपूर्वपदाट्ठज्विधिः ॥ * ॥ पञ्चको मासो ऽस्य, पञ्चकमासिकः कर्मकरः । दशकमासिकः । सो ऽस्यांशवस्नभृतय इति संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥ ११७ ॥

अन्तर् बहिस् इत्येताभ्यां परो यो लोमन्शब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरप्प्रत्ययो भवति । अन्तर्गतानि लोमान्यस्यान्तर्लोमः प्रावारः । बहिर्लोमः पटः ॥

अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥ ११८ ॥

नासिकान्ताद्बहुव्रीहेरच्प्रत्ययो भवति नासिकाशब्दश्च नसमादेशमापद्यते । अस्थूलादिति नासिकाविशेषणं, न चेत्स्थूलशब्दात्परा नासिका भवतीति । संज्ञायामिति समुदायोपाधिः । द्रुरिव नासिका ऽस्य, द्रुणसः । * वाध्रीणसः । पूर्वपदात्संज्ञायामग इति णत्वम् । गोनसः । संज्ञायामिति किम् । तुङ्गनासिकः । अस्थूलादिति किम् । स्थूलनासिको वराहः ॥ खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः ॥ * ॥ खुरणाः । खरणाः ॥ पक्षे ऽच्प्रत्ययोपीष्यते ॥ खुरणसः । खरणसः ॥ शितिनाः, अर्हिनाः, अर्चनाः, इति निगमइष्यते ॥

उपसर्गाच्च ॥ ११९ ॥

---

* खरणसः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

उपसर्गात्परो यो नासिकाशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरच् प्रत्ययो भवति नासिकाशब्दश्च नसमापद्यते । असंज्ञार्थं वचनम् । उन्नता नासिका ऽस्य, उन्नसः । प्रणसः । उपसर्गाद्बहुलमिति णत्वम् ॥ वेर्ग्रो वक्तव्यः ॥ * ॥ विगता नासिका ऽस्य विग्रः ॥

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः ॥ १२० ॥

सुप्रातादयो बहुव्रीहिसमासा अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्यदपि च टिलोपादिकं निपातनादेव सिद्धम् । शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः । शोभनं श्वो ऽस्य, सुश्वः । शोभनं दिवा ऽस्य सुदिवः । शारेरिव कुक्षिरस्य, शारिकुक्षः । चतस्रो ऽश्रयो ऽस्य, चतुरश्रः । एण्याइव पादावस्य, एणीपदः । अजस्येव पादावस्य, अजपदः । प्रोष्ठो गौस्तस्येव पादावस्य प्रोष्ठपदः ॥

नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥ १२१ ॥

नञ् दुस् सु इत्येतेभ्यः परो यो हलिसक्थिशब्दो तदन्ताद्बहुव्रीहेरन्यतरस्यामच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । अविद्यमाना हलिरस्य, अहलः । अहलिः । दुर्हलः । दुर्हलिः । सुहलः । सुहलिः । अविद्यमानं सक्थ्यस्य, असक्थः । असक्थिः । दुःसक्थः । दुःसक्थिः । सुसक्थः । सुसक्थिः । हलिशक्त्योरिति के चित्पठन्ति । अविद्यमाना शक्तिरस्य, अशक्तः । अशक्तिः । विरूपा शक्तिरस्य, दुःशक्तः । दुःशक्तिः । शोभना शक्तिरस्य, सुशक्तः । सुशक्तिः ॥

नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ १२२ ॥

नञ्दुस्सुभ्य इत्येव । नञ् दुस् सु इत्येतेभ्यः परो यो प्रजामेधाशब्दो तदन्ताद्बहुव्रीहेर्नित्यमसिच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । अविद्यमाना प्रजा ऽस्य, अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अविद्यमाना मेधा ऽस्य, अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः । नित्यग्रहणं किम् । यावता पूर्वसूत्रे ऽन्यतरस्यांग्रहणं नेव स्वर्यते । एवं तर्हि नित्यग्रहणादन्यत्रापि भवतीति सूच्यते ॥

श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकस्याल्पमेधसः ।

अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी ॥

बहुप्रजाश्छन्दसि ॥ १२३ ॥

बहुप्रजा इति छन्दसि निपात्यते । बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश । छन्दसीति किम् । बहुप्रजो ब्राह्मणः ॥

धर्मादनिच् केवलात् ॥ १२४ ॥

केवलाद् यो धर्मशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरनिच्प्रत्ययो भवति समासान्तः। कल्याणो धर्मोऽस्य, कल्याणधर्मा। प्रियधर्मा। केवलादिति किम्। परमः स्वो धर्मोऽस्य परमस्वधर्मः। यद्येवं त्रिपदे बहुव्रीहौ प्राप्नोति, परमः स्वो धर्मोऽस्येति। एवं तर्हि केवलादिति पूर्वपदं निर्दिश्यते केवलात्पदाद्यो धर्मशब्दो न पदसमुदायात्, तदन्ताद्बहुव्रीहेः प्रत्ययः॥

जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ॥ १२५ ॥

बहुव्रीहौ समासे स्वादिभ्यः परं जम्भेति कृतसमासान्तमुत्तरपदं निपात्यते। जम्भशब्दोऽभ्यवहार्यवाची दन्तविशेषवाची च। शोभनो जम्भोऽस्य, सुजम्भा देवदत्तः। शोभनाभ्यवहार्य्यः शोभनदन्तो वा। एवं हरितजम्भा। तृणजम्भा। सोमजम्भा। दन्तवचने तृणमिव जम्भोऽस्य, सोमइव जम्भोऽस्येति विग्रहीतव्यम्। सुहरिततृणसोमेभ्य इति किम्। पतितजम्भः॥

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥ १२६ ॥

दक्षिणेर्मेति कृतसमासान्तो निपात्यते बहुव्रीहौ समासे लुब्धयोगे। लुब्धो व्याधः। दक्षिणमीर्ममस्य, दक्षिणेर्मा मृगः। ईर्मं व्रणमुच्यते। दक्षिणमङ्गं व्रणितमस्य व्याधेनेत्यर्थः। लुब्धयोगइति किम्। दक्षिणेर्मं शकटम्॥

इच् कर्मव्यतिहारे ॥ १२७ ॥

कर्मव्यतिहारे यो बहुव्रीहिस्तस्मादिच् प्रत्ययो भवति। तत्र तेनेदमिति सरूपइत्ययं बहुव्रीहिर्गृह्यते। केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं, केशाकेशि। कचाकचि। मुसलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं, मुसलामुसलि। दण्डादण्डि। तिष्ठद्गुप्रभृतिष्वयमिच्प्रत्ययः पठ्यते॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ १२८ ॥

द्विदण्ड्यादयः शब्दा इच्प्रत्ययान्ताः साधवो भवन्ति। द्विदण्ड्यादिभ्य इति तादर्थ्ये एषा चतुर्थी, न पञ्चमी। द्विदण्ड्यार्थमिच् प्रत्ययो भवति। तथा भवति यथा द्विदण्ड्यादयः सिध्यन्तीत्यर्थः। समुदायनिपातनाच्चार्थविशेषेऽवरुध्यन्ते। द्विदण्डि प्रहरति। द्विमुसलि प्रहरति। इह न भवति। द्विदण्डा शालेति। बहुव्रीह्यधिकारेऽपि तत्पुरुषात्क्वचिद्विधानमिच्छन्ति। निकुच्य कर्णौ धावति। निकुच्यकर्णि धावति। प्रोह्य पादौ हस्तिनं वाहयति। प्रोह्यपादि हस्तिनं वाहयति। मयूरव्यंसकादित्वात्समासः। द्विदण्डि। द्विमुसलि। उभाञ्जलि। उभयाञ्जलि। उभाकर्णि। उभयाकर्णि। उभादन्ति। उभयादन्ति। उभाहस्ति। उभयाहस्ति। उभापाणि। उभयापाणि। उभाबाहु। उभयाबाहु। एकपदि। प्रोह्यपदि। आढ्यपदि। सपदि। निकुच्यकर्णि।

संहृतपुच्छि । उभाबाहु उभयाबाह्विति निपातनादिच्प्रत्ययलोपः । प्रत्ययलक्षणेनाव्ययीभावसंज्ञा ॥

प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः ॥ १२९ ॥

प्र सम् इत्येताभ्यामुत्तरस्य जानुशब्दस्य ज्ञुरादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ । प्रकृष्टे जानुनी अस्य प्रज्ञुः । संज्ञुः ॥

ऊर्ध्वाद्विभाषा ॥ १३० ॥

ऊर्ध्वशब्दादुत्तरस्य जानुशब्दस्य विभाषा ज्ञुरित्ययमादेशो भवति । ऊर्ध्वे जानुनी अस्य, ऊर्ध्वजानुः । ऊर्ध्वज्ञुः ॥

ऊधसोऽनङ् ॥ १३१ ॥

ऊधःशब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशो भवति समासान्तः । कुण्डमिव ऊधो ऽस्याः, सा कुण्डोध्नी । घटोध्नी ॥ ऊधसोनङि स्त्रीग्रहणं कर्तव्यम् ॥ इह मा भूत् । महोधाः पर्जन्यः । घटोधो धेनुकम् ॥

धनुषश्च ॥ १३२ ॥

धनुःशब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशो भवति । शार्ङ्गं धनुरस्य, शार्ङ्गधन्वा । गाण्डीवधन्वा । पुष्पधन्वा । अधिज्यधन्वा ॥

वा संज्ञायाम् ॥ १३३ ॥

धनुःशब्दान्ताद्बहुव्रीहेरनङादेशो वा भवति संज्ञायां विषये । पूर्वेण नित्यः प्राप्तो विकल्प्यते । शतधनुः । शतधन्वा । दृढधनुः । दृढधन्वा ॥

जायाया निङ् ॥ १३४ ॥

जायाशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशो भवति । युवतिर्जाया यस्य, युवजानिः । वृद्धजानिः ॥

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ॥ १३५ ॥

उत् पूति सु सुरभि इत्येतेभ्यः परस्य गन्धशब्दस्य इकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे । तकार उच्चारणार्थः । उद्गतो गन्धो ऽस्य, उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धिः । एतेभ्य इति किम् । तीव्रगन्धो वातः ॥ गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम् ॥ * ॥ तेन शोभनो गन्धो ऽस्य सुगन्ध आपणः ॥

अल्पाख्यायाम् ॥ १३६ ॥

अल्पाख्यायां यो गन्धशब्दस्तस्येकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे । सूपो ऽल्पो ऽस्मिन्सूपगन्धि भोजनम् । अल्पमस्मिन्भोजने घृतम्, घृतगन्धि । क्षीरगन्धि । अल्पपर्यायो गन्धशब्दः ॥

उपमानाच्च ॥ १३७ ॥

उपमानात्परो यो गन्धशब्दस्तस्येकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे। पद्मस्येव गन्धो ऽस्य, पद्मगन्धिः। उत्पलगन्धिः। करीषगन्धिः॥

पादस्य लोपो ऽहस्त्यादिभ्यः ॥ १३८ ॥

उपमानादित्येव। उपमानाद्धस्त्यादिवर्जितात्परस्य पादशब्दस्य लोपो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे। स्थानिद्वारेण लोपस्य समासान्तता विज्ञायते। व्याघ्रस्येव पादावस्य, व्याघ्रपात्। सिंहपात्। अहस्त्यादिभ्य इति किम्। हस्तिपादः। कटोलपादः। हस्तिन्। कटोल। गण्डोल। गण्डोलक। महिला। दासी। गणिका। कुसूल॥

कुम्भपदीषु च ॥ १३९ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादलोपाः पठ्यन्ते समुदाया एव। तत्रैवं सूत्रं ज्ञेयम्। पादस्य लोपो भवति कुम्भपद्यादिविषये। यथा कुम्भपद्यादयः सिद्ध्यन्ति। समुदायपाठस्य च प्रयोजनं विषयनियमः स्त्रियामेव तत्र ङीप्प्रत्यये एव नान्यत्र। कुम्भपदी। शतपदी। यच्चेहोपमानपूर्वं संख्यापूर्वं च पठ्यते तस्य सिद्धे लोपे नित्यङीबर्थं वचनम्। पादोऽन्यतरस्यामिति विकल्पो न भवति। कुम्भपदी। शतपदी। अष्टापदी। जालपदी। एकपदी। मालापदी। मुनिपदी। गोधापदी। गोपदी। कलशीपदी। घृतपदी। दासीपदी। निष्पदी। आर्द्रपदी। कुणपदी। कृष्णपदी। द्रोणपदी। द्रुपदी। शकृत्पदी। सूपपदी। पञ्चपदी। अर्वपदी। स्तनपदी*॥

संख्यासुपूर्वस्य ॥ १४० ॥

संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च बहुव्रीहेः पादशब्दान्तस्य लोपो भवति समासान्तः। द्वौ पादावस्य, द्विपात्। त्रिपात्। शोभनौ पादावस्य, सुपात्॥

वयसि दन्तस्य दतृ ॥ १४१ ॥

संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च बहुव्रीहेर्यो दन्तशब्दस्तस्य दतृ इत्ययमादेशो भवति समासान्तो वयसि गम्यमाने। ऋकार उगित्कार्यार्थः। द्वौ दन्तावस्य, द्विदन्। त्रिदन्। चतुर्दन्। शोभना दन्ता अस्य समस्ता जाताः, सुदन् कुमारः। वयसीति किम्। द्विदन्तः कुञ्जरः†॥

छन्दसि च ॥ १४२ ॥

---

* स्थूलपदी। सूत्रपदी। कलहंसपदी। द्विपदी। विषपदी। सुपदी। सूकरपदी। सूचीपदी। एते शब्दाः पुस्तकान्तरे ऽधिकाः॥

† सुदन्तो दाक्षिणात्यः। इति प्रत्युदाहरणं पुस्तकान्तरे ऽधिकम्।

छन्दसि च दन्तशब्दस्य दतृ इत्ययमादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे । पत्रदन्तमालभेत । उभयदत आलभते ॥

स्त्रियां संज्ञायाम् ॥ १४३ ॥

स्त्रियामन्यपदार्थे संज्ञायां विषये दन्तशब्दस्य दतृ इत्ययमादेशो भवति । अयोदती । फालदती । संज्ञायामिति किम् । समदन्ती । स्निग्धदन्ती ॥

विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥ १४४ ॥

श्याव अरोक इत्येताभ्यां परस्य दन्तशब्दस्य दतृ इत्ययमादेशो भवति विभाषा समासान्तो बहुव्रीहौ । श्यावदन् । श्यावदन्तः । अरोकदन् । अरोकदन्तः । अरोको निर्दीप्तिः । संज्ञायामित्येव । श्यावदन्तः । अरोकदन्तः ॥

अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥ १४५ ॥

विभाषेत्येव । अग्रान्ताच्छब्दात् शुद्ध शुभ्र वृष वराह इत्येतेभ्यश्च परस्य दन्तशब्द विभाषा दतृ इत्ययमादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीहौ समासे । कुड्मलाग्रदन् । कुड्मलाग्रदन्तः । शुद्धदन् । शुद्धदन्तः । शुभ्रदन् । शुभ्रदन्तः । वृषदन् । वृषदन्तः । वराहदन् । वराहदन्तः । अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः । अहिदन् । अहिदन्तः । मूषिकदन् । मूषिकदन्तः । गर्दभदन् । गर्दभदन्तः । शिखरदन् । शिखरदन्तः ॥

ककुदस्यावस्थायां लोपः ॥ १४६ ॥

ककुदशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्लोपो भवति समासान्तो ऽवस्थायां गम्यमानायाम् । कालादिकृता वस्तुधर्मा वयःप्रभृतयो ऽवस्था इत्युच्यते । असञ्जातं ककुदमस्य, असञ्जातककुत् । बाल इत्यर्थः । पूर्णककुत् । मध्यमवया इत्यर्थः । उन्नतककुत् । वृद्धवया इत्यर्थः । स्थूलककुत् । बलवानित्यर्थः । यष्टिककुत् । नातिस्थूलो नातिकृश इत्यर्थः । अवस्थायामिति किम् श्वेतककुदः ॥

त्रिककुत्पर्वते ॥ १४७ ॥

त्रिककुदि बहुव्रीहौ ककुदशब्दस्य लोपः समासान्तो निपात्यते पर्वते ऽभिधेये । त्रीणि ककुदान्यस्य, त्रिककुत्पर्वतः । ककुदाकारं पर्वतस्य शृङ्गं ककुदमित्युच्यते । न च सर्वस्त्रिशिखरः पर्वतस्त्रिककुत् । किं तर्हि संज्ञैषा पर्वतविशेषस्य । पर्वतइति किम् । त्रिककुदो ऽन्यः ॥

उद्विभ्यां काकुदस्य ॥ १४८ ॥

उत् वि इत्येताभ्यां परस्य काकुदशब्दस्य लोपो भवति बहुव्रीहौ समासे । उद्गतं काकुदमस्य, उत्काकुत् । विकाकुत् । तालु काकुदमुच्यते ॥

पूर्णाद्विभाषा ॥ १४९ ॥

पूर्णात्परस्य काकुदशब्दस्य विभाषा लोपो भवति बहुव्रीहौ समासे। पूर्णं काकुदमस्य, पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः॥

सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः॥ १५०॥

सुहृत् दुर्हृत् इति निपात्यते यथासंख्यं मित्रामित्रयोरभिधेययोः। सुशब्दात्परस्य हृदयशब्दस्य हृद्भावो निपात्यते बहुव्रीहौ, तथा दुःशब्दात्परस्य। शोभनं हृदयमस्य, सुहृन्मित्रम्। दुष्टं हृदयमस्य दुर्हृदमित्रम्। मित्रामित्रयोरिति किम्। सुहृदयः कारुणिकः। दुर्हृदयश्चोरः॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप्॥ १५१॥

उरःप्रभृत्यन्ताद्बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो भवति। व्यूढमुरो ऽस्य व्यूढोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः। अवमुक्तोपानत्कः। पुमान् अनड्वान् पयो नौर्लक्ष्मीरिति विभक्त्यन्ताः पठ्यन्ते न प्रातिपदिकानि। तत्रेदं प्रयोजनम्, एकवचनान्तानामेव ग्रहणमिह विज्ञायेत द्विवचनबहुवचनान्तानां मा भूदिति। तत्र शेषाद्विभाषेति विकल्प एव भवतीति। द्विपुमान्। द्विपुंस्कः। बहुपुमान्। बहुपुंसकः। उरस्। सर्पिस्। उपानह्। पुमान्। अनड्वान्। नौः। पयः। लक्ष्मीः। दधि। मधु। शालिः॥ अर्थान्नञः॥ अनर्थकः॥

इनः स्त्रियाम्॥ १५२॥

इन्नन्ताद्बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो भवति स्त्रियां विषये। बहवो दण्डिनो ऽस्यां शालायां बहुदण्डिका शाला। बहुच्छत्रिका। बहुस्वामिका नगरी। बहुवाग्मिका सभा। स्त्रियामिति किम्। बहुदण्डी राजा। बहुदण्डिकः। शेषाद्विभाषेत्येतद्भवति।

नद्यृतश्च॥ १५३॥

नद्यन्ताद्बहुव्रीहेर्ऋकारान्ताच्च कप् प्रत्ययो भवति। बह्व्यः कुमार्यो ऽस्मिन्देशे बहुकुमारीको देशः। बहुब्रह्मबन्धूकः। ऋतः खल्वपि। बहुकर्तृकः। तकारः सुखमुखोच्चारणार्थः॥

शेषाद्विभाषा॥ १५४॥

यस्माद्बहुव्रीहेः समासान्तो न विहितः स शेषस्तस्माद्विभाषा कप्प्रत्ययो भवति। बह्व्यः खट्वा अस्मिन्बहुखट्वकः। बहुमालकः। बहुवीणकः। बहुखट्वाकः। बहुमालाकः। बहुवीणाकः। बहुखट्वः। बहुमालः। बहुवीणः। कथमनृचकं साम बह्वृचकं सूक्तमिति, यावता विहितो ऽत्र सामान्येन समासान्त ऋक्पूरिति। नैतदस्ति। विशेषे स इष्यते, अनृचो माणवको ज्ञेयो बह्वृचश्चरणाख्यायामिति। शेषादिति किम्। प्रियपथः। प्रियधुरः॥

न संज्ञायाम् ॥ १५५ ॥

संज्ञायां विषये बहुव्रीहौ समासे कप् प्रत्ययो न भवति । पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते । विश्वे देवा अस्य, विश्वदेवः । विश्वयशाः ॥

ईयसश्च ॥ १५६ ॥

ईयसन्ताद्बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो न भवति । सर्वा प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । बहवः श्रेयांसो ऽस्य बहुश्रेयान् । शेषाद्विभाषेत्यस्य प्रतिषेधः । बह्व्यः श्रेयस्यो ऽस्य बहुश्रेयसी । नद्यृतश्चेत्यस्य प्रतिषेधः । ह्रस्वत्वमपि न भवति । ईयसो बहुव्रीहौ पुंवदिति वचनात् ।

वन्दिते भ्रातुः ॥ १५७ ॥

वन्दितेर्थे यो भ्रातृशब्दो वर्त्तते तदन्ताद्बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो न भवति । वन्दितः स्तुतः पूजित इत्युच्यते । शोभनो भ्राता ऽस्य सुभ्राता । वन्दितइति किम् । मूर्खभ्रातृकः । दुष्टभ्रातृकः ॥

ऋतश्छन्दसि ॥ १५८ ॥

ऋवर्णान्ताद् बहुव्रीहेश्छन्दसि विषये कप् प्रत्ययो न भवति । हता माता ऽस्य हतमाता । हतपिता । हतस्वसा । सुहोता ॥

नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥ १५९ ॥

स्वाङ्गे यो नाडीतन्त्रीशब्दो तदन्ताद्बहुव्रीहेः कप् प्रत्ययो न भवति । बह्व्यो नाड्यो ऽस्य बहुनाडिः कायः । बहुतन्त्रीर्ग्रीवा । धमनीवचनस्तन्त्रीशब्दः । स्वाङ्गइति किम् । बहुनाडीकः स्तम्भः । बहुतन्त्रीका वीणा ॥

निष्प्रवाणिश्च ॥ १६० ॥

निष्प्रवाणिरिति नदीलक्षणस्य कपः प्रतिषेधो निपात्यते । प्रोयते ऽस्यामिति प्रवाणी । प्रवयन्ति तयेति वा प्रवाणी । करणसाधनो ऽयं ल्युट् । तन्तुवायशलाका भण्यते । निर्गता प्रवाणी अस्य, निष्प्रवाणिः पटः । निष्प्रवाणिः कम्बलः । अपनीतशलाकः । समाप्तवानः प्रत्ययोनवक उच्यते ॥

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तौ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थश्चरणः ॥

समाप्तः पञ्चमो ऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ १ ॥

अधिकारो ऽयम् । एकाच इति च द्वे इति च प्रथमस्येति च त्रितयमधिकृतं वेदितव्यम् । इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः प्राक्संप्रसारणविधानात् तत्रैकाचः प्रथमस्य द्वे भवत इत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति लिटि धातोरनभ्यासस्येति । तत्र धातोरवयवस्यानभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे भवतः । जजागार । पपाच । इयाय । आर । एकाच इति बहुव्रीहिनिर्देशः । एको ऽच् यस्य सो ऽयमेकाच् इत्यवयवेन विग्रहः, समुदायः । समासार्थः । अभ्यन्तरश्च समुदाये ऽवयवो भवतीति साच्कस्यैव द्विर्वचनं भवति । पच् इत्यत्र येनैवाचा समुदाय एकाच् तेनैव तदवयवो ऽच्शब्दः पशब्दश्च । तत्र पृथगवयवैकाचो न द्विरुच्यन्ते, किं तर्हि समुदायैकाजेव । तथाहि । सकृच्छास्त्रप्रवृत्त्या सावयवः समुदायो ऽनुगृह्यते । पपाचेत्यत्र प्रथमत्वं व्यपदेशिवद्भावात् । इयाय आरेत्यत्रैकाच्त्वमपि व्यपदेशिवद्भावादेव । द्विःप्रयोगश्च द्विर्वचनमिदं,मावृत्तिसंख्या हि द्वे इति विधीयते । तेन स एव शब्दो द्विरुच्चार्यते न च शब्दान्तरं तस्य स्थाने विधीयते ॥

अजादेर्द्वितीयस्य ॥ २ ॥

सनि, इति कृते
रेस- शिष्य
नागस्य
द्वित्वम्

प्रथमद्विर्वचनापवादो ऽयम् । अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनमधिक्रियते । अच आदिर्यस्य धातोस्तदवयवस्य द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः । अटिटिषति । अशिशिषति । अरिरिषति । अर्तेः स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनीति इट् क्रियते तस्मिन्कृते गुणे च रपरत्वे च द्विर्वचनेचीति स्थानिवद्भावः प्राप्नोति । तत्र प्रतिविधानं द्विर्वचननिमित्ते ऽचीत्युच्यते । न चात्र द्विर्वचननिमित्तमिट्, किं तर्हि कार्यी । न च कार्यी निमित्तत्वेनाश्रीयते । तथाहि । क्ङिन्निमित्तयोर्गुणवृद्ध्योः प्रतिषेधो विधीयमानः शयितेत्यत्र न भवति, नहि कार्यिणः शीङो गुणं प्रति निमित्तभाव इति । अत्र के चिदजादेरिति कर्मधारयात्पञ्चमीमिच्छन्ति, अच्चासावादिश्चेत्यजादिः, अजादेरुत्तरस्यैकाचो द्वे भवत इति । तेषां द्वितीयस्येति विस्पष्टार्थं द्रष्टव्यम् ॥

न न्द्राः संयोगादयः ॥ ३ ॥

द्वितीयस्येति वर्त्तते । द्वितीयस्यैकाचो ऽवयवभूतानां न्द्राणां तदन्तर्भावात् प्राप्तं द्विर्वचनं प्रतिषिध्यते । नकारदकाररेफा द्वितीयैकाचो ऽवयवभूताः संयोगादयो न द्विरुच्यन्ते । उन्दिदिषति । अड्डिडिषति । अर्चिचिषति । न्द्राः

अडु = अभियोगे।
दोपथ, धा॰ ८७

इति किम् । ईर्चिचिषति । संयोगादय इति किम् । प्राणिणिषति । अनितेरन्तो साभ्यासस्येति णत्वम् । अजादेरित्येव । दिद्रासति । केचिदजादेरित्यपि पञ्चम्यन्तं कर्मधारयमनुवर्त्तयन्ति । तस्य प्रयोजनम् । इन्दिद्रीयिषतीति । अजादेरनन्तरत्वाभावाद् दकारो द्विरुच्यत एव नकारो न द्विरुच्यते । इन्द्रमिच्छति । क्यच् । तदन्तात् । इन्द्रीयितुमिच्छतीति सन् ॥ बकारस्याप्ययं प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ उब्जिजिषति । यदा बकारोपध उब्जिरुपदिश्यते तदायं प्रतिषेधः । दकारोपधोपदेशे तु न वक्तव्यः । बत्वं तु दकारस्य विधातव्यम् ॥ यकारपरस्य रेफस्य प्रतिषेधो न भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अरार्यते । अर्तेरर्त्यर्तिशूर्णोतीनामुपसंख्यानमिति यङ् । तत्र यङि चेति गुणस्तत्र द्विर्वचनम् ॥ ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कस्य तृतीयस्य, केचिदाहुर्व्यञ्जनस्येति । ईर्ष्यियिषति । अपरे पुनस्तृतीयस्यैकाच इति व्याचक्षते । ईर्ष्यिषिषति ॥ कण्ड्वादीनां तृतीयस्यैकाचो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कण्डूयियिषति । असूयियिषति ॥ वा नामधातूनां तृतीयस्यैकाचो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अश्वीयियिषति । अशिश्वीयिषते । अपर आह ॥ यथेष्टं नामधातुष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पुपुत्रीयिषति । पुतित्रीयिषति । पुत्रीयियिषति । पुपुतित्रीयियिषति । पुत्रीयिषिषति ॥

पूर्वोऽभ्यासः ॥ ४ ॥

द्वे इति प्रथमान्तं यदनुवर्त्तते तदर्थादिह षष्ठ्यन्तं जायते । तत्र प्रत्यासत्तेरस्मिन्प्रकरणे ये द्वे विहिते तयोर्यः पूर्वो ऽवयवः सो ऽभ्याससंज्ञो भवति । पपाच । पिपक्षति । पापच्यते । जुहोति । अपीपचत् । अभ्यासप्रदेशास्त्वत्र लोपो ऽभ्यासस्येत्येवमादयः ॥

उभे अभ्यस्तम् ॥ ५ ॥

द्वे इति वर्त्तमाने उभेग्रहणं समुदायसंज्ञाप्रतिपत्त्यर्थम् । ये द्वे विहिते ते उभे अपि समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे भवतः । ददति । ददत् । दधतु । उभेग्रहणं किम् । नेनिजतीत्यत्राभ्यस्तानामादिरिति समुदाये यथा स्यात् प्रत्येकं पर्यायेण वा मा भूदिति । अभ्यस्तप्रदेशा अभ्यस्तानामादिरित्येवमादयः ॥

जक्षित्यादयः षट् ॥ ६ ॥

अभ्यस्तमिति वर्त्तते । जक्ष इत्ययं धातुरित्यादयश्चान्ये षट् धातवो ऽभ्यस्तसंज्ञा भवन्ति । सेयं सप्तानां धातूनामभ्यस्तसंज्ञा विधीयते । जक्षभक्षहसनयोरित्यतः प्रभृति वेवीङ् वेतिना तुल्यइति यावत् । जक्षति । जाग्रति । दरिद्रति । चकासति । शासति । दीध्यते । वेव्यते । इत्यत्राभ्यस्तानामादिरित्येव स्वरः प्रयोजनम् । दीध्यदिति च शतरि व्यत्ययेन संपादिते नाभ्यस्तात्शतुरिति नुमः प्रतिषेधः ॥

तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ ७ ॥

तुजादीनामिति प्रकारे आदिशब्दः। कश्च प्रकारः। तुजेर्दीर्घोऽभ्यासस्य न विहितः, दृश्यते च, ये तथाभूतास्ते तुजादयस्तेषामभ्यासस्य दीर्घः साधु भवति। तूतुजानः। मामहानः। अनड्वान् दाधार। स्वधां मीमाय। दाधारयं स तूताव। दीर्घश्चैषां छन्दसि प्रत्ययविशेषे एव दृश्यते ततोऽन्यत्र न भवति। तुतोज शबलान् ॥

लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ ८ ॥

लिटि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः। पपाच। पपाठ। प्रोर्णुनाव। वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भाव इति वचनाद् ऊर्णोतेरिजादेरित्याम् भवति। लिटीति किम्। कर्ता। हर्ता। धातोरिति किम्। सत्वांसो विशृण्विरे। सोममिन्द्राय सुन्विरे। अनभ्यासस्येति किम्। कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्। नोनूयतेर्नोनाव। संमान्या मरुतः संमिमिक्षुः। लिटि उसन्तः ॥ द्विर्वचनप्रकरणे छन्दसि वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ यो जागार तमृचः कामयन्ते। दाति प्रियाणीति ॥

सन्यङोः ॥ ९ ॥

धातोरनभ्यासस्येति वर्तते। सन्यङोरिति च षष्ठ्यन्तमेतत्। सन्नन्तस्य यङन्तस्य चानभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः। पिपक्षति। पिपतिषति। अरिरिषति। उन्दिदिषति। यङन्तस्य। पापच्यते। अटाट्यते। यायज्यते। अरार्यते। प्रोर्णोनूयते। अनभ्यासस्येत्येव। जुगुप्सिषते। लोलूयिषते ॥

श्लौ ॥ १० ॥

श्लौ परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः। जुहोति। बिभेति। जिह्रेति ॥

चङि ॥ ११ ॥

चङि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः। अपीपचत्। अपीपठत्। आटिटत्। आशिशत्। आर्दिदत्। पचादीनां णयन्तानां चङि कृते णिलोप उपधाह्रस्वत्व द्विर्वचनमित्येषां कार्याणां प्रवृत्तिक्रमः। तथा च सन्वल्लघुनि चङ्परे इति सन्वद्भावो विधीयमानो ह्रस्वस्य स्थानिवद्भावाच प्रतिषिध्यते। यो ह्यनादिष्टादचः पूर्वस्तस्य विधिं प्रति स्थानिवद्भावो भवति। न चास्मिन् कार्याणां क्रमेणादिष्टादचः पूर्वोऽभ्यासो भवतीति। आटिटदिति द्विर्वचनेऽचीति स्थानिवद्भावद् द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनं भवति ॥

दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च ॥ १२ ॥

दाश्वान् साह्वान् मीढ्वानित्येते शब्दाश्छन्दसि भाषायां चाविशेषेण निपात्यन्ते । दाश्वानिति दाशृ दानइत्येतस्य धातोः क्वसावद्विर्वचनमनिट्त्वं च निपात्यन्ते । दाश्वांसो दाशुषः सुतमिति । साह्वानिति षह मर्षणइत्येतस्य परस्मैपदमुपधादीर्घत्वमद्विर्वचनमनिट्त्वं च निपातनात् । साह्वान्बलाहकः । मीढ्वानिति मिह सेचनइत्येतस्याद्वित्वमनिट्त्वमुपधादीर्घत्वं ढत्वं च निपातनात् । मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृडय । एकवचनमतन्त्रम् ॥ कृञादीनां के द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्रियतेऽनेनेति चक्रम् । चिक्लिदम् । कृञः क्लिदेश्च घञर्थे कविधानमिति कः प्रत्ययः ॥ चरिचलिपतिवदीनां द्वित्वमच्याक्चाभ्यासस्य ॥ * ॥ चरादीनां धातूनामपि प्रत्यये परतो द्वे भवतः । अभ्यासस्यागागमो भवति । आगागमविधानसामर्थ्याच्च हलादिःशेषो न भवति । हलादिःशेषे हि सत्यागमस्यादेशस्य च विशेषो नास्ति । चराचरः । चलाचलः । पतापतः । वदावदः ॥ वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तेन चरः पुरुषः । चलो रथः । चलं यानम् । वदो मनुष्यः । इत्येवमाद्यपि सिद्धं भवति ॥ हन्तेर्घत्वं च ॥ * ॥ हन्तेरचि प्रत्यये परतो द्वे भवतोऽभ्यासस्य च हकारस्य च द्वित्वमाक् चागमो भवति । परस्याभ्यासाच्चेति कुत्वम् । घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ॥ पाटेर्णिलुक् चोक् च दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ * ॥ पाटेरचि परतो द्वे भवतो णिलुक्च भवति । अभ्यासस्योगागमो दीर्घश्च भवति । पाटूपटः ॥

ष्यङः संप्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे ॥ १३ ॥

पुत्र पति इत्येतयोरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे समासे ष्यङः संप्रसारणं भवति । यणः स्थाने इग् भवतीत्यर्थः । कारीषगन्धीपुत्रः । कारीषगन्धीपतिः । कौमुदगन्धीपुत्रः । कौमुदगन्धीपतिः । करीषस्येव गन्धो ऽस्य कुमुदस्येव गन्धो ऽस्येति बहुव्रीहिस्तत्रोपमानाच्चेति गन्धस्येदन्तादेशः, करीषगन्धेरपत्यमित्यण् तदन्तात्स्त्रियामणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्र इति ष्यङ् ततश्चापि विहिते षष्ठीसमासः संप्रसारणस्येति दीर्घत्वम् । ष्यङ इति किम् । इभ्यापुत्रः । क्षत्रियापुत्रः । पुत्रपत्योरिति किम् । कारीषगन्ध्याकुलम् । कौमुदगन्ध्याकुलम् । तत्पुरुषइति किम् । कारीषगन्ध्यापतिरस्य ग्रामस्य, कारीषगन्ध्यापतिरयं ग्रामः । ष्यङ इति स्त्रीप्रत्ययग्रहणं स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेनेति प्रत्ययग्रहणपरिभाषया यस्मात् स विहितस्तदादेरित्येष नियमो नास्ति तेन परमकारीषगन्ध्यायाः पुत्रः परमकारीषगन्धीपुत्रः । परमकारीषगन्धीपतिरित्यपि भवति । उपसर्जने तु ष्यङि न भवति । अतिक्रान्ता कारीषगन्ध्यामतिकारीषगन्ध्या तस्य पुत्रो ऽतिकारीषगन्ध्यापुत्रः । अतिकारीषगन्ध्यापतिः । पुत्रपत्योः केवलयोरुत्तरपदयोरिदं

संप्रसारणे, तदादौ तदन्ते च न भवति कारीषगन्ध्यापुत्रकुलं कारीषगन्ध्यापरमपुत्र इति । ष्यङन्ते यद्यप्यन्ये यणः सन्ति तथापि ष्यङ एव संप्रसारणं निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीति । संप्रसारणमिति चाधिक्रियते विभाषा परेरिति यावत् ॥

बन्धुनि बहुव्रीहौ ॥ १४ ॥

ष्यङः संप्रसारणमित्यनुवर्त्तते । बन्धुशब्द उत्तरपदे बहुव्रीहौ समासे ष्यङः संप्रसारणं भवति । कारीषगन्ध्या बन्धुरस्य, कारीषगन्धीबन्धुः । कौमुदगन्धीबन्धुः । बहुव्रीहाविति किम् । कारीषगन्ध्याया बन्धुः । कारीषगन्ध्याबन्धुः । अत्रापि पूर्ववदेव । परमकारीषगन्धीबन्धुरित्यत्र भवति । अतिकारीषगन्ध्याबन्धुरिति च न भवति, तथा कारीषगन्ध्याबन्धुधनः कारीषगन्ध्यापरमबन्धुरिति । बन्धुनीति नपुंसकलिङ्गनिर्द्देशः शब्दरूपापेक्षया पुल्लिङ्गाभिधेयस्त्वयं बन्धुशब्दः ॥ मातच्मातृकमातृषु ॥ * ॥ ष्यङः संप्रसारणं भवति विभाषया बहुव्रीहावेव । कारीषगन्ध्या माता ऽस्येत्येवं बहुव्रीहौ कृते एतस्मादेवोपसंख्यानात् पक्षे मातृशब्दस्य मातजादेशः । तत्र चित्करणसामर्थ्याद्बहुव्रीहिस्वरमन्तोदात्तत्वं बाधते । मातृमातृकशब्दयोश्च भेदेनोपादनाद् नद्यृतश्चेति कबपि विकल्प्यते । कारीषगन्धीमातः । कारीषगन्ध्यामातः । कारीषगन्धीमातृकः । कारीषगन्ध्यामातृकः । कारीषगन्धीमाता । कारीषगन्ध्यामाता ॥

वचिस्वपियजादीनां किति ॥ १५ ॥

संप्रसारणमिति वर्त्तते । ष्यङ इति निवृत्तम् । वचि । वच परिभाषणे । ब्रुवो वचिरिति च । स्वपि । ञिष्वप् शये । यजादयो, यज देवपूजासंगतिकरणदानेष्वित्यतः प्रभृति आ गणान्तात् । तेषां वचिस्वपियजादीनां किति प्रत्यये परतः संप्रसारणं भवति । वचि । उक्तः । उक्तवान् । स्वपि । सुप्तः । सुप्तवान् । यज । इष्टः । इष्टवान् । वप् । उप्तः । उप्तवान् । वह् । ऊढः । ऊढवान् । वस । उषितः । उषितवान् । वेञ् । उतः । उतवान् । व्येञ् । संवीतः । संवीतवान् । ह्वेञ् । हूतः । हूतवान् । वद । उदितः । उदितवान् । टुओश्वि । शूनः । शूनवान् । धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यं विज्ञायते । तेनेह न भवति । वाच्यति वाचिक इति ॥

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ॥ १६ ॥

ग्रह उपादाने, ज्या वयोहानौ, वेञो वयिः, व्यध ताडने, वश कान्तौ, व्यच व्याजीकरणे, ओव्रश्चू छेदने, प्रच्छ ज्ञीप्सायां, भ्रस्ज पाके, इत्येतेषां

धातूनां ङिति प्रत्यये परतश्चकारात्किति च संप्रसारणं भवति। ग्रह। गृहीतः। गृहीतवान्। ङिति। गृह्णाति। जरीगृह्यते। ज्या। जीनः। जीनवान्। ल्वादिभ्य इति निष्ठानत्वम्। ङिति। जिनाति। जेजीयते। हल इति संप्रसारणादीर्घे कृते प्वादीनामिति ह्रस्वः क्रियते। वयि। लिटि परतो वेञो वयिरादेशस्तस्य ङिदभावात् किदेवोदाह्रियते। ऊयतुः। ऊयुः। यद्येवं वयिग्रहणमनर्थकम्, यज्ञादिषु वेञ् पठ्यते। नैवं शक्यम्। लिटि तस्य वेञ इति प्रतिषेधो वक्ष्यते। तत्र यथैव स्थानिवद्भावादुभयोर्विधिरेवं प्रतिषेधोऽपि प्राप्नोति। नैष दोषः। लिटि वयो य इति यकारस्य संप्रसारणप्रतिषेधाद् वयोर्विधौ ग्रहणं प्रतिषेधे वा ग्रहणमनुमास्यते। सत्यमेतत्। एष एवार्थः साक्षान्निर्देशेन वयेः स्पष्टीक्रियते। व्यध। विद्धः। विद्धवान्। ङिति। विध्यति। वेविध्यते। वश। उशितः। उशितवान्। ङिति। उष्टः। उशन्ति। व्यच। विचितः। विचितवान्। ङिति। विचति। वेविच्यते। व्यचेः कुटादित्वमनसि प्रतिपादितम्। तेन सर्वत्राञ्णिति प्रत्यये संप्रसारणं भवति। उद्विचिता। उद्विचितुम्। उद्विचितव्यमिति। व्रश्चेः। वृक्णः। वृक्णवान्। अथ कथमत्र कुत्वं व्रश्चभ्रस्जेति हि षत्वेन भवितव्यम्॥ निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः॥ * ॥ तत्र षत्वं प्रतिनत्वस्य सिद्धत्वाद् झलादिर्निष्ठा न भवति। कुत्वे तु कर्त्तव्ये तदसिद्धमेवेति प्रवर्तते कुत्वम्। ङिति। वृश्चति। वरीवृश्च्यते। प्रच्छ। पृष्टः। पृष्टवान्। ङिति। पृच्छति। परीपृच्छ्यते। प्रश्नः। नङि तु प्रश्ने चासन्नकाल इति निपातनादसंप्रसारणम्। भ्रस्ज। भृष्टः। भृष्टवान्। ङिति। भृज्जति। बरीभृज्ज्यते। सकारस्य झलां जश् झशीति जश्त्वेन दकारः, स्तोः श्चुना श्चुरिति श्चुत्वेन जकारः॥

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ १७ ॥

उभयेषां वच्यादीनां ग्रहादीनां च लिटि परतोऽभ्यासस्य संप्रसारणं भवति। वचि। उवाच। उवचिथ। स्वप्। सुष्वाप। सुष्वपिथ। यज। इयाज। इयजिथ। टुवप्। उवाप। उवपिथ। ग्रहादीनां, तत्र ग्रहेरविशेषः। जग्राह। जग्रहिथ। ज्या। जिज्यौ। जिज्यिथ। वयि। उवाय। उवयिथ। व्यध। विव्याध। विव्यधिथ। वश। उवाश। उवशिथ। व्यच। विव्याच। विव्यचिथ। वृश्चतेः सत्यसति वा योगे नास्ति विशेषः। योगारम्भे तु सति यदि संप्रसारणमकृत्वा हलादिःशेषेण रेफो निवर्त्यते तदा वकारस्य संप्रसारणं प्राप्नोति। अथ रेफस्य संप्रसारणं कृत्वा उरदत्वं रपरत्वं च क्रियते। तदानीमुरदत्वस्य स्थानिवद्भावाच्च संप्रसारणे संप्रसारणमिति प्रतिषेधो भवतीत्यस्ति विशेषः। वव्रश्च। वव्रश्चिथ। पृच्छतिभृज्जत्योरविशेषः। अकिदर्थं चेदमभ्यासस्य संप्रसारणं विधी-

यते। किति हि परत्वाद्धातोः संप्रसारणे कृते पुनः प्रसङ्गविज्ञानाद् द्विर्वचनम्। ऊचतुः। ऊचुरिति। अधिकारादेवोभयेषां ग्रहणे सिद्धे पुनरुभयेषामिति वचनं हलादिःशेषमपि बाधित्वा संप्रसारणमेव यथा स्यादिति। विव्याध॥

स्वापेश्चङि॥ १८॥

स्वापेरिति स्वपेर्ण्यन्तस्य ग्रहणं तस्य चङि परतः संप्रसारणं भवति। असूषुपत्। असूषुपताम्। असूषुपन्। द्विर्वचनात्पूर्वमत्र संप्रसारणं, तत्र कृते लघूपधगुणस्तस्य णौ चङ्युपधाया ह्रस्वत्वं ततो द्विर्वचनं दीर्घो लघोरिति दीर्घत्वम्। चङीति किम्। स्वाप्यते। स्वापितः। कितीति निवृत्तं, ङितीति केवलमिहानुवर्त्ततइत्येतद्धि विज्ञानम्॥

स्वपिस्यमिव्येञां यङि॥ १९॥

ञिष्वप् शये, स्यमु स्वन ध्वन शब्दे, व्येञ् संवरणे, इत्येतेषां धातूनां यङि परतः संप्रसारणं भवति। सोषुप्यते। सेसिम्यते। वेवीयते। यङीति किम्। स्वप्नक्॥

न वशः॥ २०॥

यङीति वर्त्तते। वशेर्धातोर्यङि परतः संप्रसारणं न भवति। वावश्यते। वावश्येते। वावश्यन्ते। यङीति किम्। उष्टः। उशन्ति *॥

चायः की॥ २१॥

यङीति वर्त्तते। चायृ पूजानिशामनयोरित्येतस्य धातोर्यङि परतः कीत्ययमादेशो भवति। चेकीयते। चेकीयेते। चेकीयन्ते। दीर्घकरणं यङ्लुगर्थम्। चेकीतः॥

स्फायः स्फी निष्ठायाम्॥ २२॥

स्फायी ओप्यायी वृद्धावित्यस्य धातोर्निष्ठायां परतः स्फीत्ययमादेशो भवति। स्फीतः। स्फीतवान्। निष्ठायामिति किम्। स्फातिः। स्फातीभवतीत्येतदपि क्तिचन्तस्यैव रूपं न निष्ठान्तस्य। निष्ठायामित्येतदधिक्रियते लिड्यङोश्चेति प्रागेतस्मात् सूत्रात्॥

स्त्यः प्रपूर्वस्य॥ २३॥

निष्ठायामिति वर्त्तते संप्रसारणमिति च। स्फी इत्येतन्न स्वर्यते। स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोर्द्वयोरप्येतयोर्धात्वोः स्त्यारूपमापन्नयोः सामान्येन ग्रहणम्। स्त्या इत्येतस्य प्रपूर्वस्य धातोर्निष्ठायां परतः संप्रसारणं भवति। प्रस्तीतः। प्रस्तीत-

* यङीति किम्। उष्टः उशन्तीत्येकस्मिन् पुस्तके नास्ति।

वान् । संप्रसारणे कृते यणवत्त्वं विहतमिति निष्ठानत्वं न भवति । प्रस्त्योन्यतरस्यामिति तु पक्षे मकारः क्रियते । प्रस्तीमः । प्रस्तीमवान् । प्रपूर्वस्येति किम् । संस्त्यानः । संस्त्यानवान् । प्रस्त्य इत्येवसिद्धे पूर्वग्रहणमिहापि यथा स्यात् । प्रसंस्तीतः । प्रसंस्तीतवान् । तत्कथं प्रपूर्वस्येति षष्ठ्यर्थे बहुव्रीहिः । प्रः पूर्वो यस्य धातूपसर्गसमुदायस्य स प्रपूर्वस्तदवयवस्य स्त्य इति व्यधिकरणे षष्ठ्यौ तत्र प्रसंस्तीत इत्यत्रापि प्रपूर्वसमुदायावयवः स्त्याशब्दो भवति ॥

द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः (श्यः) ॥ २४ ॥

द्रवमूर्त्तौ द्रवकाठिन्ये स्पर्शे वर्त्तमानस्य श्यैङ् गतावित्यस्य धातोर्निष्ठायां परतः संप्रसारणं भवति । शीनं घृतम् । शीना वसा । शीनं मेदः । द्रवावस्थायाः काठिन्यं गतमित्यर्थः । श्यो ऽस्पर्श इति निष्ठानत्वम् । स्पर्शे शीतं वर्त्तते । शीतो वायुः । शीतमुदकम् । गुणमात्रे तद्वृत्ति चास्य शीतशब्दस्य वृत्तिर्द्रष्टव्या । द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोरिति किम् । संश्यानो वृश्चिकः ॥

प्रतेश्च ॥ २५ ॥

श्य इति वर्त्तते । प्रतेरुत्तरस्य श्यायतेर्निष्ठायां परतः संप्रसारणं भवति । प्रतिशीनः । प्रतिशीनवान् । द्रवमूर्त्तिस्पर्शाभ्यामन्यत्रापि यथा स्यादिति सूत्रारम्भः ॥

(विभाषा) ऽभ्यवपूर्वस्य ॥ २६ ॥

श्य इति वर्त्तते । अभि अव इत्येवंपूर्वस्य श्यायतेर्निष्ठायां विभाषा संप्रसारणं भवति । अभिशीनम् । अभिश्यानम् । अवशीनम् । अवश्यानम् । द्रवमूर्त्तिस्पर्शविवक्षायामपि विकल्पो भवति । अभिशीनं घृतम् । अभिश्यानं घृतम् । अवशीनं मेदः । अवश्यानं मेदः । अभिशीतो वायुः । अभिश्यानः । अवशीतमुदकम् । अवश्यानमुदकम् । सेयमुभयत्र विभाषा द्रष्टव्या । पूर्वग्रहणस्य च प्रयोजनं समभिश्यानं समवश्यानमित्यत्र मा भूदिति केचिद्व्याचक्षते । न किलायमभ्यवपूर्वः समुदाय इति । योऽत्राभ्यवपूर्वः समुदायस्तदाश्रयो विकल्पः कस्माच्च भवति । तस्मादत्र भवितव्यमेव । यदि तु नेष्यते ततो यत्नान्तरमास्थेयमस्माद्विभाषाविज्ञानात् । व्यवस्थेयम् । पूर्वग्रहणस्य चान्यत् प्रयोजनं वक्तव्यम् । अभिसंशीनमभिसंश्यानं वा । अवसंशीनमवसंश्यानं वा । अत्र विकल्पो यथा स्यादिति पूर्वग्रहणं स्त्यः प्रपूर्वस्येतिवत् * ॥

शृतं पाके ॥ २७ ॥

---

* अभिसंशीनमित्यारभ्य स्त्यः प्रपूर्वस्येतिवदित्यन्तःपाठः प्रक्षिप्तो वेदितव्यः, पदमञ्जर्यां तस्य दर्शनात् ।

विभाषेत्यनुवर्त्तते । श्रा पाके इत्येतस्य धातोर्ण्यन्तस्याण्यन्तस्य च पाके ऽभिधेये क्तप्रत्यये परतः शृभावो निपात्यते विभाषा । शृतं क्षीरम् । शृतं हविः । व्यवस्थितविभाषा चेयं, तेन क्षीरहविषोर्नित्यं शृभावो भवति । अन्यत्र न भवति । श्राणा यवागूः, श्रपिता यवागूरिति । यदापि वाक्ये प्रयोजके द्वितीयो णिजुत्पद्यते तदापि नेष्यते । श्रपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति । श्रातिरयमकर्मकः । कर्मकर्तृविषयस्य पचेरर्थे वर्त्तते स ण्यन्तः प्राकृतं पच्यर्थमाह । तदत्र द्वयोरपि शृतमितीष्यते । शृतं क्षीरं स्वयमेव । शृतं क्षीरं देवदत्तेन । पाकग्रहणं निपातनविषयप्रदर्शनार्थं तेन क्षीरहविषोरेव ॥

प्यायः पी ॥ २८ ॥

विभाषेत्येव । ओप्यायी वृद्धावित्यस्य धातोर्निष्ठायां विभाषा पीत्ययमादेशो भवति । पीनं मुखम् । पीनौ बाहू । पीनमुरः । इयमपि व्यवस्थितविभाषैव । तेनानुपसर्गस्य नित्यं भवति सोपसर्गस्य तु नैव भवति । प्रप्यानः । प्याप्यानश्चन्द्रमाः । आङ्पूर्वस्यान्धूधसोर्भवत्येव । आपीनोऽन्धुः । आपीनमूध इति ॥

लिड्यङोश्च ॥ २९ ॥

विभाषेति निवृत्तम् । प्यायः पीत्येतच्चशब्देनानुकृष्यते । लिटि यङि च परतः प्यायः पीत्ययमादेशो भवति । आपिप्ये । आपिप्याते । आपिप्यिरे । परत्वात् पीभावे कृते पुनःप्रसङ्गविज्ञानाद् द्विर्वचनमेरनेकाच इति यणादेशः । यङि । आपेपीयते । आपेपीयेते । आपेपीयन्ते ॥

विभाषा श्वेः ॥ ३० ॥

लिड्यङोरिति वर्त्तते संप्रसारणमिति च । लिटि यङि च श्वयतेर्धातोर्विभाषा संप्रसारणं भवति । शुशाव । शिश्वाय । शुशुवतुः । शिश्वियतुः । यङि । शोशूयते । शेश्वीयते । तदत्र यङि संप्रसारणमप्राप्तं विभाषा विधीयते लिटि तु किति यजादित्वाद् नित्यं प्राप्तं तत्सर्वत्र विकल्पेन भवतीत्युभयत्र विभाषा । यदा च धातोर्न भवति तदा लिट्यभ्यासस्योभयेषामित्यभ्यासस्यापि न भवति ॥

णौ च संश्चङोः ॥ ३१ ॥

विभाषा श्वेरिति वर्त्तते । सन्परे चङ्परे च णौ परतः श्वयतेर्धातोर्विभाषा संप्रसारणं भवति । शुशावयिषति । शिश्वाययिषति । चङि । अशूशवत् । अशिश्वयत् । संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च बलीयो भवतीति वचनादन्तरङ्गमपि वृद्ध्यादिकं संप्रसारणेन बाध्यते । कृते तु संप्रसारणे वृद्धिरावादेशश्च । तत ओः पुयण्ज्यपर इत्येतद्वचनं ज्ञापकं णौ कृतस्यानिवद्भावस्येति स्थानिवद्भावात् शुशब्दो द्विरुच्यते ॥

ह्वः संप्रसारणम् ॥ ३२ ॥

णौ च संश्चङोरिति वर्त्तते । सन्परे चङ्परे च णौ परतो ह्वः संप्रसारणं भवति । जुहावयिषति । जुहावयिषतः । जुहावयिषन्ति । अजूहवत् । अजूहवताम् । अजूहवन् । संप्रसारणस्य बलीयस्त्वात् शाच्छासाह्वाव्यावेपां युगिति प्रागेव युग्न भवति । संप्रसारणमिति वर्त्तमाने पुनः संप्रसारणमित्युक्तं विभाषेत्यस्य निवृत्त्यर्थम् । ह्वः संप्रसारणमभ्यस्तस्येत्येकयोगेन सिद्धे पृथग्योगकरणमनभ्यस्तनिमित्तप्रत्ययव्यवधाने संप्रसारणाभावज्ञापनार्थम् । ह्वायकमिच्छति ह्वायकीयति । ह्वायकीयतेः सन् जिह्वायकीयिषति ॥

अभ्यस्तस्य च ॥ ३३ ॥

ह्व इति वर्त्तते, तदभ्यस्तस्य चेत्यनेन व्यधिकरणम्, अभ्यस्तस्य यो ह्वयतिः, कश्चाभ्यस्तस्य ह्वयतिः, कारणं, तेनाभ्यस्तकारणस्य ह्वयतेः प्रागेव द्विर्वचनात्संप्रसारणं भवति । जुहाव । जोहूयते । जुहूषति ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ३४ ॥

ह्व इति वर्त्तते । छन्दसि विषये ह्वयतेर्धातोर्बहुलं संप्रसारणं भवति । इन्द्राग्नी हुवे । देवीं सरस्वतीं हुवे । ह्वञो लट्यात्मनेपदोत्तमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपो लुकि कृते संप्रसारणमुवङादेशश्च । न च भवति । ह्वयामि मरुतः शिवान् । ह्वयामि विश्वान्देवान् ॥

चायः की ॥ ३५ ॥

बहुलं छन्दसीति वर्त्तते । चायतेर्धातोश्छन्दसि विषये बहुलं कीत्ययमादेशो भवति । विधुना निचिक्युः । नान्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् । लिट्युसि रूपम् । न भवति । अग्निर्ज्योतिर्निचाय्यः ॥

अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्त्ताः ॥ ३६ ॥

छन्दसीति वर्त्तते । अपस्पृधेथामिति । स्पर्द्ध संघर्षे इत्यस्य लङि आथामि द्विर्वचनं रेफस्य संप्रसारणमकारलोपश्च निपातनात् । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम् । अस्पर्धेथामिति भाषायाम् । अपर आह । स्पर्द्धेरपपूर्वस्य लङ्य थामि संप्रसारणमकारलोपश्च निपातनात् । बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपीत्यडागमाभावः । अत्र प्रत्युदाहरणमपास्पर्द्धेथामिति भाषायाम् । आनृचुरानृहुरिति । ऋच्छ पूजायामर्ह पूजायामित्यनयोर्धात्वोर्लिट्युसि संप्रसारणमकारलोपश्च निपातनात् । ततो द्विर्वचनमुरदत्वमत आदेरिति दीर्घत्वम् । तस्मान्नुड् द्विहल इति नुडागमः । यज्ञा अर्कमानृचुः । न वसून्यानृहुः । आनर्चुः, आनर्हुरिति भाषायाम्

विच्युषे । च्युङ् गतावित्यस्य धातोर्लिटि सेशब्दे ऽभ्यासस्य संप्रसारणमनिट् च निपातनात् । विच्युषे । चुच्युविषइति भाषायाम् । तित्याज । त्यज हानावित्यस्य धातोर्लिट्यभ्यासस्य संप्रसारणं निपात्यतो तित्याज । तत्याजेति भाषायाम् । श्राता इति । श्रीञ् पाकइत्येतस्य धातोर्निष्ठायां श्राभावः । श्रातास्त इन्द्रसोमाः । श्रितमिति । तस्यैव श्रीणातेर्ह्रस्वत्वम् । सोमो गौरी अधिश्रितः । श्रिता नो गृहाः । अनयोः श्राभावश्रिभावयोर्विषयविभागमिच्छन्ति । सोमेषु बहुषु श्राभाव एव । अन्यत्र श्रिभाव इति । सोमादन्यत्र क्व चिदेकस्मिन्नपि श्राभावो दृश्यते । यदि श्रातो जुहोतन । तस्य श्राता इति बहुवचनस्याविवक्षितत्वादुपसंग्रहो द्रष्टव्यः । आशीराशीर्त्त इति । तस्यैव श्रीणातेराङ्पूर्वस्य क्विपि निष्ठायां च शीरादेशः निष्ठायाश्च नत्वाभावो निपातनात् । तामाशीरा दुहन्ति । आशीर्त्तं ऊर्ज्जम् । क्षीरैर्मध्यत आशीर्त्तः ॥

न संप्रसारणे संप्रसारणम् ॥ ३७ ॥

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न भवति । व्यध । विद्धः । व्यच । विचितः । व्येञ् । संवीतः । एकयोगलक्षणमपि संप्रसारणमत एव वचनात्प्रथमं परस्य यणः क्रियते । पूर्वस्य च प्रसक्तं प्रतिषिध्यते । संप्रसारणमिति वर्त्तमाने पुनः संप्रसारणग्रहणं विदेशस्थस्यापि संप्रसारणस्य प्रतिषेधो यथा स्यादिति । श्वयुवमघोनामतद्धिते । यूनः । यूना । संप्रसारणग्रहणसामर्थ्यादेव पूर्वस्य प्रतिषेधे वक्तव्ये सवर्णदीर्घत्वमेकादेशो न स्थानिवद्भवति । सति वा स्थानिवत्त्वे व्यवधानमेतावदाश्रयिष्यते ॥ ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्छन्दसि ॥ * ॥ ऋचि परतस्त्रेः संप्रसारणं भवति, उत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि विषये । तिस्र ऋचो यस्मिन् तत् तृचं सूक्तं, तृचं साम । ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षइति समासान्तः । छन्दसीति किम् । त्र्यृचं कर्म ॥ रयेर्मतौ बहुलम् ॥ * ॥ रयिशब्दस्य छन्दसि विषये मतौ परतो बहुलं संप्रसारणं भवति । आ रेवानेतु नो विशः । न च भवति । रयिमान्पुष्टिवर्द्धनः ॥

लिटि वयो यः ॥ ३८ ॥

न संप्रसारणमित्यनुवर्त्तते । लिटि परतो वयो यकारस्य संप्रसारणं न भवति । उवाय । ऊयतुः । ऊयुः । लिड्ग्रहणमुत्तरार्थम् ॥

वश्चास्यान्यतरस्यां किति ॥ ३९ ॥

अस्य वयो यकारस्य किति लिटि परतो वकारादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । ऊवतुः । ऊवुः । ऊयतुः । ऊयुः । कितीति किम् । उवाच । उवयिथ ॥

वेञः ॥ ४० ॥

लिटीत्यनुवर्त्तते । वेञ् तन्तुसंतानइत्यस्य धातोर्लिटि परतः संप्रसारणं न भवति । ववौ । ववतुः । ववुः । किति यजादित्वाद् धातोः प्राप्तमकित्यपि लिट्यभ्यासस्योभयेषामित्यभ्यासस्यात उभयं प्रतिषिध्यते ॥

ल्यपि च ॥ ४१ ॥

वेञ इत्यनुवर्त्तते । ल्यपि च परतो वेञः संप्रसारणं न भवति । प्रवाय । उपवाय । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

ज्यश्च ॥ ४२ ॥

ल्यपीत्येव । ज्या वयोहानावित्यस्य धातोर्ल्यपि परतः संप्रसारणं न भवति । प्रज्याय । उपज्याय ॥

व्यश्च ॥ ४३ ॥

ल्यपीत्येव । व्येञ संवरणइत्येतस्य धातोर्ल्यपि परतः संप्रसारणं न भवति । प्रव्याय । उपव्याय । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

विभाषा परेः ॥ ४४ ॥

ल्यपि च व्यश्चेत्यनुवर्त्तते । परेरुत्तरस्य व्येञित्येतस्य धातोर्ल्यपि परतो विभाषा संप्रसारणं न भवति । परिवीय यूपम् । परिव्याय । संप्रसारणे कृते परपूर्वत्वे च ह्रस्वस्येति तुक् प्राप्नोति स हल इति दीर्घत्वेन परत्वाद्बाध्यते ॥

आदेच उपदेशे ऽशिति ॥ ४५ ॥

धातो रिति वर्त्तते । एजन्तो यो धातुरुपदेशे तस्याकारादेशो भवति, शिति तु प्रत्यये न भवति । ग्लै । ग्लाता । ग्लातुम् । ग्लातव्यम् । शो । निशाता । निशातुम् । निशातव्यम् । एच इति किम् । कर्त्ता । हर्त्ता । उपदेशइति किम् । चेता । स्तोता । अशितीति किम् । ग्लायति । म्लायति । कथं जग्ले, मम्ले । नैवं विज्ञायते । शकार इद्यस्य सोयं शिदिति, किं तर्हि श एव इत् शित् । तत्र यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणइति शिदादौ प्रत्यये प्रतिषेधः । एश् शकारान्तो भवति । अशितीति च प्रसज्यप्रतिषेधोयम् । तेनैतदात्वमनैमित्तिकं प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेर्भवतीति । सुग्लः सुम्लः इति । आतश्चोपसर्गइति कप्रत्ययः । सुग्लानः सुम्लान इत्यातो युजित्येवमादि सिद्धं भवतीति । आकाराधिकारस्त्वयं नित्यं स्मयतेरिति यावत् ॥

न व्यो लिटि ॥ ४६ ॥

व्येञ् इत्येतस्य धातोर्लिटि परत आकारादेशो न भवति । संविव्याय । संविव्ययिथ । लिट्यभ्यासस्योभयेषामित्यभ्यासस्य संप्रसारणम् । णल्यचो ञ्णितीति वृद्धिः ॥

स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ ४७ ॥

आदेच इति वर्त्तते । स्फुर स्फुल चलनइत्येतयोर्द्धात्वोरेचः स्थाने घञि परत आकारादेशो भवति । विस्फारः । विस्फालः । विष्फारः । विष्फालः । स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्य इति वा षत्वम् ॥

क्रीङ्जीनां णौ ॥ ४८ ॥

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अध्ययने, जि जये इत्येतेषां धातूनामेचः स्थाने णौ परत आकारादेशो भवति । क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ॥

सिध्यतेरपारलौकिके ॥ ४९ ॥

णाविति वर्त्तते । षिधु हिंसासंराद्ध्योरित्यस्य धातोरपारलौकिकेऽर्थे वर्त्तमानस्यैचः स्थाने णौ परत आकारादेशो भवति । अन्नं साधयति । ग्रामं साधयति । अपारलौकिकइति किम् । तपस्तापसं सेधयति । स्वान्येवैनं कर्माणि सेधयन्ति । अत्र हि सिध्यतिः पारलौकिके ज्ञानविशेषे वर्त्तते । तापसः सिध्यति । ज्ञानविशेषमासादयति । तं तपः प्रयुङ्क्ते । स च ज्ञानविशेषउत्पन्नः परलोके जन्मान्तरे फलमभ्युदयलक्षणमुपसंहरन् परलोकप्रयोजनो भवति । इह कस्मान्न भवति । अन्नं साधयति । ब्राह्मणेभ्यो दास्यामीति । सिधेरत्रार्थो निष्पत्तिः । तस्याः प्रयोजनमन्नम् । तस्य यद्दानं तत्पारलौकिकम्, न पुनः सिद्धिरेवेति न आत्वं पर्युदस्यते । साक्षात्परलोकप्रयोजने च सिध्यर्थे कृतावकाशं वचनमेवं विषयं नावगाहते । सिध्यतेरिति श्यना निर्देशः षिधु गत्यामित्यस्य भौवादिकस्य निवृत्त्यर्थः ॥

मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ॥ ५० ॥

आदेच उपदेशइति वर्त्तते । मीञ् हिंसायाम्, डुमिञ् प्रक्षेपणे, दीङ् क्षय, इत्येतेषां धातूनां ल्यपि विषये चकारादेचश्च विषये उपदेशएव प्राक्प्रत्ययोत्पत्तेरलोन्त्यस्य स्थाने आकारादेशो भवति । प्रमाता । प्रमातव्यम् । प्रमातुम् । प्रमाय । निमाता । निमातुम् । निमातव्यम् । निमाय । उपदाता । उपदातव्यम् । उपदातुम् । उपदाय । उपदेशएवात्वविधानादिवर्णान्तलक्षणः प्रत्ययो न भवति । आकारान्तलक्षणश्च भवति । उपदायो वर्त्तते । ईषदुपदानमिति घञ्युचौ भवतः ॥

विभाषा लीयतेः ॥ ५१ ॥

ल्यपीति वर्त्तते, आदेच उपदेशइति च । लीङ श्लेषणइति दिवादिः ली श्लेषणइति क्र्यादिस्तयोरुभयोरपि यका निर्देशः स्मर्यते । लीयतेर्द्धातोर्ल्यपि च एचश्च विषये उपदेशएवालोन्त्यस्य स्थाने विभाषा आकारादेशो भवति । विलाता । विलातुम् । विलातव्यम् । विलाय । विलेता । विलेतुम् ।

विलेतव्यम् । विलीय ॥ निमीमिलियां खलचोः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ ईषत्प्रमयः । प्रमयो वर्त्तते । ईषन्निमयः । निमयो वर्त्तते । ईषद्विलयः । विलयो वर्त्तते । अत्र लियो व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात्सिद्धम् । एवं च प्रलम्भनशालीनीकरणयोश्च णौ नित्यमात्वं भवति । कस्त्वामुल्लापयते । श्येनो वर्त्तिकामुल्लापयते ॥

खिदेश्छन्दसि ॥ ५२ ॥

विभाषेति वर्त्तते । खिद दैन्यइत्यस्य धातोरेचः स्थाने छन्दसि विषये विभाषा आकार आदेशो भवति । चित्तं चिखाद । चित्तं चिखेद । छन्दसीति । किम् । चित्तं खेदयति ॥

अपगुरो णमुलि ॥ ५३ ॥

गुरी उद्यमनइत्यस्य धातोरपपूर्वस्य णमुलि परत एचः स्थाने विभाषा आकार आदेशो भवति । अपगारमपगारम् । अपगोरमपगोरम् । आभीक्ष्ण्ये णमुल्चेति णमुल् । अस्यपगारं युध्यन्ते । अस्यपगोरं युध्यन्तइत्यत्र द्वितीयायां चेति णमुल् ॥

विभाषा ५१ चिस्फुरोर्णौ ॥ ५४ ॥

चिञ् स्फुर इत्येतयोर्द्धात्वोर्णौ परत एचः स्थाने विभाषा आकारादेशो भवति । चापयति । चाययति । स्फारयति । स्फोरयति ॥

विभाषा ५१ प्रजने वीयतेः ॥ ५५ ॥

णाविति वर्त्तते । वी गतिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु इत्यस्य धातोः प्रजने वर्त्तमानस्य णौ परतो विभाषा आकारादेशो भवति । पुरोवातो गाः प्रवापयति । पुरोवातो गाः प्रवाययति । गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः । प्रजनो हि जन्मन उपक्रमो गर्भग्रहणम् ॥

बिभेतेर्हेतुभये ॥ ५६ ॥

णाविति वर्त्तते विभाषेति च । हेतुरिह पारिभाषिकः स्वतन्त्रस्य प्रयोजकस्ततो यद्भयम्, स यस्य भयस्य साक्षाद्धेतुः, तद्भयं हेतुभयम् । तत्र वर्त्तमानस्य ञिभी भयइत्यस्य धातोर्णौ परतो विभाषा आकारादेशो भवति । मुण्डो भापयते । मुण्डो भीषयते । जटिलो भापयते । जटिलो भीषयते । भीस्म्योर्हेतुभयइत्यात्मनेपदम् । भियो हेतुभये षुक् १।३।६८ से चात्वपक्षे न भवति । ञिभियोरीकारप्रश्लेषनिर्देशादीकारान्तस्य भियः षुग्विधीयते । हेतुभयइति किम् । कुञ्चिकयैनं भाययति । अत्र हि कुञ्चिकातो भयं कारणाच्च हेतोर्देवदत्तात् ॥

नित्यं स्मयतेः ॥ ५७ ॥

णाविति वर्त्तते, हेतुभयइति च । नित्यग्रहणाद्विभाषेति निवृत्तम् ।

स्मिङ् ईषद्धसनइत्यस्य धातोर्हेतुभयेर्थे णौ परतो नित्यमाकारादेशो भवति। मुण्डो विस्मापयते। जटिलो विस्मापयते। भयइति किम्। कुञ्चिकयैनं विस्मापयति। भयशब्देन हेत्वर्थसामान्यादिह स्मयतेरर्थो ऽभिधीयते। नहि मुख्ये भये स्मयतेर्वृत्तिरस्ति॥

सृजिदृशोर्झल्यमकिति॥ ५८॥

सृज विसर्गे, दृशिर् प्रेक्षणे, इत्येतयोर्धात्वोर्झलादावकिति प्रत्यये परतो ऽमागमो भवति। स्रष्टा। स्रष्टुम्। स्रष्टव्यम्। द्रष्टा। द्रष्टुम्। द्रष्टव्यम्। लघूपधगुणापवादोयममागमः। अस्राक्षीत्। अद्राक्षीत्। सिचि वृद्धिरमि कृते भवति पूर्वं तु बाध्यते। झलीति किम्। सर्जनम्। दर्शनम्। अकितीति किम्। सृष्टः। दृष्टः। धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानादिह न भवति। रज्जुसृड्भ्यां देवदृग्भ्यामिति॥

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्॥ ५९॥

उपदेशइति वर्त्तते, झल्यमकितीति च। उपदेशे ऽनुदात्तस्य धातोर्ऋकारोपधस्य झलादावकिति प्रत्यये परतो ऽन्यतरस्याममागमो भवति। त्रप्ता। तर्पिता। तर्प्ता। द्रप्ता। दर्प्ता। दर्पिता। तृप प्रीणने दृप हर्षमोचनयोः, इत्येतौ रधादी धातू तयोरिडागमो रधादिभ्यश्चेति विकल्प्यते। अनुदात्तोपदेशः पुनरमर्थ एव। अनुदात्तस्येति किम्। वर्ढा। वर्ढुम्। वर्ढव्यम्। वृहू उद्यमनइत्ययमुदात्तोपदेश ऊदित्वाच्चास्येड् विकल्प्यते। ऋदुपधस्येति किम्। भेत्ता। छेत्ता। झलीत्येव। तर्पणम्। दर्पणम्। अकितीत्येव। तृप्तः। दृप्तः॥

शीर्षंश्छन्दसि॥ ६०॥

शीर्षन्निति शब्दान्तरं शिरःशब्देन समानार्थं छन्दसि विषये निपात्यते न पुनरयमादेशः शिरःशब्दस्य सोपि हि छन्दसि प्रयुज्यत एव। शीर्ष्णो हि तत्र सोमं क्रीतं हरन्ति। यत्ते शीर्ष्णो दौर्भाग्यम्। छन्दसीति किम्। शिरः॥

ये च तद्धिते॥ ६१॥

शीर्षन्निति वर्त्तते। आदेशोयमिष्यते स कथं तद्धितइति हि परं निमित्तमुपादीयते स तदनुरूपां प्रकृतिं शिरःशब्दमाक्षिपति। यकारादौ तद्धिते परतः शिरःशब्दस्य शीर्षन्नादेशो भवति। शीर्षण्यो हि मुख्यो भवति। शीर्षण्यः स्वरः। शिरसि भव इति शरीरावयवाच्चेति यत्। ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः। तद्धितइति किम्। शिर इच्छति शिरस्यति॥ वा केशेषु॥ *॥ शिरसः शीर्षन्नादेशो वक्तव्यः। शीर्षण्याः केशाः। शिरस्याः केशाः॥

अचि शीर्षः॥ ६२॥

अजादौ तद्धिते शिरसः शीर्षशब्द आदेशो भवति । हस्तिशिरसो ऽपत्यं, हास्तिशीर्षिः * । बाह्वादिभ्यश्चेति इञ् । स्थूलशिरस इदं स्थौलशीर्षम् । शीर्षन्भावे हि अचीति प्रकृतिभावः स्यात् । हास्तिशीर्षिशब्दात् स्त्रियामिञो ऽणिञोरनार्षयोः ष्यङादेशे कृते शीर्षस्य शिरःशब्दग्रहणेन ग्रहणात् शीर्षंचादेशः प्राप्नोति । तत्र प्रकृतिभावे सति हास्तिशीर्षण्येत्यनिष्टं रूपं स्यात् । इष्यते तु हास्तिशीर्ष्येति तत्कथं, कर्त्तव्योऽत्र यत्नः । अणिञन्ताद् वा परः प्रत्ययः ष्यङाश्रयितव्यस्तत्र यस्येतिलोपस्य स्थानिवद्भावाद् व्यवधानम् ॥

पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ॥ ६३ ॥

पाद दन्त नासिका मास हृदय निशा असृज् यूप दोष यकृत् शकृत् उदक आसन इत्येतेषां शब्दानां स्थाने शस्प्रभृतिप्रत्ययेषु परतः पद् दत् नस् मास् हृत् निश् असन् यषन् दोषन् यकन् शकन् उदन् आसन् इत्येते आदेशा यथासंख्यं भवन्ति । पद् । निपदश्चतुरो जहि । पदा वर्त्तय गोदुहम् । पादस्य पत् । दत् । या दतो धावति तस्यै श्यावदन् । नस् । सूकरस्त्वखनन्नसा । मास् । मासि त्वा पश्यामि चक्षुषा । हृद् । हृदा पूतेन मनसा जातवेदसम् । निश् । अमावास्यायां निशि यजेत । असन् । असिक्तोस्नावरोहति । यूषन् । या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । दोषन् । यत्ते दोष्णो दौर्भाग्यम् । यकृत् । यक्नोवद्यति । शकन् । शक्नोवद्यति उदत् । उद्नो दिव्यस्य नावा ते । आसन् । आसनि किं लभे मधूनि । शस्प्रभृतिष्विति किम् । पादौ ते प्रतिपीड्यौ नासिके ते कृशे । केचिदत्र छन्दसीत्यनुवर्त्तयन्ति । अपरे पुनरविशेषे णेच्छन्ति । तथाहि । भाषायामपि पदादयः शब्दाः प्रयुज्यन्ते ।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥

इत्येवमादयः । अन्यतरस्यामित्येतदनुवर्त्तयन्ति । तेन पादादयोपि प्रयुज्यन्ते । शस्प्रभृतिष्विति प्रकारे प्रभृतिशब्द इति । शला दोषणी इत्यत्रापि दोषन्नादेशो भवति ॥ पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ मांस पृतना सानु इत्येतेषां स्थाने यथासंख्यं मांस् पृत् स्नु इत्येते आदेशा भवन्ति । मांस्पचन्या उखायाः । मांसपचन्या इति प्राप्ते । पृत्सु मर्त्यम् । पृतनासु मर्त्यमिति । प्राप्ते । न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु । अधिसानुष्विति प्राप्ते ॥ नस् नासिकाया यत्तस्क्षुद्रेषु ॥ * ॥ नासिकाया नस्भावो वक्तव्यो यत् तस् क्षुद्र इत्येतेषु परतः । नस्यम् । नस्तः । नस्क्षुद्रः ॥ यति वर्णनगरयोर्नेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ नासिक्यो वर्णः । नासिक्यं नगरम् ॥

---

* पैलुशीर्षिरित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

धात्वादेः षः सः ॥ ६४ ॥

धातोरादेः षकारस्य स्थाने सकारादेशो भवति । षह । सहते । षिच । सिञ्चति । धातुग्रहणं किम् । षोडश । षडिकः । षण्डः । आदेरिति किम् । कर्षति । क्षपति । आदेशप्रत्यययोरित्यत्र षत्वव्यवस्थार्थं षादयो धातवः के चिदुपदिष्टाः । के पुनस्ते ये तथा पठ्यन्ते । अथवा लक्षणं क्रियते । अज्दन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः स्मिस्विदिस्वदिस्विञ्जिस्वपितयश्च । मकारवकारयोरनज्दन्त्यत्वान्न भवतीति अप्राप्ते विधानम् । * सृपिसृजिस्तृस्त्यासेकृसृवर्जम् ॥ सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ षोडीयति । षण्डीयति । ष्वष्कते । ष्ठिवु इत्यस्य द्वितीयस्थकारष्ठकारश्चेष्यते । तेन तेष्ठीव्यते टेष्ठीव्यते इति चाभ्यासरूपं द्विधा भवति ॥

णो नः ॥ ६५ ॥

धातोरादेरित्यनुवर्त्तते । धातोरादेर्णकारस्य नकार आदेशो भवति । णीञ् । नयति । णम । नमति । णह । नह्यति । धात्वादेरित्येव । अणति । सुब्धातोरयमपि नेष्यते । णकारमिच्छति, णकारीयति । उपसर्गादसमासेपि णोपदेशस्येत्यत्र णत्वविधेर्व्यवस्थार्थं णादयो धातवः के चिदुपदिश्यन्ते । के पुनस्ते । ये तथा पठ्यन्ते अथ वा लक्षणं क्रियते । सर्वे णादयो णोपदेशाः । नृनन्दिनर्दिनक्कनाटिनाथृनाधृवर्जम् ॥

लोपो व्योर्वलि ॥ ६६ ॥

धातोरिति प्रकृतं यत् तद् धात्वादेरिति पुनर्धातुग्रहणान्निवृत्तम् । तेन धातोरधातोश्च वकारयकारयोर्वलि परतो लोपो भवति । दिव् । दिदिवान् । दिदिवांसौ । दिदिवांसः । ऊयी । ऊतम् । क्नूयी । क्नूतम् । गोधाया ढ्रक् । गौधेरः । पचेरन् । यजेरन् । वकारस्य । जीवेरदानुक् । जीरदानुः । स्रिवेः । आस्रेमाणम् । उणादयो बहुलमिति बहुलवचनाच्छ्वोः शूडनुनासिके चेति ऊठ् न भवति । वलीति किम् । ऊय्यते । क्नूय्यते । पूर्वं लोपग्रहणं किम् । वेरपृक्तलोपात्पूर्वं वलि लोपो यथा स्यात् । कण्डूयतेः क्विप् । कण्डूः । लोलूयतेः । लोलूः । व्रश्चादीनामुपदेशसामर्थ्याद् वलि लोपो न भवति । वृश्चति वव्रश्चेत्यत्रापि हि संप्रसारणहलादिःशेषयोर्बहिरङ्गत्वात्प्राप्नोति ॥

वेरपृक्तस्य ॥ ६७ ॥

लोप इति वर्त्तते । वेरिति क्विबादयो विशेषाननुबन्धानुत्सृज्य सामान्येन गृह्यन्ते । वेरपृक्तस्य लोपो भवति । ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् । ब्रह्महा ।

* मकारवकारयोरित्यारभ्य विधानमित्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

भ्रूणहा । स्पृशोमुदके क्विन् । घृतस्पृक् । तैलस्पृक् । भजो ण्विः । अर्द्धभाक् पादभाक् । तुरीयभाक् । अपृक्तस्येति किम् । वृद्भ्यां विन् । दर्विः । कृगृशॄम्र जागृभ्यः क्विः । जागृविः ॥

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ६८ ॥

लोप इति वर्त्तते । तदिह लौकिकेनार्थेनार्थवत् कर्मसाधनं द्रष्टव्यम् । लुप्यतइति लोपः । हलन्ताद् ङ्यन्तादाबन्ताच्च दीर्घात्परं सु ति सि इत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते । हलन्तात् सुलोपः । राजा । तक्षा । उखास्रत् । पर्णध्वत् । ङ्यन्तात् । कुमारी । गौरी । शार्ङ्गरवी । आबन्तात् । खट्वा । बहुराजा । कारीषगन्ध्या । हलन्तादेव तिलोपः सिलोपश्च । तत्र तिलोपस्तावत् । अबिभर्भवान् । भृञो लङि तिपि श्लौ भृञामित् इत्यभ्यासस्येत्त्वम् । अजागर्भवान् । सिलोपः । अभिनोऽत्र । अच्छिनोऽत्र । दस्य रेफः । हल्ङ्याब्भ्य इति किम् । ग्रामणीः । सेनानीः । दीर्घादिति किम् । निष्कौशाम्बिः । अतिखट्वः । सुतिसीति किम् । अभैत्सीत् । तिपा सहचरितस्य सिशब्दस्य ग्रहणात्सिचो ग्रहणं नास्ति । अपृक्तमिति किम् । भिनत्ति छिनत्ति * । हलिति किम् । बिभेद । चिच्छेद । अथ किमर्थं हलन्तात्सुतिसीनां लोपो विधीयते संयोगान्तलोपेनैव सिद्धम् । न सिद्ध्यति राजा तक्षेत्यत्र संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वाच्चलोपो न स्यात् । उखास्रत् पर्णध्वदित्यत्रापदान्तत्वाद्दत्वं च न स्यात् । अभिनोऽत्रेत्यत्रातो रोरप्लुतादप्लुतइत्युत्वं न स्यात् । अबिभर्भवानित्यत्र तु रात्सस्येति नियमाल्लोप एव न स्यात् ॥

संयोगान्तस्य लोपे हि नलोपादिर्न सिद्ध्यति ।
रात्तु तेनैव लोपः स्याद्धलस्तस्माद्विधीयते ॥

एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः ॥ ६९ ॥

लोप इति वर्त्तते, हलिति च । अपृक्तमिति नाधिक्रियते । तथा च पूर्वसूत्रे पुनरपृक्तग्रहणं कृतम् । एङन्तात्प्रातिपदिकाद् ह्रस्वान्ताच्च परो हल्लुप्यते स चेत्संबुद्धेर्भवति । एङन्तात् । हे अग्ने । हे वायो । ह्रस्वान्तात् । हे देवदत्त । हे नदि । हे वधु । हे कुण्ड । कुण्डशब्दादतोमित्यम् । अमि पूर्वइति पूर्वत्वे कृते हल्मात्रस्य मकारस्य लोपः । हे कतरदित्यत्र ड्डितरमड्डादेशस्तत्र टिलोपे सति ह्रस्वाभावान्नास्ति संबुद्धिलोपः । एङ्ग्रहणं क्रियते संबुद्धिगुणबलीयस्त्वात् ॥

शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ ७० ॥

शि इत्येतस्य बहुलं छन्दसि विषये लोपो भवति । या चेत्रा । या वना । यानि चेत्राणि । यानि वनानि ॥

---

* बिभर्तीत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥ ७१ ॥

पिति कृति परतो ह्रस्वस्य तुगागमो भवति । अग्निचित् । सोमसुत् । प्रकृत्य । प्रहृत्य । उपस्तुत्य । ह्रस्वस्येति किम् । आलूय । ग्रामणीः । पितीति किम् । कृतम् । हृतम् । कृतीति किम् । पटुतरः । पटुतमः । ग्रामणिकुलमित्यत्र ह्रस्वस्य बहिरङ्गस्यासिद्धत्वात् तुग्न भवति ॥

संहितायाम् ॥ ७२ ॥

अधिकारो ऽयमनुदात्तं पदमेकवर्जमिति यावत् । प्रागेतस्मात्सूत्रादित उत्तरं यद्वक्ष्यामः संहितायामित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । इको यणचि । दध्यत्र । मध्वत्र । संहितायामिति किम् । दधि अत्र । मधु अत्र ॥

छे च ॥ ७३ ॥

ह्रस्वस्य तुगिति वर्त्तते । छकारे परतः संहितायां विषये ह्रस्वस्य तुगागमो भवति । इच्छति । गच्छति । ह्रस्व एवात्रागमी न त्वदन्तः । तेन विच्छिदतुश्चिच्छिदुरित्यत्र तुगभ्यासस्य ग्रहणेन न गृह्यत इति हलादिः शेषेण न निवर्त्यते । नावयवावयवः समुदायावयवो भवतीति ॥

आङ्माङोश्च ॥ ७४ ॥

तुगित्यनुवर्त्तते, छइति च । आङो ङित ईषदादिषु चतुर्ष्वर्थेषु वर्त्तमानस्य माङश्च प्रतिषेधवचनस्य छकारे परतस्तुगागमो भवति । पदान्ताद्वेति विकल्पे प्राप्ते नित्यं तुगागमो भवति । ईषदर्थे । ईषच्छाया । आच्छाया । क्रियायोगे । आच्छादयति । मर्यादाभिविध्योः । आच्छायायाः । आच्छायम् । माङः खल्वपि । माच्छैत्सीत् । माच्छिदत् । ङिद्विशिष्टग्रहणं किम् । आछाया । आच्छाया । प्रमाछन्दः । प्रमाच्छन्दः ॥

दीर्घात् ॥ ७५ ॥

छे तुगिति वर्त्तते । दीर्घात्परो यश्छकारस्तस्मिन्पूर्वस्य तस्यैव दीर्घस्य तुगागमो भवति । ह्रीच्छति । म्लेच्छति । अपचाच्छायते । विचाच्छायते ॥

पदान्ताद्वा ॥ ७६ ॥

दीर्घाच्छे तुगिति वर्त्तते । पदान्ताद्दीर्घात्परो यश्छकारस्तस्मिन्पूर्वस्य तस्यैव दीर्घस्य पूर्वेण नित्यं प्राप्तो वा तुगागमो भवति । कुटीच्छाया । कुटीछाया । कुवलीच्छाया । कुवलीछाया ॥ विश्वजनादीनां छन्दसि वा तुगागमो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ विश्वजनच्छत्रम् । विश्वजनछत्रम् । नच्छायां कुर्वोपराम् । नछायां कुर्वोपराम् ॥

इको यणचि ॥ ७७ ॥

अचि परत इको यणादेशो भवति । दध्यत्र । मध्वत्र । कर्त्रर्थम् । हर्त्रर्थम् । लाकृतिः ॥ इकः प्लुतपूर्वस्य सवर्णदीर्घबाधनार्थं यणादेशो वक्तव्यः ॥ * ॥ भो३ इ इन्द्रम् । भो३ यिन्द्रम् । अचीति चायमधिकारः संप्रसारणाच्चेति यावत् ॥

एचो ऽयवायावः ॥ ७८ ॥

एचः स्थाने ऽचि परतो ऽय् अव् आय् आव् इत्येते आदेशा यथासंख्यं भवन्ति । चयनम् । लवनम् । चायकः । लावकः । कयेते । व्ययेते । यावत्रणाद्धि ॥

वान्तो यि प्रत्यये ॥ ७९ ॥

योयमेचः स्थाने वान्तादेश ओकारस्य अव् औकारस्याव् स यकारादौ प्रत्यये परतो भवति । बाभ्रव्यः । माण्डव्यः । शङ्कव्यं दारु । पिचव्यः कार्पासः । नाव्यो ह्रदः । वान्त इति किम् । रायमिच्छति रैयति । यीति किम् । गोभ्याम् । नौभ्याम् । प्रत्ययइति किम् । गोयानम् । नौयानम् ॥ गोर्यूतौ छन्दसि ॥ * ॥ गोशब्दस्य यूतौ परतश्छन्दसि विषये वान्तादेशो वक्तव्यः । आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्युतिमुक्षतम् । छन्दसीति किम् । गोयूतिः ॥ अध्वपरिमाणे च ॥ * ॥ गोर्यूतौ परतो वान्तादेशो वक्तव्यः । गव्यूतिमात्रमध्वानं गतः ॥

धातोस्तन्निमित्तस्यैव ॥ ८० ॥

एच इति वर्त्तते । वान्तो यि प्रत्ययइति च । धातोर्य एच् तन्निमित्तो यकारादिप्रत्ययनिमित्तस्तस्य यकारादौ प्रत्यये परतो वान्तादेशो भवति । लव्यम् । पव्यम् । अवश्यलाव्यम् । अवश्यापाव्यम् । धातोरिति किम् । प्रातिपदिकस्य नियमो मा भूत् । तत्र को दोषः । बाभ्रव्य इत्यत्रैव स्यात् । इह न स्याद् गव्यं नाव्यमिति । तन्निमित्तस्येति किम् । अतन्निमित्तस्य मा भूत् । ओयते । औयत । लौयमानिः । पौयमानिः । अत इञ् । एवकारकरणं किम् । धात्ववधारणं यथा स्यात् तन्निमित्तावधारणं मा भूदिति । तन्निमित्तस्य हि धातोश्चाधातोश्च भवति । बाभ्रव्यः । अवश्यलाव्यम् । लव्यम् ॥

क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ॥ ८१ ॥

क्षि जि इत्येतयोर्धात्वोर्यति प्रत्ययो परतः शक्यार्थे गम्यमाने एकारस्यायादेशो निपात्यते । शक्यः क्षेतुं, क्षय्यः । शक्यो जेतुं, जय्यः । शक्यार्थइति किम् । क्षेयं पापम् । जेयो वृषलः ॥

क्रय्यस्तदर्थे ॥ ८२ ॥

क्रीणातेर्धातोस्तदर्थे क्रयार्थं यत्तस्मिन्नभिधेये यति प्रत्यये परतो ऽयादेशो निपात्यते । क्रय्या गौः । क्रय्यः कम्बलः । क्रयार्थं यः प्रसारितः स उच्यते । तदर्थइति किम् । क्रेयं नो धान्यं न चास्ति क्रय्यम् ॥

भय्यप्रवय्ये चच्छन्दसि ॥ ८३ ॥

बिभेतेर्धातोः प्रपूर्वस्य च वी इत्येतस्य यति प्रत्यये परतश्छन्दसि विषये ऽयादेशो निपात्यते । भय्यं किलासीत् । वत्सतरी प्रवय्या । भय्येति कृत्यल्युटो बहुलमित्यपादाने यत्प्रत्ययः । बिभेत्यस्मादिति भय्यम् । प्रवय्या इति स्त्रिया-मेव निपातनम् । अन्यत्र प्रवेयमित्येव भवति । छन्दसीति किम् । भेयम् । प्रवे-यम् ॥ ह्रदय्या आप उपसंख्यानम् ॥ * ॥ ह्रदय्या आपः । ह्रदे भवा, भवे छन्दसीति यत्प्रत्ययः ॥

एकः पूर्वपरयोः ॥ ८४ ॥

अधिकारोयम् । ख्यत्यात्परस्येति प्रागेतस्मात्सूत्रादित उत्तरं यद्वक्ष्याम-स्तत्र पूर्वस्य परस्य द्वयोरपि स्थाने एकादेशो भवतीत्येतद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । आद्गुण इति । तत्राचि पूर्वस्यावर्णाच्च परस्य स्थाने एको गुणो भवति । खट्वे-न्द्रः मालेन्द्रः । पूर्वपरग्रहणं द्वयोरपि युगपदादेशप्रतिपत्त्यर्थम् । एकैकस्यैव हि स्यात् । नोभे सप्तमीपञ्चम्यौ युगपत्प्रकल्पिके भवत इति । एकग्रहणं पृथगा-देशनिवृत्त्यर्थं स्थानिभेदाद्धि भिचादिषु नत्ववद्द्वावादेशौ स्याताम् ॥

अन्तादिवच्च ॥ ८५ ॥

एक इति वर्त्तते, पूर्वपरयोरिति च । एकः पूर्वपरयोरिति योयमेकादेशो विधीयते स पूर्वस्यान्तवद्भवति, परस्यादिवद्भवति । यथा तस्यान्त आदिर्वा तदन्तर्भूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते तद्वदेकादेशो ऽपि तद्ग्रहणेन गृह्यतइत्येषो ऽतिदे-शार्थः । ब्रह्मबन्धूरित्यत्र ब्रह्मबन्ध्विति प्रातिपदिकम्, ऊङित्यप्रातिपदिकं, तयोः प्रातिपदिकाप्रातिपदिकयोर्य एकादेशः स प्रातिपदिकस्यान्तवद्भवति । यथा शक्यते कर्त्तुं ङ्याप्प्रातिपदिकादिति स्वादिविधिः । वृक्षावित्यत्र सुबोकारः असुबकारः, तयोः सुबसुपोरेकादेशः सुप आदिवद्भवति । यथा शक्यते वक्तुं सुबन्तं पदमिति । वर्णाश्रयविधावयमन्तादिवद्भावो नेष्यते, तथाहि खट्वाभिरि-त्यत्रान्तवद्भावाभावादतो भिस ऐसिति न भवति । हूयतेर्जुहावेति संप्रसारणपूर्व-त्वस्यादिवद्भावाभावादात औ णल इति न भवति । अस्यै अश्वः, अस्या अश्व इति वृद्धिरेचीति वृद्धिरेङः पदान्तादतीत्यत्र विधावादिवच्च भवति । पूर्वपरसमुदाय एकादेशस्य स्थानी, स हि तेन निवर्त्यते, तत्रावयवयोरानुमानिकं स्थानित्व-मिति तदाश्रयं कार्यं स्थानिवद्भावादप्राप्तमित्यन्तादिवद्भावो विधीयते ॥

षत्वतुकोरसिद्धः ॥ ८६ ॥

षत्वे तुकि च कर्तव्ये एकादेशो ऽसिद्धो भवति, सिद्धकार्यं न करोती-त्यर्थः । असिद्धवचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थमुत्सर्गलक्षणभावार्थं च । कोसिचद्

इत्यत्र एङः पदान्तादतीत्येकादेशस्य परं प्रत्यादिवत्त्वादपदादेरिण उत्तरस्यादेशस्य । सकारस्य षत्वं प्राप्नोति, तदसिद्धत्वान्न भवति । कोस्य योस्य कोस्मै योस्मै इत्येकादेशस्यासिद्धत्वादिण इति षत्वं न भवति । तुग्विधौ । अधीत्य प्रेत्येत्यत्रैकादेशस्यासिद्धत्वात् ह्रस्वस्य पिति कृति तुगिति तुग्भवति ॥ संप्रसारणङीट्सु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ संप्रसारणे । ब्रह्महूसु । परिवीषु । संप्रसारणपूर्वत्वस्यासिद्धत्वात्षत्वं न प्राप्नोति । ङौ । वृचेच्छत्रम् । वृचे छत्रम् । इटि । अपचेच्छत्रम् । अपचे छत्रम् । आद्गुणस्यासिद्धत्वाद् ह्रस्वलक्षणो नित्योऽत्र तुक् प्राप्नोति, दीर्घात्पदान्ताद्वेति तुग्विकल्प इष्यते ॥

आद्गुणः ॥ ८७ ॥

अचीत्यनुवर्तते । अवर्णात्परो योऽच् अचि च पूर्वो योऽवर्णस्तयोः पूर्वपरयोरवर्णाचोः स्थाने एको गुण आदेशो भवति । देवेन्द्रम् । खट्वेन्द्रः । मालेन्द्रः । तवेहते । खट्वेहते । तवोदकम् । खट्वोदकम् । तवर्श्यः । खट्वर्श्यः । तवल्कारः । खट्वल्कारः । ऌकारस्य स्थाने योऽण् तस्य लपरत्वमिष्यते ॥

वृद्धिरेचि ॥ ८८ ॥

आदिति वर्तते । अवर्णात्परो य एच् एचि च पूर्वो योऽवर्णस्तयोः पूर्वपरयोरवर्णैचोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति । आद्गुणस्यापवादः । ब्रह्मैडका । खट्वैडका । ब्रह्मैतिकायनः । खट्वैतिकायनः । ब्रह्मौदनः । खट्वौदनः । ब्रह्मौपगवः । खट्वौपगवः ॥

एत्येधत्यूठ्सु ॥ ८९ ॥

वृद्धिरेचीति वर्तते, आदिति च । तदेतदेज्ग्रहणमेतेरेव विशेषणं न पुनरेधतेरव्यभिचारादूठश्चासंभवात् । इण् गतावित्येतस्मिन्धातावेचि एध वृद्धावित्येतस्मिन् ऊठि च पूर्वं यदवर्णं ततश्च परो योऽच् तयोः पूर्वपरयोरवर्णाचोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति । उपैति । उपैषि । उपैमि । उपैधते । प्रैधते । प्रष्ठौहः । प्रष्ठौहा । प्रष्ठौहे । उठ्याद्गुणापवादो वृद्धिर्विधीयते । एत्येधत्योस्त्वेङिपररूपापवादः । आमाङोश्चेत्येतत्तु पररूपं न बाध्यते, येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवतीति, पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्तइति वा । तेनेह न भवति । उप । आ इत उपेत इति । एचात्येच । उप इत, उपेतः ॥ अक्षादूहिन्यां वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ अक्षौहिणी ॥ स्वादीरेरिणयोर्वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ स्वैरम् । स्वैरिणी * ॥ प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः † ॥ ऋते च

---

* स्वादीरेरिणोर्वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ स्वैरः । स्वैरी । पा० २ ।

† अत्र वार्तिके ऊहग्रहणं प्रौह इति तदुदाहरणं च पुस्तकान्तरे ऽधिके ।

तृतीयासमासे ऽवर्णाद् वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ सुखेन ऋतः, सुखार्तः । दुःखेन ऋतो, दुःखार्तः । ऋत इति किम् । सुखेन इतः सुखेतः । तृतीयेति किम् । परमर्तः । समासइति किम् । सुखेनर्तः ॥ प्रवत्सतरकम्बलवसनानामृणे वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ प्रार्णम् । वत्सतर । वत्सतरार्णम् । कम्बल । कम्बलार्णम् । वसन । वसनार्णम् ॥ ऋणदशाभ्यां वृद्धिर्वक्तव्या ॥ * ॥ ऋणार्णम् । दशार्णम् ॥

आटश्च ॥ ९० ॥

एचीति निवृत्तम् । अचीत्यनुवर्त्तते । आटः परो यो ऽच् अचि च पूर्वो य आट् तयोः पूर्वपरयोराडचोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति । ऐक्षिष्ट । ऐक्षत । ऐक्षिष्यत । औभीत् । आर्द्धीत् । औब्जीत् । चकारो ऽधिकविधानार्थ उस्योमाङोश्च पररूपबाधनार्थः । औक्षीयत् । औकारीयत् । आ ऊढा ओढा, तामैच्छत्, औढीयत् ॥

उपसर्गादृति धातौ ॥ ९१ ॥

आदित्येव । अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परतः पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति । आद्गुणापवादः । उपार्च्छति । प्रार्च्छति । उपार्ध्नोति । उपसर्गादिति किम् । खट्वर्च्छति । मालर्च्छति । प्रगता ऋच्छका अस्माद्देशात्, प्रर्च्छको देशः । यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञका इति । ऋतीति किम् । उप इत, उपेतः । तपरकरणं किम् । उप ऋकारीयति । उपर्कारीयति । वा सुप्यापिशलेरिति विकल्पः स्यात् । उपसर्गग्रहणादेव धातुग्रहणे सिद्धे धातुग्रहणं शाकलनिवृत्त्यर्थम् । ऋत्यक इति हि शाकल्यस्य प्रकृतिभावः प्राप्नोति ॥

वा सुप्यापिशलेः ॥ ९२ ॥

आदित्येव । उपसर्गादृति धाताविति च । सुबन्तावयवे धातावृकारादौ परतो ऽवर्णान्तादुपसर्गात्पूर्वपरयोरापिशलेराचार्यस्य मतेन वा वृद्धिरेकादेशो भवति । उपर्षभीयति । उपार्षभीयति । उपल्कारीयति । उपाल्कारीयति । ऋकारल्कारयोः सावर्ण्यविधिरिति ऋतीति ल्कारोपि गृह्यते । आपिशलिग्रहणं पूजार्थम् । वेति ह्युच्यतएव ॥

ओतो ऽम्शसोः ॥ ९३ ॥

ओतो ऽपि शसि च परतः पूर्वपरयोराकार आदेशो भवति । गां पश्य । गाः पश्य । द्यां पश्य । द्याः पश्य । द्योशब्दोप्योकारान्त एव विद्यते, ततोपि परं सर्वनामस्थानं णिदिष्यते, तेन नाप्राप्तायां वृद्धावयमाकारो विधीयमानस्तां बाधते । अमिति द्वितीयैकवचनं गृह्यते, शसा साहचर्यात् सुपीति चाधिकारात् । तेनाचिनवमसुनवमित्यत्र न भवति ॥

एङि पररूपम् ॥ ९४ ॥

आदित्येव, उपसर्गाद्धाताविति च । अवर्णान्तादुपसर्गादेङादौ धातौ पूर्वपरयोः पररूपमेकादेशो भवति । वृद्धिरेचीत्यस्यापवादः । उपेलयति । प्रेलयति । उपोषति । प्रोषति । केचित्तु सुप्यापिशलेरित्यनुवर्त्तयन्ति तद्वाक्यभेदेन सुब्धातौ विकल्पं करोति । उपेडकीयति । उपैडकीयति । उपोदनीयति ॥ उपौदनीयति शकन्ध्वादिषु पररूपं वक्तव्यम् ॥ * ॥ शक अन्धुः, शकन्धुः । कुल अटा, कुलटा ॥ सीमन्तः केशेषु ॥ सीम्नो ऽन्तः, सीमन्तः । अन्यत्र सीमान्तः ॥ एवे चानियोगे पररूपं वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह एव, इहेव । अद्य एव, अद्येव । अनियोगइति किम् । इहैव भव मा ऽन्यत्र गाः ॥ ओत्वोष्ठयोः समासे वा पररूपं वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्थूल ओतुः, स्थूलौतुः । स्थूलोतुः । बिम्बौष्ठी । बिम्बोष्ठी । समासइति किम् । तिष्ठ देवदत्तौष्ठं पश्य ॥ एमचादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम् ॥ * ॥ अपां त्वा एमन्, अपां त्वेमन् । अपां त्वा ओद्मन्, अपां त्वोद्मन् ॥

ओमाङोश्च ॥ ९५ ॥

आदित्येव । अवर्णान्तादोमि आङि च परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति । का ओमित्यवोचत्, कोमित्यवोचत् । योमित्यवोचत् । आङि खल्वपि । आ ऊढा, ओढा । अद्य ओढा, अद्योढा । कदा ओढा, कदोढा । तदा ओढा, तदोढा । वृद्धिरेचीत्यस्यापवादः । इह तु आ ऋश्यात् अर्श्यात् अद्य अर्श्यात् अद्यर्श्यादिति अकः सवर्णे दीर्घत्वं बाधते ॥

उस्यपदान्तात् ॥ ९६ ॥

आदित्येव । अवर्णादपदान्तादुसि पूर्वपरयोराद्गुणापवादः पररूपमेकादेशो भवति । भिन्द्या उस्, भिन्द्युः । छिन्द्या उस्, छिन्द्युः । अदा उस्, अदुः । अया उस्, अयुः । अपदान्तादिति किम् । का उषा, कोषा । का उषिता, कोषिता । आदित्येव । चक्रुः । अबिभयुः ॥

अतो गुणे ॥ ९७ ॥

अपदान्तादिति वर्त्तते । अकारादपदान्ताद्गुणे परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति । पचन्ति । यजन्ति । अकः सवर्णे दीर्घस्यापवादः । पचे यजे इत्यत्र वृद्धिरेचीति वृद्धिः प्राप्नोति । अत इति किम् । यान्ति । वान्ति । गुणइति किम् । अपचे । अयजे । अपदान्तादित्येव । दण्डायम् । यूपायम् ॥

अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ ॥ ९८ ॥

अव्यक्तमपरिस्फुटवर्णं तदनुकरणं परिस्फुटवर्णमेव केन चित्सादृश्येन तदव्यक्तमनुकरोति तस्य योऽच्छब्दस्तस्मादितौ पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो

भवति । पटत् इति, पटिति । घटत् इति, घटिति । झटत् इति, झटिति । छमित् इति, छमिति । अव्यक्तानुकरणस्येति किम् । जगत् इति, जगदिति । अत इति किम् । मरट् इति, मरडिति । इताविति किम् । पटत् अत्र, पटदत्र ॥ अनेकाच इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । स्रत् इति, स्रदिति । कथं घटद्विति गम्भीरमम्बुदैर्नदितमिति । दकारान्तमेतदनुकरणं द्रष्टव्यम् ॥

नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ ९९ ॥

अव्यक्तानुकरणस्याम्रेडितस्य योऽच्छब्द इतौ तस्य पररूपं न भवति तस्य योन्त्यस्तकारस्तस्य वा भवति । पटत्पटदिति । पटत्पटेति करोति । नित्यवीप्सयोरिति द्विर्वचनम् । यदा तु समुदायानुकरणं तदा भवत्येव पूर्वेण पररूपं पटत्पटेति करोति ॥

नित्यमाम्रेडिते डाचि ॥ १०० ॥

अव्यक्तानुकरणस्यातोऽन्त्यस्येति चानुवर्त्तते । डाचपरं यदाम्रेडितं तस्मिन्पूर्वस्याव्यक्तानुकरणस्याच्छब्दस्य योन्त्यस्तकारस्तस्य पूर्वस्य परस्य चाक्षस्य वर्णस्य नित्यं पररूपमेकादेशो भवति । पटपटा करोति । दमदमा करोति * । पटदित्यस्मादव्यक्तानुकरणादिति डाचि विहिते डाचि बहुलमिति द्विर्वचनं तच्च टिलोपात्पूर्वमेवेष्यते ॥ ५।४।५७

अकः सवर्णे दीर्घः ॥ १०१ ॥

अकः सवर्णेऽचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घ एकादेशो भवति । दण्डाग्रम् । दधीन्द्रः । मधूदके । होतॄश्यः । अक इति किम् । अग्नये । सवर्णइति किम् । दध्यत्र । अचीत्येव । कुमारि शेते । नाज्झलावित्यत्र यदजिति प्रत्याहारग्रहणं तत्र ग्रहणकशास्त्रस्यानिर्भिनिर्वृत्तत्वात्सवर्णा न गृह्यन्त इति सवर्णत्वमीकारशकारयोरप्रतिषिद्धम् ॥ सवर्णदीर्घत्वे ऋति ऋ वा वचनम् ॥ * ॥ ऋति सवर्णे परभूते तत्र ऋ वा भवतीति वक्तव्यम् । होतृ ऋकारः, होतृकारः । यदा न ऋ तदा दीर्घ एव होतॄकारः ॥ ऌति ऌ वा वचनम् ॥ * ॥ ऌति सवर्णे परतो ऌ वा भवतीति वक्तव्यम् । होतृ ऌकारः । होतॢकारः । होतॄकारः । ऋकारऌकारयोः । सवर्णविधिरुक्तो दीर्घपक्षे तु समुदायान्तरतमस्य ऌवर्णस्य दीर्घस्याभावात् ऋकारः क्रियते ॥

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ १०२ ॥

अक इति दीर्घ इति वर्तते । प्रथमाशब्दो विभक्तिविशेषे रूढस्तत्साहचर्यात् द्वितीयापि प्रथमेत्युक्ता । तस्यां प्रथमायां द्वितीयायां च विभक्तावचि अकः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो भवति । अग्नी । वायू । वृक्षाः

* मटमटाकरोतीत्यधिकं पुस्तकान्तरे

प्लक्षाः । वृक्षान् । प्लक्षान् । अतो गुणे इति यदकारे पररूपं तदकः सवर्णे दीर्घत्वमेव बाधते, न तु पूर्वसवर्णदीर्घत्वं, पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्त इति । अचीत्येव । वृक्षः । प्लक्षः । अक इत्येव । नावौ । पूर्वसवर्णग्रहणं किम् । अग्नी इत्यत्र पक्षे परसवर्णो मा भूत् । दीर्घग्रहणं किम् । त्रिमात्रे स्थानिनि त्रिमात्रादेशनिवृत्त्यर्थम् ॥

तस्माच्छसो नः पुंसि ॥ १०३ ॥

तस्मात्पूर्वसवर्णदीर्घादुत्तरस्य शसो ऽवयवस्य सकारस्य पुंसि नकारादेशो भवति । वृक्षान् । अग्नीन् । वायून् । कर्तॄन् । हर्तॄन् । पण्डकान् । स्थूरान् । अरकान्पश्य । सर्वएते पुल्लिङ्गविशिष्टं स्वार्थं प्रतिपादयन्ति । इह तु चञ्चेव चञ्चा । लुम्मनुष्यइति कनो लुपि कृते लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचनइति पुंसोपि स्त्रीलिङ्गता, तेन नत्वं न भवति, चञ्चाः पश्य, वध्रिकाः पश्येति । तस्मादिति किम् । एतांश्चरतो गाः पश्य । शस इति किम् । वृक्षाः । प्लक्षाः । पुंसीति किम् । धेनूः । बह्वीः । कुमारीः ॥

नादिचि ॥ १०४ ॥

अवर्णादिचि पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । वृक्षौ । प्लक्षौ । खट्वे । कुण्डे । आदिति किम् । अग्नी । इचीति किम् । वृक्षाः ॥

दीर्घाज्जसि च ॥ १०५ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च परतः पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । कुमार्यौ । कुमार्यः । ब्रह्मबन्ध्वौ । ब्रह्मबन्ध्वः ॥

वा छन्दसि ॥ १०६ ॥

दीर्घाच्छन्दसि विषये जसि च इचि च परतो वा पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । मारुतीश्चतस्रः । पिण्डीः । मारुत्यश्चतस्रः । पिण्ड्यः । वाराही । उपानही । वाराह्यौ । उपानह्यौ ॥

अमि पूर्वः ॥ १०७ ॥

अक इत्येव । अमि परतो ऽकः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वं एकादेशो भवति । वृक्षम् । प्लक्षम् । अग्निम् । वायुम् । पूर्वग्रहणं किम् । पूर्वं एव यथा स्यात्, पूर्वसवर्णो ऽन्तरतमो मा भूदिति । कुमारीमित्यत्र हि त्रिमात्रः स्यात् । वा छन्दसीत्येव । शमीं च । शम्यं च । गौरीं च । गौर्यं च ॥

संप्रसारणाच्च ॥ १०८ ॥

पूर्वं इत्येव । संप्रसारणादचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वं एकादेशो भवति । यजि । इष्टम् । वपि । उप्तम् । ग्रहि । गृहीतम् । संप्रसारणविधान-

सामर्थ्याद्विगृहीतस्य श्रवणे प्राप्ते पूर्वत्वं विधीयते । वा छन्दसीत्येव । मित्रावरुणौ यज्यमानौ । पूर्वत्वविधाने सत्यर्थवत्संप्रसारणविधानमिति इष्ट इत्येवमादिषु पूर्वत्वाभावे यणादेशो भवत्येव । अन्तरङ्गे चाविकृतार्थं वचनमिति बाह्ये पश्चात्संनिपतिते पूर्वत्वं न भवति । शकृद्वौ । शकृद्व्यर्थम् ॥

एङः पदान्तादति ॥ १०९ ॥

एङ् यः पदान्तस्तस्मादति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति । अग्नेत्र । वायोत्र । अयवादेशयोरयमपवादः । एङ इति किम् । दध्यत्र । मध्वत्र । पदान्तादिति किम् । चयनम् । लवनम् । अतीति किम् । वायो इति । भानो इति । वायविति । भानविति । तपरकरणं किम् । वायवायाहि ॥

ङसिङसोश्च ॥ ११० ॥

एङ इति वर्त्तते, अतीति च । एङ उत्तरयोर्ङसिङसोरति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्व एकादेशो भवति । अग्नेरागच्छति । वायोरागच्छति । अग्नेः स्वम् । वायोः स्वम् । अपदान्तार्थ आरम्भः ॥

ऋत उत् ॥ १११ ॥

ङसिङसोरित्येव । ऋकारान्तादुत्तरयोर्ङसिङसोरति पूर्वपरयोरुकार एकादेशो भवति । होतुरागच्छति । होतुः स्वम् । द्वयोः षष्ठीनिर्दिष्टयोः स्थाने यः स लभते ऽन्यतरव्यपदेशमिति उरण् रपर इति रपरत्वमत्र कृत्वा रात्सस्येति सलोपः कर्तव्यः ॥

ख्यत्यात्परस्य ॥ ११२ ॥

ङसिङसोरिति वर्त्तते, उदिति च । ख्यत्यादिति खिशब्दखीशब्दयोस्तिशब्दतीशब्दयोश्च कृतयणादेशयोरिदं ग्रहणं, ताभ्यां परस्य ङसिङसोरत उकारादेशो भवति । सख्युरागच्छति । सख्युः स्वम् । पत्युरागच्छति । पत्युः स्वम् । खीशब्दस्योदाहरणम् । सह खेन वर्त्तत इति सखस्तमिच्छतीति क्यच् सखीयति । सखीयतेः क्विप् सखीस्तस्य ङसिङसोः सख्युरिति । तीशब्दस्यापि । लूनमिच्छति, लूनीयति । लूनीयतेः क्विपि लुप्ते लून्युरागच्छति । लून्युः स्वम् । निष्ठानत्वं पूर्वत्रासिद्धमित्यसिद्धम् । विकृतनिर्देशादेवेह न भवति, अतिसखेरागच्छति, सेनापतेरागच्छतीति । सखिशब्दस्य केवलस्य घिसंज्ञा प्रतिषिध्यते न तदन्तस्य ॥

अतो रोरप्लुतादप्लुते ॥ ११३ ॥

अति, उदिति वर्त्तते । अकारादप्लुतादुत्तरस्य रोरेफस्य उकारानुबन्धविशिष्टस्य अकारे ऽप्लुते परत उकारादेशो भवति । वृक्षोत्र । प्लक्षोत्र । भोभग-

अघोअपूर्वस्य योशीत्यस्मिन्प्राप्ते उत्वं विधीयते। रुत्वमस्याश्रयत्वात्पूर्वत्रासिद्धमित्यसिद्धं न भवति। अत इति किम्। अग्निरत्र। तपरकरणं किम्। वृक्षा अत्र। सानुबन्धग्रहणं किम्। स्वरत्र। प्रातरत्र। अतीत्येव। वृक्ष इह। तस्यापि तपरत्वादत्र न भवति। वृक्ष आश्रितः। अप्लुतादिति किम्। सुस्रोता३ अत्र न्वसि। अप्लुतइति किम्। तिष्ठतु पय आ३श्विन्। अत्र प्लुतस्यासिद्धत्वादुत्वं प्राप्नोतीत्यप्लुतादप्लुतइत्युच्यते॥

हशि च॥ ११४॥

हशि च परतो ऽत उत्तरस्य रोरुकारादेशो भवति। पुरुषो याति। पुरुषो हसति। पुरुषो ददाति॥

प्रकृत्या ऽन्तःपादमव्यपरे॥ ११५॥

एङो ऽतीत्येव। एङ इति यत्पञ्चम्यन्तमनुवर्तते तदर्थादिह प्रथमान्तं भवति। प्रकृतिरिति स्वभावः कारणं वा ऽभिधीयते। अन्तरित्यव्ययमधिकरणभूतं मध्यमाचष्टे। पादशब्देन च ऋक्पादस्यैव ग्रहणमिष्यते न तु श्लोकपादस्य। अवकारयकारपरे ऽति परत एङ् प्रकृत्या भवति। स्वभावेन कारणात्मना वा न विकारमापद्यते। तौ चेन्निमित्तकार्यिणावन्तःपादमृक्पादमध्ये भवतः। ते अग्रे अश्वमायुञ्जन्। ते अस्मिन् जवमादधुः। उपप्रयन्तो अध्वरम्। शिरो अपश्यम्। सुजाते अश्वसूनृते। अध्वर्यो अद्रिभिः सुतम्। अन्तःपादमिति किम्। कया मती कुत एतास एते ऽर्चन्ति। अव्यपरइति किम्। ते ऽवदन्। ते ऽयस्मयम्। एङिति किम्। अन्वग्निरुषसामग्रमख्यत्। केचिदिदं सूत्रं नान्तः पादमव्यपरइति पठन्ति, ते संहितायामिह यदुच्यते तस्य सर्वस्य प्रतिषेधं वर्णयन्ति॥

अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च॥ ११६॥

अव्यात् अवद्यात् अवक्रमुः अव्रत अयम् अवन्तु अवस्यु इत्येतेषु यकारवकारपरेष्वति परतो ऽन्तःपादमेङ् प्रकृत्या भवति। अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। ते नो अव्रताः। शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु पितरः। कुशिकासो अवस्यवः॥

यजुष्युरः॥ ११७॥

उरः शब्द एङन्तो यजुषि विषये ऽति प्रकृत्या भवति। उरो अन्तरिक्षम्॥ अपरे यजुष्युरो इति सूत्रं पठन्ति। उकारान्तमुरुशब्दं संबुध्यन्तमधीयते तदुदाहरन्ति, उरो अन्तरिक्षं सजूरिति। यजुषि पादानामभावादनन्तःपादार्थं वचनम्॥

आपोजुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठेम्बेम्बालेम्बिकेपूर्वे ॥ ११८ ॥

यजुषीत्येव । आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे इत्येते शब्दा अम्बे अम्बाले इत्येतौ च यावम्बिकेशब्दात्पूर्वौ यजुषि पठितौ ते अति परतः प्रकृत्या भवन्ति । आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु । जुषाणो अप्तुराज्यस्य । वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिभिः । वर्षिष्ठे अधिनाके । अम्बे अम्बाले अम्बिके । यजुषीदमीदृशमेव पठ्यते । अस्मादेव निपातनादम्बार्थनद्योर्ह्रस्व इति ह्रस्वत्वं न भवति ॥

अङ्ग इत्यादौ च ॥ ११९ ॥

अङ्गशब्दे य एङ् तदादौ चाकारे यः पूर्वः स यजुषि विषये ऽति प्रकृत्या भवति । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे अदीध्यत् । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत् । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे अशोचिषम् ॥

अनुदात्ते च कुधपरे ॥ १२० ॥

यजुषीत्येव । अनुदात्ते चाति कवर्गधकारपरे परतो यजुषि विषये एङ् प्रकृत्या भवति । अयं सो अग्निः । अयं सो अध्वरः । अनुदात्त इति किम् । अधोऽग्ने । अधशब्द आद्युदात्तो निपात्यते । कुधपर इति किम् । सोऽयमग्निः सहस्रियः ॥

अवपथासि च ॥ १२१ ॥

यजुषीत्येव । अनुदात्त इति चशब्देनानुकृष्यते । अवपथाःशब्दे ऽनुदात्ते ऽकारादौ परतो यजुषि विषय एङ् प्रकृत्या भवति । त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः । वपेर्लङि थासि तिङ्ङतिङ इति निघातेनानुदात्तत्वम् । अनुदात्त इत्येव । यद्रुद्रेभ्योऽवपथाः । निपातैर्यद्यदिहन्तेति निघातः प्रतिषिध्यते ॥

सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १२२ ॥

सर्वत्र, छन्दसि भाषायां चाति परतो गोरेङ् प्रकृत्या भवति विभाषा । गोअग्रम् । गोऽग्रम् । छन्दसि । अपशवो वा अन्ये गोअश्वेभ्यः पशवो गोऽश्वाः ॥

अवङ् स्फोटायनस्य ॥ १२३ ॥

अतीति निवृत्तम् । अचीत्येतत्त्वनुवर्त्तत एव । अचि परतो गोः स्फोटायनस्याचार्यस्य मतेनावङादेशो भवति । गवाग्रम् । गोऽग्रम् । गवाजिनम् । गोजिनम् । गवोदनम् । गवौदनम् । गवोष्ट्रम् । गवुष्ट्रम् । आद्युदात्तश्चायमादेशो निपात्यते स निपातनस्वरो बहुव्रीहौ प्रकृतिस्वरविधाने भवति । गावो अग्रमस्य, गवाग्र इति । अन्यत्र तु समासान्तोदात्तत्वेन बाध्यते । स्फोटायनग्रहणं पूजार्थं, विभाषेत्येव हि वर्त्तते । व्यवस्थितविभाषेयं, तेन गवाक्ष इत्यत्र नित्यमवङ् भवति ॥

इन्द्रे च नित्यम् ॥ १२४ ॥

इन्द्रशब्दस्थे ऽचि परतो गोर्नित्यमवङादेशो भवति। गवेन्द्रः। गवेन्द्रयज्ञस्वरः * ॥

प्लुतप्रगृह्या अचि ॥ १२५ ॥

प्लुताश्च प्रगृह्याश्चाचि प्रकृत्या भवन्ति। देवदत्ता३ अत्र न्वसि। यज्ञदत्ता३ इदमानय। आश्रयादत्र प्लुतः सिद्धः। प्रगृह्याः। अग्नी इति। वायू इति। खट्वे इति। माले इति। अचीत्यनुवर्त्तमाने पुनरज्ग्रहणमादेशनिमित्तस्याचः परिग्रहार्थम्। तेनेह न भवति। जानु उ अस्य रुजति, जान्वस्य रुजति। प्रगृह्यादुकारात्परस्याकारस्य सवर्णदीर्घत्वं प्रत्यनिमित्तत्वान्न प्रकृतिभावो न भवति। नित्यग्रहणमिहानुवर्त्तते। प्लुतप्रगृह्याणां नित्यमयमेव प्रकृतिभावो यथा स्यादिकोसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्चेत्येतन्मा भूदिति ॥

आङो ऽनुनासिकश्छन्दसि ॥ १२६ ॥

आङो ऽचि परतः संहितायां छन्दसि विषये ऽनुनासिकादेशो भवति स च प्रकृत्या भवति। अभ्रआँ अपः। गभीरआँ उग्रपुत्रे जिघांसत। के चिदाङोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलमित्यधीयते। तेनेह न भवति। इन्द्रोबाहुभ्यामातरत्। आ अतरत् ॥

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥ १२७ ॥

इको ऽसवर्णे ऽचि परतः शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन प्रकृत्या भवन्ति, ह्रस्वश्च तस्येकः स्थाने भवति। दधि अत्र। दध्यत्र। मधु अत्र। मध्वत्र। कुमारि अत्र। कुमार्यत्र। किशोरि अत्र। किशोर्यत्र। इक इति किम्। खट्वेन्द्रः। असवर्णइति किम्। कुमारीन्द्रः। शाकल्यस्य ग्रहणं पूजार्थम्। आरम्भसामर्थ्यादेव हि यणादेशेन सह विकल्पः सिद्धः ॥ सिन्नित्यसमासयोः शाकलप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ सिति। अयं ते योनिर्ऋत्वियः। नित्यसमासे। व्याकरणम्। कुमार्यर्थम् ॥ ईषाअक्षादिषु छन्दसि प्रकृतिभावमात्रं वक्तव्यम् ॥ * ॥ ईषा अक्षः। का ईमारे पिशङ्गिला। यथा अगमन् ॥

ऋत्यकः ॥ १२८ ॥

शाकल्यस्य ह्रस्वश्चेत्येतदनुवर्त्तते। ऋकारे परतः शाकल्यस्याचार्यस्य मतेनाकः प्रकृत्या भवन्ति, ह्रस्वश्च तस्याकः स्थाने भवति। खट्व ऋश्यः। माल ऋश्यः। कुमारि ऋश्यः। होतृ ऋश्यः †। ऋतीति किम्। खट्वेन्द्रः। अक इति किम् वृक्षावृश्यः। सवर्णार्थमनिगर्थं च वचनम् ॥

---

* यज्ञचरुः। पा० २।

† पोतृ ऋश्य इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

अप्लुतवदुपस्थिते ॥ १२९ ॥

उपस्थितं नामानार्ष इतिकरणः समुदायादवच्छिद्य पदं येन स्वरूपे ऽवस्थाप्यते तस्मिन्परतो ऽप्लुतवद्भवति। प्लुतकार्यं प्रकृतिभावं न करोति । सुश्लोका३ इति, सुश्लोकेति । सुमङ्गला३ इति, सुमङ्गलेति । वत्करणं किम् । अप्लुतइत्युच्यमाने प्लुत एव प्रतिषिध्यते। तत्र को दोषः । प्रगृह्याश्रये प्रकृतिभावे प्लुतस्य श्रवणं न स्यात् । अग्नी३ इति । वायू३ इति ॥

ई३ चाक्रवर्मणस्य ॥ १३० ॥

ई३ कारः प्लुतो ऽचि परतश्चाक्रवर्मणस्याचार्यस्य मतेनाप्लुतवद्भवति । अस्तु हीत्यब्रवीत्। अस्तु ही३ इत्यब्रवीत्। चिनु हीदम्। चिनु ही३ इदम्। चाक्रवर्मणग्रहणं विकल्पार्थं तदुपस्थिते निवृत्त्यर्थम् अनुपस्थिते प्राप्त्यर्थमित्युभयत्र विभाषेयम् । इकारादन्यत्राप्ययमप्लुतवद्भाव इष्यते । वशा३ इयम् वशेयम् ॥

दिव उत् ॥ १३१ ॥

एङः पदान्तादतीत्यतः पदग्रहणमनुवर्तते । दिव इति प्रातिपदिकं गृह्यते न धातुः, सानुबन्धकत्वात् । दिवः पदस्य उकारादेशो भवति । दिवि कामो यस्य, द्युकामः । द्युमान् । विमलद्यु दिनम् । द्युभ्याम् । द्युभिः । निरनुबन्धकग्रहणादिह न भवति । अक्षद्यूभ्याम्, अक्षद्यूभिरिति । तपरकरणमूठो निवृत्त्यर्थं द्युभ्यां द्युभिरिति । अत्र हि परत्वादूठ् प्राप्नोति। पदस्येति किम् । दिवौ । दिवः ॥

एतत्तदोः सु लोपो ऽकोरनञ्समासे हलि ॥ १३२ ॥

एतत्तदौ यावककारौ नञ्समासे न वर्त्तेते तयोर्यः सुशब्दः कश्च तयोः सुशब्दो यस्तदर्थेन संबद्धस्तस्य संहितायां विषये हलि परतो लोपो भवति । एष ददाति । स ददाति । एष भुङ्क्ते । स भुङ्क्ते। एतत्तदोरिति किम् । यो ददाति । यो भुङ्क्ते । सुग्रहणं किम् । एतौ गावौ चरतः । अकोरिति किम् । एषको ददाति । सको ददाति । तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यतइति रूपभेदेपि साकच्कावेतत्तदावेव भवतः। अनञ्समासइति किम्। अनेषो ददाति। असो ददाति। उत्तरपदार्थप्रधानत्वान्नञ्समासस्यैतत्तदोरेवात्र संबद्धः सुशब्दः। हलीति किम् । एषोऽत्र । सोऽत्र ॥

स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥ १३३ ॥

स्य इत्येतस्य छन्दसि हलि परतो बहुलं सोर्लोपो भवति। एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि । एष स्य ते मधुमां इन्द्र सोमः । न च भवति । यत्र स्यो निपतेत् ॥

सो ऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ॥ १३४ ॥

स इत्येतस्याचि परतः सुलोपो भवति लोपे सति चेत्पादः पूर्यते। सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम्। सौषधीरनुरुध्यसे। लोपे चेत्पादपूरणमिति किम्। सइव व्याघ्रो भवेत्। अचीति विस्पष्टार्थम्। पादग्रहणेनात्र श्लोकपादस्यापि ग्रहणं केचिदिच्छन्ति। तेनेदमपि सिद्धं भवति।

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः ॥

सुट् कात्पूर्वः ॥ १३५ ॥

अधिकारोऽयं, पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायामिति यावत्। इत उत्तरं यद्वक्ष्यामस्तत्र सुडिति कात्पूर्व इति चैतदधिकृतं वेदितव्यम् वक्ष्यति। संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे। संस्कर्ता। संस्कर्तुम्। संस्कर्तव्यम्। कात्पूर्वग्रहणं सुटो ऽभक्तत्वज्ञापनार्थम्। तथाहि संस्कृषीष्ट संस्क्रियतइति संयोगादिलक्षणाविड्गुणौ न भवतः। तिङ्ङतिङ इति निघातोपि तर्हि न प्राप्नोति सुटा व्यवहितत्वात्। स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति वचनान्नास्ति व्यवधानम्। संचस्करतुः संचस्करुरिति गुणः कथं, तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यतइति। संयोगोपधग्रहणं च ऋतश्च संयोगादेर्गुण इत्यत्र कर्तव्यम्। टित्करणं सुट्स्तुस्वञ्जामित्यत्र विशेषणार्थम् ॥

अडभ्यासव्यवायेपि ॥ १३६ ॥

अड्व्यवाये ऽभ्यासव्यवाये सुट् कात्पूर्वो भवति। समस्करोत्। समस्कार्षीत्। संचस्कार। परिचस्कार। किमर्थं पुनरिदमुच्यते। पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यतइति तत्र धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमिति पूर्वं सुट् क्रियते पश्चादडभ्यासौ। अभक्तश्च सुडित्युक्तं ततः सकारादुत्तरावडभ्यासावनिष्टे देशे स्याताम्। एतस्मिंस्तु सत्यत एव वचनात् कृतयोरडभ्यासयोस्तद्व्यवायेपि सुट् कात्पूर्वः क्रियतइति सिद्धमिष्टं भवति ॥

संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥ १३७ ॥

सम् परि उप इत्येतेभ्यो भूषणार्थे करोतौ परतः सुट् कात्पूर्वो भवति। संस्कर्ता। संस्कर्तुम्। संस्कर्तव्यम्। अत्र संपुंकानां सत्वमिति समो मकारस्य सकारः पूर्वस्य चाकारस्यानुनासिकः। परिष्कर्ता। परिष्कर्तुम्। परिष्कर्तव्यम्। सुट्स्तुस्वञ्जामिति षत्वम्। उपस्कर्ता। उपस्कर्तुम्। उपस्कर्तव्यम्। भूषणइति किम्। उपकरोति। संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेपि सुडिष्यते संस्कृतमन्नमिति ॥

समवाये च ॥ १३८ ॥

समवायः समुदायस्तस्मिंश्चार्थे करोतौ संपर्युपेभ्यः कात्पूर्वः सुडागमो

भवति । तत्र नः संस्कृतम् । तत्र नः परिष्कृतम् । तत्र न उपस्कृतम् । समुदितमित्यर्थः ॥

उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु ॥ १३९ ॥

सतो गुणान्तराधानमाधिक्याय वृद्धस्य वा तादवस्थ्याय समीहा प्रतियत्नः । विकृतमेव वैकृतम् । प्रज्ञादित्वादण् । गम्यमानार्थस्य वाक्यस्य स्वरूपेणोपादानं वाक्यस्याध्याहारः । एतेष्वर्थेषु गम्यमानेषु करोतौ धातौ परत उपात् सुट् कात्पूर्वो भवति । प्रतियत्ने तावत् । एधोदकस्योपस्कुरुते । काण्डगुणस्योपस्कुरुते । वैकृते । उपस्कृतं भुङ्क्ते । उपस्कृतं गच्छति । वाक्याध्याहारे । उपस्कृतं जल्पति । उपस्कृतमधीते । एतेष्विति किम् । उपकरोति ।

किरतौ लवने ॥ १४० ॥

उपादित्येव । उपादुत्तरस्मिन्किरतौ धातौ लवनविषये सुट् कात्पूर्वो भवति । उपस्कारं मद्रका लुनन्ति । उपस्कारं काश्मीरका लुनन्ति । विक्षिप्य लुनन्तीत्यर्थः ॥ णमुलत्र वक्तव्यः ॥ * ॥ लवनइति किम् । उपकिरति देवदत्तः ॥

हिंसायां प्रतेश्च ॥ १४१ ॥

किरतावित्येव । उपात्प्रतेश्चोत्तरस्मिन्किरतौ विषये सुट् कात्पूर्वो भवति । उपस्कीर्णं हं ते वृषल भूयात् । प्रतिस्कीर्णं हं ते वृषल भूयात् । तथा ते वृषल विक्षेपो भूयाद् यथा हिंसामनुबध्नातीत्यर्थः । हिंसायामिति किम् । प्रतिकीर्णम् ॥

अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ॥ १४२ ॥

किरतावित्येव । अपादुत्तरस्मिन्किरतौ चतुष्पाच्छकुनिषु यदालेखनं तस्मिन् विषये सुट् कात्पूर्वो भवति । अपस्किरते वृषभो हृष्टः । अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी । अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी । आलिख्य विक्षिपतीत्यर्थः । चतुष्पाच्छकुनिष्विति किम् । अपकिरति देवदत्तः ॥ हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । अपकिरति श्वा ओदनपिण्डमाशितः ॥ हर्षजीविकाकुलायकरणेष्वेव किरतेरात्मनेपदस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥

कुस्तुम्बुरूणि जातिः ॥ १४३ ॥

कुस्तुम्बुरूणीति सुट् निपात्यते जातिश्चेद्भवति । कुस्तुम्बुरुर्नामौषधिजातिः । धान्यकम् । तत्फलान्यपि कुस्तुम्बुरूणि । सूत्रनिर्देशे नपुंसकलिङ्गमविवक्षितम् । जातिरिति किम् । कुत्सितानि तुम्बुरूणि कुतुम्बुरूणि तुम्बुरुशब्देनात्र तिन्दुकीफलान्युच्यन्ते, समासेन तेषां कुत्सा ॥

अपरस्पराः क्रियासातत्ये ॥ १४४ ॥

अपरस्परा इति सुट् निपात्यते क्रियासातत्ये गम्यमाने । अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति । सन्ततमविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः । क्रियासातत्यइति किम् । अपरपराः सार्था गच्छन्ति । अपरे परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः । नात्र गमनस्य सातत्यं प्रबन्धो विवक्षितः । किमिदं सातत्यमिति । सततस्य भावः सातत्यम् । कथं सततम्, समस्तते विकल्पेन मकारलोपो विधीयते ।

लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि ।
समो वा हिततनयोर्मांसस्य पचियुड्घञोः ॥

गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु ॥ १४५ ॥

गोष्पदमिति सुट् निपात्यते तस्य च षत्वं सेविते ऽसेविते प्रमाणे च विषये । गोष्पदो देशः । गावः पद्यन्ते यस्मिन् देशे स गोभिः सेवितो देशो गोष्पद इत्युच्यते । असेविते । अगोष्पदान्यरण्यानि । असेविते गोष्पदशब्दो न संभवतीत्यगोष्पदशब्दार्थं निपातनम् । यद्येवं नार्थ एतेन, गोष्पदप्रतिषेधादगोष्पदं भविष्यति । सत्यमेतत् । यत्र तु सेवितप्रसङ्गोऽस्ति तत्रैव स्यादगोष्पदमिति । यत्र त्वत्यन्तासंभव एव तत्र न स्यादगोष्पदान्यरण्यानीति । असेवितग्रहणात्तत्रापि भवति । यानि हि महान्त्यरण्यानि येषु गवामत्यन्तासंभवस्तान्येवमुच्यन्ते । प्रमाणे । गोष्पदमात्रं क्षेत्रम् । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः । नात्र गोष्पदं स्वार्थप्रतिपादनार्थमुपादीयते, किं तर्हि क्षेत्रस्य वृष्टेश्च परिच्छेत्तुमियत्ताम् । सेवितासेवितप्रमाणेष्विति किम् । गोः पदं, गोपदम् ॥

आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥ १४६ ॥

आत्मयापनाय स्थानं प्रतिष्ठा, तस्यामास्पदमिति सुट् निपात्यते । आस्पदमनेन लब्धम् । प्रतिष्ठायामिति किम् । आपदात्, आपदम् ॥

आश्चर्यमनित्ये ॥ १४७ ॥

अनित्यतया विषयभूतया ऽद्भुतत्वमिह लक्ष्यते तस्मिन्नाश्चर्यं निपात्यते । चरेराङि चागुराविति यत्प्रत्यये कृते निपातनात्सुट् । आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत । आश्चर्यं यदि सो ऽधीयीत । चित्रमद्भुतमित्यर्थः । अनित्यइति किम् । आचर्यं कर्म शोभनम् ॥

वर्चस्के ऽवस्करः ॥ १४८ ॥

कुत्सितं वर्चो, वर्चस्कमन्नमलं, तस्मिन्नभिधेये ऽवस्कर इति निपात्यते । अवपूर्वस्य किरतेः कर्मणि ऋदोरप् इत्यप्, निपातनात्सुट् । अवकीर्यतइत्यवस्करो ऽन्नमलम् । तत्संबन्धाद्देशोऽपि तथोच्यते । वर्चस्कइति किम् । अवकरः ॥

अपस्करो रथाङ्गम् ॥ १४९ ॥

अपस्कर इति निपात्यते रथाङ्गं चेद्भवति। अपपूर्वात्किरतेर्ऋदोरबित्यप्, निपातनात् सुट्। अपस्करो रथावयवः। रथाङ्गमिति किम्। अपकरः॥

विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा १५० ॥

विकिर इति किरतेर्विपूर्वस्येगुपधज्ञाप्रीकिरः कः इति कप्रत्यये विहिते सुट् निपात्यते शकुनिश्चेद्भवति। विकिरशब्दाभिधेयो वा शकुनिर्भवति।

सर्वे शकुनयो भक्ष्या विष्किराः कुक्कुटादृते।

विष्किरो वा शकुनाविति वाग्रहणादेव सुड्विकल्पे सिद्धे विकिरग्रहणमिह तस्यापि शकुनेरन्यत्र प्रयोगो मा भूत्॥

ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥ १५१ ॥

चन्द्रशब्दउत्तरपदे ह्रस्वात्परः सुडागमो भवति मन्त्रविषये। सुश्चन्द्रो युष्मान्। ह्रस्वादिति किम्। सूर्याचन्द्रमसाविव। मन्त्रइति किम्। सुचन्द्रा पौर्णमासी। उत्तरपदं समासएव भवतीति प्रसिद्धं, तत इह न भवति। शुक्रमसि चन्द्रमसि॥

प्रतिष्कशश्च कशेः ॥ १५२ ॥

कश गतिशासनयोरित्येतस्य धातोः प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि कृते सुट् निपात्यते, तस्यैव षत्वम्॥

ग्राममद्य प्रवेक्ष्यामि भव मे त्वं प्रतिष्कशः।

वार्त्तापुरुषः सहायः पुरोयायी वा प्रतिष्कश इत्यभिधीयते। कशेरिति किम्। प्रतिगतः कशां, प्रतिकशो ऽश्वः। अत्र यद्यपि कशेरेव कशाशब्दस्तथापि कशेरिति धातोरुपादानं तदुपसर्गस्य प्रतेः प्रतिपत्त्यर्थम्। तेन धात्वन्तरोपसर्गाच्च भवति॥

प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी ॥ १५३ ॥

प्रस्कण्वो हरिश्चन्द्र इति सुट् निपात्यते ऋषी चेदभिधेयौ भवतः। प्रस्कण्व ऋषिः। हरिश्चन्द्र ऋषिः। हरिश्चन्द्रग्रहणममन्त्रार्थम्। ऋषी इति किम्। प्रकण्वो देशः। हरिचन्द्रो माणवकः॥

मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः ॥ १५४ ॥

मस्कर मस्करिन् इत्येतौ यथासंख्यं वेणौ परिव्राजके च निपात्येते। मकरशब्दो ह्यव्युत्पन्नं प्रातिपदिकं तस्य वेणावभिधेये सुट् निपात्यते परिव्राजके त्विनिर्णिति। मस्करो वेणुः। मस्करी परिव्राजकः। वेणुपरिव्राजकयोरिति किम्। मकरो ग्राहः। मकरी समुद्रः। केचित्पुनरत्र माङ्युपपदे करोतेः कर्णो

ऽच्प्रत्ययमपि निपातयन्ति माङश्च ह्रस्वत्वं सुट् च । मा क्रियते येन प्रतिषिध्यते, स मस्करो वेणुः । वेणुग्रहणं च प्रदर्शनार्थमन्यत्रापि भवति मस्करोदण्ड इति । परिव्राजकेऽपि माङ्युपपदे करोतेस्ताच्छील्यइनिर्निपात्यते । माङो ह्रस्वत्वं सुट् च तथैव । माकरणशीलो मस्करी कर्मापवादित्वात्परिव्राजक उच्यते । स ह्येवमाह । मा कुरुत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीति ॥

कास्तीराजस्तुन्दे नगरे ॥ १५५ ॥

कास्तीर, अजस्तुन्द इत्येतौ शब्दौ निपात्येते नगरे ऽभिधेये । ईषत्तीरमस्य, अजस्येव तुन्दमस्येति व्युत्पत्तिरेव क्रियते नगरं तु वाच्यमेतयोः । कास्तीरं नाम नगरम् । अजस्तुन्दं नाम नगरम् । नगरइति किम् । कातीरम् । अजतुन्दम् ॥

कारस्करो वृक्षः ॥ १५६ ॥

कारस्कर इति सुट् निपात्यते वृक्षश्चेद्भवति । कारं करोतीति दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तेति टप्रत्ययः । कारस्करो वृक्षः । वृक्ष इति किम् । कारकरः । के चिदिदं सूत्रं नाधीयते, पारस्करप्रभृतिष्वेव कारस्करो वृक्ष इति पठन्ति ॥

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् ॥ १५७ ॥

पारस्करप्रभृतीनि च शब्दरूपाणि निपात्यन्ते संज्ञायां विषये । पारस्करो देशः । कारस्करो वृक्षः । रथस्या नदी । किष्कुः प्रमाणम् । किष्किन्धा गुहा ॥ तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ॥ तस्करश्चोरः । बृहस्पतिर्देवता । चोरदेवतयोरिति किम् । तत्करः । बृहत्पतिः । संज्ञाग्रहणादुपाधिपरिग्रहे सिद्धे गणे चोरदेवताग्रहणं प्रपञ्चार्थम् ॥ प्रात्तुम्पतौ गवि कर्तरि ॥ तुम्पतौ धातौ प्रशब्दात्परस्सुट् भवति गविकर्तरि । प्रस्तुम्पति गौः । गवीति किम् । प्रतुम्पति वनस्पतिः । पारस्करप्रभृतिराकृतिगणः । अविहितलक्षणः सुट् पारस्करप्रभृतिषु द्रष्टव्यः । प्रायश्चित्तम् । प्रायश्चित्तिः । यदुक्तं प्रायस्य चित्तिचित्तयोः सुडस्कारो वेति, तत्संगृहीतं भवति ॥

अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ १५८ ॥

परिभाषेयं स्वरविधिविषया । यत्रान्यः स्वर उदात्तः स्वरितो वा विधीयते तत्रानुदात्तं पदमेकं वर्जयित्वाभवतीत्येतदुपस्थितं द्रष्टव्यम् । अनुदात्तास्कमनुदात्तम् । कः पुनरेको वर्ज्यते, यस्यासौ स्वरो विधीयते । वक्ष्यति । धातोरन्त उदात्तो भवतीति । गोपायति । धूपायति । धातोरन्त्यमचं वर्जयित्वा परिशिष्टमनुदात्तं भवति । धातुस्वरं श्नास्वरो बाधते । लुनाति । श्नास्वरे तस्वरः । लुनीतः । पुनीतः । तस्वरमाम्स्वरः । लुनीतस्तराम् । पुनीतस्तराम् ।

आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च ।
पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः ॥

आगमस्य । चतुरनडुहोरामुदात्तः । चत्वारः । अनड्वाहः । आगमस्वरः प्रकृतिस्वरं बाधते । विकारस्य । अस्थनि दधनीत्यनङ्स्वरः प्रकृतेः । गोपायति । धूपायति । प्रकृतिस्वरः प्रत्ययस्य । कर्त्तव्यम् । हर्त्तव्यम् । प्रत्ययस्वरः प्रकृतेः स्वरस्य बाधकः । परनित्यान्तरङ्गापवादैः स्वरैर्व्यवस्था सतिशिष्टेन च । योहि यस्मिन् सति शिष्यते स तस्य बाधको भवति । तथाहि । गोपायतीत्यत्र धातुस्वरापवादः प्रत्ययस्वरस्तेनैव धातुस्वरेण प्रत्ययान्तस्य धातोः सतिशिष्टत्वाद् बाध्यते । कार्ष्णोत्तरासङ्गपुत्र इत्यत्र च समासस्वरापवादो बहुव्रीहिस्वरः सतिशिष्टेन समासान्तोदात्तत्वेन बाध्यते । विकरणस्वरस्तु सतिशिष्टोपि सार्वधातुकस्वरं न बाधते । लुनीत इति तस एव स्वरो भवति ॥ विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अतिसृ इत्यत्र तिसृभ्यो जस इति सतिशिष्टोपि विभक्तिस्वरो नञ्स्वरेण बाध्यते ॥ विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अचत्वारः । अनड्वाह इति । यस्य विभक्तिर्निमित्तमामस्तस्य यदुदात्तत्वं तन्नञ्स्वरेण बाध्यते । पदग्रहणं किम् । देवदत्त गामभ्याज शुक्लां दण्डेनेति वाक्ये हि प्रतिपदं स्वरः पृथग् भवति । परिमाणार्थं चेदं पदग्रहणं सदाधिकारस्य निवृत्तिं करोति । तेन प्रागेव पदव्यपदेशात् स्वरविधिसमकालमेव शिष्टस्यानुदात्तत्वं भवति । तथा च कुत्रल्या विकारः कौत्रलमित्यत्रानुदात्तादिलक्षणो ऽञ् सिद्धो भवति । तथा गर्भिणीशब्दश्चानुदात्तादिलक्षणस्याञो बाधनार्थं भिक्षादिषु पठ्यते । कुवलगर्भशब्दावाद्युदात्तौ ॥

कर्षात्वतो घञो ऽन्त उदात्तः ॥ १५९ ॥

कर्षतेर्धातोराकारवतश्च घञन्तस्यान्त उदात्तो भवति । कर्षः । पाकः । त्यागः । रागः । दायः । धायः । ञनित्यादिर्नित्यमित्यस्यापवादः । कर्ष इति विकृतनिर्देशः कृषतेर्निवृत्त्यर्थः । तौदादिकस्य घञन्तस्य कर्ष इत्याद्युदात्त एव भवति ॥

उञ्छादीनां च ॥ १६० ॥

उञ्छ इत्येवमादीनामन्त उदात्तो भवति । उञ्छः । म्लेच्छः । जञ्जः । जल्पः । एते घञन्ता इति ञित्स्वरः प्राप्तः । जप व्यध इत्यबन्तौ, तयोर्धातुस्वरः प्राप्तः । के चित्तु वध इति पठन्ति । युजेर्घञन्तस्य निपातनादगुणत्वं विशिष्टविषये च निपातनमिदमिष्यते । कालविशेषे रथाद्युपकरणे च युगशब्दस्य प्रयोगोन्यत्र हि योग एव भवति ॥ गरो दूष्ये ऽबन्तः ॥ गरशब्दो ऽबन्तः स दूष्य एवान्तोदात्तः । गरो विषम् । अन्यत्राद्युदात्त एव ॥ वेगवेदचेष्टबन्धाः करणे ॥

च्छलश्चेति घञन्ता एते करणे ऽन्तोदात्ता भवन्ति । भावे आद्युदात्ता एव ॥ स्तुयुद्रुवश्छन्दसि ॥ उपसमस्तार्थमेतत् । परिष्टुत् । संयुत् । परिद्रुत् ॥ वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ स्तोत्रं साम । तत्स्थो वर्त्तनिशब्दोऽन्तोदात्तो भवति, अन्यत्र मध्योदात्तः ॥ श्वभ्रे दरः ॥ श्वभ्रे ऽभिधेये दरशब्दोऽन्तोदात्तो ऽन्यत्राबन्तत्वादाद्युदात्तः ॥ साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥ अन्तोदात्तौ,अन्यत्राद्युदात्तौ ॥ उत्तमशश्वत्तमशब्दौ सर्वत्र ॥ के चित्तु भावगर्हायामित्यत्राप्यनुवर्त्तयन्ति ॥ भक्षमन्थभोग देहाः ॥ एते घञन्ता भविष्यन्तोपि घञन्त एव । एरजण्यन्तानामिति वचनात् ॥

अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥ १६१ ॥

उदात्त इति वर्तते । यस्मिन्ननुदात्ते परत उदात्तो लुप्यते तस्यानुदात्तस्यादिरुदात्तो भवति । कुमार ई, कुमारी । कुमारशब्दोन्तोदात्तस्तस्य ङीप्यनुदात्ते उदात्तो लुप्यते । अनुदात्तो ङीब् उदात्तः । भस्य टेर्लोपः । पथः । पथा । पथे । पथिन्शब्दोन्तोदात्तः । कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् । कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । कुमुदादयोन्तोदात्ताः । ड्मतुबनुदात्तः । अनुदात्तस्येति किम् । प्रासङ्गं वहति प्रासङ्ग्यः । प्रासङ्गशब्दस्याथादिस्वरेणान्तोदात्तः । तस्य यति तित्स्वरितमिति स्वरिते उदात्तो लुप्यते । नैतदस्ति, स्वरिते हि विधीयमाने परिशिष्टमनुदात्तं तत् कृत उदात्तलोप,स्तदेतदनुदात्तग्रहणमादेरनुदात्तस्योदात्तार्थम् । अन्त इति हि प्रकृतत्वादन्तस्य स्यात् । मा हि धुक्षाताम् । मा हि धुक्षाथाम् । यत्रेति किम् । भार्गवः । भार्गवौ । भृगवः । प्राक् सुबुत्पत्तेर्गोत्रप्रत्ययस्य लुक् । उदात्तग्रहणं किम् । वैदी । औवीं * ॥

धातोः ॥ १६२ ॥

अन्त इत्येव । धातोरन्त उदात्तो भवति । पचति । पठति । ऊर्णोति । गोपायति । याति ॥

चितः ॥ १६३ ॥

चितो ऽन्त उदात्तो भवति । भञ्जभासमिदो घुरच् । भङ्गुरम् । भासुरम् । मेदुरम् । आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् । कुण्डिनाः ॥ चिति प्रत्यये प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्यान्त उदात्तइष्यते ॥ बहुपटवः । उच्चकैः ॥

तद्धितस्य ॥ १६४ ॥

चित इत्येव । चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तो भवति । गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् । कौञ्जायनाः । भौञ्जायनाः । किमर्थमिदं, परमपि ञित्स्वरं बाधित्वा ऽन्तोदात्तत्वमेव यथा स्यादिति ॥

* मौञ्जायनेत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

क्तिः ॥ १६५ ॥

तद्धितस्येत्येव । तद्धितस्य कितोन्त उदात्तो भवति । नडादिभ्यः फक् । नाडायनः । चारायणः । प्राग्वहतेष्ठक् । आक्षिकः । शालाकिकः ॥

तिसृभ्यो जसः ॥ १६६ ॥

तिसृभ्य उत्तरस्य जसोन्त उदात्तो भवति । तिस्रस्तिष्ठन्ति । उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्येत्यस्यापवादः । शसि उदात्तयणो हल्पूर्वादिति सिद्धे ऽन्यत्र बहुवचने षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिरिति विधानाज्जसेव लभ्यतइति जसग्रहणमुपसमस्तार्थमेकद्दच्छन्ति । अतितिस्रावित्यत्र स्वरो मा भूदिति ॥

चतुरः शसि ॥ १६७ ॥

चतुरः शसि परतो ऽन्त उदात्तो भवति । चतुरः पश्य * । चतस्रादेशे आद्युदात्तनिपातनाद्यणादेशस्य च पूर्वविधौ स्थानिवत्त्वादयं स्वरो न भवति चतस्रः पश्येति ॥

"सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः" ॥ १६८ ॥

साविति सप्तमीबहुवचनस्य सुशब्दस्य ग्रहणम् । तत्र सौ य एकाच् तस्मात्परा तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता भवति । वाचा । वाग्भ्याम् । वाग्भिः । वाग्भ्यः । याता । याद्भ्याम् । याद्भिः । साविति किम् । राज्ञा । राज्ञे । एकाच इति किम् । हरिणा । गिरिणा । राजसु । तृतीयादिरिति किम् । वाचौ । वाचः । विभक्तिरिति किम् । वाक्तरा । वाक्तमा । सप्तमीबहुवचनस्य ग्रहणादिह न भवति त्वया त्वयीति ॥

अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे ॥ १६९ ॥

एकाच इति वर्तते, तृतीयादिर्विभक्तिरिति च । नित्यशब्दः स्वर्यते । तेन नित्याधिकारविहितः समासः पर्युदस्यते । नित्यसमासादन्यत्रानित्यसमासे यदुत्तरपदमन्तोदात्तमेकाच्च तस्मात्परा तृतीयादिर्विभक्तिरन्यतरस्यामुदात्ता भवति । परमवाचा । २ । परमवाचे । २ । परमत्वचा । २ । परमत्वचे । २ । यदा विभक्तिरुदात्ता न भवति तदा समासान्तोदात्तत्वमेव । अन्तोदात्तादिति किम् । अवाचा । सुवाचा । सुत्वचा । तत्पुरुषेयम् । तत्र तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययेति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः । उत्तरपदग्रहणमेकाच्त्वेनोत्तरपदं विशेषयितुम् । अन्यथा हि समासविशेषणमेतत्स्यात् । तत्र शुन ऊर्क् श्वोर्ग्भ्येत्यत्रैवायं विधिः स्यात् । अनित्यसमासइति किम् । अग्निचिता । सोमसुता । उपपदमतिङ् इत्ययं नित्ययं नित्याधिकारे समासो विधीयते तत्र गतिकारकोपपदात् कृदित्युत्तरपदप्रकृतिस्वरेण चित् शब्द उदात्तः । यस्तु विय-

---

* चतुरो वेदोत्यपि पुस्तकान्तरे ।

द्भावेन नित्यसमासस्तत्र भवत्येव विकल्पः । अवाचा ब्राह्मणेन, सुवाचा ब्राह्मणेनेति । बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वं भवति ॥

अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् ॥ १७० ॥

अञ्चेः परा ऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता भवति छन्दसि विषये । इन्द्रो दधीचो अस्थभिः । चावितिं पूर्वपदान्तोदात्तत्वं प्राप्तम् । तृतीयादिरिति वर्त्तमाने शसोपि परिग्रहार्थमसर्वनामस्थानग्रहणम् । इहापि यथा स्यात् प्रतीचो बाहून्प्रतिभङ्ध्येषामिति ॥

ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः ॥ १७१ ॥

ऊठ् इदम् पदादि अप् पुम् रै दिव् इत्येतेभ्यो ऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता भवति । ऊठ् । प्रष्ठौहः । प्रष्ठौहा । ऊठ्युपधाग्रहणं कर्त्तव्यमिह मा भूत् । अक्षद्युवौ । अक्षद्युवे । इदम् । आभ्याम् । एभिः । अन्तोदात्तादित्यधिकारादन्वादेशे न भवति । अथो आभ्यां निपुणमधीतमिति । पदादयः पद्दन्नोमासित्येवमादयो निशपर्यन्ता इह गृह्यन्ते । निपदश्चतुरो जहि । या दतो धावति । असन्प्रभृतिभ्यो विभक्तिरनुदात्तैव भवति । ग्रीवायां बद्धो अपि कक्षआसनि । मत्स्यं न दीनउदनि क्षियन्तम् । अप् । अपः पश्य । अद्भिः । अद्भ्यः । पुम् । पुंसः । पुम्भ्याम् । पुम्भ्यः । पुंसा । पुंसे । रै । रायः पश्य । राभ्याम् । राभिः । दिव् । दिवः पश्य । दिवा । दिवे ॥

अष्टनो दीर्घात् ॥ १७२ ॥

अष्टनो दीर्घान्तादसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता भवति । अष्टाभिः । अष्टाभ्यः । अष्टासु । घृतादिपाठादष्टनशब्दोन्तोदात्तस्तत्र झल्युपोत्तममित्यस्यापवादो विभक्तेरेवोदात्तत्वं विधीयते । दीर्घादिति किम् । अष्टसु प्रक्रमेषु ब्राह्मणोग्नीनादधीत । इदमेव दीर्घग्रहणमष्टन आत्वविकल्पं ज्ञापयति कृतात्वस्य च षट्संज्ञां ज्ञापयति । अन्यथा ह्यात्वपक्षे सावकाशो ऽष्टनः स्वरः परत्वादनात्वपक्षे षट्स्वरेण बाधिष्यतइति किं दीर्घग्रहणेन ॥

शतुरनुमो नद्यजादी ॥ १७३ ॥

अन्तोदात्तादिति वर्त्तते । अनुम् यः शतृप्रत्ययस्तदन्तादन्तोदात्तात्परा नदी अजादिर्विभक्तिरसर्वनामस्थानमुदात्ता भवति । तुदती । नुदती । लुनती । पुनती । तुदता । नुदता । लुनता । पुनता । अनुम इति किम् । तुदन्ती । नुदन्ती । अत्राप्युदुपदेशादिति लसार्वधातुकानुदात्तत्वे एकादेशस्तस्यैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्युदात्तत्वं तस्य पूर्वत्रासिद्धत्वं नेष्यतइति शत्रन्तमन्तोदात्तं भवति । नद्यजादी इति किम् । तुदद्भ्याम् । नुदद्भ्याम् । तुदद्भिः । अन्तो-

दात्तादित्येव । ददती । दधती । अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तावेतौ ॥ बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ बृहती । महती । बृहता । महता ॥

उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ १७४ ॥

उदात्तस्थाने यो यण् हल्पूर्वस्तस्मात्परा नदी अजादिर्या ऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता भवति । कर्त्री । हर्त्री । प्रलवित्री । प्रसवित्री । कर्त्रा । हर्त्रा । प्रलवित्रा । प्रसवित्रा । तृजन्ता एते ऽन्तोदात्ताः । उदात्तग्रहणं किम् । कर्त्री । हर्त्री । कर्त्रा । हर्त्रा । तृन्नन्तोयमाद्युदात्तः । हल्पूर्वादिति किम् । बहुति नावा ब्राह्मण्या । नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ वाक्पत्नीयं कन्या ॥

नोङ्धात्वोः ॥ १७५ ॥

ऊङो धातोश्च य उदात्तयण् हल्पूर्वस्तस्मात्परा ऽजाद्यसर्वनामस्थानविभक्तिर्नोदात्ता भवति । ब्रह्मबन्ध्वा । ब्रह्मबन्ध्वे । वीरबन्ध्वा । वीरबन्ध्वे । ऊङ् प्रत्ययस्वरेणोदात्तः । तेन सह य एकादेशः सोप्युदात्त इति उदात्तयणवकारस्तस्मादुदात्तत्वे प्रतिषिद्धे उदात्तस्वरितयोर्यणः । स्वरितोनुदात्तस्येति विभक्तिः स्वर्यते । धातुयणः खल्वपि । सकृल्ल्वा । सकृल्ल्वे । खलप्वे । क्विबन्तस्य कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तस्य ओः सुपि यणादेशः ॥

ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ १७६ ॥

अन्तोदात्तादित्येव । ह्रस्वान्तादन्तोदात्तान्नुटश्च परो मतुब् उदात्तो भवति । अग्निमान् । वायुमान् । कर्तृमान् । हर्तृमान् । नुटः खल्वपि । अक्षण्वता । शीर्षण्वता । अन्तोदात्तादित्येव । वसुमान् । वसुशब्द आद्युदात्तस्तस्मान्मतुब् अनुदात्त एव भवति । अत्र च स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदित्येषा परिभाषा नाश्रीयते नुड्ग्रहणात् तेन मरुत्वानित्यत्र न भवति ॥ रेशब्दाच्च मतुप उदात्तत्वं वक्तव्यम् ॥ * ॥ आरेवान् ॥ त्रेश्च प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ त्रिवतीर्याज्यानुवाक्या भवन्तीति ॥

नामन्यतरस्याम् ॥ १७७ ॥

ह्रस्वग्रहणमनुवर्त्तते मतुब्ग्रहणं च । तेन मतुपा ह्रस्वो विशेष्यते मतुपि यो ह्रस्वस्तदन्तादन्तोदात्तादन्यतरस्यां नाम् उदात्तो भवति । अग्नीनाम्२ । वायूनाम्२ । कर्तॄणाम्२ । मतुपा ह्रस्वविशेषणं किम् । भूतपूर्वेपि ह्रस्वे यथा स्यात् । अन्यथा हि साम्प्रतिकएव स्यात् तिसृणां चतसृणामिति । सनुट्कस्य ग्रहणं किम् । धेन्वाम् । शकट्याम् । उदात्तयणो हल्पूर्वादित्ययमन्तोदात्तः । ह्रस्वादित्येव । कुमारीणाम् । अन्तोदात्तादित्येव । ऋपूणाम् । वसूनाम् ॥

ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ १७८ ॥

ह्रयन्ताच्छन्दसि विषये नामुदात्तो भवति बहुलम् । देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् । बह्वीनां पिता । न च भवति नदीनां पारे जयन्तीनां मरुतः ॥

षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः ॥ १७९ ॥

अन्तोदात्तादित्येतदनुवृत्तम् । षट्संज्ञकेभ्यस्त्रि चतुर् इत्येताभ्यां च परा हलादिर्विभक्तिरुदात्ता भवति । षण्णाम् । षड्भिः । षड्भ्यः । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । त्रि । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रयाणाम् । चतुर् । चतुर्भ्यः । चतुर्णाम् । हलादिरिति किम् । चतस्रः पश्य ॥

'झल्युपोत्तमम्' ॥ १८० ॥

षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे यदुपोत्तममुदात्तं भवति । त्रिप्रभृतीनामन्त्यमुत्तमं तत्समीपे च यत्तदुपोत्तमम् । पञ्चभिस्तपस्तपति । सप्तभिः परान् जयति । तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता । चतुर्भिः । झलीति किम् । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । उपोत्तममिति किम् । षड्भिः । षड्भ्यः ॥

विभाषा भाषायाम् ॥ १८१ ॥

षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं भवति विभाषा भाषायां विषये । पञ्चभिः । २ । सप्तभिः । २ । तिसृभिः । २ । चतसृभिः । २ ॥

न गोश्वन्त्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः ॥ १८२ ॥

गो श्वन् साववर्ण सौ प्रथमैकवचने यदवर्णान्तं राड् अङ् क्रुङ् कृद् इत्येतेभ्यो यदुक्तं तन्न भवति । गवा । गवे । गोभ्यामिति । सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिरिति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । सुगुना । सुगवे । सुगुभ्याम् । अन्तोदात्तादुत्तरपदादिति प्राप्तिः । श्वन् । शुना । शुने । श्वभ्याम् । परमशुना । परमशुने । परमश्वभ्याम् । पूर्ववत्प्राप्तिः । साववर्णः । सौ प्रथमैकवचने यदवर्णान्तं तस्य ग्रहणम् । येभ्यः । तेभ्यः । केभ्यः । राट् । राजतिः क्विबन्तः । राजा । परमराजः । अङ् । अञ्चतिः क्विबन्तस्तस्य सनकारस्य ग्रहणं विषयावधारणार्थं, यत्रास्य नलोपो नास्ति तत्र प्रतिषेधो यथा स्यात् । नाञ्चेः पूजायामिति प्रतिषिध्यते नलोपः । प्राञ्चा । प्राङ्भ्याम् । नलोपविषये तु भवत्येव विभक्तेरुदात्तत्वम् । प्राचा । प्राचे । प्राग्भ्याम् । क्रुङ् क्विबन्त एव । क्रुञ्चा । परमक्रुञ्चा । कृत् । करोतिः कृन्ततिर्वा क्विबन्तः । कृता । परमकृता ॥

दिवो झल् ॥ १८३ ॥

दिवः परा झलादिर्विभक्तिर्नोदात्ता भवति । द्युभ्याम् । द्युभिः ।

सावेकाच इति ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्य इति वा प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । झलीति किम् । दिवा ॥

नृ चान्यतरस्याम् ॥ १८४ ॥

नृ इत्येतस्मात्परा झलादिर्विभक्तिरन्यतरस्यां नोदात्ता भवति । नृभ्याम् । नृभिः । नृभ्यः । नृषु । झलित्येव । ना । ने ॥

तित्स्वरितम् ॥ १८५ ॥ अचो यत्

तित्स्वरितं भवति । सन्नन्ताद्यत् । चीकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । ऋहलोर्ण्यत् । कार्यम् । हार्यम् । प्रत्ययाद्युदात्तस्यापवादः ॥

तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः ॥ १८६ ॥

तासेरनुदात्तेतो ङितो ऽकारान्तोपदेशाच्च शब्दात्परं लसार्वधातुकमनुदात्तं च भवति ह्नुङ् इङ् इत्येताभ्यां परं वर्जयित्वा । तासेस्तावत् । कर्त्ता । कर्त्तारौ । कर्त्तारः । प्रत्ययस्वरापवादोयम् । अनुदात्तेतः । आस । आस्ते । वस । वस्ते । ङित् । षूङ् । सूते । शीङ् । शेते । अदुपदेशात् । तुदतः । नुदतः । पचतः । पठतः । अनुबन्धस्यानैकान्तिकत्वादकारान्तोपदेशएव शप् । पवमानः । यजमानः । यद्यत्र मुक् अकारमात्रस्य स्यात् तदा लसार्वधातुकमदुपदेशादनन्तरमिति सिद्धो निघातः । अथाकारान्तस्याङ्गस्य, तथापि लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कर्त्तव्ये बहिरङ्गत्वादसिद्ध इति सिद्धम् । चित्स्वरोप्यनेन लसार्वधातुकानुदात्तत्वेन परत्वाद्बाध्यते । तास्यादिभ्य इति किम् । चिनुतः । चिन्वन्ति । ङिदयं श्नुः पूर्वस्य कार्यं प्रति न तु परस्य । उपदेशग्रहणं किम् । इह च यथा स्यात् पचावः पचाम इति । इह च मा भूत् हतो हथ इति । लग्रहणं किम् । कतीह पवमानाः । सार्वधातुकमिति किम् । शिश्ये । शिश्याते । शिश्यिरे । अह्न्विङोरिति किम् । ह्नुते । यदधीते ॥

(आदिः)सिचो ऽन्यतरस्याम्॥ १८७ ॥

सिचिवृद्धिः ७/२/१ उदात्त इति वर्त्तते । सिजन्तस्यान्यतरस्यामादिरुदात्तो भवति । मा हि कार्ष्टाम् । मा हि कार्ष्टाम् । एकोत्राद्युदात्तः । अपरो ऽन्तोदात्तः । मा हि लाविष्टाम् । २ । एकोत्राद्युदात्तः । अपरो मध्योदात्तः । सिचश्चित्करणादागमानुदात्तत्वं हि बाध्यते ॥ सिच आद्युदात्तत्वे ऽनिटः पितः पक्षे उदात्तत्वं वक्तव्यम् ॥ * ॥ मा हि कार्षम् । २ । अनिट इति किम् । मा हि लाविषम् । २ । मध्योदात्त एवाद्युदात्ताभावपक्षे भवति ॥

स्वपादिर्हिंसामच्यनिटि ॥ १८८ ॥

१- ३।४।२०१ से तस् को ताम्

लसार्वधातुकग्रहणं यदनुवर्त्तते तदच्यनिटीति संबन्धादिह सप्तम्यन्तं भवति । स्वपादिरावृत्करणात् । स्वपादीनां हिंसेश्चाजादावनिटि लसार्वधातुके परतो ऽन्यतरस्यामादिरुदात्तो भवति । स्वपन्ति । २ । श्वसन्ति । २ । हिंसेः खल्वपि । हिंसन्ति । २ । प्रत्ययस्वरेण पक्षे मध्योदात्तः । अचीति किम् । स्वप्यात् । हिंस्यात् । अनिटीति किम् । स्वपितः । श्वसितः ॥ ङित्यजादावयं विधिरिष्यते ॥ इह न भवति । स्वपानि । हिनसानि ॥

अभ्यस्तानामादिः ॥ १८९ ॥

अभ्यस्तानामजादावनिटि । लसार्वधातुके परत आदिरुदात्तो भवति । ददति । ददतु । दधति । दधतु । जक्षति । जक्षतु । जाग्रति । जाग्रतु । अचीत्येव । दद्यात् । अनिटीत्येव । जक्षितः । आदिरिति वर्त्तमाने पुनरादिग्रहणं नित्यार्थम् ॥

अनुदात्ते च १९० ॥

अविद्यमानोदात्ते च लसार्वधातुके परतो ऽभ्यस्तानामादिरुदात्तो भवति । अनजाद्यर्थ आरम्भः * । ददाति । जहाति । दधाति । जिहीते । मिमीते । अनुदात्तइति बहुव्रीहिर्निर्द्देशो लोपयणादेशार्थः । मा हि स्म दधात् । दधात्यत्र ॥

सर्वस्य सुपि ॥ १९१ ॥

सर्वशब्दस्य सुपि परत आदिरुदात्तो भवति । सर्वः । सर्वौ । सर्वे । सुपीति किम् । सर्वतरः । सर्वतमः ॥ प्रत्ययलक्षणेनाप्ययं स्वर इष्यते सर्वस्तोम इति ॥ सर्वस्वरो ऽनकच्कस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सर्वकः । चित्स्वरेणान्तोदात्तो भवति ॥

भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति ॥ १९२ ॥

भी ह्री भृ हु मद जन धन दरिद्रा जागृ इत्येतेषामभ्यस्तानां लसार्वधातुके पिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं भवति । बिभेति । जिह्रेति । बिभर्त्ति । जुहोति । ममत्तु नः परिज्मा । मदेर्बहुलं छन्दसीति विकरणस्य श्लुः । जजनदिन्द्रम् । जन जननइत्यस्य पञ्चमे लकारे रूपम् । धन धान्यइत्यस्य पञ्चमे लकारे दधनत् । दरिद्राति । जागर्ति । भ्यादीनामिति किम् । ददाति । पितीति किम् । दरिद्रति ॥

लिति ॥ १९३ ॥

---

* अनजाद्यर्थ आरम्भ इति पदमञ्जर्यां दर्शनाद्वत्रापपाठः ।

लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं भवति । चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । भैरिकिविधम् । भौलिकिविधम् । ऐषुकारिभक्तम् ॥

आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ॥ १९४ ॥

णमुलि परतो ऽन्यतरस्यामादिरुदात्तो भवति । लोलूयंलोलूयम् । आम्रेडितानुदात्तत्वे कृते पूर्वो लोलूयंशब्द एकत्राद्युदात्तः । अपरत्र लित्स्वरेण मध्योदात्तः ॥

अचः कर्तृयकि ॥ १९५ ॥

उपदेशइति वर्त्तते । अजन्ता ये उपदेशे धातवस्तेषां कर्तृयकि अन्यतरस्यामादिरुदात्तो भवति । लूयते केदारः स्वयमेव । २ । स्तीर्यते केदारः स्वयमेव । २ । यदा ऽऽद्युदात्तत्वं न भवति तदा लसार्वधातुकनिघाते कृते यक एव स्वरो भवति । जनादीनामुपदेशएवात्वं द्रष्टव्यम् । तत्राप्ययं स्वर इष्यते । जायते स्वयमेव । सायते स्वयमेव । खायते स्वयमेव । २ । अच इति किम् । भिद्यते स्वयमेव । कर्तृग्रहणं किम् । लूयते केदारो देवदत्तेन ॥

थलि च सेटीडन्तो वा ॥ १९६ ॥

सेटि थलि इट् वा उदात्तो भवति अन्तो वा आदिर्वा ऽन्यतरस्याम् । लुलविथ । ३ । यदानैते त्रयः स्वरास्तदा लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं भवति । तेनैते चत्वारः स्वराः पर्यायेण भवन्ति । सेटीति किम् । ययाथ । लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तमित्यमेवात्र स्वरो भवति ॥

ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥ १९७ ॥

ञिति निति च नित्यमादिरुदात्तो भवति । गर्गादिभ्यो यञ् । गार्ग्यः । वात्स्यः । वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् । वासुदेवकः । अर्जुनकः । प्रत्ययस्वरापवादोयं योगः । प्रत्ययलक्षणमत्र नेष्यते । तेन गर्गाः बिदाः चञ्चा इत्यत्र यञि अञि कनि च लुप्ते न भवति ॥

आमन्त्रितस्य च ॥ १९८ ॥

आमन्त्रितस्यादिरुदात्तो भवति । देवदत्त । देवदत्तौ । देवदत्ताः । अत्र कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषीति प्राप्तिर्बाध्यते ॥ लुमतापि लुप्ते प्रत्ययलक्षणमत्रेष्यते ॥ सर्पिरागच्छ सप्तागच्छतेति ॥

पथिमथोः सर्वनामस्थाने ॥ १९९ ॥

पथिमथिशब्दावौणादिकाविनिप्रत्ययान्तौ प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तौ तयोः सर्वनामस्थाने परत आदिरुदात्तो भवति । पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः । मन्थाः । मन्थानौ । मन्थानः । सर्वनामस्थानइति किम् । पथः पश्य । मथः

पथ्य । उदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्तोदात्तो भवति । प्रत्ययलक्षणमत्रापि नेष्यते । पथिप्रिय इत्यत्र पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः पथिशब्दः ॥

अन्तश्च तवै युगपत् ॥ २०० ॥

तवैप्रत्ययान्तस्यान्तश्चशब्दादादिश्च युगपदुदात्तौ भवतः । कर्त्तवै । हर्तवै । प्रत्ययाद्युदात्तत्वापवादः । युगपद्ग्रहणं पर्यायनिवृत्त्यर्थम् । एकवर्ज-मिति वचनाद्यौगपद्यं न स्यात् ॥

क्षयो निवासे ॥ २०१ ॥

क्षयशब्दो निवासे ऽभिधेये आद्युदात्तो भवति । क्षियन्ति निवस-न्त्यस्मिन्निति क्षयः पुंसि संज्ञायां घः प्रायेणेति घप्रत्ययान्तस्य प्रत्ययस्वरः प्राप्तः । क्षये जाग्रद्धि प्रपश्यन् । निवासइति किम् । क्षयो वर्त्तते दस्यूनाम् । एरजि-त्ययमजन्तः ॥

जयः करणम् ॥ २०२ ॥

जयशब्दः करणवाची आद्युदात्तो भवति । जयन्ति तेनेति जयः । पुंसि संज्ञायां घः प्रायेणेति घस्तस्य प्रत्ययस्वरः प्राप्तः । जयोश्वः । करणमिति किम् । जयो वर्त्तते ब्राह्मणानाम् । अत्राप्येरजित्ययमजन्तः ॥

वृषादीनां च ॥ २०३ ॥

वृष इत्येवमादीनामादिरुदात्तो भवति । वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । एते सर्वे पचाद्यच्प्रत्ययान्ताः । गय इत्यत्र गायतेर्निपातनादे-त्वम् । नयः । तयः । पयः । वेदः । अंशः । दवः । एते ऽपि तथैवाच्प्रत्य-यान्ताः । सूद इगुपधादिति कप्रत्ययान्तः । गुहाभिदादिरङ्प्रत्ययान्तः ॥ शम-रणौ संज्ञायां संमतौ भावकर्मणोः ॥ शमो भावे रणः कर्मणि अजन्तावेतौ निपातनाद् भावकर्मणोर्भवतः । मन्त्रः पचाद्यजन्तः । शान्तिरिति क्तिजन्तः । कामः । यामः । घजन्तावेतौ । आराधाराकारा भिदादयः । वहो गोचरादिषु घप्रत्ययान्तः । कल्पः । अजन्तः । पादो घजन्तः । तत्र क चित्प्रत्ययस्वरः प्राप्तः क चित्कर्षात्वतो घञोन्त उदात्त इति । वृषादिराकृतिगणः । अविहित-माद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥

संज्ञायामुपमानम् ॥ २०४ ॥

उपमानशब्दः संज्ञायामाद्युदात्तो भवति । चञ्चा । वद्‌ध्रिका । खर-कुटी । दासी । उपमानशब्दा एते उपमेयस्य संज्ञाः । तत्र इवे प्रतिकृताविति यः कन् तस्य लुम्मनुष्यइति लुप् । यद्येवं किमर्थमिदमुच्यते प्रत्ययलक्षणेन सिद्धमाद्युदात्तत्वम् । एतदेव ज्ञापयति क चिदिह स्वरविधौ प्रत्ययलक्षणं न

भवतीति । तथा च पूर्वत्रोदाहृतम् । संज्ञायामिति किम् । अग्निर्माणवकः । उपमानमिति किम् । देवदत्तः ॥

निष्ठा च द्व्यजनात् ॥ २०५ ॥

निष्ठान्तं च द्व्यच् संज्ञायां विषये आद्युदात्तं भवति स चेदादिराकारो न भवति । दत्तः । गुप्तः । बुद्धः । प्रत्ययस्वरापवादः । निष्ठेति किम् । देवः । भीमः । द्व्यजिति किम् । चिन्तितः । रक्षितः । अनादिति किम् । त्रातः । आप्तः । संज्ञायामिति किम् । कृतम् । हृतम् ॥

शुष्कधृष्टौ ॥ २०६ ॥

आदिरुदात्त इति वर्त्तते । शुष्क धृष्ट इत्येतावाद्युदात्तौ भवतः । शुष्कः । धृष्टः । असंज्ञार्थ आरम्भः ॥

आशितः कर्ता ॥ २०७ ॥

आशितशब्दः कर्तृवाची आद्युदात्तो भवति । आशितो देवदत्तः । अशेरयमाङ् पूर्वादविवक्षिते कर्मणि कर्तरि क्तः । तत्र थाथघञिति प्राप्तः स्वरो बाध्यते । कर्तरीति किम् । आशितमन्नम् । आशितं देवदत्तेन । पूर्वत्र कर्मणि क्त, उत्तरत्र भावे ॥

रिक्ते विभाषा ॥ २०८ ॥

रिक्तशब्दे विभाषा आदिरुदात्तो भवति । रिक्तः । रिक्तः । संज्ञायां निष्ठा च द्व्यजनादित्यनेन पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यमाद्युदात्तः ॥

जुष्टार्पिते चच्छन्दसि ॥ २०९ ॥

जुष्ट अर्पित इत्येते शब्दरूपे छन्दसि विषये विभाषा आद्युदात्ते भवतः । जुष्टः । २ । अर्पितः । २ । छन्दसीति किम् । भाषायां प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तावेतौ ॥

नित्यं मन्त्रे ॥ २१० ॥

जुष्ट अर्पित इत्येते शब्दरूपे मन्त्रविषये नित्यमाद्युदात्ते भवतः । जुष्टं देवाना,मर्पितं पितॄणाम् । पूर्वेणात्र विकल्पः प्राप्तः । के चिदत्र जुष्टेत्येतदेवानुवर्तयन्ति । अर्पितशब्दस्य विभाषा मन्त्रेपीच्छन्ति । अन्तोदात्तोपि ह्ययं मन्त्रे पठ्यते । तस्मिन्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता इति ॥

युष्मदस्मदोर्ङसि ॥ २११ ॥

युष्मदस्मदी मदिक्प्रत्ययान्ते ऽन्तोदात्ते तयोर्ङसि परत आदिरुदात्तो भवति । तव स्वम् । मम स्वम् ॥

ङयि च ॥ २१२ ॥

युष्मदस्मदोरिति वर्तते, आदिरुदात्त इति च। ङे इत्येतस्मिंश्च परतो युष्मदस्मदोरादिरुदात्तो भवति। तुभ्यम्। मह्यम्। पृथग्योगकरणं यथासंख्यशङ्कानिवृत्त्यर्थम्॥

यतोऽनावः॥ २१३॥

निष्ठा च द्व्यजनादित्यतो द्व्यज्ग्रहणमनुवर्त्तते। यत्प्रत्ययान्तस्य द्व्यच आदिरुदात्तो भवति न चेन्नौशब्दात्परो भवति। अचो यत्। चेयम्। जेयम्। शरीरावयवाद्यत्। कण्ठ्यम्॥ ओष्ठ्यम्। तित्स्वरितमित्यस्यापवादः। अनाव इति किम्। नाव्यम्। द्व्यच इत्येव। चिकीर्ष्यम्। ललाट्यम्॥

ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः॥ २१४॥

ईड वन्द वृ शंस दुह् इत्येतेषां यो ण्यत् तदन्तस्यादिरुदात्तो भवति। ईड्यम्। वन्द्यम्। वार्यम्। शस्यम्। दोह्या धेनुः द्व्यनुबन्धकत्वाद् ण्यतो यद्ग्रहणेन ग्रहणं नास्तीति तित्स्वरितमित्येतत् प्राप्तम्। वार्यमिति वृङ् संभक्तावित्यस्यायं ण्यत्। क्यब्विधौ हि वृञ एव ग्रहणमिष्यते॥

विभाषा वेण्विन्धानयोः॥ २१५॥

वेणु इन्धान इत्येतयोर्विभाषा आदिरुदात्तो भवति। वेणुः। वेणुः। इन्धानः। इन्धानः। वेणुशब्दोयमजिवृरीभ्यो निदिति णुप्रत्ययान्तो नित्त्वान्नित्यमाद्युदात्तः प्राप्तः। इन्धानशब्दोपि यदा चानशन्तस्तदा चित्त्वादन्तोदात्तः। अथ शानजन्तस्तदा सार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते उदात्तनिवृत्तिस्वरेण मध्योदात्तः तदेवमिन्धाने सर्वथा ऽप्राप्तमाद्युदात्तत्वं पक्षे विधीयते। वेणुरिव वेणुरित्युपमानं यदा संज्ञा भवति तदा संज्ञायामुपमानमिति नित्यमाद्युदात्तत्वमिष्यते॥

त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम्॥ २१६॥

त्याग राग हास कुह श्वठ क्रथ इत्येतेषां विभाषा आदिरुदात्तो भवति। त्यागः। २। रागः। २। हासः। २। एते घञन्तास्तेषां पक्षे कर्षात्वतो घञोन्त उदात्त इत्युदात्तत्वमेव भवति। कुहः। २। श्वठः। २। क्रथः। २। एते पचाद्यजन्ताः॥

उपोत्तमं रिति॥ २१७॥

रिदन्तस्योपोत्तममुदात्तं भवति। त्रिप्रभृतीनामन्त्यमुत्तमं तस्य समीपे यत्तदुपोत्तमम्। करणीयम्। हरणीयम्। पटुजातीयः। मृदुजातीयः। प्रत्ययस्वरापवादोयम्॥

चङ्यन्यतरस्याम्॥ २१८॥

चङन्ते ऽन्यतरस्यामुपोत्तममुदात्तं भवति । मा हि चीकरताम् । २ । न माङ्योगइत्यटि प्रतिषिद्धे हि चेति निघाते ऽदुपदेशादिति लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते चङ एव स्वरे प्राप्ते पक्षे धात्वकार उदात्तो भवति । उपोत्तमग्रहणाद्द्वयोर्न भवति । मा हि दधत् ॥

मतोः पूर्वमात्संज्ञायां स्त्रियाम् ॥ २१९ ॥

मतोः पूर्वं आकार उदात्तो भवति तच्चेन्मत्वन्तं स्त्रीलिङ्गं संज्ञा भवति । उदुम्बरावती । पुष्करावती । वीरणावती । शरावती । शरादीनां चेतिदीर्घः । आदिति किम् । इक्षुमती । द्रुमवती । संज्ञायामिति किम् । खट्वावती । स्त्रियामिति किम् । शरावान् । मतोरिति किम् । गवादिनी ॥

अन्तो ऽवत्याः ॥ २२० ॥

संज्ञायामित्येव । अवतीशब्दान्तस्य संज्ञायामन्त उदात्तो भवति अजिरवती । खदिरवती । हंसवती । कारण्डवती * । ङीपः पित्त्वादनुदात्तत्वं प्राप्तम् । अवत्या इति किमुच्यते न वत्या इत्येवमुच्येत । नैवं शक्यमिहापि स्यात् । राजवती । स्वरविधौ नलोपस्यासिद्धत्वान्नायमवतीशब्दः । वत्वं पुनराश्रयात्सिद्धम् ॥

ईवत्याः ॥ २२१ ॥

ईवतीशब्दान्तस्यान्त उदात्तो भवति स्त्रियां संज्ञायां विषये । अहीवती । कृषीवती । मुनीवती † ॥

चौ ॥ २२२ ॥

चावित्यञ्चतिर्लुप्तनकारो गृह्यते । तस्मिन्परतः पूर्वस्यान्त उदात्तो भवति । दधीचः पश्य । दधीचा । दधीचे । मधूचः पश्य । मधूचा । मधूचे । उदात्तनिवृत्तिस्वरापवादोयम् ॥ चावतद्धित इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ दाधीचः । माधूचः । प्रत्ययस्वर एवात्र भवति ॥

समासस्य ॥ २२३ ॥

समासस्यान्त उदात्तो भवति । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । कन्यास्वनः । पटहशब्दः । नदीघोषः । राजपृषत् । ब्राह्मणसमित् । स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति हलन्तेष्वन्तोदात्तत्वं भवति । नानापदस्वरस्यापवादः ॥

इति काशिकायां वृत्तौ षष्ठस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

---

* वेत्रवतीत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† कपीवतीत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

॥ अथ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ १ ॥

पूर्वपदग्रहणमत्र पूर्वपदस्थे स्वरे उदात्ते स्वरिते वा वर्त्तते । बहुव्रीहौ समासे पूर्वपदस्य यः स्वरः स प्रकृत्या भवति, स्वभावेनावतिष्ठते, न विकारमनुदात्तत्वमापद्यते । समासान्तोदात्तत्वे हि सति अनुदात्तं पदमेकवर्जमिति सो ऽनुदात्तः स्यादिति समासान्तोदात्तत्वापवादोयमारभ्यते । कार्ष्णोत्तरासङ्गाः । कृष्णो मृगस्तस्य विकारः कार्ष्णः । प्राणिरजतादिभ्योञित्यञ्प्रत्ययान्तो ञित्स्वरेणाद्युदात्तः । यूपवलजः । यूपशब्द उणादिषु कुसुयुभ्यश्चेति पप्रत्ययान्तः । तत्र च दीर्घ इति निदिति च वर्त्तते तेनाद्युदात्तः । ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः । ब्रह्मचारिशब्दः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः । स्नातकपुत्रः । स्नातशब्दः क्तप्रत्ययान्तो नित्स्वरेणाद्युदात्तः । अध्यापकपुत्रः । लित्स्वरेणाध्यापकशब्दो मध्योदात्तः । श्रोत्रियपुत्रः । श्रोत्रियशब्दो नित्त्वादाद्युदात्तः । मनुष्यनाथः । मनुष्यशब्दस्तित्स्वरितमिति स्वरितान्तः । उदात्तग्रहणं स्वरितग्रहणं चात्रानुवर्त्तते, तेन सर्वानुदात्ते पूर्वपदे विधिरेव नास्तीति समासान्तोदात्तत्वं भवति । समभाग इति समशब्दो हि सर्वानुदात्तः ॥

तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ २ ॥

तत्पुरुषे समासे तुल्यार्थं तृतीयान्तं सप्तम्यन्तमुपमानवाचि अव्ययं द्वितीयान्तं कृत्यान्तं च यत्पूर्वपदं तत्प्रकृतिस्वरं भवति । तुल्यार्थ । तुल्यश्वेतः । तुल्यलोहितः । तुल्यमहान् । सदृक्श्वेतः । सदृग्लोहितः । सदृग्महान् । सदृशश्वेतः । सदृशलोहितः । सदृशमहान् । एते कृत्यतुल्याख्या अजात्येति कर्मधारयाः । तत्र तुल्यशब्दो यतो ऽनाव इत्याद्युदात्तः । सदृक्शब्दः । समानान्ययोश्चेति क्विन्प्रत्ययान्तः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः । सदृशशब्दोपि कञन्तो मध्योदात्तः । तुल्यार्थ । तृतीया । शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः । किरिणा काणः, किरिकाणः । शङ्कुपूर्वाल्लातेर्घञर्थे कविधानमिति वा कप्रत्ययान्तः शङ्कुलाशब्दोन्तोदात्तः । किरिशब्दोपि किरतेः कॄगॄशॄपृकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्चेतीकारप्रत्ययः कित्औणादिकस्तेनासावन्तोदात्तः । तृतीया । सप्तमी । अक्षेषु शौण्डो, ऽक्षशौण्डः । पानशौण्डः । अक्षेर्देवनइति । सप्रत्ययान्तोक्षशब्दोन्तोदात्तः । पानशब्दो ल्युडन्तो लित्स्वरेणाद्युदात्तः । सप्तमी । उपमान । शस्त्रीश्यामा । कुमुदश्येनी । हंसगद्गदा । न्यग्रोधपरिमण्डला । दूर्वाकाण्डश्यामा ।

जी ७

शरकाण्डगौरी । उपमानानि सामान्यवचनैरिति समासः । शस्त्रीशब्दो ङीष्प्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः । कुमुदशब्दोऽपि कौ मोदत इति मूलविभुजादित्वात्कप्रत्ययान्तो नञ्विषयस्यानिसन्तस्येति वा ऽऽद्युदात्तः । हंसशब्दो वृतॄवदिहनिकमिकषिभ्यः स इति सप्रत्ययान्तः । न्यग्रोहतीति न्यग्रोधः । पचादित्वादच्प्रत्ययान्तस्तस्य 'न्यग्रोधस्य च केवलस्ये'ति निपातनाद् हकारस्य धकारो मध्योदात्तत्वं च । दूर्वाकाण्डशरकाण्डशब्दौ षष्ठीतत्पुरुषावुत्तरपदाद्युदात्तौ । उपमान । अव्यय । अब्राह्मणः । अवृषलः । कुब्राह्मणः । कुवृषलः । निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । अतिखट्वः । अतिमालः । एतान्यव्ययान्याद्युदात्तानि ॥ अव्यये नञ्कुनिपातानामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । स्नात्वाकालक इति । अव्यय । द्वितीया । मुहूर्त्तसुखम् । मुहूर्त्तरमणीयम् । सर्वरात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना । अत्यन्तसंयोगे चेति द्वितीयासमासः । मुहूर्त्तशब्दः पृषोदरादिरन्तोदात्तः । सर्वरात्रशब्दोऽच्प्रत्ययान्तः । द्वितीया । कृत्य । भोज्योष्णम् । भोज्यलवणम् । पानीयशीतम् । हरणीयचूर्णम् । भोज्यशब्दो ण्यदन्तोऽन्तस्वरितः । पानीयहरणीयशब्दयोरुपोत्तमं रितीति ईकार उदात्तः ॥

वर्णो वर्णेष्वनेते ॥ ३ ॥

प्रकृत्या पूर्वपदं तत्पुरुष इति च वर्तते । वर्णं वर्णवाचि पूर्वपदं वर्णवाचिष्वेवोत्तरपदेषु एतशब्दवर्जितेषु परतस्तत्पुरुषे समासे प्रकृतिस्वरं भवति । कृष्णसारङ्गः, लोहितसारङ्गः । कृष्णकल्माषः, लोहितकल्माषः । कृषेर्वर्ण इति कृष्णशब्दो नक्प्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः । लोहितशब्दोऽपि रुहेरश्च लो वेतीतन्प्रत्ययान्त आद्युदात्तः । वर्ण इति किम् । परमकृष्णः । वर्णेष्विति किम् । कृष्णतिलाः । अनेत इति किम् । कृष्णैतः । लोहितैतः ॥

गाधलवणयोः प्रमाणे ॥ ४ ॥

प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे समासे गाध लवण इत्येतयोरुत्तरपदयोः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । शम्बगाधमुदकम् । अरित्रगाधमुदकम् । तत्प्रमाणमित्यर्थः । गोलवणम् । अश्वलवणम् । यावद्गवे दीयते तावदित्यर्थः । षष्ठीसमासा एते । तत्र शमेर्बश्चेति बन्प्रत्ययान्तत्वाच्छम्बशब्द आद्युदात्तः । अरित्रशब्दोऽर्त्तिलूधूसू इतीत्रप्रत्ययान्तो मध्योदात्तः । गोशब्दो डोप्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः । अश्वशब्दोऽशूप्रुषीति क्वन्प्रत्ययान्त आद्युदात्तः । प्रमाणमियत्तापरिच्छेदमात्रमिह द्रष्टव्यं, पुनरायाम एव । स्वरव्यङ्ग्यं च प्रमाणविशेषविषयत्वमेतेषाम् । प्रमाण इति किम् । परमगाधम् । परमलवणम् ॥

दायाद्यं दायादे ॥ ५ ॥

तत्पुरुषे समासे दायादशब्दउत्तरपदे दायाद्यवाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं

भवति । विद्यादायादः । धनदायादः । संज्ञायां समजनिषदेति विद्याशब्दः क्यप्प्रत्ययान्तः । उदात्त इति च तत्र वर्त्तते, तेनायमन्तोदात्तः । कृपृवृजिमन्दिनिधाञ्भ्यः क्युरिति बहुलवचनात् केवलादपि धाञः क्युप्रत्ययस्तेन धनशब्दः प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः । अथ विद्यादायाद इति केन षष्ठी, स्वामीश्वराधिपतिदायादेति । यद्येवं प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यतइति समासप्रतिषेधः प्राप्नोति । एवं तर्हि शेषलक्षणैवात्र षष्ठी तस्यास्तु सप्तमी विधायमाना बाधिका मा विज्ञायीति पुनरभ्यनुज्ञायते । दायाद्यमिति किम् । परमदायादः । अत्र समासान्तोदात्तत्वमेव भवति ॥

प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ॥ ६ ॥

तत्पुरुषे समासे चिरकृच्छ्रयोरुत्तरपदयोः प्रतिबन्धिवाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । गमनचिरम् । गमनकृच्छ्रम् । व्याहरणचिरम् । व्याहरणकृच्छ्रम् । गमनव्याहरणशब्दौ ल्युडन्तौ तयोर्लित्स्वरः । गमनं च यच्चिरं चेति विशेषणसमासोयं मयूरव्यंसकादिर्वा द्रष्टव्यः । गमनं हि कारणविकलतया चिरकालभावि कृच्छ्रयोगि वा प्रतिबन्धि जायते । प्रतिबन्धीति किम् । मूत्रकृच्छ्रम् ॥

पदे ऽपदेशे ॥ ७ ॥

अपदेशो व्याजस्तद्वाचिनि तत्पुरुषे समासे पदशब्दउत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । मूत्रपदेन प्रस्थितः । उच्चारपदेन प्रस्थितः । मूत्रशब्दः सिविमुच्योष्टेरूच्चेति ष्ट्रन्प्रत्ययान्तो मूत्रयतेर्वा घञन्त आद्युदात्तः । उच्चारशब्दोपि घञन्तस्थाथघञ्क्ताजबित्रकाणामित्यन्तोदात्तः । विशेषणसमासोयं मयूरव्यंसकादिर्वा । अपदेशइति किम् । विष्णोः पदं, विष्णुपदम् ॥

निवाते वातत्राणे ॥ ८ ॥

निवातशब्दउत्तरपदे वातत्राणवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुट्येव निवातं, कुटीनिवातम् । शमीनिवातम् । कुड्यनिवातम् । वातस्याभावो निवात,मर्थाभाव इत्यव्ययीभावः । निरुद्धो वातोस्मिन्निति वा निवातमिति बहुव्रीहिः । तत्र कुड्यादिहेतुके निवाते कुड्यादयो वर्तमानाः समानाधिकरणेन निवातशब्देन सह समस्यन्ते । कुटीशमीशब्दौ गौरादिङीषन्तावन्तोदात्तौ । कुड्यशब्दोपि कवतेर्यत् डक्किच्चेति यत्प्रत्ययान्त आद्युदात्त इत्येके । ड्यक् प्रत्ययान्तोन्तोदात्त इत्यपरे । वातत्राणइति किम् । राजनिवाते वसति । सुखं मातृनिवातम् । निवातशब्दोयं पार्श्ववाची रूढिशब्दस्तत्रोभयत्र षष्ठीसमासः ॥

शारदे ऽनार्तवे ॥ ९ ॥

ऋतौ भवमार्तवम् । अनार्तववाचिनि शारदशब्दउत्तरपदे तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । रज्जुशारदमुदकम् । दृषत्शारदाः सक्तवः । शारदशब्दोयं प्रत्यग्रवाची तस्य नित्यसमासो ऽस्वपदविग्रह इष्यते । सद्यो रज्जूद्धृतमुदकं प्रत्यग्रमनुपहतं रज्जुशारदमुच्यते । रज्जुशब्दः सृजेरसुम् चेति उप्रत्ययान्त आदिलोपश्च । धान्ये निदिति च तत्र वर्त्तते तेनाद्युदात्तः । दृषत्शब्दो दृणातेः षुग् ह्रस्वश्चेति अदिकृप्रत्ययान्तोन्तोदात्तः । अनार्तवइति किम् । परमशारदम् । उत्तमशारदम् । शरदि ऋतुविशेषे भवं यत्तदिह शारदम् ॥

अध्वर्युकषाययोर्जातौ ॥ १० ॥

अध्वर्यु कषाय इत्येतयोर्जातिवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । प्राच्याध्वर्युः । कठाध्वर्युः । कलापाध्वर्युः । एते समानाधिकरणसमासा जातिवाचिनो नियतविषया,स्तत्र प्राच्यशब्दो यत्प्रत्ययान्त आद्युदात्तः । कठशब्दः पचाद्यचि व्युत्पादितस्ततः कठेन प्रोक्तमिति वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्चेति णिनिस्तस्य कठचरकाल्लुगिति लुक् । कलापिना प्रोक्तमिति कलापिनोण् तस्मिन्निणयनपत्यइति प्रकृतिभावे प्राप्ते नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानमिति टिलोपः । तदेवं कलापशब्दोन्तोदात्तः । सर्पिर्मण्डकषायम् । उमापुष्पकषायम् । दौवारिककषायम् । षष्ठीसमासव्युत्पादिता रूढिशब्दा एते । तत्र सर्पिर्मण्डशब्द उमापुष्पशब्दश्च षष्ठीसमासावन्तोदात्तौ । दौवारिकशब्दोपि द्वारे नियुक्त इति ठकि सत्यन्तोदात्त एव । जाताविति किम् । परमाध्वर्युः । परमकषायः ॥

सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये ॥ ११ ॥

सदृश प्रतिरूप इत्येतयोरुत्तरपदयोः सादृश्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । पितृसदृशः । मातृसदृशः । पितृमातृशब्दावुणादिष्वन्तोदात्तौ निपातितौ । षष्ठीसमासार्थं च सदृशग्रहणमिह तदलुकि षष्ठ्याः प्रयोजयति दास्याः सदृशो वृषल्याः सदृश इति । अत्र दासीवृषलीशब्दयोरन्तोदात्तत्वादुदात्तयणो हल्पूर्वादिति विभक्तिरन्तोदात्ता । पितृप्रतिरूपः । मातृप्रतिरूपः । सादृश्यइति किम् । परमसदृशः । उत्तमसदृशः । समासार्थोत्र पूज्यमानता न सादृश्यम् ॥

द्विगौ प्रमाणे ॥ १२ ॥

द्विगावुत्तरपदे प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । प्राच्यसप्तसमः । गान्धारिसप्तसमः । सप्तसमाः प्रमाणमस्येति

मात्रच उत्पन्नस्य प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति लुक् । प्राच्यश्चासौ सप्तसमश्चेति, प्राच्यसप्तसमः । प्राच्यशब्द आद्युदात्तः । गान्धारिशब्दः कर्दमादित्वादाद्युदात्तो मध्योदात्तो वा । द्विगावित्ति किम् । व्रीहिप्रस्थः । प्रमाणइति किम् । परमसप्तसमः ॥

गन्तव्यपण्यं वाणिजे ॥ १३ ॥

वाणिजशब्दउत्तरपदे तत्पुरुषे समासे गन्तव्यवाचि पण्यवाचि च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । मद्रवाणिजः । काश्मीरवाणिजः । गान्धारिवाणिजः । मद्रादिषु गत्वा व्यवहरन्तीत्यर्थः । सप्तमीसमासा एते । तत्र मद्रशब्दो रक्प्रत्ययान्तत्वादन्तोदात्तः । काश्मीरशब्दोपि पृषोदरादिषु मध्योदात्तः । गान्धारिशब्दः कर्दमादिषु पठ्यते तत्र कर्दमादीनां वेति पक्षे आद्युदात्तो भवति द्वितीयो वा । पण्य । गोवाणिजः । अश्ववाणिजः । गोशब्दोन्तोदात्तः । अश्वशब्द आद्युदात्तः । गन्तव्यपण्यमिति किम् । परमवाणिजः । उत्तमवाणिजः ॥

मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके ॥ १४ ॥

मात्रा उपज्ञा उपक्रम छाया एतेषूत्तरपदेषु नपुंसकवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । भिक्षामात्रं न ददाति याचितः । समुद्रमात्रं न सरो ऽस्ति किं चन । मात्रशब्दोयं वृत्तिविषयएव तुल्यप्रमाणे वर्त्तते । तत्र भिक्षायास्तुल्यप्रमाणमित्यस्वपदविग्रहः षष्ठीसमासः । तत्र भिक्षाशब्दो गुरोश्च हल इत्यप्रत्ययान्तोदात्तः । समुद्रशब्दोपि फिषि पाटलापालङ्काम्बासागरार्थानामित्यन्तोदात्त एव । उपज्ञा । पाणिनोपज्ञकालकं व्याकरणम् । व्याड्युपज्ञं दुष्करणम् । आपिशल्युपज्ञं गुरुलाघवम् । षष्ठीसमासा एते । तत्र पणिनोपत्यमित्यणन्तः पाणिनशब्दः प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः । व्याडिरिञन्तत्वादाद्युदात्तः । तद्वदापिशलिः । उपक्रम । आढ्योपक्रमं प्रासादः । दर्शनीयोपक्रमम् । सुकुमारोपक्रमम् । नन्दोपक्रमाणि मानानि । एतेपि षष्ठीसमासा एव । तत्रैत्यैनं ध्यायन्तीत्याढ्यः । घञर्थे कविधानमिति कप्रत्यय आङ्पूर्वाद् ध्यायतेः पृषोदरादित्वाद्धस्य ढत्वम् । तदयमाढ्यशब्दस्थाथादिस्वरेणान्तोदात्तः । दर्शनीयशब्दो रित्त्वादुपोत्तमोदात्तः । सुकुमारशब्दो नञ्सुभ्यामित्यन्तोदात्तः । नन्दशब्दः पचाद्यचि व्युत्पादितः । उपज्ञोपक्रमान्तस्य तत्पुरुषस्य नपुंसकलिङ्गतोपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायामिति । छाया । इषुच्छायम् । इषुशब्द इषेः किच्चेत्युप्रत्ययान्तस्तत्र च धान्ये नित्दिति वर्त्तते तेनाद्युदात्तः । धनुःशब्दोपि नब्विषयस्यानिसन्तस्येत्याद्योदात्त एव । इषूणां छायेति षष्ठीसमासः । छायाबाहुल्यइति नपुंसकलिङ्गता । नपुंसकइति किम् । कुड्यच्छाया ॥

सुखप्रिययोर्हिते ॥ १५ ॥

सुख प्रिय इत्येतयोरुत्तरपदयोर्हितवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। गमनसुखम्। वचनसुखम्। व्याहरणसुखम्। सुख। प्रिय। गमनप्रियम्। वचनप्रियम्। व्याहरणप्रियम्। समानाधिकरणसमासा एते। तत्र सुखप्रियशब्दौ तद्धितावायत्यां प्रीतिकरे वर्तेते। तद्धि हितं यदायत्यां प्रीतिं करोति। गमनादिषु ल्युडन्तेषु लित्स्वरः। हितइति किम्। परमसुखम्। परमप्रियम् ॥

प्रीतौ च ॥ १६ ॥

प्रीतौ गम्यमानायां सुख प्रिय इत्येतयोरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। ब्राह्मणसुखं पायसम्। छात्रप्रियो ऽनध्यायः। कन्याप्रियो मृदङ्गः। सुखप्रिययोः। प्रीत्यव्यभिचारादिह प्रीतिग्रहणं तदतिशयप्रतिपत्त्यर्थम्। ब्राह्मणच्छात्रशब्दौ प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तौ। कन्याशब्दः स्वरितान्तः। प्रीतावित्ति किम्। राजसुखम्। राजप्रियम् ॥

स्वं स्वामिनि ॥ १७ ॥

स्वामिशब्दउत्तरपदे तत्पुरुषे समासे स्ववाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। गोस्वामी। अश्वस्वामी। धनस्वामी। अश्वधनगवां कथित एव स्वरः। स्वमिति किम्। परमस्वामी ॥

पत्यावैश्वर्ये ॥ १८ ॥

पतिशब्दउत्तरपदे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। गृहपतिः। सेनापतिः। नरपतिः। धान्यपतिः। गेहे क इति प्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तो गृहशब्दः। सह इनेन वर्त्ततइति बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदमिति सेनाशब्द आद्युदात्तः। नृ नये एतस्माद् ऋदोरबिति अप्प्रत्ययान्त आद्युदात्तो नरशब्दः। धान्यमन्तःस्वरितम्। ऐश्वर्यमिति किम्। ब्राह्मणो वृषलीपतिः। वृषल्या भर्तेत्यर्थः ॥

न भूवाक्चिद्दिधिषु ॥ १९ ॥

पतिशब्दउत्तरपदे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे भू वाक् चित् दिधिषू इत्येतानि पूर्वपदानि प्रकृतिस्वराणि न भवन्ति। पूर्वेण प्राप्तः स्वरः प्रतिषिध्यते। भूपतिः। वाक्पतिः। चित्पतिः। दिधिषूपतिः। षष्ठीसमासा एते समासस्वरेणान्तोदात्ता भवन्ति ॥

वा भुवनम् ॥ २० ॥

पति शब्दउत्तरपदे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे भुवनशब्दः पूर्वपदं वा प्रकृतिस्वरं भवति। भुवनपतिः। २। पूर्वपदप्रकृतिस्वरपक्षे आदिरुदात्तः।

रञ्जेः क्युविति वर्त्तमाने भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसीति क्युन्प्रत्ययान्तो भुवनशब्द आद्युदात्तो व्युत्पादितः । कथं भुवनपतिरादित्य इति । उणादयो बहुलमिति बहुलवचनाद्भाषायामपि प्रयुज्यते ॥

आशङ्काबाधनेदीयस्सु संभावने ॥ २१ ॥

प्रकृत्या पूर्वपदं तत्पुरुषइति वर्त्तते । आशङ्क आबाध नेदीयस् इत्येतेषू-त्तरपदेषु संभावनवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । अस्ति-त्वाध्यवसायः संभावनम् । गमनाशङ्कं वर्त्तते । गमनमाशङ्क्यतइति संभाव्यते । वचनाशङ्कम् । व्याहरणाशङ्कम् । आबाध । गमनाबाधम् । वचनाबाधम् । व्या-हरणाबाधम् । गमनं बाध्यतइति संभाव्यते । नेदीयस् । गमननेदीयः* । व्या-हरणनेदीयः । गमनमतिनिकटतर†मिति संभाव्यते । संभावनइति किम् । पर-मनेदीयः । पूर्वपदानि ल्युडन्तान्युक्तस्वराणि ॥

पूर्वे भूतपूर्वे ॥ २२ ॥

पूर्वशब्दउत्तरपदे भूतपूर्ववाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । आढ्यो भूतपूर्वं आढ्यपूर्वः । पूर्वशब्दो वृत्तिविषये भूतपूर्वे वर्त्तते । तत्र विशेषणं विशेष्येणेति समासः । मयूरव्यंसकादिर्वा द्रष्टव्यः । दर्शनीयपूर्वः । सुकुमारपूर्वः । भूतपूर्वइति किम् । परमपूर्वः । उत्तमपूर्वः । अत्र परमश्चासौ पूर्वश्चेति समासो न तु परमो भूतपूर्व इति । तथा हि सत्युदाहरणमेव भवति ॥

सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये ॥ २३ ॥

सविध सनीड समर्याद सवेश सदेश इत्येतेषूत्तरपदेषु सामीप्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । मद्रसविधम् । गान्धारिसविधम् । काश्मीरसविधम् । मद्रसनीडम् । गान्धारिसनीडम् । काश्मीरसनीडम् । मद्र-समर्यादम् । गान्धारिसमर्यादम् । काश्मीरसमर्यादम् । मद्रसवेशम् । गान्धा-रिसवेशम् । काश्मीरसवेशम् । मद्रसदेशम् । गन्धारिसदेशम् । काश्मीरसदे-शम् । पूर्वपदान्युक्तस्वराणि । सविधादीनां सह विधयेत्येवमादिका व्युत्पत्तिरेव केवलम् । समीपवाचिनस्त्वेते समुदायाः । मद्राणां सविधं समीपमित्यर्थः । सामीप्यइति किम् । सह मर्यादया वर्त्तते समर्यादं क्षेत्रम् । देवदत्तस्य सम-र्यादं देवदत्तसमर्यादम् । सविधादिष्विति किम् । देवदत्तसमया ॥

विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ॥ २४ ॥

विस्पष्टादीनि पूर्वपदानि गुणवचनेषूत्तरपदेषु प्रकृतिस्वराणि भवन्ति ।

---

* वचननेदीय इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

† अन्तिकतम पा० २ ।

विस्पष्टकटुकम् । विचित्रकटुकम् । व्यक्तकटुकम् । विस्पष्टलवणम् । विचित्रलवणम् । व्यक्तलवणम् । विस्पष्टं कटुकमिति विगृह्य सुप्सुपेति समासः । विस्पष्टादयो ह्यत्र प्रवृत्तिनिमित्तस्य विशेषणम् * । कटुकादिभिश्च शब्दैर्गुणवद्द्रव्यमभिधीयतइत्यसामानाधिकरण्यमतो नास्ति कर्मधारयः । विस्पष्टशब्दो गतिरनन्तर इत्याद्युदात्तः । विचित्रशब्दो ऽव्ययस्वरेण । विचित्तशब्दमन्ये पठन्ति । सो ऽपि बहुव्रीहिस्वरेणाद्युदात्त एव । व्यक्तशब्द उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो ऽनुदात्तस्येत्यादिस्वरितः । ये चात्रापरे पठन्ति तत्र संपन्नशब्दस्याथादिस्वरेणान्तोदात्तः । पटुपण्डितशब्दौ प्रत्ययस्वरेण । कुशलशब्दः कृत्स्वरेणान्तोदात्तः । चपलशब्दश्चित्स्वरेणान्तोदात्तः । चुपेरच्चोपधाया इत्यत्र हि चिदिति वर्तते । निपुणशब्दस्याथादिस्वरेणान्तोदात्तः । पुणेरिगुपधलक्षणः कप्रत्ययोयम् । विस्पष्टादीनीति किम् । परमलवणम् । उत्तमलवणम् । गुणवचनेष्विति किम् । विस्पष्टब्राह्मणः । विस्पष्ट । विचित्र । व्यक्त । संपन्न । कटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण ॥

श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये ॥ २५ ॥

श्र, ज्य, अवम कन् इत्येतेषु पापशब्दवति चोत्तरपदे कर्मधारये समासे भाववाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । गमनश्रेष्ठम् । गमनश्रेयः । ज्य । वचनज्येष्ठम् । वचनज्यायः । अवम । गमनावमम् । वचनावमम् । कन् । गमनकनिष्ठम् । गमनकनीयः । पापवत् । गमनपापिष्ठम् । गमनपापीयः । ल्युडन्तान्येतानि पूर्वपदानि लित्स्वरेणाद्युदात्तानि । श्रज्यकनामादेशानां ग्रहणमिति सामर्थ्यात्तद्वदुत्तरपदं गृह्यते । श्रादिष्विति किम् । गमनशोभनम् । भावइति किम् । गम्यते ऽनेनेति गमनं तत् श्रेयो गमनश्रेयः । कर्मधारयइति किम् । गमनं श्रेयो गमनश्रेयः ॥

कुमारश्च ॥ २६ ॥

कुमारशब्दः पूर्वपदं कर्मधारये समासे प्रकृतिस्वरं भवति । कुमारश्रमणा । कुमारकुलटा । कुमारतापसी । कुमारशब्दोन्तोदात्तः । अत्र केचिल्लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषया कुमारश्रमणादिभिरित्यत्रैव समासे स्वरमेतमिच्छन्ति । केचित्पुनरविशेषेण सर्वत्रैव कर्मधारये ॥

आदिः प्रत्येनसि ॥ २७ ॥

कर्मधारयइति वर्त्तते । प्रतिगत एनसा प्रतिगतमेनो वा यस्य सः प्रत्येनाः । तस्मिन्नुत्तरपदे कर्मधारये कुमारस्यादिरुदात्तो भवति । कुमारप्रत्येनाः । उदात्त इत्येतदत्र सामर्थ्याद्वेदितव्यम् । पूर्वपदप्रकृतिस्वर एव ह्ययमादेरुपदिश्यते ॥

* न द्रव्यस्येत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

पूगेष्वन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥

पूगा गणास्तद्वाचिन्युत्तरपदे कर्मधारये समासे कुमारस्यान्यतरस्यामादिरुदात्तो भवति । कुमारचातकाः । २ । कुमारलोहध्वजाः । २ । कुमारबलाहकाः । २ । कुमारजीमूताः । २ । चातकादयः पूगशब्दास्तेभ्यः पूगाञ्ञ्यो ग्रामणीपूर्वादिति ञ्यः प्रत्ययस्तस्य तद्राजस्य बहुष्विति लुक् । अत्र यदा ऽऽद्युदात्तत्वं न भवति तदा कुमारश्चेति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमेके कुर्वन्ति । ये तु तत्र प्रतिपदोक्तस्य ग्रहणमिच्छन्ति तेषां समासान्तोदात्तत्वमेव भवति ॥

इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ ॥ २९ ॥

इगन्तउत्तरपदे कालवाचिनि कपाल भगाल शराव इत्येतेषु च द्विगौ समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । इगन्त । पञ्चारत्निः । दशारत्निः । पञ्चारत्नयः प्रमाणमस्य दशारत्नयः प्रमाणमस्येति तद्धितार्थे द्विगुः प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति मात्र चो लोपः । इगन्त । काल । पञ्चमास्यः । दशमास्यः । पञ्च मासान्भृतो भूतो भावी वेति तद्धितार्थे द्विगोर्यप् । पञ्चवर्षः । दशवर्षः । वर्षाल्लुक् चेति ठञो लुक् । काल । कपाल । पञ्चकपालः । दशकपालः । कपाल । भगाल । पञ्चभगालः । दशभगालः । भगाल । शराव । पञ्चशरावः । दशशरावः । संस्कृतं भक्षा इति तद्धितार्थएते समासा द्विगोर्लुगनपत्य इति कृताणप्रत्ययलोपा द्रष्टव्याः । इगन्तादिष्विति किम् । पञ्चभिरश्वैः क्रीतः पञ्चाश्वः दशाश्वः । द्विगाविति किम् । परमारत्निः । परमशरावम् । पञ्चारत्न्यौ दशारत्नय इति च यणगुणयोर्बहिरङ्गलक्षणयोरसिद्धत्वात् स्थानिवद्भावाद्वा द्विगुस्वर इगन्तलक्षणः प्रवर्त्तते ॥

बह्वन्यतरस्याम् ॥ ३० ॥

बहुशब्दः पूर्वपदमिगन्तादिषूत्तरपदेषु द्विगौ समासे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पः । बह्वरत्निः । २ । बहुमास्यः । २ । बहुकपालः । २ । बहुभगालः । २ । बहुशरावः । २ । बहुशब्दोन्तोदात्तस्तस्य प्रकृतिस्वरे कृते यत्र यणादेशस्तत्रोदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो ऽनुदात्तस्येत्येष स्वरो भवति ॥

दिष्टिवितस्त्योश्च ॥ ३१ ॥

दिष्टि वितस्ति इत्येतयोरुत्तरपदयोर्द्विगौ समासे पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । पञ्चदिष्टिः । २ । पञ्चवितस्तिः । २ । दिष्टिवितस्ती प्रमाणे तेनात्र मात्रचो लुक् ॥

सप्तमी सिद्धशुष्क पक्वबन्धेष्वकालात् ॥ ३२ ॥

सप्तम्यन्तं पूर्वपदं सिद्ध शुष्क पक्व बन्ध इत्येतेषूत्तरपदेषु प्रकृतिस्वरं भवति सा चेत्सप्तमी कालाच्च भवति । सांकाश्यसिद्धः । काम्पिल्यसिद्धः । सांकाश्यकाम्पिल्यशब्दौ ण्यप्रत्ययान्तावन्तोदात्तौ । फिषि तु सांकाश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानामन्तः पूर्वं वेति पठ्यते । तत्र पक्षे मध्योदात्तावपि भवतः । शुष्क । ऊकशुष्कः । निधनशुष्कः । ऊकशब्दो बहुलवचनादवतेः कक्प्रत्ययान्तोन्तोदात्तः । निधनशब्दो निधाञः क्युप्रत्यये मध्योदात्तः । पक्व । कुम्भीपक्वः । विलासीपक्वः* । भ्राष्ट्रपक्वः । कुम्भीविलासीशब्दौ ङीपन्तावन्तोदात्तौ । भ्राष्ट्रशब्दष्ट्रन्प्रत्ययान्त आद्युदात्तः । बन्ध । चक्रबन्धः । चारकबन्धः । चक्रशब्दोन्तोदात्तः । चारकशब्दो ण्वुलन्त आद्युदात्तः । अकालादिति किम् । पूर्वाह्णसिद्धः । अपराह्णसिद्धः सप्तमीस्वरः कृत्स्वरेण बाधितः पुनरयं विधीयते† ॥

परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु ॥ ३३ ॥

परि प्रति उप अप इत्येते पूर्वपदभूता वर्ज्यमानवाचिनि अहरवयववाचिनि रात्र्यवयववाचिनि चोत्तरपदे प्रकृतिस्वरा भवन्ति । परित्रिगर्तं वृष्टो देवः । परिसौवीरम् । परिसार्वसेनि । प्रति । प्रतिपूर्वाह्णम् । प्रत्यपराह्णम् । प्रतिपूर्वरात्रम् । प्रत्यपररात्रम् । उप । उपपूर्वाह्णम् । उपापराह्णम् । उपपूर्वरात्रम् । उपापररात्रम् । अप । अपत्रिगर्तं वृष्टो देवः । अपसौवीरम् । अपसार्वसेनि । निपाता आद्युदात्ता उपसर्गाश्चाभिवर्जमिति आद्युदात्तानि पूर्वपदानि । तत्पुरुषे बहुव्रीहौ च सिद्धत्वादव्ययीभावार्थायमारम्भः । तत्रापपरी वर्जने वर्त्तेते इति तयोरेव वर्ज्यमानमुत्तरपदं नेतरयोः । अहोरात्रावयवा अपि वर्ज्यमाना एव तयोर्भवन्तीति न पृथगुदाह्रियते । वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेष्विति किम् । प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति । परिवनमित्यत्र वनं समासइत्येतद्भवति ॥

राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु ॥ ३४ ॥

राजन्यवाचिनां बहुवचनान्तानां यो द्वन्द्वो ऽन्धकवृष्णिषु वर्त्तते तत्र पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । श्वाफल्कचैत्रकरोधकाः । शिनिवासुदेवाः । श्वाफल्कशब्दश्चैत्रकशब्दश्च ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चेति अणन्तावन्तोदात्तौ । शिनिशब्द आद्युदात्तः स तदपत्येष्वभेदेन वर्त्तते । राजन्यइति किम् । द्वैप्यहैमायनाः ‡ । द्वीपे भवा इति द्वीपादनुसमुद्रं यञ् । हैमेरपत्यं युवा हैमायनः । अन्धकवृष्णय एते न तु राजन्याः । राजन्यग्रहणमिहाभिषिक्तवंश्यानां क्षत्रियाणां ग्रहणार्थम् । एते च नाभिषिक्तवंश्याः । बहुवचनग्रहणं किम् ।

* कलशीपक्व इति पा० २ । अयमेव पदमञ्जरीसंमतः ।
† प्रतिप्रसूयते । पा० २ ।
‡ द्वैप्यभैमायनाः पा० २ ।

संकर्षणवासुदेवौ । द्वन्द्व इति किम् । वृष्णीनां कुमारा, वृष्णिकुमाराः । अन्धकवृष्णिष्विति किम् । कुरुपञ्चालाः ॥

संख्या ॥ ३५ ॥

द्वन्द्वसमासे संख्यावाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । एकादश । द्वादश । त्रयोदश । इगाभीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कनिति नित्त्वादाद्युदात्त एकशब्दः । त्रेस्त्रयस् आदेशोऽन्तोदात्तो निपात्यते ॥

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी ॥ ३६ ॥

आचार्योपसर्जनान्तेवासिनां यो द्वन्द्वस्तत्र पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । आपिशलपाणिनीयाः । पाणिनीयरौढीयाः । रौढीयकाशकृत्स्नाः । अपिशलस्यापत्यमापिशलिराचार्यः । अत इञ् । तेन प्रोक्तमापिशलम् । इञश्चेत्यण् । तदधीयते ये ऽन्तेवासिनस्तेऽप्यापिशलाः, प्रोक्ताल्लुगिति तस्य तद्धितस्याध्येतरि विहितस्य लुक् क्रियते । आपिशलेर्वा छात्रा आपिशला इत्युभयथाप्याचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी भवति । आचार्योपसर्जनग्रहणं द्वन्द्वविशेषणार्थं सकलो द्वन्द्व आचार्योपसर्जनो यथा विज्ञायते । इह मा भूत् । पाणिनीयदेवदत्तौ । आचार्योपसर्जनइति किम् । छान्दसवैयाकरणाः । अन्तेवासीति किम् । आपिशलपाणिनीये शास्त्रे ॥

कार्तकौजपादयश्च ॥ ३७ ॥

कार्तकौजपादयो ये द्वन्द्वास्तेषु पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । प्रकृतिस्वरपूर्वपदाः कार्तकौजपादयो भवन्ति । विभक्त्यन्तानां पाठो वचनविवक्षार्थः । चकारो द्वन्द्वाधिकारानुवृत्त्यर्थः । कार्तकौजपौ । कृतस्यापत्यं कुजपस्यापत्यम् इत्यणन्तावेतौ । सावर्णिमाण्डूकेयौ । सावर्णिरिञन्तः । आवन्त्यश्मकाः । अवन्तेरपत्यानि बहूनि तन्निवासो जनपदो ऽवन्तयः । तथा ऽश्मकाः । पैलश्यापर्णेयाः । युवद्वन्द्वोयम् । पीलाया अपत्यं पैलस्तस्यापत्यं युवेति अणो द्व्यच इति विहितस्य फिञः पैलादिभ्यश्चेति लुक् । श्यापर्णशब्दो बिदादिस्तस्यापत्यं स्त्री श्यापर्णी, तदपत्यं युवा श्यापर्णेयः । बहुवचनमतन्त्रं, तेन पैलश्यापर्णेयावित्यत्रापि भवति । कपिश्यापर्णेयाः । कपिरन्तोदात्तस्तस्यापत्यं बहुत्वे कपिबोधादाङ्गिरस इत्युत्पन्नस्य यञो यञञोश्चेति लुक्, तेनात्र बहुत्वमाश्रीयतएव । शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः । शितिकाक्षो नाम ऋषिस्तस्यापत्यमिति ऋष्यण् तदपत्ये यूनि य इञ् तस्य ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनीति लुक् । पाञ्चालस्यापत्यं स्त्री पाञ्चाली तदपत्यं युवा पाञ्चालेयः । अत्रापि बहुवचनमविवक्षितमिति शैतिकाक्षपाञ्चालेयावित्यत्रापि भवति । कटुकस्यापत्यमिति अत

इञ् तस्य बह्वच इञः प्राच्यभरतेष्विति बहुषु लुक्। वर्चलाया अपत्यं वार्चलेयः। शाकलशुनकाः। शकलस्यापत्यं शाकल्यस्तस्य छात्राः शाकलाः कण्वादिभ्यो गोत्रइत्यण्। शुनकस्यापत्यमिति बिदादिभ्योऽञ् तस्य बहुषु लुक्। शाकलसणका इति के चित्पठन्ति। तेषां सणकशब्दादुत्पन्नस्येञो बह्वच इञः प्राच्यभरतेष्विति बहुषु लुक्। शुनकधात्रेयाः। धात्र्या अपत्यं, धात्रेयाः। सणकबाभ्रवाः। बभ्रोरपत्यं बाभ्रवः। आर्चाभिमौद्गलाः। ऋचाभेन प्रोक्तमधीयते आर्चाभिनः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाद् णिनिः। मुद्गलः कण्वादिस्तदपत्यस्य छात्रा मौद्गलाः। कुन्तिसुराष्ट्राः। कुन्तेः सुराष्ट्रस्य चापत्येषु बहुषु तन्निवासे वा जनपदे द्वन्द्वोऽयम्। कुन्तिचिन्तिशब्दावन्तोदात्तौ। चिन्तिसुराष्ट्राः। कुन्तिसुराष्ट्रवत्। तण्डवतण्डाः। पचाद्यच्प्रत्ययान्तावन्तोदात्तावेतौ गर्गादिषु पठ्येते। तत्रापत्यबहुत्वे यञो लुक् क्रियते। गर्गवत्साः। अत्रापि अपत्यबहुत्वे यञो लुक्। अविमत्तकामविद्धाः। अविमत्तशब्दो नञ्स्वरेणाद्युदात्तः। द्वयोरप्येतयोरपत्येषु बहुषु इञो बह्वच इञः प्राच्यभरतेष्विति लुक् क्रियते। बाभ्रवशालङ्कायनाः। बभ्रोरपत्यं बाभ्रवः। शलङ्कुशलङ्कं चेति शालङ्कायनः। बाभ्रवदानच्युताः। दानच्युतशब्दादिञो बह्वच इति लुक्। कठकालापाः। कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाद् णिनिः। तस्य कठचरकाल्लुक्। कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः। कलापिनोऽण् इत्यण्प्रत्ययस्तस्मिन् इनण्यनपत्यइतिप्रकृतिभावे प्राप्ते नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पीत्यादिनोपसंख्यानेन टिलोपः। कठकौथुमाः। कुथुमिना प्रोक्तमधीयते इति प्राग्दीव्यतोऽण्। तत्र पूर्ववत् टिलोपः। कौथुमलौकाक्षाः। लोकाक्षेण प्रोक्तमधीयते लौकाक्षाः लौकाक्षस्य वाऽपत्यं लौकाक्षिः। तस्य छात्रा लौकाक्षाः। स्त्रीकुमारम्। स्त्रीशब्दोन्तोदात्तः। मौदपैप्पलादाः। मुदस्यापत्यं मौदिः। तस्य छात्रा मौदाः। तथापैप्पलादाः। मौदपैप्पलादा इति द्विः पठ्यते तस्य प्रयोजनं पक्षे समासान्तोदात्तत्वमेव यथा स्यादिति। वत्सजरत्। वत्सश्च जरच्च, वत्सशब्दोन्तोदात्तः। सौश्रुतपार्थवाः। सुश्रुतस्य पृथोश्च छात्राः। प्राग्दीव्यतोऽण्। जरामृत्यु। याज्यानुवाक्ये। यजेर्ण्यत्। यजयाचेति कुत्वाभावः। तित्स्वरितमित्यन्तस्वरितः। अनुवाक्येति वचेरनुपूर्वाद् ण्यत्। आचार्योपसर्जनान्तेवासिनामिह पाठः प्रपञ्चार्थः॥

महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु ॥ ३८ ॥

प्रकृत्या पूर्वपदमिति वर्त्तते, द्वन्द्वइति निवृत्तम्। महानित्येतत्पूर्वपदं व्रीहि अपराह्ण गृष्टि इष्वास जाबाल भार भारत हैलिहिल रौरव प्रवृद्ध इत्ये-

तेषूत्तरपदेषु प्रकृतिस्वरं भवति । महाव्रीहिः । महापराह्णः । महागृष्टिः । महेष्वासः । महाजाबालः । महाभारः । महाभारतः । महाहैलिहिलः । महारौरवः । महाप्रवृद्धः । महच्छब्दोऽन्तोदात्तः । तस्य प्रतिपदोक्तो यः समासः सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा इति तत्रैव स्वरस्तेनेषां षष्ठीसमासे ऽन्तोदात्त एव भवति । महतो व्रीहिः, महद्व्रीहिरिति । कर्मधारये निष्ठेत्ययमपि श्रेण्यादिसमासे विधिरिति प्रवृद्धशब्द इह पठ्यते ॥

क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ॥ ३९ ॥

क्षुल्लकइत्येतत्पूर्वपदं महांश्च वैश्वदेवउत्तरपदे प्रकृतिस्वरं भवति । क्षुल्लकवैश्वदेवम् । महावैश्वदेवम् । क्षुधं लातीति क्षुल्लः । तस्मादज्ञातादिषु प्रागिवात्के ऽन्तोदात्तः क्षुल्लकशब्दः ॥

उष्ट्रः सादिवाम्योः ॥ ४० ॥

उष्ट्रशब्दः पूर्वपदं सादिवाम्योरुत्तरपदयोः प्रकृतिस्वरं भवति । उष्ट्रसादि । उष्ट्रवामि । उष्ट्रशब्द उषेः ष्ट्रन्प्रत्ययान्त आद्युदात्तः कर्मधारयोयं षष्ठीसमासो वा ॥

गौः सादसादिसारथिषु ॥ ४१ ॥

गोशब्दः पूर्वपदं साद सादि सारथि इत्येतेषूत्तरपदेषु प्रकृतिस्वरं भवति । गोः सादः, गोसादः । गां सादयतीति वा गोसादः । गोः सादिः, गोसादिः । गोसारथिः ॥

कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ॥ ४२ ॥

कुरुगार्हपत रिक्तगुरु असूतजरती अश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रू पण्यकम्बल इत्येते समासास्तेषां दासीभारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुरूणां गार्हपतं, कुरुगार्हपतम् । कृग्रोरुच्चेति कुरुशब्दः कुप्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः ॥ कुरुवृज्योर्गार्हपतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वृजीनां गार्हपतं, वृजिगार्हपतम् । वृजिशब्द आद्युदात्तः । रिक्तो गुरुः, रिक्तगुरुः । रिक्ते विभाषेति पूर्वपदमाद्युदात्तमन्तोदात्तं वा । असूता जरती, असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा, अश्लीलदृढरूपा । अश्लीलशब्दो नञ्समासत्वादाद्युदात्तः । श्रीर्यस्यास्ति तत् श्लीलम् । सिध्मादेराकृतिगणत्वाल्लच् । कपिलकादित्वाच्च लत्वम् । अश्लीलदृढरूपेति हि संस्थानमात्रेण शोभना निःश्रीका लावण्यविरहितोच्यते । पारेवडवेव, पारेवडवा । निपातनादिवार्थे समासो विभक्त्यलोपश्च । पारशब्दो घृतादित्वादन्तोदात्तः । तैतिलानां कद्रूः, तैतिलकद्रूः । तितिलिनोपत्यं छात्रो

वा तैतिल इत्यणन्तः । पण्यकम्बलः । पण्यशब्दो यदन्तत्वादाद्युदात्तः । पण्यकम्बलः ॥ संज्ञायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अन्यत्र पणितव्ये कम्बले समासान्तोदात्तत्वमेव प्रतिपदोक्ते हि कृत्यानां समासे द्वितीया कृत्या इत्येष विहितः स्वरितः । दास्या भारो, दासीभारः । देवहूतिः । देवजूतिः । देवसूतिः । देवनीतिः । अन्तोदात्तं पूर्वपदम् । वसुनीतिः । वसुशब्द आद्युदात्तः । शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसीत्यत्र हि धान्ये निदिति वर्त्तते । ओषधिः । ओषो धीयतेऽस्यामिति कर्मण्यधिकरणे चेति किप्रत्ययः । ओषशब्दो घञन्तत्वादाद्युदात्तः । चन्द्रमाः । चन्द्रे मोसिरित्यसिप्रत्ययान्तोयम् । चन्द्रशब्दस्तुरक्प्रत्ययान्तत्वादन्तोदात्तः । यस्य तत्पुरुषस्य पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमिष्यते न च विहितं स सर्वो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

चतुर्थी तदर्थे ॥ ४३ ॥

चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं तदर्थउत्तरपदे तदभिधेयार्थे यत्तद्वाचिन्युत्तरपदे प्रकृतिस्वरं भवति । तदिति चतुर्थ्यन्तस्यार्थः परामृश्यते । यूपदारु । कुण्डलहिरण्यम् । यूपशब्द आद्युदात्तः । कुसुयुभ्यश्चेत्यत्र निदिति वर्त्तते । कुण्डलशब्दोपि वृषादिभ्यश्चिदिति कलप्रत्ययान्तोन्तोदात्तः । रथदारु । वल्लीहिरण्यम् । रथशब्द आद्युदात्तः । हनिकुषीत्यादिना क्थन्प्रत्ययः । वल्लीशब्दो ङीपः स्वरेणान्तोदात्तः । तदर्थइति किम् । कुबेरबलिः । प्रकृतिविकारभावे स्वरोयमिष्यते ॥

अर्थे ॥ ४४ ॥

चतुर्थीति वर्तते । अर्थशब्दउत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । मात्रे इदं, मात्रर्थम् । देवतार्थम् । अतिथ्यर्थम् । मातृपितृशब्दावन्तोदात्तावुणादिषु निपातितौ । देवताशब्दो लित्स्वरेण मध्योदात्तः । अतिथिरित्यतेरिथिन्नितीथिन्प्रत्ययान्तः । तदर्थविशेषा एव दारुहिरण्यादयो भवन्ति न त्वर्थशब्दवाच्यं सामान्यमित्यतदर्थार्थोयमारम्भः । के चित्पुनराहुः । ज्ञापकार्थमिदमेतदनेन ज्ञाप्यते पूर्वो विधिः प्रकृतिविकृत्योः समासे भवति । अश्वघासः । श्वश्रूसुरमित्यत्र सत्यपि तादर्थ्ये न भवति ॥

क्ते च ॥ ४५ ॥

क्तान्ते चोत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । गोहितम् । अश्वहितम् । मनुष्यहितम् । गोरक्षितम् । अश्वरक्षितम् । वनं तापसरक्षितम् । अश्वशब्द आद्युदात्तो मनुष्यशब्दोन्तस्वरितः । परिशिष्टपूर्वपदमन्तोदात्तम् । गोभ्यो रक्षितमिति संप्रदाने चतुर्थी ॥

कर्मधारये ऽनिष्ठा ॥ ४६ ॥

कर्मधारये समासे क्तान्तउत्तरपदे ऽनिष्ठान्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। श्रेणिकृताः। ऊककृताः। पूगकृताः। निधनकृताः श्रेणिशब्द आद्युदात्तः। ऊकपूगशब्दावन्तोदात्तौ। निधनशब्दोयं मध्योदात्तः। कर्मधारयइति किम्। श्रेण्या कृतं श्रेणिकृतम्। अनिष्ठेति किम्। कृताकृतम्॥

अहीने द्वितीया ॥ ४७ ॥

अहीनवाचिनि समासे क्तान्तउत्तरपदे द्वितीयान्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। कष्टश्रितः। त्रिशकलपतितः। ग्रामगतः। कष्टशब्दो ऽन्तोदात्तः। त्रीणि शकलान्यस्येति, त्रिशकलः। बहुव्रीहिस्वरेणाद्युदात्तः। ग्रामशब्दो नित्स्वरेणाद्युदात्तः। अहीनइति किम्। कान्तारातीतः। योजनातीतः * ॥ द्वितीयानुपसर्गइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत्। सुखप्राप्तः। दुःखप्राप्तः। सुखापन्नो दुःखापन्नः। अन्तस्थायेत्यस्यापवादोयम्॥

तृतीया कर्मणि ॥ ४८ ॥

कर्मवाचिनि क्तान्तउत्तरपदे तृतीयान्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। अहिहतः। वज्रहतः †। महाराजहतः। नखनिर्भिन्ना। दात्रलूना। आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्चेति अहिरन्तोदात्तो व्युत्पादितः। के चित्त्वाद्युदात्तमिच्छन्ति। वज्रो रक्प्रत्ययान्तः। महाराजष्टच्प्रत्ययान्तः। नास्य खमस्तीति बहुव्रीहौ नकुलनखेति नखशब्दो निपातितः। तेन नञ्सुभ्यामित्यन्तोदात्तः। दात्रशब्दो दाम्नीशसेति ष्ट्रन्प्रत्ययान्तः। कर्मणीति किम्। रथेन यातो रथयातः। गत्यर्थत्वात्कर्त्तरि क्तः॥

गतिरनन्तरः ॥ ४९ ॥

क्ते कर्मणीति वर्त्तते। कर्मवाचिनि क्तान्तउत्तरपदे गतिरनन्तरः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। प्रकृतः। प्रहृतः। अनन्तर इति किम्। अभ्युद्धृतः। समुद्धृतः। समुदाहृतः। व्यवहितस्य गतेरयं स्वरो न भवति। अनन्तरे पुनरिष्यते। कारकपूर्वस्य तु सति शिष्टत्वात् थाथादिस्वर एव भवति दूरादागत इति। अनन्तरग्रहणसामर्थ्यादेव कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापीत्येतन्नाश्रीयते। कर्मणीत्येव। प्रकृतः कटं देवदत्तः। थाथादिस्वरापवादो योगः॥

तादौ च निति कृत्यतौ ॥ ५० ॥

तकारादौ च तुशब्दवर्जिते निति कृति परतो गतिरनन्तरः प्रकृतिस्वरो भवति। प्रकर्त्ता। प्रकर्त्तुम्। प्रकृतिः। प्रकर्त्तेति तृजन्तः। कृत्स्वरबाधनार्थं वचनम्। तादाविति किम्। प्रजल्पाकः। नितीति किम्। प्रकर्त्ता। तृजन्तः।

---

* हीनं त्यक्तं विभक्तमित्यनर्थान्तरमित्यधिकं पुस्तकान्तरे।

† रुद्रहतः। पा० २।

कृद्ग्रहणमुपदेशे तादर्थ्यम् । इहापि यथा स्यात्, प्रलपिता प्रलपितुमिति । अताविति किम् । आगन्तुः ॥

तवै चान्तश्च युगपत् ॥ ५१ ॥

तवैप्रत्ययस्यान्त उदात्तो भवति गतिश्चानन्तरः प्रकृतिस्वर इति एतदुभयं युगपद्भवति । अन्वेतवै । परिस्तरितवै । परिपातवै । तस्मात्पिता नाभिचरितवै । उपसर्गा आद्युदात्ता अभिवर्जमित्यभिरन्तोदात्तः । कृत्स्वरापवादो योगः ॥

अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये ॥ ५२ ॥

अनिगन्तो गतिः प्रकृतिस्वरो भवत्यञ्चतौ वप्रत्यये परतः । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । स्वरितो वानुदात्ते पदादावित्ययमेकादेश उदात्तः स्वरितो वा । पराङ् । पराञ्चौ । पराञ्चः । अनिगन्त इति किम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रत्यञ्चः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर इह भवति । वप्रत्ययइति किम् । उदञ्चनः । चोरनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्ययइत्येष स्वरो भवति विप्रतिषेधेन । पराचः । पराचा ॥

न्यधी च ॥ ५३ ॥

नि अधि इत्येतौ चाञ्चतौ वप्रत्यये परतः प्रकृतिस्वरौ भवतः । न्यङ् । न्यञ्चौ । न्यञ्चः । उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्येत्यञ्चतेरकारः स्वरितः । अध्यङ् । अध्यञ्चौ । अध्यञ्चः । अधीचः । अधीचा ॥

ईषदन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

ईषदित्येतत्पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । ईषत्कडारः । २ । ईषत्पिङ्गलः । २ । ईषदित्ययमन्तोदात्तः । ईषद्भेद इत्येवमादौ कृत्स्वर एव भवति ॥

हिरण्यपरिमाणं धने ॥ ५५ ॥

हिरण्यपरिमाणवाचि पूर्वपदं धनशब्दउत्तरपदे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । द्विसुवर्णधनम् । २ । द्वौ सुवर्णौ परिमाणमस्य द्विसुवर्णं तदेव धनमिति कर्मधारयः । बहुव्रीहावपि परत्वाद्विकल्प एव भवति । द्विसुवर्णधनः । २ । हिरण्यग्रहणं किम् । प्रस्थधनम् । परिमाणग्रहणं किम् । काञ्चनधनम् । धनइति किम् । निष्कमाला ॥

प्रथमो ऽचिरोपसंपत्तौ ॥ ५६ ॥

प्रथमशब्दः पूर्वपदमचिरोपसंपत्तौ गम्यमानायामन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । अचिरोपसंपत्तिरचिरोपश्लेषो ऽभिनवत्वम् । प्रथमवैयाकरणः । अभिनववैयाकरणः । संप्रति व्याकरणमध्येतुं प्रवृत्त इत्यर्थः । प्रथमशब्दः प्रथेरमजिति चित्त्वादन्तोदात्तः । अचिरोपसंपत्ताविति किम् । प्रथमवैयाकरणः वैयाकरणानामाद्यो मुख्यो वा यः स नित्यमन्तोदात्त एव ॥

कतरकतमौ कर्मधारये ॥ ५७ ॥

कतरशब्दः कतमशब्दश्च पूर्वपदं कर्मधारये समासे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । कतरकठः । २ । कतमकठः * । २ । कर्मधारयग्रहणमुत्तरार्थमिह तु प्रतिपदोक्तत्वादेव सिद्धम् ॥

आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः ॥ ५८ ॥

आर्यशब्दः पूर्वपदं ब्राह्मणकुमारशब्दयोः कर्मधारये समासे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । आर्यब्राह्मणः । २ । आर्यकुमारः । २ । आर्यशब्दो ण्यदन्तोऽन्तस्वरितः । आर्य इति किम् । परमब्राह्मणः । परमकुमारः । ब्राह्मणकुमारयोरिति किम् । आर्यक्षत्रियः । कर्मधारयइत्येव । आर्यस्य ब्राह्मणः, आर्यब्राह्मणः ॥

राजा च ॥ ५९ ॥

राजा च पूर्वपदं ब्राह्मणकुमारयोरुत्तरपदयोः कर्मधारये समासे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । राजब्राह्मणः । २ । राजकुमारः । २ । कर्मधारयइत्येव । राज्ञो ब्राह्मणो, राजब्राह्मणः । राजकुमारः । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

षष्ठी प्रत्येनसि ॥ ६० ॥

राजेति वर्त्तते, ऽन्यतरस्यामिति च । षष्ठ्यन्तो राजशब्दः पूर्वपदं प्रत्येनस्युत्तरे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । राज्ञः प्रत्येनाः, राजप्रत्येनाः । षष्ठीति किम् । राजा चासौ प्रत्येनाश्च, राजप्रत्येनाः ॥

क्ते नित्यार्थे ॥ ६१ ॥

क्तान्तउत्तरपदे नित्यार्थे समासे पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । नित्यप्रहसितः । २ । सततप्रहसितः । २ । काला इति द्वितीयासमासोऽयम् । नित्यशब्दस्त्यब्नेर्ध्रुवइति त्यबन्त आद्युदात्तः । सतत इति यदा भावे क्तस्तदा थाथादिस्वरेणान्तोदात्तः । नित्यार्थइति किम् । मुहूर्त्तप्रहसितः ॥

ग्रामः शिल्पिनि ॥ ६२ ॥

ग्रामशब्दः पूर्वपदं शिल्पिवाचिन्युत्तरपदे ऽन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । ग्रामनापितः । २ । ग्रामकुलालः । २ । ग्रामशब्द आद्युदात्तः । ग्राम इति किम् । परमनापितः । शिल्पिनीति किम् । ग्रामरथ्या ॥

राजा च प्रशंसायाम् ॥ ६३ ॥

राजशब्दः पूर्वपदं शिल्पिवाचिन्युत्तरपदे प्रशंसायां गम्यमानायामन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति । राजनापितः । २ । राजकुलालः । २ । कर्मधारये

* कतमकलापः । पा० २ ।

राजगुणाध्यारोपेणोत्तरपदार्थस्य प्रशंसा। षष्ठीसमासे च राजयोग्यतया तस्य। राज्ञेति किम्। परमनापितः। प्रशंसायामिति किम्। राजनापितः। शिल्पिनीत्येव। राजहस्ती॥

आदिरुदात्तः॥ ६४॥

आदिरुदात्त इत्येतदधिकृतमित उत्तरं यद्वक्ष्यामस्तत्र पूर्वपदस्यादिरुदात्तो भवतीत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे इति। स्तूपेशाणः। मुकुटेकार्षापणम्। याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणहस्ती। दृषदिमाषकः। आदिरिति प्रागन्ताधिकारात्। उदात्त इति प्रकृत्या भगालमिति यावत्॥

सप्तमीहारिणौ धर्म्ये ऽहरणे॥ ६५॥

सप्तम्यन्तं हारिवाचि च पूर्वपदं धर्म्यवाचिनि हरणशब्दादन्यस्मिन्नुत्तरपदे आद्युदात्तं भवति। हारीति देयं यः स्वीकरोति सोभिधीयते। धर्म्यमित्याचारनियतं देयमुच्यते, धर्मो ह्यनुवृत्त आचारस्तस्मादनपेतं तेन वा प्राप्यमिति। स्तूपेशाणः। मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। हलेत्रिपदिका। दृषदिमाषकः। संज्ञायामिति सप्तमीसमासः,कारनाम्नि चेति विभक्तेरलुक्। हारिणि। याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणहस्ती। मातुलाश्वः। पितृव्यगवः। क्व चिदयमाचारो व्यवस्थितस्तूपादिषु शाणादि दातव्यं याज्ञिकादीनामश्वादीति। धर्म्यइति किम्। स्तम्बेरमः। कर्मकरवर्द्धितकः*। अहरणइति किम्। वाडवहरणम्। वडबाया अयं वाडवः। तस्य बीजनिषेकादुत्तरकालं शरीरपुष्ट्यर्थं यद्दीयते हरणमिति तदुच्यते। परोपि कृत्स्वरो हारिस्वरं बाध्यते विप्रतिषेधेनेत्येतदहरणइत्यनेन ज्ञाप्यते, तेन वाडवहार्यमिति हारिस्वरः सिद्धो भवति॥

युक्ते च॥ ६६॥

युक्तवाचिनि च समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। गोबल्लवः। अश्वबल्लवः। गोमणिन्दः। अश्वमणिन्दः। गोसंख्यः। अश्वसंख्यः। युक्त इति समाहितः कर्त्तव्ये तत्परो यः स उच्यते॥

विभाषा ऽध्यक्षे॥ ६७॥

अध्यक्षशब्दउत्तरपदे विभाषा पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। गवाध्यक्षः।२। अश्वाध्यक्षः।२॥

पापं च शिल्पिनि॥ ६८॥

पापशब्दः शिल्पिवाचिन्युत्तरपदेविभाषा ऽऽद्युदात्तो भवति पापना-

* वर्द्धितको नाम मूले स्थूलो ऽग्रे सूक्ष्म ओदनपिण्डः स कर्मकराय दीयते ऽन्यथा कर्म न कुर्यादिति न त्वयं धर्म्य इति पदमञ्जरी।

पितः । २ । पापकुलालः । २ । पापाणके कुत्सितैरिति प्रतिपदोक्तः पापशब्दस्य समानाधिकरणसमास इति षष्ठीसमासे न भवति । पापस्य नापितः, पापनापित इति ॥

गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे ॥ ६९ ॥

गोत्रवाचिन्यन्तेवासिवाचिनि चोत्तरपदे माणवब्राह्मणयोश्च क्षेपवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । जङ्घावात्स्यः । यो जङ्घादानं ददान्यहमिति वात्स्यः संपद्यते स जङ्घावात्स्य इति क्षिप्यते । भार्यासौश्रुतः । सुश्रुतापत्यस्य भार्याप्रधानतया क्षेपः । वशाब्राह्मकृतेयः । ब्रह्मकृतशब्दः शुभ्रादिषु पठ्यते । गोत्र । अन्तेवासि । कुमारीदाक्षाः । कम्बलचारायणीयाः । घृतरौढीयाः । ओदनपाणिनीयाः । कुमार्यादिलाभकामा ये दाक्षादिभिः प्रोक्तानि शास्त्राण्यधीयते तच्छिष्यतां वा प्रतिपद्यन्ते तएवं क्षिप्यन्ते । माणव । भिक्षामाणवः । भिक्षां लप्स्ये ऽहमिति माणवो भवति । माणव । ब्राह्मण । दासीब्राह्मणः । वृषलीब्राह्मणः । भयब्राह्मणः । यो भयेन ब्राह्मणः संपद्यते । अत्र यस्यान्यत् समासलक्षणं नास्ति सुप्सुपेत्येव तत्र समासः कर्त्तव्यः । गोत्रादिष्विति किम् । दासीश्रोत्रियः । क्षेपइति किम् । महाब्राह्मणः ॥

अङ्गानि मैरेये ॥ ७० ॥

मैरेयशब्दउत्तरपदे तदङ्गवाचीनि पूर्वपदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । गुडमैरेयः । मधुमैरेयः । मद्यविशेषो मैरेयस्तस्य गुडविकारस्य गुडोऽङ्गं भवति मधुनो मधु । अङ्गानीति किम् । परममैरेयः । मैरेयइति किम् । पुष्पासवः । फलासवः ॥

भक्ताख्यास्तदर्थेषु ॥ ७१ ॥

भक्तमन्नं तदाख्यास्तद्वाचिनः शब्दास्तदर्थेषूत्तरपदेषु आद्युदात्ता भवन्ति । भिक्षाकंसः । श्राणाकंसः । भाजीकंसः । भिक्षादयोऽन्नवचनाः । भक्ताख्या इति किम् । समाशशालयः । समशनं समाश इति क्रियामात्रमुच्यते न द्रव्यम् । तदर्थेष्विति किम् । भिक्षाप्रियः । बहुव्रीहिरयमत्र पूर्वपदमन्तोदात्तम् ॥

गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने ॥ ७२ ॥

गवादिषूपमानवाचिषूत्तरपदेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । धान्यगवः । हिरण्यगवः । भिक्षाबिडालः । तृणसिंहः । काष्ठसिंहः । सक्तुसैन्धवः । पानसैन्धवः । धान्यं गौरिवेति । विगृह्य व्याघ्रादेराकृतिगणत्वाद् उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । उपमानार्थोपि यथासंभवं यथाप्रसिद्धं च योजयितव्यः । गवाकृत्या ऽवस्थितं * धान्यगवशब्देनोच्यते । उपमानइति किम् । परमसिंहः ॥

---

* संनिवेशितं पा० २ ।

अके जीविकार्थे ॥ ७३ ॥

अकप्रत्ययान्तउत्तरपदे जीविकार्थवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। दन्तलेखकः। नखलेखकः। अवस्करशोधकः। रमणीयकारकः। दन्तलेखनादिभिर्येषां जीविका तएवमुच्यन्ते। नित्यं क्रीडाजीविकयोरिति समासः। अक इति किम्। रमणीयकर्त्ता। जीविकार्थइति किम्। इक्षुभक्षिका मे धारयसि॥

प्राचां क्रीडायाम् ॥ ७४ ॥

प्राग्देशवर्त्तिनां या क्रीडा तद्वाचिनि समासे ऽकप्रत्ययान्तउत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वीरणपुष्पप्रचायिका। शालभञ्जिका। तालभञ्जिका। संज्ञायामिति ण्वुल्, नित्यं क्रीडाजीविकयोरिति षष्ठीसमासः। प्राचामिति किम्। जीवपुत्त्रप्रचायिका। इयमुदीचां क्रीडा। क्रीडायामिति किम्। तव पुष्पप्रचायिका। पर्याये ण्वुच्प्रत्ययो भवति॥

अणि नियुक्ते ॥ ७५ ॥

अणन्तउत्तरपदे नियुक्तवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। छत्रधारः। तूणीधारः। कमण्डलुग्राहः। भृङ्गारधारः। नियुक्तो ऽधिकृतः स च कस्मिंश्चित्कर्त्तव्ये तत्परो न भवतीति नियुक्तइत्यनेन सिध्यति*। नियुक्तइति किम्। काण्डलावः। शरलावः॥

शिल्पिनि चाकृञः ॥ ७६ ॥

शिल्पिवाचिनि समासे ऽणन्तउत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति स चेदण् कृञो न भवति। तन्तुवायः। तुन्नवायः। वालवायः। शिल्पिनीति किम्। काण्डलावः। अकृञ इति किम्। कुम्भकारः। अयस्कारः॥

संज्ञायां च ॥ ७७ ॥

संज्ञायां विषये ऽणन्तउत्तरपदे ऽकृञः पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। तन्तुवायो नाम कीटः। वालवायो नाम पर्वतः। अकृञ इत्येव। रथकारो नाम ब्राह्मणः॥

गोतन्तियवं पाले ॥ ७८ ॥

गो तन्ति यव इत्येतानि पूर्वपदानि पालशब्दउत्तरपदे आद्युदात्तानि भवन्ति। गोपालः। तन्तिपालः। यवपालः। अनियुक्तार्थ आरम्भः। गोतन्तियवमिति किम्। वत्सपालः। पालइति किम्। गोरक्षः॥

णिनि ॥ ७९ ॥

णिनन्तउत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति। फलहारी। पर्णहारी॥

---

* नियुक्त इत्यनेन सिध्यतीत्यस्य स्थाने युक्त इत्यनेन न सिध्यतीति पा० २।

उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव ॥ ८० ॥

उपमानवाचि पूर्वपदं शब्दार्थप्रकृतावेव णिनन्तउत्तरपदआद्युदात्तं भवति । पुष्पहारी । उपमानं नियम्यते । उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । खरनादी । उपमानग्रहणमस्य पूर्वस्य च योगस्य विषयविभागार्थम् । शब्दार्थप्रकृताविति किम् । वृकवञ्ची । वृकप्रेक्षी । प्रकृतिग्रहणं किम् । प्रकृतिरेव यत्रोपसर्गनिरपेक्षा शब्दार्था भवति तत्रैव यथा स्याद् इह मा भूद् गर्दभोच्चारी कोकिलाभिव्याहारीति । एवकारकरणमुपमानावधारणार्थम् । शब्दार्थप्रकृतौ त्वनुपमानमुपमानं चाद्युदात्तं भवति । सिंहविनर्दी । पुष्कलजल्पी ॥

युक्तारोह्यादयश्च ॥ ८१ ॥

युक्तारोह्यादयः समासा आद्युदात्ता भवन्ति । युक्तारोही । आगतरोही । आगतयोधी । आगतवञ्ची । आगतनर्दी । आगतप्रहारी । एते णिन्नन्ता णिनीत्यस्यैवोदाहरणार्थं पठ्यन्ते । पूर्वोत्तरपदनियमार्था इति केचित् । इह मा भूद् वृक्षारोही युक्ताध्यायीति । आगतमत्स्या । क्षीरहोता । भगिनीभर्त्ता । याजकादित्वात् षष्ठीसमासावेतौ । ग्रामगोधुक् । अश्वत्रिरात्रः । गर्गत्रिरात्रः । व्युष्टत्रिरात्रः । शणपादः । समपादः । षष्ठासमासा एते । एकशितिपात् । एकः शितिः पादोस्येति त्रिपदबहुव्रीहिः । तत्रैकशितिशब्दस्तद्धितार्थोत्तरपदद्वति तत्पुरुषसंज्ञस्तस्य निमित्तिस्वरबलीयस्त्वाद् अन्तोदात्तत्वं प्राप्तमित्याद्युदात्तत्वं विधीयते । एवमपि नार्थ एतेन, इगन्ते द्विगाविति सिद्धत्वात् । एवं तर्हि ज्ञापकार्थम्, एतज् ज्ञापयति शित्यन्तस्योत्तरपदे द्विगुस्वरो न भवतीति । तेन द्विशितिपादित्यत्र तिशब्द उदात्तो भवति । निमित्तिस्वरबलीयस्त्वस्याप्येकशितिपात्स्वरवचनमेव ज्ञापकं वर्णयन्ति । पात्रेसंमितादयश्च युक्तारोह्यादयस्ततस्तेप्याद्युदात्ता भवन्ति ॥

दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे ॥ ८२ ॥

दीर्घान्तं पूर्वपदं काश तुष भ्राष्ट्र वट इत्येतानि च जउत्तरपदे आद्युदात्तानि भवन्ति । कुटीजः । शमीजः । काशजः । तुषजः । भ्राष्ट्रजः । वटजः ॥ सप्तम्यां जनेर्डः ।

अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ॥ ८३ ॥

जउत्तरपदे बह्वचः पूर्वपदस्यान्त्यात्पूर्वमुदात्तं भवति । उपसरजः । मन्दुरजः । आमलकीजः । वडवाजः । बह्वच इति किम् । दग्धजानि तृणानि ॥

ग्रामे ऽनिवसन्तः ॥ ८४ ॥

ग्रामशब्दउत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति न चेन्निवसद्वाचि भवति । मल्लग्रामः । वणिग्ग्रामः । ग्रामशब्दोत्र समूहवाची । देवग्रामः । देवस्वामिक

इत्यर्थः । अनिवसन्त इति किम् । दाक्षिग्रामः । माहकिग्रामः । दाक्ष्यादयो वसन्ति यस्मिन्ग्रामे स तेषामिति व्यपदिश्यते ॥

घोषादिषु च ॥ ८५ ॥

घोषादिषु चोत्तरपदेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिपल्वलः * । दाक्षिह्रदः । दाक्षिबदरी । दाक्षिपिङ्गलः । दाक्षिपिशङ्गः । दाक्षिशालः । दाक्षिरक्षः । दाक्षिशिल्पी । दाक्ष्यश्वत्थः । कुन्दतृणम् । दाक्षिशाल्मली । आश्रममुनिः । शाल्मलिर्मुनिः । दाक्षिपुंसा । दाक्षिकूटः । यान्यत्र निवासनामधेयानि तेषु निवसद्वाचीन्यपि पूर्वपदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । अनिवसन्त इति नानुवर्त्तयन्ति के चित् । अपरे पुनरनुवर्त्तयन्ति ॥

छात्र्यादयः शालायाम् ॥ ८६ ॥

शालायामुत्तरपदे छात्र्यादय आद्युदात्ता भवन्ति । छात्रिशाला । ऐलिशाला । भाण्डिशाला । छात्रि । ऐलि । भाण्डि । व्याडि । आपिशलि । आख्यण्डि । आपारि । गौमि । यदा शालान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति तदापि तत्पुरुषे शालायां नपुंसक इत्येतस्मात्पूर्वविप्रतिषेधेन पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । छात्रिशालम् । ऐलिशालम् ॥

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥ ८७ ॥

प्रस्थशब्दउत्तरपदे कर्क्यादिवर्जितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । इन्द्रप्रस्थः । कुण्डप्रस्थः । ह्रदप्रस्थः । सुवर्णप्रस्थः । अवृद्धमिति किम् । दाक्षिप्रस्थः । माहकिप्रस्थः । अकर्क्यादीनामिति किम् । कर्कीप्रस्थः । मघीप्रस्थः । कर्की । मघी । मकरी । कर्कन्धू । शमी । करीर । कटुक । कुरल † । बदर ॥

मालादीनां च ॥ ८८ ॥

प्रस्थइति वर्त्तते । प्रस्थउत्तरपदे मालादीनामादिरुदात्तो भवति । मालाप्रस्थः । शालाप्रस्थः । माला । शाला । शोणा । द्राक्षा । क्षौमा । क्षामा । काञ्ची । एक । काम । वृद्धार्थ आरम्भः । एकशोणाशब्दयोरेङ् प्राचां देशइति वृद्धसंज्ञा ॥

अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् ॥ ८९ ॥

नगरशब्दउत्तरपदे महन्नवशब्दवर्जितं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति तच्चेदुदीचां न भवति । सुह्मनगरम् । पुण्ड्रनगरम् ‡ । अमहन्नवमिति किम् । महानगरम् । नवनगरम् । अनुदीचामिति किम् । नान्दीनगरम् । कान्तीनगरम् ॥

---

* दाक्षिवल्लभः । पा० २ ।

† कवल । पा० २ ।

‡ विराटनगरमिति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

अर्मे चावर्णं द्व्यच्त्र्यच् ॥ ९० ॥

अर्मशब्द उत्तरपदे द्व्यच् त्र्यच् पूर्वपदमवर्णान्तमाद्युदात्तं भवति । दत्तार्मम् । गुप्तार्मम् । कुक्कुटार्मम् । वायसार्मम् । अवर्णमिति किम् । बृहदर्मम् । द्व्यच्त्र्यजिति किम् । कपिञ्जलार्मम् । अमहन्नवमित्येव । महार्मम् । नवार्मम् ॥

न भूताधिकसंजीवमद्राश्मकज्जलम् ॥ ९१ ॥

भूत अधिक संजीव मद्र अश्मन् कज्जल इत्येतानि पूर्वपदानि अर्मशब्द उत्तरपदे नाद्युदात्तानि भवन्ति । भूतार्मम् । अधिकार्मम् । संजीवार्मम् । मद्रार्मम् । अश्मार्मम् । मद्राश्मग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् । मद्राश्मार्मम् । कज्जलार्मम् । समासान्तोदात्तत्वमेवात्र भवति ॥ आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ दिवोदासाय गायत । वध्र्यश्वाय दाशुषे ॥

अन्तः ॥ ९२ ॥

अन्त इत्यधिकृतमित उत्तरं यदितः ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्र पूर्वपदस्यान्त उदात्तो भवतीत्येवं वेदितव्यम् । वक्ष्यति सर्वं गुणकार्त्स्न्ये । सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । प्रागुत्तरपदादिरित्येतस्मादयमधिकारो वेदितव्यः ॥

सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥ ९३ ॥

सर्वशब्दः पूर्वपदं गुणकार्त्स्न्ये वर्तमानमन्तोदात्तं भवति । सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । सर्वमहान् । सर्वमिति किम् । परमश्वेतः । आश्रयव्याप्त्या परमत्वं श्वेतत्वस्येति । गुणकार्त्स्न्ये वर्तते । गुणग्रहणं किम् । सर्वसौवर्णः । सर्वराजतः । कार्त्स्न्ये इति किम् । सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः । गुणात्तरेण समासस्तरलोपश्च वक्तव्य इत्येवमत्र समासस्तरब्लोपश्च ॥

संज्ञायां गिरिनिकाययोः ॥ ९४ ॥

संज्ञायां विषये गिरि निकाय इत्येतयोरुत्तरपदयोः पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । अञ्जनागिरिः भञ्जनागिरिः । निकाये । शापिण्डिनिकायः । मौण्डिनिकायः । चिखिल्लिनिकायः * । संज्ञायामिति किम् । परमगिरिः । ब्राह्मणनिकायः ॥ १- वन गिर्योः संज्ञायां दीर्घः

कुमार्यां वयसि ॥ ९५ ॥

कुमार्यामुत्तरपदे वयसि गम्यमाने पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । वृद्धकुमारी । जरत्कुमारी । कुमारीशब्दः पुंसा सहासंप्रयोगमात्रमुपप्रयुक्तो वृद्धादिभिर्वयोविशेषवचनैः समानाधिकरणो भवति । तच्च वय इह गृह्यते न कुमारत्वमेव । वयसीति किम् । परमकुमारी ॥

* चिक्कलिनिकायः । पा० २ ।

उदकेऽकेवले ॥ ९६ ॥

अकेवलं मिश्रं तद्वाचिनि समासे उदकशब्दउत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । गुडमिश्रमुदकम् । गुडोदकम् । तिलोदकम् * । स्वरे कृते एकादेशः स्वरितो वानुदात्ते पदादाविति पत्ते स्वरितो भवति । अकेवलइति किम् । शीतोदकम् । उष्णोदकम् ॥

द्विगौ क्रतौ ॥ ९७ ॥

द्विगावुत्तरपदे क्रतुवाचिनि समासे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । गर्गत्रिरात्रः । चारकत्रिरात्रः । कुसुरविन्दसप्तरात्रः । गर्गाणां त्रिरात्रः, गर्गत्रिरात्रः । द्विगाविति किम् । अतिरात्रः । अचश्चित्त्वादन्तोदात्तः । क्रताविति किम् । बिल्वसप्तरात्रः । बिल्वशतस्य बिल्वहोमस्य वा सप्तरात्रो, बिल्वसप्तरात्रः ॥

सभायां नपुंसके ॥ ९८ ॥

सभाशब्दउत्तरपदे नपुंसकलिङ्गे समासे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । गोपालसभम् । पशुपालसभम् । स्त्रीसभम् । दासीसभम् । सभायामिति किम् । ब्राह्मणसभम् । नपुंसकमिति किम् । राजसभा । ब्राह्मणसभा । सभायां प्रतिपदोक्तमिह नपुंसकलिङ्गं गृह्यतइति रमणीयसभं ब्राह्मणकुलमित्यत्र न भवति ॥

पुरे प्राचाम् ॥ ९९ ॥

पुरशब्दउत्तरपदे प्राचां देशे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । ललाटपुरम् । काञ्चीपुरम् । शिवदत्तपुरम् । कार्णिपुरम् । नार्मपुरम् । प्राचामिति किम् । शिवपुरम् ॥

अरिष्टगौडपूर्वे च ॥ १०० ॥

अरिष्ट गौड इत्येवंपूर्वे समासे पुरशब्दउत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । अरिष्टपुरम् । गौडपुरम् । पूर्वग्रहणं किम् । इहापि यथा स्यात् । अरिष्टश्रितपुरम् । गौडभृत्यपुरम् ॥

न हास्तिनफलकमार्देयाः ॥ १०१ ॥

हास्तिन फलक मार्देय इत्येतानि पूर्वपदानि पुरशब्दउत्तरपदे नान्तोदात्तानि भवन्ति । पुरे प्राचामिति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । हास्तिनपुरम् । फलकपुरम् । मार्देयपुरम् । मृदोरपत्यं, मार्देयः । शुभ्रादित्वाद् ढक् ॥

कुसूलकूपकुम्भशालं बिले ॥ १०२ ॥

कुसूल कूप कुम्भ शाला इत्येतानि पूर्वपदानि बिलशब्दउत्तरपदे ऽन्तो-

* तण्डुलोदकमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

दात्तानि भवन्ति । कुसूलबिलम् । कूपबिलम् । कुम्भबिलम् । शालाबिलम् । कुसूलादिग्रहणं किम् । सर्पबिलम् । बिलइति किम् । कुसूलस्वामी ॥

दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु ॥ १०३ ॥

दिक्शब्दाः पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति ग्रामजनपदाख्यानवाचिषूत्तरपदेषु चानराटशब्दे च । पूर्वेषुकामशमी । अपरेषुकामशमी । पूर्वकृष्णमृत्तिका । अपरकृष्णमृत्तिका । जनपद । पूर्वपञ्चालाः । अपरपञ्चालाः । आख्यान । पूर्वाधिरामम् * । पूर्वयायातम् । अपरयायातम् । अधिराममधिकृत्य कृतो ग्रन्थ आधिरामम् । तथा यायातम् । चानराट । पूर्वचानराटम् । अपरचानराटम् । शब्दग्रहणं कालवाचिनोपि दिक्शब्दस्य परिग्रहार्थम् ॥

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि ॥ १०४ ॥

आचार्योपसर्जनान्तेवासिवाचिन्युत्तरपदे दिक्शब्दा अन्तोदात्ता भवन्ति । पूर्वपाणिनीयाः । अपरपाणिनीयाः । पूर्वकाशकृत्स्नाः । अपरकाशकृत्स्नाः । आचार्योपसर्जन इति किम् । पूर्वशिष्याः । अन्तेवासिनीति किम् । पूर्वपाणिनीयं शास्त्रम् ॥

उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च ॥ १०५ ॥

उत्तरपदस्येत्यधिकृत्य या विहिता वृद्धिस्तद्वत्युत्तरपदे सर्वशब्दो दिक्शब्दाश्चान्तोदात्ता भवन्ति । सर्वपाञ्चालकः । पूर्वपाञ्चालकः । उत्तरपाञ्चालकः । सुसर्वार्द्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्येति तदन्तविधिना जनपदलक्षणो वुञ् प्रत्ययः । सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य दिशो मद्राणामिति चोत्तरपदवृद्धिः । अधिकारलक्षणादिह न भवति सर्वमासः सर्वकारक इति ॥

बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् ॥ १०६ ॥

बहुव्रीहौ समासे विश्वशब्दः पूर्वपदं संज्ञायां विषये ऽन्तोदात्तं भवति । विश्वदेवः । विश्वयशाः । विश्वमहान् । पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तत्वं प्राप्तम् । बहुव्रीहाविति किम् । विश्वे च ते देवाः, विश्वदेवाः । संज्ञायामिति किम् । विश्वे देवा अस्य विश्वदेवः । विश्वामित्रो विश्वाजिन इत्यत्र संज्ञायां मित्राजिनयोरित्येतद्भवति परत्वात् । बहुव्रीहावित्येतदधिक्रियते प्रागव्ययीभावसंज्ञानात् ॥

उदराश्वेषुषु ॥ १०७ ॥

उदर अश्व इषु इत्येतेषूत्तरपदेषु बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां विषये पूर्व-

---

* पूर्वाधिरामकमित्यधिकमन्यत्र ।

पदमन्तोदात्तं भवति । वृकोदरः । दामोदरः । हर्यश्वः । यौवनाश्वः । सुवर्णपुङ्खेषुः । महेषुः ॥

क्षेपे ॥ १०८ ॥

क्षेपे गम्यमाने उदरादिषूत्तरपदेषु बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां विषये पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । कुण्डोदरः । घटोदरः । कटुकाश्वः । स्यन्दिताश्वः । अनिघातेषुः । चलाचलेषुः । अनुदरः सूदर इत्यत्र नञ्सुभ्यामित्येतद्भवति विप्रतिषेधेन ॥

नदी बन्धुनि ॥ १०९ ॥

बहुव्रीहौ समासे बन्धुन्युत्तरपदे नद्यन्तं पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति । गार्गीबन्धुः । वात्सीबन्धुः । नदीति किम् । ब्रह्मबन्धुः । ब्रह्मशब्द आद्युदात्तः । बन्धुनीति किम् । गार्गीप्रियः ॥

निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् ॥ ११० ॥

बहुव्रीहौ समासे निष्ठान्तमुपसर्गपूर्वं पूर्वपदमन्यतरस्यामन्तोदात्तं भवति । प्रधौतमुखः । २ । प्रक्षालितपादः । २ । यदि मुखशब्दः स्वाङ्गवाची तदा पक्षे मुखं स्वाङ्गमित्येतद्भवति न चेत्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन गतिरनन्तर इत्येतद्भवति । निष्ठेति किम् । प्रसेचकमुखः । उपसर्गपूर्वमिति किम् । शुष्कमुखः ॥

उत्तरपदादिः ॥ १११ ॥

उत्तरपदादिरित्येतदधिकृतम् । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्याम उत्तरपदस्यादिरुदात्तो भवतीत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति कर्णो वर्णलक्षणात् । शुक्लकर्णः । कृष्णकर्णः । उत्तरपदस्येत्येतदा पादपरिसमाप्तेः । आदिरिति प्रकृत्या भगालमिति यावत् ॥

कर्णो वर्णलक्षणात् ॥ ११२ ॥

बहुव्रीहौ समासे वर्णवाचिनो लक्षणवाचिनश्च कर्णशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति । शुक्लकर्णः । कृष्णकर्णः । लक्षणात् । दात्राकर्णः । शङ्कुकर्णः । कर्णे लक्षणस्येति दीर्घत्वम् । पशूनां विभागज्ञापनार्थं दात्रशङ्कुप्रतिरूपकं कर्णादिषु चिन्हं यत् क्रियते तदिह लक्षणं गृह्यते, तेन स्थूलकर्ण इत्यत्र न भवति । कर्ण इति किम् । श्वेतपादः । कूटशृङ्गः । वर्णलक्षणादिति किम् । शोभनकर्णः ॥

संज्ञौपम्ययोश्च ॥ ११३ ॥

संज्ञायामौपम्ये च यो बहुव्रीहिर्वर्तते तत्र कर्णशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति संज्ञायाम् । कुञ्चिकर्णः । मणिकर्णः । औपम्ये । गोकर्णः । खरकर्णः ॥

कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च ॥ ११४ ॥

कण्ठ पृष्ठ ग्रीवा जङ्घा इत्येतानि उत्तरपदानि बहुव्रीहौ समासे संज्ञौपम्ययोराद्युदात्तानि भवन्ति । कण्ठः संज्ञायाम् । शितिकण्ठः । नीलकण्ठः । औपम्ये । खरकण्ठः । उष्ट्रकण्ठः । पृष्ठः संज्ञायाम् । काण्डपृष्ठः । नाकपृष्ठः । औपम्ये । गोपृष्ठः । अजपृष्ठः । ग्रीवा संज्ञायाम् । सुग्रीवः । नीलग्रीवः । दशग्रीवः । औपम्ये । गोग्रीवः । अश्वग्रीवः । जङ्घा संज्ञायाम् । नाडीजङ्घः । तालजङ्घः । औपम्ये । गोजङ्घः । अश्वजङ्घः । एणीजङ्घः ॥

शृङ्गमवस्थायां च ॥ ११५ ॥

शृङ्गशब्द उत्तरपदमवस्थायां संज्ञौपम्ययोश्च बहुव्रीहौ आद्युदात्तं भवति । उद्गतशृङ्गः । द्व्यङ्गुलशृङ्गः । अङ्गुलशृङ्गः । अत्र शृङ्गोद्गमनादिकृतो गवादेर्वयोविशेषो ऽवस्था । संज्ञायाम् । ऋष्यशृङ्गः । औपम्ये । गोशृङ्गः । मेषशृङ्गः । अवस्थादिष्विति किम् । स्थूलशृङ्गः ॥

नञो ऽजरमरमित्रमृताः ॥ ११६ ॥

नञ उत्तरे जरमरमित्रमृता बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्ता भवन्ति । अजरः । अमरः । अमित्रः । अमृतः * । नञ इति किम् । ब्राह्मणामित्रः । जरादय इति किम् । अशत्रुः नञ्सुभ्यामिति उत्तरपदान्तोदात्तत्वमेवात्र भवति ॥

सोर्मनसी अलोमोषसी ॥ ११७ ॥

सोरुत्तरमनन्तमसन्तं च बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्तं भवति लोमोषसीवर्ज्जयित्वा । सुकर्म्मा । सुधर्म्मा । सुप्रथिमा । असन्तम् । सुपयाः । सुयशाः । सुस्रोताः । सुस्रत् । सुध्वत् । सोरिति किम् । कृतकर्म्मा । कृतयशाः । मनसी इति किम् । सुराजा । सुतक्षा । अलोमोषसी इति किम् । सुलोमा सूषा । अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता ऽनर्थकेन चेत्यनर्थकयोरपि मनसोरिह ग्रहणम् । नञ्सुभ्यामित्यस्यायमपवादः । कपि तु परत्वात् कपि पूर्वमित्येतद्भवति । सुकर्म्मकः । सुस्रोतस्कः ॥

क्रत्वादयश्च ॥ ११८ ॥

क्रत्वादयः सोरुत्तरे बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्ता भवन्ति । सुक्रतुः । सुदृशीकः । क्रतु । दृशीक । प्रतीक । प्रपूर्त्ति । हव्य । भग ॥

आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि ॥ ११९ ॥

यदाद्युदात्तं द्व्यच् उत्तरपदं बहुव्रीहौ समासे सोरुत्तरं तदाद्युदात्तमेव भवति छन्दसि विषये । स्वश्वास्त्वा सुरथामर्ज्जयेम । नित्स्वरेणाश्वरथशब्दावाद्युदात्तौ । आद्युदात्तमिति किम् । या सुबाहुः स्वङ्गुरिः । बाहुशब्दः प्रत्यय

* मरशब्दो ऽच्प्रत्ययान्त इष्यते मरणं मर इति । पुस्तकान्तरे ऽधिकमत्र ।

स्वरेणान्तोदात्तः । द्व्यजिति किम् । सुगुरसत् । सुहिरण्यः । स्वश्वः । नञ्सुभ्यामित्यस्यायमपवादः ॥

वीरवीर्यौ च ॥ १२० ॥

वीर वीर्य इत्येतौ च शब्दौ सोरुत्तरौ बहुव्रीहौ समासे छन्दसि विषये आद्युदात्तौ भवतः । सुवीरेण ते । सुवीर्यस्य पतयः स्याम । वीर्यमिति यत्प्रत्ययान्तं तत्र यतो ऽनाव इति आद्युदात्तत्वं न भवतीत्येतदेव वीर्यग्रहणं ज्ञापकम् । तत्र हि सति पूर्वेणैव सिद्धं स्यात् ॥

कूलतीरतूलमूलशालाक्षसममव्ययीभावे ॥ १२१ ॥

कूल तीर तूल मूल शाला अक्ष सम इत्येतानि उत्तरपदानि अव्ययीभावसमासे आद्युदात्तानि भवन्ति । परिकूलम् । उपकूलम् । परितीरम् । उपतीरम् । परितूलम् । उपतूलम् । परिमूलम् । उपमूलम् । परिशालम् । उपशालम् । उपाक्षम् । पर्यक्षम् । सुषमम् । विषमम् । निषमम् । दुःषमम् । तिष्ठद्गुप्रभृतिष्वेते पठ्यन्ते । कूलादिग्रहणं किम् । उपकुम्भम् । अव्ययीभाव इति किम् । परमकूलम् । उत्तमकूलम् । पर्यादिभ्यः कूलादीनामाद्युदात्तत्वं विप्रतिषेधेन भवति । परिकूलम् । उपकूलम् ॥

कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ ॥ १२२ ॥

कंस मन्थ शूर्प पाय्य काण्ड इत्येतान्युत्तरपदानि द्विगौ समासे आद्युदात्तानि भवन्ति । द्विकंसः । त्रिकंसः । द्विमन्थः । त्रिमन्थः । द्विशूर्पः । त्रिशूर्पः । द्विपाय्यः । त्रिपाय्यः । द्विकाण्डः । त्रिकाण्डः । द्विगाविति किम् । परमकंसः । उत्तमकंसः ॥

(तत्पुरुषे) शालायां (नपुंसके) ॥ १२३ ॥

शालाशब्दान्ते तत्पुरुषे समासे नपुंसकलिङ्गे उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति । ब्राह्मणशालम् । क्षत्रियशालम् । विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानामिति नपुंसकलिङ्गता । तत्पुरुष इति किम् । दृढशालं ब्राह्मणकुलम् । शालायामिति किम् । ब्राह्मणसेनम् । नपुंसक इति किम् । ब्राह्मणशाला ॥

(कन्या) च ॥ १२४ ॥

तत्पुरुषे समासे नपुंसकलिङ्गे कन्याशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति । सौशमिकन्यम् । आह्वरकन्यम् । चप्यकन्यम् । संज्ञायां कन्थोशीनरेष्विति नपुंसकलिङ्गता । षष्ठीसमासा एते । नपुंसक इत्येव । दाक्षिकन्या ॥

आदिश्चिहणादीनाम् ॥ १२५ ॥

कन्यान्ते तत्पुरुषे समासे नपुंसकलिङ्गे चिहणादीनामादिरुदात्तो

भवति । चिहणकन्थम् । मडरकन्थम् । मडुर इति केचित् पठन्ति । मडुरकन्थम् । चिहण । मडर । मडुर । वैतुल । पटत्क । वैडालिकर्णः । वैतालिकर्णिरित्यन्ये पठन्ति । कुक्कुट । चित्कण । चिक्कण इत्यपरे पठन्ति । आदिरिति वर्तमाने पुनरादिग्रहणं पूर्वपदाद्युदात्तार्थम् ॥

चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम् ॥ १२६ ॥

चेल खेट कटुक काण्ड इत्येतान्युत्तरपदानि तत्पुरुषे समासे गर्हायां गम्यमानायामाद्युदात्तानि भवन्ति । पुत्रचेलम् । भार्याचेलम् । उपानत्खेटम् । नगरखेटम् । दधिकटुकम् । उदश्वित्कटुकम् । भूतकाण्डम् । प्रजाकाण्डम् । चेलादिसादृश्येन पुत्रादीनां गर्हा । तत्र पुत्रश्चेलमिवेति विगृह्य व्याघ्रादेराकृतिगणत्वाद् उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । गर्हायामिति किम् । परमचेलम् ॥

चीरमुपमानम् ॥ १२७ ॥

चीरमुत्तरपदमुपमानवाचि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तं भवति । वस्त्रं चीरमिव, वस्त्रचीरम् । पटचीरम् । कम्बलचीरम् । उपमानमिति किम् । परमचीरम् ॥

पललसूपशाकं मिश्रे ॥ १२८ ॥

पलल सूप शाक इत्येतान्युत्तरपदानि मिश्रवाचिनि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तानि भवन्ति । गुडपललम् । घृतपललम् । घृतसूपः । मूलकसूपः । घृतशाकम् । मुद्गशाकम् गुडेन मिश्रं पललं, गुडपललम् । भक्ष्येण मिश्रीकरणमिति समासः । मिश्रइति किम् । परमपललम् ॥

कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम् ॥ १२९ ॥

कूल सूद स्थल कर्ष इत्येतान्युत्तरपदानि तत्पुरुषे समासे संज्ञायां विषये आद्युदात्तानि भवन्ति । दाक्षिकूलम् । माहकिकूलम् । देवसूदम् । भाजीसूदम् । दाण्डायनस्थली । माहकिस्थली । दाक्षिकर्षः । ग्रामनामधेयान्येतानि । स्थलग्रहणे लिङ्गविशिष्टत्वात्स्थलीशब्दोऽपि गृह्यते । जानपदकुण्डेत्यनेन ङीष् । संज्ञायामिति किम् । परमकूलम् ॥

अकर्मधारये राज्यम् ॥ १३० ॥

कर्मधारयवर्जिते तत्पुरुषे समासे राज्यमित्येतदुत्तरपदमाद्युदात्तं भवति । ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् । अकर्मधारयइति किम् । परमराज्यम् । चेलराज्यादिस्वरादव्ययस्वरो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन । कुचेलम् । कुराज्यम् ॥

वर्ग्यादयश्च ॥ १३१ ॥

वर्ग्य इत्येवमादीन्युत्तरपदानि अकर्मधारये तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तानि भवन्ति । वासुदेववर्ग्यः । वासुदेवपक्ष्यः । अर्जुनवर्ग्यः । अर्जुनपक्ष्यः । अकर्म-

धारयइत्येव । परमवर्ग्यः । वर्ग्यादयः प्रातिपदिकेषु न पठ्यन्ते । दिगादिषु तु वर्ग पूग गण पक्ष इत्येवमादयो ये पठितास्तएव यत्प्रत्ययान्ता वर्ग्यादय इह प्रतिपत्तव्याः ॥

पुत्रः पुम्भ्यः ॥ १३२ ॥

पुत्रशब्दः पुंशब्देभ्य उत्तरस्तत्पुरुषे आद्युदात्तो भवति । कौनटिपुत्रः । दामकपुत्रः । माहिषकपुत्रः । पुत्र इति किम् । कौनटिमातुलः । पुम्भ्य इति किम् । गार्गीपुत्रः । वात्सीपुत्रः ॥

नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः ॥ १३३ ॥

आचार्य उपाध्यायः । राजा ईश्वरः । ऋत्विजो याजकाः । संयुक्ताः स्त्रीसंबन्धिनः श्यालादयः । ज्ञातयो मातृपितृसंबन्धिनो बान्धवाः । आचार्याद्याख्येभ्यः परः पुत्रशब्दो नाद्युदात्तो भवति । आख्याग्रहणात्स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणं भवति । आचार्यपुत्रः । उपाध्यायपुत्रः । शाकटायनपुत्रः । राजपुत्रः । ईश्वरपुत्रः । नन्दपुत्रः । ऋत्विक्पुत्रः । याजकपुत्रः । होतुःपुत्रः । संयुक्तपुत्रः । संबन्धिपुत्रः । श्यालपुत्रः । ज्ञातिपुत्रः । भ्रातुष्पुत्रः । ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्य इति षष्ठ्या अलुक् । पुत्रस्वरे प्रतिषिद्धे समासान्तोदात्तत्वमेव भवति ॥

चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ॥ १३४ ॥

उत्तरपदादिरिति वर्त्तते तत्पुरुषइति च । चूर्णादीन्युत्तरपदानि अप्राणिवाचिनः षष्ठ्यन्तात्पराणि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तानि भवन्ति । मुद्गचूर्णम् । मसूरचूर्णम् । अप्राणिषष्ठ्या इति किम् । मत्स्यचूर्णम् । षष्ठ्या इति किम् । परमचूर्णम् । चूर्ण । करिप । करिव । शाकिन । शाकट । द्राक्षा । तूस्त । कुन्दम । दलप । चमसी । चक्कन * । चौल । चूर्णादीन्यप्राण्युपग्रहादिति सूत्रस्य पाठान्तरम् । तत्रोपग्रह इति षष्ठ्यन्तमेव पूर्वाचार्योपचारेण गृह्यते ॥

षट् च काण्डादीनि ॥ १३५ ॥

षट् पूर्वोक्तानि काण्डादीन्युत्तरपदानि अप्राणिषष्ठ्या आद्युदात्तानि भवन्ति । काण्डं गर्हायामित्युक्तमगर्हायामपि भवति । दर्भकाण्डम् । शरकाण्डम् । चीरमुपमानमित्युक्तमनुपमानमपि भवति । दर्भचीरम् । कुशचीरम् । पललसूपशाकं मिश्रइत्युक्तममिश्रेऽपि भवति । तिलपललम् । मुद्गसूपः । मूलकशाकम् । कूलं संज्ञायामित्युक्तमसंज्ञायामपि भवति । नदीकूलम् । समुद्रकूलम् । षडिति किम् । राजसूदः † ॥

---

* चक्कनेत्यन्ये पठन्ति । इति पदमञ्जरी ।

† अप्राणिषष्ठ्या इति किम् । देवदत्तकाण्ड इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

कुण्डं वनम् ॥ १३६ ॥

कुण्ड शब्दोऽत्र कुण्डसादृश्येन वने वर्त्तते। कुण्डमित्येतदुत्तरपदं वनवाचि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तं भवति । दर्भकुण्डम् । शरकुण्डम् । वनमिति किम् । मृत्कुण्डम् ॥

प्रकृत्या भगालम् ॥ १३७ ॥

भगालवाच्युत्तरपदं तत्पुरुषे समासे प्रकृतिस्वरं भवति । कुम्भीभगालम् । कुम्भीकपालम् । कुम्भीनदालम् । भगालादयो मध्योदात्ताः । प्रकृत्येत्येतदधिकृतमन्त इति यावद्वेदितव्यम् ॥

शितेर्नित्याबह्वज् बहुव्रीहावभसत् ॥ १३८ ॥

शितेरुत्तरपदं नित्यं यदबह्वज् भसच्छब्दवर्जितं बहुव्रीहौ समासे तत्प्रकृतिस्वरं भवति। शितिपादः । शित्यंसः । शित्योष्ठः । पादशब्दो वृषादित्वादाद्युदात्तः । अंसौष्ठशब्दौ च प्रत्ययस्य नित्त्वात् । शितेरिति किम् । दर्शनीयपादः । नित्यग्रहणं किम् । शितिककुत् । ककुदस्यावस्थायां लोपो विधीयते । तत्रावस्थाया अन्यत्र शितिककुद इति बह्वजुत्तरपदं भवतीति तेन न नित्याबह्वच् । अबह्वजिति किम् । शितिललाटः । बहुव्रीहाविति किम् । शितेः पादः, शितिपादः । अभसदिति किम् । शितिभसत् । शितिशब्द आद्युदात्तः । पूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादो योगः ॥

(गतिकारकोपपदात्कृत्) ॥ १३९ ॥

तत्पुरुषइति वर्त्तते न बहुव्रीहाविति । गतेः कारकादुपपदाच्च कृदन्तमुत्तरपदं तत्पुरुषे समासे प्रकृतिस्वरं भवति । प्रकारकः । प्रकरणम् । प्रहारकः । प्रहरणम् । कारकात् । इध्मव्रश्चनः । पलाशशातनः । श्मश्रुकल्पनः । उपपदात् । ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः । सर्वत्रैवात्र लित्स्वरः । गतिकारकोपपदादिति किम् । देवदत्तस्य कारको, देवदत्तकारकः । देवदत्तस्येति शेषलक्षणा षष्ठी । कृद्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् । प्रपचतितराम् । प्रपचतितमाम् । इत्यत्र तरबाद्यन्तेन समासे कृते पश्चादाम् । तत्र सतिशिष्टत्वादाम एव स्वरो भवतीत्येके । प्रपचति । देश्याद्यर्थे तु कृद्ग्रहणं दृश्यतएव ॥

उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ १४० ॥

प्रकृत्येति वर्त्तते । वनस्पत्यादिषु समासेषु उभे पूर्वोत्तरपदे युगपत् प्रकृतिस्वरे भवतः । वनस्पतिः । वनपतिशब्दावाद्युदात्तौ पारस्करप्रभृतित्वात् सुट् । बृहस्पतिः । बृहतां पतिः । तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्चेति सुट् तकारलोपश्च । बृहदित्येतदन्तोदात्तं निपातयन्ति । तस्य के चि-

दाद्युदात्तत्वं वर्णयन्ति । शचीपतिः । शचीशब्दः इदिकारादक्तिन इति ङीषन्तत्वादन्तोदात्तः । के चित्तु शार्ङ्गरवादिषु पठन्ति तेषामाद्युदात्तः । तनूनपात् । तनोतेरौणादिक ऊप्रत्ययस्तेन तनूशब्दोन्तोदात्तः । न पाति न पालयति वा नपात् क्विबन्तः । नभ्राण्नपादित्यादिना ऽऽद्युदात्तो निपातितः । तन्वा नपात्, तनूनपात् । नराशंशः । नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति नरा एवं शंसन्तीति वा नराशंसः । नॄ नये । अबन्तो नरशब्द आद्युदात्तः । शंसशब्दोपि घञन्तः । अन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घत्वम् । शुनःशेपः । शुनइव शेपो ऽस्येति बहुव्रीहिः । तत्र शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः संज्ञायामिति षष्ठ्या अलुक् । उभावाद्युदात्तौ । शण्डामर्कौ । शण्डमर्कशब्दौ घञन्तत्वादाद्युदात्तौ । तयोर्द्वन्द्वे ऽन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घत्वम् । तृष्णावरूत्री । तृष्णाशब्द आद्युदात्तः । वरूत्रीशब्दो ग्रसितादिसूत्रे निपातितोन्तोदात्तः । तत्र द्वन्द्वे दीर्घत्वं पूर्ववत् । बम्बाविश्ववयसौ । बम्बशब्दोन्तोदात्तः । विश्ववयःशब्दोपि बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायामिति विश्वशब्दोन्तोदात्तः । तयोर्द्वन्द्वे दीर्घत्वं पूर्ववत् । मर्मृत्युः । मरिति मृञो विच्प्रत्ययः । मृत्युशब्दोन्तोदात्तः । द्वन्द्वानामदेवताद्वन्द्वार्थो ऽनुदात्ताद्युत्तरपदार्थश्च वनस्पत्यादिषु पाठः ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ १४१ ॥

देवतावाचिनां यो द्वन्द्वस्तत्र युगपदुभे पूर्वोत्तरपदे प्रकृतिस्वरे भवतः । इन्द्रासोमौ । इन्द्रावरुणौ । इन्द्राबृहस्पती । ऋज्रेन्द्राग्रेति इन्द्रशब्द आद्युदात्तो निपातितः । सोम इति मन्प्रत्ययान्तः* । वरुण उनन्प्रत्ययान्तस्तेनाद्युदात्तः । बृहस्पतिशब्दे वनस्पत्यादित्वाद् द्वावुदात्तौ, तेनेन्द्राबृहस्पती इत्यत्र त्रय उदात्ता भवन्ति । देवताग्रहणं किम् । प्लक्षन्यग्रोधौ । द्वन्द्वग्रहणं किम् । अग्निष्टोमः ॥ ∴ अन्वेतगिः। वार्तिकम् ३० ना१ सू२

नोत्तरपदे ऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु ॥ १४२ ॥

उत्तरपदे ऽनुदात्तादौ पृथिवीरुद्रपूषमन्थिवर्जिते देवताद्वन्द्वे नोभे युगपत्प्रकृतिस्वरे भवतः । इन्द्राग्नी । इन्द्रवायू । अग्निवायुशब्दावन्तोदात्तौ । उत्तर पदग्रहणमनुदात्तादावित्युत्तरपदविशेषणं यथा स्याद् द्वन्द्वविशेषणं मा भूदिति । अनुदात्तादाविति विधिप्रतिषेधयोर्विषयविभागार्थम् । अपृथिव्यादिष्विति किम् । द्यावापृथिव्यौ । द्यावाशब्द आद्युदात्तो निपातितः । पृथिवीशब्दो ङीष्प्रत्ययान्तत्वादन्तोदात्तः । रुद्र । सोमारुद्रौ । रोदेर्णिलुक् चेति रुद्रशब्दो रक्प्रत्ययान्तोन्तोदात्तः । पूषन् । इन्द्रापूषणौ । श्वन्नुक्षन्पूषन्निति पूषा-

* नित्वादाद्युदात्त इत्यधिकमन्यत्र ।

न्तोदात्तो निपात्यते। मन्थिन्। शुक्रामन्थिनौ। मन्थोस्यास्तीति मन्थी। इन-न्तत्वादन्तोदात्तः। पृथिव्यादिषु तु उभे युगपत् प्रकृतिस्वरे भवत एव॥

अन्तः॥ १४३॥

अन्त इत्यधिकारो यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्र समासस्योत्तरपद-स्यान्त उदात्तो भवतीत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति। थाथघञ्क्ताजबित्रकाणा-मिति। सुनीथः। अवभृथः॥

थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्॥ १४४॥

थ अथ घञ् क्त अज् अप् इत्र क इत्येवमन्तानामुत्तरपदानां गतिकार-कोपपदात्परेषामन्त उदात्तो भवति। सुनीथः। अवभृथः। हनिकुषिनीरमि-काशिभ्यः क्थन् इति अवे भृञ इति च क्थन्प्रत्ययान्तावेतौ। तत्र कृदुत्तरपद-प्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तमुत्तरपदं स्यात्। अथ। आवसथः। उपवसथः। उपसर्गे वसेरित्यथन्प्रत्ययः। घञ्। प्रभेदः। काष्ठभेदः। रज्जुभेदः। क्त। दूरादागतः। विशुष्कः। आतपशुष्कः। अच्। प्रक्षयः। प्रजयः। क्षयो निवासे जयः करणम् इति चाद्युदात्तौ क्षयजयशब्दौ प्रयोजयतः। अप्। प्रलवः। प्रसवः। इत्र। प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। क। गोवृषः खरीवृषः। गां वर्षति खरीं वर्षतीति मूलविभुजादित्वात्कप्रत्ययः। प्रवृषः। प्रकृषः। इगुपधादिति कप्रत्ययः। वृषा-दीनां चेति वृषशब्द आद्युदात्तः। गतिकारकोपपदादित्येव। सुस्तुतं भवता। कर्मप्रवचनीये ऽव्ययस्वर एव भवति॥

सूपमानात् क्तः॥ १४५॥

सु इत्येतस्मादुपमानाच्च परं क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति। सुकृ-तम्। सुभुक्तम्। सुपीतम्। उपमानात्। वृकावलुप्तम्। शशप्लुतम्। सिंह-विनर्दितम्। सुशब्दाद् गतिरनन्तर इति प्राप्ते उपमानादपि तृतीया कर्मणी-त्ययमपवादः। गतिकारकोपपदादित्येव। सुस्तुतं भवता॥

संज्ञायामनाचितादीनाम्॥ १४६॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात् क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति आचितादीन्वर्जयित्वा। संभूतो रामायणः। उपहूतः शाकल्यः। परिजग्धः कौण्डिन्यः। संभूत इति प्राप्त्यर्थाद् भवतेः कर्मणि क्तः। गतिरनन्तर इत्यत्र हि कर्मणीत्यनुवर्तते तद्बाधनार्थं चेदम्। धनुष्खाता नदी। कुद्दालखातं नग-रम्। हस्तिमृदिता भूमिः*। तृतीया कर्मणीति प्राप्तिरिह बाध्यते। अना-चितादीनामिति किम्। आचितम्। पर्याचितम्। आस्थापितम्। परिग-

---

* क्षितिः। पा० व।

णीतम् । निरुक्तम् । प्रतिपन्नम् । प्रश्लिष्टम् । उपहतम् । उपस्थितम् ॥ संहिताऽगवि ॥ संहिताशब्दो यदा गोरन्यस्य संज्ञा तदा ऽन्तोदात्तो न भवति । यदा तु गोः संज्ञा तदा ऽन्तोदात्त एव ॥

प्रवृद्धादीनां च ॥ १४७ ॥

प्रवृद्धादीनां च क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धं यानम् । प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुक्ताः सक्तवः । आकर्षे ऽवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वारूढः । कविशस्तः । यानादीनामत्र गणे पाठः प्रायो वृत्तिप्रदर्शनार्थो न विषयनियमार्थः । यानादिभ्योऽन्यत्रापि तेषामन्तोदात्तत्वं भवत्येव । विषयनियमार्थ एवेत्येके । असंज्ञार्थोयमारम्भः । आकृतिगणश्च प्रवृद्धादिर्द्रष्टव्यः । तेन पुनरुत्स्यूतं वासो देयं पुनर्निष्कृतो रथ इत्येवमादि सिद्धं भवति ॥

कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि ॥ १४८ ॥

संज्ञायामिति वर्त्तते, क्त इति च । संज्ञायां विषये आशिषि गम्यमानायां कारकादुत्तरयोर्दत्तश्रुतयोरेव क्तान्तयोरन्त उदात्तो भवति । देवा एनं देयासुर्देवदत्तः । विष्णुरेनं श्रूयाद् विष्णुश्रुतः । कारकादिति किम् । कारकान्नियमो मा भूत् । संभूतो रामायणः । दत्तश्रुतयोरिति किम् । देवपालितः । एतस्मान्नियमादत्र संज्ञायामनाचितादीनामित्यन्तोदात्तत्वं न भवति तृतीया कर्मणीत्येवात्र भवति । एवकारकरणं किम् । कारकावधारणं यथा स्याद् दत्तश्रुतावधारणं मा भूत् । आकारकादपि दत्तश्रुतयोरन्त उदात्तो भवति । संश्रुतः । विश्रुतः । आशिषीति किम् । अनाशिषि नियमो मा भूत् । देवैः खाता देवखाता । कारकाद्दत्तश्रुतयोराशिष्येवेत्येवमत्र नियम इष्यते । तेनाहृतो नदति देवदत्त इत्यत्र न भवति । देवदत्त इति कस्य चित् शङ्खस्य नाम । तत्र तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमेव भवति ॥

इत्थंभूतेन कृतमिति च ॥ १४९ ॥

इमं प्रकारमापन्न इत्थंभूतः । इत्थंभूतेन कृतमित्येतस्मिन्नर्थे यः समासो वर्त्तते तत्र क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । सुप्तप्रलपितम् । उन्मत्तप्रलपितम् । प्रमत्तगीतम् । विपन्नश्रुतम् । कृतमिति क्रियासामान्ये करोतिर्वर्त्तते नाभूतप्रादुर्भावएव तेन प्रलपिताद्यपि कृतं भवति । तृतीया कर्मणीत्यस्यायमपवादः । भावे तु यदा प्रलपितादयस्तदा थाथादिस्वरेणैव सिद्धमन्तोदात्तं भवति ॥

अनो भावकर्मवचनः ॥ १५० ॥

अनप्रत्ययान्तमुत्तरपदं भाववचनं कर्मवचनं च कारकात्परमन्तोदात्तं भवति । ओदनभोजनं सुखम् । पयःपानं सुखम् । चन्दनप्रियङ्गुकालेपनं सुखम् ।

कर्मवचन । राजभोजनाः शालयः । राजाच्छादनानि वासांसि । कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्तुः शरीरसुखमित्ययं योग उभयथा वर्ण्यते । कर्मण्युपपदे भावे ल्युड् भवति । कर्मण्यभिधेये ल्युड्भवतीति । तत्र पूर्वस्मिन्सूत्रार्थे भाववचनोदाहरणानि, उत्तरत्र कर्मवचनोदाहरणानि । अन इति किम् । हस्तहार्यमुदश्वित् । भावकर्मवचन इति किम् । दन्तधावनम् । करणे ल्युट् । कारकादित्येव । निदर्शनम् । अवलेखनम् । सर्वेषु प्रत्युदाहरणेषु प्रकृतिस्वरो भवति ॥

मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः ॥ १५१ ॥

मन्नन्तं क्तिन्नन्तं व्याख्यान शयन आसन स्थान इत्येतानि याजकादयः क्रीतशब्दश्चोत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । मन् । रथवर्त्म । शकटवर्त्म । क्तिन् । पाणिनिकृतिः । आपिशलिकृतिः । व्याख्यान । छायनव्याख्यानम् । छन्दोव्याख्यानम् । शयन । राजशयनम् । ब्राह्मणशयनम् । आसन । राजासनम् । ब्राह्मणासनम् । स्थान । गोस्थानम् । अश्वस्थानम् । याजकादिः । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । ब्राह्मणपूजकः । क्षत्रियपूजकः । याजकादयो ये याजकादिभिश्चेति षष्ठीसमासार्थाः पठ्यन्ते तएवेह गृह्यन्ते । क्रीत । गोक्रीतः । अश्वक्रीतः । कृत्स्वरापवादोयं योगः । क्रीतशब्दे तु तृतीया कर्मणीत्यस्यापवादः । व्याख्यानशयनासनस्थानानामभावकर्मार्थं ग्रहणम् । कारकादित्येव । प्रकृतिः । प्रहृतिः ॥

सप्तम्याः पुण्यम् ॥ १५२ ॥

सप्तम्यन्तात्परं पुण्यमित्येतदुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । अध्ययने पुण्यम्, अध्ययनपुण्यम् । वेदे पुण्यं, वेदपुण्यम् । सप्तमीति योगविभागात्समासः । तत्पुरुषे तुल्यार्थेति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं प्राप्तमित्यन्तोदात्तत्वं विधीयते । उणादीनां तु व्युत्पत्तिपक्षे कृत्स्वरेणाद्युदात्तः पुण्यशब्दः स्यादिति । सप्तम्या इति किम् । वेदेन पुण्यं, वेदपुण्यम् ॥

ऊनार्थकलहं तृतीयायाः ॥ १५३ ॥

ऊनार्थान्युत्तरपदानि कलहशब्दश्च तृतीयान्तात्पराण्यन्तोदात्तानि भवन्ति । माषोनम् । कार्षापणोनम् । माषविकलम् । कार्षापणविकलम् । कलह । असिकलहः । वाक्कलहः । तृतीयापूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादो योगः । अत्र के चिदर्थे इति स्वरूपग्रहणमिच्छन्ति । धान्येनार्थो धान्यार्थः । ऊनशब्देनैव त्वर्थनिर्देशार्थेन तदर्थानां ग्रहणमिति प्रतिपदोक्तत्वादेव तृतीयासमासपरिग्रहे सिद्धे तृतीयाग्रहणं विस्पष्टार्थम् ॥

मिश्रं चानुपसर्गमसंधौ ॥ १५४ ॥

तृतीयेति वर्त्तते। मिश्र इत्येतदुत्तरपदमनुपसर्गं तृतीयान्तात्परमन्तोदात्तं भवत्यसंधौ गम्यमाने। गुडमिश्राः। तिलमिश्राः। सर्पिर्मिश्राः। मिश्रमिति किम्। गुडधानाः। अनुपसर्गमिति किम्। गुडसंमिश्राः। इहानुपसर्गग्रहणं ज्ञापकमन्यत्र मिश्रग्रहणे सोपसर्गग्रहणस्य। तेन मिश्रश्लक्ष्णैरिति सोपसर्गेणापि मिश्रशब्देन तृतीयासमासो भवति। असंधाविति किम्। ब्राह्मणमिश्रो राजा। ब्राह्मणैः सह संहित ऐकार्थ्यमापन्नः। संधिरिति हि पणबन्धेनैकार्थ्यमुच्यते। केचित्पुनराहुर्गम्यमाने विशेषाप्रत्यासक्तिः संधिरिति। तत्र राजा ब्राह्मणैः सह देशप्रत्यासत्तावपि सत्यां मूर्तिविभागो गृह्यतइति ब्राह्मणमिश्रो राजेति प्रत्युदाह्रियते। उदाहरणेष्वविभागापत्तिरेव गुडमिश्रा इति॥

नञो गुणप्रतिषेधे संपाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः ॥ १५५ ॥

संपादि अर्ह हित अलम्। इत्येवमर्था ये तद्धितास्तदन्तान्युत्तरपदानि नञो गुणप्रतिषेधे वर्तमानात्पराण्यन्तोदात्तानि भवन्ति। संपादि। कर्णवेष्टकाभ्यां संपादि, मुखं कार्णवेष्टकिकं, न कार्णवेष्टकिकम्, अकार्णवेष्टकिकम्। अर्ह। छेदमर्हति छैदिकः। न छैदिको ऽच्छैदिकः। हित। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो, न वत्सीयो ऽवत्सीयः। अलमर्थ। संतापाय प्रभवति सांतापिकः। न सांतापिको ऽसांतापिकः। नञ इति किम्। गर्द्दभरथमर्हति गार्द्दभरथिकः। विगार्द्दभरथिकः। गुणप्रतिषेधइति किम्। गार्दभरथिकादन्यो ऽगार्द्दभरथिकः। गुण इति तद्धितार्थप्रवृत्तिनिमित्तं संपादित्वाद्युच्यते। तत्प्रतिषेधो यत्रोच्यते समासे तत्रायं विधिः। कर्णवेष्टकाभ्यां न संपादि मुखमिति। संपाद्यर्हहितालमर्था इति किम्। पाणिनीयमधीते पाणिनीयो न पाणिनीयो ऽपाणिनीयः। तद्धिता इति किम्। कन्यां वोढुमर्हति कन्यावोढा न वोढा ऽवोढा अर्हे कृत्यतृचश्चेति तृच्॥

ययतोश्चातदर्थे ॥ १५६ ॥

य यत् इत्येतौ यौ तद्धितावतदर्थे वर्त्तते तदन्तस्योत्तरपदस्य नञो गुणप्रतिषेधविषयादन्त उदात्तो भवति। पाशानां समूहः पाश्या न पाश्या अपाश्या। अतृण्या। यत्। दन्तेषु भवं दन्त्यं न दन्त्यमदन्त्यम्। अकर्ण्यम्। अतदर्थइति किम्। पादार्थमुदकं पाद्यम्। न पाद्यमपाद्यम्। तद्धिता इत्येव। अदेयम्। गुणप्रतिषेधइत्येव। दन्त्यादन्यददन्त्यम्। निरनुबन्धकानुबन्धकयोर्ययतोर्ग्रहणादिह न भवति। वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ। वामदेव्यं न वामदेव्यमवामदेव्यमिति॥

अच्कावशक्तौ ॥ १५७ ॥

अच् क इत्येवमन्तमशक्तौ गम्यमानायामुत्तरपदं नञः परमन्तोदात्तं भवति । अपचो यः पक्तुं न शक्नोति । अजयः । कः खल्वपि । अविक्षिपः । अविलिखः । अशक्ताविति किम् । अपचो दीक्षितः । अपचः परिव्राजकः * ॥

आक्रोशे च ॥ १५८ ॥

आक्रोशे च गम्यमाने नञ उत्तरमचक्रान्तमन्तोदात्तं भवति । अपचोऽयं जाल्मः । अपठोऽयं जाल्मः । पक्तुं पठितुं शक्तोऽप्येवमाक्रुश्यते । अविक्षिपः । अविलिखः ॥

संज्ञायाम् ॥ १५९ ॥

आक्रोशे गम्यमाने नञः परमुत्तरपदं संज्ञायां । वर्त्तमानमन्तोदात्तं भवति । अदेवदत्तः । अयज्ञदत्तः । अविष्णुमित्रः ॥

कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ॥ १६० ॥

कृत्य उक इष्णुच् इत्येवमन्ताश्चार्वादयश्च नञ उत्तरेऽन्तोदात्ता भवन्ति । कृत्य । अकर्त्तव्यम् । अकरणीयम् । उक । अनागामुकम् । अनपलाषुकम् । इष्णुच् । अनलंकरिष्णुः । अनिराकरिष्णुः । इष्णुज्ग्रहणे कर्त्तरि भुवः खिष्णुजित्यस्य इरनुबन्धकस्यापि ग्रहणमिकारादेर्विधानसामर्थ्याद्भवति । अनाढ्यंभविष्णुः । असुभगंभविष्णुः । चार्वादयः । अचारुः । असाधुः । अयौधिकः । अवदान्यः । चारु । साधु । यौधिक । अनङ्गमेजय । अत्र द्वितीये नञ्समासेऽन्तोदात्तत्वम् । अननङ्गमेजयः । वदान्यः । अकस्मात् । अत्रापि द्वितीयेन समासेऽन्तोदात्तत्वम् ॥ वर्त्तमानवर्द्धमानत्वरमाणध्रियमाणक्रियमाणरोचमानशोभमानाः संज्ञायाम् ॥ एते वर्त्तमानादयः संज्ञायां द्रष्टव्याः ॥ विकारसदृशे व्यस्तसमस्ते ॥ अविकारः । असदृशः । अविकारसदृशः । गृहपति । गृहपतिकः ॥ राजाह्नोश्छन्दसि ॥ अराजा । अनहः । भाषायां नञ्स्वर एव भवति ॥

विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु ॥ १६१ ॥

तृचन्त अन्न तीक्ष्ण शुचि इत्येतेषु नञ उत्तरेषु विभाषाऽन्त उदात्तो भवति । अकर्त्ता । २ । अन्न । अनन्नम् । २ । तीक्ष्ण । अतीक्ष्णम् । २ । शुचि । अशुचिः । २ । पक्षेऽव्ययस्वर एव भवति ॥

बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने ॥ १६२ ॥

बहुव्रीहौ समासे इदम् एतद् तदित्येभ्य उत्तरस्य प्रथमशब्दस्य पूरणप्रत्ययान्तस्य च क्रियागणने वर्त्तमानस्यान्त उदात्तो भवति । इदं प्रथमं गमनं

---

* गुणप्रतिषेधइत्येव, अन्यो यः पचादपच इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

भोजनं वा स इदंप्रथमः। इदंद्वितीयः। इदंतृतीयः। एतत्प्रथमः। एतद्द्वितीयः। एतत्तृतीयः। तत्प्रथमः। तद्द्वितीयः। तत्तृतीयः। बहुव्रीहाविति किम्। अनेन प्रथम इदंप्रथमः। तृतीयेति योगविभागात्समासः। इदमेतत्तद्भ्य इति किम्। यत्प्रथमः। प्रथमपूरणयोरिति किम्। तानि बहून्यस्य तद्बहुः। क्रियागणनइति किम्। अयं प्रथम एषां तद्दंप्रथमाः। द्रव्यगणनमेतत्। गणनइति किम्। अयं प्रथम एषामिदंप्रथमाः। इदंप्रधाना इत्यर्थः। उत्तरपदस्य कार्यित्वात् कपि पूर्वमन्तोदात्तं भवति। इदंप्रथमकाः। बहुव्रीहाविन्येतदुनं समासइति प्रागेतस्मादधिकृतं वेदितव्यम्॥

संख्यायाः स्तनः॥ १६३॥

संख्यायाः परः स्तनशब्दो बहुव्रीहौ समासेन्तोदात्तो भवति। द्विस्तना। त्रिस्तना। चतुःस्तना। संख्याया इति किम्। दर्शनीयस्तना। स्तन इति किम्। द्विशिराः *॥

विभाषा छन्दसि॥ १६४॥

छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे संख्यायाः परः स्तनशब्दो विभाषा ऽन्तोदात्तो भवति। द्विस्तनां कुर्याद्वामदेवः। द्विस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहाय चतुःस्तनां करोति पशूनां दोहाय। चतुःस्तनां करोति॥

संज्ञायां मित्राजिनयोः॥ १६५॥

संज्ञायां विषये बहुव्रीहौ समासे मित्र अजिन इत्येतयोरुत्तरपदयोरन्त उदात्तो भवति। देवमित्रः। ब्रह्ममित्रः। वृकाजिनः। कूलाजिनः। कृष्णाजिनः। संज्ञायामिति किम्। प्रियमित्रः। महाजिनः॥ ऋषिप्रतिषेधो मित्रे॥ *॥ विश्वामित्र ऋषिः॥

व्यवायिनो ऽन्तरम्॥ १६६॥

व्यवायी व्यवधाता। तद्वाचिनः परमन्तरं बहुव्रीहौ समासे ऽन्तोदात्तं भवति। वस्त्रान्तरः। पटान्तरः। कम्बलान्तरः। वस्त्रमन्तरं। व्यवधायकं यस्य स वस्त्रान्तरः। वस्त्रव्यवधायक इत्यर्थः। व्यवायिन इति किम्। आत्मान्तरः। आत्मा स्वभावोन्तरोन्यो यस्यासावात्मान्तरः॥

मुखं स्वाङ्गम्॥ १६७॥

मुखमुत्तरपदं स्वाङ्गवाचि बहुव्रीहौ समासे ऽन्तोदात्तं भवति। गौरमुखः। भद्रमुखः। स्वाङ्गमिति किम्। दीर्घमुखा शाला। स्वाङ्गमद्रवादिलक्षणमिह गृह्यते॥

---

* त्रिशिरा इत्यधिकमन्यत्र।

नाव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः ॥ १६८ ॥

अव्यय दिक्शब्द गो महत् स्थूल मुष्टि पृथु वत्स इत्येतेभ्यः परं मुखं स्वाङ्गवाचि बहुव्रीहौ समासे नान्तोदात्तं भवति। अव्यय। उच्चैर्मुखः। नीचैर्मुखः। दिक्शब्द। प्राङ्मुखः। प्रत्यङ्मुखः। गो। गोमुखः। महत्। महामुखः। स्थूल। स्थूलमुखः। मुष्टि। मुष्टिमुखः। पृथु। पृथुमुखः। वत्स। वत्समुखः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरो यथायोगमेषु भवति। गोमुष्टिवत्सपूर्वस्योपमानलक्षणो विकल्पः पूर्वविप्रतिषेधेन बाध्यते॥

निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् ॥ १६९ ॥

निष्ठान्तादुपमानवाचिनश्च मुखं स्वाङ्गमुत्तरपदमन्यतरस्यां बहुव्रीहौ समासेन्तोदात्तं भवति। प्रक्षालितमुखः। यदैतदुत्तरपदान्तोदात्तत्वं न भवति तदा निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्यामिति पक्षे पूर्वपदान्तोदात्तत्वं तदभावपक्षेपि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन गतिस्वर इति त्रीण्युदाहरणानि भवन्ति। उपमानात्। सिंहमुखः। २। व्याघ्रमुखः। २॥

जातिकालसुखादिभ्यो ऽनाच्छादनात् क्तो ऽकृतमितप्रतिपन्नाः ॥ १७० ॥

जातिवाचिन आच्छादनवर्जितात् कालवाचिनः सुखादिभ्यश्च परं क्तान्तं कृतमितप्रतिपन्नान्वर्जयित्वा बहुव्रीहौ समासेन्तोदात्तं भवति। सारङ्गजग्धः। पलाण्डुभक्षितः। सुरापीतः। काल। मासजातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः। सुखादिभ्यः। सुखजातः। दुःखजातः। तृप्रजातः। जात्यादिभ्य इति किम्। पुत्रजातः। आहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः। अनाच्छादनादिति किम्। वस्त्रच्छन्नः। वसनच्छन्नः। अकृतमितप्रतिपन्ना इति किम्। कुण्डकृतः। कुण्डमितः। कुण्डप्रतिपन्नः। एतेषु बहुव्रीहिषु निष्ठान्तस्य* पूर्वनिपातो न भवत्येवास्मादेव ज्ञापकात्। प्रत्युदाहरणेषु पूर्वपदप्रकृतिस्वरो योजयितव्यः। सुखादयस्तृतीयेध्याये पठ्यन्ते॥

वा जाते ॥ १७१ ॥

जातशब्दउत्तरपदे वा ऽन्त उदात्तो भवति बहुव्रीहौ समासे जातिकालसुखादिभ्यः। दन्तजातः। २। स्तनजातः। २। कालात्। मासजातः। २। संवत्सरजातः। २। सुखादिभ्यः। सुखजातः। दुःखजातः॥

नञ्सुभ्याम् ॥ १७२ ॥

नञ्सुभ्यां परमुत्तरपदं बहुव्रीहौ समासेन्तोदात्तं भवति। अयवोदेशः।

---

* पूर्वनिपातो न भवतीत्यस्य स्थाने परनिपातो भवति। पा० २।

अव्रीहिः । अमाषः । सुयवः । सुव्रीहिः । सुमाषः । समासस्यैतदन्तोदात्तत्व-मिष्यते । समासान्ताश्चावयवा भवन्तीत्यनृचो बह्वृच इत्यत्र कृते समासान्ते ऽन्तोदात्तत्वं भवति ॥

कपि पूर्वम् ॥ १७३ ॥

नञ्सुभ्यां कपि परतः पूर्वमन्तोदात्तं भवति । अकुमारीको देशः । अवृ-षलीकः । अब्रह्मबन्धूकः । सुकुमारीकः । सुवृषलीकः । सुब्रह्मबन्धूकः ॥

ह्रस्वान्ते ऽन्त्यात्पूर्वम् ॥ १७४ ॥

ह्रस्वो ऽन्तो यस्य तदिदं ह्रस्वान्तमुत्तरपदं समासो वा, तत्रान्त्यात्पूर्व-मुदात्तं भवति कपि परतो नञ्सुभ्यां परं बहुव्रीहौ समासे । अयवको देशः । अव्रीहिकः । अमाषकः । सुयवकः । सुव्रीहिकः । सुमाषकः । पूर्वमिति वर्त्तमाने पुनः पूर्वग्रहणं प्रवृत्तिभेदेन नियमप्रतिपत्त्यर्थम् । ह्रस्वान्तेन्त्यादेवपूर्वमुदात्तं भवति न कपि पूर्वमिति । तेनाज्ञकः सुज्ञक इत्यत्र कबन्तस्यैवान्तोदात्तत्वं भवति ॥

बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि ॥ १७५ ॥

उत्तरपदार्थबहुत्वे यो बहुशब्दो वर्त्तते तस्मान्नञइव स्वरो भवति । नञ्सुभ्यामित्युक्तम् । बहोरपि तथा भवति । बहुयवो देशः । बहुव्रीहिः । बहुतिलः । कपि पूर्वमित्युक्तं बहोरपि तथा भवति । बहुकुमारीको देशः । बहुवृषलीकः । बहुब्रह्मबन्धूकः । ह्रस्वान्तेन्त्यात्पूर्वमित्युक्तं बहोरपि तथा भवति । बहुयवको देशः । बहुव्रीहिकः । बहुमाषकः । नञो जरमरमित्रमृता इत्युक्तं बहोरपि तथा भवति । बहुजरः । बहुमरः । बहुमित्रः । बहुमृतः । उत्तरपदभूम्नीति किम् । बहुषु मनो ऽस्य बहुमना अयम् ॥

६।२।११६

न गुणादयो ऽवयवाः ॥ १७६ ॥

गुणादयो ऽवयववाचिनो बहोरुत्तरे बहुव्रीहौ नान्तोदात्ता भवन्ति । बहुगुणा रज्जुः । बह्वक्षरं पदम् । बहुच्छन्दो मानम् । बहुसूक्तः । बह्वध्यायः । गुणादिराकृतिगणो द्रष्टव्यः । अवयवा इति किम् । बहुगुणो ब्राह्मणः । अध्ययनश्रुतसदाचारादयो ऽत्र गुणाः ॥

उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु ॥ १७७ ॥

उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवं पर्शुवर्जितमन्तोदात्तं भवति बहुव्रीहौ समासे । प्रपृष्ठः । प्रोदरः । प्रललाटः । ध्रुवमित्येकरूपमुच्यते । ध्रुवमस्य शीलमिति यथा । सततं यस्य प्रगतं पृष्ठं भवति स प्रपृष्ठः । उपसर्गादिति किम् । दर्श-नीयललाटः । स्वाङ्गमिति किम् । प्रशाखो वृक्षः । ध्रुवमिति किम् । उद्बाहुः क्रोशति । अपर्श्विति किम् । उत्पर्शु । विपर्शु ॥

वनं समासे ॥ १७८ ॥

समासमात्रे वनमित्येतदुत्तरपदमुपसर्गात्परमन्तोदात्तं भवति । प्रवणे यष्टव्यम् । निर्वणे प्रणिधीयते । प्रनिरन्तरिति णत्वम् । समासग्रहणं समासमात्रपरिग्रहार्थं बहुव्रीहावेव हि स्यात् ॥ ८।४।५

अन्तः ॥ १७९ ॥

अन्तश्शब्दादुत्तरं वनमन्तोदात्तं भवति । अन्तर्वणो देशः । अनुपसर्गार्थ आरम्भः ॥

अन्तश्च ॥ १८० ॥

अन्तश्शब्दश्चोत्तरपदमुपसर्गादन्तोदात्तं भवति । प्रान्तः । पर्यन्तः । बहुव्रीहिरयं प्रादिसमासो वा ॥

न निविभ्याम् ॥ १८१ ॥

नि वि इत्येताभ्यामुत्तरोन्तश्शब्दो नान्तोदात्तो भवति । न्यन्तः । व्यन्तः । पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे कृते यणादेशः । तत्रोदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्येति स्वरितो भवति ॥

परेरभितोभावि मण्डलम् ॥ १८२ ॥

परेरुत्तरमभितोभाविवचनं मण्डलं चान्तोदात्तं भवति । परिकूलम् । परितीरम् । परिमण्डलम् । बहुव्रीहिरयं प्रादिसमासो ऽव्ययीभावो वा । अव्ययीभावपक्षेपि हि परिप्रत्युपापावर्ज्यमानाहोरात्रावयवेष्विति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं प्राप्तमनेन बाध्यते । अभित इत्युभयतः । अभितो भावो ऽस्यास्तीति तदभितोभावि । यच्चैवं स्वभावं कूलादि तदभितोभाविग्रहणेन गृह्यते ॥

प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम् ॥ १८३ ॥

प्रादुत्तरपदमस्वाङ्गवाचि संज्ञायां विषये ऽन्तोदात्तं भवति । प्रकोष्ठम् । प्रगृहम् । प्रद्वारम् । अस्वाङ्गमिति किम् । प्रहस्तम् । प्रपदम् । संज्ञायामिति किम् । प्रपीठम् * ॥

निरुदकादीनि च ॥ १८४ ॥

निरुदकादीनि च शब्दरूपाण्यन्तोदात्तानि भवन्ति । निरुदकम् । निरुलपम् । निरुपलमित्यन्ये पठन्ति । निर्मशकम् । निर्मक्षिकम् । एषां प्रादिसमासो बहुव्रीहिर्वा । अव्ययीभावे तु समासान्तोदात्तत्वेनैव सिद्धम् । निष्कालकः । निष्क्रान्तः कालकादिति कन्प्रत्ययान्तेन कालब्देन प्रादिसमासः । नि-

---

* प्राद्यः । पा० ।

श्कालिक इत्यन्ये पठन्ति । निष्प्रेषः । दुस्तरीपः । अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः । तरीः । तां पातीति तरीपः । कुत्सितस्तरीपो दुस्तरीपः । निस्तरीप इति के चित्पठन्ति । अपरे निस्तरीक इति । ते तरीशब्दान्ते बहुव्रीहौ कपं कुर्वन्ति । निरजिनम् । उदजिनम् । उपाजिनम् ॥ परेर्हस्तपादकेशकर्षाः ॥ परिहस्तः । परिपादः । परिकेशः । परिकर्षः । निरुदकादिराकृतिगणः ॥

अभेर्मुखम् ॥ १८५ ॥

अभेरुत्तरं मुखमन्तोदात्तं भवति । अभिमुखः । बहुव्रीहिरयं प्रादिसमासो वा । अव्ययीभावे तु समासान्तोदात्तत्वेनैव सिद्धम् । उपसर्गात्स्वाङ्गमिति सिद्धे वचनमबहुव्रीह्यर्थमध्रुवार्थमस्वाङ्गार्थं च । अभिमुखाशाला ॥

(अपाच्च) ॥ १८६ ॥

अपाच्चोत्तरं मुखमन्तोदात्तं भवति । अपमुखः । अपमुखम् । अव्ययीभावेऽप्यत्र प्रयोजयति । तत्रापि हि परिप्रत्युपापावर्ज्यमानाहोरात्रावयवेष्वित्युक्तम् । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनाम नाम च ॥ १८७ ॥

स्फिग पूत वीणा अञ्जस् अध्वन् कुक्षि इत्येतान्युत्तरपदानि सीरनामानि नामशब्दश्चापादुत्तराण्यन्तोदात्तानि भवन्ति । अपस्फिगम् । अपपूतम् । अपवीणम् । अपाञ्जः । अपाध्वा । उपसर्गादध्वन इति यदा समासान्तो नास्ति तदाऽनेनान्तोदात्तत्वं भवति । तस्मिन्हि सत्यचप्रत्ययस्य चित्त्वादेव सिद्धम् । अनित्य एवसमासान्त इत्येतदेव ज्ञापकम् । अपकुक्षिः । अपसीरः । अपहलम् । अपलाङ्गलम् । अपनाम । सर्वत्र प्रादिसमासो बहुव्रीहिरव्ययीभावो वा । स्फिगपूतकुक्षीणां ग्रहणमबहुव्रीह्यर्थमध्रुवार्थमस्वाङ्गार्थं च ॥

अधेरुपरिस्थम् ॥ १८८ ॥

अधेरुत्तरमुपरिस्थवाचि अन्तोदात्तं भवति । अधिदन्तः । अधिकर्णः । अधिकेशः । अध्यारूढो दन्त इति प्रादिसमासः । अध्यारूढो वा दन्त इति समानाधिकरण उत्तरपदलोपी समासः । दन्तस्योपरि योऽन्यो दन्तो जायते स उच्यतेऽधिदन्त इति । उपरिस्थमिति किम् । अधिकरणम् ॥

अनोरप्रधानकनीयसी ॥ १८९ ॥

अनोरुत्तरमप्रधानवाचि कनीयश्चान्तोदात्तं भवति । अनुगतो ज्येष्ठ,मनुज्येष्ठः । अनुमध्यमः । पूर्वपदार्थप्रधानः प्रादिसमासोऽयम् । अनुगतः कनीयान्,नुकनीयान् । उत्तरपदार्थप्रधानोऽयम् । प्रधानार्थं च कनीयोग्रहणम् । अप्रधानकनीयसी इति किम् । अनुगतो ज्येष्ठो, ऽनुज्येष्ठः ॥

पुरुषश्चान्वादिष्टः ॥ १९० ॥

पुरुषशब्दो ऽन्वादिष्टवाची चानोरुत्तरोऽन्तोदात्तो भवति । अन्वादिष्टः पुरुषो, ऽनुपुरुषः । अन्वादिष्टो ऽन्वाचितः कथितानुकथितो वा । अन्वादिष्ट इति किम् । अनुगतः पुरुषो ऽनुपुरुषः ॥

अतेरकृत्पदे ॥ १९१ ॥

अतेः परमकृदन्तं पदशब्दश्चान्तोदात्तो भवति । अत्यङ्कुशो नागः । अतिकशोश्वः । पदशब्दः खल्वपि । अतिपदा शक्करी । अकृत्पदे इति किम् । अतिकारकः ॥ अतेर्धातुलोपइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । शोभनो गार्ग्यः । अतिगार्ग्यः । इह च यथा स्यात् । अतिक्रान्तः कारकादतिकारक इति ॥

नेरनिधाने ॥ १९२ ॥

नेः परमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । निधानमप्रकाशता । निमूलम् । न्यक्षम् । नितृणम् । बहुव्रीहिरयं प्रादिसमासो वा । अव्ययीभावे तु समासान्तोदात्तत्वेनैव सिद्धम् । अनिधानइति किम् । निवाग्वृषलः । निदण्डः । निहितवाक्, निहितदण्ड इत्यर्थः । निशब्दोऽत्र नधानार्थं ब्रवीति । प्रादयो हि वृत्तिविषये ससाधनां क्रियामाहुः ॥

प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ १९३ ॥

प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे समासेन्तोदात्ता भवन्ति । प्रतिगतों ऽशुः, प्रत्यंशुः । प्रतिजनः । प्रतिराजा । राजशब्दः समासान्तस्यानित्यत्वाद्यदा टच् नास्ति तदा प्रयोजयति । तस्मिन्हि सति चित्त्वादेवान्तोदात्तत्वं सिद्धम् । अंशु । जन । राजन् । उष्ट्र । खेटक । अजिर । आर्द्रा । श्रवण । कृत्तिका । अर्द्ध । पुर । तत्पुरुषइति किम् । प्रतिगता अंशवोस्य प्रत्यंशुरयमुष्ट्रः ॥

उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः ॥ १९४ ॥

उपादुत्तरं द्व्यजजिनं चान्तोदात्तं भवति तत्पुरुषे समासे गौरादीन्वर्जयित्वा । उपगतो देव,मुपदेवः । उपसोमः । उपेन्द्रः । उपहोडः । अजिन । उपाजिनम् । अगौरादय इति किम् । उपगौरः । उपतैषः । गौर । तैष । तैल । लेट । लोट । जिह्वा । कृष्णा । कन्या । गुड । कल्य । पाद । तत्पुरुषइत्येव । उपगतः सोमोस्य, उपसोमः ॥

सोरवक्षेपणे ॥ १९५ ॥

सुशब्दात्परमुत्तरपदं तत्पुरुषे समासेन्तोदात्तं भवति अवक्षेपणे गम्यमाने । अवक्षेपणं निन्दा । इह खल्विदानीं सुस्थण्डिले सुस्फिताभ्यां सुप्रत्यवसितः ।

सुशब्दोऽत्र पूजायामेव। वाक्यार्थस्तु अवक्षेपणमसूयया तथाभिधानात्। सोरिति किम्। कुत्राह्मणाः। अवक्षेपणादिति किम्। शोभनेषु तृणेषु सुतृणेषु ॥

विभाषोत्पुच्छे ॥ १९६ ॥

उत्पुच्छशब्दे तत्पुरुषे विभाषा ऽन्त उदात्तो भवति। उत्क्रान्तः पुच्छाद्, उत्पुच्छः। यदा तु पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छयति उत्पुच्छयतेरच् उत्पुच्छस्तदा थाथादिसूत्रेण नित्यमन्तोदात्तत्वे प्राप्ते विकल्पोऽयमिति सेयमुभयत्र विभाषा भवति। तत्पुरुषइत्येव। उदस्तं पुच्छमस्य, उत्पुच्छः ॥

द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्द्धसु बहुव्रीहौ ॥ १९७ ॥

द्वि त्रि इत्येताभ्यामुत्तरेषु पाद् दत् मूर्द्धन् इत्येषूत्तरपदेषु यो बहुव्रीहिस्तत्र विभाषा ऽन्त उदात्तो भवति। द्वौ पादावस्य, द्विपात्। २। त्रिपात्। २। द्विदन्। २। त्रिदन्। २। द्विमूर्द्धा। २। त्रिमूर्द्धा। २। पादिति कृताकारलोपः पादशब्दो गृह्यते। ददिति कृतददादेशो दन्तशब्दः। मूर्द्धस्विति त्वकृतसमासान्तो नान्त एव मूर्द्धन्शब्दः। तस्यैतत्प्रयोजनमसत्यपि समासान्ते ऽन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। एतदेव ज्ञापकमनित्यः समासान्तो भवतीति। यदापि समासान्तः क्रियते तदापि बहुव्रीहेः कार्यित्वात् तदेकदेशत्वाच्च समासान्तस्यान्तोदात्तत्वं पक्षे भवत्येव। द्विमूर्द्धः। त्रिमूर्द्धः। द्वित्रिभ्यामिति किम्। कल्याणमूर्द्धा। पादादिष्विति किम्। द्विहस्तम्। बहुव्रीहाविति किम्। द्वयोर्मूर्द्धा, द्विमूर्द्धा ॥

सक्थं चाक्रान्तात् ॥ १९८ ॥

सक्थमिति कृतसमासान्तः सक्थिशब्दोऽत्र गृह्यते सोऽक्रान्तात्परो विभाषान्तोदात्तो भवति। गौरसक्थः। २। श्लक्ष्णसक्थः। २। अक्रान्तादिति किम्। चक्रसक्थः। अचश्चित्वान्नित्यमन्तोदात्तत्वं भवति ॥

पराद्विश्छन्दसि बहुलम् ॥ १९९ ॥

छन्दसि विषये परादिरुदात्तो भवति बहुलम्। परशब्देनात्र सक्थशब्द एव गृह्यते। अञ्जिसक्थमालभेत। त्वाष्ट्रौ लोमसक्थौ। ऋजुबाहुः। वाक्पतिः। चित्पतिः।

> परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते।
> पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं ततः ॥

परादिरुदाहृतः। परान्तः ॥ अन्तोदात्तप्रकरणे त्रिचक्रादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ त्रिचक्रेण। त्रिबन्धुरेण। त्रिवृता रथेन। पूर्वान्तः ॥ पूर्वपदान्तोदात्तप्रकरणे मरुद्वृद्धादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ मरुद्वृद्धः।

पूर्वादिः ॥ पूर्वपदाद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ दिवोदासाय सामगाय ते इत्येवमादि सर्वं संगृहीतं भवति ॥

इति काशिकायां वृत्तौ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अलुगुत्तरपदे ॥ १ ॥

अलुगिति च उत्तरपदे इति च एतदधिकृतं वेदितव्यम् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो ऽलुगुत्तरपदइत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः । स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । उत्तरपदइति किम् । निष्क्रान्तः स्तोकाद्, निस्तोकः । अन्यार्थमिदमुत्तरपदग्रहणमिहाप्यलुको निवृत्तिं करोतीत्येवमर्थं लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा नाश्रयितव्या । अलुगधिकारः प्रागानङः । उत्तरपदाधिकारः प्रागङ्गाधिकारात् ॥

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ २ ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि स्तोकादीनि तेभ्यः परस्याः पञ्चम्या उत्तरपदे ऽलुग्भवति । स्तोकान्मुक्तः अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रान्मुक्तः । समासे कृते प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुकि प्राप्ते प्रतिषेधः क्रियते । द्विवचनबहुवचनान्तानां तु स्तोकादीनामनभिधानात्समास एव न भवति स्तोकाभ्यां मुक्तः स्तोकेभ्यो मुक्त इति । तेनात्र न कदा चिदप्येकपद्यमैकस्वर्यं च भवति ॥ ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम् ॥ * ॥ ब्राह्मणादादाय शंसतीति, ब्राह्मणाच्छंसीति ऋत्विग्विशेषस्य * रूढिरियम् । तस्य व्युत्पत्तिरसता सता वावयवार्थेन क्रियते ॥

ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ॥ ३ ॥

ओजस् सहस् अम्भस् तमस् इत्येतेभ्य उत्तरस्यास्तृतीयाया अलुग्भवति उत्तरपदे । ओजसाकृतम् । सहसाकृतम् । अम्भसाकृतम् । तमसाकृतम् ॥ अञ्जस उपसंख्यानम् ॥ * ॥ अञ्जसाकृतम् ॥ पुंसानुजो जनुषान्ध इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पुंसानुजः । पुंसा हेतुनानुजः । जनुषान्धः । जनुषा हेतुना ऽन्धः । तृतीयेति योगविभागात्समासः । जनुरिति जन्मनो नामधेयम् † ॥

मनसः संज्ञायाम् ॥ ४ ॥

---

* विशेषस्य कस्य चिदिति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

† पुंसा हेतुनेत्यारभ्य नामधेयमित्यन्तोपपाठः पदमञ्जर्यां सत्त्वात् ।

मनस उत्तरस्यास्तृतीयायाः संज्ञायामलुग्भवति । मनसादत्ता । मनसा-गुप्ता । मनसासंगता । संज्ञायामिति किम् । मनोदत्ता । मनोगुप्ता ॥

आज्ञायिनि च ॥ ५ ॥

आज्ञायिन्युत्तरपदे मनस उत्तरस्यास्तृतीयाया अलुग्भवति । मनसाऽऽज्ञातुं शीलमस्य, मनसाज्ञायी ॥

आत्मनश्च पूरणे ॥ ६ ॥

आत्मन उत्तरस्यास्तृतीयायाः पूरणप्रत्ययान्तउत्तरपदे ऽलुग्भवति । आत्मनापञ्चमः आत्मनाषष्ठः । तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमिति तृतीया । तृतीयेति योगविभागात्समासः । आत्मना वा कृतः पञ्चम, आत्म-नापञ्चमः । कथं जनार्द्दनस्त्वात्मचतुर्थ एवेति । बहुव्रीहिरयमात्मा चतुर्थो ऽस्यासावात्मचतुर्थः ॥

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ ७ ॥

वैयाकरणस्याख्या वैयाकरणाख्या । आख्या संज्ञा । यया संज्ञया वैया-करणा एव व्यवहरन्ति तस्यामात्मन उत्तरस्याश्चतुर्थ्या अलुग्भवति । आत्मने-पदम् । आत्मनेभाषा । तादर्थ्ये चतुर्थी । चतुर्थीति योगविभागात्समासः ॥

परस्य च ॥ ८ ॥

परस्य च या चतुर्थी तस्या वैयाकरणाख्यायामलुग्भवति । परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ॥ ९ ॥

हलन्तादन्ताच्चोत्तरस्याः सप्तम्याः संज्ञायामलुग्भवति । युधिष्ठिरः । त्वचिसारः । गविष्ठिर इत्यत्र गवियुधिभ्यां स्थिर इत्यत एव वचनादलुक् । अदन्तात् । अरण्येतिलकाः । अरण्येमाषकाः । वनेकिंशुकाः । वनेहरिद्रकाः । वनेबल्वजकाः । पूर्वाह्णेस्फोटकाः । कूपेपिशाचकाः । हलदन्तादिति किम् । नद्यां कुक्कुटिका, नदीकुक्कुटिका । भूम्यां पाशाः, भूमिपाशाः । संज्ञायामिति किम् । अक्षशौण्डः ॥ हृद्द्युभ्यां ङेः ॥ * ॥ हृद् दिव् इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङेरलुक् भवति । हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ॥

कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ १० ॥

प्राचां देशे यत्कारनाम तत्र हलादावुत्तरपदे हलदन्तादुत्तरस्याः सप्त-म्या अलुग्भवति । सूपेशाणः * । दृषदिमाषकः । हलेद्विपदिका । हलेत्रिप-

* मुकुटेकार्षापणमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

दिका। कारविशेषस्य संज्ञा एताः, तत्र पूर्वेणैव सिद्धे नियमार्थमिदम्। एते च त्रयो नियमविकल्पा अत्रेष्यन्ते। कारनाम्न्येव प्राचामेव हलादावेवेति। कारनाम्नीति किम्। अभ्यर्हिते पशुः, अभ्यर्हितपशुः। कारादन्यस्यैतद्द्वयस्य नाम। प्राचामिति किम्। यूथेपशुः, यूथपशुः। हलादाविति किम्। अविकटे उरणः, अविकटोरणः। हलदन्तादित्येव। नद्यां दोहनी, नदीदोहनी॥

मध्याद्गुरौ॥ ११॥

मध्यादुत्तरस्याः सप्तम्या गुरावुत्तरपदे ऽलुग्भवति। मध्येगुरुः॥ अन्ताच्चेति वक्तव्यम्॥ *॥ अन्तेगुरुः। सप्तमीति योगविभागात्समासः॥

अमूर्द्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे॥ १२॥

मूर्द्धमस्तकवर्जितात्स्वाङ्गादुत्तरस्याः सप्तम्या अकामउत्तरपदे ऽलुग्भवति। कण्ठे कालोऽस्य, कण्ठेकालः। उरसिलोमा। उदरेमणिः। अमूर्द्धमस्तकादिति किम्। मूर्द्धशिखः। मस्तकशिखः। अकामइति किम्। मुखे कामो ऽस्य, मुखकामः। स्वाङ्गादिति किम्। अक्षशौण्डः। हलदन्तादित्येव। अङ्गुलित्राणः। जङ्घावलिः॥

बन्धे च विभाषा॥ १३॥

बन्ध इति घञन्तो गृह्यते। तस्मिन्नुत्तरपदे हलदन्तादुत्तरस्याः सप्तम्या विभाषा ऽलुग्भवति। हस्तेबन्धः। हस्तबन्धः। चक्रेबन्धः। चक्रबन्धः। उभयत्र विभाषेयम्। स्वाङ्गाद्बहुव्रीहौ पूर्वेण नित्यमलुक् प्राप्नोति। तत्पुरुषे तु स्वाङ्गादस्वाङ्गाच्च नेन्सिद्धबध्नातिषु चेति प्रतिषेधः प्राप्नोति। हलदन्तादित्येव। गुप्तिबन्धः*॥

तत्पुरुषे कृति बहुलम्॥ १४॥

तत्पुरुषे समासे कृदन्तउत्तरपदे सप्तम्या बहुलमलुग्भवति। स्तम्बेरमः। कर्णेजपः। न च भवति कुरुचरो मद्रचरः॥

प्रावृट्शरत्कालदिवां जे १५॥

प्रावृट् शरत् काल दिव् इत्येतेषां जउत्तरपदे सप्तम्या अलुग्भवति। प्रावृषिजः। शरदिजः। कालेजः। दिविजः। पूर्वस्यैवायं प्रपञ्चः॥

विभाषावर्षक्षरशरवरात्॥ १६॥

वर्ष क्षर शर वर इत्येतेभ्य उत्तरस्याः सप्तम्या जउत्तरपदे विभाषा ऽलुग्भवति। वर्षेजः। वर्षजः। क्षरेजः। क्षरजः। शरेजः। शरजः। वरेजः। वरजः॥

घकालतनेषु कालनाम्नः॥ १७॥

---

* कारिकाबन्ध इत्यधिकमेकस्मिन् पुस्तके।

घसंज्ञके प्रत्यये कालशब्दे तनप्रत्यये च परतः कालनाम्न उत्तरस्याः सप्तम्या विभाषा ऽलुग्भवति । घ । पूर्वाह्णेतरे । पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णेतमे । पूर्वाह्णतमे । काल । पूर्वाह्णेकाले । पूर्वाह्णकाले । तन । पूर्वाह्णेतने । पूर्वाह्णतने । कालनाम्न इति किम् । शुक्लतरे । शुक्लतमे । हलदन्तादित्येव । रात्रितरायाम् । उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्नेष्यते । हृदयस्य हृल्लेखेति लेखग्रहणाल्लिङ्गात् । तेन घतनग्रहणे तदन्तग्रहणं न भवति । कालेति स्वरूपग्रहणम् ॥

शयवासवासिष्वकालात् ॥ १८ ॥

शय वास वासिन् इत्येतेषूत्तरपदेष्वकालवाचिन उत्तरस्याः सप्तम्या विभाषा ऽलुग्भवति । खेशयः । खशयः । ग्रामेवासः । ग्रामवासः । ग्रामेवासी । ग्रामवासी । अकालादिति किम् । पूर्वाह्णशयः । हलन्तादित्येव । भूमिशयः ॥ अपो योनियन्मतुषु सप्तम्या अलुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ अप्सुयोनिः । अप्सव्यः । अप्सुमन्तौ । अप्सु भव इति दिगादित्वाद्यत्प्रत्ययः । सर्वत्र सप्तमीति योगविभागात्समासः ॥

नेन्सिद्धबध्नातिषु च ॥ १९ ॥

इन्नन्ते सिद्धशब्दे बध्नातौ च परतः सप्तम्या अलुग्न भवति । स्थण्डिलशायी* । सिद्ध । सांकाश्यसिद्धः । काम्पिल्यसिद्धः । बध्नाति । चक्रबन्धकः । चरकबन्धकः । सप्तमीति योगविभागात्समासः । चक्रबन्ध इति केचिदुदाहरन्ति तत्पचाद्यजन्तं द्रष्टव्यम् । घञन्ते हि बन्धे च विभाषेत्युक्तम् ॥

स्थे च भाषायाम् ॥ २० ॥

स्थे चोत्तरपदे भाषायां सप्तम्या अलुग्न भवति । समस्थः । विषमस्थः । कूटस्थः । पर्वतस्थः । भाषायामिति किम् । कृष्णोस्याखरेष्ठः । पूर्वपदादिति षत्वम् ॥

"षष्ठ्या आक्रोशे" ॥ २१ ॥

आक्रोशे गम्यमाने उत्तरपदे षष्ठ्या अलुग्भवति । चौरस्यकुलम् । वृषलस्यकुलम् । आक्रोशइति किम् । ब्राह्मणकुलम् ॥ षष्ठीप्रकरणे वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु यथासंख्यमलुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ॥ आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति चालुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ अमुष्यापत्यमामुष्यायणः । नडादित्वात् फक् । अमुष्य पुत्रस्य भाव, आमुष्यपुत्रिका । मनोज्ञादित्वाद्वुञ् । तथा आमुष्यकुलिकेति ॥ देवानां प्रिय इत्यत्र च षष्ठ्या अलुग्

* स्थण्डिलवर्तीत्यधिकमन्यत्र पुस्तके ।

वक्तव्यः ॥ * ॥ देवानांप्रियः ॥ शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः संज्ञायां षष्ठ्या अलुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ शुनःशेपः । शुनःपुच्छः । शुनोलाङ्गूलः ॥ दिवश्च दासे षष्ठ्या अलुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ दिवोदासाय गायति ॥

पुत्रे ऽन्यतरस्याम् ॥ २२ ॥

पुत्रशब्दउत्तरपदे आक्रोशे गम्यमाने ऽन्यतरस्यां षष्ठ्या अलुग्भवति। दास्याः पुत्रः, दासीपुत्रः । वृषल्याः पुत्रः, वृषलीपुत्रः । आक्रोशइत्येव। ब्राह्मणीपुत्रः ॥

ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः ॥ २३ ॥

ऋकारान्तेभ्यो विद्यासंबन्धवाचिभ्यो योनिसंबन्धवाचिभ्यश्चोत्तरस्याः षष्ठ्या अलुग्भवति । होतुरन्तेवासी । होतुःपुत्रः । पितुरन्तेवासी । पितुःपुत्रः । ऋत इति किम् । आचार्यपुत्रः । मातुलपुत्रः ॥ विद्यायोनिसंबन्धेभ्यस्तत्पूर्वोत्तरपदग्रहणम् ॥ विद्यायोनि संबन्धवाचिन्येवोत्तरपदे यथा स्यादन्यत्र मा भूत् । होतृधनम् । पितृधनम् । होतृगृहम् । पितृगृहम् ॥

विभाषा स्वसृपत्योः ॥ २४ ॥

स्वसृ पति इत्येतयोरुत्तरपदयोर्ऋकारान्तेभ्यो विद्यायोनिसंबन्धवाचिभ्यो विभाषा ऽलुग्भवति । मातुःष्वसा । मातुःस्वसा । मातृष्वसा । पितुःष्वसा । पितुःस्वसा । पितृष्वसा । यदा लुक् तदा मातृपितृभ्यां स्वसेति नित्यं षत्वम् । यदा त्वलुक् तदा मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्यामिति विकल्पेन षत्वम् । दुहितुः पतिः । दुहितृपतिः । ननान्दुः पतिः । ननान्दृपतिः ॥

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ॥ २५ ॥

ऋकारान्तानां विद्यायोनिसंबन्धवाचिनां यो द्वन्द्वस्तत्रोत्तरपदे पूर्वपदस्यानङादेशो भवति । होतापोतारौ । नेष्टोद्गातारौ । प्रशास्ताप्रतिहर्त्तारौ । योनिसंबन्धेभ्यः । मातापितरौ । याताननान्दरौ । नकारोच्चारणं रपरत्वनिवृत्त्यर्थम् । ऋत इति किम् । पितृपितामहौ । पुत्रइत्यनुवर्त्तते ऋत इति च । तेन पुत्रशब्देप्युत्तरपदे ऋकारान्तस्यानङादेशो भवति । पितापुत्रौ । मातापुत्रौ ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ २६ ॥

देवतावाचिनां यो द्वन्द्वस्तत्रोत्तरपदे पूर्वपदस्यानङादेशो भवति । इन्द्रावरुणौ । इन्द्रासोमौ । इन्द्राबृहस्पती । द्वन्द्वइति वर्त्तमाने पुनर्द्वन्द्वग्रहणं प्रसिद्धसाहचर्यार्थम् । अत्यन्तसहचरिते लोकविज्ञाते द्वन्द्वइति निपात्यते । तत्र ये लोके प्रसिद्धसाहचर्या वेदे च सहभावेन ये निर्दिष्टास्तेषामिह ग्रहणं भवति । तेन ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणावित्येवमादौ न भवति ॥ उभयत्र वायोः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्निवायू । वाय्वग्नी ॥

ईदग्नेः सोमवरुणयोः ॥ २७ ॥

सोम वरुण इत्येतयोर्देवताद्वन्द्वे ऽग्नेरीकारादेशो भवति । अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ । अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमा इति षत्वम् ॥

इद्वृद्धौ ॥ २८ ॥

कृतवृद्धावुत्तरपदे देवताद्वन्द्वे ऽग्नेरिकारादेशो भवति । आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत । आग्निमारुतं कर्म्म क्रियते । अग्नीवरुणौ देवता ऽस्य अग्नीमरुतौ देवतास्येति तद्धितः । तत्र देवताद्वन्द्वे चेत्युभयपदवृद्धौ कृतायामानङ् ईत्वं च बाधितुमिकारः क्रियते । वृद्धाविति किम् । आग्नेन्द्रः । नेन्द्रस्य परस्येत्युत्तरपदवृद्धिः प्रतिषिध्यते ॥ इद्वृद्धौ विष्णोः प्रतिषेधो । वक्तव्यः ॥ * ॥ आग्नावैष्णवं चरुं निर्वपेत् ॥

दिवो द्यावा ॥ २९ ॥

दिवित्येतस्य द्यावा इत्ययमादेशो भवति देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । द्यावाक्षामा । द्यावाभूमी * ॥

दिवसश्च पृथिव्याम् ॥ ३० ॥

पृथिव्यामुत्तरपदे देवताद्वन्द्वे दिवो दिवसित्ययमादेशो भवति चकाराद् द्यावा च । दिवस्पृथिव्यौ । द्यावापृथिव्यौ । अकारोच्चारणं सकारस्य विकाराभावप्रतिपत्त्यर्थम् । तेन रुत्वादीनि न भवन्ति । कथं द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते इति । कर्त्तव्योऽत्र यत्नः ॥

उषासोषसः ॥ ३१ ॥

उषस उषासा इत्ययमादेशो भवति देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । उषासासूर्यम् । उषासानक्ता ॥

मातरपितरावुदीचाम् ॥ ३२ ॥

मातरपितरावित्युदीचामाचार्याणां मतेनारङादेशो मातृशब्दस्य निपात्यते । मातरपितरौ । उदीचामिति किम् । मातापितरौ ॥

पितरामातरा च च्छन्दसि ॥ ३३ ॥

पितरामातरा इति छन्दसि निपात्यते । आ मा गन्तां पितरामातरा च । पूर्वपदस्य अरङादेशो, निपात्यते । उत्तरपदे तु सुपां सुलुगिति आकारादेशः । तत्र ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोरिति गुणः । छन्दसि किम् । मातापितरौ ॥

---

* द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ ३४ ॥

भाषितः पुमान्येन समानायामाकृतावेकस्मिन्प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कः शब्दः, तदेतदेवं कथं भवति भाषितः पुमान् यस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कशब्देनोच्यते, तस्य प्रतिपादको यः शब्दः सोपि भाषितपुंस्कः । ऊङो ऽभावो ऽनूङ्, भाषितपुंस्कादनूङ् यस्मिन् स्त्रीशब्दे स भाषितपुंस्कादनूङ् स्त्रीशब्दः । बहुव्रीहिरयमलुग् निपातनात् पञ्चम्यास्तस्य भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रीशब्दस्य पुंशब्दस्येव रूपं भवति समानाधिकरणउत्तरपदे स्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिवर्जिते । दर्शनीयभार्यः । श्लक्ष्णचूडः । दीर्घजङ्घः । स्त्रिया इति किम् । ग्रामणि ब्राह्मणकुलं दृष्टिरस्य, ग्रामणिदृष्टिः । भाषितपुंस्कादिति किम् । खट्वाभार्यः । समानायामाकृताविति किम् । द्रोणीभार्यः कथं गर्भिभार्यः, प्रसूतभार्यः, प्रजातभार्यं इति । कर्त्तव्योत्र यत्नः । अनूङ इति किम् । ब्रह्मबन्धूभार्यः । समानाधिकरणइति किम् । कल्याण्या माता, कल्याणीमाता । स्त्रियामिति किम् । कल्याणी प्रधानमेषां कल्याणीप्रधाना इमे । अपूरणीति किम् । कल्याणी पञ्चमी यासां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । कल्याणीदशमाः । प्रधानपूरणीग्रहणं कर्तव्यमिह मा भूत्, कल्याणपञ्चमीकः पक्ष इति । 'अप् पूरणीप्रमाण्योरित्यत्रापि प्रधानपूरणीग्रहणमेवेत्यप्रत्ययो न भवति । अप्रियादिष्विति किम् । कल्याणीप्रियः । प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सचिवा । अम्बा । कान्ता । क्षान्ता । समा । चपला । दुहिता । वामा ॥ दृढभक्तिरित्येवमादिषु स्त्रीपूर्वपदस्याविवक्षितत्वात् सिद्धमिति समाधेयम् ॥

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ॥ ३५ ॥

पञ्चम्यास्तसिलित्यतः प्रभृति संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुजिति प्रागेतस्माद् ये प्रत्ययास्तेषु भाषितपुंस्कादनुङ्स्त्रियाःपुंवद्भवति । तस्याः शालायाः ततः । तस्यां तत्र । यस्या यतः । यस्यां यत्र । तसिलादिषु परिगणनं कर्त्तव्यम् । त्रतसौ । तरप्तमपौ । चरट्जातीयरौ । कल्पब्देश्यदेशीयरः । रूपप्पाशपौ । थमथालौ । दार्हिलौ । तिल्थातिलौ ॥ शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ बह्वीभ्यो देहि । अल्पाभ्यो देहि । बहुशो देहि । अल्पशो देहि ॥ त्वतलोर्गुणवचनस्य पुंवद्भावोवक्तव्यः ॥ * ॥ पट्व्या भावः, पटुत्वम् । पटुता । गुणवचनस्येति किम् । कठ्या भावः, कठीत्वं, कठीता ॥ भस्याढे तद्धिते पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ हस्तिनीनां समूहो, हास्तिकम् ।

अठइति किम् । श्यैनेयः । रौहिणेयः । कथमाग्नायी देवता ऽस्य आग्नेयः स्थालीपाक इति । कर्त्तव्योऽत्र यत्नः ॥ ठक्छसोश्च पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ भवत्याश्छात्रा भावत्काः । भवदीयाः ॥

क्यङ्मानिनोश्च ॥ ३६ ॥

क्यङि परतो मानिनि च स्त्रिया भाषितपुंस्कादनूङ् पुंवद्भवति । एनी । एतायते । श्येनी । श्येतायते । मानिनि । दर्शनीयमानी, अयमस्याः । दर्शनीयमानिनीयमस्याः । मानिनो ग्रहणमस्त्र्यर्थमसमानाधिकरणार्थं च । इह तु दर्शनीयामात्मानं मन्यते दर्शनीयमानिनीति पूर्वेणैव सिद्धम् ॥

न कोपधायाः ॥ ३७ ॥

कोपधायाः स्त्रियाः पुंवद्भावो न भवति । पाचिकाभार्यः । कारिकाभार्यः । वृजिकाभार्यः । मद्रिकाभार्यः । मद्रिकाकल्पा । मद्रिकायते । वृजिकायते । मद्रिकामानिनी । वृजिकामानिनी । विलेपिकाया धर्म्यं वैलेपिकम् ॥ कोपधप्रतिषेधेषु तद्धितग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत, पाकभार्या भेकभार्य इति ॥

संज्ञापूरण्योश्च ॥ ३८ ॥

संज्ञायाः पूरण्याश्च स्त्रियाः पुंवद्भावो न भवति । दत्ताभार्यः । गुप्ताभार्यः । दत्तापाशा । गुप्तापाशा । दत्तायते । गुप्तायते । दत्तामानिनी । गुप्तामानिनी । पूरण्याः । पञ्चमीभार्यः । दशमीभार्यः । पञ्चमीपाशा । दशमीपाशा । पञ्चमीयते । दशमीयते । पञ्चमीमानिनी । दशमीमानिनी ॥

वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ॥ ३९ ॥

नेति वर्त्तते । वृद्धेर्निमित्तं यस्मिन् स वृद्धिनिमित्तस्तद्धितः स यदि रक्तेऽर्थे विकारे च न विहितः, तदन्तस्य स्त्रीशब्दस्य न पुंवद्भवति । स्रौघ्नीभार्यः । माथुरीभार्यः । स्रौघ्नीपाशा । माथुरीपाशा । स्रौघ्नीयते । माथुरीयते । स्रौघ्नीमानिनी । माथुरीमानिनी । वृद्धिनिमित्तस्येति किम् । मध्यमभार्यः । तद्धितस्येति किम् । काण्डलावभार्यः । बहुव्रीहिपरिग्रहः किमर्थः । तावद्भार्यः । यावद्भार्यः । अरक्तविकारइति किम् । कषायेण रक्ता काषायी, काषायी बृहतिका यस्य स काषायबृहतिकः । लोहस्य विकारो लौही, लौही ईषा यस्य रथस्य स लौहेषः * ॥

स्वाङ्गाच्चेतो ऽमानिनि ॥ ४० ॥

स्वाङ्गादुत्तरो य ईकारस्तदन्तायाः स्त्रिया न पुंवद्भवति अमानिनि परतः । दीर्घकेशीभार्यः । दीर्घकेशीपाशा । श्लक्ष्णकेशीपाशा । दीर्घकेशीयते ।

* स्वादिरेष इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

श्लक्ष्णकेशीयते । स्वाङ्गादिति किम् । पटुभार्यः । ईत इति किम् । अकेशभार्यः । अमानिनीति किम् । दीर्घकेशमानिनी ॥

जातेश्च ॥ ४१ ॥

जातेश्च स्त्रिया न पुंवद्भवति अमानिनि परतः । कठीभार्यः । बह्वृचीभार्यः । कठीपाशा । बह्वृचीपाशा । कठीयते । बह्वृचीयते । अमानिनीत्येव । कठमानिनी । बह्वृचमानिनी ॥ अयं प्रतिषेध औपसंख्यानिकस्य पुंवद्भावस्य नेष्यते ॥ हस्तिनीनां समूहो, हास्तिकम् ॥

पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ॥ ४२ ॥

कर्मधारये समासे जातीय देशीय इत्येतयोश्च प्रत्यययोर्भाषितपुंस्कादनूङ्स्त्रियाः पुंवद्भवति । प्रतिषेधार्थोऽयमारम्भः । न कोपधाया इत्युक्तं तत्रापि भवति । पाचकवृन्दारिका । पाचकजातीया । पाचकदेशीया । संज्ञापूरण्याश्चेत्युक्तं तत्रापि भवति । दत्तवृन्दारिका । दत्तजातीया । दत्तदेशीया । पूरण्याः । पञ्चमवृन्दारिका । पञ्चमजातीया । पञ्चमदेशीया । वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे इत्युक्तं तत्रापि भवति । स्रौघ्नजातीया । स्रौघ्नदेशीया । स्वाङ्गाच्चेतो ऽमानिनीत्युक्तं तत्रापि भवति । श्लक्ष्णमुखवृन्दारिका । श्लक्ष्णमुखजातीया । श्लक्ष्णमुखदेशीया । जातेश्चेत्युक्तं तत्रापि भवति । कठवृन्दारिका । कठजातीया । कठदेशीया । भाषितपुंस्कादित्येव । खट्वावृन्दारिका । अनूङित्येव । ब्रह्मबन्धूवृन्दारिका ॥ कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ कुक्कुट्या अण्डं, कुक्कुटाण्डम् । मृग्याः पदं, मृगपदम् । मृग्याः क्षीरं, मृगक्षीरम् । काक्याः शावः, काकशावः । नवा ऽस्त्रीपूर्वपदस्य विवक्षितत्वात् । स्त्रीत्वेन विना पूर्वपदार्थोऽत्र जातिः सामान्येन विवक्षितः । पुंवद्भावाद्ध्रस्वत्वं खित्घादिषु भवति विप्रतिषेधेन । खित् । कालिंमन्या । हरिणिंमन्या । घादि । पट्वितरा । पट्वितमा । पट्विरूपा । पट्विकल्पा । क । पट्विका । मृद्विका । इहेडविड् दरद् पृथु उशिजित्येते जनपदशब्दाः क्षत्रियवाचिनः । तत्र तद्राजप्रत्ययस्य स्त्रियामतश्चेति लुक्कृते इडबिट्वृन्दारिकेति विगृह्य समासः क्रियते । ततः पुंवद्भावेन ऐडविडादयः पुंशब्दाः क्रियन्ते । ऐडविडवृन्दारिका । औशिजवृन्दारिका * ॥

घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः ॥ ४३ ॥

घ रूप कल्प चेलट् ब्रुव गोत्र मत हत इत्येतेषु परतो भाषितपुंस्का-

---

* दारदवृन्दारिका । पार्थवृन्दारिकेत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

त्परो यो ङीप्रत्ययस्तदन्तस्यानेकाचो ह्रस्वो भवति । घ । ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । रूप । ब्राह्मणिरूपा । कल्प । ब्राह्मणिकल्पा । चेलट् । ब्राह्मणिचेली । ब्रुव । ब्राह्मणिब्रुवा । गोत्र । ब्राह्मणिगोत्रा । मत । ब्राह्मणिमता । हत । ब्राह्मणिहता । घरूपकल्पाः प्रत्ययाश्चेलडादीन्युत्तरपदानि । ब्रुवइति ब्रवीतीति ब्रुवः पचाद्यचि वच्यादेशो गुणश्च निपातनाच्च भवति । ङ्य इति किम् । दत्तातरा । गुप्तातरा । अनेकाच इति किम् । नद्याः शेषस्यान्यतरस्यामिति वक्ष्यति । भाषितपुंस्कादित्येव । आमलकीतरा । कुवलीतरा ॥

नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

नद्याः शेषस्य घादिषु परतो ह्रस्वो भवति अन्यतरस्याम् । कश्च शेषः । अङी च या नदी ङ्यन्तं च यदेकाच् । ब्रह्मबन्धूतरा । ब्रह्मबन्धुतरा । वीरबन्धूतरा । वीरबन्धुतरा । स्त्रितरा । स्त्रीतरा । स्त्रितमा । स्त्रीतमा ॥ कृन्नद्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ लक्ष्मीतरा । तन्त्रीतरा ॥

उगितश्च ॥ ४५ ॥

उगितश्च परस्या नद्या घादिषु अन्यतरस्यां ह्रस्वो भवति । श्रेयसितरा । श्रेयसीतरा । श्रेयस्तरा । विदुषितरा । विदुषीतरा । विदुष्तरा । पुंवद्भावोऽप्यत्र पक्षे वक्तव्यः । प्रकर्षयोगात्प्राक् स्त्रीत्वस्याविवक्षितत्वाद्वा सिद्धम् ॥

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ॥ ४६ ॥

समानाधिकरणउत्तरपदे जातीये च प्रत्यये परतो महत आकारादेशो भवति । महादेवः । महाब्राह्मणः । महाबाहुः । महाबलः । जातीये । महाजातीयः । समानाधिकरणजातीययोरिति किम् । महतः पुत्रो महत्पुत्रः । लक्षणोक्तत्वादेवात्र न भविष्यतीति चेद् बहुव्रीहावपि न स्याद् महाबाहुरिति[१]। तदर्थं समानाधिकरणग्रहणं वक्तव्यम् । अमहान् महान् संपन्नो महद्भूतश्चन्द्रमा इत्यत्र गौणत्वान् महदर्थस्य न भवत्यात्वम् ॥ महदात्वे घासकरविशिष्टेषूपसंख्यानं पुंवद्वचनं चासमानाधिकरणार्थम् ॥ * ॥ महत्या घासः । महाघासः । महत्याः करः, महाकरः । महत्या विशिष्टः, महाविशिष्टः ॥ अष्टनः कपाले हविष्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अष्टाकपालं चरुं निर्वपेत् । हविषीति किम् । अष्टकपालं ब्राह्मणस्य ॥ गवि च युक्ते ऽष्टन उपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ अष्टागवेन शकटेन । युक्तइति किम् । अष्टगवं ब्राह्मणस्य । तपरकरणं विस्पष्टार्थम् ॥

द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ॥ ४७ ॥

द्वि अष्टन् इत्येतयोराकारादेशो भवति संख्यायामुत्तरपदे अबहुव्रीह्यशीत्योः । द्वादश । द्वाविंशतिः । द्वात्रिंशत् । अष्टादश । अष्टाविंशतिः । अष्टा-

त्रिंशत् । द्व्यष्टन इति किम् । पञ्चदश । संख्यायामिति किम् । द्वैमातुरः । अष्टमातुरः । अबहुव्रीह्यशीत्योरिति किम् । द्वित्राः । त्रिदशाः । द्व्यशीतिः ॥ प्राक् शतादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । द्विशतम् । द्विसहस्रम् । अष्टशतम् । अष्टसहस्रम् ॥

त्रेस्त्रयः ॥ ४८ ॥

त्रि इत्येतस्य त्रयसित्ययमादेशो भवति संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः । त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् । संख्यायामित्येव । त्रैमातुरः । अबहुव्रीह्यशीत्योरित्येव । त्रिदशाः । त्र्यशीतिः । प्राक् शतादित्येव । त्रिशतम् । त्रिसहस्रम् ॥

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ॥ ४९ ॥

चत्वारिंशत्प्रभृतौ संख्यायामुत्तरपदे ऽबहुव्रीह्यशीत्योः सर्वेषां द्व्यष्टन् त्रि इत्येतेषां यदुक्तं तद्विभाषा भवति । द्विचत्वारिंशत् । द्वाचत्वारिंशत् । त्रिपञ्चाशत् । त्रयःपञ्चाशत् । अष्टपञ्चाशत् । अष्टापञ्चाशत् * । प्राक् शतादित्येव । द्विशतम् । अष्टशतम् । त्रिशतम् † ॥

हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु ॥ ५० ॥

हृदयस्य हृदित्ययमादेशो भवति लेख यत् अण् लास इत्येतेषु परतः । हृदयं लिखतीति, हृल्लेखः । यत् । हृदयस्य प्रियं, हृद्यम् । अण् । हृदयस्येदं, हार्दम् । लास । हृदयस्य लासो, हृल्लासः । लेख इत्यणन्तस्य ग्रहणमिष्यते । घञि तु हृदयस्य लेखो हृदयलेख एतदेव । लेखग्रहणं ज्ञापकमुत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे तदन्ताग्रहणस्य ॥

वा शोकष्यञ्रोगेषु ॥ ५१ ॥

शोक ष्यञ् रोग इत्येतेषु परतो हृदयस्य वा हृदित्ययमादेशो भवति । हृच्छोकः । हृदयशोकः । ष्यञ् । सौहार्द्यम् । सौहृदय्यम् । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । हृदादेशपक्षे हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य चेत्युभयपदवृद्धिः । रोग । हृद्रोगः । हृदयरोगः । हृदयशब्देन समानार्थो हृत्शब्दः प्रकृत्यन्तरमस्ति तेनैव सिद्धे विकल्पविधानं प्रपञ्चार्थम् ॥

पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु ॥ ५२ ॥

पादस्य पद इत्ययमादेशो भवति आजि आति ग उपहत इत्येतेषूत्त-

* अष्टचत्वारिंशत् । अष्टाचत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशत् । त्रयश्चत्वारिंशत् । द्विपञ्चाशत् । द्वापञ्चाशत् । इत्यधिकं पुस्तकेषु बहुषु ।

† सर्वेषां ग्रहणं त्रयाणामपि यथा स्यादु इत्यधिकमन्यस्मिन्पुस्तके ।

रपदेषु । पादाभ्यामजतीति, पदाजिः । पादाभ्यामततीति, पदातिः । अज्यतिभ्यां पादे चेत्यौणादिक इणप्रत्ययः । तत्राजेर्वीभावो न भवत्यत एव निपातनात् । पादाभ्यां गच्छतीति, पदगः । पादेनोपहतः, पदोपहतः । पादशब्दो वृषादित्वादाद्युदात्तस्तस्य स्थाने पदादेश उपदेशएवान्तोदात्तो निपात्यते, तेन पदोपहत इति तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनान्तोदात्तत्वं भवति। पदाजिः पदातिः पदग इत्येतेषु कृत्स्वरेण समासस्यैवान्तोदात्तत्वम् ॥

पद्यत्यतदर्थे ॥ ५३ ॥

यत्प्रत्यये परतः पादस्य पदित्ययमादेशो भवत्यतदर्थे। पादौ विध्यन्ति, पद्याः शर्कराः। पद्याः कण्टकाः । अतदर्थइति किम् । पादार्थमुदकं पाद्यम् ॥ पद्भावे इके चरतावुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पादाभ्यां चरति, पदिकः । पर्पादिभ्यः ष्ठन्निति पादशब्दात् ष्ठन्प्रत्ययः ॥ शरीरावयववचनस्य पादशब्दस्य ग्रहणमिह इष्यते ॥ तेन पणपादमाषशताद्यद् इत्यत्र पदादेशो न भवति । द्विपाद्यम् । त्रिपाद्यम् ॥

हिमकाषिहतिषु च ॥ ५४ ॥

हिम काषिन् हति इत्येतेषु पादशब्दस्य पदित्ययमादेशो भवति । हिम । पद्धिमम् । काषिन् । अथ पत्काषिणो यान्ति । हति । पद्धतिः ॥

ऋचः शे ॥ ५५ ॥

ऋक्संबन्धिनः पादशब्दस्य शे परतः पदित्ययमादेशो भवति । पच्छो गायत्रीं शंसति । पादंपादं शंसतीति संख्यैकवचनाच्च वीप्सायामिति शस्प्रत्ययः । ऋच इति किम् । पादशः कर्षापणं ददातीति ॥

वा घोषमिश्रशब्देषु ॥ ५६ ॥

घोष मिश्र शब्द इत्येतेषु चोत्तरपदेषु पादस्य वा पदित्ययमादेशो भवति । पद्घोषः । पादघोषः । पन्मिश्रः । पादमिश्रः । पच्छब्दः । पादशब्दः । निष्के चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पन्निष्कः । पादनिष्कः ॥

उदकस्योदः संज्ञायाम् ॥ ५७ ॥

उदकशब्दस्य संज्ञायां विषये उद इत्ययमादेशो भवति उत्तरपदे परतः। उदमेघो नाम यस्य औदमेघिः पुत्रः । उदवाहो नाम यस्य औदवाहिः पुत्रः । संज्ञायामिति किम् । उदकगिरिः ॥ संज्ञायामुत्तरपदस्य उदकशब्दस्य उदादेशो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ लोहितोदः । नीलोदः । क्षीरोदः ॥

पेषंवासवाहनधिषु च ॥ ५८ ॥

पेषं वास वाहन धि इत्येतेषु चोत्तरपदेषु उदकस्य उद इत्ययमादेशो भवति। उदपेषं पिनष्टि। स्नेहने पिष इति णमुल्। वास। उदकस्य वासः, उदवासः। वाहन। उदकस्य वाहन। उदवाहनः। उदकं धीयते ऽस्मिन्निति उदधिः॥

एकहलादौ पूरयितव्ये ऽन्यतरस्याम् ॥ ५९ ॥

उदकस्योद इति वर्त्तते। एको, ऽसहायः तुल्यजातीयेनानन्तरेण हलादिना, हल् आदिर्यस्योत्तरपदस्य तदेकहलादिस्तस्मिन्नेकहलादौ पूरयितव्यवाचिन्यन्यतरस्यामुदकस्य उद इत्ययमादेशो भवति। उदकुम्भः। उदककुम्भः। उदपात्रम्। उदकपात्रम्। एकहलादाविति किम्। उदकस्थालम्। पूरयितव्य इति किम्। उदकपर्वतः॥

मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च ॥६०॥

मन्थ ओदन सक्तु बिन्दु वज्र भार हार वीवध गाह इत्येतेषूत्तरपदेषूदकस्य उद इत्ययमादेशो भवति अन्यतरस्याम्। उदकेन मन्थ, उदमन्थः। उदकमन्थः। उदकेनौदन, उदौदनः। उदकौदनः। सक्तु उदकेन सक्तुः, उदसक्तुः। उदकसक्तुः। बिन्दु। उदकस्य बिन्दुः, उदबिन्दुः। उदकबिन्दुः। वज्र। उदकस्य वज्रः, उदवज्रः। उदकवज्रः। भार। उदकं बिभर्तीति, उदभारः। उदकभारः। हार। उदकं हरतीति, उदहारः। उदकहारः। वीवध। उदकस्य वीवध, उदवीवधः। उदकवीवधः। गाह। उदकं गाहत इति, उदगाहः। उदकगाहः॥

इको ह्रस्वो ऽङ्यो गालवस्य ॥ ६१ ॥

इगन्तस्याङ्यन्तस्योत्तरपदे ह्रस्वो भवति गालवस्याचार्यस्य मतेनान्यतरस्याम्। ग्रामणिपुत्रः। ग्रामणीपुत्रः। ब्रह्मबन्धुपुत्रः। ब्रह्मबन्धूपुत्रः। इक इति किम्। खट्वापादः। मालापादः। अङ्य इति किम्। गार्गीपुत्रः। वात्सीपुत्रः। गालवग्रहणं पूजार्थम्। अन्यतरस्यामिति हि वर्त्तते। व्यवस्थितविभाषा चेयम्। तेनेह न भवति। कारीषगन्धीपतिरिति। इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च न भवति। श्रीकुलम्। भ्रूकुलम्। काण्डीभूतम्। वृषलीभूतम्। भ्रूकुंसादीनां तु भवत्येव। भ्रुकुंसः। भ्रुकुटिः। अपर आह॥ भ्रूकुंसादीनामकारो भवतीति वक्तव्यम्॥ * ॥ भ्रकुंसः। भ्रकुटिः॥

एक तद्धिते च ॥ ६२ ॥

एकशब्दस्य तद्धिते उत्तरपदे ह्रस्वो भवति। एकस्या आगतमेकरूप्यम्। एकमयम्। एकस्या भाव, एकत्वम्। एकता। उत्तरपदे। एकस्याः क्षीरम्,

एकक्षीरम् । एकदुग्धम् । लिङ्गविशिष्टस्य ग्रहणमेकशब्दह्रस्वत्वं प्रयोजयति । अत्राहि गृह्यमाणमत्र विशिष्यते न पुनश्च गृह्यमाणेनेति ॥

ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् ॥ ६३ ॥

ङ्यन्तस्यावन्तस्य च संज्ञाछन्दसोर्बहुलं ह्रस्वो भवति । ङ्यन्तस्य संज्ञायाम् । रेवतिपुत्रः । रोहिणिपुत्रः । भरणिपुत्रः । न च भवति । नान्दीकरः । नान्दीघोषः । नान्दीविशालः । ङ्यन्तस्य छन्दसि । कुमारिदारा । प्रदर्विदा न च भवति । फाल्गुनीपौर्णमासी । जगतीछन्दः । आबन्तस्य संज्ञायाम् । शिलवहम् । शिलप्रस्थम् । न च भवति । लोमकागृहम् । लोमकाखण्डः । आबन्तस्य छन्दसि । अजक्षीरेण जुहोति । ऊर्णम्रदा पृथिवीं विश्वधायसम् । न च भवति । ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ॥

त्वे च ॥ ६४ ॥

त्वप्रत्यये परतो ङ्यापोर्बहुलं ह्रस्वो भवति । तदजाया भाव अजत्वम् । अजात्वम् । तद्रोहिण्या भावो रोहिणित्वम् । रोहिणीत्वम् । संज्ञायामसंभवाच्छन्दस्येवोदाहरणानि भवन्ति ॥

इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु ॥ ६५ ॥

इष्टकेषीकामालानां चित तूल भारिन् इत्येतेषूत्तरपदेषु यथासंख्यं ह्रस्वो भवति । इष्टकचितम् । इषीकतूलम् । मालभारिणी कन्या । इष्टकादिभ्यस्तदन्तस्यापि ग्रहणं भवति । पक्वेष्टकचितम् । मुञ्जेषीकतूलम् । उत्पलमालभारिणी कन्या ॥

खित्यनव्ययस्य ॥ ६६ ॥

खिदन्तउत्तरपदे ऽनव्ययस्य ह्रस्वो भवति । कालिंमन्या । हरिणिंमन्या । मुमा ह्रस्वो न बाध्यते । अन्यथा हि ह्रस्वशासनमनर्थकं स्यात् । अनव्ययस्येति किम् । दोषामन्यमहः । दिवामन्या रात्रिः । अनव्ययस्येत्येतदेवं ज्ञापकमिह खिदन्तग्रहणस्य ॥

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ ६७ ॥

अरुस् द्विषत् इत्येतयोरजन्तानां च खिदन्तउत्तरपदे मुमागमो भवति अनव्ययस्य । अरुंतुदः । द्विषंतपः । अजन्तानाम् । कालिंमन्या । अरुर्द्विषदजन्तस्येति किम् । विद्वन्मन्या । अनव्ययस्येत्येव । दोषामन्यमहः । दिवामन्या रात्रिः । अन्तग्रहणं किम् । कृताजन्तकार्यप्रतिपत्त्यर्थम् । अतो ह्रस्वे कृते मुम्भवति ॥

इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च ॥ ६८ ॥

इजन्तस्य एकाचः खिदन्तउत्तरपदे ऽमागमो भवति अम्प्रत्ययवच्च

द्वितीयैकवचनवच्च स भवति । अमिति हि द्विरावर्त्तते । गांमन्यः । स्त्रींमन्यः । स्त्रियंमन्यः । श्रियंमन्यः । भ्रुवंमन्यः । अम्प्रत्ययवच्चेत्यतिदेशादात्वपूर्वसवर्णगुणेयङुवङादेशा भवन्ति । इच इति किम् । त्वन्मन्यः । एकाच इति किम् । लेखाभ्रुंमन्यः । अथेह कथं भवितव्यम् । श्रियमात्मानं ब्राह्मणकुलं मन्यत इत्युपक्रम्य श्रिमन्यमिति भाष्ये स्थितम् । तत्रेदं भाष्यकारस्य दर्शनमत्र विषये परित्यक्तस्वलिङ्गः श्रीशब्दो ब्राह्मणकुले वर्त्तते यथा प्रष्ठादयः स्त्रियाम् । तत्र स्वमोर्नपुंसकादित्यमो लुग्भवति ॥

वाचंयमपुरंदरौ च ॥ ६९ ॥

वाचंयम पुरंदर इत्येतौ निपात्येते । वाचंयम आस्ते । पुरं दारयतीति पुरंदरः ॥

कारे सत्यागदस्य ॥ ७० ॥

कारशब्द उत्तरपदे सत्य अगद इत्येतयोर्मुमागमो भवति । सत्यं करोतीति सत्यस्य वा कारः सत्यंकारः । एवमगदंकारः ॥ अस्तुसत्यागदस्य कार इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अस्तुंकारः ॥ भक्षस्य छन्दसि कारे मुम् वक्तव्यः ॥ * ॥ भक्षं करोतीति भक्षस्य वा कारः, भक्षंकारः । छन्दसीति किम् । भक्षकारः ॥ धेनोर्भव्यायां मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ धेनुंभव्या ॥ लोकस्य पृणे मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ लोकंपृणा ॥ इत्ये ऽनभ्याशस्य मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ अनभ्याशमित्यः ॥ भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ भ्राष्ट्रमिन्धः । अग्निमिन्धः ॥ गिले ऽगिलस्य मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ तिमिङ्गिलः । अगिलस्येति किम् । गिलगिलः ॥ गिलगिले चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तिमिङ्गिलगिलः ॥ उष्णभद्रयोः करणे मुम्वक्तव्यः ॥ * ॥ उष्णंकरणम् । भद्रंकरणम् ॥ सूतोग्रराजभोजमेर्वित्येतेभ्य उत्तरस्य दुहितृशब्दस्य पुत्रडादेशो वा वक्तव्यः ॥ * ॥ सूतपुत्री । सूतदुहिता । उग्रपुत्री । उग्रदुहिता । राजपुत्री । राजदुहिता । भोजपुत्री । भोजदुहिता । मेरुपुत्री । मेरुदुहिता । के चित्तु शार्ङ्गरवादिषु पुत्रशब्दं पठन्ति तस्य पुत्रीति भवति । अन्यत्रापि हि दृश्यते । शैलपुत्रीति ॥

श्येनतिलस्य पाते ञे ॥ ७१ ॥

श्येन तिल इत्येतयोः पातशब्द उत्तरपदे ञप्रत्यये मुमागमो भवति । श्येनपातोऽस्यां क्रीडायां, श्यैनंपाता । तैलंपाता । ञ इति किम् । श्येनपातः ॥

रात्रेः कृति विभाषा ॥ ७२ ॥

रात्रेः कृदन्त उत्तरपदे विभाषा मुमागमो भवति । रात्रिंचरः । रात्रिचरः । रात्रिमटः । रात्र्यटः । अप्राप्तविभाषेयम् । खिति कृति नित्यं भवति । रात्रिंमन्यः ॥

नलोपो नञः ॥ ७३ ॥

नञो नकारस्य लोपो भवत्युत्तरपदे । अब्राह्मणः । अवृषलः । असुरापः । असोमपः ॥ नञो नलोपो ऽवक्षेपे तिङ्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अपचसि त्वं जाल्म । अकरोषि त्वं जाल्म ॥

तस्मान्नुडचि ॥ ७४ ॥

तस्माल्लुप्तनकारान्नञः नुडागमो भवति अजादावुत्तरपदे । अनजः । अनश्वः । तस्मादिति किम् । नञ एव हि स्यात् । पूर्वान्ते हि ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यमिति प्राप्नोति ॥

नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ॥ ७५ ॥

नभ्राट् नपात् नवेदाः नासत्याः नमुचि नकुलं नख नपुंसक नक्षत्र नक्र नाक इत्येतेषु नञ् प्रकृत्या भवति । न भ्राजत इति, नभ्राट् । भ्राजते क्विबन्तस्य नञ्समासः । न पातीति, नपात् । पातिः शत्रन्तः । न वेत्तीति नवेदाः । वेत्तिरसुन्प्रत्ययान्तः । नासत्याः । सत्सु साधवः सत्याः न सत्या, असत्याः, न असत्याः नासत्याः । न मुञ्चतीति, नमुचिः । मुचेरौणादिकः किप्रत्ययः । नास्य कुलमस्ति, नकुलः । नख । नास्य खमस्तीति, नखम् । नपुंसक । न स्त्री न पुमान्नपुंसकम् । स्त्रीपुंसयोः पुंसकभावो निपात्यते । नक्षत्र । न क्षरते क्षीयत इति वा, नक्षत्रम् । क्षियः क्षरतेर्वा क्षत्रमिति निपात्यते । नक्र । न क्रामतीति नक्रः । क्रमेर्डप्रत्ययो निपातनात् । नाक । नास्मिन्नकमिति नाकम् ॥

एकादिश्चैकस्य चादुक् ॥ ७६ ॥

एकादिश्च नञ्प्रकृत्या भवति एकशब्दस्यादुगागमे भवति । एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः । एकान्नत्रिंशत् । तृतीयेति योगविभागात्समासः । पूर्वान्तोयमदुक् क्रियते । पदान्तलक्षणोऽनुनासिको विकल्पेन यथा स्यादिति ॥

नगो ऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ॥ ७७ ॥

नञ्प्रकृत्या भवति । नगा वृक्षाः । अगा वृक्षाः । नगाः पर्वताः । अगाः पर्वताः । न गच्छन्तीति नगाः । गमेर्डप्रत्ययः । अप्राणिष्विति किम् । अगो वृषलः शीतेन ॥

सहस्य सः संज्ञायाम् ॥ ७८ ॥

सहशब्दस्य स इत्ययमादेशो भवति संज्ञायां विषये । साश्वत्थम् । सपलाशम् । सशिंशपम् । संज्ञायामिति किम् । सहयुध्वा । सहकृत्वा । सादेश उदात्तो निपात्यते । उदात्तानुदात्तवतो हि सहशब्दस्यान्तर्यतः स्वरितः स्यात् ।

स च निपातनस्वरः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं यत्र तत्र उपयुज्यते । अन्यत्र समासान्तोदात्तत्वेन बाध्यतएव । सेष्टि, सपशुबन्धमिति ॥

ग्रन्थान्ताधिके च ॥ ७९ ॥

ग्रन्थान्ते ऽधिके च वर्त्तमानस्य सहशब्दस्य स इत्ययमादेशो भवति । सकलं ज्योतिषमधीते । समुहूर्त्तम् । ससंग्रहं व्याकरणमधीयते । कलान्तं मुहूर्त्तान्तं संग्रहान्तमिति अन्तवचनइत्यव्ययीभावः समासः । तत्राव्ययीभावे चाकालइति कालवाचिन्युत्तरपदे सभावो न प्राप्नोतीत्ययमारम्भः । अधिके । सद्रोणा खारी । समाषः कार्षापणः । सकाकिणीको माषः ॥

द्वितीये चानुपाख्ये ॥ ८० ॥

द्वयोः सहयुक्तयोरप्रधानो यः स द्वितीयः । उपाख्यायते प्रत्यक्षत उपलभ्यते यः स उपाख्यः, उपाख्यादन्यो ऽनुपाख्यो ऽनुमेयस्तस्मिन् द्वितीये ऽनुपाख्ये सहस्य स इत्ययमादेशो भवति । साग्निः कपोतः । सपिशाचा वात्या । सराक्षसीका शाला । अग्न्यादयः साक्षादनुपलभ्यमानाः कपोतादिभिरनुमीयमानास्तदुपाख्या भवन्ति ॥

अव्ययीभावे चाकाले ॥ ८१ ॥

अव्ययीभावे च समासे ऽकालवाचिन्युत्तरपदे सहस्य स इत्ययमादेशो भवति । सचक्रं धेहि । सधुरं प्राज । अकालइति किम् । सहपूर्वाह्णम् ॥

वोपसर्जनस्य ॥ ८२ ॥

उपसर्जनसर्वावयवः समास उपसर्जनं, यस्य सर्वे ऽवयवा उपसर्जनीभूताः स सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहिर्गृह्यते । तदवयवस्य सहशब्दस्य वा स इत्ययमादेशो भवति । सपुत्रः । सहपुत्रः । सच्छात्रः । सहच्छात्रः । उपसर्जनस्येति किम् । सहयुध्वा । सहकृत्वा । सहकृत्वप्रियः प्रियसहकृत्वेतिबहुव्रीहौ यद्युत्तरपदं तत्परः सहशब्दो न भवतीति सभावो न भवति ॥

प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु ॥ ८३ ॥

प्रकृत्या सहशब्दो भवति आशिषि विषये ऽगोवत्सहलेषु । स्वस्ति देवदत्ताय सहपुत्राय सहच्छात्राय सहामात्याय । अगोवत्सहलेष्विति किम् । स्वस्ति भवते सहगवे । सगवे । सहवत्साय । सवत्साय । सहलाय । सहहलाय । वोपसर्जनस्येति पक्षे भवत्येव सभावः ॥

समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु ॥ ८४ ॥

स इति वर्त्तते । समानस्य स इत्ययमादेशो भवति छन्दसि विषये

मूर्द्धन् प्रभृति उदर्क इत्येतान्युत्तरपदानि वर्ज्जयित्वा । अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्यः । समानो गर्भः सगर्भः, तत्र भवः सगर्भ्यः । सगर्भसयूथसनुताद्यदिति यत् प्रत्ययः ॥ अमूर्द्धप्रभृत्युदर्केष्विति किम् । समानमूर्द्धा । समानप्रभृतयः । समानोदर्काः । समानस्येति योगविभाग इष्टप्रसिद्ध्यर्थः क्रियते । तेन सपक्षः, साधर्म्यं, सजातीय, इत्येवमादयः सिद्धा भवन्ति ॥

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ॥ ८५ ॥

ज्योतिस् जनपद रात्रि नाभि नामन् गोत्र रूप स्थान वर्ण वयस् वचन बन्धु इत्येतेषूत्तरपदेषु समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । सज्योतिः । सजनपदः । सरात्रिः । सनाभिः । सनामा । सगोत्रः । सरूपः । सस्थानः । सवर्णः । सवयाः । सवचनः । सबन्धुः ॥

चरणे ब्रह्मचारिणि ॥ ८६ ॥

चरणे गम्यमाने ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । समानो ब्रह्मचारी, सब्रह्मचारी । ब्रह्म वेदस्तदध्ययनार्थं यद्व्रतं तदपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी । समानस्तस्यैव ब्रह्मणः समानत्वादित्ययमर्थो भवति । समाने ब्रह्मणि व्रतचारी सब्रह्मचारीति ॥

तीर्थे ये ॥ ८७ ॥

तीर्थशब्दउत्तरपदे यत्प्रत्ययपरे परतः समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । सतीर्थ्यः । समानतीर्थे वासीति यत्प्रत्ययः ॥

विभाषोदरे ॥ ८८ ॥

उदरशब्दउत्तरपदे यत्प्रत्ययान्ते समानस्य विभाषा स इत्ययमादेशो भवति । सोदर्यः । समानोदर्यः । समानोदरे शयित ओ चोदात्त इति यत् ॥

दृग्दृशवतुषु ॥ ८९ ॥

दृक् दृश वतु इत्येतेषु परतः समानस्य स इत्ययमादेशो भवति । सदृक् । सदृशः । त्यदादिषु दृशो ऽनालोचने कञ्चेत्यत्र समानान्ययोश्चेति वक्तव्यमिति कञ्क्विनौ प्रत्ययौ क्रियेते ॥ दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सदृक्षः ॥ दृशेः क्सप्रत्ययोऽपि तत्रैव वक्तव्यः ॥ * ॥ वतुग्रहणमुत्तरार्थम् ॥

इदंकिमोरीश्की ॥ ९० ॥

इदं किम् इत्येतयोरीश् की इत्येतौ यथासंख्यमादेशौ भवतो दृग्दृश-

वतुप् । ईदृक् । ईदृशः । इयान् । कीदृक् । कीदृशः । कियान् । किमिदंभ्यां वो घ इति वतुप् ॥ दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ईदृक्षः । कीदृक्षः ॥

आ सर्वनाम्नः ॥ ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारादेशो भवति दृग्दृशवतुषु । तादृक् । तादृशः । तावान् । यादृक् । यादृशः । यावान् ॥ दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तादृक्षः । यादृक्षः ॥

विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये ॥ ९२ ॥

विष्वक् देव इत्येतयोः सर्वनाम्नश्च टेरद्रीत्ययमादेशो भवति अञ्चतौ वप्रत्ययान्तउत्तरपदे । विष्वगञ्चतीति विष्वद्र्यङ् । देवद्र्यङ् । सर्वनाम्नः । तद्र्यङ् । यद्र्यङ् । अद्रिसध्र्योरन्तोदात्तनिपातनं कृत्स्वरनिवृत्त्यर्थम् । तत्र यणादेशे कृते उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्यैव स्वरो भवति । विष्वग्देवयोरिति किम् । अश्वाची । अञ्चताविति किम् । विष्वग्युक् । वप्रत्ययइति किम् । विष्वगञ्चनम् । वप्रत्ययग्रहणमन्यत्र धातुग्रहणे तदादिविधिप्रतिपत्त्यर्थः । तेनायस्कृतमयस्कार इत्यत्रातः कृकमिकंसकुम्भपात्रेति सत्वं भवति ॥ छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति । कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव * ॥

समः समि ॥ ९३ ॥

समित्येतस्य समि इत्ययमादेशो भवति अञ्चतौ वप्रत्ययान्तउत्तरपदे । सम्यक् । सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ९४ ॥

तिरस् इत्येतस्य तिरि इत्ययमादेशो भवत्यञ्चतौ वप्रत्ययान्त उत्तरपदे ऽलोपे । यदा ऽस्य लोपो न भवति । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः । अलोपइति किम् । तिरश्चा । तिरश्चे । अच इत्यकारलोपः ॥

सहस्य सध्रिः ॥ ९५ ॥

सहेत्यस्य सध्रिरित्ययमादेशो भवत्यञ्चतौ वप्रत्ययान्तउत्तरपदे । सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः । सध्रीचः । सध्रीचा ॥

सध मादस्थयोश्छन्दसि ॥ ९६ ॥

छन्दसि विषये माद स्थ इत्येतयोरुत्तरपदयोः सहस्य सध इत्ययमादेशो भवति । सधमादो द्युम्न्य एकास्ताः । सधस्थाः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो ऽप ईत् ॥ ९७ ॥

---

* क्व चिदन्यत्रापि भवति । विश्वद्र्याग्ना । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

द्वि अन्तरित्येताभ्यामुपसर्गाच्चोत्तरस्याबित्येतस्य ईकारादेशो भवति। द्वीपः। अन्तरीपः। उपसर्गात्। नीपम्। वीपम्। समीपम्॥ समाप ईत्वे प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ समापं नाम देवयजनम्। अपर आह॥ ईत्वमनवर्णादिति वक्तव्यम्॥ * ॥ इह मा भूत्। प्रापम्। परापम्। अप्शब्दं प्रति क्रियायोगाभावाद् उपसर्गग्रहणं प्रादयुपलक्षणार्थम्।

ऊदनोर्देशे ॥ ९८ ॥

अनोरुत्तरस्याप ऊकारादेशो भवति देशाभिधाने। अनूपो देशः। देशइति किम्। अन्वीपम्। दीर्घोच्चारणमवग्रहार्थम्। अनु ऊपो ऽनूप इति॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ९९ ॥

अषष्ठीस्थस्य अतृतीयास्थस्य चान्यशब्दस्य दुगागमो भवति आशिस् आशा आस्था आस्थित उत्सुक ऊति कारक राग छ इत्येतेषु परतः। अन्या आशीः, अन्यदाशीः। अन्या आशा अन्यदाशा। अन्या आस्था, अन्यदास्था। अन्य आस्थितः। अन्यदास्थितः। अन्य उत्सुकः, अन्यदुत्सुकः। अन्या ऊतिः, अन्यदूतिः। अन्यः कारकः, अन्यत्कारकः। अन्यो रागः, अन्यद्रागः। अन्यस्मिन् भवः, अन्यदीयः गहादिष्वन्यशब्दो द्रष्टव्यः। अषष्ठ्यतृतीयास्थस्येति किम्। अन्यस्य आशीः, अन्याशीः। अन्येन आस्थितः, अन्यास्थितः॥

दुगागमो ऽविशेषेण वक्तव्यः कारकच्छयोः।
षष्ठीतृतीययोर्नेष्ट आशीरादिषु सप्तसु॥

अन्यस्य कारक, मन्यत्कारकम्। अन्यस्येदमन्यदीयम्। अस्य च द्विर्नञ्ग्रहणं लिङ्गम्॥

अर्थे विभाषा ॥ १०० ॥

अर्थशब्दउत्तरपदे अन्यस्य विभाषा दुगागमो भवति। अन्यदर्थः। अन्यार्थः॥

कोः कत्तत्पुरुषे ऽचि ॥ १०१ ॥

कु इत्येतस्य कदित्ययमादेशो भवति तत्पुरुषे समासे ऽजादावुत्तरपदे। कदजः। कदश्वः। कदुष्ट्रः। कदन्नम्। तत्पुरुषइति किम्। कूष्ट्रो राजा। अचीति किम्। कुब्राह्मणः। कुपुरुषः॥ कद्भावे त्रावुपसंख्यानम्॥ * ॥ कुत्सितास्त्रयः, कत्त्रयः॥

रथवदयोश्च ॥ १०२ ॥

रथ वद इत्येतयोश्चोत्तरपदयोः कोः कदित्ययमादेशो भवति। कद्रथः। कद्वदः॥

तृणे च जातौ ॥ १०३ ॥

तृणशब्दउत्तरपदे जातावभिधेयायां कोः कदादेशो भवति । कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् । कुत्सितानि तृणानि कुतृणानि ॥

का पथ्यक्षयोः ॥ १०४ ॥

पथिन् अक्ष इत्येतयोरुत्तरपदयोः कोः का इत्ययमादेशो भवति । कापथः । काक्षः ॥

ईषदर्थे ॥ १०५ ॥

ईषदर्थे वर्त्तमानस्य कोः का इत्ययमादेशो भवति । कामधुरम् । कालवणम् । काम्लम् । अजादावपि परत्वात् कादेश एव भवति । कोष्णम् ॥

विभाषा पुरुषे ॥ १०६ ॥

पुरुषशब्दउत्तरपदे विभाषा कोः का इत्ययमादेशो भवति । कापुरुषः । कुपुरुषः । अप्राप्तविभाषेयम् । ईषदर्थे तु पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यं का भवति । ईषत्पुरुषः, कापुरुषः ॥

कवं चोष्णे ॥ १०७ ॥

उष्णशब्दउत्तरपदे कोः कवङित्ययमादेशो भवति का च विभाषा । कवोष्णम् । कदुष्णम् ॥

पथि चच्छन्दसि ॥ १०८ ॥

पथिशब्दउत्तरपदे छन्दसि विषये कोः कव का इत्येतावादेशौ भवतो विभाषा । कवपथः । कापथः । कुपथः ॥

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ॥ १०९ ॥

पृषोदरादीनि शब्दरूपाणि येषु लोपागमवर्णविकाराः शास्त्रेण न विहिता दृश्यन्ते च तानि यथोपदिष्टानि साधूनि भवन्ति । यानि यथोपदिष्टानि शिष्टैरुच्चारितानि प्रयुक्तानि तथैवानुगन्तव्यानि । पृषदुदरं यस्य, पृषोदरम् । पृषद् उद्वानं यस्य, पृषोद्वानम् । अत्र तकारलोपो भवति । वारिवाहको, बलाहकः । पूर्वशब्दस्य बशब्द आदेश उत्तरपदादेश्च लत्वम् । जीवनस्य मूतो, जीमूतः । वनशब्दस्य लोपः । शवानां शयनं, श्मशानम् । शवशब्दस्य श्मादेशः । शयनशब्दस्यापि शानशब्द आदेशः । ऊर्द्ध्वं खमस्येति, उलूखलम् । ऊर्द्ध्वखशब्दयोरुलू खल इत्येतावादेशौ भवतः । पिशिताशः, पिशाचः । पिशिताशशब्दयोर्यथायोगं पिशाचशब्दावादेशौ । ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति, बृसी । सदेरधिकरणे डट् प्रत्ययः । ब्रुवच्छब्दस्य चोपपदस्य

वृशब्द आदेशो भवति । मह्यां रौतीति, मयूरः । रौतेरचि टिलोपः । महीशब्दस्य मयूभावः । एवमन्येपि अश्वत्थकपित्थप्रभृतयो यथायोगमनुगन्तव्याः ॥ दिक्शब्देभ्य उत्तरस्य तीरस्य तारभावो वा भवति ॥ दक्षिणतीरम् । दक्षिणतारम् । उत्तरतीरम् । उत्तरतारम् ॥ वाचो वादे डत्वं च लभावश्चोत्तरपदस्येञि प्रत्यये भवति ॥ वाचं वदतीति, वाग्वादः । तस्यापत्यं वाड्वालिः ॥ षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च भवति ॥ षड् दन्ता अस्य षोडन् । षट् च दश च षोडश ॥ धासु वा षष उत्वं भवति उत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥ षोढा षड्धा कुरु । बहुवचननिर्देशो नानाधिकरणवाचिनो धाशब्दस्य प्रतिपत्त्यर्थः । इह मा भूत् । षट् दधाति धयति वा षड्धेति ॥ दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥ कृच्छ्रेण दाश्यते नाश्यते दभ्यते च यः स दूडाशः । दूणाशः । दूडभः । दम्भेः खल्वनुनासिकलोपो निपातनात् । दुष्टं ध्यायतीति, दूढ्यः । दुःशब्दोपपदस्य ध्यायतेरातश्चोपसर्ग इति कप्रत्ययः ॥ स्वरो रोहतौ छन्दस्युत्वं वक्तव्यम् ॥ जायएहि स्वो रोहाव ॥ पीवोपवसनादीनां च लोपो वक्तव्यः ॥ पीवोपवसनानां पयोपवसनानाम् ॥

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥

संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्नन्यतरस्यां ङौ ॥ ११० ॥

संख्या वि साय इत्येवं पूर्वस्याह्नशब्दस्य स्थाने अहन्नित्ययमादेशो भवत्यन्यतरस्यां ङौ परतः । द्वयोरह्नोर्भवः, द्व्यह्नः । त्र्यह्नः । द्व्यह्नि । द्व्यहनि । त्र्यह्नि । त्र्यहनि । द्व्यह्ने । त्र्यह्ने । व्यपगतमह्नो, व्यह्नः । व्यह्नि । व्यहनि । व्यह्ने । सायमह्नः सायाह्नः । सायाह्नि । सायाहनि । सायाह्ने । एकदेशिसमासः । पूर्वादिभ्योऽन्यस्यापि भवतीत्येतदेव विसायपूर्वस्याह्नस्य ग्रहणं ज्ञापकम् । तेन मध्यमह्नो मध्याह्न इत्यपि भवति । संख्याविसायपूर्वस्येति किम् । पूर्वाह्णे । अपराह्णे ॥

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ १११ ॥

ढकाररेफयोर्लोपो यस्मिन् स ढ्रलोपः, तत्र पूर्वस्याणो दीर्घो भवति । लीढम् । मीढम् । उपगूढम् । रलोपे । नीरक्तम् । अभीरथः । इन्दूरथः । पुनारक्तं वासः । प्राताराजक्रयः । पूर्वग्रहणमनुत्तरपदेऽपि पूर्वमात्रस्य दीर्घार्थम् । अण इति किम् । आवृढम् * ॥

सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ ११२ ॥

सहि वहि इत्येतयोरवर्णस्योकार आदेशो भवति ढ्रलोपे । सोढा ।

* आवृढम् आवृढमिति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

सोढुम् । सोढव्यम् । वोढा । वोढुम् । वोढव्यम् । अवर्णस्येति किम् ॥ ऊढः । ऊढवान् । वर्णग्रहणं किम् । कृतायामपि वृद्धौ यथा स्यात् । उदवोढाम् । उदवोढम् । तादपि परस्तपरस्तपरत्वादाकारस्य ग्रहणं न स्यात् ॥

साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे ॥ ११३ ॥

साढ्यै साढ्वा साढा इति निगमे निपात्यन्ते । साढ्यै समन्तात् । साढ्वा शत्रून् । सहेः क्त्वाप्रत्यये ओत्वाभावः । पक्षे क्त्वाप्रत्ययस्य ढीभावः । साढेति तृचिरूपमेतत् । निगमइति किम् । सोढ्वा सोढेति भाषायाम् ॥

संहितायाम् ११४ ॥

संहितायामित्ययमधिकारः । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामः संहितायामित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । द्व्यचोतस्तिङ इति । विद्मा हि त्वा सत्पतिं शूर गोनाम् । संहितायामिति किम् । विद्म, हि, त्वा, सत्पतिं, शूर, गोनाम् ॥

कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य ॥ ११५ ॥

कर्णशब्दे उत्तरपदे लक्षणवाचिनो दीर्घो भवति, विष्ट अष्टन् पञ्चन् मणि भिन्न छिन्न छिद्र स्रुव, स्वस्तिक, इत्येतान्वर्जयित्वा । दात्राकर्णः । द्विगुणाकर्णः । त्रिगुणाकर्णः । द्व्यङ्गुलाकर्णः । अङ्गुलाकर्णः । यत्पशूनां स्वामिविशेषसंबन्धज्ञापनार्थं दात्राकारादि क्रियते तदिह लक्षणं गृह्यते । लक्षणस्येति किम् । शोभनकर्णः । अविष्टादीनामिति किम् । विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः । भिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । छिद्रकर्णः । स्रुवकर्णः । स्वस्तिककर्णः ॥

नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ॥ ११६ ॥

नहि वृति वृषि व्यधि रुचि सहि तनि इत्येतेषु क्विप्रत्ययान्तेषूत्तरपदेषु पूर्वपदस्य दीर्घो भवति संहितायां विषये । नहि । उपानत् । परीणत् । वृति । नीवृत् । उपावृत् । वृषि । प्रावृट् । उपावृट् । व्यधि । मर्मावित् । हृदयावित् । श्वावित् । रुचि । नीरुक् । अभीरुक् । सहि । ऋतीषट् । तनि । तरीतत् । गमः क्वाविति गमादीनामिष्यते ॥ ततस्तनोतेरप्यनुनासिकलोपः । क्वाविति किम् । परिणहनम् ॥

वनगिर्योः (संज्ञायां) कोटरकिंशुलकादीनाम् ॥ ११७ ॥

वन गिरि इत्येतयोरुत्तरपदयोर्यथासंख्यं कोटरादीनां किंशुलकादीनां च दीर्घो भवति संज्ञायां विषये । वने कोटरादीनाम् कोटरावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । सारिकावणम् । गिरौ किंशुलकादीनाम् । किंशु-

लकागिरिः । अञ्जनागिरिः । कोटरकिंशुलकादीनामिति किम् । असिपत्रवनम् । कृष्णगिरिः । कोटरे । मिश्रक । पुरग । सिध्रक । सारिक । कोटरादिः । किंशुलक । साल्वक । अञ्जन । भञ्जन । लोहित । कुक्कुट । किंशुलकादिः ॥

वले ॥ ११८ ॥

वले परतः पूर्वस्य दीर्घो भवति । आसुतीवलः । कृषीवलः । दन्तावलः । रजःकृष्यासुतिपर्षदो वलच् इति वलच्प्रत्ययो गृह्यते ॥ अनुत्साहभ्रातृपितॄणामित्येव ॥ उत्साहवलः । भ्रातृवलः ॥ पितृवलः * ॥

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ ११९ ॥

मतौ परतो बह्वचोऽजिरादिवर्जितस्य दीर्घो भवति संज्ञायां विषये । उदुम्बरावती । मशकावती । वीरणावती । पुष्करावती । अमरावती । नद्यां मतुबिति मतुप्प्रत्ययः । संज्ञायामिति मतोर्वत्वम् । बह्वच इति किम् । व्रीहिमती । अनजिरादीनामिति किम् । अजिरवती ॥ खदिरवती । पुलिनवती । हंसकारण्डववती । चक्रवाकवती । संज्ञायामित्येव । वलयवती ॥

शरादीनां च ॥ १२० ॥

शरादीनां च मतौ दीर्घो भवति संज्ञायां विषये । शरावती । वंशावती । शर । वंश । धूम । अहि । कपि । मणि । मुनि । शुचि । हनु संज्ञायामिति मतोर्वत्वम् । यवादित्वाद् व्रीह्यादिभ्यो न भवति ॥

इको वहेऽपीलोः ॥ १२१ ॥

इगन्तस्य पूर्वपदस्य पीलुवर्जितस्य वहउत्तरपदे दीर्घो भवति । ऋषीवहम् । कपीवहम् । मुनीवहम् । इक इति किम् । पिण्डवहम् । अपीलोरिति किम् । पीलुवहम् ॥ अपील्वादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । दारुवहम् ॥

उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ॥ १२२ ॥

उपसर्गस्य घञन्तउत्तरपदेऽमनुष्येऽभिधेये बहुलं दीर्घो भवति । नीक्लेदः । वीमार्गः । अपामार्गः । न च भवति । प्रसेकः । प्रसारः ॥ सादकारयोः कृत्रिमे दीर्घो भवति ॥ प्रासादः । प्राकारः । कृत्रिमइति किम् । प्रसादः प्रकारः ॥ वेशादिषु विभाषा दीर्घो भवति ॥ प्रतिवेशः । प्रतीवेशः । प्रतिरोधः । प्रतीरोधः । अमनुष्यइति किम् । निषादो मनुष्यः ॥

इकः काशे ॥ १२३ ॥

इगन्तस्योपसर्गस्य काशशब्दउत्तरपदे दीर्घो भवति । नीकाशः । वीकाशः । अनूकाशः ॥ पचाद्यच्प्रत्ययान्तोऽयं काशशब्दः । इक इति किम् । प्रकाशः ॥

* अनुत्साहेत्यादि पितृवल इत्यन्तमेकस्मिन्पुस्तके नास्ति ।

दस्ति ॥ १२४ ॥

दा इत्येतस्य अस्तकारादिरादेशस्तस्मिन्परत इगन्तस्योपसर्गस्य दीर्घो भवति । नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् । अच उपसर्गात्त इत्यन्तस्य यद्यपि तकारः क्रियते तथापि चर्त्वस्याश्रयात्सिद्धत्वमिति तकारादिर्भवति । इक इत्येव । प्रत्तम् । अवत्तम् । द इति किम् । वितीर्णम् । नितार्णम् । तीति किम् । सुदत्तम् ॥

अष्टनः संज्ञायाम् ॥ १२५ ॥

अष्टनित्येतस्योत्तरपदे संज्ञायां दीर्घो भवति । अष्टावक्रः । अष्टाबन्धुरः । अष्टापदम् । संज्ञायामिति किम् । अष्टपुत्रः । अष्टभार्यः ॥

छन्दसि च ॥ १२६ ॥

छन्दसि विषये ऽष्टन उत्तरपदे दीर्घो भवति । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् । अष्टाहिरण्या दक्षिणा । अष्टापदी देवता सुमती । अष्टौ पादा-वस्या इति बहुव्रीहौ पादस्य लोपे कृते पादोन्यतरस्यामिति ङीप् ॥ गवि च युक्ते भाषायामष्टनो दीर्घो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अष्टागवं शकटम् ॥

चितेः कपि ॥ १२७ ॥

चितिशब्दस्य कपि परतो दीर्घो भवति । एकचितीकः । द्विचितीकः । त्रिचितीकः ॥

विश्वस्य वसुराटोः ॥ १२८ ॥

विश्वशब्दस्य वसु राडित्येतयोरुत्तरपदयोर्दीर्घ आदेशो भवति । विश्वावसुः । विश्वाराट् । राडिति विकारनिर्द्देशो यत्रास्यैतद्रूपं तत्रैव यथा स्यात् । इह न भवति । विश्वराजौ । विश्वराजः ॥

नरे संज्ञायाम् ॥ १२९ ॥

नरशब्दउत्तरपदे संज्ञायां विषये विश्वस्य दीर्घो भवति । विश्वानरो नाम यस्य वैश्वानरिः पुत्रः । संज्ञायामिति किम् । विश्वे नरा यस्य स विश्वनरः ॥

मित्रे चर्षौ ॥ १३० ॥

मित्रे चोत्तरपदे ऋषावभिधेये विश्वस्य दीर्घो भवति । विश्वामित्रो नाम ऋषिः । ऋषाविति किम् । विश्वमित्रो माणवकः ॥

(मन्त्रे) सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ ॥ १३१ ॥

मन्त्रविषये सोम अश्व इन्द्रिय विश्वदेव्य इत्येतेषां मतुप्प्रत्यये परतो दीर्घो भवति । सोमावती । अश्वावती । इन्द्रियावती । विश्वदेव्यावती ॥

ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम् ॥ १३२ ॥

मन्त्रइति वर्त्तते । ओषधिशब्दस्य विभक्तावप्रथमायां परतो दीर्घो भवति । ओषधीभिरपीपतत् । नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । विभक्ताविति किम् । ओषधिपते । अप्रथमायामिति किम् । स्थिरेयमस्त्वौषधिः ॥

(ऋचि) तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् ॥ १३३ ॥

ऋचि विषये तु नु घ मक्षु तङ् कु त्र उरुष्य इत्येषां दीर्घो भवति । आ तू न इन्द्र वृत्रहन् । नु । नू करणे । घ । उत वा घा स्यालात् । मक्षु । मक्षू गोमन्तमीमहे । तङ् । भरता जातवेदसम् । तङिति थादेशस्य ङित्त्वपक्षे ग्रहणं, तेनेह न भवति । शृणोत ग्रावाणः । कु । कूमनः । त्र । अत्रा गौः । उरुष्य । उरुष्या णोऽग्नेः ॥ ८।४।२८ णत्व

इकः सुञि ॥ १३४ ॥

सुञ् निपातो गृह्यते । इगन्तस्य सुञि परतो मन्त्रविषये दीर्घो भवति । अभी षु णः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये । सुञ इति षत्वम् । नश्च धातुस्थोरुषुभ्य इति णत्वम् ॥ ८।३।१०७ ८।४।२७

द्व्यचोऽतस्तिङः ॥ १३५ ॥

ऋचीति वर्त्तते । द्व्यचस्तिङन्तस्यात ऋग्विषये दीर्घो भवति । विद्मा हि त्वा सत्पतिं शूर गोनाम् । विद्मा स तस्य पितरम् । द्व्यच इति किम् । देवा भवत वाजिनः । अत इति किम् । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥

निपातस्य च ॥ १३६ ॥

ऋचीत्येव । निपातस्य च ऋग्विषये दीर्घ आदेशो भवति । एवा ते अच्छाते ॥

अन्येषामपि दृश्यते ॥ १३७ ॥

अन्येषामपि दीर्घो दृश्यते स शिष्टप्रयोगादनुगन्तव्यः । यस्य दीर्घत्वं न विहितं दृश्यते च प्रयोगे तदनेन कर्त्तव्यम् । केशाकेशि । कचाकचि । जलाषाट् । नारकः पूरुषः ॥ शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु ॥ * ॥ श्वादन्तः । श्वादंष्ट्रः । श्वाकर्णः । श्वाकुन्दः । श्वावराहः । श्वापुच्छः । श्वापदः ॥

चौ ॥ १३८ ॥

चौ परतः पूर्वपदस्य दीर्घो भवति । चाविति अञ्चतिर्लुप्तनकाराकारो गृह्यते । दधीचः पश्य । दधीचा । दधीचे । मधूचः पश्य । मधूचा । मधूचे । अन्तरङ्गोऽपि हि यणादेशो दीर्घविधानसामर्थ्याच्च प्रवर्त्तते ॥

संप्रसारणस्य ॥ १३९ ॥

उत्तरपदइति वर्त्तते । संप्रसारणान्तस्य पूर्वपदस्योत्तरपदे दीर्घो भवति । कारीषगन्धीपुत्रः । कारीषगन्धीपतिः । कौमुदगन्धीपुत्रः । कौमुदगन्धीपतिः । करीषस्येव गन्धोस्य । कुमुदस्येव गन्धो ऽस्य । अल्पाख्यायामुपमानाच्चेति इकारः समासान्तः । करीषगन्धेरपत्यं कुमुदगन्धेरपत्यं, कौमुदगन्धीपुत्रः । कौमुदगन्धीपतिः । इको ह्रस्वो ऽङ्यो गालवस्येत्येतच्च भवति । व्यवस्थितविभाषा हि सा । अङ्गतएव दीर्घत्वे ह्रस्वाभावपक्षे कृतार्थेनापि दीर्घेण पक्षान्तरे परत्वाद् ह्रस्वो बाध्यते । पुनः प्रसङ्गविज्ञानं च न भवति । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति ॥

इति काशिकायां वृत्तौ षष्ठस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अङ्गस्य ॥ १ ॥

अधिकारोयमा सप्तमाध्यायपरिसमाप्तेः । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामोऽङ्गस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । हलः । हूतः । जीनः । संवीतः । अङ्गस्येति किम् । निरुतम् । दुरुतम् । नामि दीर्घः । अग्नीनाम् । वायूनाम् । अङ्गस्येति किम् । क्रिमिणां पश्य । पामनां पश्य । अतो भिस ऐस् । वृक्षैः । प्लक्षैः । अङ्गस्येति किम् । ब्राह्मणभिस्सा । ओदनभिस्सा । अङ्गाधिकारः कृतोन्यार्थो नामि दीर्घत्वाद्यपि व्यवस्थापयतीति तदर्थमर्थवद्ग्रहणपरिभाषा नाश्रयितव्या भवति । अङ्गस्येति संबन्धसामान्ये षष्ठी यथायोगं विशेषेष्ववतिष्ठते । अथ वा प्रातिपदिकार्थमात्रमविवक्षितविभक्त्यर्थमधिक्रियते । तदुत्तरत्र यथायोगं विपरिणम्यते । ततोऽकारान्तादङ्गाद् भिस ऐसित्येवमाद्यपि सम्यक् संपन्नं भवति ॥

हलः ॥ २ ॥

अङ्गावयवाद्धलो यदुत्तरं संप्रसारणं तदन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । हूतः । जीनः । संवीतः । हल इति किम् । उतः । उतवान् । अङ्गावयवादिति किम् । निरुतम् । तदन्तस्येति किम् । विद्धः । विचितः । अण इत्येव । तृतीयः । तृतीयेति वा निपातनादत्र दीर्घाभावः । अङ्गग्रहणमावर्त्तयितव्यं, हल्विशेषणार्थम्, अङ्गकार्यप्रतिपत्त्यर्थं च ॥

नामि ॥ ३ ॥

नामीत्येतत्षष्ठीबहुवचनमागतनुट्कं गृह्यते । तस्मिन्परतोऽङ्गस्य दीर्घो भवति । अग्नीनाम् । वायूनाम् । कर्तॄणाम् । हर्तॄणाम् । अण इत्येतदत्र

निवृत्तम् । आगतनुड्ग्रहणमुत्तरार्थम्, कृते च नुटि दीर्घप्रतिपत्त्यर्थम् । अन्यथा हि नुडेव न स्यात् ॥

नामि दीर्घ आमि चेत्स्यात्कृते दीर्घे न नुड् भवेत् ।
वचनाद्यत्र तन्नास्ति नोपधायाश्च चर्म्मणाम् ॥

न तिसृचतसृ ॥ ४ ॥

तिसृ चतसृ इत्येतयोर्नामि दीर्घो न भवति । तिसृणाम् । चतसृणाम् । इदमेव नामि दीर्घप्रतिषेधवचनं ज्ञापकमचि र ऋत इत्येतस्मात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुडागमो भवतीति ॥

छन्दस्युभयथा ॥ ५ ॥

छन्दसि विषये तिसृचतस्रोर्नामि परत उभयथा दृश्यते, दीर्घश्चादीर्घश्च । तिसृणां मध्यंदिने तिसॄणां मध्यंदिने । चतसृणां मध्यंदिने चतसॄणां मध्यंदिने ॥

नृ च ॥ ६ ॥

नृ इत्येतस्य नामि परउभयथा भवति । त्वं नृणां नृपते । त्वं नॄणां नृपते । के चिदत्र छन्दसीति नानुवर्त्तयन्ति । तेन भाषायामपि विकल्पो भवति ॥

नोपधायाः ॥ ७ ॥

नान्तस्याङ्गस्योपधाया नामि परतो दीर्घो भवति । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । नवानाम् । दशानाम् । न इति किम् । चतुर्णाम् । नामीत्येव । चर्म्मणाम् ॥

सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ॥ ८ ॥

सर्वनामस्थाने च परतोऽसंबुद्धौ नोपधाया दीर्घो भवति । राजा । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । सामानि तिष्ठन्ति । सामानि पश्य । सर्वनामस्थानइति किम् । राजनि । सामनि । असंबुद्धाविति किम् । हे राजन् । हे तक्षन् ॥

वा षपूर्वस्य निगमे ॥ ९ ॥

षपूर्वस्याचो नोपधाया निगमविषये सर्वनामस्थाने परतोऽसंबुद्धौ वा दीर्घो भवति । स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत् । स तक्षणं तिष्ठन्तमब्रवीत् । ऋभुक्षाणमिन्द्रम् । ऋभुक्षणमिन्द्रम् । निगमइति किम् । तक्षा । तक्षाणौ । तक्षाणः ॥

सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १० ॥

सकारान्तस्य संयोगस्य यो नकारः महतश्च तस्योपधाया दीर्घो भवति सर्वनामस्थाने परतः संबुद्धौ । श्रेयान् । श्रेयांसौ । श्रेयांसः । श्रेयांसि । पयांसि । यशांसि । महतः खल्वपि । महान् । महान्तौ । महान्तः । असंबुद्धाविति किम् । हे श्रेयन् । हे महन् ॥

अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ॥ ११ ॥

अप् इत्येतस्य तृजन्तस्य स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इत्येतेषां चाङ्गानामुपधाया दीर्घो भवति सर्वनामस्थाने परतो ऽसंबुद्धौ । अप् । आपः । बह्वम्पि तडागानीति केचिदिच्छन्ति । तत्र समासान्तो विधिरनित्य इति समासान्तो न क्रियते । नित्यमपि च नुममकृत्वा दीर्घत्वमिष्यते । तृन् । कर्त्तारौ कटान् । वदितारौ जनापवादान् । कर्त्तारः । तृच् । कर्त्तारौ कटस्य । कर्त्तारः । हर्त्तारौ भारस्य, हर्त्तारः । स्वसृ । स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । नप्तृ । नप्ता । नप्तारौ । नप्तारः । नेष्टृ । नेष्टारौ । नेष्टारः । त्वष्टृ । त्वष्टारौ । त्वष्टारः । क्षत्तृ । क्षत्तारौ । क्षत्तारः । होतृ । होतारौ । होतारः । पोतृ । पोतारौ । पोतारः । प्रशास्तृ । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । नप्त्रादीनां ग्रहणमव्युत्पत्तिपक्षे विध्यर्थम् । व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । एवंभूतानामन्येषां संज्ञाशब्दानां दीर्घो मा भूदिति । पितरौ । पितरः । मातरौ । मातरः । असंबुद्धाविति किम् । हेकर्त्तः । हेस्वसः ॥

इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ॥ १२ ॥

इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येवमन्तानामङ्गानां शौ परत उपधाया दीर्घो भवति । बहुदण्डीनि । बहुच्छत्रीणि । बहुवृत्रहाणि । बहुभ्रूणहाणि । बहुपूषाणि । बह्वर्यमाणि । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । इन्हन्पूषार्यम्णामुपधायाः शावेव दीर्घो भवति नान्यत्र । दण्डिनौ । छत्रिणौ । वृत्रहणौ । पूषणौ । अर्यमणौ ॥

दीर्घविधिर्य इहेन्प्रभृतीनां तं विनियम्य सुटीति सुविद्वान् ।
शौ नियमं पुनरेव विदध्याद् भ्रूणहनीति तथास्य न दुष्येत् ॥
शास्मि निवर्त्य सुटीत्यविशेषे शौ नियमं कुरु वाप्यसमाद्य ।
दीर्घविधेरुपधानियमान्मे हन्तियिदीर्घविधौ च न दोषः ॥
सुट्यपि वा प्रकृते ऽनवकाशः शौ नियमो ऽप्रकृतप्रतिषेधे ।
यस्य हि शौ नियमः सुटि नैतत्तेन न तत्र भवेद्विनियम्यम् ॥

हन्तेरनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङितीति दीर्घत्वं यत् तदपि नियमेन बाध्यते । वृत्रहणि । भ्रूणहनीति । कथम् । योगविभागः क्रियते । इन्हन्पूषार्यम्णाम् । सर्वनामस्थानएव दीर्घो भवति, नान्यत्रेति । ततः शाविति द्वितीयो नियमः, शावेव सर्वनामस्थाने दीर्घो भवति नान्यत्रेति । सर्वस्यो पधालक्षणस्य दीर्घस्य नियमेन निवृत्तिः क्रियते । यस्तु न उपधालक्षणः, स भवत्येव । वृत्रहायते । भ्रूणहायते । अथ वा ऽनुवर्त्तमानेपि सर्वनामस्थानग्रहणे सामर्थ्यादयमविशेषेण नियमः । शिशब्दो हि सर्वनामस्थानं नपुंसकस्य, न च तस्यान्यत्सर्वनामस्थानमस्तीत्यविशेषेण नियमः । तत्र तु नपुंसकस्येत्येतन्नाश्रीयते । तेनानपुंसकस्यापि दीर्घो न भवति । सर्वनामस्थानसंज्ञाविधाने तु नपुंसकस्य व्यापारोस्तीति तत्र नियमः क्रियमाणो नपुंसकस्य स्यात् ॥

सौ च ॥ १३ ॥

सावसंबुद्धौ परत इन्हन्पूषार्यम्णामुपधाया दीर्घो भवति । दण्डी । वृत्रहा । पूषा । अर्यमा । असंबुद्धाविति किम् । हे दण्डिन् । हे वृत्रहन् । हेपूषन् । हे अर्यमन् ॥

अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ १४ ॥

अतु अस् इत्येवमन्तस्य अधातोरुपधायाः सावसंबुद्धौ परतो दीर्घो भवति । डवतु । भवान् । क्तवतु । कृतवान् । मतुप् । गोमान् । यवमान् । अत्र कृते दीर्घे नुमागमः कर्त्तव्यः । यदि हि परत्वान्नित्यत्वाच्च नुम् स्यात्, दीर्घस्य निमित्तमनुपधा विहन्येत । असन्तस्य । सुपयाः । सुयशाः । सुस्रोताः । अधातोरिति किम् । पिण्डं ग्रसतइति पिण्डग्रः । चर्म्म वस्तइति चर्म्मवः । अनर्थकोप्यस्शब्दो गृह्यते । अनिनस्मन्ग्रहणानि अर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति इति । अन्तग्रहणमुपदेशप्रयोगैकदेशस्याप्यत्वन्तस्य परिग्रहार्थम् । अन्यथा मतुपो ग्रहणं न स्याद् उपदेशे रूपानिर्ग्रहहेतौ नायमत्वन्त इति । असंबुद्धावित्येव । हे गोमन् । हे सुपयः ॥

अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ॥ १५ ॥

अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य उपधाया दीर्घो भवति क्विप्रत्यये परतो झलादौ च क्ङिति । प्रशान् । प्रतान् । झलादौ ~~क्विप्~~ । शान्तः । शान्तवान् । शान्ता । शान्तिः । ङिति खल्वपि । शंशान्तः । तन्तान्तः । यङ्लुगन्तादयं तस् । अनुनासिकस्येति किम् । ओदनपक् । पक्वः । पक्ववान् । क्विझलोरिति किम् । गम्यते । रम्यते । क्ङितीति किम् । गन्ता । रन्ता ॥

अज्झनगमां सनि ॥ १६ ॥

१-मोजो धातोः
२ तुगतोऽनुनासिकान्तस्य ७/४/८५

अजन्तानामङ्गानां हनिगम्योश्च सनि झलादौ परे वा दीर्घो भवति । अजन्तानाम् । विचीषति । तुष्टूषति । चिकीर्षति । जिहीर्षति । हन् । जिघांसति । गम् । अधिजिगांसते ॥ गमेरिङादेशस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । संजिगंसते वत्सो मात्रेति । स्वर्गं लोकं समजिगांसदिति छन्दसि यदनिङादेशस्यापि दीर्घत्वं दृश्यते, तदन्येषामपि दृश्यतइत्यनेन भवति । अथ वा इहाज्ग्रहणं न कर्त्तव्यम् । सनि दीर्घो भवतीत्येतावदेव सूत्रं कर्त्तव्यं, तच्चाचा गृह्यमाणस्य विशेषणे सति सिद्धमजन्तस्य दीर्घत्वं, तत् क्रियते प्रवृत्तिभेदेन गमेरपि विशेषणार्थम् । अजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । अजादेशस्य गमेरिति, ततो न वक्तव्यम् एतद्गमेरिङादेशस्येति ॥

तनोतेर्विभाषा ॥ १७ ॥

तनोतेरङ्गस्य सनि झलादौ विभाषा दीर्घो भवति । तितांसति । तितंसति । झलीत्येव । तितनिषति । सनीवन्तर्द्धेत्यत्र तनोतेरुपसंख्यानादिडागमो भवति विकल्पेन ॥

क्रमश्च क्त्वि ॥ १८ ॥

क्रम उपधाया विभाषा दीर्घो भवति क्त्वाप्रत्यये झलादौ परतः । क्रन्त्वा । क्रान्त्वा । झलीत्येव । क्रमित्वा । प्रक्रम्य उपक्रम्येति बहिरङ्गोपि ल्यबादेशोन्तरङ्गानपि विधान्बाधतइति पूर्वमेव दीर्घत्वं न प्रवर्त्तते ॥

च्छ्वोः शूडनुनासिके च ॥ १९ ॥

छ इत्येतस्य सतुक्कस्य वकारस्य च स्थाने यथासंख्यं श् ऊठ् इत्येतावादेशौ भवतः, अनुनासिकादौ प्रत्यये परतः क्वौ झलादौ च क्ङिति । प्रश्नः । विश्नः । अन्तरङ्गत्वाच्च छे चेति तुकि कृते सतुक्कस्य शादेशः । वकारस्य ऊठ् । स्योनः । सिवेरौणादिके नप्रत्यये लघूपधगुणात् पूर्वमूठ् क्रियते । तत्र कृतेन्तरङ्गत्वाद् यणादेशो नानाश्रयत्वात् च न वार्णादाङ्गं बलीयो भवति । क्वौ छस्य । शब्दप्राट् । क्विब् वचीत्यादिनौणादिकः क्विप् दीर्घश्च । गोविट् । वकारस्य । अक्षद्यूः । हिरण्यद्यूः । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गइति नाजानन्तर्यइति प्रतिषिध्यते । झलादौ छस्य । पृष्टः । पृष्टवान् । पृष्ट्वा । वकारस्य । द्यूतः । द्यूतवान् । द्यूत्वा । क्ङितीत्येव । द्युभ्याम् । द्युभिः । के चिदत्र क्ङितीति नानुवर्त्तयन्ति । कथं द्युभ्यां द्युभिरिति, ऊठि कृते दिव उदिति तपरत्वान् मात्राकालो भविष्यति । छशां ष इत्यत्र छग्रहणं न कर्त्तव्यम् । अनेनैव हि सर्वत्र शकारो विधीयते । ऊठष्ठित्करणमेत्येधत्यूठ्सु इति विशेषणार्थम् । वाह ऊडित्ययमपि ठिदेव ॥

ज्वरत्वरश्रिव्यविमवामुपधायाश्च ॥ २० ॥

ज्वर त्वर श्रिवि अव मव इत्येतेषामङ्गानां वकारस्य उपधायाश्च स्थाने ऊडित्ययमादेशो भवति क्वौ परतोऽनुनासिके झलादौ च क्ङिति । जूः । जूरौ । जूरः । जूर्त्तिः । त्वर । तूः । तूरौ । तूरः । तूर्त्तिः । श्रिवि । श्रूः । श्रुवौ । श्रुवः । श्रूतः । श्रूतवान् । श्रूतिः । अव् । ऊः । उवौ । उवः । ऊतिः । मव । मूः । मुवौ । मुवः । मूतः । मूतवान् । मूतिः । ज्वरत्वरोरुपधा वकारात् परा, श्रिव्यवमवां पूर्वा ॥

राल्लोपः ॥ २१ ॥

रेफादुत्तरयोश्छ्वोर्लोपो भवति क्वौ परतो झलादौ क्ङिति च परतः । मुर्छा । मूः । मुरौ । मुरः । मूर्त्तः । मूर्त्तवान् । मूर्त्तिः । न ध्याख्यापॄमूर्छिमदामिति निष्ठानत्वाभावः । हुर्छा । हूः । हुरौ । हुरः । हूर्णः । हूर्णवान् । हूर्त्तिः । राल्लोपे सतुक्कस्य छस्याभावात्केवलो गृह्यते । वकारस्य । तुर्वी । तूः । तुरौ । तुरः । तूर्णः । तूर्णवान् । तूर्त्तिः । धुर्वी । धूः । धुरौ । धुरः । धूर्णः । धूर्णवान् । धूर्त्तिः ॥

असिद्धवदत्रा भात् ॥ २२ ॥

असिद्धवदित्ययमधिकारो यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्याम आ अध्यायपरिसमाप्तेस्तद् असिद्धवद्वेदितव्यम् । आ भादिति विषयनिर्द्देशः । आभसंशब्दनाद् यदुच्यते तत्र कर्त्तव्ये, ऽत्रेति समानाश्रयत्वप्रतिपत्त्यर्थम् । तच्चेदत्र यत्र भवति तदा भाद् शास्त्रीयं विधीयते तदाश्रयमेव भवति । व्याश्रयं तु नासिद्धवद्भवतीत्यर्थः । असिद्धवचनमुत्सर्गलक्षणभावार्थमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थं च । एधि शाधीत्यत्र एत्वशाभावयोः कृतयोर्झल्लक्षणं धित्वं न प्राप्नोति, असिद्धत्वाद्भवति । आगहि जहीत्यत्रानुनासिकलोपे जभावे च अतो हेरिति लुक् प्राप्नोति, असिद्धत्वान्न भवति । आ भादिति किम् । अभाजि । रागः । अत उपधाया इति वृद्धौ कर्त्तव्यायां नलोपो नासिद्धो भवति । अत्रग्रहणं किम् । पपुषः पश्य । चिच्युषः पश्य । लुलुवुषः पश्य । वसुसंप्रसारणमालोपे यणादेशे उवङादेशे च कर्त्तव्ये नासिद्धं भवति । आलोपादीनि वसौ, वस्वन्तस्य विभक्तौ संप्रसारणमिति समानाश्रयत्वं नास्ति । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्ग इति एतदप्यत्र न भवति । किं कारणम् । एषा हि परिभाषा आ भाच्छास्त्रीया । तस्यां प्रवर्त्तमानायां वसुसंप्रसारणादीनामा भाच्छास्त्रीयाणामेवासिद्धत्वादन्तरङ्गबहिरङ्गयोः युगपत्समुपस्थापनं नास्तीति परिभाषा न प्रवर्तते ॥ वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वुग् उवङादेशे । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः । युट् यणादेशे । उपदिदीये । उपदिदीयाते । उपदिदीयिरे । आ भादित्ययमभिविधावाङ् । तेन भाधिकारेऽप्यसिद्धवद्भवति ॥

श्नान्नलोपः ॥ २३ ॥

श्नादिति श्नमयमुत्सृष्टमकारो गृह्यते । तत उत्तरस्य नकारस्य लोपो भवति । अनक्ति । भनक्ति । हिनस्ति । शकारवतो ग्रहणं किम् । यज्ञानाम् । यत्नानाम् । सुपि चेति परत्वात् कृते ऽपि दीर्घत्वे स्थानिवद्भावाच्चलोपः स्यादेव । विश्नानां प्रश्नानामित्यत्र लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवेत्येवं न भवति ॥

अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ २४ ॥

अनिदितामङ्गानां हलन्तानामुपधाया नकारस्य लोपो भवति क्ङिति प्रत्यये परतः । स्रस्तः । ध्वस्तः । स्रस्यते । ध्वस्यते । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । अनिदितामिति किम् । नन्द्यते । नानन्द्यते । हल इति किम् । नीयते । नेनीयते । उपधाया इति किम् । नह्यते । नानह्यते । क्ङितीति किम् । स्रंसिता । ध्वंसिता ॥ अनिदितां नलोपे लङ्गिकम्प्योरुपतापशरीरविकारयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ विलगितः । विकपितः । उपतापशरीरविकारयोरिति किम् । विलङ्गितः । विकम्पितः ॥ रञ्जेर्णौ मृगरमणउपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ रजयति मृगान् । जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्चेति मित्त्वादुपधाह्रस्वत्वम् । मृगरमणइति किम् । रञ्जयति वस्त्राणि ॥ घिनुणि च रञ्जेरुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ रागी । त्यजरजभजेति निपातनाद्वा सिद्धम् ॥ रजकरजनरजःसूपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ रजकः । रजनम् । रजः ॥

दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ २५ ॥

दंश सञ्ज ष्वञ्ज इत्येतेषामङ्गानां शपि परत उपधाया नकारस्य लोपो भवति । दशति । सजति । परिष्वजते ॥

रञ्जेश्च ॥ २६ ॥

रञ्जेश्च शपि परत उपधाया नकारस्य लोपो भवति । रजति । रजतः । रजन्ति । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

घञि च भावकरणयोः ॥ २७ ॥

भावकरणवाचिनि घञि परतो रञ्जेरुपधाया नकारस्य लोपो भवति । भावे । आश्चर्यो रागः । विचित्रो रागः । करणे । रज्यते ऽनेनेति, रागः । भावकरणयोरिति किम् । रजन्ति तस्मिन्निति रङ्गः ॥

स्यदो जवे ॥ २८ ॥

जवे ऽभिधेये स्यद इति घञि निपात्यते । स्यन्देर्नलोपो वृद्ध्यभावश्च । इक्प्रकरणाच्च धातुलोप इति प्रतिषेधो नास्ति । गोस्यदः । अश्वस्यदः । जव इति किम् । तैलस्यन्दः । घृतस्यन्दः ॥

अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ २९ ॥

अवोद एध ओद्म प्रश्रथ हिमश्रथ इत्येते निपात्यन्ते । अवोद इत्युन्देरवपूर्वस्य घञि नलोपो निपात्यते । अवोदः । एध इति इन्धेर्घञि नलोपो गुणश्च निपात्यते । न धातुलोप आर्द्धधातुकइति हि प्रतिषेधः स्यात् । ओद्म इति उन्देरौणादिके मन्प्रत्यये नलोपो गुणश्च निपात्यते । ओद्मः । प्रश्रथ इति प्रपूर्वस्य श्रन्थेर्घञि नलोपो वृद्ध्यभावश्च निपात्यते । हिमश्रथ इति हिमपूर्वस्य श्रन्थेर्घञ्येव निपातनम् । हिमश्रथः ॥

नाञ्चेः पूजायाम् ॥ ३० ॥

अञ्चेः पूजायामर्थे नकारस्य लोपो न भवति । अञ्चिता अस्य गुरवः । अञ्चितमिव शिरो वहति । अञ्चेः पूजायामिति इडागमः । पूजायामिति किम् । उदक्तमुदकं कूपात् । उद्धृतमित्यर्थः । यस्य विभाषेतीट्प्रतिषेधः ॥

क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ॥ ३१ ॥

क्त्वाप्रत्यये परतः स्कन्द स्यन्द इत्येतयोर्नकारलोपो न भवति । स्कन्त्वा । स्यन्त्वा । स्यन्देरूदित्वात्पक्षे इडागमः । स्यन्दित्वा । तत्र यदा इडागमस्तदा न क्त्वा सेडिति कित्त्वप्रतिषेधादेव नलोपाभावः ॥

जान्तनशां विभाषा ॥ ३२ ॥

जान्तानामङ्गानां नशेश्च क्त्वाप्रत्यये परतो विभाषा नकारलोपो न भवति । रङ्क्त्वा । रक्त्वा । भङ्क्त्वा । भक्त्वा । नशः । नष्ट्वा । नंष्ट्वा । इट्पक्षे नशित्वा * ॥

भञ्जेश्च चिणि ॥ ३३ ॥

भञ्जेश्च चिणि परतो विभाषा नकारलोपो भवति । अभाजि । अभञ्जि । अप्राप्तोयं नलोपः पक्षे विधीयते । ततो नेति नानुवर्त्तते ॥

शास इदङ्हलोः ॥ ३४ ॥

शास उपधाया इकारादेशो भवति अङि परतो हलादौ च क्ङिति । अन्वशिषत् । अन्वशिषताम् । अन्वशिषन् । हलादौ क्ङिति । शिष्टः । शिष्टवान् । ङिति । तौ शिष्टः । वयं शिष्मः । इत्वे कृते शासिवसिघसीनां चेति षत्वम् । अङ्हलोरिति किम् । शासति । शशासतुः । शशासुः † ॥ क्वौ च शास इत्वं भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आर्यान् शास्तीति, आर्यशीः । मित्रशीः ॥ यस्मात् शासेरङ्विहितः शासु अनुशिष्टाविति तस्यैवेदं ग्रहणमिष्यते ॥ आङः

---

* इदं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† क्ङितीति किम् । शास्ति इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

शासु इच्छायामिति अस्य न भवति । आशास्ते । आशास्यमानः ॥ क्विप्प्रत्यये तु तस्यापि भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आशीः । आशिषौ । आशिषः । च्चिया-शीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षमिति निपातनाद्वा सिद्धम् ॥

शा हौ ॥ ३५ ॥

शासो हौ परतः शा इत्ययमादेशो भवति। अनुशाधि। प्रशाधि।उपधाया इति निवृत्तं ततः शास इति स्थानेयोगा षष्ठी भवति । क्ङितीत्येतदपि निवृत्तम् । तेन यदा वा छन्दसीति पित्त्वं हिशब्दस्य तदाप्यादेशो भवत्येव । शाधीत्याद्युदात्तमपि छन्दसि दृश्यते ॥

हन्तेर्जः ॥ ३६ ॥

हन्तेर्द्धातोर्ज इत्ययमादेशो भवति हौ परतः । जहि शत्रून् ॥

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलो-पोऽझलि क्ङिति ॥ ३७ ॥

अनुदात्तोपदेशानामङ्गानां वनतेस्तनोत्यादीनां चानुनासिकलोपो भवति झलादौ क्ङिति प्रत्यये परतः । यमु । यत्वा । यतः । यतवान् । यतिः । रमु । रत्वा । रतः । रतवान् । रतिः । अनुदात्तोपदेशा अनुनासिकान्ता यमिरमिन-मिगमिहनिमन्यतयः । वनति । वतिः । क्तिनो रूपमेतत् । क्तिचि तु न क्तिचि दीर्घश्चेति भवति । अन्यत्र झलादाविटा भवितव्यम् । तनोत्यादयः । ततः । ततवान् * । सनोतेरात्वं वक्ष्यति । क्षणु । क्षतः । क्षतवान् । ऋणु । ऋतः । ऋतवान् । तृणु । तृतः । तृतवान् । घृणु । घृतः । घृतवान् । वनु । वतः । वतवान् । मनु । मतः । मतवान् । ङिति । अतत । अतथाः । अनुदात्तोपदेशवनतित-नोत्यादीनामिति किम् । शान्तः । शान्तवान् । तान्तः । तान्तवान् । दान्तः । दान्तवान् । अनुनासिकस्येति किम् । पक्वः । पक्ववान् । झलीति किम् । गम्यते । रम्यते । क्ङितीति किम् । यन्ता । यन्तव्यम् । उपदेशग्रहणं किम् । इह च यथा स्यात् । गतिः । इह च मा भूत् । शान्तः । शान्तवानिति ॥

वा ल्यपि ॥ ३८ ॥

ल्यपि परतो ऽनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वा भवति । व्यवस्थितविभाषा चेयं, तेन मकारान्तानां विकल्पो भवति । अन्यत्र नित्यमेव लोपः । प्रयत्य । प्रयम्य । प्ररत्य । प्ररम्य । प्रणत्य । प्रणम्य । आगत्य । आगम्य । आहत्य । प्रमत्य । प्रवत्य । प्रतत्य ॥

* तत्वा ततिरित्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

न क्तिचि दीर्घश्च ॥ ३९ ॥

क्तिचि परतो ऽनुदात्तोपदेशादीनामनुनासिकलोपो दीर्घश्च न भवति। यन्तिः। वन्तिः। तन्तिः। अनुनासिकलोपे प्रतिषिद्धे ऽनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङितीति दीर्घः प्राप्नोति सोपि प्रतिषिध्यते॥

गमः क्वौ ॥ ४० ॥

गमः क्वौ परतो ऽनुनासिकलोपो भवति। अङ्गगत्। कलिङ्गगत्। अध्वगतो हरयः॥ गमादीनामिति वक्तव्यम्॥ * ॥ इहापि यथा स्यात्। संयत्। परीतत्॥ ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम्॥ * ॥ अग्रेगूः। अग्रेभ्रूः॥

विड्वनोरनुनासिकस्यात् ॥ ४१ ॥

विटि वनि च प्रत्यये परतो ऽनुनासिकान्तस्याङ्गस्याकार आदेशो भवति। अब्जाः। गोजाः। ऋतजाः। अद्रिजाः। गोषा इन्दो नृषा असि। कूपखाः। शतखाः। सहस्रखाः। दधिक्राः। अग्रेगा उन्नेतॄणाम्। जनसनखनक्रमगमो विडिति विट् प्रत्ययः। सनोतेरन इति षत्वम्। गोषा इन्दो नृषा असीत्यत्र। वन्। विजावा। अग्रेजावा। अन्येभ्योपि दृश्यन्त इति वनिप् प्रत्ययः। अनुनासिकस्येति वर्त्तमाने पुनरनुनासिकग्रहणमनुनासिकमात्रपरिग्रहार्थम्। अन्यथा ह्यनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामेव स्यात्॥

जनसनखनां सञ्झलोः ॥ ४२ ॥

झलिति चानुवर्त्तते। जन सन खन इत्येतेषामङ्गानां सनि झलादौ क्ङिति झलादौ प्रत्यये परत आकार आदेशो भवति। जन्। जातः। जातवान्। जातिः। सन्। सनि। सिषासति। सातः। सातवान्। सातिः। खन्। खातः। खातवान्। खातिः। झल्ग्रहणं सन्विशेषणार्थं किमर्थमनुवर्त्त्यते, इह मा भूत्। जिजनिषति। सिसनिषति। चिखनिषति। सनोतेः सनीवन्तर्द्धेति पक्षे इडागमः। तदिह सनोत्यर्थमेव सन्ग्रहणम्। अत्र झलादौ क्ङिति सनोतेर्विप्रतिषेधाद् आत्वमनुनासिकलोपं बाधते। घुमास्थागापाजहातिसां हलीति हल्ग्रहणं ज्ञापकमस्मिन्नासिद्धप्रकरणे विप्रतिषेधो भवतीति॥

ये विभाषा ॥ ४३ ॥

यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतो जनसनखनामाकार आदेशो भवति विभाषा। जायते। जन्यते। जाजायते। जञ्जन्यते। सायते। सन्यते। सासायते। संसन्यते। खायते। खन्यते। चाखायते। चङ्खन्यते। जनेः श्यनि ज्ञाजनोर्जा इति नित्यं जादेशो भवति॥

तनोतेर्यकि ॥ ४४ ॥

तनोतेर्यकि परतो विभाषा आकार आदेशो भवति । तायते । तन्यते । यकीति किम् । तन्तन्यते ॥

सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ४५ ॥

सनोतेरङ्गस्य क्तिचि प्रत्यये परत आकार आदेशो भवति लोपश्चास्यान्यतरस्याम् । सातिः । सन्तिः । सतिः । अन्यतरस्यांग्रहणं विस्पष्टार्थम् । येसंबद्धं हि विभाषाग्रहणमिह निवृत्तमित्याशङ्केत ॥

आर्द्धधातुके ॥ ४६ ॥

आर्द्धधातुकइत्यधिकारो न ल्यपीति प्रागेतस्माद्यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्याम आर्द्धधातुकइत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । अतो लोपः । चिकीर्षिता । जिहीर्षिता । आर्द्धधातुकइति किम् । भवति । भवतः । अदिप्रभृतिभ्यः शपो लुग्वचनं प्रत्ययलोपलक्षणप्रतिषेधार्थं स्यादित्येतच्च ज्ञापकं शपो लोपाभावस्य । यस्य हलः । बेभिदिता । बेभिदितुम् । बेभिदितव्यम् । आर्द्धधातुकइति किम् । बेभिद्यते । णेरनिटि । कारणा । हारणा । आर्द्धधातुकइति किम् । कारयति । हारयति । आतो लोपः । ययतुः । ययुः । ववतुः । ववुः । आर्द्धधातुकइति किम् । यान्ति । वान्ति । घुमास्थागापाजहातिसां हलि । दीयते । धीयते । आर्द्धधातुकइति किम् । अदाताम् । अधाताम् । वान्यस्य संयोगादेः । स्नेयात् । स्नायात् । आर्द्धधातुकइति किम् । स्नायात् । आशीर्लिङोन्यत्र न भवति । स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्म्मणोरुपदेशे ऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च । कारिषीष्ट । हारिषीष्ट । आर्द्धधातुकइति किम् । क्रियेत । ह्रियेत । यगन्तस्याजन्तत्वाच्चिण्वद्भावे सति वृद्धिः स्यात्, ततश्च युक् प्रसज्येत ।

अतो लोपो यलोपश्च णिलोपश्च प्रयोजनम् ।
आल्लोप इत्वमेत्वं च चिण्वद्भावश्च सीयुटि ॥

भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् ॥ ४७ ॥

भ्रस्जो रेफस्योपधायाश्च रमन्यतरस्यां भवति । रोपधयोरिति स्थानषष्ठीनिर्द्देशादुपधा रेफश्च निवर्त्तते । मित्त्वाच्चायमचोन्त्यात्परो भवति । भ्रष्टा । भर्ष्टा । भ्रष्टुम् । भर्ष्टुम् । भ्रष्टव्यम् । भर्ष्टव्यम् । भ्रज्जनम् । भर्ज्जनम् । भृष्टः भृष्टवान् इत्यत्र पूर्वविप्रतिषेधेन संप्रसारणं भवति । उपदेशइत्येव । बरीभृज्यते ॥

अतो लोपः ॥ ४८ ॥

अकारान्तस्यार्द्धधातुके लोपो भवति । चिकीर्षिता । चिकीर्षितुम् । चिकीर्षितव्यम् । धिनुतः । कृणुतः । अत इति किम् । चेता । स्तोता । तपरकरणं किम् । याता । वाता । आर्द्धधातुकइति किम् । वृक्षत्वम् ।

वृत्तता ॥ वृद्धिदीर्घाभ्यामतो लोपः पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । चिकीर्ष्यते । जिहीर्ष्यते ॥

यस्य हलः ॥ ४९ ॥

हल उत्तरस्य यशब्दस्यार्द्धधातुके लोपो भवति । बेभिदिता । बेभिदितुम् । बेभिदितव्यम् । यस्येति संघातग्रहणमेतत् । तत्रालोन्त्यस्येत्येतन्न भवत्यतो लोप इत्यनेनैव तस्य सिद्धत्वात् । हल इति वा पञ्चमीनिर्द्देशस्तत्रादेः परस्येति यकारोनेन लुप्यते । संघातग्रहणं किम् । इर्ष्यिता । मव्यिता । हल इति किम् । लोलूयिता । पोपूयिता ॥

क्यस्य विभाषा ॥ ५० ॥

क्यस्य हल उत्तरस्य विभाषा लोपो भवति आर्द्धधातुके । समिध्यिता । समिधिता । दृषद्यिता । दृषदिता । समिधमात्मन इच्छति, समिधइवाचरति, इति वा क्यच्क्यङौ यथायोगं कर्त्तव्यौ ॥

णेरनिटि ॥ ५१ ॥

अनिडादावार्द्धधातुके णेर्लोपो भवति । इयङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घाणामपवादः । अततक्षत् । अररक्षत् । आशिशत् । आटिटत् । कारणा । हारणा । कारकः । हारकः । कार्यते । हार्यते । ज्ञीप्सति । अनिटीति किम् । कारयिता । हारयिता ॥

निष्ठायां सेटि ॥ ५२ ॥

निष्ठायां सेटि परतो णेर्लोपो भवति । कारितम् । हारितम् । गणितम् । लक्षितम् । सेटीति किम् । संज्ञपितः पशुः । इड्ग्रहणसामर्थ्यादिह पूर्वेणापि न भवति । सनीवन्तर्द्धेति ज्ञपेरिटि विकल्पिते यस्य विभाषेति निष्ठायां प्रतिषेधः । अथ पुनरेकाच इति तत्रानुवर्त्तते तदा नित्यमत्र भवितव्यमेवेडागमेनेति । सेड्ग्रहणमनर्थकं तत् क्रियते कालावधारणार्थम् इडागमे कृते णिलोपो यथा स्यात् । अकृते हि तत्र णिलोपे सति कारितमित्यत्र एकाच उपदेशे ऽनुदात्तादितीटः प्रतिषेधः प्रसज्येत ॥

जनिता मन्त्रे ॥ ५३ ॥

जनितेति मन्त्रविषये इडादौ णिलोपो निपात्यते । यो नः पिता जनिता । मन्त्रइति किम् । जनयिता ॥

शमिता यज्ञे ॥ ५४ ॥

यज्ञकर्म्मणि शमितेति इडादौ णिलोपो निपात्यते । शृतं हविः शमितः । वृचि संबुद्ध्यन्तमेतत् । यज्ञइति किम् । शृतं हविः शमयितः ॥

अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ ५५ ॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु इत्येतेषु परतो णेरयादेशो भवति । कारयांचकार । हारयांचकार । अन्त । गण्डयन्तः । मण्डयन्तः । आलु । स्पृहयालुः । आय्य । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यः । इत्नु । स्तनयित्नुः । इष्णु । पोषयिष्णवः * । नेति वक्तव्ये अयादेशवचनमुत्तरार्थम् ॥

ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ ५६ ॥

ल्यपि परतो लघुपूर्वादुत्तरस्य णेरयादेशो भवति । प्रशमय्य गतः । संदमय्य गतः । प्रबेभिदय्य गतः । प्रगणय्य गतः । ह्रस्वयलोपाल्लोपानामसिद्धत्वं न भवत्यसामानाश्रयत्वात् । ह्रस्वादयो हि णौ ल्यपि णेरयादेशो भवति । लघुपूर्वादिति किम् । प्रपात्य गतः ॥

विभाषा ऽऽपः ॥ ५७ ॥

आप उत्तरस्य णेर्ल्यपि परतो विभाषा ऽयादेशो भवति । प्रापय्य गतः । प्राप्य गतः । इङादेशस्य लाक्षणिकत्वान्न भवति । अध्याप्य गतः ॥

युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ ५८ ॥

यु प्लु इत्येतयोर्ल्यपि परतश्छन्दसि विषये दीर्घो भवति । दान्त्यनुपूर्वं वियूय । यत्रा यो दक्षिणा परिप्लूय । छन्दसीति किम् । संयुत्य । आप्लुत्य ॥

क्षियः ॥ ५९ ॥

क्षियश्च दीर्घो भवति ल्यपि परतः । प्रक्षीय ॥

निष्ठायामण्यदर्थे ॥ ६० ॥

ण्यतः कृत्यस्यार्थौ भावकर्म्मणी ताभ्यामन्यत्र या निष्ठा तस्यां क्षियो दीर्घो भवति । आक्षीणः । प्रक्षीणः । परिक्षीणः । अकर्म्मकत्वात् क्षियः कर्त्तरि क्तः । प्रक्षीणमिदं देवदत्तस्येति क्तो ऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्य इत्यधिकरणे क्तः । अण्यदर्थइति किम् । अक्षितमसि मामेक्षेष्ठाः । क्षितमिति भावे दीर्घाभावात् क्षियो दीर्घादिति निष्ठानत्वमपि न भवति ॥

वा ऽऽक्रोशदैन्ययोः ॥ ६१ ॥

आक्रोशे गम्यमाने दैन्ये च क्षियो निष्ठायामण्यदर्थे वा दीर्घो भवति । क्षितायुरेधि । क्षीणायुरेधि । दैन्ये । क्षितकः । क्षीणकः । क्षितोयं तपस्वी । क्षीणोयं तपस्वी ॥

* पारयिष्णव इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्म्मणोरुपदेशे ऽज्झन-ग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ ६२ ॥

स्य सिच् सीयुट् तासि इत्येतेषु भावकर्म्मविषयेषु परत उपदेशे ऽज-न्तानामङ्गानां हन् ग्रह दृश् इत्येतेषां च चिण्वत्कार्यं भवति वा । यदा चिण्वत् तदा इडागमो भवति । कस्य । स्यसिचसीयुट्तासीनामेवेति वेदितव्यम् । ते हि प्रकृताः । अङ्गस्य तु लक्ष्यविरोधान्न क्रियते । कानि पुनरस्य योगस्य प्रयोजनानि ॥

चिण्वद् वृद्धिर्युक्च हन्तेश्च घत्वं दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति ।
इट् चासिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वल्निमित्तोविघाती ॥

अजन्तानां तावत् । चायिष्यते । चेष्यते । अचायिष्यत । अचेष्यत । दायिष्यते । दास्यते । अदायिष्यत । अदास्यत । शामिष्यते । शमिष्यते । शमयिष्यते । अशामिष्यत । अशमिष्यत । अशमयिष्यत । हन् । घानिष्यते । हनिष्यते । अघानिष्यत । अहनिष्यत । ग्रह । ग्राहिष्यते । ग्रहीष्यते । अग्राहिष्यत । अग्रहीष्यत । ग्रहो ऽलिटि दीर्घे इति प्रकृतस्येटो दीर्घत्वम् । दृश् । दर्शिष्यते । द्रक्ष्यते । अदर्शिष्यत । अद्रक्ष्यत । सिच्यजन्तानाम् । अचायिषाताम् । अचेषाताम् । अदायिषाताम् । अदिषाताम् । अशामिषाताम् । अशमिषाताम् । हन् । अघानिषाताम् । अवधिषाताम् । अहसाताम् । ग्रह् । अग्राहिषाताम् । अग्राहिषाताम् । अग्रहीषाताम् । दृश् । अदर्शिषाताम् । अदृक्षाताम् । सीयुटि । अजन्तानाम् । चायिषीष्ट । चेषीष्ट । दायिषीष्ट । दासीष्ट । शामिषीष्ट । शमिषीष्ट । हन् । घानिषीष्ट । वधिषीष्ट । ग्रह् । ग्राहिषीष्ट । ग्रहिषीष्ट । दृश् । दर्शिषीष्ट । दृक्षीष्ट । तासावजन्तानाम् । चायिता । चेता । दायिता । दाता । शामिता । शमिता । हन् । घानिता । हन्ता । ग्रह् । ग्राहिता । ग्रहीता । दृश् । दर्शिता । द्रष्टा । स्यसिच्सीयुट्तासिष्विति किम् । चेतव्यम् । दातव्यम् । भावकर्म्मणोरिति किम् । चेष्यति । दास्यति । उपदेशइति किम् । कारिष्यतइति गुणे कृते रपरत्वे च न प्राप्नोति । उपदेशग्रहणाद् भवति । अज्झनग्रहदृशामिति किम् । पठिष्यते । अङ्गाधिकारविहितं कार्यमिहातिदिश्यते । तेन हनिणिङामादेशा न भवन्ति । हनिष्यते । घानिष्यते । एष्यते । आयिष्यते । अध्येष्यते । अध्यायिष्यते । हनो वध लिङि लुङि च इणो गा लुङि विभाषा लुङ्लृङोरित्येते विधयो न भवन्ति ॥

दीङो युडचि क्ङिति ॥ ६३ ॥

दीङो युडागमो भवति अजादौ क्ङिति प्रत्यये परतः । उपदिदीये ।

उपदिदीयाते । उपदिदीयिरे । दीङ इति पञ्चमीनिर्देशादजादेर्युडागमो भवति । विधानसामर्थ्याच्च एरनेकाच इति यणादेशे कर्त्तव्ये तस्यासिद्धत्वं न भवति । अचीति किम् । उपदेदीयते । ङ्कितीति किम् । उपदानम् ॥

आतो लोप इटि च ॥ ६४ ॥

इडादावार्द्धधातुके क्ङिति चाकारान्तस्याङ्गस्य लोपो भवति । इटि । पपिथ । तस्थिथ । क्ङिति । पपतुः । पपुः । तस्थतुः । तस्थुः । गोदः । कम्बलदः । ङिति । प्रदा । प्रधा । आर्द्धधातुकइत्येव । यान्ति । वान्ति व्यत्यरे । व्यत्यले । रातेर्लातेश्च लङि इटि रूपम् । अचीत्येव । ग्लायते । दासीय ॥

ईद्यति ॥ ६५ ॥

ईकार आदेशो भवति आकारान्तस्याङ्गस्य यति परतः । देयम् । धेयम् । हेयम् । स्तेयम् ॥

घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ ६६ ॥

घुसंज्ञकानामङ्गानां मा स्था गा पा जहाति सा इत्येतेषां हलादौ क्ङिति प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति । दीयते । धीयते । देदीयते । देधीयते । मीयते । मेमीयते । स्थीयते । तेष्ठीयते । गीयते । जेगीयते । अध्यगीष्ट । अध्यगीषाताम् । अध्यगीषत । पीयते । पेपीयते । पातेरिह ग्रहणं नास्ति लुग्विकरणत्वात् । पायतइत्येव तस्य भवति । हीयते । जेहीयते । जहातेरिह निर्देशाद् जिहीतेर्ग्रहणं न भवति । हायते । षो ऽन्तकर्मणि । अवसीयते । अवसेषीयते । हलीति किम् । ददतुः । ददुः । आतो लोपाद्धि परत्वादीत्वं स्यात् । एतदेव हल्ग्रहणं ज्ञापकमस्मिन् प्रकरणे विप्रतिषेधेनासिद्धत्वं भवति । क्ङितीत्येव । दाता । धाता ॥

एर्लिङि ॥ ६७ ॥

घुमास्थागापाजहातिसामङ्गानां लिङि परत एकारादेशो भवति । देयात् । मेयात् । धेयात् । स्थेयात् । गेयात् । पेयात् । अवसेयात् । क्ङितीत्येव । दासीष्ट । धासीष्ट ॥

वा ऽन्यस्य संयोगादेः ॥ ६८ ॥

घ्वादिभ्यो ऽन्यस्य संयोगादेराकारान्तस्य वा एकारादेशो भवति लिङि परतः । ग्लेयात् । ग्लायात् । म्लेयात् । म्लायात् । अन्यस्येति किम् । स्थेयात् । संयोगादेरिति किम् । यायात् । क्ङितीत्येव । ग्लासीष्ट । अङ्गस्येत्येव । निर्वायात् ॥

न ल्यपि ॥ ६९ ॥

ल्यपि प्रत्यये परतो घुमास्थागापाजहातिसां यदुक्तं तच्च । प्रदाय । प्रधाय । प्रमाय । प्रस्थाय । प्रगाय । प्रपाय । प्रहाय । अवसाय ॥

मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ ७० ॥

मयतेरिकारादेशो भवति ल्यपि परतः । अपमित्य । अपमाय ॥

लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ ७१ ॥

लुङ् लङ् लृङ् इत्येतेषु परतोऽङ्गस्याडागमो भवति, उदात्तश्च स भवति । लुङ् । अकार्षीत् । अहार्षीत् । लङ् । अकरोत् । अहरत् । लृङ् । अकरिष्यत् । अहरिष्यत् ॥

आडजादीनाम् ॥ ७२ ॥

आडागमो भवत्यजादीनां लुङ्लङ्लृङ्षु परत उदात्तश्च स भवति । ऐक्षिष्ट । ऐहिष्ट । औब्जीत् । औम्भीत् । लङ् । ऐक्षत । ऐहत । औब्जत् । औम्भत् । लृङ् । ऐक्षिष्यत । ऐहिष्यत । औब्जिष्यत । औम्भिष्यत् । इह ऐज्यत औप्यत औह्यतेति लङि कृते लावस्थायामडागमादन्तरङ्गत्वाल्लादेशः क्रियते तत्र कृते विकरणो नित्यत्वादडागमं बाधते शब्दान्तरप्राप्तेरडागमस्यानित्यत्वं, कृते हि विकरणान्तस्याङ्गस्य तेन भवितव्यम्, अकृते तु धातुमात्रस्य शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति । ननु शब्दान्तरादिति विकरणोऽनित्यः । विकरणे कृते संप्रसारणमडागमाचित्यत्वादेव भवति संप्रसारणे च कृते ऽजाद्यङ्गं जातमिति आडजादीनामित्याडागमः ॥

छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७३ ॥

छन्दसि विषये आडागमो दृश्यते । यत्र हि विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते । आडजादीनामित्युक्तमनजादीनामपि दृश्यते । सुरुचो वेन आवः । आनक् । आयुनक् । आवदति वृञो लुङि मन्त्रे घसह्वरेति लेर्लुकि कृते च भवति । तथा आनगिति नशेः । आयुनगिति युजेर्लङि ॥

न माङ्योगे ॥ ७४ ॥

माङ्योगे लुङ्लङ्लृङ्क्षु यदुक्तं तच्च भवति । मा भवान् कार्षीत् । मा भवान् हार्षीत् । मा स्म करोत् । मा स्म हरत् । मा भवानीहिष्ट । मा भवानीक्षिष्ट । मा स्म भवानीहत । मा स्म भवानीक्षत ॥

बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ॥ ७५ ॥

छन्दसि विषये माङ्योगेऽपि बहुलमडाटौ भवतः । अमाङ्योगेऽपि न भवतः । अमाङ्योगे तावत् । जनिष्ठा उग्रः । काममूनयीत् । काममर्द्दयीत् । माङ्योगेऽपि भवतः । मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः । मा अभित्थाः । मा आवः ॥

इरयो रे ॥ ७६ ॥

इरे इत्येतस्य छन्दसि विषये बहुलं रे इत्ययमादेशो भवति । गर्भं प्रथमं दध्रआपः । या ऽस्य परिदध्रे । धाञो रेभावस्यासिद्धत्वादातो लोपो भवति । न च भवति । परमाया धियोग्निकर्म्माणि चक्रिरे । अत्र रेशब्दस्य सेटां धातूनामिटि कृते पुना रेभावः क्रियते तदर्थमिरयोरित्ययं द्विवचननिर्द्देशः ॥

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ ७७ ॥

श्नुप्रत्ययान्तस्याङ्गस्य धातोरिवर्णोवर्णान्तस्य भ्रु इत्येतस्य इयङ् उवङ् इत्येतावादेशौ भवतो ऽचि परतः । आप्नुवन्ति । राध्नुवन्ति । शक्नुवन्ति । धातोः । चिक्षियतुः । चिक्षियुः । लुलुवतुः । लुलुवुः । नियौ । नियः । लुवौ । लुवः । भ्रुवौ । भ्रुवः । अचीति किम् । आप्नुयात् । शक्नुयात् । राध्नुयात् । श्नुधातुभ्रुवामिति किम् । लक्ष्म्यै । वध्वै । य्वोरिति किम् । चक्रतुः । चक्रुः । इयङुवङ्भ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन । चयनम् । चायकः । लवनम् । लावकः ॥ इयङुवङ्प्रकरणे तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ तन्वं पुषेम । तनुवं पुषेम । विषुवं पुषेम । स्वर्गो लोकः । सुवर्गो लोकः । त्र्यम्बकं यजामहे । त्रियम्बकं यजामहे ॥

अभ्यासस्यासवर्णे ॥ ७८ ॥

अभ्यासस्येवर्णोवर्णान्तस्यासवर्णे ऽचि परत इयङ् उवङ् इत्येतावादेशौ भवतः । इयेष । उवोष । इयर्त्ति । असवर्णइति किम् । ईषतुः । ईषुः । ऊषतुः । ऊषुः । अचीत्येव । इयाय । उवाप ॥

स्त्रियाः ॥ ७९ ॥

स्त्री इत्येतस्याजादौ प्रत्यये परत इयङादेशो भवति । स्त्री । स्त्रियौ । स्त्रियः । स्त्रीणामित्यत्र परत्वान्नुडागमः । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

वा ऽम्शसोः ॥ ८० ॥

अमि शसि परतः । स्त्रिया वा इयङादेशो भवति । स्त्रीं पश्य । स्त्रियं पश्य । स्त्रीः पश्य । स्त्रियः पश्य ॥

इणो यण् ॥ ८१ ॥

इणोऽङ्गस्य यणादेशो भवति अचि परतः । यन्ति । यन्तु । आयन् । इयङादेशापवादोयम् । मध्येपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्तइति गुणवृद्धिभ्यां परत्वाद् बाध्यते । अयनम् । आयकः ॥

एरनेकाचो ऽसंयोगपूर्वस्य ॥ ८२ ॥

धातोरिति वर्त्तते तेन संयोगो विशेष्यते । धातोरवयवः संयोगः पूर्वो यस्मादिवर्णाच्च भवति असावसंयोगपूर्वस्तदन्तस्याङ्गस्यानेकाचोऽचि परतो यणादेशो भवति । निन्यतुः । निन्युः । उन्न्यौ । उन्न्यः । ग्रामण्यौ । ग्रामण्यः । एरिति किम् । असंयोगपूर्वग्रहणमिवर्णविशेषणं यथा स्याद् अङ्गविशेषणं मा भूदिति । लुलुवतुः, लुलुवुः । इत्येतत्त्वोः सुपीति नियमादपि सिध्यति । अनेकाच इति किम् । नियौ । नियः । असंयोगपूर्वस्येति किम् । यवक्रियौ । यवक्रियः । धातुना संयोगविशेषणं किम् । इहापि स्याद् । उन्न्यौ । उन्न्य इति ॥ गतिकारकाभ्यामन्यपूर्वस्य नेष्यते ॥ परमनियौ । परमनिय इति ॥

ओः सुपि ॥ ८३ ॥

धात्ववयवः संयोगः पूर्वो यस्मादुवर्णाच्च भवति तदन्तस्याङ्गस्यानेकाचोऽजादौ सुपि परतो यणादेशो भवति । खलप्वौ । खलप्वः । शतस्वौ । शतस्वः । सकृल्ल्वौ । सकृल्ल्वः । सुपीति किम् । लुलुवतुः । लुलुवुः । अनेकाच इत्येव । लुवौ । लुवः । असंयोगपूर्वस्येत्येव । कटप्रुवौ । कटप्रुवः । गतिकारकाभ्यामन्यपूर्वस्य नेष्यतइत्येव । परमलुवौ । परमलुवः ॥

वर्षाभ्वश्च ॥ ८४ ॥

वर्षाभू इत्येतस्याजादौ सुपि परतो यणादेशो भवति । वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः ॥ पुनर्भ्वश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पुनर्भ्वौ । पुनर्भ्वः ॥ कारापूर्वस्यापीष्यते ॥ काराभ्वौ । काराभ्वः ॥

न भूसुधियोः ॥ ८५ ॥

भू सुधी इत्येतयोर्यणादेशो न भवति । प्रतिभुवौ । प्रतिभुवः । सुधियौ । सुधियः ॥

छन्दस्युभयथा ॥ ८६ ॥

छन्दसि विषये भू सुधी इत्येतयोरुभयथा दृश्यते । वनेषु चित्रं विभ्वं विशे । विशे विभुवम् । सुध्यो हव्यमग्ने । सुधियो हव्यमग्ने ॥

हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ ८७ ॥

हु इत्येतस्याङ्गस्य श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽसंयोगपूर्वस्याजादौ सार्वधातुके परतो यणादेशो भवति । जुह्वति । जुह्वतु । अजुह्वन् । सुन्वन्ति । सुन्वन्तु । असुन्वन् । हुश्नुवोरिति किम् । योयुवति । रोरुवति । इदमेव हुश्नुग्रहणं ज्ञापकं भाषायामपि यङ्लुगस्तीति । छन्दसि छन्दस्युभयथेत्यार्द्धधातुकत्वादेव यणादेशस्याप्रसङ्गः । न च यङ्लुगन्तादन्यत् प्रत्युदाहरणमुवर्णा-

न्तमनेकाजसंयोगपूर्वे सार्वधातुके विद्यते । सार्वधातुकइति किम् । जुहुवतुः । जुहुवुः । असंयोगपूर्वस्येत्येव । आप्नुवन्ति । राध्नुवन्ति ॥

भुवो वुग्लुङ्लिटोः ॥ ८८ ॥

भुवो वुगागमो भवति लुङि लिटि चाजादौ परतः । अभूवन् । अभूवम् । लिट् । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ॥

ऊदुपधाया गोहः ॥ ८९ ॥

गोहो ऽङ्गस्य उपधाया ऊकारादेशो भवति अजादौ प्रत्यये परतः । निगूहति । निगूहकः । साधुनिगूही । निगूहम् । निगूहन्ति । गूहो वर्त्तते । उपधाया इति किम् । अन्त्यस्य मा भूत् । गोह इति विकृतग्रहणं विषयार्थम् * । यत्रास्यैतद्रूपं तत्रैव यथा स्यादिह मा भूत् । निजुगुहतुः । निजुगुहुः । अयादेशप्रतिषेधार्थं च के चिदिच्छन्ति । निगूह्य गत इत्यूत्वस्यासिद्धत्वाद् ल्यपि लघुपूर्वादित्ययादेशः स्यात् । व्याश्रय त्वादेवासिद्धत्वमत्र नास्ति । णावूत्वं ण्यन्तस्य च ल्यप्ययादेश इति । अचीत्येव । निगोढा । निगोढुम् ॥

दोषो णौ ॥ ९० ॥

दोष उपधाया ऊकार आदेशो भवति णौ परतः । दूषयति । दूषयतः । दूषयन्ति । विकृतग्रहणं प्रक्रमभेदार्थम् । पूर्वत्र हि गोह इत्युक्तम् † । णाविति किम् । दोषो वर्त्तते ॥

वा चित्तविरागे ॥ ९१ ॥

चित्तविकारार्थे दोष उपधाया वा ऊकारादेशो भवति णौ परतः । चित्तं दूषयति । चित्तं दोषयति । प्रज्ञां दूषयति । प्रज्ञां दोषयति ॥

मितां ह्रस्वः ॥ ९२ ॥

मितो धातवो घटादयो मित इत्येवमादयो ये प्रतिपादितास्तेषामुपधाया ह्रस्वो भवति णौ परतः । घटयति । व्यथयति । जनयति । रजयति । शमयति । ज्ञपयति । के चिदत्र वेत्यनुवर्त्तयन्ति सा च व्यवस्थितविभाषा, तेन उत्क्रामयति संक्रामयतीत्येवमादि सिद्धं भवति ॥

चिण्णमुलोर्दीर्घो ऽन्यतरस्याम् ॥ ९३ ॥

चिण्परे णमुल्परे च णौ परतो मितामङ्गानामुपधाया दीर्घो भवति अन्यतरस्याम् । अशमि । अशामि । अतमि । अतामि । शमंशमम् । शामंशामम् । तमंतमम् । तामंतामम् । दीर्घग्रहणं किं, न ह्रस्वविकल्प एव विधी-

* विषयनियमार्थमिति क्व चित्पाठः ।
† णावीद्गृस्येव संभवादित्यधिकमेकस्मिन् पुस्तके ।

यते। नैवं शक्यं, शमयन्तं प्रयुङ्क्ते इति द्वितीये णिचि ह्रस्वविकल्पो न स्यात्। णिलोपस्य स्थानिवद्भावाद्, दीर्घविधौ त्वजादेशो न स्थानिवत्। शमयन्तं प्रयुक्तवान्। अशमि। अशामि। शमंशमम्। शामंशामम्। शंशमयतेः, अशंशमि। अशंशामि। शंशमम्। शंशामम्। योऽसौ णौ णिर्लुप्यते यङ्काराश्च तयोर्दीर्घविधौ आदेशो न स्थानिवद्भवतीति अस्थानिवद्भावाद्दीर्घः सिद्धो भवति, ह्रस्वविकल्पे तु विधीयमाने स्थानिवद्भावः स्यात्। णिच्यन्ते यङ्यन्ते त्वसिद्धिरेव। व्याश्रयत्वादसिद्धत्वमपि नास्ति। णौ हि णियङोर्लोपः चिण्णमुल्परे णावङ्गस्य दीर्घत्वम्॥

खचि ह्रस्वः॥ ९४॥

खच्परे णौ परतो ह्रस्वो भवत्यङ्गस्योपधायाः। द्विषंतपः। परंतपः। पुरंदरः॥

ह्लादो निष्ठायाम्॥ ९५॥

ह्लादो ऽङ्गस्योपधाया ह्रस्वो भवति निष्ठायां परतः। प्रह्लन्नः। प्रह्लन्नवान्। निष्ठायामिति किम्। प्रह्लादयति। ह्लाद इति योगविभागः क्रियते। क्तिन्यपि यथा स्यात्। प्रह्लत्तिरिति *॥

छादेर्घे ऽद्व्युपसर्गस्य॥ ९६॥

छादेरङ्गस्या द्व्युपसर्गस्य घप्रत्यये परत उपधाया ह्रस्वो भवति। उरश्छदः। प्रच्छदः। दन्तच्छदः। णिलोपस्यासिद्धत्वं स्थानिवद्भावो वा वचनसामर्थ्यादत्र न भवतीति ह्रस्वभाविन्युपधा भवति। अद्व्युपसर्गस्येति किम्। समुपच्छादः॥ अद्विप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम्॥ *॥ समुपातिच्छादः। उत्तरा हि संख्या पूर्वसंख्याकृतं व्यपदेशं निवर्त्तयति। नहि त्रिपुत्रो द्विपुत्र इति व्यपदिश्यते॥

इस्मन्त्रन्क्विषु च॥ ९७॥

इस् मन् त्रन् क्वि इत्येतेषु परतश्छादेरुपधाया ह्रस्वो भवति। छदिः। छद्म। छत्रम्। धामच्छत्। उपच्छत्॥

गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि॥ ९८॥

गम हन जन खन घस इत्येतेषामङ्गानामुपधाया लोपो भवत्यजादौ प्रत्यये क्ङित्यनङि परतः। जग्मतुः। जग्मुः। जघ्नतुः। जघ्नुः। जज्ञे। जज्ञाते। जज्ञिरे। चख्नतुः। चख्नुः। जक्षतुः। जक्षुः। अक्षन्नमीमदन्त पितरः। क्ङितीति किम्। गमनम्। हननम्। अनङीति किम्। अगमत्। अघसत्। अचीत्येव। गम्यते। हन्यते॥

* ह्लाद इति योगविभाग इत्यारभ्य प्रह्लत्तिरित्यन्तः पाठो बहुषु पुस्तकेषु नास्ति।

तनिपत्योश्छन्दसि ॥ ९९ ॥

तनि पति इत्येतयोश्छन्दसि विषये उपधाया लोपो भवति अजादौ क्ङिति प्रत्यये परतः । वितत्निरे कवयः । शकुना इव पप्तिम । छन्दसीति किम् । वितेनिरे पेतिम ॥

घसिभसोर्हलि च ॥ १०० ॥

घसि भस इत्येतयोश्छन्दसि उपधाया लोपो भवति हलादावजादौ च क्ङिति प्रत्यये परतः । सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे । बब्धां ते हरी धानाः । सग्धिरित्यदेः क्तिनि बहुलं छन्दसीति घस्लादेशे उपधाया लोपे च कृते झलो झलीति सकारलोपः । धत्वन्तकारस्य जश्त्वं घकारस्य । ततः समाना ग्धिः सग्धिरिति समासे कृते समानस्य सभावः । बब्धामिति भसेर्लोटि ताम्ि श्लौ द्विर्वचने कृते उपधालोपसलोपधत्वजश्त्वानि कर्त्तव्यानि । द्विर्वचनात्पर-त्वान्नित्यत्वाच्च उपधालोपः प्राप्नोति छान्दसत्वात् स तथा न क्रियते । अजादौ । बप्सति । क्ङितीत्येव । अंशून् बभस्ति ॥

हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ १०१ ॥

हु इत्येतस्माद् झलन्तेभ्यश्चोत्तरस्य हलादेर्हेः स्थाने धिरादेशो भवति । जुहुधि । झलन्तेभ्यः । भिन्द्धि । छिन्द्धि । हुझल्भ्य इति किम् । क्रीणीहि । प्रीणीहि । हेरिति किम् । जुहुताम् । हलीत्येव । रुदिहि । स्वपिहि । इह जुहुतात्, भिन्तात् त्वमिति परत्वात् तातङि कृते सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बा-धितं तद्बाधितमेवेति पुनर्द्धिभावो न भवति । भिन्द्धकि छिन्द्धकीत्यत्र परत्वाद् धिभावे कृते पुनः प्रसङ्गविज्ञानादकच् क्रियते ॥

श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि ॥ १०२ ॥

श्रु शृणु पॄ कृ वृ इत्येतेभ्य उत्तरस्य हेर्धिरादेशो भवति छन्दसि विषये । श्रुधी हवमिन्द्र । शृणुधी गिरः । पूर्द्धि । उरुणस्कृधि । अपावृधि । शृणुधीत्यत्र धिभावविधानसामर्थ्यादुतश्च प्रत्ययादिति हेर्लुग्न भवति । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घत्वम् । अतोऽन्यत्र व्यत्ययो बहुलमिति शप्, तस्य बहुलं छन्दसीति लुक् ॥

अङितश्च ॥ १०३ ॥

अङितश्च हेर्धिरादेशो भवति । वा छन्दसीति पित्त्वेनास्याङित्त्वम् । सोम रारन्धि । अस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्रयन्धि । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः । अङित इति किम् । हव्यं प्रीणीहि । रारन्धीति रमेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् । शपः श्लुरभ्यासदीर्घत्वं छान्दसत्वात् । मलोपाभावश्च अङित्त्वादेव । प्रयन्धीति यमेः शपो लुक् । युयोधीति यौतेः शपः श्लुः ॥

चिणो लुक् ॥ १०४ ॥

चिण उत्तरस्य प्रत्ययस्य लुग्भवति । अकारि । अहारि । अलावि । अपाचि । अकारितराम्, अहारितमामित्यत्र तलोपस्यासिद्धत्वात् तरप्तमपोर्न लुग्भवति, चिणो लुगित्येतद्विषयभेदाद्भिद्यते ॥

अतो हेः ॥ १०५ ॥

अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य हेर्लुग्भवति । पच । पठ । गच्छ । धाव । अत इति किम् । युहि । रुहि । तपरकरणं किम् । लुनीहि । पुनीहि । ईत्वस्यासिद्धत्वादाकार एव भवति ॥

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ॥ १०६ ॥

उकारो यो ऽसंयोगपूर्वस्तदन्तात्प्रत्ययादुत्तरस्य हेर्लुग्भवति । चिनु । सुनु । कुरु । उत इति किम् । लुनीहि । सुनीहि । प्रत्ययादिति किम् । रुहि । युहि । असंयोगपूर्वादिति किम् । प्राप्नुहि । राध्नुहि । तक्ष्णुहि ॥ उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम् ॥ * ॥ उतश्च प्रत्ययादित्यत्र छन्दसि वेति वक्तव्यम् । आतनुहि यातुधानान् । धिनुहि यज्ञपतिम् । तेन मा भागिनं कृणुहि ॥

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ १०७ ॥

योयमुकारो ऽसंयोगपूर्वस्तदन्तस्य प्रत्ययस्यान्यतरस्यां लोपो भवति वकारमकारादौ प्रत्यये परतः । सुन्वः । सुनुवः । सुन्मः । सुनुमः । तन्वः । तनुवः । तन्मः । तनुमः । प्रत्ययस्येत्येव । युवः । युमः । असंयोगपूर्वस्येत्येव । शक्नुवः । शक्नुमः । लुगिति वर्त्तमाने लोपग्रहणमन्त्यलोपार्थम् ॥

नित्यं करोतेः ॥ १०८ ॥

करोतेरुत्तरस्य उकारप्रत्ययस्य वकारमकारादौ प्रत्यये परतो नित्यं लोपो भवति । कुर्व्वः । कुर्म्मः । उकारलोपस्य दीर्घविधावस्थानिवद्भावाद् हलिचेति दीर्घत्वं प्राप्तं न भकुर्छुरामिति प्रतिषिध्यते ॥

ये च ॥ १०९ ॥

यकारादौ च प्रत्यये परतः करोतेरुत्तरस्योकारप्रत्ययस्य नित्यं लोपो भवति । कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः ॥

अत उत्सार्वधातुके ॥ ११० ॥

उकारप्रत्ययान्तस्य करोतेरकारस्य स्थाने उकार आदेशो भवति सार्वधातुके क्ङिति परतः । कुरुतः । कुर्वन्ति । सार्वधातुकग्रहणं किम् । भूतपूर्वेपि सार्वधातुके यथा स्यात् । कुरु । तपरकरणं लघूपधस्य गुणनिवृत्त्यर्थम् । क्ङितीत्येव । करोति । करोषि । करोमि ॥

श्नसोरल्लोपः ॥ १११ ॥

श्नस्यास्तेश्चाकारस्य लोपो भवति सार्वधातुके क्ङिति परतः । रुन्धः । रुन्धन्ति । भिन्तः । भिन्दन्ति । स्तः । सन्ति । क्ङितीत्येव । भिनत्ति । अस्ति । श्नसोरिति पररूपं शकन्ध्वादिषु द्रष्टव्यम् ॥

श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ ११२ ॥

श्ना इत्येतस्याभ्यस्तानां चाङ्गानामाकारस्य लोपो भवति सार्वधातुके क्ङिति परतः । लुनते । लुनताम् । अलुनत * । अभ्यस्तानाम् । मिमते । मिमताम् । अमिमत । संजिहते । संजिहताम् । समजिहत । श्नाभ्यस्तयोरिति किम् । यान्ति । वान्ति । आत इति किम् । बिभ्रति । क्ङितीत्येव । अलुनात् । अजहात् ॥

ई हल्यघोः ॥ ११३ ॥

श्नान्तानामङ्गानामभ्यस्तानां च घुवर्जितानामात ईकारादेशो भवति हलादौ सार्वधातुके क्ङिति परतः । लुनीतः । पुनीतः । लुनीथः । पुनीथः । लुनीते । पुनीते । अभ्यस्तानाम् । मिमीते । मिमीषे । मिमीध्वे । संजिहीते । संजिहीषे । संजिहीध्वे । हलीति किम् । लुनन्ति । मिमते । अघोरिति किम् । दत्तः । धत्तः । क्ङितीत्येव । लुनाति । जहाति ॥

इद्दरिद्रस्य ॥ ११४ ॥

दरिद्रातेर्हलादौ सार्वधातुके क्ङिति परत इकारादेशो भवति । दरिद्रितः । दरिद्रिथः । दरिद्रिवः । दरिद्रिमः । हलीत्येव । दरिद्रति । क्ङितीत्येव । दरिद्राति ॥ दरिद्रातेरार्धधातुके लोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ सिद्धश्च प्रत्ययविधौ भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ दरिद्रातीति दरिद्रः । आकारान्तलक्षणो णप्रत्ययो न भवति पचादित्वादजेव भवति ।

न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते ।

दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा ॥

अद्यतन्यां † वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अदरिद्रीत् । अदरिद्रासीत् । दरिद्रस्येति निर्देशे छान्दसं ह्रस्वत्वं द्रष्टव्यम् ॥

भियोऽन्यतरस्याम् ॥ ११५ ॥

भी इत्येतस्याङ्गस्यान्यतरस्यामिकारादेशो भवति हलादौ क्ङिति सार्वधातुके परतः । बिभितः । बिभीतः । बिभिथः । बिभीथः । बिभिवः ।

---

* पुनते पुनताम् । अपुनत । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† लुङ एषा पूर्वाचार्यसंज्ञा ।

बिभीवः । बिभिमः । बिभीमः । हलीत्येव । बिभ्यति । क्ङितीत्येव । बिभेति । सार्वधातुकइत्येव । भीयते * ॥

जहातेश्च ॥ ११६ ॥

जहातेश्च इकारादेशो भवति अन्यतरस्यां हलादौ क्ङिति सार्वधातुके परतः । जहितः । जहीतः । जहिथः । जहीथः । हलादावित्येव । जहति । क्ङितीत्येव । जहाति । सार्वधातुकइत्येव । हीयते । जेहीयते † । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

आ च हौ ॥ ११७ ॥

जहातेराकारश्चान्तादेशो भवति इकारश्चान्यतरस्यां हौ परतः । जहाहि । जहिहि । जहीहि ॥

लोपो यि ॥ ११८ ॥

लोपो भवति जहातेर्यकारादौ क्ङिति सार्वधातुके परतः । जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः ॥

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ ११९ ॥

घुसंज्ञकानामङ्गानामस्तेश्च एकारादेशो भवति हौ परतोऽभ्यासलोपश्च । देहि । धेहि । अस्तेः । श्नसोरल्लोप इत्यकारलोपः । एधि । शिदयं लोपस्तेन सर्वस्याभ्यासस्य भवति ॥

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ॥ १२० ॥

लिटि परत आदेश आदिर्यस्याङ्गस्य नास्ति तस्य एकहल्मध्ये असहाययोर्हलोर्मध्ये योऽकारस्तस्य एकारादेशो भवति अभ्यासलोपश्च लिटि क्ङिति परतः । रेणतुः । रेणुः । येमतुः । येमुः । पेचतुः । पेचुः । देभतुः । देभुः । अत इति किम् । दिदिवतुः । दिदिवुः । तपरकरणं किम् । ररासे । ररासाते । ररासिरे । एकहल्मध्यइति किम् । ररक्षतुः । ररक्षुः ‡ । तत्सरतुः । तत्सरुः । अनादेशादेरिति किम् । चकणतुः । चकणुः । जगणतुः । बभणतुः । जगणुः । बभणुः । लिट आदेशविशेषणं किम् । इहापि यथा स्यात् । नेमतुः । नेमुः । सेहे । सेहाते । सेहिरे । अनैमित्तिके नत्वसत्वे तदादिर्लिट्यादेशादिर्न भवति । इहाभ्यासजश्त्वचर्त्वयोरसिद्धत्वं नास्ति । तेन तदादि-

---

* हलीत्येवेत्यारभ्य भीयतइत्यन्तं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति । युक्तं चैतत्, पदमञ्जर्यां हलादौ क्ङिति सार्वधातुकइत्येतेषां नात्रोपयोग इत्युक्तत्वात् ।

† सार्वधातुके इत्येव हीयते जेहीयते, इत्येतत्पुस्तकेषु बहुषु नास्ति । पदमञ्जर्यां नास्योपयोग इत्युक्ततयेदमेव युक्तम् ।

‡ इदमयुक्तं संयोगात्परत्वेन लिटः कित्त्वाभावात् ॥

रप्यादेशादिर्भवति । तथा च फलिभजोरेत्वं विधीयते । रूपाभेदे त्वादेशादिर्नाश्रीयतइति शसिदद्योः प्रतिषेधवचनं ज्ञापकम् । अन्यथा हि पेचतुः पेचुः, देमतुः देमुरित्येवमादीनामपि प्रकृतिजश्चरादीनामेत्वं न स्यात् । क्ङितीत्येव । अहं पपच । अहं पपठ ॥ दम्भेरेत्वं वक्तव्यम् ॥ * ॥ देभतुः । देभुः । नलोपस्यासिद्धत्वाच्च प्राप्नोति ॥ नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्यम् ॥ * ॥ अनेशम् । मेनका । अनेशमिति नशेर्लुङि पुषादित्वादङ् । मेनकेति मनेराशिषि चेति वुन् । क्षिपकादिषु प्रक्षेपादित्वं न क्रियते ॥ छन्दस्यमिपचोरप्यलिटि एत्वं वक्तव्यम् ॥ * ॥ व्येमानम् । अमेर्विपूर्वस्य चानशि मुक् न क्रियते । लिङि पेचिरन् । पेचिरन्नित्येतस्य छान्दसं ह्रस्वत्वम् ॥ यजिवप्योश्च ॥ * ॥ आयेजे । आवेपे । यजेर्वपेश्च लङि इटि छन्दस्यपि दृश्यते इत्यनजादेरप्याडागमः ॥

थलि च सेटि ॥ १२१ ॥

थलि च सेटि परतो ऽनादेशादेरङ्गस्य एकहल्मध्यगतस्यातः स्थाने एकार आदेशो भवति अभ्यासलोपश्च । पेचिथ । शेकिथ । सेटीति किम् । पपक्थ । थल्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् । अक्ङिदर्थमेतद्वचनमित्यन्यस्येटो ऽसंभवात् । अत इत्येव । दिदेविथ । एकहल्मध्यगतस्येत्येव । ततक्षिथ । ररक्षिथ । अनादेशादेरित्येव । चकणिथ । बभणिथ ॥

तॄफलभजत्रपश्च ॥ १२२ ॥

तॄ फल भज त्रप इत्येतेषामङ्गानामत एकारादेशो भवति, अभ्यासलोपश्च लिटि क्ङिति परतस्थलि च सेटि । तेरतुः । तेरुः । तेरिथ । फेलतुः । फेलुः । फेलिथ । भेजतुः । भेजुः । भेजिथ । त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे । तरतेर्गुणार्थं वचनम् । फलिभजोरादेशाद्यर्थम् । त्रपेरनेकहल्मध्यार्थम् ॥ श्रन्थेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ श्रेथतुः । श्रेथुः ॥

राधो हिंसायाम् ॥ १२३ ॥

राधो हिंसायामर्थे ऽवर्णस्य एकार आदेशो भवति, अभ्यासलोपश्च लिटि क्ङिति परतस्थलि च सेटि । अपरेधतुः । अपरेधुः । अपरेधिथ । हिंसायामिति किम् । रराधतुः । रराधुः । रराधिथ । अत इत्येतदिहोपस्थितं तपरत्वकृतमपास्य कालविशेषमसंभवादवर्णमात्रं प्रतिपादयति । अथ वा श्नाभ्यस्तयोरात इत्यनुवर्त्ततइति व्याख्येयम् । एकहल्मध्ये वा यः स स्थानी भविष्यति ॥

वा जॄभ्रमुत्रसाम् ॥ १२४ ॥

जॄ भ्रमु त्रस इत्येतेषामङ्गानामतः स्थाने वा एकार आदेशो भवति अभ्यासलोपश्च लिटि क्ङिति परतस्थलि च सेटि । जेरतुः । जेरुः । जेरिथ ।

जजरतुः । जजरुः । जजरिथ । भ्रेमतुः । भ्रेमुः । भ्रेमिथ । बभ्रमतुः । बभ्रमुः । बभ्रमिथ । त्रेसतुः । त्रेसुः । त्रेसिथ । तत्रसतुः । तत्रसुः । तत्रसिथ ॥

फणां च सप्तानाम् ॥ १२५ ॥

फणादीनां सप्तानां धातूनामवर्णस्य स्थाने वा एकार आदेशो भवति, अभ्यासलोपश्च लिटि क्ङिति परत,स्थलि च सेटि । फेणतुः । फेणुः । फेणिथ । पफणतुः । पफणुः । पफणिथ । रेजतुः । रेजुः । रेजिथ । रराजतुः । रराजुः । रराजिथ । भ्रेजे । भ्रेजाते । भ्रेजिरे । बभ्राजे । बभ्राजाते । बभ्राजिरे । भ्रेशे । भ्रेशाते । भ्रेशिरे । बभ्राशे । बभ्राशाते । बभ्राशिरे । भ्लेशे । भ्लेशाते । भ्लेशिरे । बभ्लाशे । बभ्लाशाते । बभ्लाशिरे । स्येमतुः । स्येमुः । स्येमिथ । सस्यमतुः । सस्यमुः । सस्यमिथ । स्वेनतुः । स्वेनुः । स्वेनिथ । सस्वनतुः । सस्वनुः । सस्वनिथ । सप्तानामिति किम् । दध्वनतुः । दध्वनुः । दध्वनिथ ॥

न शसददवादिगुणानाम् ॥ १२६ ॥

शस दद इत्येतयोर्वकारादीनां च धातूनां गुण इत्येवमभिनिर्वृत्तस्य च योऽकारस्तस्य स्थाने एकारादेशो न भवति, अभ्यासलोपश्च । विशशसतुः । विशशसुः । विशशसिथ । ददे । ददाते । ददिरे । वादी नाम् । ववमतुः । ववमुः । ववमिथ । गुणस्य । विशशरतुः । विशशरुः । विशशरिथ । लुलविथ । पुपविथ । गुणशब्दाभिनिर्वृत्तस्यार्शब्दस्याकारस्य चायमकार इति एत्वं प्रतिषिध्यते ॥

अर्वणस्त्रसावनञः ॥ १२७ ॥

अर्वन्नित्येतस्याङ्गस्य तृ इत्ययमादेशो भवति, सुश्चेत्ततः परो न भवति, स च नञ उत्तरो न भवति । अर्वन्तौ । अर्वन्तः । अर्वन्तम् । अर्वन्तौ । अर्वतः । अर्वता । अर्वद्भ्याम् । अर्वद्भिः । अर्वती । आर्वतम् । असाविति किम् । अर्वा । अनञ इति किम् । अनर्वाणौ । अनर्वाणः । अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम् ॥

मघवा बहुलम् ॥ १२८ ॥

मघवन्नित्येतस्याङ्गस्य बहुलं तृ इत्ययमादेशो भवति । मघवान् । मघवन्तौ । मघवन्तः । मघवन्तम् । मघवन्तौ । मघवतः । मघवता । मघवती । माघवतम् । न च भवति । मघवा । मघवानौ । मघवानः । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । मघोना । मघवभ्याम् । मघवभिः । मघोनी । माघवनम् ॥

भस्य ॥ १२९ ॥

भस्येत्ययमधिकार, आ अध्यायपरिसमाप्तेः, यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो भस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । पादः । पत् । द्विपदः पश्य । द्विपदा कृतम् । भस्येति किम् । द्विपादौ । द्विपादः ॥

पादः पत् ॥ १३० ॥

पादिति पादशब्दो लुप्ताकारो गृह्यते । तदन्तस्याङ्गस्य भस्य पदित्ययमादेशो भवति । स च निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीति पाच्छब्दस्यैव भवति, न तदन्तस्य सर्वस्य । द्विपदः पश्य । द्विपदा । द्विपदे । द्विपदिकां ददाति । त्रिपदिकां ददाति । वैयाघ्रपद्यः ॥

वसोः संप्रसारणम् ॥ १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं भवति । विदुषः पश्य । विदुषा । विदुषे । पेचुषः । पश्य । पेचुषा । पेचुषे । ययुषः पश्य । आतो लोपे कर्त्तव्ये वसुसंप्रसारणस्य व्याश्रयत्वादसिद्धत्वं न भवति ॥ वसुसंप्रसारणे क्वसोरपि ग्रहणमिष्यते ॥

वाह ऊठ् ॥ १३२ ॥

वाह इत्येवमन्तस्य भस्य ऊठ् इत्येतत्संप्रसारणं भवति । प्रष्ठौहः । प्रष्ठौहा । प्रष्ठौहे । दित्यौहः । दित्यौहा । दित्यौहे । एत्येधत्यूठ्सु इति वृद्धिः । अथ किमर्थमूठ् क्रियते । संप्रसारणएव कृते गुणे च वृद्धिरेचीति वृद्धौ सत्यां सिद्धं रूपं भवति प्रष्ठौह इति । अनकारान्ते चोपपदे वहेर्ण्विर्न दृश्यते । ज्ञापकार्थम् । एतज्ज्ञापयति भवत्येषा परिभाषा असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गइति । तस्यां हि सत्यां बहिरङ्गस्य संप्रसारणस्यासिद्धत्वाद् अन्तरङ्गो गुणो न स्यात् ॥

श्वयुवमघोनामतद्धिते ॥ १३३ ॥

श्वन् युवन् मघवन् इत्येतेषामङ्गानामतद्धिते प्रत्यये परतः संप्रसारणं भवति । शुनः । शुना । शुने । यूनः । यूना । यूने । मघोनः । मघोना । मघोने । अतद्धितइति किम् । शौवनं मांसम् । यौवनं वर्त्तते । माघवनः स्थालीपाकः । शुनो विकारे प्राणिरजतादिभ्योऽञ्, द्वारादित्वादैजागमः ॥ श्वादीनामेतत्संप्रसारणं नकारान्तानामिष्यते ॥ इह न भवति । युवतीः । पश्य । मघवतः । मघवता । मघवते । तदर्थमुत्तरत्र योगविभागं कुर्वन्ति । अल्लोपः । अनः । अन इत्युभयोः शेष इति ॥

अल्लोपोनः ॥ १३४ ॥

अनित्येवमन्तस्य भस्य अकारलोपो भवति । राज्ञः पश्य । राज्ञा । राज्ञे । तक्ष्णः पश्य । तक्ष्णा । तक्ष्णे ॥ अनो नकारान्तस्यायं लोप इष्यते ॥ इह न भवति । राजकीयमिति ॥

षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि ॥ १३५ ॥

षकारपूर्वो यो ऽन् हनो धृतराज्ञश्च तस्याकारलोपो भवति अणि

परतः । औद्न्यः । तात्ययः । औपग्नः * । धार्त्तराज्ञः । षपूर्वहन्धृतराज्ञामिति किम् । सामनः । वैमनः । अचिति प्रकृतिभावेनाल्लोपटिलोपावुभावपि न भवतः । अणीति किम् । ताक्ष्ण्यः ॥

विभाषा ङिश्योः ॥ १३६ ॥

ङौ परतः शीशब्दे च अनो विभाषा अकारलोपो भवति । राज्ञि । राजनि । साम्नि । सामनि । साम्नी । सामनी ॥

न संयोगाद्वमन्तात् ॥ १३७ ॥

वकारमकारान्तात्संयोगादुत्तरस्यानोऽकारस्य लोपो न भवति । पर्वणा । पर्वणे । अथर्वणा । अथर्वणे † । संयोगादिति किम् । प्रतिदीव्ना । प्रतिदीव्ने । साम्ना । साम्ने । वमन्तादिति किम् । तक्ष्णा । तक्ष्णे ॥

अचः ॥ १३८ ॥

अच इत्ययमञ्चतिर्लुप्तनकारो गृह्यते । तदन्तस्य भस्य अकारस्य लोपो भवति । दधीचः पश्य । दधीचा । दधीचे । मधूचः पश्य । मधूचा । मधूचे ॥

उद ईत् ॥ १३९ ॥

उद उत्तरस्याच ईकारादेशो भवति । उदीचः । उदीचा । उदीचे ॥

आतो धातोः ॥ १४० ॥

आकारान्तस्य धातोर्भस्य लोपो भवति । कीलालपः पश्य । कीलालपा । कीलालपे । शुभंयः पश्य । शुभंया । शुभंये । आत इति किम् । निया । निये । धातोरिति किम् । खट्वाः पश्य । मालाः पश्य । आत इति योगविभागः । तेन क्त्वो ल्यप् हलः श्नः शानज्झौ इति सिद्धं भवति ॥

मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ॥ १४१ ॥

मन्त्रेषु आङि परत आत्मन आदेर्लोपो भवति । त्मना देवेभ्यः । त्मना सोमेषु । मन्त्रेष्विति किम् । आत्मना कृतम् । आङीति किम् । यदात्मनस्तनो वरिष्ठा ॥ आङ्गोऽन्यत्रापि छन्दसि लोपो दृश्यते ॥ * ॥ त्मन्यासमञ्जत महाम् ॥

ति विंशतेर्डिति ॥ १४२ ॥

भस्य विंशतेस्तिशब्दस्य डिति प्रत्यये परतो लोपो भवति । विंशत्या क्रीतः विंशकः । विंशं शतम् । विंशतेः पूरणो विंशः । एकविंशः । डितीति किम् । विंशत्या ॥

---

* वार्ष्रघ इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† चर्मणा । चर्मणे । इत्यधिकमन्यस्मिन्पुस्तके ।

टेः ॥ १४३ ॥

टिसंज्ञकस्य डिति प्रत्यये परतो लोपो भवति । कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । उपसरजो, मन्दुरजः । त्रिंशता क्रीतः त्रिंशकः । डित्यभस्याप्यनुबन्धकरणसामर्थ्यात् टिलोपो भवति ॥

नस्तद्धिते १४४ ॥

नकारान्तस्य भस्य टेर्लोपो भवति तद्धिते परतः । आग्निशर्म्मिः । औडुलोमिः । बाह्वादित्वादिञ्प्रत्ययः । न इति किम् । सात्वतः । तद्धित इति किम् । शर्म्मणा । शर्म्मणे ॥ नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकुथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥ * ॥ अत्र ये इन्नन्तास्तेषामिनण्यनपत्यइति प्रकृतिभावः प्राप्तः, ये त्वन्नन्तास्तेषामन्निति । सब्रह्मचारिण इमे, साब्रह्मचाराः । पीठसर्पिणः । पैठसर्पाः । कलापिना प्रोक्तमधीयते, कालापाः । कुथुमिनः, कौथुमाः । तैतिलिजाजलिनावाचार्यौ तत्कृतो ग्रन्थ उपचारात् तैतिलिजाजलिशब्दाभ्यामभिधीयते । तं ग्रन्थमधीयते तैतिलाः । जाजलाः । शैषिकेष्वर्थेषु वृद्धत्वादत्र छः प्राप्नोति । एवं लाङ्गलाः । शैलालाः । शिखण्डिनः, शैखण्डाः । सूकरसद्मनः, सौकरसद्माः । सुपर्वणः, सौपर्वाः ॥ अश्मनो विकारउपसंख्यानम् ॥ * ॥ अश्मनो विकार, आश्मः । आश्मनो ऽन्यः ॥ चर्मणः कोशउपसंख्यानम् ॥ * ॥ चार्मः कोशः । चार्म्मणोन्यः ॥ शुनः संकोचउपसंख्यानम् ॥ * ॥ शौवः संकोचः । शौवनो ऽन्यः ॥ अव्ययानां च सायंप्रातिकाद्यर्थमुपसंख्यानम् ॥ * ॥ के पुनः सायंप्रातिकादयः । येषामव्ययानामविहितष्टिलोपः प्रयोगे च दृश्यते ते सायंप्रातिकप्रकारा ग्रहीतव्याः । सायंप्रातर्भवः, सायंप्रातिकः । पौनःपुनिकः । बाह्यः । कौतस्कुतः । कालाट्ठञिति ठञ्प्रत्ययः । ट्युट्युलौ तु नेष्येते ॥ आरातीयः । शाश्वतिकः । शाश्वत इत्येवमादिषु न दृश्यते टिलोपः ॥

अह्नष्टखोरेव ॥ १४५ ॥

अहनित्येतस्य टखोरेव परतष्टिलोपो भवति । द्वे अहनी समाहृते, द्व्यहः । त्र्यहः । द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्व्यहीनः । त्र्यहीनः । अह्नां समूहः क्रतुः, अहीनः ॥ अह्नः समूहे खो वक्तव्यः ॥ * ॥ सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । इह मा भूत् । अह्ना निर्वृत्त,माह्निकम् । एवकारकरणं विस्पष्टार्थम् । अह्न एव टखोरित्येवं नियमो न भविष्यति, आत्माध्वानौ खे इति प्रकृतिभावविधानात् ॥

ओर्गुणः ॥ १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणो भवति तद्धिते परतः । बाभ्रव्यः । माण्डव्यः । शङ्कव्यं दारु । पिचव्यः कार्प्पासः । कमण्डलव्या मृत्तिका । परशव्यमयः । औपगवः । कापटवः । ओरोदिति वक्तव्ये गुणग्रहणं संज्ञापूर्वको विधिरनित्यो यथा स्यात् तेन स्वायंभुव इति सिद्धं भवति ॥

ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥ १४७ ॥

ढे परत उवर्णान्तस्य भस्याकद्र्वा लोपो भवति । कामण्डलेयः । शैतिबाहेयः । जाम्बेयः । माद्रबाहेयः । अकद्र्वा इति किम् । काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत् ॥

यस्येति च ॥ १४८ ॥

इवर्णान्तस्यावर्णान्तस्य च भस्य ईकारे परे तद्धिते च लोपो भवति । इवर्णान्तस्य ईकारे । दाक्षी । प्लाक्षी । सखी । सवर्णदीर्घत्वे हि सत्यतिसखेरागच्छतीत्यत्र एकादेशस्यान्तवत्त्वादसखीति घिसंज्ञायाः प्रतिषेधः स्यात् । इवर्णान्तस्य तद्धिते । दुलि । दौलेयः । वलि । वालेयः । अत्रि । आत्रेयः । अवर्णान्तस्य ईकारे । कुमारी । गौरी । शार्ङ्गरवी । अवर्णान्तस्य तद्धिते । दाक्षिः । प्लाक्षिः । चौडिः । बालाकिः । सौमित्रिः ॥ यस्येत्यौङः श्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ काण्डे । कुड्ये । सौर्ये हिमवतः शृङ्गे । औङः शीभावे कृते यस्येति चेति सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधाया इति च लोपः प्राप्नोति ॥ इयङुवङ्भ्यां लोपो भवति विप्रतिषेधेन ॥ * ॥ वत्सान्प्रीणाति, वत्सप्रीः । तस्यापत्यं, वात्सप्रेयः । चतुष्पाद्भ्यो ढञ् इति ढञ् प्रत्ययः । लेखाभ्रूः शुभ्रादिः । तस्या अपत्यं लैखाभ्रेयः ॥

सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां (य) उपधायाः ॥ १४९ ॥

सूर्य तिष्य अगस्त्य मत्स्य इत्येतेषां यकारस्य उपधाया भस्य लोपो भवति ईति परतस्तद्धिते च । सूर्येणैकदिक् । सौरी । बलाका । अणि यो यस्येति लोपस्तस्यासिद्धत्वं नास्ति व्याश्रयत्वात् । ईकारे तु यस्तस्यासिद्धत्वाद् उपधायकारो भस्याणन्तस्य सूर्यस्य संबन्धीति लुप्यते । तिष्य । तैषमहः । तैषी रात्रिः । अगत्स्यस्यापत्यं स्त्री ऋषित्वादणि कृते आगस्ती । आगस्तीयः । मत्स्य । गौरादित्वान् ङीष् । मत्सी । उपधाया इति किम् । मत्स्यचरी । यग्रहणमुत्तरार्थम् । विषयपरिगणनमत्र कर्त्तव्यम् ॥ मत्स्यस्य ङ्यामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । मत्स्यस्येदं मांसं मात्स्यम् ॥ सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च ॥ * ॥ सौरीयः । सौरी । आगस्तीयः । आगस्ती । इह मा भूत् । सौर्यं चरुं निर्वपेत् । आगस्त्यः ॥ तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ॥ * ॥ तिष्येण नक्षत्रेण युक्तः कालः । तैषः । पौषः ॥ अन्तिकस्य तसि कादिलोप आद्युदात्तं च ॥ * ॥ अन्ति-

कशब्दस्य तसिप्रत्यये परतः ककारादिशब्दस्य लोपो वक्तव्य, आद्युदात्तं च। अन्तितो न दूरात् ॥ तमे तादेश्च ॥ * ॥ तमप्रत्यये अन्तिकशब्दस्य तकारादेः ककारादेश्च लोपो वक्तव्यः। तत्र तादिलोपे अन्तमः। कादिलोपे अन्तितमः ॥ कादिलोपे बहुलमिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अन्यत्रापि हि दृश्यते। अन्तिके सीदतीति, अन्तिषत्। पूर्वपदादिति षत्वम् ॥ ये च ॥ * ॥ अन्तियः ॥

हलस्तद्धितस्य ॥ १५० ॥

हल उत्तरस्य तद्धितयकारस्य उपधाया ईति परतो लोपो भवति। गार्गी। वात्सी। हल इति किम्। कारिकेयी। तद्धितस्येति किम्। वैद्यस्य भार्या वैद्यी ॥

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ॥ १५१ ॥

आपत्ययकारस्य हल उत्तरस्य तद्धिते अनाकारादौ यलोपो भवति। गर्गाणां समूहो, गार्गकम्। वात्सकम्। आपत्यस्येति किम्। सांकाश्यकः। काम्पिल्यकः। तद्धितग्रहणमीत्यनापत्यस्यापि लोपार्थम्। सौमी इष्टिः। अनातीति किम्। गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। हल इत्येव। कारिकेयस्यापत्यं, कारिकेयिः ॥

क्यच्व्योश्च ॥ १५२ ॥

क्य च्वि इत्येतयोश्च परत आपत्ययकारस्य हल उत्तरस्य लोपो भवति। वात्सीयति। गार्गीयति। वात्सीयते। गार्गायते। च्वौ। गार्गीभूतः। वात्सीभूतः। आपत्यस्येत्येव। सांकाश्यायते। सांकाश्यभूतः। हल इत्येव। कारिकेयीयति। कारिकेयीभूतः ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ १५३ ॥

नडादिषु बिल्वादयः पठ्यन्ते। नडादीनां कुक्चेति कृतकुगागमा बिल्वकादयो भवन्ति। तेभ्य उत्तरस्य छस्य भस्य तद्धिते परतो लुग् भवति। बिल्वा यस्यां सन्ति बिल्वकीया, तस्यां भवाः, बैल्वकाः। वेणुकीयाः। वैणुकाः। वेत्रकीयाः। वैत्रकाः। वेतसकीयाः। वैतसकाः। तृणकीयाः। तार्णकाः। इक्षुकीयाः। ऐक्षुकाः। काष्ठकीयाः। काष्ठकाः। कपोतकीयाः। कापोतकाः ॥ क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च ॥ क्रुञ्चकीयाः। क्रौञ्चकाः। छग्रहणं किम्। छमात्रस्य लुग्यथा स्याद् कुको निवृत्तिर्मा भूदिति। अन्यथा हि संनियोगशिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यभाव इति कुगपि निवर्त्तेत। लुग्ग्रहणं सर्वलोपो यथा स्याद् यकारमात्रस्य मा भूत् ॥

तुरिष्ठेमेयस्सु ॥ १५४ ॥

इष्ठन् इमनिच् ईयसुन् इत्येतेषु परतः तृशब्दस्य लोपो भवति। आसुतिं करिष्ठः। विजयिष्ठः। वहिष्ठः। दोहीयसी धेनुः। सर्वस्य तृशब्दस्य

५।३।५५ अतिशायने

लोपार्थं वचनम् । अन्त्यस्य हि टेरित्येव सिद्धः । लुगित्येतदत्र नानुवर्त्तते । तथाहि सति न लुमताङ्गस्येति प्रतिषेधाद् गुणो न स्यात् । इमनिज्ग्रहणमुत्तरार्थम् । इतरौ तु तुश्छन्दसीति भवतः ॥

टेः ॥ १५५ ॥

भस्य टेर्लोपो भवति इष्ठेमेयस्सु परतः । पटु । पटिष्ठः । पटिमा । पटीयान् । लघु । लघिष्ठः । लघिमा । लघीयान् । णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति वक्तव्यम् * ॥ किं प्रयोजनम् । पुंवद्भावरभावटिलोपयणादिपरार्थम् । पुंवद्भावः । एनीमाचष्टे, एतयति । श्येतयति । तसिलादिष्वाकृत्वसुच इति इष्ठे पुंवद्भाव उक्तः । रभावः । पृथुमाचष्टे, प्रथयति । म्रदयति । टिलोपः । पटुमाचष्टे पटयति । लघयति । यणादिपरम् । स्थूलमाचष्टे, स्थवयति * । भारद्वाजीयास्तु पठन्ति । णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपयणादिपरविन्मतोर्लुक्कन्नर्थमिति । स्रग्विणमाचष्टे, स्रजयति । वसुमन्तमाचष्टे, वसयति । युवानमाचष्टे, यवयति । कनयति । एतदुभयमप्युदाहरणमात्रं न परिगणनम् । प्रादयोपि ह्येष्यन्ते । प्रियमाचष्टे, प्रापयति ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ १५६ ॥

स्थूल दूर युव ह्रस्व क्षिप्र क्षुद्र इत्येतेषां यणादिपरं लुप्यते इष्ठेमेयस्सु परतः, पूर्वस्य च गुणो भवति । स्थूल । स्थविष्ठः । स्थवीयान् । दूर । दविष्ठः । दवीयान् । युवन् । यविष्ठः । यवीयान् । ह्रस्व । ह्रसिष्ठः । ह्रसीयान् । ह्रसिमा । क्षिप्र । क्षेपिष्ठः । क्षेपीयान् । क्षेपिमा । ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्रशब्दाः पृथ्वादिषु पठ्यन्ते । क्षुद्र । क्षोदिष्ठः । क्षोदीयान् । क्षोदिमा । परग्रहणं किम् । यविष्ठः । यवीयान् । ह्रसिष्ठः । ह्रसीयान् । इत्यत्र पूर्वस्य यणादेर्लोपो मा भूत । पूर्वग्रहणं विस्पष्टार्थम् ॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥ १५७ ॥

प्रिय स्थिर स्फिर उरु बहुल गुरु वृद्ध तृप्र दीर्घ वृन्दारक इत्येतेषां प्र स्थ स्फ वर् बंहि गर् वर्षि त्रप् द्राघि वृन्द इत्येते यथासंख्यमादेशा भवन्ति इष्ठेमेयस्सु परतः । प्रिय । प्रेष्ठः । प्रेमा । प्रेयान् । स्थिर । स्थेष्ठः । स्थेयान् । स्थेमा । स्फिर । स्फेष्ठः । स्फेयान् । उरु । वरिष्ठः । वरिमा । वरीयान् ।

---

* दवयतीत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

बहुल । बंहिष्ठः । बंहीयान् । बंहिमा । गुरु । गरिष्ठः । गरीयान् । गरिमा । वृद्ध । वर्षिष्ठः । वर्षीयान् । तृप्र । त्रपिष्ठः । त्रपीयान् । दीर्घ । द्राघिष्ठः । द्राघीयान् । द्राघिमा । वृन्दारक । वृन्दिष्ठः । वृन्दीयान् । प्रियोरुगुरुबहुलदीर्घाः पृथ्वादिषु पठ्यन्ते । तेनान्येषामिमनिज् न भवतीति नोदाह्रियते ॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ॥ १५८ ॥

बहोरुत्तरेषामिष्ठेमेयसां लोपो भवति तस्य च बहोः स्थाने भू इत्ययमादेशो भवति । भूयान् । भूमा । बहुशब्दः पृथ्वादिषु पठ्यते । बहोरिति पुनर्ग्रहणं स्थानित्वप्रतिपत्त्यर्थम् । अन्यथा हि प्रत्ययानामेव भूभावः स्यात् ॥

इष्ठस्य यिट् च ॥ १५९ ॥

बहोरुत्तरस्य इष्ठस्य यिडागमो भवति बहोश्च भूरादेशो भवति । भूयिष्ठः । लोपापवादो यिडागमः तस्मिन्विकार उच्चारणार्थः ॥

ज्यादादीयसः ॥ १६० ॥

ज्यादुत्तरस्य ईयस आकार आदेशो भवति । ज्यायान् । लोपस्य यिटा व्यवहितत्वादादित्युच्यते । लोपे हि सति अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घत्वेन ज्यायानिति सिध्यति ॥

र ऋतो हलादेर्लघोः ॥ १६१ ॥

रशब्द आदेशो भवति ऋकारस्य हलादेर्लघोरिष्ठेमेयस्सु परतः । प्रथिष्ठः । प्रथीयान् । प्रथिमा । म्रदिष्ठः । म्रदीयान् । म्रदिमा ऋत इति किम् । पटिष्ठः । पटिमा । पटीयान् । हलादेरिति किम् । ऋजिष्ठः । ऋजिमा । ऋजीयान् । लघोरिति किम् । कृष्णिष्ठः । कृष्णीयान् । कृष्णिमा । परिगणनमत्र कर्तव्यम् ॥

पृथुं मृदुं भृशं चैव कृशं च दृढमेव च ।
परिपूर्वं वृढं चैव षडेतान् रविधौ स्मरेत् ॥

तत इह न भवति । कृतमाचष्टे, कृतयति । मातरमाचष्टे, मातयति । भ्रातयति ॥

विभाषर्जोश्छन्दसि ॥ १६२ ॥

ऋजु इत्येतस्य ऋतः स्थाने विभाषा रेफ आदेशो भवति इष्ठेमेयस्सु परतश्छन्दसि विषये । रजिष्ठमेति पन्थानम् । त्वमृजिष्ठः ॥

प्रकृत्यैकाच् ॥ १६३ ॥

एकाच् यद्भसंज्ञकं तदिष्ठेमेयस्सु परतः प्रकृत्या भवति । स्रग्विचित्येतस्य विचन्तस्य स्रजिष्ठः । स्रजीयान् । स्रजयति । स्रग्वदित्येतस्य मत्वन्तस्य

सुचिष्ठः । सुचीयान् । सुचयति । एकाजिति किम् । वसुमदित्येतस्य वसिष्ठः ॥

प्रकृत्या ऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥ * ॥ अके प्रत्यये परतो राजन्य मनुष्य युवन्नित्येते प्रकृत्या भवन्ति । राजन्यानां समूहो, राजन्यकम् । मनुष्याणां समूहो, मानुष्यकम् । आपत्यस्य च तद्धितेनातीति यलोपः प्रकृतिभावेन न भवति । यूनो भावः, यौवनिका । मनोज्ञादित्वाद् वुञ् । तत्र नस्तद्धितइति टिलोपो न भवति ॥

इनण्यनपत्ये ॥ १६४ ॥

इन्नन्तमनपत्यार्थेऽणि परतः प्रकृत्या भवति । सांकूटिनम् । सांराविणम् । सांमार्जिनम् । अभिविधौ भावइनुण अणिनुण इत्यण * । स्रग्विण इदं, स्राग्विणम् । अणीति किम् । दण्डिनां समूहो, दाण्डम् । अनुदात्तादेरञित्यञ्प्रत्ययः । अनपत्यइति किम् । मेधाविनो ऽपत्यं,मैधावः ॥

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ॥ १६५ ॥

गाथिन् विदथिन् केशिन् गणिन् पणिन् इत्येते चाणि प्रकृत्या भवन्ति । गाथिनो ऽपत्यं, गाथिनः । वैदथिनः । कैशिनः । गाणिनः । पाणिनः । अपत्यार्थोयमारम्भः ॥

संयोगादिश्च ॥ १६६ ॥

संयोगादिश्च इन्नणि प्रकृत्या भवति । शङ्खिनो ऽपत्यं, शाङ्खिनः । माद्रिणः । वाज्रिणः ॥

अन् ॥ १६७ ॥

अन्नन्तमणि प्रकृत्या भवति अपत्ये चानपत्ये च । सामनः । वैमनः । सौत्वनः । जैत्वनः ॥

ये चाभावकर्मणोः ॥ १६८ ॥

यकारादौ च तद्धिते ऽभावकर्मणोरर्थयोरन् प्रकृत्या भवति । सामसु साधुः, सामन्यः । ब्रह्मण्यः । अभावकर्मणोरिति किम् । राज्ञो भावः कर्म वा, राज्यम् । राजन्निति पुरोहितादिषु पठ्यते । ततोयं यक् प्रत्ययः ॥

आत्माध्वानौ खे ॥ १६९ ॥

आत्मन् अध्वन् इत्येतौ खे परतः प्रकृत्या भवतः । आत्मने हित, आत्मनीनः । अध्वानमलङ्गामी, अध्वनीनः । खइति किम् । प्रत्यात्मम् । प्राध्वम् । प्रत्यात्ममित्यव्ययीभावे ऽनश्चेति समासान्तष्टच्प्रत्ययः । प्राध्वमित्युपसर्गादध्वन इति अच्प्रत्ययः ॥

* अभिविधावित्यारभ्य इत्यण् इत्यन्तः पाठो बहुत्र नास्ति ।

न मपूर्वो ऽपत्ये ऽवर्म्मणः ॥ १७० ॥

मपूर्वो ऽन् अवर्म्मणोऽणि परतो ऽपत्येऽर्थे न प्रकृत्या भवति । सुषाम्णो ऽपत्यं, सौषामः । चान्द्रसामः । मपूर्व इति किम् । सौत्वनः । अपत्यइति किम् । चर्म्मणा परिवृतो रथः, चार्म्मणः । अवर्म्मण इति किम् । चक्रवर्म्मणो ऽपत्यं, चाक्रवर्म्मणः ॥ मपूर्वप्रतिषेधे वा हितनाम्न इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ हितनाम्नोपत्यं, हैतनामः । हैतनामनः ॥

ब्राह्मो जातौ ॥ १७१ ॥

योगविभागोत्र क्रियते । ब्राह्म इत्येतदपत्याधिकारेपि सामर्थ्यादपत्यादन्यत्राणि टिलोपार्थं निपात्यते । ब्राह्मो गर्भः । ब्राह्ममस्त्रम् । ब्राह्मं हविः । ततो जातौ । अपत्यइत्येव । अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न भवति । ब्रह्मणोपत्यं, ब्राह्मणः । अपत्यइत्येव । ब्राह्मी ओषधिः ॥

कार्म्मस्ताच्छील्ये ॥ १७२ ॥

कार्म्म इति ताच्छील्ये टिलोपो निपात्यते । कर्म्मशीलः, कार्म्मः । शीलं छत्रादिभ्यो ण इति णप्रत्ययः । यद्येवं, किमर्थमिदं, नस्तद्धितइत्येव टिलोपः सिद्धः । सत्यमेतत् । ज्ञापकार्थं तु । एतज् ज्ञापयति ताच्छीलिके णे ऽण्कृतानि भवन्तीति । तेन चौरी तापसीति णान्तादपीकारः सिद्धो भवति । ताच्छील्यइति किम् । कर्म्मण इदं, कार्म्मणम् ॥

औक्षमनपत्ये ॥ १७३ ॥

औक्षमित्यनपत्येऽणि टिलोपो निपात्यते । औक्षं पदम् । अनपत्यइति किम् । उक्ष्णो ऽपत्य,मौक्ष्णः । षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि इत्यलोपः ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ॥ १७४ ॥

दाण्डिनायन,हास्तिनायन आथर्वणिक जैह्माशिनेय वासिनायनि,भ्रौणहत्य धैवत्य सारव ऐक्ष्वाक मैत्रेय हिरण्मय इत्येतानि निपात्यन्ते । दण्डिन् हस्तिन् इत्येतौ नडादिषु पठ्येते, तयोरायने परतः प्रकृतिभावो निपात्यते । केषां चित्तु हस्तिन्निति नडादिषु न पठ्यते । तेषामत एव निपातनात् फगपि भवति । दण्डिनोपत्यं, दाण्डिनायनः । हस्तिनोपत्यं, हास्तिनायनः । अथर्वन्निति वसन्तादिषु पठ्यते । अथर्वणा प्रोक्तो ग्रन्थोपि उपचाराद् अथर्वन्नित्युच्यते । तमधीते यः स, आथर्वणिकः । इके प्रकृतिभावो निपात्यते । जिह्माशिनिति

शुभ्रादिषु पठ्यते । तस्य एये परतः प्रकृतिभावो निपात्यते । जिह्माशिनोऽपत्यं, जैह्माशिनेयः । वासिनोऽपत्यम्, उदीचां वृद्धादगोत्रादिति फिञ् । तत्र प्रकृतिभावो निपात्यते । वासिनायनिः । भ्रूणहन् धीवन् इत्येतयोः ष्यञि तपरस्तकारादेशो निपात्यते । भ्रूणघ्नो भावः, भ्रौणहत्यम् । धीव्नो भावो, धैवत्यम् । हनस्तोचिण्णलोरिति यत्तत्वं तद्धातुप्रत्ययएवेति भ्रौणघ्नो वार्त्रघ्न इत्यत्र न भवत्यतो भ्रौणहत्ये तत्वं निपात्यते । सारव इति सरयू इत्येतस्य अणि परतो ऽयूशब्दलोपो निपात्यते । सरय्वां भवं, सारवमुदकम् । ऐक्ष्वाक इति स्वरसर्वनाम्ना एकश्रुत्या पठ्यते । ततोयमाद्युदात्तान्तोदात्तश्च निपात्यते । इक्ष्वाकोरपत्यं, जनपदशब्दात्क्षत्रियादञित्यञ्, तत्र उकारलोपो निपात्यते । ऐक्ष्वाकः । इक्ष्वाकुषु जनपदेषु भवः कोपधादणित्यण् । ऐक्ष्वाकः । मैत्रेय इति मित्रयुशब्दो गृष्ट्यादिषु पठ्यते, ततो ढञि कृते यादेरियादेशापवादो युशब्दलोपो निपात्यते । मित्रयोरपत्यं, मैत्रेयः । अथ किमर्थं मित्रयुशब्दो बिदादिष्वेव न पठ्यते तत्राञि कृते यादेरिति इयादेशेनैव सिद्धमेवं च लोपार्थं निपातनं कर्त्तव्यं न भवति, यस्कादिषु च बहुषु लुगर्थः पाठो न कर्त्तव्यो भवति, मित्रयव इत्यञ इत्येव हि लुकः सिद्धत्वात् । नैतदस्ति । मित्रयूणां संघ इत्यत्र गोत्रचरणाद्वुञं बाधित्वा मैत्रयकः संघ इत्यत्र संघाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामणित्यण् प्राप्नोति । हिरण्मयमिति हिरण्यस्य मयटि यादिलोपो निपात्यते, हिरण्यस्य विकारः, हिरण्मयं ॥

ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानिच्छन्दसि ॥ १७५ ॥

ऋत्व्य वास्त्व्य वास्त्व माध्वी हिरण्यय इत्येतानि निपात्यन्ते छन्दसि विषये । ऋतु वास्तु इत्येतयोर्यति यणादेशो निपात्यते । ऋतौ भवम्, ऋत्व्यम् । वास्तौ भवं, वास्त्व्यम् । वस्तुशब्दस्याणि यणादेशो निपात्यते वस्तुनि भवो, वास्त्वः । मधुशब्दस्याणि स्त्रियां यणादेशो निपात्यते । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । हिरण्यशब्दाद्विहितस्य मयटो मशब्दस्य लोपो निपात्यते । हिरण्ययम् ॥

इत्युपाध्यायश्रीवामनकृतायां काशिकायां
षष्ठस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

समाप्तश्चायं षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

युवोरनाकौ ॥ १ ॥

यु वु इत्येतयोरुत्सृष्टविशेषणयोरनुनासिकयोः प्रत्यययोर्ग्रहणं, तयोः स्थाने यथासङ्ख्यमन अक इत्येतावादेशौ भवतः । योरनः । वोरकः । नन्द्यादिभ्यो ल्युः । नन्दनः । रमणः । सायमादिभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् । सायंतनः । चिरंतनः । ण्वुल्तृचौ । कारकः । हारकः । वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् । वासुदेवकः । अर्जुनकः । अनुनासिकयोरिति किम् । ऊर्णाया युस् । ऊर्णायुः । भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ । भुज्युर्मृत्युरिति । एवमादीनां हि यणोनुनासिकत्वं न प्रतिज्ञायते, प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । युवोरिति निर्देशाद् द्वन्द्वैकवद्भावपक्षे ऽनित्यमागमशासनमिति नुम् न क्रियते । नपुंसकलिङ्गता वा लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति न भवति । इतरेतरयोगपक्षे तु छान्दसो वर्णलोपो द्रष्टव्यः ॥

युवोश्चेद् द्वित्वनिर्देशो द्वित्वे यणतु प्रसज्यते ।
अथ चेदेकवद्भावः कथं पुंवद्भवेदयम् ॥
द्वित्वे नैगमिको लोप एकत्वे नुमनित्यता ।
अशिष्यत्वाद्धि लिङ्गस्य पुंस्त्वं वेह समाश्रितम् ॥

आयनेयीनीयियः फढखच्छघां प्रत्ययादीनाम् ॥ २ ॥

आयन् एय् ईन् ईय् इय् इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यं फ ढ ख छ घ इत्येतेषां प्रत्ययादीनाम् । फ इत्येतस्यायनादेशो भवति । नडादिभ्यः फक् । नाडायनः । चारायणः । ढस्य एयादेशो भवति । स्त्रीभ्यो ढक् । सौपर्णेयः । वैनतेयः । खस्य ईनादेशो भवति । कुलात्खः । आढ्यकुलीनः । श्रोत्रियकुलीनः । छस्य ईयादेशो भवति । वृद्धाच्छः । गार्गीयः । वात्सीयः । घ इत्येतस्येयादेशो भवति । क्षत्राद्घः । क्षत्रियः । प्रत्ययग्रहणं किम् । फक्कति । ढौकते । खनति । छिनत्ति । घूर्णते । आदिग्रहणं किम् । ऊरुदघ्नम् । जानुदघ्नम् । एते आयनादयः प्रत्ययोपदेशकालएव भवन्ति । कृतेष्वेतेषु प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति । तथा च घच्छौ चेति घचश्चित्करणमर्थवद्भवति । शङ्खः । षण्ढः *, इत्येवमादीनां हि उणादयो बहुलमिति बहुलवचनादादेशा न भवन्ति । स्फतेरीयङिति वा वचनं ज्ञापकं धातुप्रत्ययानामादेशाभावस्य † ।

---

* ग्रमेः खः षणो ढः शङ्खः षण्ढः, इति पाठः पुस्तकान्तरे ।

† धातुविहितप्रत्ययानामादेशा न भवन्तीति क्वचित्पाठः ।

णले: खश् पदरूजविशस्पृशो घञित्येवमादिषु तु इत्संज्ञया भवितव्यम् । तद्धितेषु हि खकारघकारयोरादेशवचनमवकाशवदितीत्संज्ञां बाधितुं नोत्सहते । आयनीनोर्नकारस्येत्संज्ञायां प्राप्तायां प्रतिविधातव्यं नित्कार्यं हि संभवति ॥

झोऽन्तः ॥ ३ ॥

प्रत्ययग्रहणमनुवर्त्तते, आदिग्रहणं निवृत्तम् । प्रत्ययावयवस्य झस्य अन्त इत्ययमादेशो भवति । कुर्वन्ति । सुन्वन्ति । चिन्वन्ति । अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै । जॄविशिभ्यां झच् । जरन्तो, वेशन्तः । प्रत्ययस्येत्येव । उज्झिता । उज्झितुम् । उज्झितव्यम् । अस्मिन्नप्यन्तादेशे कृते प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति । तथा च झचश्चित्करणमर्थवद्भवति ॥

अदभ्यस्तात् ॥ ४ ॥

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य झकारस्य अदित्ययमादेशो भवति । ददति । ददतु । दधति । दधतु । जक्षति । जक्षतु । जाग्रति । जाग्रतु । अन्तादेशापवादोऽयं जुसादेशेन तु बाध्यते । अददुः । अदधुः * । अत्राप्यादेशे कृते प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति ॥

आत्मनेपदेष्वनतः ॥ ५ ॥

आत्मनेपदेषु यो झकारस्तस्यानकारान्तादङ्गादुत्तरस्यादित्ययमादेशो भवति । चिन्वते । चिन्वताम् । अचिन्वत । लुनते । लुनताम् । अलुनत । आत्मनेपदेष्विति किम् । चिन्वन्ति । लुनन्ति । अनत इति किम् । च्यवन्ते । प्लवन्ते । नित्यत्वादत्र विकरणे कृते झोऽन्तादेशेन भवितव्यमित्यदादेशो न भवति । अनकारान्तेनाङ्गेन झकारविशेषणं किम् । इह मा भूत् । अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै ॥

शीङो रुट् ॥ ६ ॥

शीङोऽङ्गादुत्तरस्य झादेशस्यातो रुडागमो भवति । शेरते । शेरताम् । अशेरत । रुडयं परादिः क्रियते । स यदि झकारस्यैव स्याददादेशो न स्याद्भित्यत एवायमादेशस्यागमो विधीयते । सानुबन्धग्रहणमयङ्लुगर्थम् । तेनेह न भवति । व्यतिशेश्यते ॥

वेत्तेर्विभाषा ॥ ७ ॥

वेत्तेरङ्गादुत्तरस्य झादेशस्यातो विभाषा रुडागमो भवति । संविदते । संविद्रते । संविद्रताम् । संविदताम् । समविदत । समविद्रत । वेत्तिरिति लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम् । इह मा भूत् । विन्ते । विन्दाते । विम्दते इति ॥

* अजक्षुरजागरुरित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

बहुलं छन्दसि ॥ ८ ॥

छन्दसि विषये बहुलं रुडागमो भवति । देवा अदुह्र । गन्धर्वा अप्सरसो अदुह्र । दुहेर्लङि झकारस्याद्रादेशे कृते रुट् । लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तकारलोपः । न च भवति । अदुहत । बहुलवचनादन्यत्रापि भवति । अदृश्रमस्य केतवः । ऋदृशोऽङि गुण इत्येतदपि बहुलवचनादेवात्र न भवति ॥

अतो भिस ऐस् ॥ ९ ॥

अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य भिस ऐसित्ययमादेशो भवति । वृक्षैः । प्लक्षैः । अतिजरसैः । जरामतिक्रान्तैरिति विगृह्य समासे कृते ह्रस्वत्वे च भिस ऐसादेशो भवति । एकदेशविकृतमनन्यवद्भवतीति जरशब्दस्य जरसादेशः । संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति परिभाषेयमनित्या कष्टाय क्रमणइति निर्देशात् । अत इति किम् । अग्निभिः । वायुभिः । तपरकरणं किम् । खट्वाभिः । मालाभिः ॥

एत्वं भिसि परत्वाच्चेदत ऐस्क्व भविष्यति ।
कृतेप्येत्वे भौतपूर्व्यादैस्तु नित्यस्तथा सति ॥

अत इत्यधिकारो जसः शीति यावत् ॥

बहुलं छन्दसि ॥ १० ॥

छन्दसि विषये बहुलमैसादेशो भवति । अत इत्युक्तमनतोपि भवति नद्यैरिति । अतो न भवति । देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तमिति ॥

नेदमदसोरकोः ॥ ११ ॥

इदम् अदस् इत्येतयोरककारयोर्भिस ऐस्न भवति । एभिः । अमीभिः । अकोरिति किम् । इमकैः । अमुकैः । अकोरित्येतदेव प्रतिषेधवचनं ज्ञापकं तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यतइति । इदमदसोः कादिति नोक्तं, विपरीतोपि नियमः संभाव्येत इदमदसोरेव कादिति । ततश्चेह न स्यात् । सर्वकैः । विश्वकैः । इह च स्यादेव । एभिः । अमीभिः । प्रतिषेधकरणं विपरीतनियमनिवृत्त्यर्थम् * ॥

टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ १२ ॥

अकारान्तादङ्गादुत्तरेषां टाङसिङसाम् इन आत् स्य इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यम् । टा इत्येतस्येनादेशो भवति । वृक्षेण । प्लक्षेण । ङसीत्येतस्य आत् । वृक्षात् । प्लक्षात् । ङसित्येतस्य स्यादेशो भवति । वृक्षस्य । प्लक्षस्य ।

* ततश्चेहेत्यारभ्य निवृत्त्यर्थमित्यन्तः पाठः क्व चित्पुस्तके नास्ति ।

अत इति किम् । सख्या । पत्या । अतिजरसिन अतिजरसादिति केचिदिच्छन्ति । यथा तु भाष्ये तथा नैतदिष्यतइति लक्ष्यते ॥

ङेर्यः ॥ १३ ॥

ङेरिति चतुर्थ्येकवचनस्य ग्रहणम् । अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य ङे इत्येतस्य य इत्ययमादेशो भवति । वृक्षाय । प्लक्षाय । अत इत्येव । सख्ये । पत्ये । संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति परिभाषेयमनित्या तेन दीर्घो भवति ॥

सर्वनाम्नः स्मै ॥ १४ ॥

अकारान्तात्सर्वनाम्न उत्तरस्य ङेः स्मै इत्ययमादेशो भवति । सर्वस्मै । विश्वस्मै । यस्मै । कस्मै । तस्मै । अत इत्येव । भवते । अथोऽत्रास्मै इत्यन्वादेशे ऽशादेशे एकादेशः प्राप्नोति तत्रान्तरङ्गत्वादेकादेशात्पूर्वं स्मैभावः क्रियते पश्चादेकादेश इति ॥

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ॥ १५ ॥

ङसि ङि इत्येतयोरकारान्तात्सर्वनाम्न उत्तरयोः स्मात् स्मिन् इत्येतावादेशौ भवतः । ङसीत्येतस्य स्मात् । सर्वस्मात् । विश्वस्मात् । यस्मात् । तस्मात् । कस्मात् । ङीत्येतस्य स्मिन् । सर्वस्मिन् । विश्वस्मिन् । यस्मिन् । तस्मिन् । अन्यस्मिन् । अत इत्येव । भवतः । भवति । सर्वनाम्न इत्येव । वृक्षात् । वृक्षे ॥

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १६ ॥

पूर्वादिभ्यो नवभ्यः सर्वनाम्न उत्तरयोर्ङसिङ्योः स्मात् स्मिन् इत्येतावादेशौ वा भवतः । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । परस्मात् । परात् । परस्मिन् । परे । अवरस्मात् । अवरात् । अवरस्मिन् । अवरे । दक्षिणस्मात् । दक्षिणात् । दक्षिणस्मिन् । दक्षिणे । उत्तरस्मात् । उत्तरात् । उत्तरस्मिन् । उत्तरे । अपरस्मात् । अपरात् । अपरस्मिन् । अपरे । अधरस्मात् । अधरात् । अधरस्मिन् । अधरे । स्वस्मात् । स्वात् । स्वस्मिन् । स्वे । अन्तरस्मात् । अन्तरात् । अन्तरस्मिन् । अन्तरे । नवभ्य इति किम् । त्यस्मात् । त्यस्मिन् ॥

जसः शी ॥ १७ ॥

अकारान्तात्सर्वनाम्न उत्तरस्य जसः शीत्ययमादेशो भवति । सर्वे । विश्वे । ये । के । ते । दीर्घोच्चारणमुत्तरार्थम् । त्रपुणी । जतुनी ॥

औङ आपः ॥ १८ ॥

आबन्तादङ्गादुत्तरस्यौङः शीत्ययमादेशो भवति । खट्वे तिष्ठतः । खट्वे पश्य । बहुराजे । कारीषगन्ध्ये । ङकारः सामान्यग्रहणार्थः । औटोपि ग्रहणं यथा स्यात् ।

ओकारोयं शीविधौ ङिद्गृहीतो ङित्त्वास्माकं नास्ति कोयं प्रकारः ।
सामान्यार्थस्तस्य चासंजनेस्मिन्ङित्कार्ये ते स्यां प्रसक्तं स दोषः ॥
ङित्त्वे विद्याद्वर्णनिर्देशमात्रं वर्णे यत्स्यात्तच्च विद्यात्तदादौ ।
वर्णश्चायं तेन ङित्त्वेप्यदोषो निर्देशोयं पूर्वसूत्रेण वा स्यात् ॥

नपुंसकाच्च ॥ १९ ॥

नपुंसकादङ्गादुत्तरस्य औङः शी इत्ययमादेशो भवति । कुण्डे तिष्ठतः । कुण्डे पश्य । यस्येति लोपः प्राप्तः ॥ स्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ इति न भवति । दधिनी । मधुनी । त्रपुणी । जतुनी ॥

जश्शसोः शिः ॥ २० ॥

नपुंसकादङ्गादुत्तरयोर्जश्शसोः शि इत्ययमादेशो भवति । कुण्डानि तिष्ठन्ति । कुण्डानि पश्य । दधीनि । मधूनि । त्रपूणि । जतूनि । जसा सहचरितस्य शसो ग्रहणादिह न भवति । कुण्डशो ददाति । वनशः प्रविशन्तीति ॥

अष्टाभ्य औश् ॥ २१ ॥

अष्टाभ्य इति कृताकारोष्टशब्दो गृह्यते । तस्मादुत्तरयोर्जश्शसोरौशित्ययमादेशो भवति । अष्टौ तिष्ठन्ति । अष्टौ पश्य । कृताकारस्य ग्रहणं किम् । अष्ट तिष्ठन्ति । अष्ट पश्य । एतदेव कृतात्वस्य ग्रहणं ज्ञापकमष्टन आ विभक्तावित्यात्त्वविकल्पस्य । षड्भ्यो लुगित्यस्यायमपवादो नाप्राप्ते तस्मिन्निदमारभ्यते । यस्तु सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति तस्मिन्प्राप्ते चाप्राप्ते चेति स न बाध्यते । अष्टपुत्रः । अष्टभार्य, इति । तदन्तग्रहणमत्रेष्यते । परमाष्टौ । उत्तमाष्टौ । प्रियाष्टान इत्यत्रात्वस्याभावादौश्त्वं न भवति ॥

षड्भ्यो लुक् ॥ २२ ॥

षट्संज्ञकेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोर्लुग्भवति । षट् तिष्ठन्ति । षट् पश्य । पञ्च । सप्त । नव । दश । षट्प्रधानात्तदन्तादपि भवति । परमषट् । उत्तमषट् । यत्र तूपसर्जनं षट् ततो न भवति । प्रियषषः, प्रियपञ्चान इति ॥

स्वमोर्नपुंसकात् ॥ २३ ॥

सु अम् इत्येतयोर्नपुंसकादुत्तरयोर्लुग्भवति । दधि तिष्ठति । दधि पश्य । मधु तिष्ठति । मधु पश्य । त्रपु । जतु । तद्ब्राह्मणकुलमित्यत्र लुका त्यदाद्यत्वं बाध्यते पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यत्वाद्वा । लुको हि निमित्तमतोमिति लक्षणान्तरेण विहन्यते न पुनस्त्यदाद्यत्वेनैव, यस्य च लक्षणान्तरेणनिमित्तं विहन्यते न तदनित्यं भवति ॥

अतो ऽम् ॥ २४ ॥

अकारान्तान्नपुंसकादुत्तरयोः स्वमोरमित्ययमादेशो भवति । कुण्डं तिष्ठति । कुण्डं पश्य । वनम् । पीठम् । मकारः कस्मान्न क्रियते । दीर्घत्वं प्राप्नोति ॥

अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ॥ २५ ॥

डतरादिभ्यः परयोः स्वमोरद्ड् इत्ययमादेशो भवति । कतरत्तिष्ठति । कतरत्पश्य । कतमत्तिष्ठति । कतमत्पश्य । इतरत् । अन्यतरत् । अन्यत् । पञ्चभ्य इति किम् । नेमं तिष्ठति । नेमं पश्य । डित्करणं किम् । कतरत्तिष्ठतीत्यत्र पूर्वसवर्णदीर्घो मा भूत् । इह तु कतरत्पश्येति स्थानिवद्भावादमि पूर्वत्वेनापि सिद्ध्यति । एवं तर्हि तकारादेश एव कस्मान्न विधीयते, हे कतरदिति संबुद्धिलोपो मा भूत् ।

अपृक्तश्चेदमो दोषो निवृत्ते डतरादिषु ।
अद्डित्वाड्डुतरादीनां न लोपो नापि दीर्घता ॥

नेतराच्छन्दसि ॥ २६ ॥

इतरशब्दादुत्तरयोः स्वमोश्छन्दसि विषये अद्डादेशो न भवति । इतरमितरमण्डमजायत । वार्त्रघ्नमितरम् । छन्दसीति किम् । इतरत्काष्ठम् । इतरत्कुड्यम् । अतोमित्यस्मादनन्तरमितराच्छन्दसीति वक्तव्यं नेतराच्छन्दसीति वचनं योगविभागार्थम् ॥ एकतराद्धि सर्वत्र छन्दसि भाषायां प्रतिषेध इष्यते ॥ एकतरं तिष्ठति । एकतरं पश्येति ॥

युष्मदस्मद्भ्यां ङसो ऽश् ॥ २७ ॥

युष्मदस्मदित्येताभ्यामुत्तरस्य ङसो ऽशित्ययमादेशो भवति । तव स्वम् । मम स्वम् । शित्करणं सर्वादेशार्थम् । अन्यथा ह्यादेशव्यपदेशप्रक्लृप्त्यर्थमादेव स्यात् ततश्च योचीत्येतन्न स्यात् ॥

ङे प्रथमयोरम् ॥ २८ ॥

ङे इत्यविभक्तिको निर्देशः । ङे इत्येतस्य प्रथमयोश्च विभक्त्योः प्रथमाद्वितीययोर्युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरयोरमित्ययमादेशो भवति । तुभ्यं दीयते । मह्यं दीयते । प्रथमयोः । त्वम् । अहम् । युवाम् । आवाम् । यूयम् । वयम् । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् ॥

शसो न ॥ २९ ॥

युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य शसो नकारादेशो भवति । युष्मान् ब्राह्मणान् । अस्मान् ब्राह्मणान् । युष्मान् ब्राह्मणीः । अस्मान् ब्राह्मणीः । युष्मान् कुलानि । अस्मान्कुलानि * ॥

---

* तस्माच्छसो नः पुंसीति सिद्धे स्त्रीनपुंसकार्थं वचनम् । अलिङ्गे वा युष्मदस्मदी । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

भ्यसो भ्यम् ॥ ३० ॥

युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य भ्यसो भ्यमित्ययमादेशो भवति। युष्मभ्यं दीयते। अस्मभ्यं दीयते। भ्यमादेशे कृते शेषे लोपे च बहुवचने झल्येदित्येत्वं प्राप्नोति। तदङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्येति न भवति। के चित्पुनरभ्यमादेशमेत्वनिवृत्त्यर्थं कुर्वन्ति। येषां तु शेषे लोपष्टिलोपस्तेषामभ्यमादेश एव। उदात्तनिवृत्तिस्वरश्चादेरेव भवति॥

पञ्चम्या अत् ॥ ३१ ॥

पञ्चम्या भ्यसो युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य अदित्ययमादेशो भवति। युष्मद्गच्छन्ति। अस्मद्गच्छन्ति॥

एकवचनस्य च ॥ ३२ ॥

पञ्चम्या एकवचनस्य युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्यादित्ययमादेशो भवति। त्वद्गच्छन्ति। मद्गच्छन्ति॥

साम आकम् ॥ ३३ ॥

साम इति षष्ठीबहुवचनमागतसुट्कं गृह्यते। तस्य युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्याकमित्ययमादेशो भवति। युष्माकम्। अस्माकम्। अथ किमर्थमागतसुट्को गृह्यते। नह्यादेशविधानकाले सुड्भवति। तस्यैव तु भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थम्। आदेशे कृते हि शेषे लोपे युष्मदस्मदोरकारान्तत्वात्सुट् प्राप्नोति। स स्थानिन्यन्तर्भूतत्वान्निवर्तते। दीर्घोच्चारणं सवर्णदीर्घार्थम्। अकमि तु सति ह्रस्वकरणे तद्विधानसामर्थ्यादेव सवर्णदीर्घत्वं न प्राप्नोति। तत्सामर्थ्यमेत्वं प्रति भविष्यतीति। अकारकरणमेत्वनिवृत्त्यर्थमिति। अतो गुणे पररूपत्वं स्यात्॥

आत औ णलः ॥ ३४ ॥

आकारान्तादङ्गादुत्तरस्य णल औकारादेशो भवति। पपौ। तस्थौ। जग्लौ। मम्लौ। अत्रौत्वमेकादेशः स्थानिवद्भावो द्विर्वचनमित्यनेन क्रमेण कार्याणि क्रियन्ते। एकादेशादनवकाशत्वादौत्वं द्विर्वचनादपि परत्वादेकादेश इति॥

तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ ३५ ॥

तु हि इत्येतयोराशिषि विषये तातङादेशो भवत्यन्यतरस्याम्। जीवताद्भवान्। जीवतात्त्वम्। जीवतु भवान्। जीव त्वम्। ङित्करणं गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थमिति सर्वादेशस्तातङ्भवति। ङित्त्वाच्चास्य स्थानिवद्भावाद्धल्पित्त्वं प्राप्नोति तन्निवर्त्तते, ङिच्च पिन्न भवति। तेन ब्रुव ईडिति ब्रूताद्भवानितीण् न भवति। आशिषीति किम्। ग्रामं गच्छतु भवान्। गच्छ त्वम्।

तातङि ङित्वं संक्रमकृत्स्यादन्त्यविधिश्चेतच्च तथा न ।
हेरधिकारे हेरधिकारो लोपविधौ तु ज्ञापकमाह ॥
तातङो ङित्वसामर्थ्यान्नायमन्त्यविधिः स्मृतः ।
न तद्वदनङादीनां तेन तेऽन्त्यविकारजाः ॥

विदेः शतुर्वसुः ॥ ३६ ॥

विद ज्ञानइत्येतस्माद्धातोरुत्तरस्य शतुर्वसुरादेशो भवति । विद्वान् । विद्वांसौ । विद्वांसः । स्थानिवद्भावादुगित्कार्ये सिद्धे वसोरुकारकरणं वसोः संप्रसारणमित्यत्र क्वसोरपि सामान्यग्रहणार्थम् । एकानुबन्धकग्रहणे न द्व्यनुबन्धकस्येत्येतदपि न भवति । तथा सत्युकारकरणमनर्थकं स्यात् । अन्यतरस्यांग्रहणं केचिदनुवर्त्तयन्ति । विदन् । विदन्तौ । विदन्तः ॥

समासे ऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ ३७ ॥

समासे ऽनञ्पूर्वे क्त्वा इत्येतस्य ल्यबित्ययमादेशो भवति । प्रकृत्य । प्रहृत्य । पार्श्वतःकृत्य । नानाकृत्य । द्विधाकृत्य । समासइति किम् । कृत्वा । हृत्वा । अनञ्पूर्वइति किम् । अकृत्वा । अहृत्वा । परमकृत्वा । उत्तमकृत्वा । अनञिति हि नञा ऽन्यदनञ् नञ्सदृशमव्ययं परिगृह्यते । तेन नञ् अनव्ययं चानञ् न भवति । स्नात्वाकालकादिषु मयूरव्यंसकादिषु निपातनाल्ल्यबादेशो न भवति । अथ वा समासइति निर्द्धारणे सप्तमी । तेन क्त्वान्तः समास एव परिगृह्यते । स च येन विधिस्तदन्तस्येत्यनेन तदन्तविधिना, न तु कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापीति । तथा चानञ्पूर्वइत्युच्यते । गतिकारकपूर्वस्यैव तु ग्रहणे सति नञ्पूर्वस्य प्रसङ्ग एव नास्ति । नञ्न गतिर्न च कारकमिति । प्रधाय प्रस्थायेत्यादिषु हिप्रभृतीनन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधतएवेति ज्ञापितम् ॥

क्त्वापि छन्दसि ॥ ३८ ॥

समासे ऽनञ्पूर्वे क्त्वा इत्येतस्य क्त्वा इत्ययमादेशो भवति अपिशब्दाल्ल्यबपि भवति छन्दसि विषये । कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा । प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा । ल्यबपि भवति । उद्धृत्य जुहोति । वाछन्दसीति नोक्तं सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम् । तेनासमासे ल्यब्भवति । अर्च्य तान् देवान् गतः । छन्दोधिकार आज्जसेरसुगिति यावत् * ॥

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ॥ ३९ ॥

छन्दसि विषये सुपां स्थाने सु लुक् पूर्वसवर्ण आ आत् शे या डा ड्या

---

* वा छन्दसीत्यारभ्य यावदित्यन्तः पाठः कुत्र चित्पुस्तके ऽस्ति ।

याच् आल् इत्येते आदेशा भवन्ति । सु । अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः । पन्थान इति प्राप्ते ॥ सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ धुरि दक्षिणायाः । दक्षिणायामिति प्राप्ते ॥ तिङां तिङो भवन्तीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । तक्षन्तीति प्राप्ते । लुक् । आर्द्रे चर्मन् । लोहिते चर्मन् । चर्मणीति प्राप्ते । हविर्द्धाने * यत्सुन्वन्ति तत्सामिधेनीरन्वाह । यस्मिन्सुन्वन्ति तस्मिन्सामिधेनीरिति प्राप्ते । पूर्वसवर्णः । धीती । मती । सुष्टुती । धीत्या मत्या सुष्टुत्या इति प्राप्ते । आ । उभा यन्तारौ । उभौ यन्तारौ इति प्राप्ते । आत् । न ताद्ब्राह्मणाद् निन्दामि । न तान् ब्राह्मणानिति प्राप्ते । शे । न युष्मे वाजबन्धवः । अस्मे इन्द्राबृहस्पती । यूयं वयमिति प्राप्ते । यूयादेशो वयादेशश्च छान्दसत्वान्न भवति । या । उरुया । धृष्णुया । उरुणा धृष्णुनेति प्राप्ते । डा । नाभा पृथिव्याम् । नाभौ पृथिव्यामिति प्राप्ते । ड्या । अनुष्ठ्या च्यावयतात् । अनुष्टुभेति प्राप्ते । याच् । साधुया । साध्विति सोर्लुकि प्राप्ते । आल् । वसन्ता यजेत । वसन्तइति प्राप्ते ॥ इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ इया । उर्विया परिधानम् । दार्विया । उरुणा दारुणेति प्राप्ते । डियाच् । सुक्षेत्रिया । सुगात्रिया । सुक्षेत्रिणा सुगात्रिणेति प्राप्ते । ईकारः । दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् । सरसि शयानमिति प्राप्ते ॥ आङ्याजयारामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ आङ् । प्रबाहवा । प्रबाहुनेति प्राप्ते । अयाच् । स्वप्नया सच सेवनम् । स्वप्नेनेति प्राप्ते । अयार् । सिन्धुमिव नावया । नावेति प्राप्ते † ॥

अमो मश् ॥ ४० ॥

अम् इति मिबादेशो गृह्यते । तस्य छन्दसि विषये मशादेशो भवति । वधीं वृत्रम् । क्रमीं वृक्षस्य शाखाम् ‡ । लुङि बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपीत्यडागमाभावः । शित्करणं सर्वादेशार्थम् । मकारस्यापि हि मकारवचनमनुस्वारनिवृत्त्यर्थं स्यात् ॥

लोपस्त आत्मनेपदेषु ॥ ४१ ॥

आत्मनेपदेषु यस्तकारस्तस्य छन्दसि विषये लोपो भवति । देवा अदुह्र । गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र । अदुहतेति प्राप्ते । दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयम् । दुग्धामिति प्राप्ते । दक्षिणतः शये । शेतइति प्राप्ते । अपीत्यधिकाराच्च भवति । तत्र आत्मानमनृतं कुरुते । आत्मनेपदेष्विति किम् । वत्सं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलम् ॥

---

* हविर्धानायेति पाठान्तरम् ।

† अयार्इति रेफ उपोत्तमं रितीत्युपोत्तमस्योदात्तार्थः । अधिकोयं पाठ एकस्मिन् पुस्तके ।

‡ अवधिषमक्रमिषमिति प्राप्ते । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

ध्वमो ध्वात् ॥ ४२ ॥

छन्दसि विषये ध्वमो ध्वादित्ययमादेशो भवति । अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् । वारयध्वमिति प्राप्ते ॥

यजध्वैनमिति च ॥ ४३ ॥

यजध्वमित्येतस्य एनमित्येतस्मिन्परतो मकारलोपो निपात्यते वकारस्य च यकारश्छन्दसि विषये । यजध्वैनं प्रियमेधाः । यजध्वमेनमिति प्राप्ते ॥

तस्य तात् ॥ ४४ ॥

तशब्दस्य लोण्मध्यमपुरुषबहुवचनस्य स्थाने तादित्ययमादेशो भवति । गात्रंगात्रमस्या नूनं कृणुतात् । कृणुतेति प्राप्ते । ऊवध्ये गोहं पार्थिवं खनतात् । खनतेति प्राप्ते । अस्मारद्धः संसृजतात् । संसृजतेति प्राप्ते । सूर्यं चक्षुर्गमयतात् । गमयतेति प्राप्ते ॥

तप्तनप्तनथनाश्च ॥ ४५ ॥

तस्येति वर्त्तते । छन्दसि विषये तस्य स्थाने तप् तनप् तन थन इत्येते आदेशा भवन्ति । तप् । शृणोत ग्रावाणः । शृणुतेति प्राप्ते । सुनोत । सुनुतेति प्राप्ते । तनप् । संवरत्रा दधातन । धत्तेति प्राप्ते । तन । जुजुष्टन । जुषतेति प्राप्ते । छान्दसत्वात् श्लुः । थन । यदिष्ठन । यदिच्छतेति प्राप्ते । पित्करणमङित्त्वार्थम् ॥

इदन्तो मसि ॥ ४६ ॥

छन्दसि विषये मसित्ययं शब्द इकारान्तो भवति । मसः सकारान्तस्य इकारागमो भवति स च तस्यान्तो भवति, तद्ग्रहणेन गृह्यतइत्यर्थः । पुनस्त्वां दीपयामसि । दीपयाम इति प्राप्ते । शलभं भञ्जयामसि । भञ्जयाम इति प्राप्ते । त्वयि रात्रिं वासयामसि । वासयाम इति प्राप्ते ॥

क्त्वो यक् ॥ ४७ ॥

क्त्वा इत्येतस्य यगागमो भवति छन्दसि विषये । दत्वाय सविता धियः । दत्वेति प्राप्ते । क्त्वापिच्छन्दसीत्यस्यानन्तरमिदं कस्मान्नोच्यते । समासइति तत्रानुवर्त्तते ॥

इष्ट्वीनमिति च ॥ ४८ ॥

इष्ट्वीनमित्ययं शब्दो निपात्यते छन्दसि विषये । यजेः क्त्वाप्रत्ययान्तस्य ईनमादेशोऽन्त्यस्य निपात्यते । इष्ट्वीनं देवान् । इष्ट्वा देवानिति प्राप्ते ॥ पीत्वीनमित्यपीष्यते ॥ चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात्सिद्धम् ॥

स्नात्व्यादयश्च ॥ ४९ ॥

स्नात्वी इत्येवमादयः शब्दा निपात्यन्ते छन्दसि विषये । स्नात्वी मलादिव । स्नात्वेति । प्राप्ते । पीत्वी सोमस्य वावृधे । पीत्वेति प्राप्ते । प्रकारार्थोऽयमादिशब्दः ॥

आज्जसेरसुक् ॥ ५० ॥

अवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य जसेरसुगागमो भवति छन्दसि विषये । ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः । ब्राह्मणाः सोम्या इति प्राप्ते । ये पूर्वासो यउपरास इत्यत्र परत्वादसुकि पुनः प्रसङ्गविज्ञानाच्छाभावः प्राप्तः । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति न भवति ॥

अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ॥ ५१ ॥

छन्दसीत्यतः प्रभृति निवृत्तम् । अश्व क्षीर वृष लवण इत्येतेषामङ्गानामात्मप्रीतिविषये क्यचि परतोऽसुगागमो भवति । अश्वस्यति वडवा । क्षीरस्यति माणवकः । वृषस्यति गौः । लवणस्यत्युष्ट्रः । आत्मप्रीताविति किम् । अश्वीयति । क्षीरीयति । वृषीयति । लवणीयति ॥ अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्षीरलवणयोर्लालसायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तृष्णातिरेको लालसा । अन्यत्रात्मप्रीतावपि न भवति । अपर आह ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामसुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ दध्यस्यति, मध्वस्यति, इत्येवमाद्यर्थम् । अपर आह ॥ सुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ दधिस्यति, मधुस्यति, इत्येवमाद्यर्थम् ॥

आमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ ५२ ॥

आदिति वर्त्तते । अवर्णात्सर्वनाम्न उत्तरस्यामः सुडागमो भवति । सर्वेषाम् । विश्वेषाम् । येषाम् । तेषाम् । सर्वासाम् । यासाम् । तासाम् । आदित्येव । भवताम् । आमीति षष्ठीबहुवचनं गृह्यते, न ङेराम् नद्याम्नीभ्य इति, तस्य हि परत्वाद्याड्याट्स्याटो भवन्ति । यश्च घादामुः, आमश्च लिटि न तौ सर्वनाम्नः स्तः । सानुबन्धकाविति वा न गृह्येते । आमीति सप्तमीनिर्द्देश उत्तरार्थः । इह तु सर्वनाम्न इति पञ्चमीनिर्द्देशात्तस्मादित्युत्तरस्येति षष्ठीप्रकॢप्तिर्भविष्यति ॥

त्रेस्त्रयः ॥ ५३ ॥

त्रि इत्येतस्य आमि परे त्रय इत्ययमादेशो भवति । त्रयाणाम् ॥ त्रीणामित्यपि छन्दसीष्यते ॥ त्रीणामपि समुद्राणामिति ॥

ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ५४ ॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चोत्तरस्यामो नुडागमो भवति । ह्रस्वान्तात्तावत् । वृक्षाणाम् । प्लक्षाणाम् । अग्नीनाम् । वायूनाम् । कर्तृणाम् * ।

---

* चर्तृणामित्यपि बहुषु पुस्तकेष्वस्ति ।

नद्यन्तात् । कुमारीणाम् । किशोरीणाम् । गौरीणाम् । शार्ङ्गरवीणाम् । लक्ष्मीणाम् । ब्रह्मबन्धूनाम् । वीरबन्धूनाम् । आबन्तात् । खट्वानाम् । मालानाम् । बहुराजानाम् । कारीषगन्ध्यानाम् ॥

षट्चतुर्भ्यश्च ॥ ५५ ॥

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुःशब्दाच्चोत्तरस्यामो नुडागमो भवति । षण्णाम् । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । नवानाम् । दशानाम् । चतुर्णाम् । रेफान्तायाः संख्यायाः षट्संज्ञा न विहिता । षड्भ्यो लुगिति लुग् मा भूत् । बहुवचननिर्देशादत्र संख्याप्रधानस्य ग्रहणं भवति । परमषण्णाम् । परमपञ्चानाम् । परमसप्तानाम् । परमचतुर्णाम् । उपसर्जनीभूतायास्तु संख्याया न भवति । प्रियषषाम् । प्रियपञ्चाम् । प्रियचतुरामिति ॥

श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ॥ ५६ ॥

श्री ग्रामणी इत्येतयोश्छन्दसि विषये आमो नुडागमो भवति । श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् । अप्यत्र सूतग्रामणीनाम् । श्रीशब्दस्य वामीति विकल्पेन नदीसंज्ञा तत्र नित्यार्थं वचनम् । सूतग्रामणीनामिति यदा सूताश्च ते ग्रामण्यश्च सूतग्रामण्यो भवन्ति तदर्थमिदं वचनम् । यदा तु सूतश्च ग्रामणीश्च सूतग्रामणि । सूतग्रामणि च सूतग्रामणि च सूतग्रामणि चेति सूतग्रामणीनामिति, तदा ह्रस्वादित्येव सिद्धम् ॥

गोः पादान्ते ॥ ५७ ॥

गो इत्येतस्मादृक्पादान्ते वर्त्तमानादुत्तरस्यामो नुडागमो भवति । विद्मा हि त्वा सत्पतिं शूरगोनाम् । पादान्तइति किम् । गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः । सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्तइति पादान्तेपि क्व चिन्न भवति । हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥

इदितो नुम् धातोः ॥ ५८ ॥

इदितो धातोर्नुमागमो भवति । कुडि । कुण्डिता । कुण्डितुम् । कुण्डितव्यम् । हुडि । हुण्डिता । हुण्डितुम् । हुण्डितव्यम् । कुण्डा । हुण्डा । इदित इति किम् । पचति । पठति । अयं धातूपदेशावस्थायामेव नुमागमो भवति, कुण्डा हुण्डेति गुरोश्च हल इत्यकारप्रत्ययो यथा स्यात् । तथा हि धिन्विकृण्व्योर चेति प्रत्ययविधावेव नुमनुषक्तयोर्ग्रहणम् । धातुग्रहणं चेह क्रियते धातूपदेशकालएव नुमागमो यथा स्यादित्येवमर्थम् । तासिसिचोरिदित्कार्यं नास्तीत्युच्चारणार्थो निरनुनासिक इकारः पठ्यते । अमंस्तेत्येवमादौ हि हनः सिजिति कित्त्वविधानसामर्थ्याद्वकारलोपो न भवति । मन्तेत्यत्रा-

प्यसिद्धवदत्राभादिति टिलोपस्यासिद्धत्वाचलोपो न भवति इह कस्मान्न भवति । भेत्ता छेत्तेति । इरितां समुदायस्येत्संज्ञेतीदित्त्वं नास्ति । अवयवशो पीत्संज्ञायां सत्यां गेः पादान्तइतोन्तग्रहणमनुवर्त्तयितव्यम् । तेनान्तेदितो धातवो गृह्यन्ते ॥

शे मुचादीनाम् ॥ ५९ ॥

शे प्रत्यये परतो मुचादीनां नुमागमो भवति । मुच्लृ । मुञ्चति । लुप्लृ । लुम्पति । विद्लृ । विन्दति । लिपि । लिम्पति । सिचि । सिञ्चति । कृती । कृन्तति । खिद । खिन्दति । पिश । पिंशति । शे इति किम् । मोक्ता । मोक्तुम् । मोक्तव्यम् । मुचादीनामिति किम् । तुदति । नुदति ॥ शे तृम्फादीनामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ के पुनस्तृम्फादयः । तृफ तृम्फ तृप्तौ । दृफ दृम्फ उत्क्लेशे । गुफ गुम्फ ग्रन्थे । उभ उम्भ पूरणे । शुभ शुम्भ शोभार्थे, इत्यत्र ये सानुषङ्गास्तृम्फादय,स्तेषामनिदितां हल उपधायाः क्ङितीत्यनुनासिकलोपे कृते नुम्विधीयते । स च विधानसामर्थ्यान्न लुप्यते । तृम्फति । दृम्फति । गुम्फति । उम्भति । शुम्भति । ये तु निरनुषङ्गास्तेषां तृफति दृफति गुफति उभति शुभतीत्येवं भवति ॥

मस्जिनशोर्झलि ॥ ६० ॥

मस्जि नशि इत्येतयोरङ्गयोर्झलादौ प्रत्यये नुमागमो भवति । मङ्क्ता । मङ्क्तुम् । मङ्क्तव्यम् । नंष्टा । नंष्टुम् । नंष्टव्यम् । झलीति किम् । मज्जनम् । नशिता ॥ मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गादिलोपार्थम् ॥ मग्नः । मग्नवान् ॥

रधिजभोरचि ॥ ६१ ॥

रधि जभि इत्येतयोरजादौ प्रत्यये नुमागमो भवति । रन्धयति । रन्धकः । साधुरन्धी । रन्धो वर्त्तते । जम्भयति । जम्भकः । साधुजम्भी । जम्भंजम्भम् । जम्भो वर्त्तते । परापि सती वृद्धिर्नुमा बाध्यते नित्यत्वात् । अचीति किम् । रद्धा । जभ्यम् ॥

नेट्यलिटि रधेः ॥ ६२ ॥

इडादावलिटि प्रत्यये परे रधेर्नुमागमो न भवति । रधिता । रधितुम् । रधितव्यम् । इटीति किम् । रन्धनम् । रन्धकः । अलिटीति किम् । ररन्धिव । ररन्धिम । नुमि कृते संयोगान्तत्वादसंयोगाल्लिट्कित्विति कित्त्वं नास्तीति नलोपो न भवति । अथ क्वसौ कथं भवितव्यं, रेधिवानिति । कथ,मेत्वाभ्यासलोपयोः कृतयोरिडागमः क्रियते ततो नुमागमस्तस्यौपदेशिककित्त्वाश्रयो लोपः । अथ इटिं लिटीत्येवं नियमः कस्मान्न क्रियते लिट्येवेटि नान्यत्रेति ।

विपरीतमप्यवधारणं संभाव्यते इट्येव लिटि नान्यत्रेति । तथा हि सति ररन्धे-त्यत्र न स्यात्, रधितेत्यत्र च स्यादेव ॥

रभेरशब्लिटोः ॥ ६३ ॥

रभेरङ्गस्य शब्लिड्वर्जिते ऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति । आरम्भयति । आरम्भकः । साध्वारम्भी । आरम्भमारम्भम् । आरम्भो वर्त्तते । अशब्लिटोरिति किम् । आरभते । आरेभे । अचीत्येव । आरब्धा ॥

लभेश्च ॥ ६४ ॥

लभेश्चाजादौ प्रत्यये शब्लिड्वर्जिते नुमागमो भवति । लम्भयति । लम्भकः । साधुलम्भी । लम्भंलम्भम् । लम्भो वर्त्तते । अशब्लिटोरित्येव । लभते । लेभे । अचीत्येव । लब्धा । लभेश्च पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

आङो यि ॥ ६५ ॥

आङ उत्तरस्य लभेर्यकारादिप्रत्ययविषये नुमागमो भवति । आलम्भ्या गौः । आलम्भ्या वडवा । प्राक्प्रत्ययोत्पत्तेर्नुमि कृते विहतमदुपधत्वमिति ऋहलोर्ण्यदिति ण्यत्प्रत्ययस्तत्र कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेनान्तस्वरत्वेनान्तस्वरितत्वं भवति । यति तु पुनरुत्तरपदाद्युदात्तत्वं स्यात् । आङ इति किम् । लभ्यः * । कथमग्निष्टोम आलभ्य इति । सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते । अथ वा आलभ्य इत्यत्र नुमि कृते ऽनुषङ्गलोपः क्रियते ॥

उपात्प्रशंसायाम् ॥ ६६ ॥

उपादुत्तरस्य लभेः प्रशंसायां गम्यमानायां यकारादिप्रत्ययविषये नुमागमो भवति । उपलम्भ्या भवता विद्या । उपलम्भ्यानि धनानि । ण्यत्प्रत्ययान्तत्वादन्तस्वरितत्वमेव । प्रशंसायामिति किम् । उपलभ्यमस्माद्वृषलात्किंचित् । पोरदुपधत्वाद्यत्प्रत्ययान्तमिदम् ॥

उपसर्गात्खल्घञोः ॥ ६७ ॥

उपसर्गादुत्तरस्य लभेः खल्घञोः परतो नुमागमो भवति । ईषत्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । घञि । प्रलम्भो, विप्रलम्भः । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । उपसर्गादेव लभेः खल्घञोः परतो नुमागमो भवति, नान्यत्र । ईषल्लभः । लाभो वर्त्तते ॥

न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ॥ ६८ ॥

सु दुरित्येताभ्यां केवलाभ्यामन्योपसर्गरहिताभ्यामुपसृष्टस्य लभेः खल-

* अदुपधत्वाद्यत्प्रत्ययान्तमेतत् । यीति किम् । आलब्धा । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

घञोः परतो नुमागमो भवति । सुलभम् । दुर्लभम् । घञि । सुलाभो दुर्लाभः । केवलाभ्यामिति किम् । सुप्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुदुर्भ्यामिति तृतीयां मत्वा केवलग्रहणं क्रियते । पञ्चम्यां हि व्यवहितत्वादेवाप्रसङ्गः । अतिसुलभमित्यत्र कर्म्मप्रवचनीयत्वादतेः केवल एव सुशब्द उपसर्ग इति भवति प्रतिषेधः । यदा त्वतिशब्दो न कर्मप्रवचनीयस्तदा नुम्भवत्येवातिसुलम्भ इति । पञ्चमीनिर्द्देशपक्षेप्येवमर्थं केवलग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

विभाषा चिण्णमुलोः ॥ ६९ ॥

चिण् णमुल् इत्येतयोर्विभाषा लभेर्नुम्भवति । अलाभि । अलम्भि । लाभम् २ । लम्भम् २ । व्यवस्थितविभाषा चेयं, तेनानुपसृष्टस्य विकल्प, उपसृष्टस्य नित्यं नुम्भवति । प्रालम्भि । प्रलम्भम् ॥

उगिदचां सर्वनामस्थाने ऽधातोः ॥ ७० ॥

उगितामङ्गानां धातुवर्जितानामञ्चतेश्च सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति । भवतु । भवान् । भवन्तौ । भवन्तः । ईयसुन् । श्रेयान् । श्रेयांसौ । श्रेयांसः । शतृ । पचन् । पचन्तौ । पचन्तः । अञ्चतेः । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । उगिदचामिति किम् । दृषत् । दृषदौ । दृषदः । सर्वनामस्थानइति किम् । भवतः पश्य । श्रेयसः पश्य । अञ्चतिग्रहणं नियमार्थम्, अञ्चतेरेव धातोरन्यस्य मा भूत् । उखास्रत् । पर्णध्वत् । अधातोरिति किम् । अधातुभूतपूर्वस्य यथा स्यात् । गोमन्तमिच्छति गोमत्यति, गोमत्यतेरप्रत्ययः, गोमान् । अत्र हि धातुत्वादञ्चतिग्रहणाच्च स्यात् ॥

युजेरसमासे ॥ ७१ ॥

युजेरसमासे सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । असमासइति किम् । अश्वयुक् । अश्वयुजौ । अश्वयुजः । युजेरितीकारनिर्द्देशाद् युज समाधावित्यस्य ग्रहणं न भवति । युजमापन्ना ऋषयः ॥

नपुंसकस्य झलचः ॥ ७२ ॥

नपुंसकस्य झलन्तस्याजन्तस्य च सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति । उदश्विन्ति । शकृन्ति । यशांसि । पयांसि । अजन्तस्य । कुण्डानि । वनानि । त्रपूणि । जतूनि । नपुंसकस्येति किम् । अग्निचिद्ब्राह्मणः । झलच इति किम् । बहुपुरि । बहुधुरि । विमलदिवि । चत्वारि । अहानि । उगितो झलन्तस्य नपुंसकस्य परत्वादनेनैव नुम्भवति । श्रेयांसि भूयांसि कुर्वन्ति कृषन्ति ब्राह्मणकुलानि ॥ बहूर्जि प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ बहूर्जि ब्राह्मणकुलानि ॥ अन्त्यात्पूर्वं नुममेकइच्छन्ति ॥ बहूर्न्जि ब्राह्मणकुलानि ॥

इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७३ ॥

इगन्तस्य नपुंसकस्याङ्गस्याजादौ विभक्तौ नुमागमो भवति । त्रपुणी । जतुनी । तुम्बुरुणी । त्रपुणे । जतुने । तुम्बुरुणे । इक इति किम् । कुण्डे । पीठे । अज्ग्रहणमुत्तरार्थम् । यद्येवं, तत्रैव कर्तव्यम् । इह तु करणे एतत्प्रयोजनं हे त्रपो इत्यत्र नुम् मा भूदिति, । न ङिसंबुद्ध्योरिति नलोपप्रतिषेधः स्यात् । ननु च न लुमताङ्गस्येति प्रत्ययलक्षणे प्रतिषिद्धे विभक्तिरेव नास्ति । एतदेवाज्ग्रहणं ज्ञापकं प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधोऽत्र न भवतीति । तथा च संबुद्धिगुणः क्रियते । विभक्ताविति किम् । तौम्बुरवं चूर्णम् ।

इकोऽचि व्यञ्जने माभूदस्तु लोपः स्वरः कथम् ।
स्वरो वै श्रूयमाणो पि लुप्ते किं न भविष्यति ॥
णत्वं तिसृभावश्च व्यवधानान्नुमा अपि ।
नुड् वाच्य उत्तरार्थं तु इह किं चित्रपो इति ॥

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ॥ ७४ ॥

तृतीयादिषु विभक्तिष्वजादिषु भाषितपुंस्कं नपुंसकलिङ्गमिगन्तं गालवस्याचार्यस्य मतेन पुंवद्भवति । यथा पुंसि ह्रस्वनुमौ न भवतस्तद्वदत्रापि न भवत इत्यर्थः । ग्रामणीर्ब्राह्मणः । ग्रामणि ब्राह्मणकुलम् । ग्रामण्या ब्राह्मणकुलेन । ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन । ग्रामण्ये ब्राह्मणकुलाय । ग्रामणिने ब्राह्मणकुलाय । ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलात् । ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलात् । ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलस्य । ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलस्य । ग्रामण्योर्ब्राह्मणकुलयोः । ग्रामणिनोर्ब्राह्मणकुलयोः । ग्रामण्यां ब्राह्मणकुलानाम् । नुमचिरेति पूर्वविप्रतिषेधेन नुट् । ग्रामणीनां ब्राह्मणकुलानाम् । ग्रामण्यां ब्राह्मणकुले । ग्रामणिनि ब्राह्मणकुले । शुचिर्ब्राह्मणः । शुचि ब्राह्मणकुलम् । शुचिना ब्राह्मणकुलेन २ । शुचये ब्राह्मणकुलाय । शुचिने ब्राह्मणकुलाय । शुचेर्ब्राह्मणकुलात् । शुचिनो ब्राह्मणकुलात् । शुचेर्ब्राह्मणकुलस्य । शुचिनो ब्राह्मणकुलस्य । शुच्योर्ब्राह्मणकुलयोः । शुचिनोर्ब्राह्मणकुलयोः । शुचौ ब्राह्मणकुले । शुचिनि ब्राह्मणकुले । तृतीयादिष्विति किम् । ग्रामणिनी ब्राह्मणकुले । शुचिनी ब्राह्मणकुले । भाषितपुंस्कमिति किम् । त्रपुणे । जतुने । इह कस्मान्न भवति । पीलुर्वृक्षः पीलु फलं, पीलुने फलायेति । समानायामाकृतौ यद्भाषितपुंस्कं तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते तस्य पुंवद्भावः । इह तु वृक्षाकृतिः प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि शब्दस्य । फलाकृतिर्नपुंसके । तदेतदेवं कथं भवति भाषितपुंस्कमिति । भाषितः पुमान्यस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कशब्देनोच्यते ।

तद्योगादभिधेयमपि यद् नपुंसकं तदपि भाषितपुंस्कम् । तस्य प्रतिपादिकं यच्छब्दरूपं तदपि भाषितपुंस्कमिति । इक इत्येव । कीलालपा ब्राह्मणाः । कीलालपं ब्राह्मणकुलम् । कीलालपेन ब्राह्मणकुलेन । अचीत्येव । ग्रामणिभ्यां ब्राह्मणकुलाभ्याम् ॥

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ॥ ७५ ॥

अस्थि दधि सक्थि अक्षि इत्येतेषां नपुंसकानां तृतीयादिष्वजादिषु विभक्तिषु परतो ऽनङित्ययमादेशो भवति, स चोदात्तो भवति । अस्थ्ना । अस्थ्ने । दध्ना । दध्ने । सक्थ्ना । सक्थ्ने । अक्ष्णा । अक्ष्णे । अस्थ्यादय आद्युदात्तास्तेषामनङादेशः स्थानिवद्भावादनुदात्तः स्यादित्युदात्तवचनम् । तत्र भसंज्ञायामल्लोपे कृते उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तिरुदात्ता भवति ॥ एतैरस्थ्यादिभिर्नपुंसकैरनपुंसकस्याप्यङ्गस्य तदन्तग्रहणमिष्यते ॥ प्रियास्थ्ना ब्राह्मणेन । प्रियदध्ना * । तृतीयादिष्विति किम् । अस्थिनी । दधिनी । अचीत्येव । अस्थिभ्याम् । दधिभ्याम् ॥

छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७६ ॥

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ् छन्दस्यपि दृश्यते । यत्र विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते । अचीत्युक्तमनजादावपि दृश्यते । इन्द्रो दधीचो अस्थभिः । भद्रं पश्येमाक्षभिः । तृतीयादिष्वित्युक्तमतृतीयादिषु दृश्यते । अस्थान्युत्कृत्य जुहोति । विभक्तावित्युक्तमविभक्तावपि दृश्यते । अक्षण्वता लाङ्गलेन । अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ॥

ई च द्विवचने ॥ ७७ ॥

द्विवचने परतश्छन्दसि विषये ऽस्थ्यादीनामीकारादेशो भवति, स चोदात्तः । अक्षी ते इन्द्रपिङ्गले कपेरिव । अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम् । अक्षी इत्यत्र नुम्प्रत्त्वादीकारेण बाध्यते । तत्र कृते सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति पुनर्नुम्न क्रियते ॥

नाभ्यस्ताच्छतुः ॥ ७८ ॥

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य शतुर्नुम्न भवति । ददत् । ददतौ । ददतः । दधत् । दधतौ । दधतः । जक्षत् । जक्षतौ । जक्षतः । जाग्रत् । जाग्रतौ । जाग्रतः । शतुरनन्तर ईकारो न विहित इति व्यवहितस्यापि नुमः प्रतिषेधो विज्ञायते ॥

वा नपुंसकस्य ॥ ७९ ॥

---

* प्रियास्थ्ने । प्रियदध्ने । प्रियसक्थ्ना । प्रियसक्थ्ने । प्रियाक्ष्णा । प्रियाक्ष्णे । एतान्युदाहरणान्यधिकान्येकस्मिन् पुस्तके ।

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरो यः शतृप्रत्ययस्तदन्तस्य नपुंसकस्य वा नुमागमो भवति । ददति ददन्ति कुलानि । दधति दधन्ति कुलानि । जक्षति जक्षन्ति कुलानि । जाग्रति जाग्रन्ति कुलानि ॥

आच्छीनद्योर्नुम् ॥ ८० ॥

अवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य शतुर्वा नुमागमो भवति शीनद्योः परतः । तुदती कुले । तुदन्ती कुले । तुदन्ती ब्राह्मणी । तुदती ब्राह्मणी । याती कुले । यान्ती कुले । याती ब्राह्मणी । यान्ती ब्राह्मणी । करिष्यती कुले । करिष्यन्ती कुले । करिष्यती ब्राह्मणी । करिष्यन्ती ब्राह्मणी । अत्रान्तरङ्गत्वादेकादेशे कृते व्यपवर्गाभावादवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य शतुरिति न युज्यते वक्तुम् । उभयत आश्रये नान्तादिवदित्यन्तादिवद्भावोपि नास्ति । भूतपूर्वगत्याश्रयणे वा ऽदती घ्नतीत्येवमादिष्वतिप्रसङ्ग इति । अत्र समाधिं केचिदाहुः । शतुरवयवे शतृशब्दो वर्त्तते । अवर्णान्तादङ्गादुत्तरो यः शत्रवयव इति * । अपरे पुनराहुः । आदित्येतेन शीनद्यावेव विशेष्येते । अवर्णान्तादङ्गादुत्तरे ये शीनद्यौ तयोः परतः शत्रन्तस्य नुम्भवतीति । तत्र येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रामाण्यादिति तकारेणैव व्यवधानमाश्रयिष्यते । आदिरिति किम् । कुर्वती । सुन्वती । शीनद्योरिति किम् । तुदताम् । नुदताम् ॥

शप्श्यनोर्नित्यम् ॥ ८१ ॥

शप् श्यन् इत्येतयोः शतुः शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति । पचन्ती कुले । पचन्ती ब्राह्मणी । दीव्यन्ती कुले । दीव्यन्ती ब्राह्मणी । सीव्यन्ती कुले । सीव्यन्ती ब्राह्मणी । नित्यग्रहणं वेत्यस्याधिकारस्य निवृत्त्यर्थम् । इहारम्भसामर्थ्यान्नित्यमुत्तरत्र विकल्प एवेत्याशङ्क्येत ॥

सावनडुहः ॥ ८२ ॥

सौ परतो ऽनडुहोऽङ्गस्य नुमागमो भवति । अनड्वान् । हे अनड्वन् । अत्र केचिदादित्यधिकारादाममोः कृतयोर्नुमं कुर्वन्ति । तेन नुमामामागमौ न बाध्येते, आममभ्यां च नुमिति । अपरे तु सत्यपि सामान्यविशेषत्वे आममोर्नुमश्च समावेशमिच्छन्ति । न बाध्यबाधकभावं, यथा चिचीषत्यादिषु दीर्घत्वद्विर्वचनयोरिति ॥

दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥ ८३ ॥

दृक् स्ववस् स्वतवस् इत्येतेषां सौ परतो नुमागमो भवति छन्दसि विषये । ईदृङ् । तादृङ् । यादृङ् । सदृङ् । स्ववान् । स्वतवान्पायुरग्ने ॥

* यथा ग्रामो दग्ध इति ग्रामैकदेशे ग्रामशब्दो निर्दिश्यतइत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

दिव औत् ॥ ८४ ॥

दिवित्येतस्य सौ परतो औदित्ययमादेशो भवति । द्यौः । दिविति प्रातिपदिकमस्ति निरनुबन्धकम् । धातुस्तु सानुबन्धकः स इह न गृह्यते । अक्षद्यूः ॥

पथिमथ्यृभुक्षामात् ॥ ८५ ॥

पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन् इत्येतेषामङ्गानां सौ परत आकार आदेशो भवति । पन्थाः । मन्थाः । ऋभुक्षाः । स्थानिन्यनुनासिके ऽपि आकारो ऽनुनासिको न भवति । भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न भवतीति * शुद्ध एवायमुच्चार्यते ॥

इतोत्सर्वनामस्थाने ॥ ८६ ॥

पथ्यादीनामिकारस्य स्थाने आकारादेशो भवति । सर्वनामस्थाने परतः । पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः । मन्थाः । मन्थानौ । मन्थानः । मन्थानम् । मन्थानौ । पन्थानम् । पन्थानौ । ऋभुक्षाः । ऋभुक्षाणौ । ऋभुक्षाणः । ऋभुक्षाणम् । ऋभुक्षाणौ । आदिति वर्त्तमाने पुनरत्वचनं तपरार्थम् । ऋभुक्षणमित्यत्र वा षपूर्वस्य निगमइति दीर्घविकल्पः ॥

थो न्थः ॥ ८७ ॥

पथिमथोस्थकारस्य स्थाने न्थ इत्ययमादेशो भवति सर्वनामस्थाने परतः । पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः । मन्थाः । मन्थानौ । मन्थानः ॥

भस्य टेर्लोपः ॥ ८८ ॥

पथ्यादीनां भसंज्ञकानां टेर्लोपो भवति । पथः । पथा । पथे । मथः । मथा । मथे । ऋभुक्षः । ऋभुक्षा । ऋभुक्षे । सर्वनामस्थानइत्यनुवर्त्तमानमपि विरोधादिह न संबध्यते ॥

पुंसो ऽसुङ् ॥ ८९ ॥

पुंस इत्येतस्य सर्वनामस्थाने परतो ऽसुङित्ययमादेशो भवति । पुमान् । पुमांसौ । पुमांसः † । इह परमपुमानिति प्रागेव विभक्त्युत्पत्तेः समासान्तोदात्तत्वमुत्पद्यायां विभक्तौ असुङित्यनिष्टः स्वरः प्राप्नोति । तदर्थमसुङुपदेशिवद्वचनं कर्त्तव्यम् । तेन परमपुमानित्यन्तोदात्तो भवति । पुमानित्ययं पुनराद्युदात्त एव ॥

गोतो णित् ॥ ९० ॥

---

* भाव्यमानो ऽण् सवर्णान् न गृह्णातीति पा० २ ।

† सर्वनामस्थान इत्येव । पुंसः पश्येत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

गोशब्दात्परं सर्वनामस्थानं णिद्भवति । णित्कार्याणि तत्र भवन्तीत्यर्थः । गौः । गावौ । गावः । तपरकरणं किम् । चित्रगुः । शबलगुः । कथं हे चित्रगो हे शबलगव* इति, अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्येति संबुद्धिनिमित्ते गुणे कृते णित्त्वं न भवति । अथ वा गोत इति संबन्धलक्षणा षष्ठी । गोतः संबन्धि यत्सर्वनामस्थानमिति । यच्च तदर्थस्यैकत्वादिषु सर्वनामस्थानं तद्गोः सर्वनामस्थानमित्युच्यते । चित्रगुशब्दात्तु सर्वनामस्थानं तदन्यपदार्थस्यैकत्वादीनाह । तपरकरणं तु निर्देशार्थमेव । के चिदोतो णिदिति पठन्ति । द्योशब्दादपि विद्यते तदर्थम् । द्यौः । द्यावौ । द्यावः । गोत इत्येव तपरकरणनिर्देशादोकारान्तोपलक्षणं द्रष्टव्यम् । वर्णनिर्देशेषु हि तपरकरणं प्रसिद्धम् ॥

णलुत्तमो वा ॥ ९१ ॥

उत्तमो णल्वा णिद् भवति । णित्कार्यं तत्र वा भवतीत्यर्थः । अहं चकर । अहं चकार । अहं पपच । अहं पपाच ॥

सख्युरसंबुद्धौ ॥ ९२ ॥

असंबुद्धौ यः सखिशब्दः तस्मात्परं सर्वनामस्थानं णिद्भवति । सखायौ । सखायः । असंबुद्धाविति किम् । हे सखे ॥

अनङ् सौ ॥ ९३ ॥

सखिशब्दस्य सौ परतो ऽनङित्ययमादेशो भवति स चेत्सुशब्दः संबुद्धिर्न भवति । सखा । असंबुद्धाविति किम् । हे सखे ॥

ऋदुशनस्पुरुदंशोनेहसां च ॥ ९४ ॥

ऋकारान्तानामङ्गानामुशनस् पुरुदंशस् अनेहस् इत्येतेषां चासंबुद्धौ सौ परतो ऽनङादेशो भवति । कर्त्ता । हर्त्ता । माता । पिता । भ्राता । उशना । पुरुदंशा । अनेहा । असंबुद्धावित्येव । हे कर्त्तः । हे मातः । हे पितः । हे पुरुदंशः । हे अनेहः । हे उशनः ॥ उशनसः संबुद्धावपि पक्षे ऽनङ् इष्यते ॥ हे उशनन् ॥ न ङिसंबुद्ध्योरिति नलोपप्रतिषेधोपि पक्षइष्यते ॥ हे उशन । तथा चोक्तम् ।

संबोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम् ।
माध्यंदिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ॥

इति । तपरकरणमसन्देहार्थम् ॥

तृज्वत्क्रोष्टुः ॥ ९५ ॥

क्रोष्टुशब्दस्तुन्प्रत्ययान्तः संज्ञाशब्दः सर्वनामस्थाने ऽसंबुद्धौ परतः तृज्वद्भवति । तृजन्तस्य यद्रूपं तदस्य भवतीत्यर्थः । रूपातिदेशोयम् । प्रत्या-

* हे चित्रगव इति पा० २ ।

सतेश्च क्रुशेरेव तृजन्तस्य यद्रूपं तदतिदिश्यते । तच्च क्रोष्टृ इत्येतदन्तोदात्तम् । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् । क्रोष्टारौ । सर्वनामस्थान इत्येव । क्रोष्टून् । असंबुद्धावित्येव । हे क्रोष्टो ॥

स्त्रियां च ॥ ९६ ॥

असर्वनामस्थानार्थमारम्भः । स्त्रियां च क्रोष्टुशब्दस्य तृज्वद्भवति । क्रोष्ट्री । क्रोष्ट्रीभ्याम् । क्रोष्ट्रीभिः । क्रोष्टुशब्दं के चिद्गौरादिषु पठन्ति । ते ङीषि प्रत्यये तृज्वद्भावं कुर्वन्ति । तेषां पञ्चभिः क्रोष्ट्रीभिः क्रीतैः पञ्चक्रोष्टृभीरथैरिति स्त्रीशब्दस्य * लुकि कृते न सिद्ध्यति । तत्र प्रतिविधेयम् । ये तु गौरादिषु न पठन्ति । तेषां स्त्रियामित्यर्थनिर्देशः, स्त्रियां वर्त्तमानः क्रोष्टुशब्दः तृज्वद्भवति । कृते ऽतिदेशे ऋन्नेभ्यो ङीबिति ङीप्प्रत्ययः । तत्रोदात्तयणो हल्पूर्वादित्यन्तोदात्त एव क्रोष्ट्रीशब्दो भवति ॥

विभाषा तृतीयादिष्वचि ॥ ९७ ॥

तृतीयादिषु विभक्तिष्वजादिषु क्रोष्टुर्विभाषा तृज्वद्भवति । क्रोष्ट्रा । क्रोष्टुना । क्रोष्ट्रे । क्रोष्टवे । क्रोष्टुः । क्रोष्ट्रोः । क्रोष्टरि । क्रोष्टौ । क्रोष्ट्रोः । क्रोष्ट्वोः । तृतीयादिष्विति किम् । क्रोष्टून् । अचीति किम् । क्रोष्टुभ्याम् । क्रोष्टुभिः ॥ तृज्वद्भावात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुम्नुटौ भवतः ॥ * ॥ प्रियक्रोष्टुवे ऽरण्याय । प्रियक्रोष्टुने वृषलाय । नुट् । क्रोष्टूनाम् ॥

चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ ९८ ॥

चतुर् अनडुह् इत्येतयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति, स चोदात्तः । चत्वारः । अनड्वान् । अनड्वाहौ । अनड्वाहः । अनड्वाहम् ॥ तदन्तविधिरत्रेष्यते ॥ प्रियचत्वाः । प्रियचत्वारौ । प्रियचत्वारः । प्रियानड्वान् । प्रियानड्वाहौ । प्रियानड्वाहः ॥ अनडुहः स्त्रियां वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अनडुही । अनड्वाही । गौरादिपाठात्सिद्धम् ॥

अम्संबुद्धौ ॥ ९९ ॥

संबुद्धौ परतश्चतुरनडुहोरमागमो भवति । पूर्वस्यायमपवादः । हे प्रियचत्वः । हे प्रियानड्वन् ॥

ॠत इद्धातोः ॥ १०० ॥

ॠकारान्तस्य धातोरङ्गस्य इकारादेशो भवति । किरति । गिरति । आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । धातोरिति किम् । पितॄणाम् । मातॄणाम् ॥ लाच-

* स्त्रीप्रत्ययस्येति पा० २ ।

णिकस्याप्यत्र ग्रहणमिष्यते ॥ चिकीर्षतीत्यत्रापि यथा स्यादिति धातुग्रहणं क्रियते * ॥

उपधायाश्च ॥ १०१ ॥

उपधायाश्च ऋकारस्य इकारादेशो भवति । कीर्त्तयति । कीर्त्तयतः । कीर्त्तयन्ति ॥

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ १०२ ॥

ओष्ठ्यः पूर्वो यस्माद् ऋकारादसावोष्ठ्यपूर्वस्तदन्तस्य धातोरङ्गस्य उकारादेशो भवति । पूर्त्ताः पिण्डाः । पुपूर्षति । मुमूर्षति । दन्त्योष्ठ्यपूर्वोप्योष्ठ्यपूर्वो भवतीत्यत्रापि भवति । वुवूर्षति ऋत्विजम् । प्रावुवूर्षति कम्बलम् । ओष्ठ्योऽत्र प्रत्यासत्तेरङ्गावयव एव गृह्यते तेन ऋ गतावित्यस्य संपूर्वस्य समीर्षमिति भवति † ॥ इत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन ॥ * ॥ आस्तरणम् । आस्तारकः । निपरणम् । निपारकः । निगरणम् । निगारकः ॥

बहुलं छन्दसि ॥ १०३ ॥

छन्दसि विषये ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य बहुलमुकारादेशो भवति । ओष्ठ्यपूर्वस्येत्युक्तमनोष्ठ्यपूर्वस्यापि भवति । मित्रावरुणौ ततुरिः । दूरे ह्यध्वा जगुरिः । ओष्ठ्यपूर्वस्यापि न भवति । पप्रितमम् । क्व चिद् भवति पपुरिः ॥

इति काशिकायां वृत्तौ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

॥ अथ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ॥ १ ॥

परस्मैपदे परे सिचि परत इगन्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्भवति । अचैषीत् । अनैषीत् । अलावीत् । अपाठीत् । अकार्षीत् । अहार्षीत् । अन्तरङ्गमपि गुणमेषां वृद्धिर्वचनाद्बाधते । न्यनुवीद् न्यधुवीद् इत्यत्र कुटादित्वाद् ङित्त्वे सति प्रतिषिद्धायां वृद्धावुवङादेशः क्रियते । परस्मैपदेष्विति किम् । अच्योष्ट । अप्लोष्ट ॥

अतो ल्रान्तस्य ॥ २ ॥

रेफलकारौ यावतः समीपौ तदन्तस्याङ्गस्य अत एव स्थाने वृद्धिर्भवति । क्षर । अक्षारीत् । त्सर । अत्सारीत् । ज्वल । अज्वालीत् । ह्मल । अह्मा-

---

* तपरकरणमसंदेहार्थमित्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

† तेनेह न भवति । समीर्षमिति । ऋ गतावित्यस्य संपूर्वस्य यद्यपि समो मकार ओष्ठ्यः पूर्वोऽस्ति तथाप्यङ्गावयवो न भवतीति समीर्षमित्यत्र न भवतीति पाठान्तरमेकस्मिन् पुस्तके ।

लीत् । अतो हलादेर्लघोरिति विकल्पस्यायमपवादः । अत इति किम् । न्यखो-रीत् । न्यमीलीत् । लान्तस्येति किम् । मा भवानशीत् । मा भवानटीत् । अन्तग्रहणं किम् । अवभीत् । अश्वल्लीत् । अत्र यौ रेफलकारावङ्गस्यान्तौ न तावतः समीपौ ॥

वदव्रजहलन्तस्याचः ॥ ३ ॥

वदव्रजोर्हलन्तानां चाङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदे परतः । अवादीत् । अव्राजीत् । विकल्पबाधनार्थं वदिव्रजिग्रहणम् । हलन्तानाम् । अपाक्षीत् । अभैत्सीत् । अच्छैत्सीत् । अरौत्सीत् । अत्र योगविभागे सति हलन्तग्रहणमन्तरेणापि सिद्ध्यति । कथं, वदिव्रज्योरित्यत्र प्रथमयोगे अत इति स्थानी अनुवर्त्तते । ततो यदच इति सूत्रं तच्चाङ्गेनाज्विशेष्यते । अङ्गस्याचः सिचि परतो वृद्धिर्भवति । तदेतद्धल्ग्रहणं हल्समुदायपरिग्रहार्थम् । इहापि स्यात् । अराङ्क्षीत् । अभाङ्क्षीत् । अन्यथा हि येन नाव्यधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यादित्येकेन वर्णेन व्यवधाने स्यादनेकेन हला न स्यात् । उदवो-ढामुदवोढमित्यत्र वहेः सिचि ढत्वसलोपादीनां पूर्वत्रासिद्धमित्यसिद्धत्वात्पूर्वं हलन्तलक्षणा वृद्धिः क्रियते पश्चाद् ढलोपनिमित्तमोत्वम् । तत्र कृते पुनर्वृ-द्धिर्न भवति, कृतत्वात् । यत्र त्वकृता वृद्धिरोकारस्यैव तत्र भवति । सोढामि-त्रस्यापत्यं सौढामित्रिरिति ॥

नेटि ॥ ४ ॥

इडादौ सिचि हलन्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्न भवति । अदेवीत् । असेवीत् । अकोषीत् । अमोषीत् । हलन्तस्येत्येव । अलावीत् । ननु च एतदप्यन्तरङ्गत्वा-द्गुणावादेशयोः । कृतयोर्हलन्तं भवति । नैतदेवम् । अन्तरङ्गमपि गुणं वचनार-म्भसामर्थ्यात्सिचि । वृद्धिर्बाधते इत्युक्तम् ॥

ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥ ५ ॥

हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानां क्षण श्वस जागृ णि श्वि इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदे परतो वृद्धिर्न भवति । ग्रह । अग्रहीत् । स्यम । अस्यमीत् । व्यय । अव्ययीत् । टुवम । अवमीत् । क्षणु । अक्षणीत् । श्वस् । अश्वसीत् । जागृ । अजागरीत् । णि । अनयीत् । एल-यीत् । श्वि । अश्वयीत् । एदिताम् । रगे । अरगीत् । कखे । अ कखीत् । ह्म्यन्तक्षणश्वसामेदितां च अतो हलादेर्लघोरिति । विकल्पे प्राप्ते प्रतिषेधः । जागृणिश्वीनां तु सिचि वृद्धिः प्राप्ता, सा च नेटीति न प्रतिषिध्यते । न चान्तरङ्गत्वादत्र पूर्वं गुणो भवति सिचि वृद्धेरनवकाशत्वात् । यदि पूर्वं गुणः

स्यादिह णिश्विग्रहणमनर्थकं स्यात् । गुणायादेशयोः कृतयोर्यकारान्तत्वादेव प्रतिषेधस्य सिद्धत्वात् । तस्मादिदमेव णिश्विग्रहणं ज्ञापकं न सिच्यन्तरङ्गम-स्तीति । अथ जागृग्रहणं किमर्थम् । जाग्रो विचिण्णल्ङित्सु इति जागर्त्तेर्गुणो वृद्धेरपवादो विधीयते । स यथा अचो ञ्णितीति वृद्धिं बाधते, तथा सिचि वृद्धिमपि बाधिष्यते । नैतदस्ति । कृते गुणे ऽतो ल्रान्तस्येति या वृद्धिः प्राप्नोति सा प्रतिषिध्यते । अथ गुणविधानसामर्थ्यादुत्तरकालभाविन्यपि वृद्धिर्बाध्यते । यथा जागरयतीत्यत्रात उपधाया इत्यपि वृद्धिर्न भवति । तथा चिण्णलोः प्रति-षेधोर्थवान्भवति इति शक्यमिह जागृग्रहणमकर्त्तुम् । तत्तु क्रियते विस्पष्टार्थम् ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ६ ॥

ऊर्णोतेरिडादौ सिचि परस्मैपदपरे परतो विभाषा वृद्धिर्नभवति । प्रौर्णावीत् । प्रौर्णवीत् । विभाषोर्णोरित्याङित्त्वपक्षे वृद्धिविकल्पोयम् । ङित्त्व-पक्षे तु गुणवृद्ध्योरभावे उवङ् भवति । प्रौर्णुवीत् ॥

अतो हलादेर्लघोः ॥ ७ ॥

हलादेरङ्गस्य लघोरकारस्य इडादौ सिचि परस्मैपदपरे परतो विभाषा वृद्धिर्न भवति । अकणीत् । अकाणीत् । अरणीत् । अराणीत् । अत इति किम् । अदेवीत् । असेवीत् । न्यकुटीत् न्यपुटीत् इत्यत्रात इत्यस्मिन्नसति स्थानिनिर्द्देशार्थमच इत्येतदनुवर्त्तयितव्यम् । तत्र अज्लक्षणा वृद्धिरिग्लक्षणा न भवतीति क्ङिति चेति प्रतिषेधो न स्यात् । हलादेरिति किम् । मा भवान-शीत् । मा भवानटीत् । लघोरिति किम् । अतक्षीत् । अरक्षीत् । अथेह कस्मान्न भवति अचकासीदिति । येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रा-माण्यादिति हलाव्यवधानमाश्रितं न पुनरचापि व्यवधानमिति वृद्धिर्न भवति । अथ पुनरेकेन वर्णेन व्यवधानमाश्रीयते न पुनरनेकेनेति कल्पने शक्यमर्तुं लघो-रिति, अतक्षीदित्यत्रानेकेन व्यवधानमिति न भविष्यति, तत्क्रियते विस्पष्टा-र्थम् । इटीत्येव । अपाक्षीत् ॥

नेड्वशि कृति ॥ ८ ॥

वशादौ कृति प्रत्यये परत इडागमो न भवति । वरमनादौ प्रयोज-नम् । ईशिता । ईशितुम् । ईश्वरः । दीपिता । दीपितुम् । दीप्तः । भसिता । भसितुम् । भस्म । याचिता । याचितुम् । याच्ञा । वरमनादौ इत्युदाहरण-प्रदर्शनार्थम् । न परिगणनम् । तेन अमन्ताड्ड इत्येवमादावपि हि प्रतिषेधो भवति । अथ तत्रोणादयो बहुलमिति समाधीयते । संभवोदाहरणप्रदर्शन-मेतत् । कृतीति किम् । रुदिव । रुदिम ॥

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ॥ ९ ॥

ति तु त्र त थ सि सु सर कस इत्येतेषु कृत्सु इडागमो न भवति । तीति क्तिन्क्तिचोः सामान्यग्रहणम् । क्तिच् । तनिता । तनितुम् । तन्तिः । क्तिन् । दीपिता । दीपितुम् । दीप्तिः । तु ॥ सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् ॥ सचिता । सचितुम् । सक्तुः । त्र । दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ष्ट्रन् । पतिता । पतितुम् । पत्त्रं वाहनम् । उणादिष्वपि सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् । तनिता । तनितुम् । तन्त्रम् । त ॥ हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन् ॥ हसिता । हसितुम् । हस्तः । लविता । लवितुम् । लोतः । पविता । पवितुम् । पोतः । धूर्विता । धूर्वितुम् । धूर्त्तः ॥ औणादिकस्यैव तशब्दस्य ग्रहणमिष्यते न पुनः क्तस्य ॥ हसितमित्येव हि तत्र भवति । थ । हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् । कोषिता । कोषितुम् । कुष्ठम् । काशिता । काशितुम् । काष्ठम् । सि । उषिशुषिकुषिभ्यः क्सिः । कोषिता । कोषितुम् । कुक्षिः ॥ सुक् च इषेः ॥ एषिता । एषितुम् । इक्षुः । सर ॥ अशेः क्सरन् ॥ अशिता । अशितुम् । अक्षरम् । क ॥ इणभीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन् ॥ शलिता । शलितुम् । शल्कः । स ॥ वृतृवदिहनिकमिकषियुमुचिभ्यः सः ॥ वदिता । वदितुम् । वत्सः ॥ तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ग्रहादयो ग्रहप्रकाराः । येषामिट् क्तिनि दृश्यते । विगृहीतिः । उपस्निहितिः । निकुचितिः । निपठितिः । कृतीत्येव । रोदिति । स्वपिति ॥

एकाच उपदेशे ऽनुदात्तात् ॥ १० ॥

उपदेशे य एकाच् धातुरनुदात्तश्च तस्मादिडागमो न भवति । प्रकृत्याश्रयो ऽयं प्रतिषेधः । के पुनरुपदेशेऽनुदात्ता, ये तथा पठ्यन्ते । तएव विस्पष्टार्थमनिट्कारिकासु प्रविभक्ताः प्रदर्श्यन्ते ।

> अनिट्स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः ।
> अदन्तमृदन्तमृतां च वृङ्वृञौ श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि ॥
> गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ क्षुवन्तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः ।
> इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥

द्वये एव धातवः स्वरान्ता व्यञ्जनान्ताश्च । तत्र सर्वे स्वरान्ता एकाचो ऽनुदात्ता अदन्तादीन्वर्ज्जयित्वा । दाता । नेता । चेता । स्तोता । कर्त्ता । हर्त्ता । अदन्तादय उदात्ताः । अवधिष्ट । ऋदन्तम् । तरिता । तरीता । ऋतां च वृङ्वृञौ । निर्वरिता । निर्वरीता । प्रवरिता । प्रवरीता । श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रियावपि । श्वयिता । उड्डयिता । शयिता । श्रयिता । गणस्थ-

मूदन्तम् । लविता । पविता । उतां च स्नुवौ नुवन्तयोर्णोतिमथो युणुद्गावः । रविता । प्रस्नविता । च्नविता । प्रोर्णविता । वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनमित्यतिदेशादेकाच्त्वमूर्णोतेरस्तीति उदात्त उपदिश्यते । यविता । नविता । क्ष्णविता । क्ष्णु तेजने

इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ।
शक्लिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी ॥

घसिः प्रकृत्यन्तरमस्ति । घस्ता । वसिः प्रसारणी । वस्ता । प्रसारणीति किम् । वसिता वस्त्राणाम् । वसनिवासइत्यस्य यजादित्वात्संप्रसारणं विहितं, न तु वस आच्छादनइत्यस्य ।

रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ।

आरब्धा । यब्धा । लब्धा ।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च, यश्च श्यनि पठ्यते मनिः ।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥

यन्ता । रन्ता । तन्ता । मन्ता । श्यनीति किम् । मनुतेर्मनितेत्येव भवति । नन्ता । हन्ता । गन्ता ।

दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः ।
इमे ऽनिटोष्टाविह मुक्तसंशया गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्तिताः ॥

देग्धा । दोग्धा । मेढा । रोढा । वोढा । नद्धा । दग्धा । लेढा । मुक्तसंशया इति किम् । तत्रान्तरे चत्वारो ऽपरे पठ्यन्ते । सहिमुहिरिहिलुहय,- स्तत्र सहेरिड्विकल्पस्तकारादौ । मुहिरपि रधादौ । तेन तौ ससंशयौ सविकल्पौ । इतरौ तु धातुषु न पठ्येते । कैश्चिदभ्युपगम्येते इति स्वरूपेणैव ससंशयौ ॥

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम् ।
लिशं च शान्ताननिटः पुराणगाः पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥

देष्टा । द्रष्टा । दंष्टा । आम्रष्टा । आमर्ष्टा । स्त्रष्टा । स्पर्ष्टा । ऋदुपधानामुदात्तोपदेशानां मृजिदृशी वर्जयित्वा अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्यामिति रमागमविकल्पः । रेष्टा । रोष्टा । क्रोष्टा । प्रवेष्टा । लेष्टा ।

रुधिः सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः ।
इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मतास्ततः परं सिद्ध्यतिरेव नेतरे ॥

रोद्धा । राद्धा । योद्धा । बंद्धा । साद्धा । क्रोद्धा । क्षोद्धा । शोद्धा । बोद्धा । व्यद्धा । सेद्धा । बुद्ध्यतिसिद्ध्यत्योः श्यना निर्देशादन्यविकरणयोर्बुद्धि-

सिद्धोरिड्भवत्येव । बोधिता । सेधिता । निष्ठायामपि प्रतिषेधाभावात् बुधितं सिधितमित्येव भवति ।

शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं विषिं श्लिषिं तुष्यतिदुष्यती द्विषिम् ।
इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषु षान्तान्कृषिकर्षती तथा ॥

शेष्टा । पेष्टा । शोष्टा । पोष्टा । त्वेष्टा । वेष्टा । श्लेष्टा । तोष्टा । दोष्टा । द्वेष्टा । आक्रष्टा । आकर्ष्टा । इक्ष्वेतौदादिकस्य भौवादिकस्य कृषिकर्षती इति निर्देशः ।

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम् ।
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्तान्पठितांस्त्रयोदश ॥

तप्ता । तेप्ता । आप्ता । वप्ता । स्वप्ता । लेप्ता । लोप्ता । तृप्यतिदृप्यत्योरनुदात्तत्वममागमार्थमेव । इट् च तयोरर्धादिपाठाद्विकल्पेन भवति । त्रप्ता । तर्प्ता । तर्पिता । द्रप्ता । दर्प्ता । दर्पिता । तुदादिषु तु यौ तृपिदृपी तावुदात्तावेव । स्रप्ता । सर्प्ता । शप्ता । छोप्ता । क्षेप्ता ॥

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन् शदिं सदिं स्विद्यतिपद्यती खिदिम् ।
तुदिं नुदिं विद्यतिविन्त इत्यपि प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः ॥

अत्ता । हत्ता । स्कन्ता । भेत्ता । छेत्ता । क्षोत्ता । शत्ता । सत्ता । स्वेत्ता । स्विद्यतीति श्यना निर्देशो ञिष्विदा इत्यस्य निवृत्त्यर्थः । उदात्त एवायम् । पत्ता । खेत्ता । तोत्ता । नोत्ता । वेत्ता । विद्यतिविन्त इत्यपि श्यना श्नमा च निर्देशोऽन्यविकरणनिवृत्त्यर्थः । वेत्तिविन्दती उदात्तावेव । वेदिता विद्यानाम् । वेदिता धनस्य ॥

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन्
निजिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन् ।
त्यजिं यजिं युजिरुजिसञ्जिमज्जतीन्
भुजिं स्वजिं सृजिमृजी विद्ध्यनिट्स्वरान् ॥

पक्ता । वक्ता । विवेक्ता । रेक्ता । रङ्क्ता । प्रष्टा । निर्णेक्ता । सेक्ता । मोक्ता । भक्ता । भङ्क्ता । भ्रष्टा । भर्ष्टा । त्यक्ता । यष्टा । योक्ता । रोक्ता । सङ्क्ता । मङ्क्ता । भोक्ता । परिष्वक्ता । स्रष्टा । मार्ष्टा । मृजिरयमूदित्पठ्यते । ततोऽस्य विकल्पेनेटा भवितव्यम् । मार्ष्टा, मार्जिता इति । अमागमोऽप्यस्य न दृश्यते । तदस्य पाठस्य प्रयोजनं चिन्त्यम् । केचिदस्य स्थाने विजिं पठन्ति । सृजिं विजिं विद्ध्यनिट्स्वरानिति । निजादिषु यो विजिरसावनिडिष्यते । तथा च ग्रन्थान्तरे * निजिविजिष्वञ्जिवर्जमित्युक्तम् । एकाच इति किम् । अव-

* तन्त्रान्तरे पा० २ ।

धीत् । वृद्धिनिवृत्त्यर्थमदन्तो वधिरुपदिश्यते । उपदेशग्रहणं किम् । इह हि यथा स्यात् लविष्यति पचिष्यति । इह च मा भूत् । कर्त्ता कटान्कर्त्तुमिति ॥

श्र्युकः किति ॥ ११ ॥

श्रि इत्येतस्योगन्तानां च किति प्रत्यये परत इडागमो न भवति । श्रित्वा । श्रितः । श्रितवान् । उगन्तानां च । युत्वा । युतः । युतवान् । लूत्वा । लूनः । लूनवान् । वृत्वा । वृतः । वृतवान् । तीर्त्वा । तीर्णः । तीर्णवान् । श्र्युक इति किम् । विदितः । कितीति किम् । श्रयिता । श्रयितुम् । श्रयितव्यम् । के चिदत्र द्विककारनिर्देशेन गकारप्रश्लेषं वर्णयन्ति । भूष्णुरित्येवं यथा स्यात् । सौत्रत्वाच्च निर्देशस्य श्र्युकः कितीत्यत्र चर्त्वस्यासिद्धत्वमनाश्रित्य रोरुत्वं न कृतं विसर्जनीयश्च कृत इति । ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुरित्यत्र स्था आ इत्याकारप्रश्लेषेण स्थार्थः सिद्धत्वाच्च किं चिदेतत् । उपदेशइत्येव । तीर्त्वा इत्यत्रापि यथा स्यात् । इत्वे हि कृते रपरत्वे च न स्यात् । मा भूदेवम् । इट् सनि वेति विकल्पे विहिते यस्य विभाषेति निष्ठायां प्रतिषेधो भविष्यति । कस्य पुनः सा विभाषा, ऋतः, यद्यप्येवमित्वे कृते नायमृकारान्तो भविष्यति । स्थानिवद्भावाद्भविष्यति । अनल्विधौ स्थानिवद्भावः । अल्विधिश्चायम् । तस्मादनुवर्त्तयितव्यमुपदेशइति । तथा च सति जागरितः, जागरितवानित्यत्रापि प्राप्नोति, तदर्थमेकाच इत्यनुवर्त्तयितव्यम् । उर्णोतेस्तु ।

> वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम् ।
> आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

प्रोर्णुतः । प्रोर्णुतवान् ॥

सनि ग्रहगुहोश्च ॥ १२ ॥

ग्रह गुह इत्येतयोरुगन्तानां च सनि प्रत्यये परत इडागमो न भवति । जिघृक्षति । जुघुक्षति । उगन्तानां च । रुरूषति । लुलूषति । सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वयूर्णुभरज्ञपिसनामिति विकल्पविधानात् श्रयतिरत्र नानुक्रष्यते । ग्रहेर्नित्यं प्राप्तः । गुहेरूदित्वाद्विकल्पः ॥

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥ १३ ॥

कृ सृ भृ वृ स्तु द्रु स्रु श्रु इत्येतेषां लिटि प्रत्यय इडागमो न भवति । कृ । चकृव । चकृम । सृ । ससृव । ससृम । भृ । बभृव । बभृम । वृञ् । ववृव । ववृम । वृङ् । ववृवहे । ववृमहे । स्तु । तुष्टुव । तुष्टुम । द्रु । दुद्रुव । दुद्रुम । स्रु । सुस्रुव । सुस्रुम । श्रु । शुश्रुव । शुश्रुम । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । क्रादय एव लिट्यनिटस्ततोऽन्ये सेट इति । बिभिदिव । बिभिदिम ।

लुलुविव। लुलुविम । अनुदात्तोपदेशानामत्र प्रकृत्याश्रयः प्रतिषेधः । वृञ्वृङोस्तु प्रत्ययाश्रयस्तदुभयस्याप्ययं नियमः । वृञो हि थलि ववर्थेति निपातनाद्भवस्था, स्तुद्रुस्रुश्रुवां तु ऋतो भारद्वाजस्येत्यस्मादपि नियमाद् य इट् प्राप्नोति सोऽपि नेष्यते । तुष्टोथ । दुद्रोथ । सुस्रोथ । शुश्रोथ ॥ कृञोऽसुट इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ससुट्कस्य इडागमो यथा स्यात् । संचस्करिव । संचस्करिम ॥ ऋतो भारद्वाजस्येत्येतदप्यसुट एवेष्यते ॥ संचस्करिथ ॥

श्वीदितो निष्ठायाम् ॥ १४ ॥

श्वयतेरीदितश्च निष्ठायामिडागमो न भवति। शूनः। शूनवान्। ईदितः। ओलजी। लग्नः। लग्नवान्। ओविजी। उद्विग्नः। उद्विग्नवान्। ओदितश्चेति निष्ठातकारस्य नकारः। दीपी। दीप्तः। दीप्तवान्। डीङस्त्वोदितां मध्ये पाठो ज्ञापको निष्ठायामनिट्त्वस्य। स हि नत्वार्थो, नत्वं च निष्ठातो ऽनन्तरस्य विधीयते। उड्डीनः। उड्डीनवान्। निष्ठायामित्यधिकार आर्द्धधातुकस्येड्वलादेरिति यावत् ॥

यस्य विभाषा ॥ १५ ॥

यस्य धातोर्विभाषा क्व चिदिडुक्तस्तस्य निष्ठायां परत इडागमो न भवति। वक्ष्यति। स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा। विधूतः। विधूतवान्। गुहू। गूढः। गूढवान्। उदितो वा। वृद्धः। वृद्धवान्। तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानमिति पतेर्विभाषतेद्धस्यापि द्वितीयाश्रितातीतपतितेति निपातनादिडागमः ॥

आदितश्च ॥ १६ ॥

आदितश्च धातोर्निष्ठायामिडागमो न भवति। ञिमिदा। मिन्नः। मिन्नवान्। ञिक्ष्विदा। क्ष्विण्णः। क्ष्विण्णवान्। ञिष्विदा। स्विन्नः। स्विन्नवान्। चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः। आश्वस्तः। वान्तः। योगविभागकरणं किम्। आदितश्च विभाषा भावादिकर्म्मणोरित्येवं पठितव्यम्। अन्यत्र हि भावादिकर्म्मभ्यां यस्य विभाषेति प्रतिषेधो भविष्यति। ज्ञापनार्थमेतत्। ज्ञापयति। यदुपाधेर्विभाषा तदुपाधेः प्रतिषेध इति, तेन विभाषा गमहनविदविशामित्यत्र विदेर्लाभार्थस्य विभाषेति ज्ञापनार्थस्य प्रतिषेधो न भवति। विदितः। विदितवान् ॥

विभाषा भावादिकर्म्मणोः ॥ १७ ॥

भावे आदिकर्म्मणि च आदितो धातोर्विभाषा निष्ठायामिडागमो न भवति। मिन्नमनेन। मेदितमनेन। प्रमिन्नः। प्रमेदितः। सैनागाः कर्म्मणि निष्ठायां शकेरिटमिच्छन्ति विकल्पेन ॥ शकितो घटः कर्तुम्। शक्तो घटः कर्तुम्। भावे न भवत्येव। शक्तमनेन। अस्यतेर्भावे। असितमनेन। आदिकर्मणि च न भवत्येव। अस्तः काण्डः ॥

क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥ १८ ॥

क्षुब्ध स्वान्त ध्वान्त लग्न म्लिष्ट विरिब्ध फाण्ट बाढ इत्येते निपात्यन्ते यथासंख्यं मन्थ मनस्तमः सक्ताविस्पष्ट स्वरानायास भृश इत्येतेष्वर्थेषु। क्षुब्ध इति भवति मन्थाभिधानं चेत्। क्षुब्धो मन्थः। क्षुभितमन्यत्। क्षुभितं मन्थेन क्षुब्धो गिरिः, नदीत्येवमाद्युपमानाद्भविष्यति। स्वान्तमिति मनोभिधानं चेत्। स्वनितमन्यत्, स्वनितो मृदङ्गः। स्वनितं मनसा। ध्वान्तमिति भवति तमोभिधानं चेत्। ध्वनितमन्यत्। ध्वनितो मृदङ्गः। ध्वनितं मनसा। लग्नमिति भवति सक्तं चेत्। लगितमन्यत्। म्लिष्टमिति भवति। अविस्पष्टं चेत्। म्लेच्छितमन्यत्। इत्वमप्येकारस्य निपातनादेव। विरिब्धमिति स्वरश्चेत्। विरेभितमन्यत्। रेभृ शब्दइत्यस्यैतन्निपातनम्। अन्ये तु विरिभितमन्यदिति पठन्ति। रभिं सौत्रं धातुं पठन्ति। ते विरिभितमिति प्रत्युदाहरन्ति। फाण्टमिति भवत्यनायासश्चेत्। फाणितमन्यत्। यदशृतमपिष्टं च कषायमुदकसंपर्कमात्राद् विभक्तरसमीषदुष्णं तत्फाण्टम्। तदल्पप्रयत्नसाध्यत्वादनायासेन लक्ष्यते। बाढमिति भवति भृशं चेत्। बाहितमन्यत्। बाहृ प्रयत्नइत्यस्य धातोरेतन्निपातनम्। अतिशयश्च भृशमिहोच्यते ॥

धृषिशसी वैयात्ये ॥ १९ ॥

वियातस्य भावो वैयात्यम्। प्रागल्भ्यमविनीतता। तत्र धृष् शस इत्येतयोर्निष्ठायामिडागमो न भवति। धृष्टोयम्। विशस्तोयम्। धृषेरादितश्चेति प्रतिषेधः सिद्ध एव शसेरप्युदितो वा यस्य विभाषेति, नियमार्थं वचनम्। धृषिशस्योर्वैयात्ये एवेड् न भवति भावादिकर्म्मणोरपि वैयात्ये धृषिर्नास्ति। धृष्टः। विशस्तः। वैयात्यइति किम्। धर्षितः। विशसितः ॥

दृढःस्थूलबलयोः ॥ २० ॥

दृढ इति निपात्यते स्थूले बलवति चार्थे। दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्। किमत्र निपात्यते। दृंहेः क्तप्रत्यये इडभावः। हकारनकारयोर्लोपः। परस्य ढत्वम्। अथ दृहिः प्रकृत्यन्तरमस्ति। तत्राप्येतदेव सर्वं नलोपवर्जम्। नकारस्याभावात्। ढलोपनिपातनं पूर्वत्रासिद्धत्वनिवृत्त्यर्थम्। ढलोपे हि सति तस्य पूर्वत्रासिद्धत्वाद् द्रढिमा द्रढीयान् द्रढयतीत्यत्र र ऋतो हलादेर्लघोरिति न स्यात्। इह च परिद्रढय्य गत इति ल्यपि लघुपूर्वादिति णेरयादेशो न स्यात्। इह च परिदृढस्यापत्यं पारिदृढी कन्येति गुरूपोत्तमलक्षणः ष्यङ् च प्रसज्येत। स्थूलबलयोरिति किम्। दृंहितम्। दृहितम् ॥

प्रभौ परिवृढः ॥ २१ ॥

परिवृढ इति निपात्यते प्रभुश्चेद्भवति । परिवृढः कुटुम्बी । पूर्वेण तुल्यमेतत् । बृंहेर्निपातनम् । वृहिश्च यदि प्रकृत्यन्तरमस्ति तस्यापि तदेव सर्वं हलोपनिपातनस्य च तदेव प्रयोजनम् । परिवृढयति । परिवृढय्य गतः । पारिवृढी कन्येति । परिवृढमाचष्टे इति विगृह्य वृढशब्दादेव णिजुत्पद्यते । संग्रामयतेरेव सोपसर्गाण्णिजुत्पत्तिरिष्यते नान्यस्मादिति । तथा सति परिवृढयतीति तिङ्ङतिङ इति निघातः । परिवृढय्येत्यत्र परिशब्दस्य क्त्वाप्रत्ययान्तेन समासे सति ल्यबादेशः सिद्धो भवति । प्रभाविति किम् । परिवृंहितम् । परिवृहितम् ॥

कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ २२ ॥

कृच्छ्र गहन इत्येतयोरर्थयोः कषेर्धातोर्निष्ठायामिडागमो न भवति । कष्टोऽग्निः । कष्टं व्याकरणम् । ततोपि कष्टतराणि सामानि । कृच्छ्रं दुःखं तत्कारणमप्यग्न्यादिकं कृच्छ्रमित्युच्यते । गहने । कष्टानि वनानि । कष्टाः पर्वताः । कृच्छ्रगहनयोरिति किम् । कषितं सुवर्णम् ॥

घुषिरविशब्दने ॥ २३ ॥

घुषेर्धातोरविशब्दनेऽर्थे निष्ठायामिडागमो न भवति । घुष्टा रज्जुः । घुष्टौ पादौ । अविशब्दनइति किम् । अवघुषितं वाक्यमाह । विशब्दन प्रतिज्ञानम् । घुषिरशब्दार्थइति भूवादिषु पठ्यते । घुषिरविशब्दनइति । चुरादिषु तयोरिह सामान्येन ग्रहणम् । विशब्दनप्रतिषेधश्च ज्ञापकश्चुरादिणिच् विशब्दनार्थस्यानित्य इति, तेनायमपि प्रयोग उपपन्नो भवति । महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुष्यमाणवा इति । स्वाभिप्रायं शब्देनाविष्कृतवन्त इत्यर्थः ॥

अर्देः संनिविभ्यः ॥ २४ ॥

सं नि वि इत्येतेभ्य उत्तरस्यार्देर्निष्ठायामिडागमो न भवति । समर्णः । न्यर्णः । व्यर्णः । अर्देरिति किम् । समेधितः । संनिविभ्य इति किम् । अर्दितः ॥

अभेश्चाविदूर्ये ॥ २५ ॥

अभिशब्दादुत्तरस्यार्देराविदूर्येऽर्थे निष्ठायामिडागमो न भवति । अभ्यर्णा सेना । अभ्यर्णा शरत् । आविदूर्यइति किम् । अभ्यर्दितो वृषलः । शीतेन पीडित इत्यर्थः । विदूरं विप्रकृष्टं ततोऽन्यदविदूरं, तस्य भाव आविदूर्यम् । एतस्मादेव निपातनाद् नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादित्युत्तरस्य भावप्रत्ययस्य प्रतिषेधो न भवति ॥

णेरध्ययने वृत्तम् ॥ २६ ॥

ण्यन्तस्य वृत्तेर्निष्ठायामध्ययनार्थे वृत्तमितीडभावो णिलुक्च निपात्यते । वृत्तो गुणो देवदत्तेन । वृत्तं पारायणं देवदत्तेन । अध्ययनइति किम् । वर्ति-

तमन्यत । वृतिरयमकर्म्मकः, स गयर्थे वर्त्तमानः सकर्म्मको भवति । तेन निवृत्तइति हि प्रकृतेरेव कर्म्मणि क्तप्रत्ययो दृश्यते । तद्वदिहापि गयर्थवृत्तेरेव च वृतेर्वृत्तो गुणो देवदत्तेनेति भविष्यतीति निपातनमनर्थकं, तत्क्रियते यदापि णिचैव गयर्थो ऽभिधीयते तदा वर्त्तितमित्यध्ययने मा भूदिति के चित् । अपरे तु वर्त्तितो गुणो देवदत्तेनेत्यपीच्छन्ति ॥

वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः ॥ २७ ॥

णेरित्यनुवर्त्तते । दम् शम् पूरी दस् स्पश् छद् ज्ञप् इत्येतेषां णयन्तानां धातूनां वा अनिट्त्वं निपात्यते * । दान्तः । दमितः । शान्तः । शमितः । पूर्णः । पूरितः । दस्तः । दासितः । स्पष्टः । स्पाशितः । छन्नः । छादितः । ज्ञप्तः । ज्ञपितः । इट्प्रतिषेधो णिलुक्च निपात्यते । ज्ञपेस्तु भरज्ञपिसनामिति विकल्पविधानाद् यस्य विभाषेति नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थं निपातनम् ॥

रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ २८ ॥

वेति वर्त्तते । रुषि अम त्वर संघुष आस्वन इत्येतेषां निष्ठायां वा इडागमो न भवति । रुष्टः । रुषितः । तीषसहलुभरुषरिष इति विकल्पविधानाद् यस्य विभाषेति प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थं वचनम् । अम् । अभ्यान्तः । अभ्यमितः । त्वर । तूर्णः । त्वरितः । आदितश्चेति प्रतिषेधे प्राप्ते वचनम् । संघुष । संघुष्टौ पादौ । संघुषितौ पादौ । संघुष्टं वाक्यमाह । संघुषितं वाक्यमाह । संघुष्टौ दम्यौ । संघुषितौ दम्यौ । संपूर्वस्य घुषेरविशब्दनेपि परत्वादयमेव विकल्पो भवति । आस्वन् । आस्वान्तो देवदत्तः । आस्वनितो देवदत्तः । आस्वान्तं मनः । आस्वनितं मनः । आङ्पूर्वस्य स्वनेर्मनोभिधाने ऽपि परत्वादयं विकल्पः क्षुब्धस्वान्तेति निपातनं बाधते ॥

हृषेर्लोमसु ॥ २९ ॥

लोमसु वर्त्तमानस्य हृषेर्निष्ठायां वा इडागमो न भवति । हृष्टानि लोमानि । हृषितानि लोमानि । हृष्टं लोमभिः । हृषितं लोमभिः । हृष्टाः केशाः । हृषिताः केशाः । हृष्टं केशैः । हृषितं केशैः । हृषु अलीकइत्युदित्वान्निष्ठायामनिट् । हृष तुष्टावित्ययं सेट् । तयोरुभयोरिह ग्रहणमित्युभयत्र विभाषेयम् । लोमानि मूर्द्धजानि अङ्गजानि च सामान्येन गृह्यन्ते । यथा लोमनखं स्पृष्ट्वा शौचं कर्त्तव्यमिति । तद्विषये च हर्षे वर्त्तमानो लोमसु वर्त्ततइत्युच्यते । लोमस्विति किम् । हृष्टो देवदत्त इत्यलीकार्थस्य, हृषितो देवदत्त इति तुष्ट्यर्थस्य ॥

---

* दान्त शान्त पूर्ण दस्त स्पष्ट छन्न ज्ञप्त इत्येतानि निपात्यन्ते । दम्यादीनां धातूनां णयन्तानां निष्ठायां वा इडागमो निपात्यते इत्येकस्मिन्पुस्तके पाठः ।

विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ हृष्टो देवदत्तः । हृषितो देवदत्तः । विस्मित इत्यर्थः । हृष्टा दन्ताः । हृषिता दन्ताः । प्रतिहता इत्यर्थः ॥

अपचितश्च ॥ ३० ॥

अपचित इति वा निपात्यते । अपपूर्वस्य चायतेर्निष्ठायामनिट्त्वं चिभावश्च निपात्यते । अपचितोनेन गुरुः । अपचायितोनेन गुरुः ॥ क्तिनि नित्यमिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्तिनि नित्यं चिभावो निपात्यते, अपचितिः ॥

ह्रु ह्वरेश्छन्दसि ॥ ३१ ॥

ह्वरतेर्धातोर्निष्ठायां छन्दसि ह्रु इत्ययमादेशो भवति । ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च । अह्रुतमसि हविर्धानम् । छन्दसीति किम् । ह्वृतम् ॥

अपरिह्वृताश्च ॥ ३२ ॥

अपरिह्वृता इति निपात्यते छन्दसि विषये । ह्रु इत्येतस्यादेशस्याभावो निपात्यते । अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ॥

सोमे ह्वरितः ॥ ३३ ॥

ह्वरित इति ह्वरतेर्निष्ठायामिडागमो गुणश्च निपात्यते छन्दसि विषये, सोमश्चेद्भवति । मा नः सोमो ह्वरितो, विह्वरितस्त्वम् ॥

ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ताविशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमितीति च ॥ ३४ ॥

ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित चत्त विकस्त विशस्तृ शंस्तृ शास्तृ तरुतृ तरूतृ वरुतृ वरूतृ वरूत्रीः उज्ज्वलिति क्षरिति क्षमिति वमित्यमिति इत्येतानि छन्दसि निपात्यन्ते । तत्र ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितेति ग्रसु स्कम्भु स्तम्भु इत्येतेषामुदित्त्वान्निष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इडागमो निपात्यते । ग्रसितं वा एतत्सोमस्य । ग्रस्तमिति भाषायाम् । स्कभित । विष्कभिते अजरे । विष्कब्धेति भाषायाम् । स्तभित । येन स्वस्तभितम् । स्तब्धमिति भाषायाम् । उत्तभित । सत्येनोत्तभिता भूमिः । उत्तब्धेति भाषायाम् । उत्तभितेति उत्पूर्वस्य निपातनसामर्थ्यादन्योपसर्गपूर्वः स्तभितशब्दो न भवति । चत्त विकस्तेति चतेः कसेश्च विपूर्वस्य निष्ठायामिडभावो निपात्यते । चत्ता वर्षेण विद्युत् । चतितेति भाषायाम् । विकस्त । उत्तानाया हृदयं यद् विक-

स्तम् । विकसितमिति भाषायाम् । निपातनं बहुत्वापेक्षं विकस्ता इति बहुवचनं कृतम् । अपरेषु तु निपातनेषु प्रत्येकं विभक्तिनिर्देशः । विशस्तृ शंस्तृ शास्त्रिति शसेर्विपूर्वस्य शंसेः शासेश्च तृचि इडभावो निपात्यते । विशस्तृ । एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता । विशसितेति भाषायाम् । शंस्तृ उत शंस्ता सुविप्रः । शंसितेति भाषायाम् । शास्तृ । प्रशास्ता । प्रशासितमिति भाषायाम् । तरूतृतरुतृवरूतृवरुतृवरूत्रीरिति तरतेर्वृङ्वृञोश्च तृचि उट् ऊट् इत्येतावागमौ निपात्येते । तरुतारं रथानाम् । तरूतारम् । तरितारं तरीतारमिति भाषायाम् । वरुतारं रथानाम् । वरूतारं रथानाम् । वरितारं वरीतारमिति भाषायाम् । वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावती । जसि पूर्वसवर्णोच्चारणं प्रयोगदर्शनार्थम् । अतन्त्रं चैतत्, इदमपि हि भवति अहोरात्राणि वै वरूत्रय इति । छान्दसिकमत्र ह्रस्वत्वम् । प्रपञ्चार्थमेव च ङीबन्तस्य निपातनम् । वरूतृशब्दो हि निपातितस्तत एव ङीपि सति सिद्धो वरूत्रीशब्दः । उज्ज्वलिति क्षरितिक्षमिति वमित्यमितीति च ज्वलतेरुत्पूर्वस्य क्षर क्षम वम अम् इत्येतेषां च तिपि शप इकारादेशो निपात्यते । शपो लुग्वा इडागमः । अग्निरुज्ज्वलिति । उज्ज्वलतीति भाषायाम् । क्षरिति । स्तोकं क्षरिति । क्षरतीति भाषायाम् । क्षमिति । स्तोमं क्षमिति । क्षमतीति भाषायाम् । वमिति । यः सोमं वमिति । वमतीति भाषायाम् । अमिति । अभ्यमिति वरुणः । अभ्यमतीति भाषायाम् । इतिकरणः प्रदर्शनार्थस्तेन क्व चिदीकारो भवति । रथिमभ्यमीति वरुण इत्यपि हि वेदे पठ्यते ॥

आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ॥ ३५ ॥

छन्दसीति निवृत्तम् । आर्द्धधातुकस्य वलादेरिडागमो भवति । लविता । लवितुम् । लवितव्यम् । पविता । पवितुम् । पवितव्यम् । आर्द्धधातुकस्येति किम् । आस्ते । वस्ते । रुदादिभ्यः सार्वधातुकइत्येतस्मिन्नियमार्थे विज्ञायमाने प्रतिपत्तिगौरवं भवतीति आर्द्धधातुकग्रहणं क्रियते । वलादेरिति किम् । लव्यम् । पव्यम् । लवनीयम् । पवनीयम् इडिति वर्त्तमाने पुनरिड्ग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थम् ॥

स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते ॥ ३६ ॥

नियमार्थमिदम् । स्नुक्रमोरार्द्धधातुकस्य वलादेरिडागमो भवति, न चेत्स्नुक्रमौ आत्मनेपदस्य निमित्तं भवतः । क्व च तावात्मनेपदस्य निमित्तं, यत्रात्मनेपदं तदाश्रयं भवति । भावकर्म्मकर्म्मकर्त्तृकर्मव्यतिहाराः । क्रमेर्वृत्त्यादयश्च । तेनायं सत्यात्मनेपदे प्रतिषेधो नास्तीति प्रतिषेधफलं चेदं सूत्रम् । स्नुक्रमोरुदित्त्वादिट् सिद्ध एव । प्रस्नविता । प्रस्नवितुम् । प्रस्नवितव्यम् । प्रक्रमिता ।

प्रक्रमितव्यम् । अनात्मनेपदनिमित्ते इति किम् । प्रक्लोषीष्ट । प्रक्रंसीष्ट । प्रक्लोष्यते । प्रक्रंस्यते । प्रसुस्नुषिष्यते । प्रचिक्रंसिष्यते । सर्वत्रैवात्र स्नौतिः क्रमिश्चात्मनेपदस्य निमित्तम् । सनन्तादपि हि पूर्ववत्सन इत्यात्मनेपदं विधीयते । निमित्तग्रहणं किम् । सीयुडादेस्तत्परपरस्य च प्रतिषेधार्थम् । इह तु प्रस्नविसेवाचरतीति प्रस्नविस्रीयतइति क्यङन्तमात्मनेपदस्य निमित्तं न स्नौतिः ॥ क्रमेस्तु कर्त्तर्यात्मनेपदविषयादसत्यात्मनेपदे कृति प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रक्रन्ता । उपक्रन्ता । कर्त्तरीति किम् । प्रक्रमितव्यम् । उपक्रमितव्यम् । आत्मनेपदविषयादिति किम् । निष्क्रमिता । स्नौतेः सनि किति च प्रत्यये श्र्युकः किति सनि ग्रहगुहोश्च इत्येव प्रतिषेधो भवति । प्रसुस्नूषति । प्रस्नुतः । प्रस्नुतवान् ॥

ग्रहो ऽलिटि दीर्घः ॥ ३७ ॥

ग्रह उत्तरस्य इटः अलिटि दीर्घो भवति । ग्रहीता । ग्रहीतुम् । ग्रहीतव्यम् । अलिटीति किम् । जगृहिव । जगृहिम । प्रकृतस्येटो दीर्घत्वमिदं चिण्वदिटो न भवति । ग्राहिता । ग्राहिष्यते ॥

वृतो वा ॥ ३८ ॥

वृ इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणं तस्मादुत्तरस्य ॠकारान्तेभ्यश्चेटो वा दीर्घो भवति । वरिता । वरीता । प्रावरिता । प्रावरीता । ॠकारान्तेभ्यः । तरिता । तरीता । आस्तरिता । आस्तरीता । वृत इति किम् । करिष्यति । हरिष्यति । अलिटीत्येव । ववरिथ । तेरिथ ॥

न लिङि ॥ ३९ ॥

वृत उत्तरस्य इटो लिङि दीर्घो न भवति । विवरिषीष्ट । प्रावरिषीष्ट । आस्तरिषीष्ट । विस्तरिषीष्ट ॥

सिचि च परस्मैपदेषु ॥ ४० ॥

परस्मैपदपरे सिचि वृत उत्तरस्य इटो दीर्घो न भवति । प्रावारिष्टाम् । प्रावारिषुः । अतारिष्टाम् । आस्तारिष्टाम् । आस्तारिषुः * । परस्मैपदेष्विति किम् । प्रावरिष्ट । प्रावरीष्ट ॥

इट् सनि वा ॥ ४१ ॥

वृतः सनो वा इडागमो भवति । वुवूर्षति । विवरिषते । विवरीषते । प्राबुवूर्षति । प्राविवरिषति । प्राविवरीषति । ॠकारान्तेभ्यः । तितीर्षति । तितरिषति । तितरीषति । आतिस्तीर्षति । आतिस्तरिषति । आतिस्तरीषति ।

---

* व्यथारिष्टाम् । व्यथारिषुरित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

सनि ग्रहगुहोश्चेति इट्प्रतिषेधे प्राप्ते पक्षे इडागमो विधीयते। इटश्च वृतो वेति पक्षे दीर्घः। चिकीर्षति जिहीर्षति इत्यत्रोपदेशाधिकारात्लाक्षणिकत्वाच्च इडागमो न भवति ॥

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ ४२ ॥

वृतो लिङि सिचि च आत्मनेपदे परे वा इडागमो भवति। वृषीष्ट। वरिषीष्ट। प्रावृषीष्ट। प्रावरिषीष्ट। आस्तरिषीष्ट। आस्तीर्षीष्ट। सिचि खल्वपि। अवृत। अवरिष्ट। अवरीष्ट। प्रावृत। प्रावरिष्ट। प्रावरीष्ट। आस्तीर्ष्ट। आस्तरिष्ट। आस्तरीष्ट। आत्मनेपदेष्विति किम्। प्रावारिष्टाम्। प्रावारिषुः। लिङः प्रत्युदाहरणं न दर्शितमसंभवादिटोऽवलादित्वादिति ॥

ऋतश्च संयोगादेः ॥ ४३ ॥

ऋदन्ताद्धातोः संयोगादेरुत्तरयोर्लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु वा इडागमो भवति। ध्वृषीष्ट। ध्वरिषीष्ट। स्मृषीष्ट। स्मरिषीष्ट। अध्वृषाताम्। अध्वरिषाताम्। अस्मृषाताम्। अस्मरिषाताम्। ऋत इति किम्। च्योषीष्ट। प्लोषीष्ट। अच्योष्ट। अप्लोष्ट। संयोगादेरिति किम्। कृषीष्ट। हृषीष्ट। अकृत। अहृत। आत्मनेपदेष्वित्येव। अध्वार्षीत्। अस्मार्षीत्। संस्कृषीष्ट समस्कृतेत्यत्रोपदेशाधिकारादभक्तत्वाच्च सुट इडागमो न भवति ॥

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥ ४४ ॥

स्वरति सूति सूयति धूञ् इत्येतेभ्य ऊदिद्भ्यश्चोत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति। स्वर्त्ता। स्वरिता। सूति। प्रसोता। प्रसविता। सूयति। सोता। सविता। धूञ्। धोता। धविता। ऊदिद्भ्यः खल्वपि। गाहू। विगाढा। विगाहिता। गुपू। गोप्ता। गोपिता। वेति वर्त्तमाने पुनर्वाग्रहणं लिङ्सिचोर्निवृत्त्यर्थम्। सूतिसूयत्योर्विकरणनिर्देशः षू प्रेरणइत्यस्य निवृत्त्यर्थः। धूञिति सानुबन्धकस्य निर्देशो धू विधूननइत्यस्य निवृत्त्यर्थः। सविता धवितेत्येव नित्यमेतयोर्भवति। स्वरतेरेतस्माद्विकल्पादृद्धनोः स्यइत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। स्वरिष्यति। क्तिति तु प्रत्यये श्र्युकः क्तितीति नित्यः प्रतिषेधो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन। स्वृत्वा। सूत्वा। धूत्वा ॥

रधादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥

रध हिंसासंसिद्धोरित्येवमादिभ्योऽष्टाभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति। रधिता। रद्धा। नंष्टा। नशिता। त्रप्ता। तर्प्ता। तर्पिता। द्रप्ता। दर्प्ता। दर्पिता। द्रोग्धा। द्रोढा। द्रोहिता। मोग्धा। मोढा। मोहिता। स्नोढा। स्नोहिता। स्नोग्धा। स्नेग्धा। स्नेढा। स्नेहिता।

क्लादिनियमाल्लिटि रधादिभ्यः परत्वाद्विकल्पं केचिदिच्छन्ति । अपरे पुनराहुः । पूर्वविधेरिड्निषेधविधानसामर्थ्याद्बलीयस्त्वं प्रतिषेधनियमस्येति नित्यमिटा भवितव्यम् । ररन्धिव, ररन्धिमेति भवति ॥

निरः कुषः ॥ ४६ ॥

निर् इत्येवंपूर्वात् कुष उत्तरस्य वलादेरार्द्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । निष्कोष्टा । निष्कोषिता । निष्कोष्टुम् । निष्कोषितुम् । निष्कोष्टव्यम् । निष्कोषितव्यम् । निर इति किम् । कोषिता । कोषितुम् । कोषितव्यम् । निस इति वक्तव्ये निर इति निर्देशेन रेफान्तमुपसर्गान्तमस्तीति ज्ञाप्यते । तस्य हि निलयनमित्युपसर्गस्यायताविति लत्वं भवति । निसो हि सत्वस्यासिद्धत्वाल्लत्वं न स्यात् ॥

इण्निष्ठायाम् ॥ ४७ ॥

निरः कुषो निष्ठायामिडागमो भवति । निष्कुषितवान् । निष्कुषितः । इड्ग्रहणं नित्यार्थ,मारम्भो हि यस्य विभाषा इत्यस्य बाधको ऽन्यथा हि विकल्पार्थ एव स्याद् अत्रैव नित्यमिडागम उत्तरत्र विकल्प एवेति ॥

तीषसहलुभरुषरिषः ॥ ४८ ॥

तकारादावार्द्धधातुके इषु सह लुभ रुष रिष् इत्येतेभ्यो वा इडागमो भवति । इषु । एष्टा । एषिता ॥ इषु इच्छायामित्यस्यायं विकल्प इष्यते ॥ यस्तु इष गताविति दैवादिकस्तस्य प्रेषिता प्रेषितुं प्रेषितव्यमिति नित्यं भवति । योपि इष आभीक्ष्ण्यइति क्र्यादौ पठ्यते तस्याप्येवमेव । तदर्थमेव तीषसहेति सूत्रे केचिदुदितमिषं पठन्ति । सह । सोढा । सहिता । लुभ । लोभिता । लोब्धा । रुष । रोष्टा । रोषिता । रिष् । रेष्टा । रेषिता । तीति किम् । एषिष्यति ॥

सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ॥ ४९ ॥

इवन्तानाम् धातूनाम् ऋधु भ्रस्ज दम्भु श्रि स्वृ यू ऊर्णु भर ज्ञपि सन् इत्येतेषां च सनि वा इडागमो भवति । इवन्तानाम् । दिदेविषति । दुद्यूषति । सिसेविषति । सुस्यूषति । ऋध । अर्दिधिषति । ईर्त्सति । भ्रस्ज । बिभ्रज्जिषति । बिभ्रक्षति । बिभर्ज्जिषति । बिभर्क्षति । दम्भु । दिदम्भिषति । धिप्सति । धीप्सति । श्रि । उच्छिश्रयिषति । उच्छिश्रीषति । स्वृ । सिस्वरिषति । सुस्वूर्षति । यु । यियविषति । युयूषति । ऊर्णु । प्रोर्णुनविषति । प्रोर्णुनुविषति । प्रोर्णुनूषति । भर इति भृञित्यतस्य भौवादिकस्य ग्रहणं शपा निर्देशात् । बिभरिषति । बुभूर्षति । ज्ञपि । जिज्ञपयिषति । ज्ञीप्सति । सन् । सिसनिषति । सिषासति । के छिदत्र भरज्ञपिसनितनिपतिदरिद्राणामिति

पठन्ति । तितनिषति । तितंसति । तितासति । पिपतिषति । पित्सति । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति । सनीति किम् । देविता । स्रष्टा ॥

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ ५० ॥

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोर्वा इडागमो भवति । क्लिष्ट्वा । क्लिशित्वा । क्लिष्टः । क्लिष्टवान् । क्लिशितः । क्लिशितवान् । क्लिशू विबाधन इत्यस्य क्त्वायां विकल्पः सिद्ध एव निष्ठायां तु यस्य विभाषेति प्रतिषेधः प्राप्नोति । क्लिश उपतापइत्येतस्य तु क्त्वायां निष्ठायां च नित्यमिडागमः प्राप्नोति तदर्थं क्त्वाग्रहणं क्रियते ॥

पूङश्च ॥ ५१ ॥

पूङश्च क्त्वानिष्ठयोर्वा इडागमो भवति । पूत्वा । पवित्वा । सोमोतिपूतः । सोमोतिपवितः । पूतवान् । पवितवान् । श्र्युकः क्तितीति प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पो विधीयते ॥

वसतिक्षुधोरिट् ॥ ५२ ॥

वसतेः क्षुधेश्च क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति । उषित्वा । उषितः । उषितवान् । क्षुधित्वा । क्षुधितः । क्षुधितवान् । वसतीति श्तिकरणो निर्देशार्थ एव । वस्तेस्तूदात्तत्वादेव भवितव्यमिटा । पुनरिड्ग्रहणं नित्यार्थम् ॥

अञ्चेः पूजायाम् ॥ ५३ ॥

अञ्चेः पूजायामर्थे क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति । अञ्चित्वा जानु जुहोति । अञ्चिता अस्य गुरवः । उदितो वेति क्त्वाप्रत्यये विकल्पः प्राप्तः, निष्ठायां यस्य विभाषेति प्रतिषेधः प्राप्तस्तदर्थमिदं प्रारब्धम् । पूजायामिति किम् । उदक्तमुदकं कूपात् । उद्धृतमित्यर्थः ॥

लुभो विमोहने ॥ ५४ ॥

लुभो विमोहनेर्थे वर्त्तमानात् क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति । लुभित्वा । लोभित्वा । विलुभिताः केशाः । विलुभितः सीमन्तः । विलुभितानि पदानि । विमोहनमाकुलीकरणं तत्र क्त्वायां तीषसहलुभेति विकल्पो निष्ठायां यस्य विभाषेति प्रतिषेधः प्राप्तः । विमोहनइति किम् । लुब्धो वृषलः । शीतेन पीडित इत्यर्थः । लुब्ध्वा । लुभित्वा । लोभित्वा । गार्ध्ये यथाप्राप्तमेव भवति ॥

जॄव्रश्च्योः क्त्वि ॥ ५५ ॥

जॄ व्रश्चि इत्येतयोः क्त्वाप्रत्यये इडागमो भवति । जरित्वा । जरीत्वा । व्रश्चित्वा । जॄ इत्येतस्य श्र्युकः क्तितीति प्रतिषेधः प्राप्तो व्रश्चेरूदित्त्वाद्विकल्पः । क्त्वाग्रहणं निष्ठानिवृत्त्यर्थम् ॥

उदितो वा ॥ ५६ ॥

उदितो धातोः क्त्वाप्रत्यये परतो वा इडागमो भवति । शमु । शमित्वा । शान्त्वा । तमु । तान्त्वा । तमित्वा । दमु । दान्त्वा । दमित्वा ॥

से ऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ॥ ५७ ॥

सकारादावसिच्यार्द्धधातुके कृत चृत छृद तृद नृत इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वा इडागमो भवति । कृत् । कर्त्स्यति । अकर्त्स्यत् । चिकृत्सति । कर्त्तिष्यति । अकर्त्तिष्यत् । चिकर्त्तिषति । चृत । चर्त्स्यति । अचर्त्स्यत् । चिचृत्सति । चर्त्तिष्यति । अचर्त्तिष्यत् । चिचर्त्तिषति । छृद । छर्त्स्यति । अच्छर्त्स्यत् । चिच्छृत्सति । छर्द्दिष्यति । अच्छर्द्दिष्यत् । चिच्छर्द्दिषति । तृद् । तर्त्स्यति । अतर्त्स्यत् । तितृत्सति । तर्द्दिष्यति । अतर्द्दिष्यत् । तितर्द्दिषति । नृत् । नर्त्स्यति । अनर्त्स्यत् । निनृत्सति । नर्त्तिस्यति । अनर्त्तिष्यत् । निनर्त्तिषति । सइति किम् । कर्त्तिता । असिचीति किम् । अकर्त्तीत् ॥

गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥ ५८ ॥

गमेर्द्धातोः सकारादेरार्द्धधातुकस्य परस्मैपदेष्विडागमो भवति । गमिष्यति । अगमिष्यत् । जिगमिषति । गमेरिति किम् । चेष्यति । इड्ग्रहणं नित्यार्थम् । परस्मैपदेष्विति किम् । संगंसीष्ट । संगसीष्ट । संगंस्यते । संजिगंसते । संजिगंसिष्यते । अधिजिगांसते । अधिजिगांसिष्यते । गमेरिडादेशस्याज्झनगमां सनीति दीर्घत्वम् । सइत्येव । गन्तास्मि । गन्तास्वः । गन्तास्मः ॥ आत्मनेपदेन समानपदस्थस्य गमेरयमिडागमो नेष्यते ॥ अन्यत्र सर्वत्रैवेष्यते । लुक्यपि भवति, परस्मैपदलुकि च । संजिगमिषिता । अधिजिगमिषिता व्याकरणस्य । जिगमिषत्वमिति । पदशेषकारस्य* पुनरिदं दर्शनं गम्युपलक्षणार्थं परस्मैपदग्रहणम् । परस्मैपदेषु यो गमिरुपलक्षितस्तस्मात्सकारादेरार्द्धधातुकस्येड्भवति । तन्मतेन संजिगंसिता अधिजिगंसिता व्याकरणस्य इत्येव भवितव्यम् ॥

(न)वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ ५९ ॥

वृतादिभ्यश्चतुर्भ्य उत्तरस्य सकारादेरार्द्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति । वृत । वर्त्स्यति । अवर्त्स्यत् । विवृत्सति । वृधु । वर्त्स्यति । अवर्त्स्यत् । विवृत्सति । शृधु । शर्त्स्यति । अशर्त्स्यत् । शिशृत्सति । स्यन्दू । स्यन्त्सति । अस्यन्त्स्यत् । सिस्यन्त्स्यति । चतुर्भ्य इति न वक्तव्यम् । वृद्ग्रहणं हि तत्र वृतादिपरिसमाप्त्यर्थं क्रियते क्लृपू सामर्थ्यं इदिति, तदेव यदि वृतादिसमाप्त्यर्थमपि विज्ञायते न किंचिदनिष्टं प्राप्नोति, तत्क्रियते स्यन्देश्छदिल्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं

---

* पदशेषो ग्रन्थविशेष इति पदमञ्जरी ।

प्रतिषेधो यथा बाधेतेति । चतुर्ग्रहणे हि सति तात्पर्येण स्यन्दिः संनिधापितो भवति । परस्मैपदेष्वित्येव । वर्त्तिषीष्ट । वर्त्तिष्यते । अवर्त्तिष्यत् । विवर्त्तिषते । अथा-त्मनेपदेन समानपदस्थेभ्यो वृतादिभ्य इडागम इष्यते । अन्यत्र सर्वत्र प्रतिषेधः । कृत्यपि हि परस्मैपदलुकि च प्रतिषेधो भवति । विवृत्सिता । विवृत्स त्वमिति * ॥

तासि च क्लृपः ॥ ६० ॥

क्लृप उत्तरस्य तासेः सकारादेश्चार्द्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति । कल्प्ता । श्वः कल्प्स्यति । अकल्प्स्यत् । चिक्लृप्सति । परस्मैपदेष्वि-त्येव । कल्पितासे । कल्पिषीष्ट । कल्पिष्यते । अकल्पिष्यत । चिकल्पिषते । क्लृपेरथात्मनेपदेन समानपदस्थस्य इडागम इष्यते । अन्यत्र प्रतिषेधः । कृत्यपि हि परस्मैपदलुकि च प्रतिषेधो भवति । चिक्लृप्सिता । चिक्लृप्स त्वमिति ॥

अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥ ६१ ॥

तासौ ये नित्यानिटो धातवोऽजन्तास्तेभ्यस्तासाविव थलीडागमो न भवति । याता । ययाथ । चेता । चिचेथ । नेता । निनेथ । होता । जुहोथ । अच इति किम् । भेत्ता । बिभेदिथ । तास्वदिति किम् । लूत्वा । लुलविथ । थलीति किम् । याता । ययिव । ययिम । अनिड्ग्रहणं नित्यमित्यनेन विशे-षणार्थम् । नित्यग्रहणं किम् । विधोता । विधविता । विदुधविथ । तासि विभाषितेटस्थलि नित्यमिडागमो भवति । तास्वदिति वतिनिर्द्देशः किमर्थः । तासौ सतस्थलि प्रतिषेधार्थः । यो हि तासावसत्त्वाच्च नित्यानिट् तस्य थलि प्रतिषेधो न भवति । जघसिथ । उवयिथ । उत्तरसूत्रेऽपि तास्वदिति वर्त्तते अदादेशो हि घसिर्वेञादेशश्च वयिस्तासौ नास्ति ॥

उपदेशेऽत्वतः ॥ ६२ ॥

उपदेशे यो धातुरकारवान् तासौ नित्यानिट् तस्मात्तासाविव थलीडा-गमो न भवति । पक्ता । पपक्थ । यष्टा । इयष्ठ । शक्ता । शशक्थ । उपदे-श इति किम् । कर्ष्टा चकर्षिथ । अत्वत इति किम् । भेत्ता । बिभेदिथ । तप-रकरणं किम् । राद्धा । रराधिथ । तास्वदित्येव । जिघृक्षति । जग्रहिथ । नित्य-मनिट इत्येव । अङ्क्ता । अञ्जिता । आनञ्जिथ ॥

ऋतो भारद्वाजस्य ॥ ६३ ॥

ऋकारान्ताद्धातोर्भारद्वाजस्याचार्यस्य मतेन तासाविव नित्यानिटस्थलि इडागमो न भवति । स्मर्त्ता । सस्मर्थ । ध्वर्त्ता । दध्वर्थ † । सिद्धे सत्यारम्भो

* विवृत्सितुम् विवृत्सितव्यमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।
† कर्त्ता चकर्थेति पुस्तकान्तरे अधिकम् ।

नियमार्थः । ऋत एव भारद्वाजस्य नान्येषां धातूनाम् । ययिथ । ववथ । पेचिथ । शेकिथ । तदयमर्थात्पूर्वयोर्योगयोर्विकल्पः । तपरकरणमॄकारान्तस्य निवृत्त्यर्थम् । तथा हि सति विध्यर्थमेतत्स्यात् ॥

बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे ॥ ६४ ॥

बभूथ आततन्थ जगृभ्म ववर्थ इत्येतानि निपात्यन्ते निगमविषये । निगमो वेदः । बभूथ । त्वं हि होता प्रथमो बभूथ । बभूविथेति भाषायाम् । आततन्थ । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ । आतेनिथेति भाषायाम् । जगृभ्म । जगृभ्माते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् । जगृहिमेति भाषायाम् । ववर्थ । ववर्थ त्वं हि ज्योतिषा । ववरिथेति भाषायाम् । क्रादिसूत्रादेवास्य प्रतिषेधे सिद्धे नियमार्थं वचनं निगमएव न भाषायामिति ॥

विभाषा सृजिदृशोः ॥ ६५ ॥

सृजि दृशि इत्येतयोस्थलि विभाषा इडागमो न भवति । सस्रष्ठ । ससर्जिथ । दद्रष्ठ । ददर्शिथ ॥

इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ ६६ ॥

अत्ति अर्त्ति व्ययति इत्येतेषां थलीडागमो भवति । आदिथ । आरिथ । संविव्ययिथ । व्येञो न व्यो लिटीत्यात्वप्रतिषेधः । अत्तिव्ययत्योर्ऋतो भारद्वाजस्येति नियमाद्विकल्पः । ऋतेरपि नित्यः प्रतिषेधः । अत्रेड्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् । विकल्पविधाने हि सति अत्तिव्ययतिग्रहणमनर्थकं, प्रतिषेधविधाने चार्त्तिग्रहणमिति नित्योयं विधिरिड्ग्रहणमन्तरेणापि शक्यते विज्ञातुम् ॥

वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ ६७ ॥

कृतद्विर्वचनानामेकाचां धातूनाम् । आकारान्तानां घसेश्च वसाविडागमो भवति । आदिवान् । आशिवान् । पेचिवान् । शेकिवान् । धात्वभ्यासयोरेकादेशे कृते एत्वाभ्यासलोपयोश्च कृतयोः कृतद्विर्वचना एते एकाचो भवन्ति । आत् । ययिवान् । तस्थिवान् । घस । जक्षिवान् । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । एकाजाद्घसामेव वसाविडागमो भवति नान्येषाम् । बिभिद्वान् । चिच्छिद्वान् । बभूवान् । शिश्रिवान् । क्रादिनियमात्प्रतिषेधाभावाच्च य इट् प्रसक्तः स नियम्यते । आद्ग्रहणमनेकाजर्थं द्विर्वचने हि कृते इटि हि सति आतो लोपेन भवितव्यं, दरिद्रातेस्तु कास्यनेकाज्ग्रहणं चुलुम्पाद्यर्थमित्यामा भवितव्यम् । दरिद्रांचकार । अथाप्याम् क्रियते तथापि च दरिद्रातेरार्द्धधातुके लोपः सिद्धश्च प्रत्ययविधाविति प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेराकारे लुप्ते इडागमस्य निमित्तं विहतमिति न इडागमो भवति । ददरिद्वानिति भवितव्यम् । घसेरपि यदि

यद्ययमिह न क्रियते तदा द्विर्वचनात् परत्वाद् घसिभसोर्हलि चेति उपधालोपे कृते द्विर्वचनमेव न स्यादनच्कत्वाद्, इह तु घसिग्रहणाद् उपधालोपमपि परत्वादिडागमो बाधते । तत्र कृते गमहनजनखनघसामित्युपधालोपः । स च द्विर्वचनेचीति द्विर्वचने कर्त्तव्ये स्थानिवद्भवति, तेन जक्षिवानिति सिध्यति ॥

विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ ६८ ॥

गम हन विद विश इत्येतेषां धातूनां वसो विभाषा इडागमो भवति । गम । जग्मिवान् । जगन्वान् । मो नो धातोरिति नकारः । हन । जघ्निवान् । जघन्वान् । विद । विविदिवान् । विविद्वान् । विश् । विविशिवान् । विविश्वान् । विशिना । साहचर्यादिह विदेस्तौदादिकस्य लाभार्थस्य ग्रहणम् । ज्ञानार्थस्य तु नित्यं विविद्वानित्येव भवति ॥ दृशेश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ददृशिवान् । ददृश्वान् ॥

सनिंससनिवांसम् ॥ ६९ ॥

सनोतेः सनतेर्वा धातोः सनिंससनिवांसमिति निपात्यते* । अञ्जि-स्थाने सनिंससनिवांसम् । इडागम एत्वाभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते । सनि-ङ्पूर्वादन्यत्र सेनिवांसमित्येव भवति । छन्दसीदं निपातनं विज्ञायते† । भाषायां सेनिवांसमिति भवति ॥

ऋद्धनोः स्ये ॥ ७० ॥

ऋकारान्तानां धातूनां हन्तेश्च स्ये इडागमो भवति । करिष्यति । हनि-ष्यति । हरिष्यति । स्वरतेर्वेट्त्वादृद्धनोः स्यइत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन । स्वरि-ष्यति । तपरकरणं विस्पष्टार्थम् ॥

अञ्जेः सिचि ॥ ७१ ॥

अञ्जेः सिचि इडागमो भवति । आञ्जीत् । आञ्जिष्टाम् । आञ्जिषुः । सिचीति किम् । अक्ता । अञ्जिता । ऊदित्वाद् विभाषा भवति ॥

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ॥ ७२ ॥

स्तु सु धूञ् इत्येतेभ्यः सिचि परस्मैपदे परत इडागमो भवति । अस्ता-वीत् । असावीत् । अधावीत् । परस्मैपदेष्विति किम् । अस्तोष्ट । असोष्ट । अधोष्ट । अधविष्ट ॥

यमरमनमातां सक्च ॥ ७३ ॥

यम रम नम इत्येतेषामङ्गानामाकारान्तानां च सगागमो भवति पर-स्मैपदे सिचि इडागमश्च । यम् । अयंसीत् । अयंसिष्टाम् । अयंसिषुः । व्यर-

---

* सनिंपूर्वस्य सनोतेः सनतेर्वा सनिंससनिवांसमिति निपात्यते इत्येकस्मिन्पुस्तके पाठः
† इयं चानुपूर्वी छन्दस्येव नियतेति छन्दस्येव निपातनं विज्ञायते इति पा० ग ।

सीत् । व्यरंसिष्टाम् । व्यरंसिषुः । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । आकारान्तानाम् । अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः । यमादीनां हलन्तलक्षणा वृद्धिः प्राप्ता सा नेटीति प्रतिषिध्यते । परस्मैपदेष्वित्येव । अयंस्त । अरंस्त । अनंस्त ॥

स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ॥ ७४ ॥

स्मिङ् पूङ् ऋ अञ्जू अशू इत्येतेषां धातूनां सनीडागमो भवति । सिस्मयिषते । पिपविषते । अरिरिषति । अञ्जिजिषति । अशिशिषते । ङकारस्य ग्रहणं पूञो मा भूत् । पुपूषति इत्येव तस्य भवति । अशेरुदितो ग्रहणादश्नोतेर्नित्यमिडागमोऽस्त्येव ॥

किरश्च पञ्चभ्यः ॥ ७५ ॥

किरादिभ्यः पञ्चभ्यः सनि इडागमो भवति । कॄ । चिकरिषति । गॄ । जिगरिषति । दृङ् । दिदरिषते । धृङ् । दिधरिषते । प्रच्छ । पिपृच्छिषति । पञ्चभ्य इति किम् । सिसृक्षति । किरतिगिरत्योरिट् सनि वेति विकल्पः प्राप्तः वृतो वेति चास्येटो दीर्घत्वं नेच्छन्ति ॥

रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ ७६ ॥

रुदादिभ्य उत्तरस्य वलादेः सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । रुद् । रोदिति । स्वप् । स्वपिति । श्वस् । श्वसिति । अन् । प्राणिति । जक्ष् । जक्षिति । पञ्चभ्य इत्येव । जागर्त्ति । सार्वधातुकइति किम् । स्वप्ता । वलादेरित्येव । रुदन्ति ॥

ईशः से ॥ ७७ ॥

ईश उत्तरस्य से इत्येतस्य सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । ईशिषे । ईशिष्व ॥

ईडजनोर्ध्वे च ॥ ७८ ॥

ईड जन इत्येताभ्यामुत्तरस्य ध्वे इत्येतस्य से इत्येतस्य च सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । ईडिध्वे । ईडिध्वम् । ईडिषे । ईडिष्व । जनिध्वे । जनिध्वम् । जनिषे । जनिष्व । जनी प्रादुर्भावइत्यस्य छान्दसत्वात् श्यनो लुक् उपधालोपाभावश्च ॥ जन जननइत्यस्यापि श्लुविकरणस्य ग्रहणमत्रेष्यते ॥ तस्य कर्मव्यतिहारे व्यतिजज्ञिषे । व्यतिजज्ञिष्व । व्यतिजज्ञिध्वे व्यतिजज्ञिध्वम्, इति च भवति ॥ ध्वशब्दे ईशेरपि इडागम इष्यते ॥ ईशिध्वमिति, तदर्थं के चिदीडिजनोः सध्वे चेति सूत्रं पठन्ति । तत्र सकारादेः सेशब्दस्य सूत्रएवोपादानाच्चशब्दो भिन्नक्रमईशेरनुकर्षणार्थो विज्ञायते । ईडिशिजनां

सेध्वयोरित्येकमेव सूत्रं न पठितं, विचित्रा हि सूत्रस्य कृतिः पाणिनेरिति। ध्वे इति कृतटेरेत्वस्य ग्रहणात् लङि ध्वमि न भवितव्यमिटा। लोटि पुनरेकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् भवितव्यमिटा॥

लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ ७९ ॥

सार्वधातुकइति वर्तते *। सार्वधातुके यो लिङ् तस्य अनन्त्यस्य सकारस्य लोपो भवति। कः पुनरनन्त्यो लिङः सकारः। यो यासुट्सुट्सीयुटाम्। कुर्यात्। कुर्याताम्। कुर्युः। कुर्वीत। कुर्वीयाताम्। कुर्वीरन्। अनन्त्यस्येति किम्। कुर्युः। कुर्याः। सार्वधातुकइत्येव। क्रियास्ताम्। क्रियासुः। कृषीष्ट। कृषीयास्ताम्। कृषीरन्॥

अतो येयः ॥ ८० ॥

अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य या इत्येतस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमादेशो भवति। पचेत्। पचेताम्। पचेयुरित्यत्रोस्यपदान्तादिति पररूपं बाधितम्। अत इति किम्। चिनुयात्। सुनुयात्। तपरकरणं किम्। यायात्। सार्वधातुकइत्येव। चिकीर्ष्यात्। ननु चातो लोपेनात्र भवितव्यम्। पचेदित्यत्रापि हि तर्हि अतो दीर्घो यञीति दीर्घत्वेन भवितव्यम्। तदनेनावश्यं विध्यन्तरं बाधितव्यम्। स यथैव दीर्घस्य बाधक एवमतो लोपस्यापि बाधकः स्यात्। स्यादेतदेवं यदि दीर्घः सार्वधातुके विधीयते। अथ तु तिङि विधीयते, तदा येन नाप्राप्तिन्यायेन दीर्घस्यैव बाधकः स्याच पुनरतो लोपस्य। येय इत्यविभक्तिको निर्देशः, य इति वा षष्ठीनिर्देशे यलोपस्यासिद्धत्वमनाश्रित्याद्गुणः कृतः सौत्रत्वान्निर्देशस्येति। के चिद् अचातो यासिय इति सूत्रं पठन्ति। तेषां सकारान्तः स्थानी षष्ठीसमासश्च॥

आतो ङितः ॥ ८१ ॥

आकारस्य ङिदवयवस्य अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमादेशो भवति। पचेते। पचेथे। पचेताम्। पचेथाम्। यजेते। यजेथे। यजेथाम्। सार्वधातुकमपिदित्यत्र न ङितीव ङिद्वदित्येवमङ्गीक्रियते ऽपितु ङित इव ङिद्वदिति पूर्वसूत्रएव उच्चकुटिषतीतिप्रसिद्ध्ये तथाङ्गीकरणम्। यदि गाङ्कुटादिसूत्रे ङिद्वदतीत्येवमङ्गीक्रियते तदा अनुदात्तङित आत्मनेपदमिति आत्मनेपदं प्राप्नोतीति। आत इति किम्। पचन्ति। यजन्ति। पचन्ते। यजन्ते। ङित इति किम्। पचावहे। पचामहे। अत इत्येव। चिन्वाते। सुन्वाते। तपरकरणं किम्। मिमाते। मिमाथे॥

---

* सार्वधातुकइति वर्तत इत्येकस्मिन्पुस्तके नास्ति।

आने मुक् ॥ ८२ ॥

आने परतोऽङ्गस्यातो मुगागमो भवति । पचमानो, यजमानः । अकारमात्रभक्तोयं मुक् अदुपदेशग्रहणेन गृह्यतइति अदुपदेशादिति लसार्वधातुकानुदात्तत्वं भवति । यद्येवमातो ङित इत्ययमपि विधिः प्राप्नोति, तपरनिर्देशाच्च भविष्यति । मुकि सत्यप्यर्द्धमात्रो भवति । लसार्वधातुकानुदात्तत्वमपि तर्हि न प्राप्नोति । नैष दोषः । उपदेशग्रहणं तत्र क्रियते । तेन उपदेशादूर्द्ध्वं सत्यपि कालभेदे भवितव्यम् । तथा च पचावः पचाम इत्यत्रापि भवति ॥

ईदासः ॥ ८३ ॥

आस उत्तरस्यानस्य ईकारादेशो भवति । आसीनो यजते । अत्र पञ्चम्या परस्य षष्ठी कल्प्यते ॥

अष्टन आ विभक्तौ ॥ ८४ ॥

अष्टनो विभक्तौ परत आकारादेशो भवति । अष्टाभिः । अष्टाभ्यः । अष्टानाम् । अष्टासु । विभक्ताविति किम् । अष्टत्वम् । अष्टता । आ इति व्यक्तिनिर्द्देशोयमाकृतिनिर्देशे तु नकारस्थाने ऽनुनासिकाकारः स्यात् । विकल्पेनायमाकारो भवत्येतज्ज्ञापितमष्टनो दीर्घादिति दीर्घग्रहणा,दष्टाभ्य औशिति च कृतात्वस्य निर्द्देशात्तेनाष्टभिरष्टभ्य इत्यपि भवति । तदन्तविधिस्त्वात्रेष्यते । प्रिया अष्टो येषां ते प्रियाष्टानः । प्रियाष्टौ ॥

रायो हलि ॥ ८५ ॥

रै इत्येतस्य हलादौ विभक्तौ परत आकारादेशो भवति । राभ्याम् । राभिः । हलीति किम् । रायौ । रायः । विभक्ताविति किम् । रैत्वम् । रैता । मृजेर्वृद्धिरित्यतः प्राग्विभक्त्यधिकारः ॥

युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ ८६ ॥

युष्मदस्मदित्येतयोरनादेशे विभक्तौ परत आकारादेशो भवति । युष्माभिः । अस्माभिः । युष्मासु । अस्मासु । अनादेशइति किम् । युष्मत् । अस्मत् । हलीत्यधिकारादप्यत्र न स्यात् । उत्तरार्थं त्वनादेशग्रहणेन प्रयोजनं योचीति तदिहैव क्रियते ॥

द्वितीयायां च ॥ ८७ ॥

द्वितीयायां च परतो युष्मदस्मदोराकारादेशो भवति । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् । युष्मान् । अस्मान् । आदेशार्थं वचनम् ॥

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ॥ ८८ ॥

प्रथमायाश्च द्विवचने परतो भाषायां विषये युष्मदस्मदोराकारादेशो भवति । युवाम् । आवाम् । प्रथमाया इति किम् । युवयोः । आवयोः । द्विवचनइति किम् । त्व,महं, यूयं, वयम् । भाषायामिति किम् । युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे ॥

योचि ॥ ८९ ॥

अनादौ विभक्तावनादेशे युष्मदस्मदोर्यकारादेशो भवति । त्वया । मया । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । अचीति किम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्मदस्मदोरनादेशइत्यत्र यदि हलीत्यनुवर्त्तते शक्यमकर्त्तुमची-त्येतत् तत्क्रियते विस्पष्टार्थम् । अनादेशइत्येव । त्वद्गच्छति । मद्गच्छति ॥

शेषे लोपः ॥ ९० ॥

शेषे विभक्तौ युष्मदस्मदोर्लोपो भवति । कश्च शेषः, यत्राकारो यका-रश्च न विहितः ।

पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठीप्रथमयोरपि ।
यान्यद्विवचनान्यत्र तेषु * लोपो विधीयते ॥

त्वम् । अहम् । यूयम् । वयम् । तुभ्यम् । मह्यम् । युष्मभ्यम् । अस्म-भ्यम् । त्वत् । मत् । युष्मत् । अस्मत् । तव । मम । युष्माकम् । अस्माकम् । शेषग्रहणं विस्पष्टार्थम् । शेषे लोपे कृते स्त्रियां टाप् कस्मान्न भवति, त्वं ब्राह्मणी । अहं ब्राह्मणी । संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य । अलिङ्गे वा युष्मदस्मदी इति । के चित्तु शेषे लोपं टिलोपमिच्छन्ति । कथं वक्ष्यमाणादेशापेक्षः शेषः, ते चादेशा मपर्यन्तस्य विधीयन्ते । तेन मपर्यन्ताद् योन्यः स शेष इति । तत्रायं लोप इति टिलोपो भवति ॥

मपर्यन्तस्य ॥ ९१ ॥

मपर्यन्तस्येत्ययमधिकारो, यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो मपर्यन्तस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । युवावौ द्विवचने । युवाम् । आवाम् । मपर्यन्तस्येति किम् । युवकामावकामिति साकच्कस्य मा भूत् । त्वमावेकवचने । त्वया । मया । मपर्यन्तस्येति किम् । सर्वस्य मा भूत् । तथा च सति त्वमयोरकारस्य योचीति यकारे कृते ऽनिष्टं रूपं स्यात् । मान्तस्येत्येव सिद्धे ऽस्मिन् यत्परि-ग्रहणं कृतमवधिद्योतनार्थं तन्मान्ते मा भूत्, कदा, यदा † णयन्तयोः क्विपि मान्तत्वं विद्यते, युष्मदस्मदोः स्थानिवत्त्वं च णेरत्र क्वौ लुप्तत्वाच्च विद्यते ॥

---

* शेषे इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः ।
† मा भूद्यदा तदेति पदमञ्जरीस्थतः पाठः ।

युवावौ द्विवचने ॥ ९२ ॥

द्विवचनइत्यर्थग्रहणम् । द्विवचने ये युष्मदस्मदी द्व्यर्थाभिधानविषये तयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने युव आव इत्येतावादेशौ भवतः । युवाम् । आवाम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युवयोः । आवयोः । यदा समासे द्व्यर्थे युष्मदस्मदी भवतः, समासार्थस्यान्यसंख्यत्वादेकवचनं बहुवचनं वा भवति, तदापि द्व्यर्थयोर्युष्मदस्मदोर्युवावौ भवतः, यदि त्वाहौ सौ इत्येवमादिना आदेशान्तरेण न बाध्येते । अतिक्रान्तं युवा,मतियुवाम् । अत्यावाम् । अतिक्रान्तान् । युवा,-मतियुवान् । अत्यावान् । अतिक्रान्तेन युवा,मतियुवया । अत्यावया । अतिक्रान्तैर्युवा,मतियुवाभिरत्यावाभिः । अतिक्रान्तेभ्यो युवा,मतियुवभ्यमत्यावभ्यम् । अतिक्रान्ताद् युवा,मतियुवत् । अत्यावत् । अतिक्रान्तेभ्यो युवामागतः, अतियुवत् । अत्यावत् । अतिक्रान्तानां युवा,मतियुवाकम् । अत्यावाकम् । अतिक्रान्ते युवा,मतियुवयि । अत्यावयि । अतिक्रान्तेषु युवा,मतियुवासु । अत्यावासु । त्वाहादीनां तु विषये परत्वात्तएव भवन्ति । अतिक्रान्तो युवा,मतित्वम् । अत्यहम् । अतिक्रान्ता युवाम्, अतियूयम् । अतिवयम् । अतिक्रान्ताय युवाम्, अतितुभ्यम् । अतिमह्यम् । अतिक्रान्तस्य युवा,मतितव । अतिमम । यदा तु युष्मदस्मदी एकत्वबहुत्वयोर्वर्त्तेते, समासार्थस्तु द्वित्वे, तदा युवावौ न भवतः । अतिक्रान्तौ त्वाम्, अतित्वाम् । अतिमाम् । अतिक्रान्तौ युष्मान्, अतियुष्मानत्यस्मान् । एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥

यूयवयौ जसि ॥ ९३ ॥

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य जसि परतो यूय वय इत्येतावादेशौ भवतः । यूयम् । वयम् । परमयूयम् । परमवयम् । अतियूयम् । अतिवयम् । तदन्तविधिरत्र भवति । अङ्गाधिकारे तस्य च ग्रहणं भवति तदुत्तरपदस्य चेति * ।

त्वाहौ सौ ॥ ९४ ॥

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य सौ परे त्व अह इत्येतावादेशौ भवतः । त्वम् । अहम् । परमत्वम् । परमाहम् । अतित्वम् । अत्यहम् ॥

तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ ९५ ॥

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तुभ्य मह्य इत्येतावादेशौ भवतो ङयि परतः । तुभ्यम् । मह्यम् । परमतुभ्यम् । परममह्यम् । अतितुभ्यम् । अतिमह्यम् ॥

तवममौ ङसि ॥ ९६ ॥

---

* अङ्गाधिकारे तस्य तदुत्तरपदस्य चेत्यादि बहुषु पुस्तकेषु नास्ति । तदेव तु युक्तम् । पदमञ्जर्यां दर्शनात् ।

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तव मम इत्येतावादेशौ भवतो ङसि परतः। तव। मम। परमतव। परमम। अतितव। अतिमम॥

त्वमावेकवचने ॥ ९७ ॥

एकवचनइत्यर्थनिर्द्देशः। एकवचने ये युष्मदस्मदी एकार्थाभिधानविषये तयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने त्व म इत्येतावादेशौ भवतः। त्वाम्। माम्। त्वया। मया। त्वत्। मत्। त्वयि। मयि। यदा समासे एकार्थे युष्मदस्मदी भवतः, समासार्थस्य त्वन्यसंख्यत्वाद् द्विवचनं बहुवचनं वा भवति, तदापि त्वमावादेशौ भवतः। आदेशान्तराणां तु विषये त्वाहौ सावित्येवमादीनां पूर्वविप्रतिषेधेन तएवेष्यन्ते। अतिक्रान्तस्त्वामतित्वम्। अत्यहम्। अतिक्रान्तौ त्वामतित्वाम्। अतिमाम्। अतिक्रान्तान् त्वामतित्वान्। अतिमान्। अतिक्रान्ताभ्यां त्वा,मतित्वाभ्याम्। अतिमाभ्याम्। अतिक्रान्तैस्त्वामतित्वाभिः। अतिमाभिः। इत्येवमाद्युदाहार्यम्॥

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ ९८ ॥

एकवचनइत्यनुवर्त्तते। प्रत्यये उत्तरपदे च परत एकत्वे वर्त्तमानयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व म इत्येतावादेशौ भवतः। त्वदीयं, त्वदीयः। मदीयः। अतिशयेन त्वं, त्वत्तरः। मत्तरः। त्वामिच्छति, त्वद्यति। मद्यति। त्वमिवाचरति, त्वद्यते। मद्यते। उत्तरपदे। तव पुत्र,स्त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः। त्वं नाथोस्य, त्वन्नाथो, मन्नाथः। एकवचनइत्येव। युष्माकमिदं युष्मदीयम्। अस्मदीयम्। युष्माकं पुत्रो ऽस्माकं पुत्रो युष्मत्पुत्रो ऽस्मत्पुत्रः। विभक्तावित्यधिकारात् पूर्वयोगो विभक्ताविव। ततोन्यत्रापि प्रत्यये उत्तरपदे च यथा स्यादित्ययमारम्भः। ननु चात्राप्यन्तर्वर्तिनी विभक्तिरस्ति तस्यामेवादेशौ भविष्यतः। नैवं शक्यं, लुका तस्या भवितव्यम्। बहिरङ्गो लुक् अन्तरङ्गावादेशौ प्रथमं तौ भविष्यतः। एतदेव तह्यदिशवचनं ज्ञापकमन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गोपि लुक् बाधते इति। तेन गोमान्प्रियोस्य गोमत्प्रिय इत्येवमादौ नुमादि लुका बाध्यते। एवं च सति त्वाहौ सावित्येवमादयोपि प्रत्ययोत्तरपदयोरादेशा न भवन्ति। त्वं प्रधानमेषां त्वत्प्रधानः। मत्प्रधानः। यूयं पुत्रा अस्य युष्मत्पुत्रो ऽस्मत्पुत्रः। तुभ्यं हितं त्वद्धितं मद्धितम्। तव पुत्रःस्त्वत्पुत्रो मत्पुत्रः। अथ किमर्थमेषां त्वाहादीनां बाधनार्थमेतन्न विज्ञायते। लक्ष्यस्थित्यपेक्षया। ज्ञापकार्थे ह्येतस्मिन्बहुतरमिष्टं संगृह्यते॥

त्रिचतुरोस्त्रियां तिसृचतसृ ॥ ९९ ॥

त्रि चतुर् इत्येतयोः स्त्रियां वर्त्तमानयोस्तिसृ चतसृ इत्येतावादेशौ

भवतो विभक्तौ परतः। तिस्रः। चतस्रः। तिसृभिः। चतसृभिः। स्त्रियामिति किम्। त्रयः। चत्वारः। त्रीणि। चत्वारि। स्त्रियामिति चैतत् त्रिचतुरोरेव विशेषणं नाङ्गस्य। तेन यदा त्रिचतुःशब्दौ स्त्रियामङ्गं तु लिङ्गान्तरे तथाप्यादेशौ भवत एव। प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योस्य ब्राह्मणस्य प्रियतिसा ब्राह्मण इति। प्रियतिस्रौ। प्रियतिस्रः। प्रियतिसृ ब्राह्मणकुलम्। प्रियतिसृणी। प्रियतिसृणि। प्रियचतसा। प्रियचतस्रौ। प्रियचतस्रः। प्रियचतसृ। प्रियचतसृणी। प्रियचतसृणि। नद्यृतश्चेति समासान्तो न भवति। विभक्त्याश्रयत्वेन तिसृभावस्य बहिरङ्गलक्षणत्वात् *। यदा तु त्रिचतुःशब्दौ लिङ्गान्तरे स्त्रियामङ्गं तदा आदेशौ न भवतः। प्रियास्त्रयोस्याः प्रियाणि त्रीणि वा अस्या ब्राह्मण्याः सा प्रियत्रिः। प्रियत्री। प्रियत्रयः। प्रियचत्वाः। प्रियचत्वारौ। प्रियचत्वारः॥ तिसृभावे संज्ञायां कन्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्॥ *॥ तिसृका नाम ग्रामः॥ चतसर्याद्युदात्तनिपातनं कर्त्तव्यम्॥ *॥ चतस्रः पश्येत्यत्र चतुरः शसीत्येव स्वरो मा भूत्। चतसृणामित्यत्र तु षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिरित्येव स्वरो भवति। हलादिग्रहणसामर्थ्यान्निपातनस्वरो बाध्यते॥

अचि र ऋतः॥ १००॥

तिसृ चतसृ इत्येतयोर्ऋतः स्थाने रेफादेशो भवति अजादौ विभक्तौ परतः। तिस्रस्तिष्ठन्ति। तिस्रः पश्य। चतस्रस्तिष्ठन्ति। चतस्रः पश्य। प्रियतिस्र आनय। प्रियचतस्र आनय। प्रियतिस्रः स्वम्। प्रियचतस्रः स्वम्। प्रियतिस्रि निधेहि प्रियचतस्रि निधेहि। पूर्वसवर्णोत्वङिसर्वनामस्थानगुणानामपवादः। परमपि ङिसर्वनामस्थानगुणं पूर्वविप्रतिषेधेन बाधते। अचीति किम्। तिसृभिः। चतसृभिः। ऋत इति तिसृचतस्रोः प्रतिपत्त्यर्थमन्यथा हि तदपवादस्त्रिचतुरोरेवायमादेशो विज्ञायेत॥

जराया जरसन्यतरस्याम्॥ १०१॥

जरा इत्येतस्य जरसित्ययमादेशो भवति अन्यतरस्यामजादौ विभक्तौ परतः। जरसा दन्ताः शीर्यन्ते। जरया दन्ताः शीर्यन्ते। जरसे त्वा परिदद्युः। जरायै त्वा परिदद्युः। अचीत्येव। जराभ्याम्। जराभिः। नुमोजरसादेशो विप्रतिषेधेन। अतिजरांसि ब्राह्मणकुलानि। इहातिजरसं ब्राह्मणकुलं पश्येति लुग्न भवति आनुपूर्व्या सिद्धत्वात्। अतिजर अमिति स्थिते लुगम्भावो जरस्भाव इति त्रीणि कार्याणि युगपत्प्राप्नुवन्ति। तत्र लुक्तावदपवादत्वादम्भावेन बाध्यते। अम्भावेपि परत्वाज्जरसादेशेन, न च पुनर्लुक्शास्त्रं प्रवर्त्तते भ्रंष्टावसरत्वाद इत्येवमेव भवति अतिजरसं ब्राह्मणकुलं पश्येति,

* बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वादिति पुस्तकान्तरे पाठः।

प्रथमैकवचने तृतीयाबहुवचने च अतिजरं ब्राह्मणकुलं तिष्ठति, अतिजरैरिति च भवितव्यमिति गोनर्दीयमतम् । किं कारणं, संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति । अन्ये त्वनित्यत्वादस्याः परिभाषाया अतिजरसं ब्राह्मणकुलं तिष्ठति अतिजरसैरित्येवं भवितव्यमिति मन्यन्ते ॥

त्यदादीनामः ॥ १०२ ॥

त्यदित्येवमादिनामकारादेशो भवति विभक्तौ परतः । त्यद् । स्यः । त्यौ । त्ये । तद् । सः । तौ । ते । यद् । यः । यौ । ये । एतद् । एषः । एतौ । एते । इदम् । अयम् । इमौ । इमे । अदस् । असौ । अमू । अमी । द्वि । द्वौ । द्वाभ्याम् ॥ द्विपर्यन्तानां त्यदादीनामत्वमिष्यते ॥ इह न भवति । भवत् । भवान् । संज्ञोपसर्जनीभूतास्त्यदादयः पाठादेव पर्युदस्ता इतीह न भवति । त्यद् । त्यदौ । त्यदः । अतित्यद् । अतित्यदौ । अतित्यदः । त्यदादिप्रधाने तु शब्दे भवत्येव । परमसः । परमतौ । परमते ॥

किमः कः ॥ १०३ ॥

किम् इत्येतस्य क इत्ययमादेशो भवति विभक्तौ परतः । कः । कौ । के । साकच्कस्याप्ययमादेशो भवति, तेनाकार एव किमो न विधीयते किमोऽदिति ॥

कु तिहोः ॥ १०४ ॥

तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परतः किमित्येतस्य कु इत्ययमादेशो भवति । कुतः । कुत्र । कुह । तिहोरितीकार उच्चारणार्थः ॥

क्वाति ॥ १०५ ॥

अतीत्येतस्यां विभक्तौ परतः किमित्येतस्य क्व इत्ययमादेशो भवति । क्व । गमिष्यसि । क्व भोक्ष्यते । आदेशान्तरवचनमोर्गुणनिवृत्त्यर्थम् । किमो ऽद्विदिति च प्रत्यान्तरं न विधीयते साकच्कार्थम् ॥

तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १०६ ॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सकारादेशो भवति सौ परतः । त्यद् । स्यः । तद् । सः । एतद् । एषः । अदस् । असौ । अनन्त्ययोरिति किम् । हे स । सा ॥

अदस औ सुलोपश्च ॥ १०७ ॥

अदसः सौ परतः सकारस्य औकारादेशो भवति सोश्च लोपो भवति । असौ ॥ औत्वप्रतिषेधः साकच्काद्वा वक्तव्यः सादुत्वं च ॥ * ॥ यदा चौत्वप्रतिषेधः तदा सकारादुत्तरस्य उत्वं भवति । असुकः । असकौ ॥ उत्तरपदभू-

तानां त्यदादीनामकृतसन्धीनामादेशा वक्तव्याः ॥ * ॥ परमाहम् । परमायम् । परमानेन ।

अदसः सोर्भवेदौत्वं किं सुलोपो विधीयते ।
ह्रस्वाल्लुप्येत संबुद्धिर्न हलः प्रकृतं हि तत् ॥
आप एत्वं भवेत्तस्मिन्न झलीत्यनुवर्तनात् ।
प्रत्ययस्थाच्च कादित्वं शीभावश्च प्रसज्यते ॥

इदमो मः ॥ १०८ ॥

इदमः सौ परतो मकारोऽन्तादेशो भवति । इयम् । अयम् । इदमो मकारस्य मकारवचनं त्यदाद्यत्वबाधनार्थम् ॥

दश्च ॥ १०९ ॥

इदमो दकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति विभक्तौ परतः । इमौ । इमे । इमम् । इमौ । इमान् * ॥

यः सौ ॥ ११० ॥

इदमो मकारस्य यकारादेशो भवति सौ परतः । इयम् । उत्तरसूत्रे पुंसीति वचनात्स्त्रियामयं यकारः ॥

इदो ऽय् पुंसि ॥ १११ ॥

इदम इद्रूपस्य पुंसि सौ परतो ऽय् इत्ययमादेशो भवति । अयं ब्राह्मणः । पुंसीति किम् । इयं ब्राह्मणी ॥

अनाप्यकः ॥ ११२ ॥

इदमो ऽककारस्य इद्रूपस्य स्थाने अन इत्ययमादेशो भवति आपि विभक्तौ परतः । अनेन । अनयोः । अक इति किम् । इमकेन । इमकयोः । आपीति प्रत्याहारः तृतीयैकवचनात्प्रभृति सुपः पकारेण ॥

हलि लोपः ॥ ११३ ॥

हलादौ विभक्तौ परत इदमो ऽककारस्य इद्रूपस्य लोपो भवति । आभ्याम् । एभिः । एभ्यः । एषाम् । एषु । नानर्थके ऽलोन्त्यविधिरिति सर्वस्यायमिद्रूपस्य लोपः । अथ वा नायमिल्लोपः । अनाप्यक इति अन्यग्रहणमनुवर्त्तते † ॥

मृजेर्वृद्धिः ॥ ११४ ॥

विभक्ताविति निवृत्तम् । मृजेरङ्गस्य इको वृद्धिर्भवति । मार्ष्टा । मार्ष्टुम् ।

* इह साविति न संबध्यते, उत्तरसूत्रे साविति वचनादित्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।
† अथ वा ऽनोयमलोन्त्यलोप इति पा० २ पुस्तकान्तरे ।

मार्ष्टव्यम् । मृजेरिति धातुग्रहणमिदं, धातोश्च कार्यमुच्यमानं धातुप्रत्ययएव वेदितव्यम् । कंसपरिमृड्भ्यां कंसपरिमृड्भिरित्यत्र न भवति ॥

अचो ञ्णिति ॥ ११५ ॥

अजन्तस्याङ्गस्य ञिति णिति च वृद्धिर्भवति । ञिति । एकस्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । कारः । हारः । णिति । गौः । गावौ । गावः । सखायौ । सखायः । जैत्रम् । यौत्रम् । च्यौत्नः । जयतेर्यौतेश्च उणादयो बहुलमिति ष्ट्रन् प्रत्ययः । च्यवतेरपि त्नण् ॥

अत उपधायाः ॥ ११६ ॥

अङ्गोपधाया अकारस्य स्थाने ञिति णिति च प्रत्यये वृद्धिर्भवति । पाक,-स्त्यागो,यागः । पाचयति । पाचकः । पाठयति । पाठकः । अत इति किम् । भेदयति, भेदकः । उपधाया इति किम् । चकासयति तत्रकः ॥

तद्धितेष्वचामादेः ॥ ११७ ॥

तद्धिते ञिति णिति च प्रत्यये परतोऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति । गार्ग्यः । वात्स्यः । दाक्षिः । प्लाक्षिः । णिति । औपगवः । कापटवः । त्वाष्ट्रो जागत इत्यत्राचामादिवृद्धिरन्त्योपधालक्षणां वृद्धिं बाधते ॥

किति च ॥ ११८ ॥

किति च तद्धिते परतोऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति । नडादिभ्यः फक् । नाडायनः । चारायणः । प्राग्वहतेष्ठक् । आक्षिकः । शालाकिकः ॥

इति काशिकायां वृत्तौ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ॥ १ ॥

देविका शिंशपा दित्यवाट् दीर्घसत्र श्रेयस् इत्येतेषामङ्गानामचामादेरचः स्थाने वृद्धिप्रसङ्गे आकारो भवति ञिति णिति किति तद्धिते परतः । देविकायां भवमुदकं, दाविकमुदकम् । देविकाकूले भवाः शालयः, दाविकाकूलाः शालयः । पूर्वदेविका नाम प्राचां ग्रामः । तत्र भवः पूर्वदाविकः । प्राचां ग्रामनगराणामित्युत्तरपदवृद्धिः साप्याकार एव भवति । शिंशपा । शिंशपाया विकारश्चमसः, शांशपश्चमसः । पलाशादित्वं तेन पक्षे अण् अनुदात्तादिलक्षणो वा अञ् । शिंशपास्थले भवाः, शांशपास्थलाः । पूर्वशिंसपा नाम प्राचां ग्रामः तत्र भवः पूर्वशांशपः । दित्यवाट् । दित्यौह इदं, दात्यौहम् । दीर्घसत्रे

भवं, दार्घसत्रम् । श्रेयसि भवं, श्रायसम् ॥ वहीनरस्येद्वचनम् ॥ * ॥ वृद्धिविषये ऽचामादेरचः स्थाने वहीनरस्य इकारादेशो भवति । वहीनरस्यापत्यं, वैहीनरिः । के चित्तु विहीनरस्यैव वैहीनरिमिच्छन्ति ॥

केकयमित्त्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ २ ॥

केकय मित्त्रयु प्रलय इत्येतेषां यकारादेरिय इत्ययमादेशो भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । केकयस्यापत्यं कैकेयः । जनपदशब्दात्क्षत्त्रियादञित्यञ्प्रत्ययः । मित्त्रयुभावेन श्लाघते, मैत्त्रेयिकया श्लाघते । गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेष्विति वुञ् । लौकिकं हि तत्र गोत्रं गृह्यते । लोके ऋषिशब्दो गोत्रमित्यभिधीयते । प्रलय । प्रलयादागतं, प्रालेयमुदकम् ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥ ३ ॥

यकारवकाराभ्यामुत्तरस्य अचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति ताभ्यां तु यकारवकाराभ्यां पूर्वमैचागमौ भवतो ञिति णिति किति च तद्धिते परतः । यकारादैकारः । वकारादौकारः । व्यसने भवं, वैयसनम् । व्याकरणमधीते, वैयाकरणः । स्वश्वस्यापत्यं, सौवश्वः ॥ य्वाभ्यामिति किम् । त्र्यर्थस्यापत्यं त्रार्थिः । पदान्ताभ्यामिति किम् । यष्टिः प्रहरणमस्य याष्टीकः । यतेश्छात्रा यातः । प्रतिषेधवचनमैचो विषयप्रक्लृप्त्यर्थ,मिह मा भूद्वाध्यश्विः । माध्वश्विरिति । नह्यत्र य्वाभ्यामुत्तरस्य वृद्धिप्रसङ्गोऽस्ति । वृद्धेरभावात्प्रतिषेधोऽपि नास्तीत्यप्रसङ्गः ॥ उत्तरपदवृद्धेरप्ययं प्रतिषेध इष्यते ॥ पूर्वेच्यलिन्दे भवः, पूर्वैयलिन्दः । यत्र तूत्तरपदसंबन्धी यण् न भवति तत्र नेष्यते प्रतिषेधः । द्वे अशीती भृतो भूतो भावी वा द्व्याशीतिकः ॥

द्वारादीनां च ॥ ४ ॥

द्वार इत्येवमादीनां य्वाभ्याम् उत्तरपदस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति पूर्वौ तु ताभ्यामैजागमौ भवतः । द्वारे नियुक्तः, दौवारिकः । द्वारपालस्येदं, दौवारपालम् । तदादिविधिश्चात्र भवति । स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः । सौवरोऽध्यायः । सौवर्यः सप्तम्य इति । व्यल्कशे भवः, वैयल्कशः । स्वस्तीत्याह, सौवस्तिकः । स्वर्भवः, सौवः ॥ अव्ययानां भमात्रे टिलोपः ॥ * ॥ स्वर्गमनमाह, सौवर्गमिकः । स्वाध्याय इति के चित्पठन्ति, तदनर्थकम् । शोभनो ऽध्याय, इत्येतस्यां व्युत्पत्तौ तु पूर्वेणैव सिद्धम् । अथाप्येवं व्युत्पत्तिः क्रियते । स्वोऽध्यायः स्वाध्याय इति । एवमप्यत्रैव स्वशब्दस्यैव पाठात्सिद्धम् । तदादावपि हि वृद्धिरियं भवत्येव । स्फ्यकृतस्यापत्यं, स्फैयकृतः । स्वादुमृदुन इदं, सौवादुमृदवम् । श्वन् । शुन इदं, शौवनम् । अवणि इति प्रकृतिभावः । शुनो विकारो मांसं, शौवम् । प्राणिरजतादिभ्योऽञित्यञ् । श्वादं-

द्वार्यां भवः, शौवादंष्ट्रो मणिः । स्वस्येदं, सौवम् । स्वग्रामे भवः, सौवग्रामिकः । अध्यात्मादित्वाट्ठञ् । अपदान्तार्थोयमारम्भः । द्वार । स्वर । स्वाध्याय । व्यल्कश । स्वस्ति । स्वर । स्फ्यकृत । स्वादुमृदु । श्वन् । स्व ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ५ ॥

न्यग्रोधशब्दस्य केवलस्य यकारादुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति तस्माच्च पूर्वमैकार आगमो भवति । न्यग्रोधस्य विकारः, नैयग्रोधश्चमसः । केवलस्येति किम् । न्यग्रोधमूले भवाः शालयः, न्याग्रोधमूलाः शालयः । न्यग्रोहयतीति न्यग्रोध इति व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थं,मव्युत्पत्तिपक्षे विध्यर्थम् ॥

न कर्मव्यतिहारे ॥ ६ ॥

कर्मव्यतिहारे यदुक्तं तन्न भवति । प्रतिषेधागमयोरयं प्रतिषेधः । व्यावक्रोशी व्यावलेखी व्यावर्त्ती व्यावहासी वर्त्तते । कर्म्मव्यतिहारे णच् स्त्रियामिति णच् प्रत्ययस्तदन्ताण्णचः स्त्रियामञ् * ॥

स्वागतादीनां च ॥ ७ ॥

स्वागत इत्येवमादीनां यदुक्तं तन्न भवति । स्वागतमित्याह, स्वागतिकः । स्वध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः । स्वङ्गस्यापत्यं, स्वाङ्गिः । व्यङ्गस्यापत्यं, व्याङ्गिः । व्यडस्यापत्यं, व्याडिः । व्यवहारेण चरति, व्यावहारिकः व्यवहारशब्दोयं लौकिके वृत्ते वर्त्तते न तु कर्म्मव्यतिहारे । स्वपतौ साधुः, स्वापतेयः । द्वारादिषु स्वशब्दपाठादत्र प्राप्तिः स्वागत । स्वध्वर । स्वङ्ग । व्यङ्ग । व्यड । व्यवहार । स्वपति ॥

श्वादेरिञि ॥ ८ ॥

श्वादेरङ्गस्य इञि परतो यदुक्तं तन्न भवति । श्वभस्त्रस्यापत्यं, श्वाभस्त्रिः । श्वादंष्ट्रिः । स्वशब्दो द्वारादिषु पठ्यते, तत्र तदादिविधिर्भवतीत्येतदेव वचनं ज्ञापकम् ॥ इकारादिग्रहणं कर्त्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थम् ॥ * ॥ श्वगणेन चरति, श्वागणिकः । श्वायूथिकः ॥ तदन्तस्य चान्यत्रापि तद्धिते प्रतिषेध इष्यते ॥ श्वाभस्त्रेरिदं, श्वाभस्त्रम् ॥

पदान्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ९ ॥

श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्यान्यतरस्यां यदुक्तं तन्न भवति । श्वापदस्येदं, श्वापदम् । शौवापदम् ॥

उत्तरपदस्य ॥ १० ॥

उत्तरपदस्येत्ययमधिकारः, हनस्तोचिण्णलोरिति प्रागेतस्मात् । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यांम उत्तरपदस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यत्यवयवादृतोः । पूर्व-

---

* तदन्ताद् टिड्ढाणञिति ङीप् । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

वार्षिकम् । अपरवार्षिकम् । पूर्वहैमनम् । अपरहैमनम् । यत्र पञ्चमीनिर्देशो नास्ति तत्र प्रोष्ठपदानामित्येवमादौ तदर्थमुत्तरपदाधिकारः । पञ्चमीनिर्देशेष्वपि विस्पष्टार्थं वृद्धेश्च व्यपदेशार्थम् । उत्तरपदवृद्धौ सर्वं चेत्युत्तरपदाधिकारे वैषा वृद्धिरित्येवं विज्ञायते ॥

अवयवादृतोः ॥ ११ ॥

अवयववाचिन उत्तरस्य ऋतुवाचिन उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । पूर्ववार्षिकम् । पूर्वहैमनम् । अपरवार्षिकम् । अपरहैमनम् । पूर्वं वर्षाणामपरं वर्षाणामित्येकदेशिसमासः । तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे वर्षाभ्यष्ठक् हेमन्ताच्च सर्वत्राण् च तलोपश्च इत्यण् प्रत्ययः, तत्र ऋतोर्वृद्धिमद्विधाववयवादिति * तदन्तविधिः । अवयवादिति किम् । पूर्वासु वर्षासु भवं पौर्ववार्षिकम् । कालाट्ठञ् इति ठञ् । अवयवपूर्वस्यैव तदन्तविधिर्नान्यस्य ॥

सुसर्वार्धाज्जनपदस्य ॥ १२ ॥

सु सर्व अर्ध इत्येतेभ्य उत्तरस्य जनपदवाचिन उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । सुपाञ्चालकः । सर्वपाञ्चालकः । अर्धपाञ्चालकः । जनपदतदवध्योश्च अवृद्धादपि बहुवचनविषयादिति वुञ् । सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्येति तदन्तविधिः ॥

दिशोऽमद्राणाम् ॥ १३ ॥

दिग्वाचिन उत्तरस्य जनपदवाचिनो मद्रवर्जितस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । पूर्वपाञ्चालकः । अपरपाञ्चालकः । दक्षिणपाञ्चालकः । पूर्ववत्तदन्तविधिः प्रत्ययश्च । दिश इति किम् । पूर्वः पञ्चालानां, पूर्वपञ्चालः । तत्र भवः, पौर्वपञ्चालकः । आपरपञ्चालकः । अमद्राणामिति किम् । पौर्वमद्रः । आपरमद्रः । मद्रेभ्योऽञित्यञ्प्रत्ययः ॥

प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ १४ ॥

प्राचां देशे ग्रामनगराणां दिश उत्तरेषामचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । ग्रामाणाम् । पूर्वेषु कामशम्यां भवः, पूर्वेषुकामशमः । अपरैषुकामशमः । पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः । अपरकार्ष्णमृत्तिकः । नगराणाम् । पूर्वस्मिन्पाटलिपुत्रे भवः, पूर्वपाटलिपुत्रकः । अपरपाटलिपुत्रकः । पूर्वकान्यकुब्जः । अपरकान्यकुब्जः । ग्रामत्वादेव नगराणामपि ग्रहणे सिद्धे भेदेन यदुभयोरु-

* क्वचिदवयवानामिति षष्ठीबहुवचनान्तः पाठः । सोऽयुक्तः । अर्थासंगतेरिति पदमञ्जरी ।

पादानं तत्संबन्धभेदप्रतिपत्त्यर्थं दिक्पूर्वपदो हि समुदायः पूर्वेषुकामशम्यादिः ग्रामनामधेयम् । पाटलिपुत्रादिः पुनरुत्तरपदमेव नगरमाह । तत्र ग्रामवाचिनमाङ्गानामवयवस्य दिक्शब्दादुत्तरस्य वृद्धिर्भवतीत्येवमभिसंबन्धः क्रियते । इतरत्र तु दिश उत्तरेषां नगराणामित्येव । पूर्वेषु कामशम इत्येवमादिषु कृतायामुत्तरपदवृद्धौ एकादेशो भवतीति ज्ञापितं नेन्द्रस्य परस्येति प्रतिषेधेन ॥

संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च ॥ १५ ॥

संख्याया उत्तरपदस्य संवत्सरशब्दस्य संख्यायाश्चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्विसांवत्सरिकः । संख्यायाः । द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विपाष्टिकः । द्विसाप्ततिकः । द्विषष्ट्यादिशब्दो वर्षेषु संख्येयेषु वर्त्तमानः कालाधिकारविहितं प्रत्ययमुत्पादयति । परिमाणान्तस्येत्येव सिद्धे संवत्सरग्रहणं परिमाणग्रहणे कालपरिमाणस्याग्रहणार्थम् । तेन द्वैसमिकः त्रैसमिक इत्युत्तरपदवृद्धिर्न भवति । द्विवर्षा त्रिवर्षा माणविकेत्यपरिमाणबिस्ताचितेति पर्युदासो न भवति ॥

वर्षस्याभविष्यति ॥ १६ ॥

संख्याया उत्तरस्य वर्षशब्दस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः, स चेत्तद्धितो भविष्यत्यर्थे न भवति । द्विवर्षं अधीष्टो भृतो भूतो वा, द्विवार्षिकः । त्रिवार्षिकः । अभविष्यतीति किम् । यस्य त्रैवर्षिकं धान्यं निहितं भृत्यवृत्तये अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति । त्रीणि वर्षाणि भावीति त्रैवर्षिकम् । अधीष्टभृतयोरभविष्यतीति प्रतिषेधो न भवति । गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता न तु तद्धितार्थः । द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म्म करिष्यतीति, द्विवार्षिको मनुष्यः ॥

परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ॥ १७ ॥

परिमाणान्तस्याङ्गस्य संख्यायाः परं यदुत्तरपदं तस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः, संज्ञायां विषये शाणे चोत्तरपदे न भवति । द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य, द्विकौडविकः । द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं, द्विसौवर्णिकम् । विभाषा कार्षापणसहस्राभ्यामित्यत्र सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानमिति लुको विकल्पः । द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं, द्वित्रिपूर्वान्निष्काद्, द्विनैष्किकम् । असंज्ञाशाणयोरिति किम् । पाञ्चलोहितिकम् । पाञ्चकपालिकम् । पञ्च लोहित्यः परिमाणमस्य पञ्च कपालानि परिमाणमस्येति विगृह्य तदस्य परिमाणमिति योगविभागात्प्रत्ययस्तद्धितान्तश्चायं समुदायः संज्ञा । द्वाभ्यां शाणाभ्यां

क्रीतं, द्वैशाणम् । त्रैशाणम् । शाणाद्वा, द्वित्रिपूर्वादणत्रेत्यण् प्रत्ययः । असंज्ञाशाणकुलिजानामिति के चित्पठन्ति । द्वे कुलिजे प्रयोजनमस्य द्वैकुलिजिकः ॥

जे प्रोष्ठपदानाम् ॥ १८ ॥

जइति जातार्थो निर्दिश्यते । तत्र यस्तद्धितो विहितस्तस्मिन् ञिति णिति किति च परतः प्रोष्ठपदानामुत्तरस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति । प्रोष्ठपदा नाम नक्षत्रं ताभिर्युक्तः काल इत्यण् । तस्य लुबविशेष इति लुप् । प्रोष्ठपदासु जातः । ऋतुनक्षत्रेभ्योऽणित्यण् । प्रोष्ठपदो माणवकः । जइति किम् । यदा प्रोष्ठपदो मेघो धरणीमभिवर्षति । प्रोष्ठपदासु भवः प्रौष्ठपदः । प्रोष्ठपदानामिति बहुवचननिर्देशात्पर्यायोऽपि गृह्यते भद्रपाद इति ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ १९ ॥

हृद् भग सिन्धु इत्येवमन्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । सुहृदयस्येदं, सौहार्दम् । सुहृदयस्य भावः, सौहार्दम् । सुभगस्य भावः, सौभाग्यम् । दौर्भाग्यम् । सुभगाया अपत्यं, सौभागिनेयः । दौर्भागिनेयः । कल्याण्यादिषु सुभगदुर्भगेति पठ्यते । सुभग मन्त्रे इत्युद्गात्रादिषु पठ्यते । तत्रोत्तरपदवृद्धिर्नेष्यते । महते सौभगाय । छन्दसि सर्वविधीनां विकल्पितत्वात् । सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः, सक्तुसिन्धुषु भवः, साक्तुसैन्धवः । पानसैन्धवः । सिन्धुशब्दः कच्छादिषु पठ्यते, तेन तदन्तविधिरिष्यते इत्यणप्रत्ययः ॥

अनुशतिकादीनां च ॥ २० ॥

अनुशतिक इत्येवमादीनां चाङ्गानां पूर्वपदस्य चोत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । अनुशतिकस्येदम्, आनुशातिकम् । अनुहोडेन चरति, आनुहौडिकः । अनुसंवरणे दीयते, आनुसांवरणम् । अनुसंवत्सरेण दीयते, आनुसांवत्सरिकः । अङ्गारवेणुर्नाम कश्चित्तस्यापत्यम्, आङ्गारवैणवः । असिहत्य । तत्र भवं, आसिहात्यम् । अस्यहत्य इति के चित्पठन्ति ततोऽपि विमुक्तादित्वादण् । अस्यहत्यशब्दोऽस्मिन्नध्यायेऽस्ति, आस्यहात्यः । अस्यहेतिरित्येवमपरे पठन्ति । अस्यहेतिः प्रयोजनमस्य, आस्यहैतिकः । अत एव वचनादस्य समुदायस्य प्रातिपदिकत्वं विभक्तेश्चालुक् । वध्योग इति बिदादिरयं, तस्यापत्यं वाध्यौगः । पुष्करसत्, अनुहरत्, एतौ बाह्वादिषु पठ्येते । पौष्करसादिः । आनुहारतिः । कुरुकत गर्गादिः, कौरुकात्यः । कुरुपञ्चाल । कुरुपञ्चालेषु भवः, कौरुपाञ्चालः । जनपदसमुदायो जनपदग्रहणेन गृह्यते इति वुञ् न भवति । उदकशुद्धस्यापत्यम्, औदकशौद्धिः । इहलोक । परलोक । तत्र भवः, ऐहलौकिकः । पारलौकिकः । लोकोत्तरपद-

स्येति ठञ् । सर्वलोक । तत्र विदितः, सार्वलौकिकः । सर्वपुरुषस्येदं, सार्वपौरुषम् । सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः । प्रयोग । तत्र भवः, प्रायोगिकः । परस्त्री । पारस्त्रैणेयः । कुलटाया वेतीनङ् * ॥ राजपुरुषात् ष्यञि ॥ राजपौरुष्यम् । ष्यञीति किम् । राजपुरुषस्यापत्यं राजपुरुषायणिः । उदीचां वृद्धादगोत्रादिति फिञ् । शतकुम्भसुखशयनादयः । शतकुम्भे भवः, शातकौम्भः । सौखशायनिकः । पारदारिकः † । सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः । आकृतिगणश्चायमिष्यते । तेनेदमपि सिद्धं भवति । अभिगममर्हति, आभिगामिकः । अधिदेवे भवमाधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । चतस्र एव विद्याः, चातुर्वैद्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । वध्याग । पुस्करसत् । अनुहरत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री ॥ राजपुरुषात् ष्यञि ॥ सूत्रनड ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ २१ ॥

देवताद्वन्द्वे च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । आग्निमारुतीमनड्वाहीमालभेत । आग्निमारुतं कर्म्म । यो देवताद्वन्द्वः सूक्तहविःसंबन्धी तत्रायं विधिः । इह तु न भवति । स्कन्दविशाखौ देवते अस्य, स्कान्दविशाखः । ब्रह्मप्रजापती । ब्राह्मप्रजापत्यम् ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ २२ ॥

इन्द्रशब्दस्य परस्य यदुक्तं तन्न भवति । सौमेन्द्रः । आग्नेन्द्रः । परस्येति किम् । ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं चरुं निर्वपेत् । इन्द्रशब्दे द्वावचौ तत्र तद्धिते एकस्य यस्येति लोपोऽपरस्य पूर्वेण सहैकादेश इत्यप्राप्तिरेव वृद्धेः, तदिदं प्रतिषेधवचनं ज्ञापकम् । बहिरङ्गमपि पूर्वोत्तरपदयोः पूर्वं कार्यं भवति पश्चादेकादेश इति, तेन पूर्वेषुकामशम इत्यादि सिद्धं भवति ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ २३ ॥

दीर्घादुत्तरस्य वरुणस्य यदुक्तं तन्न भवति । ऐन्द्रावरुणम् । मैत्रावरुणम् । दीर्घादिति किम् । आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत । अग्नेरीदग्नेः सोमवरुणयोरित्यस्यानङपवादस्य इद्वृद्धाविति प्रतिषेधो विधीयते तेन दीर्घात्परो न भवति ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ २४ ॥

* अपपाठोऽयम् । तत्र हि स्वरूपग्रहणम् । कल्याण्यादिषु परस्त्रीशब्दः पठ्यते तस्मात्कल्याण्यादीनामिनङिति पाठ इति पदमञ्जरी ।

† शतकुम्भेत्यारभ्य पारदारिक इत्यन्तं बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति च परतः । सुह्मनगरे भवः, सौह्मनागरः । पौण्ड्रनागरः । प्राचामिति किम् । मद्रनगरमुदक्षु, तत्र भवः । माद्रनगरः ॥

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥ २५ ॥

जङ्गल धेनु वलज इत्येवमन्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति विभाषितमुत्तर,मुत्तरपदस्य विभाषितं तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । कुरुजङ्गलेषु भवं, कौरुजङ्गलम् । कौरुजाङ्गलम् । वैश्वधेनवम् । वैश्वधैनवम् । सौवर्णवलजः । सौवर्णवालजः ॥

अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ २६ ॥

अर्द्धशब्दात्परस्य परिमाणवाचिन उत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति पूर्वस्य तु वा भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । अर्द्धद्रोणेन क्रीतमार्द्धद्रौणिकम् । अर्द्धद्रौणिकम् । अर्द्धकौडविक,मार्द्धकौडविकम् । परिमाणस्येति किम् । अर्द्धक्रोशः प्रयोजनमस्यार्द्धक्रोशिकम् * ॥

नातः परस्य ॥ २७ ॥

अर्द्धात्परस्य परिमाणाकारस्य वृद्धिर्न भवति पूर्वस्य तु वा भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । अर्द्धप्रस्थिकः । आर्द्धप्रस्थिकः । अर्द्धकंसिकः । आर्द्धकंसिकः । अत इति किम् । आर्द्धकौडविकः । तपरकरणं किम् । इह मा भूत् । अर्द्धखार्यां भवा अर्द्धखारी, किं च स्यात् आर्द्धखारी भार्या यस्य अर्द्धखारीभार्यः । वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारइति पुंवद्भावप्रतिषेधो न स्यात्, यत्र हि तद्धिते वृद्धिः प्रतिषिध्यते स वृद्धिनिमित्तं न भवतीति पुंवद्भावो न प्रतिषिध्यते । यथा वैयाकरणी भार्या अस्य, वैयाकरणभार्य इति ॥

प्रवाहणस्य ढे ॥ २८ ॥

प्रवाहणस्य ढे परत उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति पूर्वपदस्य वा भवति । प्रवाहणस्यापत्यं, प्रावाहणेयः । प्रवाहणेयः । शुभ्रादिभ्यश्चेति ढक् प्रत्ययः ॥

तत्प्रत्ययस्य च ॥ २९ ॥

ढक्प्रत्ययान्तस्य प्रवाहणशब्दस्य तद्धितेषु परत उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति पूर्वस्य तु वा । प्रवाहणेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः । प्रवाह-

* परिमाणस्येति किम् । अर्द्धक्रोशः प्रयोजनमस्यार्धक्रोशिकमिति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

णेयिः । प्रावाहणेयकम् । प्रवाहणेयकम् । बाह्यतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ङीप्रत्ययेण विकल्पेन बाधितुमशक्येति सूत्रारम्भः ॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥ ३० ॥

नञ उत्तरेषां शुचि ईश्वर क्षेत्रज्ञ कुशल निपुण इत्येतेषामचामादेरचो वृद्धिर्भवति पूर्वपदस्य वा भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । शुचि । अशौचम् । आशौचम् । ईश्वर । आनैश्वर्यं,मनैश्वर्यम् । क्षेत्रज्ञ । आक्षैत्रज्ञ्यम् । अक्षैत्रज्ञ्यम् । कुशल । आकौशलम् । अकौशलम् । निपुण । आनैपुणं,मनैपुणम् । अत्र के चिदाहुरियं पूर्वपदस्य वृद्धिरप्राप्तैव विभाषा विधीयते । नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादित्युत्तरो भावप्रत्ययः प्रतिषिध्यते तत्र शुच्यादिभ्य एव प्रत्यये कृते पश्चान्नञ्समासे सति वृद्धिरनङ्गस्यापि वचनाद्भवतीति । तदपरे न मृष्यन्ते । भाववचनादन्योपि हि तद्धितो वृद्धिनिमित्तमपत्यादिष्वर्थेषु नञ्समासादेव विद्यते बहुव्रीहेश्च नञ्समासाद्भाववचनोप्यस्ति तत्राङ्गाधिकारोपमर्द्दनं न युज्यतइति । अक्षेत्रज्ञानीश्वरौ तत्पुरुषावेव ब्राह्मणादिषु पठ्येते,ततस्ताभ्यां भावे ष्यञ्भवति ॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ३१ ॥

यथातथ यथापुर इत्येतयोर्नञ उत्तरयोः पर्यायेणाचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति णिति किति वा परतः । आयथातथ्यम् । अयाथातथ्यम् । आयथापुर्यं,मयाथापुर्यम् । अयथातथ, अयथापुरेति ब्राह्मणादिषु नञ्समासावेतौ द्रष्टव्यौ । सूत्रे यथातथयथापुरशब्दौ तु यथा ऽसादृश्यइति अव्ययीभावसमासौ तथा नपुंसकात्वं ह्रस्वत्वं कृतम् । भाष्ये तु यथादर्शितम् अयथातथाभाव इति तथा सुप्सुपेति समासो लक्ष्यते ॥

हनस्तो ऽचिण्णलोः ॥ ३२ ॥

तद्धितेष्विति निवृत्तम् । तत्सबद्धं कितीत्यपि । ञ्णितीति वर्त्तते । हनस्तकारादेशो भवति ञ्णिति प्रत्यये परतः चिण्णलौ वर्जयित्वा । घातयति । घातकः । साधुघाती । घातंघातम् । घातो वर्त्तते । अचिण्णलोरिति किम् । अघानि । जघान । धातोः कार्यमुच्यमानं धातोः प्रत्यये विज्ञायते । इह न भवति वार्त्रघ्नमतरादिति ॥

आतो युक्चिण्कृतोः ॥ ३३ ॥

आकारान्तस्याङ्गस्य चिणि कृति ञ्णिति युगागमो भवति । अदायि । अधायि । कृति । दायो, दायकः । धायो, धायकः । चिण्कृतोरिति किम् । ददौ । दधौ । चौडिः । बालाकिः । बाह्वादित्वादिञ् । ज्ञा देवता अस्य ज्ञः ॥

नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः ॥ ३४ ॥

उदात्तोपदेशस्य मान्तस्याङ्गस्याचमिवर्जितस्य चिणि कृति च ञिणति यदुक्तं तन्न भवति । किं चोक्त,मत उपधाया इति वृद्धिः । अशमि । अतमि । अदमि । कृति खल्वपि । शमकः । तमकः । दमकः । शम,स्तमो, दमः । उदात्तोपदेशस्येति किम् । यामको, रामकः । कथमुद्यमोपरमौ । अड उद्यमे यम उपरमे इति निपातनादनुगन्तव्यौ । उपदेशग्रहणं किम् । शमी दमी तमीत्यत्र यथा स्या,दिह मा भूत्, यामकः, रामक इति । मान्तस्येति किम् । चारकः । पाठकः । अनाचमेरिति किम् । आचामकः ॥ अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वामः । कामः । आचामः । आम इति चौरादिकस्य णिचि वृद्धौ सत्यां भवति । तत्र हि मित्त्वं नास्ति । नान्ये मितोऽहेताविति । सूर्यविश्रामा भूमिरित्येवमादिकं प्रयोगमन्याय्यमेव मन्यन्ते । चिण्कृतोरित्येव । शशाम तताम ॥

जनिवध्योश्च ॥ ३५ ॥

जनि वधि इत्येतयोश्चिणि कृति च ञिणति यदुक्तं तन्न भवति । अजनि । जनकः । प्रजनः । अवधि । वधकः । वधः । वधिः प्रकृत्यन्तरं व्यञ्जनान्तोऽस्ति तस्यायं प्रतिषेधो विधीयते । भवकश्चेन्न विद्येत वधकोपि न विद्यते इति हि प्रयोगो दृश्यते । वधादेशस्यादन्तत्वादेव वृद्धेरभावः । चिण्कृतोरित्येव । जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ॥

अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ ॥ ३६ ॥

सर्वं निवृत्तमङ्गस्येति वर्त्तते । अर्त्ति ह्री व्ली री क्नूयी क्ष्मायी इत्येतेषामङ्गानामाकारान्तानां च पुगागमो भवति णौ परतः । अर्त्ति । अर्पयति । ह्री । ह्रेपयति । व्ली । व्लेपयति । री । रेपयति । क्नूयी । क्नोपयति । क्ष्मायी । क्ष्मापयति । आकारान्तानाम् । दापयति । धापयति । अर्त्तीति ऋ गतिप्रापणयोः, ऋ गताविति द्वयोरपि धात्वोर्ग्रहणम् । रीत्यपि री गतिरेषणयोरीङ् श्रवणइति । पुकः पूर्वान्तकरणमदीदपदित्यत्रोपधाह्रस्वो यथा स्यादिति ॥

शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ ३७ ॥

शा छा सा ह्वा व्या वे पा इत्येतेषामङ्गानां युगागमो भवति णौ परतः । शा । निशाययति । छा । अवच्छाययति । सा । अवसाययति । ह्वा । ह्वाययति । व्या । संव्याययति । वे । वाययति । पा । पाययति । पाग्रहणे पै ओवै शोषणइत्यस्यापीह ग्रहणमिच्छन्ति । पा रक्षणइत्यस्य लुग्विकरणत्वान्न भवति ॥ लुगागमस्तु तस्य वक्तव्यः ॥ * ॥ पालयति ॥ धुञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ धूनयति । प्रीणयति । एते पूर्वान्ता एव क्रियन्ते । तेन न्यशीशयत् । अपीपलत् । अदूधुनत् । अपिप्रिणत् । इत्युपधाह्रस्वत्वं भवति । शाच्छासाह्वाव्यावेपां

कृतात्वानां ग्रहणं पुकः प्राप्तिमाख्यातुम् । किमेतस्याख्याने प्रयोजनम् । एतस्मिन् प्रकरणे लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा नास्तीत्युपदिश्यते । तेनाध्यापयति ज्ञापयतीत्येवमादि सिद्धं भवति ॥

वो विधूनने जुक् ॥ ३८ ॥

वा इत्येतस्य विधूननेऽर्थे वर्त्तमानस्य जुगागमो भवति णौ परतः । पक्षेणोपवाजयति । विधूननइति किम् । आवापयति केशान् । किमर्थं सूत्रं वज गतौ णयन्तस्य सिद्धत्वात् । वातेर्युग्मा भूदित्येवमर्थम् । पै ओवै शोषणे इत्यस्यैतद्रूपम् ॥

लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ॥ ३९ ॥

ली ला इत्येतयोरङ्गयोरन्यतरस्यां नुक् लुक् इत्येतावागमौ भवतो णौ परतः स्नेहविपातनेऽर्थे । घृतं विलाययति । विलीनयति घृतं, विलालयति । विलापयति । ली ई इतीकारः प्रश्लिष्यते तत ईकारान्तस्यैव नुग्भवति, न तु कृतात्वस्य विभाषा लीयतेरिति । स्नेहविपातनइति किम् । जतु विलापयति । जटाभिरालापयते । ली इति लीलीङोर्ग्रहणम् । ला इति लातेः कृतात्वस्य च लीयतेः ॥

भियो हेतुभये षुक् ॥ ४० ॥

भी इत्येतस्य हेतुभयेऽर्थे षुगागमो भवति णौ परतः । मुण्डो भीषयते । जटिलो भीषयते । अत्रापि भी ई इतीकारप्रश्लेषः कृतात्वस्य षुग्निवृत्त्यर्थः । मुण्डो भापयते इत्येवं हि तत्र भवति । हेतुभयइति किम् । कुञ्चिकयैनं भाययति । नात्र हेतुः प्रयोजको भयकारणं किं तर्हि कुञ्चिका ॥

स्फायो वः ॥ ४१ ॥

स्फाय् इत्येतस्याङ्गस्य वकारादेशो भवति णौ परतः । स्फावयति ॥

शदेरगतौ तः ॥ ४२ ॥

शदे रङ्गस्यागतावर्थे वर्त्तमानस्य तकारादेशो भवति णौ परतः । पुष्पाणि शातयति * । अगताविति किम् । गाः शादयति गोपालकः ॥

रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ ४३ ॥

रुहेरङ्गस्यान्यतरस्यां पकारादेशो भवति णौ परतः । व्रीहीन् रोपयति व्रीहीन् रोहयति ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ॥ ४४ ॥

* फलानि शातयतीति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

प्रत्ययस्थात्ककारात्पूर्वस्याकारस्य इकारादेशो भवति आपि परतः, स चेदाप्सुपः परो न भवति । जटिलिका । मुण्डिका । कारिका । हारिका । एतिकाश्चरन्ति । प्रत्ययग्रहणं किम् । शक्नोतीति शका । स्थग्रहणं विस्पष्टार्थं ककारमात्रं प्रत्ययो नास्तीति सामर्थ्यात्प्रत्ययस्थस्य ग्रहणं शक्यते विज्ञातुम् । कादिति किम् । नन्दना । रमणा । पूर्वस्येति किम् * । पटुका । मृदुका । अत इति किम् । गोका । नौका । तपरकरणं किम् । राका । धाका । आपीति किम् । कारकः, धारकः । अथापीत्यनेन विशिष्यते ककारः । यद्येवं, कारिकेत्यत्रापि न प्राप्नोति अकारेण व्यवहितत्वात् । एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम् । एकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद्भवतीति व्यवधानमेव । वचनाद् व्यवधानमीदृशं यत्स्थानिवद्भावकृतमेकेन वर्णेन तदाश्रीयते रथकट्यादिषु तु श्रुतिकृतमनेकेन वर्णेन व्यवधानमिति इत्वं न भवति । असुप इति किम् । बहवः परिव्राजका अस्यां मथुरायां बहुपरिव्राजका मथुरा । सुबन्तादयं बहुपरिव्राजकशब्दात्पर आबिति प्रतिषेधो भवति । प्रसज्यप्रतिषेधश्चायं न पर्युदासः । पर्युदासे हि सति समुदायादसुबन्तात्पर आबितीत्वमत्र स्यादेव । अविद्यमानः सुप् अस्मिन् सोयमसुबिति । एवमपि नाश्रीयते । तथा हि सति बहुचर्मिकेत्यत्रापि न स्यात् ॥ मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात् ॥ * ॥ मम इयं मामिका । नरिका । अणि ममकादेशः । केवलमामकेति नियमात् संज्ञाछन्दसोरीकारो नान्यत्र । तेनाणप्रत्ययान्तादपि टाप् भवति । नरान् कायतीति नरिका । आतोनुपसर्गे क इति कः प्रत्ययः ॥ प्रत्ययनिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ उदीचामात स्थाने यकपूर्वाया इति विकल्पो मा भूदिति, दाक्षिणात्यिका । इहत्यिका ॥

न यासयोः ॥ ४५ ॥

या सा इत्येतयोरिकारादेशो न भवति । यका । सका । या सा इति निर्द्देशो न तन्त्रं यत्तदोरुपलक्षणमेतत् । इहापि प्रतिषेध इष्यते । यकांयकामधीमहे । तकांतकां पचाम इति ॥ यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ * ॥ उपत्यका । अधित्यका ॥ पावकादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दसीति किम् । पाचिका ॥ आशिषि चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ जीवताद् जीवका । नन्दताद् नन्दका । भवताद् भवका ॥ उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका ॥ क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम् ॥ * ॥ क्षिपका । ध्रुवका ॥ तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ तारका । ज्योतिषीति किम् ।

---

* परस्य माभूदित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

तारिका दासी ॥ वर्णका तान्तवउपसंख्यानम् ॥ * ॥ वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तवइति किम् । वर्णिका भागुरी लोकायते ॥ वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वर्त्तका शकुनिः । प्राचामन्यत्र उदीचां तु वर्त्तिका । शकुनाविति किम् । वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य ॥ अष्टका पितृदैवत्ये ॥ * ॥ अष्टका । पितृदैवत्यइति किम् । अष्टिका खारी ॥ वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणा मुपसंख्यानम् ॥ * ॥ सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ ४६ ॥

उदीचामाचार्याणां मतेन यकारपूर्वायाः ककारपूर्वायाश्चातः स्थाने योऽकारस्तस्यातः स्थाने इकारादेशो भवति । उदीचां ग्रहणं विकल्पार्थम् । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्वायाः । चटकका । चटकिका । मूषिकका । मूषिकिका । आत इति किम् । सांकाश्ये भवा सांकाश्यिका । स्थानग्रहणमनुवादेऽपि स्थानसंबन्धप्रतिपत्त्यर्थम् । आत इत्यनेन ह्यत इति स्थानी विशिष्यते । यकपूर्वाया इति किम् । अश्वा । अश्विका । यकपूर्वाया इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः आतः स्त्रीप्रत्ययस्य प्रतिपत्त्यर्थं, इह न भवति । शुभं यातीति शुभंयाः । शुभंयिका ॥ यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ * ॥ धात्वन्तयोर्यकारककारयोरस्य प्रतिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि ॥ ४७ ॥

आतः स्थाने योऽकारस्तस्य इत्त्वं न भवति उदीचामाचार्याणां मतेन । भस्त्रा । भस्त्रिका । भस्त्रका । अभस्त्रका । अभस्त्रिका । एषका । एषिका । अजका । अजिका । अनजिका । अनजका । ज्ञका । ज्ञिका । अज्ञका । अज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । अस्विका । अस्वका । एषाद्वे नञ्पूर्वे न प्रयोजयतः । किं कारणम् । तत्र हि सति यदि साकचकाभ्यां नञ्समासः, अथापि कृते नञ्समासे पश्चादकच्, उभयथापि समासाद् या विभक्तिरुत्पद्यते तस्यां त्यदाद्यत्वे सति टापा भवितव्यं सोऽन्तर्वर्तिन्या विभक्त्या सुबन्तात्पर इति इत्त्वस्य प्राप्तिरेव नास्ति । तेन अनेषका अद्वके इत्येव नित्यं भवितव्यम् । स्वशब्दस्तु ज्ञातिधनाख्यायां नञ्पूर्वोऽपि प्रयोजयति । भस्त्रेत्ययमभाषितपुंस्कस्तस्याभाषितपुंस्काच्चेत्येव सिद्धे यदिह ग्रहणं तदुपसर्जनार्थम् । अविद्यमाना भस्त्रा यस्या अभस्त्रा । साल्पा, अभस्त्रका । अभस्त्रिका । अत्रोपसर्जनह्रस्वत्वे कृते पुनर्बहुव्रीहौ कृते भाषितपुंस्काद्यष्टाबुत्पद्यते तस्य के ऽण इति यो ह्रस्वो नासावभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने भवति । नञ्पूर्वाणामपीत्यपिशब्दा-

इन्यपूर्वाणां केवलानां च विधिरयमिष्यते । निर्भस्त्रिका । निर्भस्त्रका । बहुभस्त्रका । बहुभस्त्रिका, इत्येवमनयोरपीष्यते । तत्र नञ्पूर्वाणामिति वचनमनुवाद एव मन्दबुद्धिप्रतिपत्त्यर्थः ॥

अभाषितपुंस्काच्च ॥ ४८ ॥

अभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने योऽकारस्तस्योदीचामाचार्याणां मतेन इकारादेशो न भवति । खट्विका । खट्वका । अखट्वका । अखट्विका । परमखट्विका । परमखट्वका । बहुव्रीहौ यदा कपि ह्रस्वः क्रियते तदा भवितव्यमनेन विधिना । तत्राप्यभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने भवत्यकार इति । यदा तु अविद्यमाना खट्वा अस्याः अखट्वा, अल्पा अखट्वा, अखट्विकेति तदा न भवति । तथा अतिक्रान्ता खट्वामतिखट्वा, अल्पा अतिखट्वा, अतिखट्विका ॥

आदाचार्याणाम् ॥ ४९ ॥

अभाषितपुंस्कादातः स्थाने यो ऽकारस्तस्याचार्याणामाकारादेशो भवति । खट्वका । अखट्वाका । परमखट्वाका ॥

ठस्येकः ॥ ५० ॥

अङ्गस्य निमित्तं यष्ठः, कश्चाङ्गस्य निमित्तं, प्रत्यय,स्तस्य प्रत्ययठस्य इक इत्ययमादेशो भवति । प्राग्वहतेष्ठक् । आक्षिकः । शालाकिकः । लवणाट्ठञ् । लावणिकः । ठगादिषु यदि वर्णमात्रं प्रत्यय उच्चारणार्थोकारस्तदा इहाप्यकार उच्चारणार्थः । वर्णमात्रं तु स्थानित्वेनोपादीयते । संघाते तु प्रत्यये ऽत्रापि संघातग्रहणमेव । तत्र कणेष्ठः, कमठ इत्येवमादीनामुणादीनामुणादयो बहुलमिति न भवति । मथितं पण्यमस्य माथितिक इत्यत्र तु यस्येति लोपे कृते इसुसुक्तान्तात्क इति स्थानिवद्भावादिकस्य कादेशः प्राप्नोति सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति न भवति । यस्येत्यकारलोपस्य स्था नवद्भावाद्वा । पूर्वस्मादपि हि विधौ स्थानिवद्भावः ॥

इसुसुक्तान्तात्कः ॥ ५१ ॥

इस् उस् इत्येवमन्तानामुगन्तानां तान्तानां चाङ्गानामुत्तरस्य ठस्य क इत्ययमादेशो भवति । इस् । सार्पिष्कः । उस् । धानुष्कः । याजुष्कः । उक् । नैषादकर्षुकः । शाबरजम्बुकः । मातृकम् । पैतृकम् । तान्तात् । औदश्वित्कः । शाकृत्कः । याकृत्कः । इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणादिह न भवति । आशिषा चरति । आशिषिकः । उषा चरति औषिका ॥ दोष उपसंख्यानम् ॥ * ॥ दोर्भ्यां चरति दोष्कः ॥

चजोः कु घिण्ण्यतोः ॥ ५२ ॥

चकारजकारयोः कवर्गादेशो भवति घिति ण्यति च प्रत्यये परतः। घिति। पाकः। त्यागः। रागः। ण्यति। पाक्यम्। वाक्यम्। रेक्यम्॥

न्यङ्क्वादीनां च॥ ५३॥

न्यङ्कु इत्येवमादीनां कवर्गादेशो भवति। न्यङ्कुः। नावञ्चतेरिति उप्रत्ययः। मद्गुः। मिमस्जिभ्य उरिति मस्जेरुप्रत्ययः। भृगुः। प्रथिमुदिभ्रस्जां संप्रसारणं सलोपश्चेत्युप्रत्ययः। दूरेपाकः। फलेपाकः। दूरे पच्यते स्वयमेव। फले पच्यते स्वयमेव। पचाद्यच् निपातनाद्वृद्धिः। तत्पुरुषे कृति बहुलमिति सप्तम्या अलुक्। क्षणेपाक इत्यपि हि केचित्पठन्ति। दूरेपाका फलेपाका इति टाबन्तमपरेऽधीयते। उकारान्तावपरे। दूरेपाकुः फलेपाकुरिति। तेषामु,-प्रत्ययो निपातनादेव। तक्रं, वक्र,मिति। तचतेर्वञ्चतेश्च स्फायितञ्चिवञ्ची-त्यादिना सूत्रेण रक्। व्यतिषङ्गः। व्यतिषजतीति पचाद्यच्। अनुषङ्गः। अवसर्गः। उपसर्गः। मेघः। श्वपाकः। मांसपाकः। कपोतपाकः। उलूकपाक इति। कर्म्मोपपदादण्प्रत्ययः। संज्ञायामर्घः। अवदाघः। निदाघः। अर्हतेर्घञ्। अर्घः। अवपूर्वस्य निपूर्वस्य च दहेरवदाघः। निदाघः। संज्ञाया अन्यत्र अर्हः। अवदाहः। निदाहः। न्यग्रोधः, वीरुदित्यत्र न्यक्पूर्वस्य रुहेः पचाद्यचि विपूर्वस्य क्विपि धकारो विधीयते। न्यग्रोहतीति न्यग्रोधः। विरोहतीति वीरुत्॥

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु॥ ५४॥

हन्तेर्हकारस्य कवर्गादेशो भवति ञिति णिति प्रत्यये परतो नकारे च। घातयति। घातकः। साधुघाती। घातंघातम्। घातो वर्त्तते। नकारे। घ्नन्ति। घ्नन्तु। अघ्नन्। ह इति किम्। अलोन्त्यस्य मा भूत्। हन्तेरिति किम्। प्रहारः। प्रहारकः। ञ्णित्प्रत्ययो हन्तेर्विशेषणम्। नकारो हकारस्य नकारे अनन्तरस्य हन्तिहकारस्येति। तच्चानन्तर्यं श्रुतिकृतं संनिपातकृतमाश्रीयते। स्थानिवद्भावशास्त्रकृतं तु यदनानन्तर्यं तदविघातकं वचनसामर्थ्यात्। यदापि सर्वैरेव ञ्णिद्भिर्हन्तिहकारो विशिष्यते तदापि येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रामाण्यादिति ञ्णिति धात्ववयवेन व्यवहितेपि सति भवति। इह तु न भवति। हननमिच्छति हननीयति हननीयतेर्ण्वुल्, हननीयक इति॥

अभ्यासाच्च॥ ५५॥

अभ्यासादुत्तरस्य हन्तिहकारस्य कवर्गादेशो भवति। जिघांसति। जङ्घन्यते। अहं जघान। अभ्यासनिमित्ते प्रत्यये हन्तेरङ्गस्य योभ्यासस्तस्मादेवैतत्कुत्वम्। इह न भवति। हननीयितुमिच्छति। जिहननीयिषति॥

हेरचङि॥ ५६॥

हिनोतेर्हकारस्याभ्यासादुत्तरस्य कवर्गादेशो भवति अचङि । प्रजिघीषति । प्रजेघीयते । प्रजिघाय । अचङीति किम् । प्राजीहयद् दूतम् । अचङीति शक्यमकर्त्तुं, कथं चङ्यभ्यासनिमित्ते णौ हिनोतिरङ्गं भवति । तत्राभ्यासनिमित्ते प्रत्यये हेरङ्गस्येति विज्ञायमाने प्राप्तिरेव नास्ति । तर्हि तज् ज्ञापकार्थम् । एतज्ज्ञाप्यते । हेरचङीति चङोऽन्यत्र हेर्व्यधिकस्यापि कुत्वं भवतीति । तेन प्रजिघाययिषतीति सिद्धं भवति ॥

सन्लिटोर्जेः ॥ ५७ ॥

सनि लिटि च प्रत्यये जेरङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्मादुत्तरस्य कवर्गादेशो भवति । जिगीषति । जिगाय । सन्लिटोरिति किम् । जेजीयते । जिनातेः संप्रसारणे कृते यद्यपि जिर्भवति तथापि लाक्षणिकत्वात्तस्य ग्रहणं न भवति । जिज्यतुः । जिज्युः । इत्येव भवति ॥

विभाषा चेः ॥ ५८ ॥

चिनोतेरङ्गस्य सन्लिटोरभ्यासादुत्तरस्य विभाषा कवर्गादेशो भवति । चिचीषति । चिकीषति । चिकाय । चिचाय । सन्लिटोरित्येव । चेचीयते ॥

न क्वादेः ॥ ५९ ॥

कवर्गादेर्धातोश्चजोः कवर्गादेशो न भवति । कूजो वर्त्तते । खर्जः । गर्जः । कूज्यं भवता । खर्ज्यं, गर्ज्यं, भवता ॥

अजिव्रज्योश्च ॥ ६० ॥

अजि व्रजि इत्येतयोश्च कवर्गादेशो न भवति । समाजः । उदाजः । व्रजि । परिव्राजः । परिव्राज्यम् । अजेस्तु अजेर्व्यघञपोरिति वीभावस्य विधानात्पश्यति नास्त्युदाहरणम् ॥

भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ॥ ६१ ॥

भुज न्युब्ज इत्येतौ शब्दौ निपात्येते पाणावुपतापे च । भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः । हलश्चेति घञ् । तत्र कुत्वाभावो गुणाभावश्च निपात्यते । उब्ज आर्जवे, न्युब्जिताः शेरतेऽस्मिन्व्याधाविति न्युब्जः । उपतापो रोगस्तत्रैव घञि कुत्वाभावो निपात्यते । पाण्युपतापयोरिति किम् । भोगः । समुद्गः ॥

प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ॥ ६२ ॥

प्रयाज अनुयाज इत्येतौ निपात्येते यज्ञाङ्गे । पञ्च प्रयाजाः । पञ्चानुयाजाः । त्वमग्ने प्रयाजानां पश्चात् त्वं पुरस्तात् । यज्ञाङ्गइति किम् । प्रयागः । अनुयागः । प्रयाजानुयाजग्रहणं प्रदर्शनार्थमन्यत्राप्येवंप्रकारे कुत्वं न

भवति । एकादशोपयाजाः । उपांशुयाजमन्तरा यजति । अष्टौ पत्नीसंयाजा भवन्ति । ऋतुयाजैश्चरन्ति । इत्येवमादि सिद्धं भवति ॥

वञ्चेर्गतौ ॥ ६३ ॥

वञ्चेरङ्गस्य गतौ वर्त्तमानस्य कवर्गादेशो न भवति । वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः । गताविति किम् । वङ्क्यं काष्ठम् । कुटिलमित्यर्थः ॥

ओक उचः के ॥ ६४ ॥

उचेर्द्धातोः के प्रत्यये ओक इति निपात्यते । किं पुनरत्र निपात्यते । कुत्वं गुणश्च । न्योकः शकुन्तः । न्योको वृक्षः । कर्त्तरि इगुपधलक्षणः कः प्रत्ययः । अधिकरणादौ तु कारकान्तरे घञर्थे कविधानमिति । किमर्थं पुनरयं घञेव न व्युत्पाद्यते स्वरार्थमन्तोदात्तोयमिष्यते घञि सत्याद्युदात्तः स्यात् । दिवौकसः । जलौकसः । इत्येवमादावप्यसुनि प्रत्यये उणादयो बहुलमिति कुत्वं द्रष्टव्यम् ॥

ण्यआवश्यके ॥ ६५ ॥

ण्ये परत आवश्यकेर्थे कवर्गो न भवति । अवश्यपाच्यम् । अवश्यवाच्यम् । अवश्यरेच्यम् । आवश्यकइति किम् । पाक्यम् । वाक्यम् । रेक्यम् ॥

यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ ६६ ॥

यज याच रुच प्रवच ऋच इत्येतेषां ण्ये परतः कवर्गादेशो न भवति । यज । याज्यम् । याच । याच्यम् । रुच । रोच्यम् । प्रवच । प्रवाच्यम् । ऋच । अर्च्यम् । ऋदुपधादपि ऋचेरत एव निपातनाण्ण्यद्भवति । प्रवचग्रहणं शब्दसंज्ञार्थम् । प्रवाच्यो नाम पाठविशेषोपलक्षितो ग्रन्थोस्ति । अपरे पुनराहुरुपसर्गपूर्वस्य नियमार्थम् । प्रपूर्वस्यैव वचेरशब्दसंज्ञायां कुत्वप्रतिषेधो यथा स्यात् । अन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति । अविवाक्यमहरिति पठन्ति । एतत्तु विशेषणं वेष्यते । दशरात्रस्य यद्दशममहः । अन्यत्राविवाच्यमेव भवति ॥ ण्यति प्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ त्याज्यम् ॥

वचोशब्दसंज्ञायाम् ॥ ६७ ॥

वचोशब्दसंज्ञायां ण्यति परतः कवर्गो न भवति । वाच्यमाह । अवाच्यमाह । अशब्दसंज्ञायामिति किम् । अवघुषितं वाक्यमाह ॥

प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे ॥ ६८ ॥

प्रयोज्य नियोज्य इत्येतौ शब्दौ शक्यार्थे निपात्येते । शक्यः प्रयोक्तुं प्रयोज्यः । शक्यो नियोक्तुं नियोज्यः । शक्यार्थेइति किम् । प्रयोग्यो, नियोग्यः ॥

भोज्यं भक्ष्ये ॥ ६९ ॥

भोज्यं निपात्यते भक्ष्येऽभिधेये । भोज्य ओदनः । भोज्या यवागूः । इह भक्ष्यमभ्यवहार्यमात्रम् । भक्ष्यइति किम् । भोग्यः कम्बलः ॥

घोर्लोपो लेटि वा ॥ ७० ॥

घुसंज्ञकानां लेटि परतो वा लोपो भवति । दधद्रत्नानि दाशुषे । सोमो ददद्गन्धर्वाय । न च भवति । यदग्निरग्नये ददात् । आडागमे सति लोपेऽपि ददादिति सिद्धं भवति । तत्र वावचनं विस्पष्टार्थम् । एषा हि कस्य चिदाशङ्का स्याद्ददादित्येव नित्ये प्राप्ते लोप आरभ्यमाणो बाधतएवैतद्रूपमिति ॥

ओतः श्यनि ॥ ७१ ॥

ओकारान्तस्याङ्गस्य श्यनि परतो लोपो भवति । शो, निश्यति । छो, अवच्छ्यति । दो, अवद्यति । सो, अवस्यति ॥

क्सस्याचि ॥ ७२ ॥

क्सस्याजादौ प्रत्यये लोपो भवति । अधुक्षाताम् । अधुक्षायाम् । अधुक्षि । अचीति किम् । अधुक्षत् । अधुक्षताम् । ककारवत उपादानं किम् । इह मा भूत् । उत्सौ । उत्साः । वत्सौ । वत्साः ॥

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ ७३ ॥

दुह दिह लिह गुह इत्येतेषामात्मनेपदे दन्त्यादौ परतः क्सस्य वा लुग्भवति । अदुग्ध । अधुक्षत । अदुग्धाः । अधुक्षथाः । अधुग्ध्वम् । अधुक्षध्वम् । अदुह्वहि । अधुक्षावहि । दिह । अदिग्ध । अधिक्षत । लिह । अलीढ । अलिक्षत । गुह । न्यगूढ । न्यघुक्षत । दुहादीनामिति किम् । व्यत्यरुक्षत । आत्मनेपदइति किम् । अधुक्षत् । दन्त्यइति । किम् । अधुक्षामहि । लोप इति वर्त्तमाने लुग्ग्रहणं सर्वादेशार्थं तच्च वह्यर्थम् । अन्यत्र ह्यन्त्यस्यैव लोपे कृते झलो झलीति सकारलोपेन सिध्यति । स्थानिवद्भावेऽपि अकारलोपस्य नास्ति । पूर्वत्रासिद्धेः न स्थानिवदिति । दन्त्योष्ठ्योऽपि वकारो दन्त्य इति गृह्यते । यदि स न गृह्येत ततस्तौग्रहणमेवात्र कृतं स्यात् ॥

शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ॥ ७४ ॥

शमामष्टानां दीर्घो भवति श्यनि परतः । शम् । शाम्यति । तम् । ताम्यति । दम् । दाम्यति । श्रम् । श्राम्यति । भ्रम् । भ्राम्यति । क्षम् । क्षाम्यति । क्लम् । क्लाम्यति । मदी । माद्यति । अष्टानामिति किम् । असि । असति । श्यनीति किम् । भ्रमति । बभ्राम । वा भ्राशेति श्यनो विकल्पः ॥

ष्ठिवुक्लम्वाचमां शिति ॥ ७५ ॥

ष्ठिवु क्लमु आचम् इत्येतेषां दीर्घो भवति शिति परतः । ष्ठीवति । क्लमु क्लामति । आचामति । क्लमि ग्रहणं शबर्थम् । चमेराङ्पूर्वस्य ग्रहणं, इह मा भूत् । चमति । विचमति ॥

क्रमः परस्मैपदेषु ॥ ७६ ॥

क्रमः परस्मैपदपरे शिति परतो दीर्घो भवति । क्रामति । क्रामतः । क्रामन्ति । परस्मैपदेष्विति किम् । आक्रमते आदित्यः । इह उत्क्राम संक्रामेति हेर्लुकि कृते न लुमताङ्गस्येति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधाद्दीर्घो न प्राप्नोति । नैष दोषः । लुमता शब्देन लुप्ते यदङ्गं तस्य कार्ये स प्रतिषेधः । न च हौ क्रमिरङ्गं किं तर्हि शपि ॥

इषुगमियमां छः ॥ ७७ ॥

इषु गमि यम इत्येतेषां शितिपरतश्छकारादेशो भवति । इच्छति । गच्छति । यच्छति । इषेरुदितो ग्रहणं इह मा भूत् । इष्यति । इष्णातीति । ये इषिमुदितं नाधीयते तेचीत्यनुवर्त्तयन्ति । तत्र प्रधानमङ्गग्रहणं शितीत्यनेन विशेष्यतइति वर्णयन्ति । तथा च सति तदादिविधिर्न भवति । यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणइत्येतदपि विशेषणेनैवेष्यते । तेन इच्छाणेत्यत्र छत्वं न भवति । नह्ययमजेव शिदिति ॥

पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ॥ ७८ ॥

पा घ्रा ध्मा स्था म्ना दाण् दृशि अर्ति सर्त्ति शद सद इत्येतेषां पिब जिघ्र धम तिष्ठ मन यच्छ पश्य ऋच्छ धौ शीय सीद इत्येते आदेशा भवन्ति शिति परतः । पा । पिबति । घ्रा । जिघ्रति । ध्मा । धमति । स्था । तिष्ठति । म्ना । मनति । दाण् । यच्छति । दृशि । पश्यति । अर्त्ति । ऋच्छति । सर्त्ति । धावति । शद । शीयते । सद् । सीदति । पिबतेर्लघूपधगुणः प्राप्नोति सोङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्येति न भवति । अथ वा अकारान्तोयमादेश आद्युदात्तो निपात्यते । सर्तेर्वेगितायां गतौ धावादेशमिच्छन्ति । अन्यत्र सरति अनुसरतीत्येव भवति ॥

ज्ञाजनोर्जा ॥ ७९ ॥

ज्ञा जन इत्येतयोर्जादेशो भवति शिति परतः । जानाति । जायते । जनेर्द्दिवादिकस्य ग्रहणम् ॥

प्वादीनां ह्रस्वः ॥ ८० ॥

पू इत्येवमादीनां ह्रस्वो भवति शिति परतः । प्वादयः क्र्यादिषु पठ्यन्ते । पूञ् पवनइत्यतः प्रभृति व्ली गतौ वृदिति यावत्के चिदिच्छन्ति, वृत्करणमेतल्ल्वादीनां प्वादीनां च परिसमाप्त्यर्थमिति । अपरे तु ल्वादीना-मेव परिसमाप्त्यर्थं वृत्करणमेतदिच्छन्ति । आगणान्ताः प्वादय इति । पूञ् । पुनाति । लूञ् । लुनाति । स्तृञ् । स्तृणाति । येषामागणान्ताः प्वादयस्तेषां जानातीत्यत्रापि ह्रस्वः प्राप्नोति । ज्ञाजनोर्जा इति दीर्घकरणसामर्थ्यान्न भवति । जनेरपि हि जआदेशे सति अतो दीर्घो यञीति दीर्घत्वेन जायत-इति सिद्ध्यति ॥

मीनातेर्निगमे ॥ ८१ ॥

मीनातेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति निगमविषये । प्रमि-णन्ति व्रतानि । निगमइति किम् । प्रमीणाति ॥

मिदेर्गुणः ॥ ८२ ॥

मिदेरङ्गस्येको गुणो भवति शिति प्रत्यये परतः । मेद्यति । मेद्यतः । मेद्यन्ति । शितीत्येव । मिद्यते ॥

जुसि च ॥ ८३ ॥

जुसि च प्रत्यये परत इगन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति । अजुहवुः । अबि-भयुः । अबिभरुः । अथ चिनुयुः सुनुयुरित्यत्र कस्मान्न भवति । अत्र द्वे ङित्त्वे सार्वधातुकाश्रयं यासुडाश्रयं च । तत्र नाप्राप्ते सार्वधातुकाश्रयङित्त्वनिमित्ते प्रतिषेधे जुसि गुण आरभ्यमाणस्तमेव बाधते । यासुडाश्रयङित्त्वनिमित्तं तु न बाधते । तत्र हि प्राप्ते चाप्राप्ते चारभ्यतइति ॥

सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ॥ ८४ ॥

सार्वधातुके आर्द्धधातुके च प्रत्यये परत इगन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति । तरति । नयति । भवति । आर्द्धधातुके । कर्त्ता । चेता । स्तोता । सार्वधा-तुकार्द्धधातुकयोरिति किम् । अग्नित्वम् । अग्निकाम्यति । यदि हि प्रत्यये सङ्गीति वोच्येत, इहापि स्यात् ॥

जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ ८५ ॥

जागृ इत्येतस्याङ्गस्य गुणो भवति अविचिण्णल्ङित्सु परतः । जागर-यति । जागरकः । साधुजागरी । जागरंजागरम् । जागरो वर्त्तते । जागरितः । जागरितवान् । वृद्धिविषये प्रतिषेधविषये च यथा स्यादिति जागर्त्तरयं गुण

आरभ्यते । तस्मिन्कृते यात उपधाया वृद्धिः प्राप्नोति सा न भवति । यदि हि स्यादनर्थक एव गुणः स्याच्चिण्णलोश्च प्रतिषेधवचनमनर्थकम् । अविचिण्णल्ङित्स्विति किम् । जृस्तृजागृभ्यो विन् । जागृविः । चिण् । अजागारि । णल् । जजागार । ङित् । जागृतः । जागृथः । वीति के चिदिकारमुच्चारणार्थं वर्णयन्ति क्वसावपि वकारादौ गुणो न भवति । जजागृवान् । अजागरुः । अहं जजागर इत्यत्र प्रतिषेधः प्राप्नोति, नाप्रतिषेधात् । अविचिण्णल्ङित्स्विति पर्युदासोयम् । अथ वा जाग्र इति प्राप्तिरसावानन्तर्याद् विचिण्णल्ङित्सु प्रतिषिध्यते । या तु जुसि च सार्वधातुकार्द्धधातुकयोरिति च प्राप्तिः सा न प्रतिषिध्यते ॥

पुगन्तलघूपधस्य च ॥ ८६ ॥

पुगन्तस्याङ्गस्य लघूपधस्य च सार्वधातुकार्द्धधातुकयोर्गुणो भवति । पुगन्तस्य । व्लेपयति । ह्रेपयति । क्नोपयति । लघूपधस्य । भेदनम् । छेदनम् । भेत्ता । छेत्ता । प्रत्ययादेरङ्गावयवस्य च हलोरानन्तर्ये सति लघूपधगुणो न व्यावर्त्यते इति ज्ञापितमेतत् क्नुसनोः कित्करणेन । त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः । हलन्ताच्चेति ।

संयोगे गुरुसंज्ञायां गुणो भेत्तुर्न सिध्यति ।
विध्यपेक्षं लघोश्चासौ कथं कुण्डिर्न दुष्यति ॥
धातोर्हिनुम् कथं रञ्जेः स्यन्दिश्रन्थ्योर्निपातनात् ।
अनल्लोपशिदीर्घत्वे विध्यपेक्षे न सिध्यतः ॥
अभ्यस्तस्य यदाहाचि लङर्थं तत्कृतं भवेत् ।
क्नुसनो यत्कृतं कित्त्वं ज्ञापकं स्याल्लघोर्गुणे ॥

उपधात्र इगेव गृह्यते । ततो भिनत्तीति गुणो न भवति । अपरे पुकि अन्तः पुगन्तः । लघ्वी उपधा लघूपधा, पुगन्तश्च लघूपधा च पुगन्तलघूपधमिति सूत्रार्थं वर्णयन्ति ॥

नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ॥ ८७ ॥

अभ्यस्तसंज्ञकस्याङ्गस्य लघूपधस्याजादौ पिति सार्वधातुके गुणो न भवति । नेनिजानि । अनेनिजम् । परिवेविषाणि । पर्यवेविषम् । अभ्यस्तस्येति किम् । वेदानि । अचीति किम् । नेनेक्ति । पिद्ग्रहणमुत्तरार्थम् । सार्वधातुक इति किम् । नेनेज । लघूपधस्येत्येव । जुहवानि । अजुहवम् ॥ बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ जुजोषदिति यथा स्यात् । पस्पशाते । वावशीति । वावशीति । यङ्लुकि छान्दसमुपधाह्रस्वत्वं द्रष्टव्यम् । पस्पशातइत्यत्राभ्यासह्रस्वत्वं च । प्रकृत्यन्तराणां वा स्पशिकशिवशीनामेतानि रूपाणि ॥

भूसुवोस्तिङि ॥ ८८ ॥

भू सू इत्येतयोस्तिङि सार्वधातुके गुणो न भवति । अभूत् । अभूः । अभूवम् । सुवै । सुवावहै । सुवामहै । सूतेर्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम् । सुवति-सूयत्योर्विकरणेन तिङो व्यवधानम् । विकरणस्यैव ङित्त्वाद्गुणाभावः सिद्धः । तिङीति किम् । भवति । सार्वधातुकइत्येव । व्यतिभविषीष्ट । अथ बोभवीति यङ्लुकि गुणप्रतिषेधः कस्माच्च भवति । ज्ञापकात् । यदयं बोभूत्विति गुणाभावार्थं निपातनं करोति ॥

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ ८९ ॥

सार्वधातुके पितीति वर्त्तते । उकारान्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्भवति लुकि सति हलादौ पिति सार्वधातुके । यौति । यौषि । यौमि । नौति । नौषि । नौमि । स्तौति । स्तौषि । स्तौमि । उत इति किम् । एति । एषि । एमि । लुकीति किम् । सुनोति । सुनोषि । सुनोमि । हलीति किम् । यवानि । रवाणि । पितीत्येव । युतः । रुतः । अपि स्तुयाद्राजानमित्यत्र हि ङिच्च पिन्न भवतीति पित्त्वप्रतिषेधाद् वृद्धेरभावः । नाभ्यस्तस्येत्येतदिहानुवर्त्तते । योयोति, नोनोति, इत्येवमाद्यर्थम् ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ९० ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा वृद्धिर्भवति हलादौ पिति सार्वधातुके । प्रोर्णौति । प्रोर्णोति । प्रोर्णौषि । प्रोर्णोषि । प्रोर्णौमि । प्रोर्णोमि । हलीत्येव । प्रोर्णवानि ॥

गुणोऽपृक्ते ॥ ९१ ॥

ऊर्णोतेर्ह्रातोरपृक्ते हलि पिति सार्वधातुके गुणो भवति । प्रोर्णोत् । प्रोर्णोः । हलीति वर्त्तमाने यदपृक्तग्रहणं क्रियते तेनैव ज्ञाप्यते भवत्येषा परिभाषा यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति ॥

तृणह इम् ॥ ९२ ॥

तृणह इत्येतस्याङ्गस्य इमागमो भवति हलि पिति सार्वधातुके । तृणेढि । तृणेक्षि । तृणेह्मि । अतृणेट् । वर्णाश्रयेप्यत्र प्रत्ययलक्षणमिष्यते । हलीति किम् । तृणहानि । पितीत्येव । तृण्णः । तृणह इत्यागतश्नम्को ग्रह्यते श्नमि कृते इमागमो यथा स्यादिति ॥

ब्रुव ईट् ॥ ९३ ॥

ब्रु इत्येतस्मादुत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति । ब्रवीति । ब्रवीषि । ब्रवीमि । अब्रवीत् । हलीत्येव । ब्रवाणि । पितीत्येव । ब्रूतः ॥

यङो वा ॥ ९४ ॥

यङ उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति वा । शाकुनिको लालपीति । दुन्दुभिर्वावदीति । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश । न च भवति । वर्वर्त्ति चक्रम् । वर्वर्भि । हलादेः पितः सार्वधातुकस्य यङन्तादभाव इति यङ्लुगन्तस्योदाहरणम् ॥

तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ ९५ ॥

तु इति सौत्रोयं धातुः । रु शब्दे । ष्टुञ् स्तुतौ । शम उपशमे । अम गत्यादिषु । इत्येतेभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेर्वा ईडागमो भवति । उत्तौति । उत्तवीति । उपरौति । उपरवीति । उपस्तौति । उपस्तवीति । शाम्यध्वम् । शमीध्वम् । अभ्यमति । अभ्यमीति । शम्यमोर्बहुलं छन्दसीति विकरणलुकि सति हलादिसार्वधातुकमनन्तरं संभवति । आपिशलास्तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासुच्छन्दसीति पठन्ति । तत्र सर्वेषामेव छन्दसि विषये विधिरयं भवति । सार्वधातुकइति वर्त्तमाने पुनः सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थं स्तुवीत,शमीध्वमित्यत्रापि यथा स्यात् इति ॥

अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ ९६ ॥

अस्तेरङ्गात् सिजन्ताच्च परस्यापृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति । अस्तेः । आसीत् । आसीः । सिजन्तात् । अकार्षीत् । असावीत् * । अपृक्त इति किम् । अस्ति । अकार्षम् । आडिभुवोरीटि प्रतिषेध इति स्थानिवद्भावप्रतिषेधादिह न भवति । आत्थ । अभूदिति ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ९७ ॥

अस्तिसिचोरपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति बहुलं छन्दसि विषये । आप एवेदं सलिलं सर्वमाः । आसीदिति स्थाने आः क्रियापदम् । अहरेवासीच रात्रिः । सिचः खल्वपि । गोभिरक्षाः प्रत्यञ्चमत्साः । अभैषीर्मा पुत्रकेति च भवति छान्दसत्वात् । माङ्योगेप्यडागमो भवति । अक्षाः । अत्सा इति । सिच इडभावः ॥

रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ ९८ ॥

रुदादिभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेरपृक्तस्य ईडागमो भवति । अरोदीत् । अरोदीः । अस्वपीत् । अस्वपीः । अश्वसीत् । अश्वसीः । प्राणीत् । प्राणीः । अजक्षीत् । अजक्षीः । पञ्चभ्य इति किम् । अजागर्भवान् । अपृक्तस्येत्येव । रोदिति ॥

अङ्गार्ग्यगालवयोः ॥ ९९ ॥

* अपावीत् । अलावीत् । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

रुदादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्याडागमो भवति गार्ग्य-गालवयोर्मतेन । अरोदत् । अरोदः । अस्वपत् । अस्वपः । अश्वसत् । अश्वसः । प्राणत् । प्राणः । अजक्षत् । अजक्षः । गार्ग्यगालवयोर्ग्रहणं पूजार्थम् ॥

अदः सर्वेषाम् ॥ १०० ॥

अद भक्षणे अस्मादुत्तरस्यापृक्तस्य सार्वधातुकस्याडागमो भवति सर्वेषा-माचार्याणां मतेन । आदत् । आदः । अपृक्तस्येत्येव । अत्ति । असि ॥

अतो दीर्घो यञि ॥ १०१ ॥

अकारान्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति यञादौ सार्वधातुके परतः । पचामि । पचावः । पचामः । पच्यामि । पच्यावः । पच्यामः । अत इति किम् । चिनुवः । चिनुमः । यञीति किम् । पचतः । पचथः । सार्वधातुक इत्येव । अङ्गना, केशवः । केचिदत्र तिङीत्यनुवर्त्तयन्ति, तेषां भववानिति क्तौ सार्वधातुकदीर्घो न भवति ॥

सुपि च ॥ १०२ ॥

अतो दीर्घो यञीत्यनुवर्त्तते । सुपि च यञादौ परतो ऽकारान्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । वृक्षाय । प्लक्षाय । वृक्षाभ्याम् । प्लक्षाभ्याम् । अत इत्येव । अग्निभ्याम् * । यञीत्येव । वृक्षस्य । प्लक्षस्य ॥

बहुवचने झल्येत् ॥ १०३ ॥

बहुवचने झलादौ सुपि परतो ऽकारान्तस्याङ्गस्य एकारादेशो भवति । वृक्षेभ्यः । प्लक्षेभ्यः । वृक्षेषु । प्लक्षेषु । बहुवचन इति किम् । वृक्षाभ्याम् । प्लक्षाभ्याम् । झलीति किम् । वृक्षाणाम् । सुपीत्येव । यजध्वम् । पचध्वम् ॥

ओसि च ॥ १०४ ॥

ओसि परतोऽकारान्तस्याङ्गस्य एकारादेशो भवति । वृक्षयोः स्वम् । प्लक्षयोः स्वम् । वृक्षयोर्निधेहि । प्लक्षयोर्निधेहि ॥

आङि चापः ॥ १०५ ॥

आङिति पूर्वाचार्यनिर्द्देशेन तृतीयैकवचनं गृह्यते । तस्मिन्नाङि परतश्च-कारादोसि च आबन्तस्याङ्गस्यैकारादेशो भवति । खट्वया । मालया । खट्वयोः । मालयोः । बहुराजया । कारीषगन्ध्यया । बहुराजयोः । कारीषगन्ध्ययोः । आप इति किम् । कीलालपा ब्राह्मणेन । कीलालपोर्ब्राह्मणकुलयोः । ङ्याब्-ग्रहणे ऽदीर्घग्रहणमिति वचनादिह न भवति । अतिखट्वेन ब्राह्मणकुलेन ॥

संबुद्धौ च ॥ १०६ ॥

---

* वायुभ्यामित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

आप इति वर्त्तते। संबुद्धौ च परत आबन्तस्याङ्गस्य एत्वं भवति। हे खट्वे। हे बहुराजे। हे कारीषगन्ध्ये॥

अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः १०७ ॥

संबुद्धाविति वर्त्तते। अम्बार्थानामङ्गानां नद्यन्तानां ह्रस्वो भवति संबुद्धौ परतः। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ल। नद्याः खल्वपि। हे कुमारि। हे शार्ङ्गरवि। हे ब्रह्मबन्धु। हे वीरबन्धु॥ डलकवतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ * ॥ हे अम्बाडे। हे अम्बाले। हे अम्बिके॥ छन्दसि वेति वक्तव्यम्॥ * ॥ हे अम्बाड। हे अम्बाडे। हे अम्बाल। हे अम्बाले। हे अम्बिक। हे अम्बिके॥ तलो ह्रस्वो वा ङिसंबुद्ध्योरिति वक्तव्यम्॥ * ॥ देवते भक्तिः। देवतायां भक्तिः। हे देवत। हे देवते॥ छन्दस्येव ह्रस्वत्वमिष्यते॥ मातॄणां मातच् पुत्रार्थमर्हते॥ * ॥ मातॄणां मातजादेशो वक्तव्यः संबुद्धौ पुत्राय पुत्रमभिधातुं, कीदृशाय, अर्हते। मात्राव्यपदेशमर्हति श्लाघनीयत्वाद्यः पुत्रस्तदर्थम्। हे गार्गीमात। नद्यृतश्चेति समासान्तापवादो मातजादेशः, चित्करणमन्तोदात्तार्थम्॥

ह्रस्वस्य गुणः ॥ १०८ ॥

संबुद्धाविति वर्त्तते। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति संबुद्धौ परतः। हे अग्ने। हे वायो। हे पटो। हे कुमारि, हे ब्रह्मबन्धु, इत्येवमादीनां ह्रस्वविधानसामर्थ्याद्गुणो न भवति। यदि गुण इष्टः स्यात्। अम्बार्थानां ह्रस्व इत्युक्त्वा नद्योर्ह्रस्वयोर्गुण इत्येवं ब्रूयात्॥

जसि च ॥ १०९ ॥

जसि परतो ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति। अग्नयः। वायवः। पटवः। धेनवः। बुद्धयः॥ जसादिषु छन्दसि वावचनं प्राक् णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इत्येतस्मात्॥ * ॥ इतः प्रकरणात्। प्रभृति छन्दसि वेति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्। अम्बे दर्वि शतक्रत्वः पश्वे भृत्यः किकिदीव्या। अम्बे। अम्ब। पूर्णो दर्वे। पूर्णादर्वी। अधा शतक्रत्वः। शतक्रतवः। पश्वे भृत्यः। पशवे भृत्यः। किकिदीव्या। किकिदीविना॥

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ११० ॥

गुण इति वर्त्तते। ऋकारान्तस्याङ्गस्य ङौ परतः सर्वनामस्थाने च गुणो भवति। ङौ। मातरि। पितरि। भ्रातरि। कर्त्तरि। सर्वनामस्थाने। कर्त्तारौ। कर्त्तारः। मातरौ। पितरौ। भ्रातरौ * ॥

घेर्ङिति ॥ १११ ॥

* तपरकरणं मुखसुखार्थम्। इति पुस्तकान्तरे ऽधिकम्।

घ्यन्तस्याङ्गस्य ङिति प्रत्यये परतो गुणो भवति । अग्नये । वायवे । अग्नेरागच्छति । वायोरागच्छति । अग्नेः स्वम् । वायोः स्वम् । घेरिति किम् । सख्ये । पत्ये । ङितीति किम् । अग्निभ्याम् । सुपीत्येव । पट्वी । कुरुतः ॥

आण्नद्याः ॥ ११२ ॥

नद्यन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्याडागमो भवति । कुमार्यै । ब्रह्मबन्ध्वै । कुमार्याः । ब्रह्मबन्ध्वाः ॥

याडापः ॥ ११३ ॥

आबन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य याडागमो भवति । खट्वायै । बहुराजायै । कारीषगन्ध्यायै । खट्वायाः । कारीषगन्ध्यायाः । बहुराजायाः । अतिखट्वायेत्यत्राकृते दीर्घे ह्याब्ग्रहणे ऽदीर्घ इति वचनाद्याडागमो न भवति । कृते तु लाक्षणिकत्वात् ॥

सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ॥ ११४ ॥

सर्वनाम्न आबन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य स्याडागमो ह्रस्वश्च भवति । सर्वस्यै । विश्वस्यै । यस्यै । तस्यै । कस्यै । सर्वस्याः । विश्वस्याः । यस्याः । तस्याः । कस्याः । अन्यस्यै । अन्यस्याः । आप इत्येव । भवति । भवते ॥

विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ॥ ११५ ॥

द्वितीया तृतीया इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विभाषा स्याडागमो भवति । द्वितीयातृतीययोश्च ह्रस्वो भवति । द्वितीयस्यै । द्वितीयायै । तृतीयस्यै । तृतीयायै ॥

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥ ११६ ॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीत्येतस्माच्चोत्तरस्य ङेरामित्ययमादेशो भवति । कुमार्याम् । गौर्याम् । ब्रह्मबन्ध्वाम् । धीबन्ध्वाम् । आपः । खट्वायाम् । बहुराजायाम् । कारीषगन्ध्यायाम् । नी । राजन्याम् । सेनान्याम् * ॥

इदुद्भ्याम् ॥ ११७ ॥

इकारोकाराभ्यां नदीसंज्ञकाभ्यामुत्तरस्य ङेरामादेशो भवति । कृत्याम् । धेन्वाम् ॥

औत् ॥ ११८ ॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौकारादेशो भवति । यत्र । नदीसंज्ञं नापि घिसंज्ञमिकारान्तं तदिहोदाहरणम् । सख्यौ । पत्यौ ॥

* ग्रामण्यामिति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

अच्च घेः ॥ ११९ ॥

औदिति वर्त्तते । घिसंज्ञकादुत्तरस्य ङेरौकारादेशो भवति तस्य च घेरकारादेशो भवति । अग्नौ । वायौ । कृतौ । धेनौ । पटौ । अदिति तपरकरणं स्त्रियां टापो निवृत्त्यर्थम् । औदच्च । घेरिति येषामेकमेवेदं सूत्रं ते प्रधानशिष्टमिदुद्भ्यामौत्त्वं वर्णयन्ति । अन्वाचयशिष्टं घेरकारमिति ॥

आङो ना ऽस्त्रियाम् ॥ १२० ॥

घेरुत्तरस्याङो नाभावो भवति अस्त्रियाम् । अग्निना । वायुना । पटुना । पुंसि इति नोक्तममुना ब्राह्मणकुलेन । अस्त्रियामिति किम् । कृत्या । धेन्वा ॥

इति काशिकायां वृत्तौ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ १ ॥

अङ्गस्येति वर्त्तते । चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वो भवति । अचीकरत् । अजीहरत् । अलीलवत् । अपीपठत् । अत्र द्विर्वचनोपधाह्रस्वत्वयोः प्राप्तयोः परत्वादुपधाह्रस्वत्वं तत्र कृते द्विर्वचनम् । इह तु मा भवानटिटदिति नित्यत्वाद् द्वितीयस्य द्विर्वचनं प्राप्नोति तथा सति ह्रस्वभाविनो ऽङ्गस्याकारस्योपधात्वं विहितमिति ह्रस्वो न स्यात् । नैष दोषः । ओणेर्ऋदित्करणं ज्ञापकं नित्यमपि द्विर्वचनमुपधाह्रस्वत्वेन बाध्यत इति । णाविति किम् । चङ्युपधाया ह्रस्व इत्युच्यमाने ऽलीलवदित्यत्र वचनसामर्थ्यादन्तरङ्गामपि वृद्धिमादेशं च बाधित्वा ह्रस्वः स्यात् । अदीदपदित्यत्र ह्रस्वत्वेन पुको बाधः स्यात् । अपीपचदित्येवमादौ तु नैव स्यात् । चङीति किम् । कारयति । हारयति । उपधाया इति किम् । अचकाङ्क्षत् । अववाञ्छत् । तदेतदुपधाग्रहणमुत्तरार्थमवश्यं कर्त्तव्यं तदिहापि ह्रस्वत्वं निवर्त्तयतीत्येवमर्थं येन नाव्यवधानमित्येतन्नाश्रयितव्यमिति ॥ उपधाह्रस्वत्वे णेर्णिच्युपसंख्यानम् * ॥ * ॥ वादितवन्तं प्रयोजितवान् । अवीवदद्वीणां परिवादकेन । योसौ णौ णिलोपस्तस्य स्थानिवद्भावेनाग्लोपित्वादङ्गस्य ह्रस्वो न प्राप्नोति । णयाकृतिनिर्देशात् सिद्धम् ॥

नाग्लोपिशास्वृदिताम् ॥ २ ॥

अग्लोपिनामङ्गानां शासेर्ऋदितां च णौ चङ्युपधाया ह्रस्वो न भवति । अग्लोपिनां तावत् । मालामाख्यत् । अममालत् । मातरमाख्यत् । अममातरत् ।

---

* णौ णिच्युपसंख्यानमिति पाठान्तरम् । णौ परतो यो णिस्तस्मिन्नित्यर्थः ।

राजानमतिक्रान्तवान् । अत्यरराजत् । लोमान्यनुमृष्टवान् । अन्वलुलोमत् । अगेव यत्र केवलो लुप्यते तत्र स्थानिवद्भावादपि सिद्धम् । हलचोरादेशे तु न सिद्ध्यतीति तदर्थमेतद्वचनम् । अशशासत् । ऋदिताम् । बाधृ । अबबाधत् । याचृ । अययाचत् । ढौकृ । अडुढौकत् ॥

भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

भ्राज भास भाष दीप जीव मील पीड इत्येतेषामङ्गानां णौ चङ्युपधाया ह्रस्वो भवत्यन्यतरस्याम् । भ्राज । अबिभ्रजत् । अबभ्राजत् । भास । अबभासत् । अबीभसत् । भाष । अबभाषत् । अबीभषत् । दीप । अदिदीपत् । अदीदिपत् । जीव । अजीजिवत् । अजिजीवत् । मील । अमिमीलत् । अमीमिलत् । पीड । अपिपीडत् । अपीपिडत् । भ्राजभासोर्ऋदित्करणमपाणिनीयम् ॥ काण्यादीनां वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अचकाणत् । अचीकणत् । अववाणत् । अवीवणत् ॥

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥ ४ ॥

पिबतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधाया लोपो भवति अभ्यासस्येकारादेशो भवति । अपीप्यत् । अपीप्यताम् । अपीप्यन् । उपधालोपे कृते ओः पुयण्ज्यपरे इति ज्ञापकं णौ स्थानिवद्भावस्येति स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनम् ॥

तिष्ठतेरित् ॥ ५ ॥

तिष्ठतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधाया इकारादेशो भवति । अतिष्ठिपत् । अतिष्ठिपताम् । अतिष्ठिपन् ॥

जिघ्रतेर्वा ॥ ६ ॥

जिघ्रतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधाया इकारादेशो वा भवति । अजिघ्रिपत् । अजिघ्रिपताम् । अजिघ्रिपन् । अजिघ्रपत् । अजिघ्रपताम् । अजिघ्रपन् ॥

उर्ऋत् ॥ ७ ॥

णौ चङ्युपधाया ऋवर्णस्य स्थाने वा ऋकारादेशो भवति । इररारामपवादः । इर् । अचिकीर्त्तत् । अचीकृतत् । अर् । अववर्त्तत् । अवीवृतत् । आर् । अममार्जत् । अमीमृजत् । वचनसामर्थ्यादन्तरङ्गा अपि इररारो बाध्यन्ते । तपरकरणं दीर्घेऽपि स्थानिनि ह्रस्व एव यथा स्यात् । अचीकृतदिति । न चायं भाव्यमानः किं तु आदेशान्तरनिवृत्त्यर्थं स्वरूपमेवैतदभ्यनुज्ञायते ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ८ ॥

छन्दसि विषये णौ चङ्युपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋकारादेशो भवति नित्यम् । अवीवृधत्पुरोडाशेन । अवीवृधताम् । अवीवृधन् ॥

दयतेर्दिगि 'लिटि' ॥ ९ ॥

दयतेरङ्गस्य लिटि परतो दिगीत्ययमादेशो भवति। अवदिग्ये। अवदिग्याते। अवदिग्यिरे। दयतेरिति दीङो ग्रहणं न तु दय दानइत्यस्य। तस्य हि लित्याम्विहितः॥ दिग्यादेशेन द्विर्वचनस्य बाधनमिष्यते॥

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ १० ॥

ऋकारान्तस्याङ्गस्य संयोगादेर्गुणो भवति लिटि परतः। स्वृ। सस्वरतुः। सस्वरुः। ध्वृ। दध्वरतुः। दध्वरुः। स्मृ। सस्मरतुः। सस्मरुः। ऋत इति किम्। चिक्षियतुः। चिक्षियुः। संयोगादेरिति किम्। चक्रतुः। चक्रुः। प्रतिषेधविषयेपि गुणो यथा स्यादित्ययमारम्भः। वृद्धिविषये तु पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेष्यते। सस्वार। सस्मार। लिटीत्येव। स्मृतः। स्मृतवान्॥ संयोगादगुणविधाने संयोगोपधग्रहणं कृञर्थं कर्त्तव्यम्॥ *॥ संचस्करतुः, संचस्करुः। इत्यत्र हि पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेत्यत्र दर्शने लिटि कृते तदाश्रये च द्विर्वचने पश्चादुपसर्गयोगे सत्यडभ्यासव्यायेपीति सुट् क्रियते। एवं च कृत्वा संस्क्रीष्ट उपस्क्रीष्टेत्यत्र सुटो बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वादृतश्च संयोगादेरिति इडागमो न भवति॥

ऋच्छत्यृताम् ॥ ११ ॥

ऋच्छतेरङ्गस्य ऋधातोरृकारान्तानां च लिटि परतो गुणो भवति। ऋच्छ। आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। आनर्च्छुः। ऋ। आरतुः। आरुः। ऋकारान्तानाम्। निचकरतुः। निचकरुः। निजगरतुः। निजगरुः। ऋच्छेरलघूपधत्वादप्राप्तो गुणो विधीयते। ऋतां तु प्रतिषिद्धः। वृद्धिविषये तु पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेष्यते। निचकार। निजगार॥

शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ॥ १२ ॥

शॄ दॄ पॄ इत्येतेषामङ्गानां लिटि परतो वा ह्रस्वो भवति। विशश्रतुः। विशश्रुः। विशशरतुः। विशशरुः। विदद्रतुः। विदद्रुः। विददरतुः। विददरुः। निपप्रतुः। निपप्रुः। निपपरतुः। निपपरुः। ह्रस्ववचनमित्त्वोत्त्वनिवृत्त्यर्थम्। के चिदेतत्सूत्रं प्रत्याचक्षते। श्रा पाके द्रा कुत्सायां प्रा पूरणे इत्येतेषामनेकार्था धातव इति शॄदॄप्रामर्थे वर्तमानानां विशश्रतुः विशश्रुः विदद्रतुः विदद्रुः निपप्रतुः निपप्रुः, इत्येतानि रूपाणि साधयन्ति। तथा च सति कसौ विशशृवानित्येतद्रूपं न स्यात्॥

के ऽणः ॥ १३ ॥

के प्रत्यये परतो ऽणो ह्रस्वो भवति । ज्ञका । कुमारिका । किशोरिका । अण इति किम् । गोका । नौका । राका धाकेत्यत्र उणादयो बहुलमिति ह्रस्वो न भवति । न कपीतिप्रतिषेधसामर्थ्यात्कनोऽपि सानुबन्धकस्य ग्रहणमिह भवति ॥

न कपि ॥ १४ ॥

कपि प्रत्यये परतो ऽणो ह्रस्वो न भवति । बहुकुमारीकः । बहुवधूकः । बहुलक्ष्मीकः । गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येत्ययमपि ह्रस्वः कपि न भवति । समासार्थे ह्युत्तरपदे कपि कृते पश्चात्समासेन भवितव्यमिति स्त्रीप्रत्ययान्तसमासप्रातिपदिकं न भवति ॥

आपोऽन्यतरस्याम् ॥ १५ ॥

आबन्तस्याङ्गस्य कपि ह्रस्वो न भवत्यन्यतरस्याम् । बहुखट्वाकः । बहुखट्वकः । बहुमालकः । बहुमालाकः ॥

ऋदृशोऽङि गुणः ॥ १६ ॥

ऋवर्णान्तानां दृशेश्च अङि परतो गुणो भवति । शकलाङ्गुष्ठको ऽकरत् । अहं तेभ्योऽकरं नमः । असरत् । आरत् । जरा । दृशेः । अदर्शत् । अदर्शताम् । अदर्शन् ॥

अस्यतेस्थुक् ॥ १७ ॥

अस्यतेरङ्गस्य थुगागमो भवत्यङि परतः । आस्थत् । आस्थताम् । आस्थन् ॥

श्वयतेरः ॥ १८ ॥

श्वयतेरङ्गस्याकारादेशो भवत्यङि परतः । अश्वत् । अश्वताम् । अश्वन् ॥

पतः पुम् ॥ १९ ॥

पतेरङ्गस्य पुमागमो भवत्यङि परतः । अपप्तत् । अपप्तताम् । अपप्तन् ॥

वच उम् ॥ २० ॥

वचेरङ्गस्य अङि परत उमागमो भवति । अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् ॥

शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ २१ ॥

शीङो ऽङ्गस्य सार्वधातुके परतो गुणो भवति । शेते । शयाते । शेरते । सार्वधातुक इति किम् । शिश्ये ॥

अयङ् यि क्ङिति ॥ २२ ॥

यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतः शीङोऽङ्गस्यायङित्ययमादेशो भवति । शय्यते । शाशय्यते । प्रशय्य । उपशय्य । यीति किम् । शिश्ये । क्ङितीति किम् । शेयम् ॥

उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ २३ ॥

उपसर्गादुत्तरस्य ऊहतेरङ्गस्य ह्रस्वो भवति यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतः । समुह्यते । समुह्य गतः । अभ्युह्यते । अभ्युह्य गतः । उपसर्गादिति किम् । ऊह्यते । ऊहतेरिति किम् । समीह्यते । यीत्येव । समूहितम् । क्ङितीत्येव । अभ्यूह्योयमर्थः । अण इत्येव । आ ऊह्यते । ओह्यते । समोह्यते ॥

एतेर्लिङि ॥ २४ ॥

एतेरङ्गस्योपसर्गादुत्तरस्य लिङि यकारादौ क्ङिति परतो ह्रस्वो भवति । उदियात् । समियात् । अन्वियात् । आशिषि लिङि अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घत्वे कृते ह्रस्वोऽनेन भवति । उपसर्गादित्येव । ईयात् । अण इत्येव आ ईयात् । एयात् । समेयात् ॥

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ २५ ॥

अकृद्यकारे असार्वधातुकयकारे च क्ङिति परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । भृशायते । सुखायते । दुःखायते । चीयते । चेचीयते । स्तूयते । तोष्टूयते । चीयात् । स्तूयात् । अकृदिति किम् । प्रकृत्य । प्रहृत्य । परत्वाद्दीर्घत्वेन तुको बाधः स्यात् । असार्वधातुकइति किम् । चिनुयात् । सुनुयात् । क्ङितीत्येव । उरुया । धृष्णुया ॥

च्वौ च ॥ २६ ॥

च्विप्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । शुचीकरोति । शुचीभवति । शुचीस्यात् । पटूकरोति । पटूभवति । पटूस्यात् ॥

रीङ् ऋतः ॥ २७ ॥

ऋकारान्तस्याङ्गस्य अकृद्यकारे ऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परतो रीङित्ययमादेशो भवति । मात्रीयति । मात्रीयते । पित्रीयते । चेक्रीयते । मात्रीभूतः । क्ङितीत्येतन्निवृत्तं, तेनेहापि भवति । पितुरागतं पित्र्यम् । ऋत इति तपरकरणं किम् । चेकीर्यते । निजेगिल्यते ॥

रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ २८ ॥

ऋकारान्तस्याङ्गस्य श यक् इत्येतयोर्लिङि च यकारादौ असार्वधातुके परतो रिङित्ययमादेशो भवति । श । आद्रियते । आध्रियते । यक् । क्रियते । ह्रियते । लिङ् । क्रियात् । ह्रियात् । असार्वधातुकइत्येव । बिभृयात् । यीत्येव । कृषीष्ट । हृषीष्ट ॥

गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः ॥ २९ ॥

ऋतो यकि लिङि इति वर्त्तते । शङ्त्यत्रासंभवान्नानुवर्त्तते । गुणो भवत्यर्त्तेः संयोगादीनामृकारान्तानां यकि परतो लिङि च यकारादावसार्वधातुके । अर्यते । अर्यात् । स्मर्यते । स्मर्यात् । इह संस्क्रियते, संस्क्रियादिति सुटो बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वादभक्तत्वाद्वा संयोगादित्वमङ्गस्य नास्तीति गुणो न प्रवर्त्तते । यीत्येव । स्वृषीष्ट । ध्वृषीष्ट । असार्वधातुकइत्येव । इयृयात् ॥

यङि च ॥ ३० ॥

यङि च परतो अर्त्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणो भवति । अरार्यते । सास्वर्यते । दाध्वर्यते । सास्मर्यते । अर्त्तेरट्यर्त्त्यशूर्णोतीनामुपसंख्यानमिति यङ् ॥ नन्द्राः संयोगादय इति द्विर्वचनप्रतिषेधो यकारपरस्य नेष्यते ॥ हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ जेघ्नीयते । हिंसायामिति किम् । जङ्घन्यते ॥

ई घ्राध्मोः ॥ ३१ ॥

घ्रा ध्मा इत्येतयोर्यङि परत ईकारादेशो भवति । जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

अस्य च्वौ ॥ ३२ ॥

ई इति वर्त्तते । अवर्णान्तस्याङ्गस्य च्वौ परत ईकारादेशो भवति । शुक्लीभवति । शुक्लीस्यात् । खट्वीकरोति । खट्वीस्यात् ॥

क्यचि च ॥ ३३ ॥

अस्येति वर्त्तते । क्यचि परतोऽवर्णान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति । पुत्रीयति । घटीयति । खट्वीयति । मालीयति । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ इत्यस्यापवादः । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्द्धेषु ॥ ३४ ॥

अशनाय उदन्य धनाय इत्येतानि निपात्यन्ते बुभुक्षा पिपासा गर्द्ध इत्येतेष्वर्थेषु । अशनायेत्यशनशब्दस्यात्वं क्यचि निपात्यते । अशनायतीति भवति बुभुक्षा चेत् । अशनीयतीत्येवान्यत्र । उदन्येति उदकशब्दस्य उदन्नादेशो निपात्यते । उदन्यतीति भवति पिपासा चेत् । उदकीयतीत्येवान्यत्र । धनायेति धनशब्दस्यात्वं निपात्यते । धनायतीति भवति गर्द्धश्चेत् । धनीयतीत्येवान्यत्र ॥

नच्छन्दस्यपुत्त्रस्य ॥ ३५ ॥

छन्दसि विषये पुत्रवर्जितस्यावर्णान्तस्याङ्गस्य क्यचि यदुक्तं तन्न भवति । किं चोक्तं, दीर्घत्वमीत्वं च । मित्रयुः । पुत्रयुः । संस्वेदयुः । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः । अपुत्रस्येति किम् । पुत्रीयन्तः सुदानवः ॥ अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ जनीयन्तोऽन्वग्रवः ॥

दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति ॥ ३६ ॥

दुरस्युः द्रविणस्युः वृषण्यति रिषण्यति एतानि छन्दसि निपात्यन्ते। दुष्टशब्दस्य क्यचि दुरस्भावो निपात्यते। अवियेना दुरस्युः। दुष्टीयतीति प्राप्ते। द्रविणशब्दस्य द्रविणस्भावो निपात्यते। द्रविणस्युर्विपन्यया। द्रविणीयतीति प्राप्ते। वृषशब्दस्य वृषणभावो निपात्यते। वृषण्यति। वृषीयतीति प्राप्ते। रिष्टशब्दस्य रिषणभावो निपात्यते। रिषण्यति। रिष्टीयतीति प्राप्ते॥

अश्वाघस्यात् ॥ ३७ ॥

अश्व अघ इत्येतयोः क्यचि परतः छन्दसि विषये आकारादेशो भवति। अश्वायन्तो मघवन्। मा त्वा वृका अघायवो विदन्। एतदेवात्त्ववचनं ज्ञापकं नच्छन्दस्यपुत्रस्येति दीर्घप्रतिषेधो भवतीति॥

देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ॥ ३८ ॥

देव सुम्न इत्येतयोः क्यचि परत आकारादेशो भवति यजुषि काठके। देवायन्तो यजमानाय। सुम्नायन्तो हवामहे। यजुषीति किम्। देवाञ्जिगाय सुम्नयुः। काठकइति किम्। सुम्नयुरिदमासीत्॥

कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ॥ ३९ ॥

कवि अध्वर पृतना इत्येतेषामङ्गानां क्यचि परतो लोपो भवति ऋचि विषये। कव्यन्तः सुमनसः। अध्वर। अध्वर्यन्तः। पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति॥

द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ॥ ४० ॥

द्यति स्यति मा स्था इत्येतेषामङ्गानामिकारादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः। द्यति। निर्दितः। निर्दितवान्। स्यति। अवसितः। अवसितवान्। मा। मितः। मितवान्। स्था। स्थितः। स्थितवान्। तीति किम्। अवदाय। कितीति किम्। अवदाता॥

शाछोरन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥

शा छा इत्येतयोरन्यतरस्यामिकारादेशो भवति तकारादौ किति। शा। निशितम्। निशातम्। निशितवान्। निशातवान्। अवच्छितम्। अवच्छातम्। अवच्छितवान्। अवच्छातवान्॥ श्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति वक्तव्यम्॥ * ॥ संशितो ब्राह्मणः। संशितव्रत इत्यर्थः। व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात्सिद्धम्।

देवत्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सद्विधिः।
मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः॥

दधातेर्हिः ॥ ४२ ॥

दधातेरङ्गस्य हात्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । हितः । हितवान् । हित्वा ॥

जहातेश्च क्त्वि ॥ ४३ ॥

जहातेरङ्गस्य हीत्ययमादेशो भवति क्त्वाप्रत्यये परतः । हित्वा राज्यं वनं गतः । हित्वा गच्छति । जहातेर्निर्देशाज्जिहीतेर्न भवति । हात्वा ॥

विभाषा छन्दसि ॥ ४४ ॥

जहातेरङ्गस्य विभाषा हीत्ययमादेशो भवति छन्दसि विषये क्त्वाप्रत्यये परतः । हित्वा शरीरं यातव्यम् । हात्वा * ॥

सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च ॥ ४५ ॥

सुधित वसुधित नेमधित धिष्व धिषीय इत्येतानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते । तत्र सुधित वसुधित नेमधित इति सुवसुनेमपूर्वस्य दधातेः क्त्वाप्रत्यये इत्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य निपात्यते । गर्भं माता सुधितम् । सुहितमिति प्राप्ते । वसुधितमग्नौ जुहोति । वसुहितमिति प्राप्ते । नेमधिता बाधन्ते । नेमहिता इति प्राप्ते । धिष्वेति लोण्मध्यमैकवचने दधातेरित्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य द्विर्वचनाभावश्च निपात्यते । धिष्व सोमम् । धत्स्वेति प्राप्ते । धिषीयेति आशीर्लिङ्यात्मनेपदोत्तमैकवचने दधातेरित्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य निपात्यते । धिषीयेति । धासीयेति प्राप्ते ॥

दो दद् घोः ॥ ४६ ॥

दा इत्येतस्य घुसंज्ञकस्य ददित्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । दत्तः । दत्तवान् । दत्तिः । द इति किम् । धातः । धीतवान् । धेट एतद्रूपम् । घोरिति किम् । दाप् लवने । दातं बर्हिः । दैप् शोधने । अवदातं मुखम् ॥ अयमादेशः स्यानदृष्यते ॥ एवं ह्युक्तम् । तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद्दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् । धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिस्थान्ते ऽदोषस्तस्मात्थान्तम् ॥ यदि तु दस्तीति तकारादौ दीर्घत्वं तदा तान्तेप्यदोषः । दान्तधान्तयोरपि सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति नत्वधत्वे न भविष्यत इति न दोषः ॥

अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्म्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

अच उपसर्गात्त इति प्राप्ते निपात्यन्ते । अनुपसर्गा वा एते अवादयः क्रियान्तरविषया वेदितव्याः ॥

---

* छान्दसत्वादीत्वाभाव इति पदमञ्जरी ।

अच उपसर्गात्तः ॥ ४७ ॥

अजन्तादुपसर्गादुत्तरस्य दा इत्येतस्य घुसंज्ञकस्य त इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति । प्रत्त,मवत्तं,नीत्तं,परीत्तम् । अच इति किम् । निर्दत्तम् । दुर्दत्तम् । उपसर्गादिति किम् । दधि दत्तम् । मधु दत्तम् । घोरित्येव । अवदात्तं मुखम् । उपसर्गादिति पञ्चमीनिर्द्देशादादेरलः प्राप्नोति । तत्र समाधिमाहुः । अच इत्येतदावर्त्त्यते । तत्रैकं पञ्चम्यन्तमुपसर्गविशेषणार्थं, अपरमपि षष्ठ्यन्तं स्थानिनिर्देशार्थमित्याकारस्य स्थाने तकारो भवति । द्वितकारो वा संयोगो ऽयमादिश्यते । सोनेकाल्त्वात्सर्वस्य भविष्यति । अपो भीत्यत्र पञ्चम्यन्तमच इत्यनुवर्त्तते । तेन पकारमात्रस्य भविष्यति ॥ द्यतेरित्वादचस्त इत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन ॥ * ॥ अवत्तम् । प्रत्तं जुहोति ॥

अपो भि ॥ ४८ ॥

अप् इत्येतस्याङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतस्त इत्ययमादेशो भवति । अद्भिः । अद्भ्यः । भीति किम् । अप्सु ॥ स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च तकारादेश इष्यते छन्दसि भकारादौ ॥ स्ववद्भिः । स्वतवद्भिः । माद्भिष्ट इन्द्रो वृत्रहा । समुषद्भिरजायथाः ॥

सः स्यार्द्धधातुके ॥ ४९ ॥

सकारान्तस्याङ्गस्य सकारादावार्द्धधातुके परतस्तकारादेशो भवति । वत्स्यति । अवत्स्यत् । विवत्सति । जिघत्सति । स इति किम् । वक्ष्यति । सीति किम् । घासः । वासः । आर्द्धधातुकइति किम् । आस्से । वस्से ॥

तासस्त्योर्लोपः ॥ ५० ॥

तासेरस्तेश्च सकारस्य सकारादौ प्रत्यये लोपो भवति । तासेः । कर्त्तासि । कर्त्तासे । अस्तेः । त्वमसि । व्यतिसे । अस्तेरकारसकारयोर्लुप्तयोः से इति प्रत्ययमात्रमेतत्पदम् । तेन सात्पदाद्योरिति षत्वं न भवति ॥

रि च ॥ ५१ ॥

रेफादौ च प्रत्यये परतः तासस्त्योः सकारस्य लोपो भवति । कर्त्तारौ । कर्त्तारः । अध्येतारौ । अध्येतारः । [illegible]

ह एति ॥ ५२ ॥

तासस्त्योः सकारस्य हकारादेशो भवति एति परतः । कर्त्ताहे । अस्तेः । व्यतिहे ॥

यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ ५३ ॥

यकारादाविवर्णादौ च परतो दीधीवेव्योर्लोपो भवति । यकारादौ । आदीध्य गतः । आवेव्य गतः । आदीध्यते । आवेव्यते । इवर्णादौ । आदीधिता । आवेविता । लिङि । आदीधीत । आवेवीत । यीवर्णयोरिति किम् । आदीध्यनम् । आवेव्यनम् ॥

सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ॥ ५४ ॥

सनि प्रत्यये सकारादौ परतो मी मा घु रभ लभ शक पत पद इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने इसित्ययमादेशो भवति । मी इति मीनातिमिनोत्योर्द्वयोरपि ग्रहणमिष्यते । मित्सति । प्रमित्सति । मा इति गामादाग्रहणेष्वविशेषः । मित्सते । अपमित्सते । घु । दित्सति । धित्सति । रभ । आरिप्सते । लभ । आलिप्सते । शक । शिक्षति । पत । पित्सति । पद । प्रपित्सते । सनीति किम् । दास्यति । सीत्येव । पिपतिषति । तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानमिति पतेरिडागमविकल्पः ॥ सनि राधो हिंसायामच इस्वक्तव्यः ॥ * ॥ प्रतिरित्सति । हिंसायामिति किम् । आरिरात्सति ॥

आप्ज्ञप्यृधामीत् ॥ ५५ ॥

आप् ज्ञपि ऋध इत्येतेषामङ्गानामच ईकारादेशो भवति सनि सकारादौ परतः । आप् । ईप्सति । ज्ञपि । ज्ञीप्सति । ऋध् । ईर्त्सति । ज्ञपेर्द्वावचौ तत्रणेः पूर्वविप्रतिषेधेन लोप इतरस्य त्वीत्वम् । सनीत्येव । प्राप्स्यति । सीत्येव । जिज्ञपयिषति । अर्दिधिषति । सनीवन्तर्द्धेति ज्ञपेर्ऋधेश्चेटो विकल्पः ॥

दम्भ इच्च ॥ ५६ ॥

दम्भेरच इकारादेशो भवति चकारादीच्च सनि सकारादौ परतः । धीप्सति । धिप्सति । सीत्येव । दिदम्भिषति ॥

मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ ५७ ॥

मुचोऽकर्म्मकस्य गुणो वा भवति सनि सकारादौ परतः । हलन्ताच्चेति कित्त्वप्रतिषेधो विकल्प्यते । मोक्षते वत्सः स्वयमेव । मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव । अकर्म्मकस्येति किम् । मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः । कर्म्मकर्त्तरि मुचिरकर्म्मको भवति कर्म्मविशेषस्य वा विवक्षायाम् ॥

अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ ५८ ॥

यदेतत्प्रक्रान्तं सनि मीमेत्यादि मुचोऽकर्म्मकस्येति यावत् । अत्राभ्यासलोपो भवति । तथैवोदाहृतम् । अभ्यासस्येत्येतच्चाधिकृतं वेदितव्यमाध्यायपरिसमाप्तेः । इत उत्तरं यद्वक्ष्यामोऽभ्यासस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । ह्रस्वः । डुढौकिषते । तुत्राकिषते । सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् अभ्यास-

लोपश्चेत्येवं सिद्धे यदत्रग्रहणमिह क्रियते तद्विषयावधारणार्थमत्रैवाभ्यासलोपो भवति। सन्वद्भावविषये न भवति। अमीमपत्। अदीदपत्। सन्वल्लघुनि चङ्परइति सन्वद्भावात्प्राप्नोति। सर्वस्याभ्यासस्यायं लोप इष्यते तदर्थमेव केचिदत्रग्रहणं वर्णयन्ति। नानर्थकेलोन्त्यविधिरित्यपरे सर्वस्य कुर्वन्ति॥

ह्रस्वः ॥ ५९ ॥

ह्रस्वो भवत्यभ्यासस्य। डुढौकिषते। तुत्रौकिषते। डुढौके। तुत्रौके। अडुढौकत्। अतुत्रौकत्॥ अभ्यासस्यानचि॥ *॥ अभ्यासस्य यदुच्यते अनचि तद्भवतीति वक्तव्यम्। चराचरः। चलाचलः। पतापतः। वदावदः। हलादिः शेषो न भवति॥

हलादिः शेषः ॥ ६० ॥

अभ्यासस्य हलादिः शिष्यते अनादिर्लुप्यते। जग्लौ। मम्लौ। पपाच। पपाठ। आट। आटतुः। आटुः। आदिशेषनिमित्तोयमनादेर्लोपो विधीयते। तत्राभ्यासजातेराश्रयणात्क्वचिदपि वर्त्तमानो हलादिरनादेः सर्वत्र निर्वृत्तिं करोति। अपरे तु ब्रुवते। शेषशब्दोयं निवृत्त्या विशिष्टमवस्थानमाह। तदवस्थानमुक्तितो यद्यपि प्रधानमविधेयत्वात्तु तदप्रधानम्। निवृत्तिरेव तु विधेयत्वात्प्रधानम्। तत्रायमर्थोस्य जायते। अभ्यासस्यानादेर्हलो निवृत्तिर्भवतीति। सा किमित्यादेरविधेयां सतीमनिवृत्तिमपेक्षिष्यतइति॥

शर्पूर्वाः खयः ॥ ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते। अन्ये हलो लुप्यन्ते। चुश्चोतिषति। तिष्ठासति। पिस्पन्दिषते। शर्पूर्वा इति किम्। पपाच। खय इति किम्। सस्नौ॥ खर्पूर्वाः खय इति वक्तव्यम्॥ *॥ उचिच्छिषतीत्यत्र उच्छेरन्तरङ्गत्वात्तुकि कृते द्विर्वचनं तत्र हलादिः शेषे सत्यभ्यासे तकारः श्रूयेत॥

कुहोश्चुः ॥ ६२ ॥

अभ्यासस्य कवर्गहकारयोश्चवर्गादेशो भवति। चकार। चखान। जगाम। जघान। हकारस्य। जहार। जिहीर्षति। जहौ॥

(न) कवतेर्यङि ॥ ६३ ॥

कवतेरभ्यासस्य यङि परतश्चुर्न भवति। कोकूयते। उष्ट्रः। कोकूयते। खरः। कवतेरिति विकरणनिर्द्देशः कौतेः कुवतेश्च निवृत्त्यर्थः। तयोश्चुत्वमेव भवति। चोकूयते। यङीति किम्। चुकुवे॥

कृषेश्छन्दसि ॥ ६४ ॥

कृपेश्छन्दसि विषये यङि परतोऽभ्यासस्य चुर्न भवति । करीकृप्यते यज्ञ-कुणपः । छन्दसीति किम् । चरीकृप्यते कृषीवलः ॥

दाधर्त्तिदर्द्धर्त्तिदर्द्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्याऽऽगनीगन्तीति च ॥ ६५ ॥

दाधर्त्ति दर्धर्ति दर्द्धर्षि बोभूतु तेतिक्ते अलर्षि आपनीफणत् संसनिष्यदत् करिक्रत् कनिक्रदत् भरिभ्रत् दविध्वतः दविद्युतत् तरित्रतः सरीसृपतं वरीवृजत् मर्मृज्य आगनीगन्ति इत्येतानि अष्टादश छन्दसि विषये निपात्यन्ते । दाधर्त्ति दर्धर्ति दर्द्धर्षीति धारयतेर्धृञो वा श्लौ यङ्लुकि वा अभ्यासस्य दीर्घत्वं णिलोपश्च । दाधर्त्ति । एवं दर्धर्ति । श्लौ रुगभ्यासस्य निपात्यते । तथा दर्द्धर्षीति । अत्र च यल्लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । बोभूत्विति । भवतेर्यङ्लुगन्तस्य लोटि गुणाभावो निपात्यते । नैतदस्ति प्रयोजनम् । अत्र भूसुवोस्तिङीति गुणाभावः सिद्धः । ज्ञापनार्थं तर्हि निपातनमेतत् । ज्ञापयति । अन्यत्र यङ्लुगन्तस्य गुणप्रतिषेधो न भवतीति । बोभोति । बोभवीति । तेतिक्ते । तिजेर्यङ्लुगन्तस्यात्मनेपदं निपात्यते । यङो ङित्त्वात्प्रत्ययलक्षणेनात्मनेपदं सिद्धमेव । ज्ञापनार्थं त्वात्मनेपदनिपातनमन्यत्र यङ्लुगन्तादात्मनेपदं न भवति । अलर्षीति । इयर्त्तेर्लटि सिपि अभ्यासस्य हलादिः शेषापवादो रेफस्य लत्वं निपात्यते । सिपा निर्द्देशो ऽतन्त्रं तिप्यपि दृश्यते अलर्त्ति दक्षः । आपनीफणदिति । फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतर्यभ्यासस्य नीग्निपात्यते । संसनिष्यदिति । स्यन्देः संपूर्वस्य यङ्लुक् शतर्येवाभ्यासस्य निक् धातुसकारस्य षत्वं निपात्यते । न चास्य संपूर्वता तन्त्रं, अन्यत्रापि हि दृश्यते । आसनिष्यददिति । करिक्रदिति करोतेर्यङ्लुन्तस्य शतरि चुत्वाभावोऽभ्यासककारस्य रिगागमो निपात्यते । कनिक्रददिति । क्रन्देर्लुङि च्लेरङादेशो द्विर्वचनमभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च निपात्यते । तथा चास्य विवरणं कृतम् । अक्रन्दीदिति भाषायाम् । भरिभ्रदिति बिभर्त्तेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि भृञामिदिति इत्वाभावो जश्त्वाभावोऽभ्यासस्य रिगागमो निपात्यते । दविध्वत इति ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि जसि रूपमेतत् । अत्राभ्यासस्य विगागम ऋकारलोपश्च निपात्यते । दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य । दविद्युतदिति द्युतेर्यङ्लुन्तश्च शतरि अभ्यासस्य संप्रसारणाभावो अत्वं विगागमश्च निपात्यते । तरित्रत इति तरतेः शतरि श्लौ षष्ठ्येकवचने ऽभ्यासस्य रिगागमो निपात्यते । सरीसृपतमिति सृपेः शतरि

श्लौ द्वितीयैकवचने ऽभ्यासस्य रीगागमो निपात्यते । वरीवृजदिति वृजेः शतरि श्लौ रीगागमो निपात्यते ऽभ्यासस्य । मर्मृज्येति मृजेर्लिटि णलि अभ्यासस्य रुगागमो धातोश्च युगागमो निपात्यते । ततो मृजेर्वृद्धिर्न भवत्यलघूपधत्वात् । लघूपधगुणे प्राप्ते वृद्धिरारभ्यते । आगनीगन्तीति आङ्पूर्वस्य गमेर्लटि श्लौ अभ्यासस्य चुत्वाभावो नीगागमश्च निपात्यते । वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णम् । इतिकरणमेवंविधानामन्येषामप्युपसंग्रहार्थम् ॥

उरत् ॥ ६६ ॥

ऋवर्णान्तस्याभ्यासस्याकारादेशो भवति । ववृते । ववृधे । नर्नर्ति । नरिनर्ति । नरीनर्ति । इत्येवमादावभ्यासविकारेषु अपवादो नोत्सर्गान्विधीन्बाधतइत्युरदत्वे कृते रुगादय आगमाः क्रियन्ते ॥

द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ॥ ६७ ॥

द्युति स्वापि इत्येतयोरभ्यासस्य संप्रसारणं भवति । विदिद्युतत्तम् विदिद्योतिषते । विदिद्युतिषते । विदेद्युत्यते । स्वापेः । सुष्वापयिषति । स्वापिर्ण्यन्तो गृह्यते तस्याभ्यासनिमित्तेन प्रत्ययेनानन्तर्ये सति संप्रसारणमिष्यते । इह न भवति । स्वापयतेर्ण्वुल् । स्वापकः । तस्मात्क्यचि स्वापकीयति । स्वापकीयतेः सन् । सिष्वापकीयिषति ॥

व्यथो लिटि ॥ ६८ ॥

व्यथेर्लिटि परतोभ्यासस्य संप्रसारणं भवति । विव्यथे । विव्यथाते । विव्यथिरे । हलादिः शेषेण यकारस्य निवृत्तौ प्राप्तायां संप्रसारणं क्रियते । वकारस्य न संप्रसारणे संप्रसारणमिति प्रतिषिध्यते । लिटीति किम् । वाव्यथ्यते ॥

दीर्घ इणः किति ॥ ६९ ॥

इणोङ्गस्य योभ्यासस्तस्य दीर्घो भवति किति लिटि परतः । ईयतुः । ईयुः । इणो यणिति यणादेशे कृते स्थानिवद्भावाद्द्विर्वचनम् । कितीति किम् । इयाय । इययिथ ॥

अत आदेः ॥ ७० ॥

अभ्यासस्यादेरकारस्य दीर्घो भवति लिटि परतः । अतो गुणे पररूपत्वस्यापवादः । आट । आटतुः । आटुः । आदेरिति किम् । पपाच । पपाठ ॥

तस्मान्नुड् द्विहलः ॥ ७१ ॥

तस्मादतोभ्यासाद्दीर्घीभूतादुत्तरस्य द्विहलोङ्गस्य नुडागमो भवति । आनङ्ग । आनङ्गतुः । आनङ्गुः । आनञ्ज । आनञ्जतुः । आनञ्जुः ।

द्विहल इति किम् । आट । आटतुः । आटुः । ऋकारैकदेशो रेफो हल्ग्रहणेन गृह्यते । तेनेहापि द्विहलोऽङ्गस्य नुडागमो भवति । आनृधतुः । आनृधुः ॥

अश्नोतेश्च ॥ ७२ ॥

अश्नोतेश्च दीर्घीभूतादभ्यासादुत्तरस्य नुडागमो भवति । व्यानशे । व्यानशाते । व्यानशिरे । अश्नोतेरिति विकरणनिर्देशो अश्नातेर्मा भूदिति । आश । आशतुः । आशुः ॥

भवतेरः ॥ ७३ ॥

भवतेरभ्यासस्याकारादेशो भवति लिटि परतः । बभूव । बभूवतुः । बभूवुः । बभूवे । भवतेरिति कर्तृनिर्देशादिह न भवति । अनुबभूवे कम्बलो देवदत्तेन । लिटीत्येव । बुभूषति । बोभूयते ॥

ससूवेति निगमे ॥ ७४ ॥

ससूव इति निपात्यते । सूतेर्लिटि परस्मैपदं वुगागमो ऽभ्यासस्य चात्वं निपात्यते । ससूव स्थविरं विपश्चिताम् । सुषुवे इति भाषायाम् ॥

निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ॥ ७५ ॥

निजादीनां त्रयाणामभ्यासस्य गुणो भवति श्लौ सति । निजिर्- नेनेक्ति । विजिर्, वेवेक्ति । विष्, वेवेष्टि । त्रिग्रहणमुत्तरार्थम् । एषां हि वृत्करणं समाप्त्यर्थं पठन्त्यएवेति । श्लाविति किम् । निनेज ॥

भृञामित् ॥ ७६ ॥

भृञादीनां त्रयाणामभ्यासस्येकारादेशो भवति श्लौ सति । भृञ् । बिभर्त्ति । माङ् । मिमीते । ओहाङ् । जिहीते । त्रयाणामित्येव । जहाति । श्लावित्येव । बभार ॥

अर्त्तिपिपर्त्योश्च ॥ ७७ ॥

अर्त्ति पिपर्त्ति इत्येतयोरभ्यासस्येकारादेशो भवति श्लौ । इयर्त्ति धूमम् । पिपर्त्ति सोमम् ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७८ ॥

छन्दसि विषये ऽभ्यासस्य श्लौ बहुलमिकारादेशो भवति । पूर्णां विवष्टि । वशेरेतद्रूपम् । तथा वचेः । जनिमा विवक्ति । सचेः । वत्सं न माता सिषक्ति । जिघर्त्ति सोमम् । न च भवति । ददातीत्येवं ब्रूयात् । जजनमिन्द्रं माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥

सन्यतः ॥ ७९ ॥

सनि परतोऽकारान्ताभ्यासस्येकारादेशो भवति । पिपक्षति । यियक्षति । तिष्ठासति । पिपासति । सनीति किम् । पपाच । अत इति किम् । लुलूषति । तपरकरणं किम् । पापचिषते ॥

ओः पुयण्ज्यपरे ॥ ८० ॥

सनीति वर्त्तते इदिति च । उवर्णान्ताभ्यासस्य पवर्गे यणि जकारे चावर्णपरे परत इकारादेशो भवति सनि प्रत्यये परतः । पवर्गे परे । पिपविषति । पिपावयिषति । बिभावयिषति । यण्यपरे । यियविषति । यियावयिषति । रिरावयिषति । लिलावयिषति । जपरे । जु इति सौत्रोयं धातुः । जिजावयिषति । एतदेव पुयण्ज्यपरइति वचनं ज्ञापकमद्विर्वचननिमित्तेपि णौ स्थानिवद्भवतीति । ओरिति किम् । पापच्यते । सन् । पापचिषति । पुयण्जीति किम् । अवनुनावयिषति । जुहावयिषति । अपरइति किम् । बुभूषति ॥

स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ॥ ८१ ॥

स्रवति शृणोति द्रवति प्रवति प्लवति च्यवति इत्येतेषामभ्यासस्य ओरवर्णपरे यणि वा इकारादेशो भवति सनि परतः । सिस्रावयिषति । सुस्रावयिषति । शृणोति । शिश्रावयिषति । शुश्रावयिषति । द्रवति । दिद्रावयिषति । दुद्रावयिषति । प्रवति । पिप्रावयिषति । पुप्रावयिषति । प्लवति । पिप्लावयिषति । पुप्लावयिषति । च्यवति । चिच्यावयिषति । चुच्यावयिषति । वचनसामर्थ्यादेकेन वर्णेन यणोव्यवधानमाश्रीयते । पूर्वसूत्रे त्वनन्तरएव यणि भवितव्यमित्यप्राप्तविभाषेयम् । अपरइत्येव । सुस्रूषति । शुश्रूषति ॥

गुणो यङ्लुकोः ॥ ८२ ॥

यङि यङ्लुकि च इगन्तस्याभ्यासस्य गुणो भवति । चेचीयते । लोलूयते । यङ् लुकि । जोहवीति । यङोवेतीड्विकल्पः । चोक्रुशीति ॥

दीर्घोऽकितः ॥ ८३ ॥

अकितोभ्यासस्य दीर्घो भवति यङी यङ्लुकि च । पापच्यते । पापचीति । यायज्यते । यायजीति । अकित इति किम् । यंयम्यते । यंयमीति । रंरम्यते । रंरमीति । ननु चात्रापवादत्वान्नुकि कृते ऽभ्यासस्यानजन्तत्वादेव दीर्घत्वं न भविष्यति । एवं तर्ह्यकित इत्यनेनैतज् ज्ञाप्यते, अभ्यासविकारेष्वपवादा नोत्सर्गान् विधीन्बाधन्तइति । किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनं, डोढौक्यतइत्यत्र दीर्घोऽकित इत्यनेन संध्यक्षरह्रस्वो न बाध्यते । अचीकरदित्यत्र दीर्घो लघोरित्यनेन सन्वदित्वं न बाध्यते । मान्प्रभृतीनां दीर्घेण सनीत्वं न बाध्यते मीमांसते । ई च गण इतीत्वेन हलादिः शेषो न बाध्यते अजीगणत् ॥

नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ॥ ८४ ॥

वञ्चु स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु कस पत पद स्कन्द इत्येतेषामभ्यासस्य नीगागमो भवति यङि यङ्लुकि च । वञ्चु । वनीवच्यते । वनीवञ्चीति । स्रंसु । सनीस्रस्यते । सनीस्रंसीति । ध्वंसु । दनीध्वस्यते । दनीध्वंसीति । भ्रंसु । बनीभ्रस्यते । बनीभ्रंसीति । कस । चनीकस्यते । चनीकसीति । पत । पनीपत्यते । पनीपतीति । पद । पनीपद्यते । पनीपदीति । स्कन्द । चनीस्कद्यते । चनीस्कन्दीति ॥

नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ॥ ८५ ॥

अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्याकारान्तस्य नुगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः । तंतन्यते । तंतनीति । जंगम्यते । जंगमीति । यंयम्यते । यंयमीति । रंरम्यते । रंरमीति । नुगित्येतदनुस्वारोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम् । स्थानिना ह्यादेशो लक्ष्यते । तेन यंयम्यतइत्येवमादावकृत्परत्वेप्यनुस्वारो भवति ॥ पदान्तवच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वा पदान्तस्येति परसवर्णविकल्पो यथा स्यादिति । अत इति किम् । तेतिम्यते । तपरकरणं तु भूतपूर्वस्यापि दीर्घस्य निवृत्त्यर्थम् । बाभाम्यते । अनुनासिकान्तस्येति किम् । पापच्यते ॥

जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ ८६ ॥

जप जभ दह दश भञ्ज पश इत्येतेषामभ्यासस्य नुगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः । जंजप्यते । जंजपीति । जंजभ्यते । जंजभीति । दंदह्यते । दंदहीति । दंदश्यते । दंदशीति । दश इति दंशिरयं नकारलोपार्थमेव निर्द्दिष्टः । तेन यङ्लुक्यपि नकारलोपो भवति । भञ्ज । बंभज्यते । बंभजीति । पश इति सौत्रो धातुः । पंपश्यते । पंपशीति ॥

चरफलोश्च ॥ ८७ ॥

चर फल इत्येतयोरभ्यासस्य नुगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः । चंचूर्यते । चंचूरीति । पंफुल्यते । पंफुलीति ॥

उत्परस्यातः ॥ ८८ ॥

चरफलोरभ्यासात्परस्यात उकारादेशो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः । चंचूर्यते । चंचूरीति । पंफुल्यते । पंफुलीति । परस्येति किम् । अभ्यासस्य मा भूत् । अत इति किम् । अलोन्त्यस्य मा भूत् । उदिति तपरकरणं चंचूर्ति पंफुलीति, अत्र लघूपधगुणनिवृत्त्यर्थम् । दीर्घस्यासिद्धत्वादिह लघुत्वं न निवर्त्तते ॥

ति च ॥ ८९ ॥

तकारादौ प्रत्यये परतश्चफलोरकारस्य उकारादेशो भवति । चरणं

नौ ऋ्तीति =

चूर्त्तिः । ब्रह्मणश्चूर्त्तिः । प्रफुल्लिः । प्रफुल्लाः सुमनसः । यङ्लुकोरभ्यासस्येति चानुवर्त्तमानमपि वचनसामर्थ्यादिह नाभिसंबध्यते ॥

रीगृदुपधस्य च ॥ ९० ॥

ऋदुपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीगागमो भवति यङ्लुकोः परतः । वरीवृत्यते । वरीवृध्यते । वरीवृतीति । वरीवृधीति । नरीनृत्यते । नरीनृतीति ॥ रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इहापि यथा स्यात् । वरीवृश्च्यते । वरीवृश्चीति ॥

रुग्रिकौ च लुकि ॥ ९१ ॥

यङ्लुकि ऋदुपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुग्रिकावागमौ भवतश्चाकाराद्रीक्च । नर्नर्त्ति । नरिनर्त्ति । नरीनर्ति । वर्वर्त्ति । वरिवर्ति । वरीवर्ति । उकार उच्चारणार्थः ॥ मर्मृज्यते मर्मृज्यमानास इत्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ मर्मृज्यते । मर्मृज्यमानासः ॥

ऋतश्च ॥ ९२ ॥

ऋकारान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुग्रिकावागमौ भवतो रीक्च यङ्लुकि । चर्कर्ति । चरिकर्त्ति । चरीकर्त्ति । जर्हर्त्ति । जरिहर्त्ति । जरीहर्त्ति । तपरकरणं किम् । किरतेश्चाकर्त्ति ।

किरतिं चर्करीतान्तं पचतीत्यत्र यो नयेत् ।
प्राप्तिज्ञं तमहं मन्ये प्रारब्धस्तेन संग्रहः * ॥

तत्रेयं प्राप्तिस्तपरकरणसामर्थ्यादङ्गविशेषणमृतदित्येतत्तथा चाप्राप्ति किरतेरुगादीनामिति ॥

सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥ ९३ ॥

लघुनि धात्वक्षरे परतो योऽभ्यासस्तस्य चङ्परे णौ परतः सनीव कार्यं भवति अनग्लोपे । सन्यत इत्युक्तं चङ्परेऽपि तथा । अचीकरत् । अपीपचत् । ओः पुयण्ज्यपरइत्युक्तं चङ्परेऽपि तथा । अपीपवत् । अलीलवत् । अजीजवत् । स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वेत्युक्तं चङ्परेऽपि तथा । असिस्रवत् । असुस्रुवत् । अशिश्रवत् । अशुश्रवत् । अदिद्रवत् । अदुद्रवत् । अपिप्रवत् । अपुप्रवत् । अपिप्लवत् । अपुप्लवत् । अचिच्यवत् । अचुच्यवत् । लघुनीति किम् । अततक्षत् । अररक्षत् । जागरयतेः । अजजागरत् । अत्र केचिद्वर्णं लघुमाश्रित्य सन्वद्भावमिच्छन्ति सर्वत्रैव लघोरानन्तर्यमभ्यासेन नास्तीति व्यव-

---

* किरतिमिति ऋकारान्तोपलक्षणं, चर्करीतमिति यङ्लुकः पूर्वाचार्यसंज्ञा, पचतीति लट उपलक्षणम् । तेन चाकर्तीत्यादीनि रूपाणि किरतेर्यो नयेदित्यर्थः । प्राप्तिज्ञं रुगादीनां विषयविभागेन या प्राप्तिस्तज्ज्ञं, संग्रहः साधुशब्दसंग्रहः । इति पदमञ्जरी ।

धानेपि वचनप्रामाण्याद्भवितव्यं, तदसत्। येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रामाण्यादित्येकेन व्यवधानमाश्रीयते न पुनरनेकेन। यद्येवं, कथमचित्रणादिति, आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति भवत्येवंजातीयकानामित्वमिति। यदयं तद्बाधनार्थं स्मरत्यादीनामत्वं विदधाति। चङ्परइति किम्। अहं पपच। परग्रहणं किम्। चङ्येव केवले मा भूत्। अचकमत। अनग्लोपइति किम्। अचकथत्। दृषदमाख्यातवान् अददृषत्। वादितवन्तं प्रयोजितवन्तं प्रयोजितवान् अवीवददित्यत्र योसौ णौ णिलोपो नासावग्लोप इत्याश्रीयते किं कारणं चङ्परइति णिजातेर्निमित्तत्वेनाश्रितोन्यस्याको लोपः परिगृह्यते। मीमादिनामत्वग्रहणात्सन्वद्भावेनाभ्यासलोपो न भवतीत्युक्तम्। किं च सन्वदिति सनाश्रयं कार्यमतिदिश्यते न च लोपः सनमेवापेक्षते किं तर्हि इस्भावाद्यपि तदभावादमीमयदित्यादावभ्यासलोपो न भविष्यति॥

दीर्घो लघोः ॥ ९४ ॥

दीर्घो भवति लघोरभ्यासस्य लघुनि णौ चङ्परे ऽनग्लोपे। अचीकरत्। अजीहरत्। अलीलवत्। अपीपचत्। लघोरिति किम्। अबिभ्रजत्। लघुनीत्येव। अततक्षत्। अररक्षत्। चङीत्येव। अहं पपच। परइत्येव। अचकमत। अनग्लोपइत्येव। अचकथत्॥

अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् ॥ ९५ ॥

स्मृ दृ त्वर प्रथ म्रद स्तॄ स्पश इत्येतेषामभ्यासस्यादित्ययमादेशो भवति चङ्परे णौ परतः। स्मृ। असस्मरत्। दृ। अददरत्। त्वर। अतत्वरत्। प्रथ। अपप्रथत्। म्रद। अमम्रदत्। स्तॄ। अतस्तरत्। स्पश। अपस्पशत्। सन्वद्भावादित्त्वं प्राप्तमनेन बाध्यते। तपरकरणसामर्थ्यादति कृते दीर्घो लघोरित्येतदपि न भवति। अददरत्॥

विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ ९६ ॥

वेष्टि चेष्टि इत्येतयोरभ्यासस्य विभाषा अदित्ययमादेशो भवति चङ्परे णौ परतः। अववेष्टत्। अविवेष्टत्। अचचेष्टत्। अचिचेष्टत्। अभ्यासह्रस्वत्वे कृते अत्वं पक्षे भवति॥

ई च गणः ॥ ९७ ॥

गणेरभ्यासस्य ईकारादेशो भवति चङ्परे णौ परतः। चकारादच्च। अजीगणत्। अजगणत्॥

इति वामनाचार्यविरचितायां काशिकायां वृत्तौ सप्तमस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः॥

समाप्तोध्यायश्च सप्तमः॥

॥ अथ अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

सर्वस्य द्वे ॥ १ ॥

सर्वस्येति च द्वे इति चैतदधिकृतं वेदितव्यम् । इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः प्राक् पदस्येत्यतः सर्वस्य द्वे भवत इत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । नित्यवीप्सयोरिति तत्र सर्वस्य स्थाने द्वे भवतः । के द्वे भवतः । ये शब्दतश्चार्थतश्चोभयथान्तरतमे, एकस्य पचतिशब्दस्य द्वौ पचतिशब्दौ भवतः । पचति २ । ग्रामो २ रमणीयः । यदा तु द्विः प्रयोगो द्विर्वचनं तदा स एव पचतिशब्दो द्विरावर्त्तते तस्य द्वे आवृत्ती भवतः । सर्वस्येति विस्पष्टार्थम् । अथ पदस्येत्येव कस्मान्नोच्यते । नैवं शक्यमिह हि न स्यात् प्रपचति प्रपचतीति । इह द्रोग्धा द्रोढा इति घत्वढत्वयोरसिद्धत्वादकृतयोरेव तयोर्द्विर्वचनं प्राप्नोति तत्र पश्चाद्विकल्पे सत्यनिष्टमपि स्यात् । द्रोग्धा द्रोढा । द्रोढा द्रोग्धेति । तस्माद्वक्तव्यमेतत् पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचनइति । सर्वस्येत्येतदेव वा कृतं सर्वकार्यप्रतिपत्त्यर्थं द्रष्टव्यम् ॥

तस्य परमाम्रेडितम् ॥ २ ॥

तस्य द्विरुक्तस्य यत्परं शब्दरूपं तदाम्रेडितसंज्ञं भवति । चौरचौर ३ । वृषलवृषल ३ । दस्योदस्यो ३ घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामि त्वा । आम्रेडितप्रदेशा आम्रेडितं भर्त्सने इत्येवमादयः ॥ ८।२।९५ इस से प्लुतः

अनुदात्तं च ॥ ३ ॥

अनुदात्तं च तद्भवति यदाम्रेडितसंज्ञम् । भुङ्क्ते २ । पशून् २ ॥

नित्यवीप्सयोः ॥ ४ ॥

नित्ये चार्थे वीप्सायां च यद्वर्त्तते तस्य द्वे भवतः । केषु नित्यता । तिङ्क्षु अव्यये कृत्सु च । कुत एतत् । आभीक्ष्ण्यमिह नित्यता । आभीक्ष्ण्यं च क्रियाधर्मः । यां क्रियां कर्ता प्राधान्येनानुपरमन्करोति तन्नित्यम् । पचति २ । जल्पति २ । भुक्त्वा २ व्रजति । भोजं २ व्रजति । लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति । क्त्वाणमुलोर्लोटश्च द्विर्वचनापेक्षायामेव पौनःपुन्यप्रकाशने शक्तिः । यङ् तु तन्निरपेक्षः प्रकाशयति । पुनः २ पचति पापच्यतइति । यदा तु तत्र द्विर्वचनं तदा क्रियासमभिहारे पौनःपुन्यं द्रष्टव्यं पापच्यतेपापच्यतइति । अथ केषु वीप्सा । सुप्सु वीप्सा, का पुनः सा । व्याप्तिविशेषविषया प्रयोक्तुरिच्छा वीप्सा । का पुनरसौ । नानावाचिनामधिकरणानां क्रियागुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुर्व्याप्तुमिच्छा वीप्सा । नानाभूतार्थवाचिनां शब्दानां यान्यधिकरणानि वाच्यानि तेषां क्रियागुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुमिच्छा वीप्सा । ग्रामो २ रमणीयः ।

जनपदो २ रमणीयः । पुरुषःपुरुषो निधनमुपैति । यत्तिङन्तं नित्यतया प्रकर्षेण च युक्तं ततः कृतद्विर्वचनात्प्रकर्षप्रत्यय इष्यते पचति २ तरामिति । इह तु आढ्यतरमाढ्यतरमानयेति प्रकर्षयुक्तस्य वीप्सायोग इष्यते ॥

परेर्वर्जने ॥ ५ ॥

परीत्येतस्य वर्जनेर्थे द्वे भवतः । परि २ त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः । परि २ सौवीरेभ्यः । परि २ सर्वसेनेभ्यः । वर्जनं परिहारः । वर्जन इति किम् । ओदनं परिषिञ्चति ॥ परेर्वर्जने ऽसमासे वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ परि २ त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः । परि त्रिगर्त्तेभ्यः । समासे तु तेनैवोक्तत्वाद्वर्जनस्य नैव भवति । परित्रिगर्त्तं वृष्टो देव इति ॥

प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ ६ ॥

प्र सम् उप उत् इत्येतेषां पादपूरणे द्वे भवतो द्विर्वचनेन चेत्पादः पूर्यते । प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे । संसमिद्युवसे वृषन् । उपोप मे परामृश । किं नोदुदुहर्षसे दातवाउ * । पादपूरणइति किम् । प्रदेवं देव्या धिया । सामर्थ्याच्छन्दस्येवैतद्विधानम् । भाषायामनर्थकं स्यात्प्रयोगाभावात् ॥

उपर्यध्यधसः सामीप्ये ॥ ७ ॥

उपरि अधि अधस् इत्येतेषां द्वे भवतः सामीप्ये विवक्षिते । सामीप्यं प्रत्यासत्तिः कालकृता देशकृता च । उपर्युपरि दुःखम् । उपर्युपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोधो नगरम् । सामीप्यइति किम् । उपरि चन्द्रमाः । इह कस्माच भवति । उपरि शिरसो घटं धारयति । औत्तराधर्यमेव विवक्षितं न सामीप्यमिति द्विर्वचनं न भवति ॥

वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ॥ ८ ॥

एकार्थः पदसमूहो वाक्यम् । वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे भवतः असूया संमति कोप कुत्सन भर्त्सनइत्येतेषु यदि तद्वाक्यं भवति । तत्र परगुणानामसहनमसूया । पूजा संमतिः । कोपः क्रोधः । निन्दनं कुत्सनम् । अपकारशब्दैर्भयोत्पादनं भर्त्सनम् । एते च प्रयोक्तृधर्मा नाभिधेयधर्माः । असूयायां तावत् । माणवक ३ माणवक अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम् । संमतौ । माणवक ३ माणवक अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि । कोपे । माणवक ३ माणवक अविनीतक ३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । कुत्सने । शक्तिके ३ शक्तिके यष्टिके ३ यष्टिके रिक्ता ते शक्तिः । भर्त्सने । चौरचौर ३ वृषलवृषल ३ घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामित्वा । असूयादिषु

* पादपूरणे इति भावलक्षणे सप्तमीति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

स्वरितमाम्रेडितेसूयासंमतिकोपकुत्सनेष्विति पूर्वपदस्य प्लुतः । भर्त्सने त्वाम्रेडितं भर्त्सने इत्याम्रेडितस्यैव प्लुतः । वाक्यादेरिति किम् । अन्तस्य मध्यस्य च मा भूत् । शोभनः खल्वसि माणवक । आमन्त्रितस्येति किम् । उदारो देवदत्तः । असूयादिष्विति किम् । देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम् ॥

एकं बहुव्रीहिवत् ॥ ९ ॥

एकमित्येतच्छब्दरूपं द्विरुक्तं बहुव्रीहिवद्भवति * । बहुव्रीहिवत्त्वे प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावौ । एकैकमक्षरं पठति । एकैकया हुत्या जुहोति । सर्वनामसंज्ञाप्रतिषेधस्वरसमासान्ताः समासाधिकारविहिते बहुव्रीहौ विज्ञायन्ते । तेनातिदेशिके बहुव्रीहौ न भवन्ति । एकैकस्मै । न बहुव्रीहाविति प्रतिषेधो न भवति । बहुव्रीहिरेव यो बहुव्रीहिरिति विज्ञानात् । नन । सुसु । नञ्सुभ्यामित्यन्तोदात्तत्वं न भवति । ऋक्ऋक् । पूःपूः । ऋक्पूरिति समासान्तो न भवति ॥

आबाधे च ॥ १० ॥

आबाधनमाबाधः । पीडाप्रयोक्तृधर्मः । तत्र वर्त्तमानस्य द्वे भवतः बहुव्रीहिवच्चास्य कार्यं भवति । गतगतः । नष्टनष्टः । पतितपतितः । गतगता । नष्टनष्टा । पतितपतिता । प्रियस्य चिरगमनादिना पीड्यमानः कश्चिदेवं प्रयुङ्क्ते प्रयोक्ता ॥

कर्म्मधारयवदुत्तरेषु ॥ ११ ॥

इत उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्म्मधारयवत्कार्यं भवतीत्येतद्वेदितव्यम् । कर्म्मधारयत्वे प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि । सुब्लोपः । पटुपटुः । मृदुमृदुः । पण्डितपण्डितः । पुंवद्भावः । पटुपट्वी । मृदुमृद्वी । कालककालिका । कोपधाया अपि हि कार्म्मधारयवद्भावात्पुंवत्कर्म्मधारयेति पुंवद्भावो भवति । अन्तोदात्तत्वम् । पटुपटुः । पटुपट्वी । समासान्तोदात्तत्वमनेनैव विधीयतइति परत्वादाम्रेडितानुदात्तत्वं बाध्यते । अधिकारेणैव सिद्धे यदुत्तरेष्विति वचनं तद्विस्पष्टार्थम् ॥

प्रकारे गुणवचनस्य ॥ १२ ॥

प्रकारो भेदः सादृश्यं च । तदिह सादृश्यं प्रकारो गृह्यते । प्रकारे वर्त्तमानस्य गुणवचनस्य द्वे भवतः । पटु २ । मृदु २ । पण्डित २ । अपरिपूर्णगुण इत्यर्थः । परिपूर्णगुणेन न्यूनगुणस्योपमाने सत्येवं प्रयुज्यते ॥ जातीयरोनेन द्विर्वचनेन बाधनं नेष्यते ॥ पटुजातीयः । मृदुजातीयः । इत्यपि हि भवति । तत्कथं वक्ष्यमाणमन्यतरस्यांग्रहणमुभयोः शेषो विज्ञायते । प्रकारइति किम् । पटुर्देवदत्तः । गुणवचनस्येति किम् । अग्निर्माणवकः । गौर्वाहीकः ।

* द्विर्वचनमत्र पूर्वसूत्रेणैवेतिपुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

यद्यप्यत्राग्निशब्दो गोशब्दश्च मुख्यार्थसंबन्धादवधृतभेदं तैक्ष्ण्यजाड्यादिकमर्थान्तरे गुणविशेषमेव प्रतिपादयितुं प्रवृत्तस्तथापि सर्वदा गुणवचनो न भवतीति न द्विरुच्यते ॥ आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ मूले २ स्थूलाः । अग्रे २ सूक्ष्माः । ज्येष्ठं २ प्रवेशय ॥ स्वार्थे अवधार्यमाणेनेकस्मिन्द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अस्मात्कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं २ देहि । स्वार्थएतद् द्विर्वचनं न वीप्सायाम् । अत्र हि द्वावेव माषौ दीयेते न सर्वे कार्षापणसंबन्धिनो माषाः । तेन वीप्सा न विद्यते । अवधार्यमाणइति किम् । अस्मात्कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि । द्वौ माषौ देहि । त्रीन्वा माषान्देहि । अनेकस्मिन्निति किम् । अस्मात्कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि ॥ चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ संभ्रमेण प्रवृत्तिश्चापलम् । अहिरहिः बुध्यस्व २ । नावश्यं द्वावेव शब्दौ प्रयोक्तव्यौ किं तर्हि यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थोवगम्यतेतावन्तः प्रयोक्तव्याः । अहिः ३ । बुध्यस्व ३ इति ॥ क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स भवान् लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति ॥ आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भुक्त्वाभुक्त्वा व्रजति । भोजंभोजं व्रजति । नित्यइत्येव सिद्धमिति तत्रोक्तम् ॥ डाचि द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पटपटा करोति । पटपटायते ॥ अव्यक्तानुकरणाड्डाजन्तस्य द्विर्वचनमिष्यते ॥ इह न भवति । द्वितीया करोति । तृतीया करोति । तदर्थं केचिड्डाचि बहुलमिति पठन्ति ॥ पूर्वप्रथमयोरर्थातिशयविवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पूर्वं २ पुष्प्यन्ति । प्रथमं २ पच्यन्ते । अतिशयिकोपि दृश्यते । पूर्वतरं पुष्प्यन्ति । प्रथमतरं पच्यन्तइति ॥ डतरडतमयोः समसंप्रधारणयोः स्त्रीनिगदे भावे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उभाविमावाढ्यौ । कतराकतरा अनयोराढ्यता । सर्वइमे आढ्याः । कतमाकतमा एषामाढ्यता । डतरडतमाभ्यामन्यत्रापि हि दृश्यते । उभाविमावाढ्यौ । कीदृशी २ । अनयोराढ्यता । तथा स्त्रीनिगदाद्भावादन्यत्रापि हि दृश्यते । उभाविमावाढ्यौ कतरःकतरोनयोर्विभव इति ॥ कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सामासवच्च बहुलम् । यदा न समासवत्प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य । अन्यमन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । अन्योन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । अन्योन्यस्य ब्राह्मणा भोजयन्ति । इतरेतरान् भोजयन्ति ॥ स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य चाम्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ अन्योन्यामिमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः । अन्योन्यं भोजयतः । इतरेतरां भोजयतः । इतरेतरं भोजयतः । अन्योन्यामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः । इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः । इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः ॥

अकृच्छ्रेप्रियसुखयोरन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥

प्रिय सुख इत्येतयोरन्यतरस्यां द्वे भवतः अकृच्छ्रे द्योत्ये । कृच्छ्रं दुःखं,

तदभावो ऽकृच्छ्रम् । प्रियप्रियेण ददाति । सुखसुखेन ददाति । प्रियेण ददाति । सुखेन ददाति । अखिद्यमानो ददातीत्यर्थः । अकृच्छ्र इति किम् । प्रियः पुत्रः । सुखो रथः ॥

यथास्वे यथायथम् ॥ १४ ॥

यो य आत्मा यद्यदात्मीयं तत्तद्यथास्वं तस्मिन् यथायथमिति निपात्यते । यथाशब्दस्य द्विर्वचनं नपुंसकलिङ्गता च निपात्यते । ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथं, यथास्वभावमित्यर्थः । सर्वेषां तु यथायथं यथात्मीयमित्यर्थः ॥

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्र-प्रयोगाभिव्यक्तिषु ॥ १५ ॥

द्वन्द्वमिति द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्याम्भावः अत्वं चोत्तरपदस्य निपात्यते रहस्य मर्यादावचन व्युत्क्रमण यज्ञपात्र प्रयोग अभिव्यक्ति एतेषु अर्थेषु । तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दवाच्यमितरे विषयभूताः । द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते । मर्यादावचने, मर्यादास्थित्यनतिक्रमः । आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति पौत्रेण तत्पुत्रेणापीति मर्यादार्थः । व्युत्क्रमणे, द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः । व्युत्क्रमणं भेदः । पृथगवस्थानम् । द्विवर्गसंबन्धेन पृथगवस्थिता द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ता इत्युच्यन्ते । यज्ञपात्रप्रयोगे । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः । अभिव्यक्तौ । द्वन्द्वं नारदपर्वतौ । द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ । द्वावप्यभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः । अन्यत्रापि द्वन्द्वमित्येतद्दृश्यते तदर्थं योगविभागः कर्त्तव्यः । द्वन्द्वं युद्धं वर्त्तते । द्वन्द्वानि सहते धीरः । चार्थे द्वन्द्व इति ॥

पदस्य ॥ १६ ॥

पदस्येत्ययमधिकारः प्रागपदान्ताधिकारात् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः पदस्येत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति संयोगान्तस्य लोपः । पचन् । यजन् । पदस्येति किम् । पचन्तौ । यजन्तौ । वक्ष्यमाणवाक्यापेक्षया पदस्येधिकृतस्य षष्ठ्यर्थव्यवस्था द्रष्टव्या । क्वचित्स्थानषष्ठी क्वचिदवयवषष्ठी ॥

पदात् ॥ १७ ॥

पदादित्ययमधिकारः प्राक्कुत्सने च सुप्यगोत्रादावित्येतस्माद्यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामः पदादित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । आमन्त्रितस्य । आमन्त्रितस्य पदात्परस्यानुदात्तादेशो भवतीति । पचति देवदत्त । पदादिति किम् । देवदत्त पचसि ॥

अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ १८ ॥

अनुदात्तमिति च सर्वमिति च अपादादाविति च एतत्त्रयमधिकृतं वेदितव्यमापादपरिसमाप्ते,रित उत्तरं यद्वक्ष्यामः अनुदात्तं सर्वमपादादावित्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यत्यामन्त्रितस्य चेति । पचसि देवदत्त । अपादादाविति किम् । यत्ते नियतं रजसं मृत्यो अनवधृष्यम् । बहुवचनस्य वस्नसौ । ग्रामो वः स्वं, जनपदो नः स्वम् । अपादादाविति किम् ।

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता ।
स एव नाथो भगवानस्माकं शत्रुमर्दनः ॥

पादग्रहणेनात्र ऋक्पादः श्लोकपादश्च गृह्यते । सर्वग्रहणं सर्वमनूद्यमानं विधीयमानं चानुदात्तं यथा स्यादिति । तेन युष्मदादेशानामपि वाक्यभेदेनानुदात्तत्वं विधीयते । युष्मदस्मदादेशाश्च सर्वस्य सुबन्तस्य पदस्य यथा स्युः । यत्रापि स्वादिषु पदसंज्ञं भवति । ग्रामो वां दीयते । जनपदो नौ दीयते ॥

आमन्त्रितस्य च ॥ १९ ॥

आमन्त्रितस्य पदस्य पदात्परस्यापादादौ वर्त्तमानस्य सर्वस्यानुदात्तो भवति । पचसि देवदत्त । पचसि यज्ञदत्त । आमन्त्रिताद्युदात्तत्वे प्राप्ते वचनम् ॥ समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ॥ * ॥ इह मा भूवन् । अयं दण्डो हरानेन ओदनं पच तव भविष्यति । ओदनं पच मम भविष्यति * । इदं च यथा स्यात् । इह देवदत्त माता ते कथयति । नद्यास्तिष्ठति कूले । शालीनां ते ओदनं दास्यामि इति । आमन्त्रितान्तं तिङन्तं युष्मदस्मदादेशाश्च यस्मात्पराणि न तेषां सामर्थ्यमिति तदाश्रया निघातयुष्मदस्मदादेशा न स्युः समर्थः पदविधिरिति वचनात् ॥

युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥ २० ॥

युष्मदस्मद् इत्येतयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्यथासंख्यं वान्नौ इत्येतावादेशौ भवतस्तौ चानुदात्तौ । पदस्य पदादनुदात्तं सर्वमपदादाविति सर्वमिह संबध्यते । ग्रामो वां स्वम् । जनपदो नौ स्वम् । ग्रामो वां दीयते । जनपदो नौ दीयते । ग्रामो वां पश्यति । जनपदो नौ पश्यति । एकवचनबहुवचनान्तयोरादेशान्तरविधानाद् द्विवचनान्तयोरेतावादेशौ विज्ञायेते । षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोरिति किम् । ग्रामे युवाभ्यां कृतम् । स्थग्रहणं श्रूयमाणविभक्त्यर्थम् । इह मा भूत् इति युष्मत्पुत्र इति ॥

बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१ ॥

बहुवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्यथासंख्यं वस्

* भवतीह विष्णुमित्रो देवदत्तागच्छेति पुस्तकान्तरे ऽधिकम् ।

नस् इत्येतावादेशौ भवतः । ग्रामो वः स्वम् । जनपदो नः स्वम् । ग्रामो वो दीयते । जनपदो नो दीयते । ग्रामो वः पश्यति । जनपदो नः पश्यति ॥

तेमयावेकवचनस्य ॥ २२ ॥

युष्मदस्मदोरेकवचनान्तयोः षष्ठीचतुर्थीस्थयोर्यथासंख्यं ते मे इत्येतावादेशौ भवतः । ग्रामस्ते स्वम् । ग्रामो मे स्वम् । ग्रामस्ते दीयते । ग्रामो मे दीयते । द्वितीयान्तस्यादेशान्तरविधानसामर्थ्यात्षष्ठीचतुर्थ्योरेवायं योगः ॥

त्वामौ द्वितीयायाः ॥ २३ ॥

एकवचनस्येति वर्त्तते । द्वितीयाया यदेकवचनं तदन्तयोर्युष्मदस्मदोर्यथासंख्यं त्वा मा इत्येतावादेशौ भवतः । ग्रामस्त्वा पश्यति । ग्रामो मा पश्यति ॥

न चवाहाहैवयुक्ते ॥ २४ ॥

च वा ह अह एव एभिर्योगे युष्मदस्मदोर्वाम्नावादयो न भवन्ति । पूर्वेण प्रकरणेन प्राप्ताः प्रतिषिध्यन्ते । ग्रामस्तव च स्वम् । ग्रामो मम च स्वम् । युवयोश्च स्वम् । आवयोश्च स्वम् । युष्माकं च स्वम् । अस्माकं च स्वम् । ग्रामस्तुभ्यं च दीयते । ग्रामो मह्यं च दीयते । युवाभ्यां च दीयते । आवाभ्यां च दीयते । युष्मभ्यं च दीयते । अस्मभ्यं च दीयते । ग्रामस्त्वां च पश्यति । ग्रामो मां च पश्यति । युवां च पश्यति । आवां च पश्यति । युष्मांश्च पश्यति । अस्मांश्च पश्यति । वा । ग्रामस्तव वा स्वम् । ग्रामो मम वा स्वम् । युवयोर्वा स्वम् । आवयोर्वा स्वम् । युष्माकं वा स्वम् । अस्माकं वा स्वम् । ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते । ग्रामो मह्यं वा दीयते । युवाभ्यां वा दीयते । आवाभ्यां वा दीयते । युष्मभ्यं वा दीयते । अस्मभ्यं वा दीयते । ग्रामस्त्वां वा पश्यति । ग्रामो वा मां पश्यति । युवां वा पश्यति । आवां वा पश्यति । युष्मान् वा पश्यति । अस्मान्वा पश्यति । ह । ग्रामस्तव ह स्वम् । ग्रामो मम ह स्वम् । युवयोर्ह स्वम् । आवयोर्ह स्वम् । युष्माकं ह स्वम् अस्माकं ह स्वम् । ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते ग्रामो मह्यं ह दीयते । युवाभ्यां ह दीयते । आवाभ्यां ह दीयते युष्मभ्यं ह दीयते । अस्मभ्यं ह दीयते । ग्रामस्त्वां ह पश्यति । ग्रामो मां ह पश्यति । युवां ह पश्यति । आवां ह पश्यति । युष्मान्ह पश्यति । अस्मान्ह पश्यति । अह । ग्रामस्तवाह स्वम् । ग्रामो ममाह स्वम् । युवयोरह स्वम् । आवयोरह स्वम् । युष्माकमह स्वम् । अस्माकमह स्वम् । ग्रामस्तुभ्यमह दीयते । ग्रामोमह्यमह दीयते । युवाभ्यामह दीयते । आवाभ्यामह दीयते । युष्मभ्यमह दीयते । अस्मभ्यमह दीयते । ग्रामस्त्वामह पश्यति । ग्रामो मामह पश्यति । युवामह पश्यति । आवामह पश्यति । युष्मानह पश्यति । अस्मानह पश्यति । एव । ग्रामस्तवैव स्वम् । ग्रामोममैव

स्वम् । युवयोरेव स्वम् । आवयोरेव स्वम् । युष्माकमेव स्वम् । अस्माकमेव स्वम् । ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते । ग्रामो मह्यमेव दीयते । युवाभ्यामेव दीयते । आवाभ्यामेव दीयते । युष्मभ्यमेव दीयते । अस्मभ्यमेव दीयते । ग्रामस्त्वामेव पश्यति । ग्रामो मामेव पश्यति । युवामेव पश्यति । आवामेव पश्यति । युष्मानेव पश्यति । अस्मानेव पश्यति । युक्तग्रहणं साक्षाद्योगप्रतिपत्त्यर्थम् । युक्तयुक्ते प्रतिषेधो न भवति । ग्रामश्च ते स्वम् । नगरं च मे स्वम् ॥

पश्यार्थैश्चानालोचने ॥ २५ ॥

पश्यार्था दर्शनार्थाः । दर्शनं ज्ञानम् । आलोचनं चक्षुर्विज्ञानम् । तैः पश्यार्थैरनालोचने वर्त्तमानैर्युक्ते युष्मदस्मदोर्वान्नावादयो न भवन्ति । ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः । ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः । ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः । ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः । ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः । ग्रामो मां समीक्ष्यागतः । अनालोचनइति किम् । ग्रामस्त्वा पश्यति । ग्रामो मा पश्यति ॥ पश्यार्थैर्युक्तयुक्तेपि च प्रतिषेध इष्यते ॥ तथा चैवोदाहृतम् ॥

सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ॥ २६ ॥

विद्यमानपूर्वात्प्रथमान्तात्पदादुत्तरयोर्युष्मदस्मदोर्विभाषा वान्नावादयो न भवन्ति । ग्रामे कम्बलस्ते स्वम् । ग्रामे कम्बलस्तव स्वम् । ग्रामे कम्बलो मे स्वम् । ग्रामे कम्बलो मम स्वम् । गामे कम्बलस्ते दीयते । ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते । ग्रामे कम्बलो मे दीयते । ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते । ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति । ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति । ग्रामे छात्रा मा पश्यन्ति । ग्रामे छात्रा मां पश्यन्ति । सपूर्वाया इति किम् । कम्बलस्ते स्वम् । कम्बलो मे स्वम् । प्रथमाया इति किम् । कम्बलो ग्रामे ते स्वम् । कम्बलो ग्रामे मे स्वम् ॥ युष्मदस्मदोर्विभाषा अनन्वादेशइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम् । अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम् । अपर आह ॥ सर्वएव वान्नावादयो ऽनन्वादेशे विभाषा वक्तव्याः ॥ * ॥ कम्बलस्ते स्वम् । कम्बलस्तव स्वम् । कम्बलो मे स्वम् । कम्बलो मम स्वम् । अनन्वादेशइति किम् । अथो कम्बलस्ते स्वम् । अथो कम्बलो मे स्वम् । न तर्हीदानीमिदं वक्तव्यं सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषेति । वक्तव्यं च । किं प्रयोजनम् । अन्वादेशार्थ,मन्वादेशे हि विभाषा यथा स्यात् । अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम् । अथो ग्रामे कम्बलस्तव स्वम् । अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम् । अथो ग्रामे कम्बलो मम स्वम् ॥

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः ॥ २७ ॥

तिङन्तात्पदात्पराणि गोत्रादीनि कुत्सने आभीक्ष्ण्ये चार्थे वर्त्तमानानि अनुदात्तानि भवन्ति । पचति गोत्रम् । जल्पति गोत्रम् । आभीक्ष्ण्ये । पचति-

पचति गोत्रम् । जल्पति २ गोत्रम् । ब्रुव । पचति ब्रुवम् । जल्पति ब्रुवम् । जल्पति २ ब्रुवम् । पचति २ ब्रुवम् । ब्रुवदति ब्रुवः कन्निपातनाद् वच्यादेशाभावश्च । गोत्र । ब्रुव । प्रवचन । प्रसहन । प्रकथन । प्रत्ययन । प्रचक्षण । प्राय । विचक्षण । अवचक्षण । स्वाध्याय । भूयिष्ठ । नाम वा * । नामेत्येतद्वा निहन्यते । पक्षे आद्युदात्तमेव भवति । पचति नाम । पठति नाम । तिङ इति किम् । कुत्सितं गोत्रम् । गोत्रादीनीति किम् । पचति पापम् । कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरिति किम् । खनति गोत्रं समेत्य कूपम् । कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरिति पाठविशेषणं द्रष्टव्यम् । तेनान्यत्रापि गोत्रादिग्रहणेन कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरेव कार्यं भवति ॥

तिङ्ङतिङः ॥ २८ ॥

तिङन्तं पदमतिङन्तात्पदात्परमनुदात्तं भवति । देवदत्तः पचति । यज्ञदत्तः पचति । तिङिति किम् । नीलमुत्पलम् । शुक्लं वस्त्रम् । अतिङ इति किम् । भवति पचति ॥

(न)लुट् ॥ २९ ॥

पूर्वेणातिप्रसक्ते प्रतिषेध आरभ्यते । लुडन्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । श्वः कर्ता । श्वः कर्तारौ । मासेन कर्तारः । तासेः परस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वे कृते सर्वतासिरेवोदात्तः । यत्र तु टिलोपस्तत्रोदात्तनिवृत्तिस्वरो भवति ॥

निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् ॥ ३० ॥

नेति वर्तते । यत् यदि हन्त कुवित् नेत् चेत् चण् कच्चित् यत्र इत्येतैर्निपातैर्युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । यत्करोति । यत्पचति । यदि करोति । यदि पचति । हन्त करोति । हन्त पचति । कुवित्करोति । कुवित्पचति । नेत् । नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम । चेत् । स चेद्भुङ्क्ते । स चेदधीते । चण् निपातोऽयं चेदर्थे वर्तते । अयं च मरिष्यति । अयं चेन्मरिष्यतीत्यर्थः । समुच्चयादिषु तु यच्छब्दस्तेन योगेन विधिरयं न भवति । कच्चित् । कच्चिद्भुङ्क्ते । कच्चिदधीते । यत्र । यत्र भुङ्क्ते । यत्राधीते । निपातैरिति किम् । यत्कूजति शकटम् । गच्छत्कूजति शकटमित्यर्थः । इणः शतरि रूपमेतत् । युक्तमिति किम् । यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ॥

नह प्रत्यारम्भे ॥ ३१ ॥

नह इत्येतेन युक्ते प्रत्यारम्भे तिङन्तं नानुदात्तं भवति । चोदितस्याधीरत्वे उपालिप्सया प्रतिषेधयुक्तः प्रत्यारम्भः क्रियते । नह भोक्ष्यसे । नहाध्येष्यसे । प्रत्यारम्भ इति किम् । नह वै तस्मिंश्च लोके दक्षिणामिच्छन्ति ॥

* प्रवमन प्रयजन ब्याय प्रपञ्च प्रचक्षण इत्येते पुस्तकान्तरे अत्र गणे ऽधिकाः ।

सत्यं प्रश्ने ॥ ३२ ॥

सत्यमित्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति प्रश्ने । सत्यं भोक्ष्यसे । सत्यमध्येष्यसे । प्रश्न इति किम् । सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ॥

अङ्गाप्रातिलोम्ये ॥ ३३ ॥

अङ्ग इत्यनेन युक्तं तिङन्तमप्रातिलोम्ये गम्यमाने नानुदात्तं भवति । अङ्ग कुरु । अङ्ग पच । अङ्ग पठ । अप्रातिलोम्य इति किम् । अङ्ग कूज वृषल इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । कूजनमनभिमतमसौ कुर्वन्प्रतिलोमो भवति ॥

हि च ॥ ३४ ॥

हि इत्यनेन युक्तं तिङन्तमप्रातिलोम्ये नानुदात्तं भवति । स हि कुरु । स हि पच । स हि पठ । अप्रातिलोम्य इत्येव । स हि कूज वृषल इदानीं ज्ञास्यति जाल्म ॥

छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ॥ ३५ ॥

हि चेति वर्त्तते । छन्दसि विषये हियुक्तं तिङन्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नानुदात्तं भवति एकमपि । कदाचिदेकं कदाचिदनेकमित्यर्थः । तत्रानेकं तावत् । अनृतं हि मत्तो वदति । पाप्मा एनं विपुनाति । तिङन्तद्वयमप्येतच्च निहन्यते । एकं खल्वपि । अग्निर्हि अग्रे उदजयत् । तिङन्तद्वयमपि हिशब्द-युक्तमेतत् । तत्रैकमुदजयदित्यादिरुदात्तम् । अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भम् । सा वा अपश्यज्जनितारमग्रे । अजनिष्टेत्याद्युदात्तमपश्यदित्यनुदात्तम् ॥

यावद्यथाभ्याम् ॥ ३६ ॥

यावद्यथा इत्येताभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । यावद्भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते । यावदधीते । यथाधीते । देवदत्तः पचति यावत् । देवदत्तः पचति यथा । परेणापि योगे भवति प्रतिषेधः ॥

पूजायां नानन्तरम् ॥ ३७ ॥

यावद्यथा इत्येताभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पूजायां विषये नानुदात्तं न भवति । किं तर्हि अनुदात्तमेव । यावत्पचति शोभनम् । यथा पचति शोभनम् । यावत् करोति चारु । पूजायामिति किम् । यावद्भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते । अनन्तरमिति किम् । यावद्देवदत्तः पचति शोभनम् । यथा देवदत्तः करोति चारु । पूर्वेणात्र निघातः प्रतिषिध्यते ॥

उपसर्गव्यपेतं च ॥ ३८ ॥

यावद्यथाभ्यां युक्तं उपसर्गव्यपेतं च पूजायां विषये नानुदात्तं न भवति किं तर्हि अनुदात्तमेव भवति । पूर्वमनन्तरमित्युक्तमुपसर्गव्यवधानार्थोयमारम्भः ।

यावत्प्रपचति शोभनम् । यथा प्रपचति शोभनम् । यावत्प्रकरोति चारु । यथा प्रकरोति चारु । अनन्तरमित्येव । यावद्देवदत्तः प्रपचति । यथा विष्णुमित्रः प्रकरोति चारु ॥

तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् ॥ ३९ ॥

तु पश्य पश्यत अह इत्येतैर्युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति पूजायां विषये । तु । माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम् । पश्य । पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम् । पश्यत । पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम् । अह । अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम् । पूजायामिति किम् । पश्य मृगो धावति । पूजायामिति वर्तमाने पुनः पूजायामित्युच्यते निघातप्रतिषेधार्थम् । तद्धि प्रतिषेधस्य प्रतिषेधेन संबद्धमिति ॥

अहो च ॥ ४० ॥

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति पूजायां विषये । अहो देवदत्तः पचति शोभनम् । अहो विष्णुमित्रः करोति चारु । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

शेषे विभाषा ॥ ४१ ॥

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं शेषे विभाषा नानुदात्तं भवति । कश्च शेषः यदन्यत्पूजायाः । कटमहो करिष्यसि । मम गेहमेष्यसि । असूयावचनमेतत् । पूजायामित्यस्य पूर्वत्र चानुकृष्टत्वादनधिकारे सिद्धे शेषवचनं विस्पष्टार्थम् ॥

पुरा च परीप्सायाम् ॥ ४२ ॥

पुरा इत्यनेन युक्तं तिङन्तं परीप्सायामर्थे विभाषा नानुदात्तं भवति । परीप्सा त्वरा । अधीष्व माणवक । पुरा विद्योतते विद्युत् । पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः । पुराशब्दोऽत्र भविष्यदासत्तिं द्योतयति । परीप्सायामिति किम् । नडेन स्म पुराधीयते । अत्र भूतकालविप्रकर्षं पुराशब्दो द्योतयति । ऊर्ण्या स्म पुराधीयते ॥

नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् ॥ ४३ ॥

ननु इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति अनुज्ञैषणायां विषये । अनुज्ञाया एषणा प्रार्थना, अनुज्ञैषणा । अनुज्ञाप्रार्थनेत्यर्थः । ननु करोमि भोः । अनुजानीष्व मां, गमनं प्रतीत्यर्थः । अनुज्ञैषणायामिति किम् । अकार्षीः कटं देवदत्त । ननु करोमि भोः । पृष्टप्रतिवचनमेतत्नानुज्ञैषणा ॥

किं क्रियाप्रश्नेनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ॥ ४४ ॥

किमित्येतत्क्रियाप्रश्ने यदा वर्तते तदानेन युक्तं तिङन्तमनुपसर्गमप्रतिषिद्धं नानुदात्तं भवति । किं देवदत्तः पचति आहोस्विद्भुङ्क्ते । किं देवदत्तः

शेते आहोस्विदधीते । अत्र केचिदाहुः । पूर्वं किंयुक्तमिति तच्च निहन्यते । उत्तरं तु न किंयुक्तमिति तन्निहन्यतएवेति । अपरे त्वाहुः । यद्यप्येकस्याख्यातस्य समीपे किंशब्दः श्रूयते तथापि सर्वस्य संशयविषयस्य तेन योग इति उभयत्र प्रतिषेधेन भवितव्यमिति । क्रियाग्रहणं किम् । प्रश्ने मा भूत् । किं देवदत्त ओदनंपचति आहोस्विच्छाकमिति । प्रश्नइति किम् । किमधीते देवदत्तः । क्षेपे किंशब्दोयं न प्रश्ने । अनुपसर्गमिति किम् । किं देवदत्तः प्रपचति आहो स्वित्प्रकरोति । अप्रतिषिद्धमिति किम् । किं देवदत्तो न पठति आहो स्विन्न करोति ॥

लोपे विभाषा ॥ ४५ ॥

किमो लोपे क्रियाप्रश्ने तिङन्तमनुपसर्गमप्रतिषिद्धं विभाषा नानुदात्तं भवति । क्व चास्य लोपः । यत्र गम्यते चार्थो न च प्रयुज्यते किं शब्दः । देवदत्तः पचति आहो स्वित्पठति । विनैव किमा प्रश्नोऽवगम्यते । प्राप्तविभाषेयं किमर्थेन योगात् । पूर्ववत् प्रत्युदाहरणानि ॥

एहिमन्ये प्रहासे लृट् ॥ ४६ ॥

एहिमन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं नानुदात्तं भवति प्रहासे । प्रकृष्टो हासः प्रहासः, क्रीडा । एहि मन्येओदनं भोक्ष्यसे नहि भोक्ष्यसे भुक्तः सोतिथिभिः । एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्तेन पिता । प्रहासइति किम् । एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति । सुष्ठु च मन्यसे । साधु च मन्यसे । गत्यर्थलोटा लृडित्येव सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । एहिमन्येयुक्तं प्रहासएव यथा स्यात्, अन्यत्र मा भूदिति । एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्यइति । एहिमन्यइत्युत्तमोपादानमतन्त्रम् । प्रहासएव हि मन्यतेरुत्तमो विहितस्ततोन्यत्र मध्यम एव भवति । तत्रानेन नियमेन निवृत्तिः क्रियते । एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्यइति ॥

जात्वपूर्वम् ॥ ४७ ॥

जातु इत्येतदविद्यमानपूर्वं तेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । जातु भोक्ष्यसे । जातु करिष्यामि । अपूर्वमिति किम् । कटं जातु करिष्यति ॥

किंवृत्तं च चिदुत्तरम् ॥ ४८ ॥

किमोवृत्तं किंवृत्तं, किंवृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयाड्डतरडतमौ च प्रत्ययौ, तत्किंवृत्तं चिदुत्तरमविद्यमानपूर्वं यत्तेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । कश्चिद्भुङ्क्ते । कश्चिद्भोजयति । कश्चिदधीते । केन चित्करोति । कस्मै चिद्ददाति । कतरश्चित्करोति । कतमश्चिद्भुङ्क्ते । चिदुत्तरमिति किम् । को भुङ्क्ते । अपूर्वमित्येव । देवदत्तः किं चित्पठति ॥

आहोउताहो चानन्तरम् ॥ ४९ ॥

निघातप्रतिषेधोनुवर्त्तते । अपूर्वमिति च । आहो उताहो इत्येताभ्यामपूर्वाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । आहो भुङ्क्ते । उताहो भुङ्क्ते । आहो पठति । उताहो पठति * । अनन्तरमिति किम् । शेषे विभाषां वक्ष्यति । अपूर्वमित्येव । देवदत्त आहो भुङ्क्ते । देवदत्त उताहो भुङ्क्ते ॥

शेषे विभाषा ॥ ५० ॥

आहो उताहो इत्येताभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं शेषे विभाषा भवति । कश्च शेषः यदन्यदनन्तरात् । आहो देवदत्तः पचति २ । उताहो देवदत्तः पचति २ । आहो देवदत्तः पठति २ । उताहो देवदत्तः पठति २ ॥

गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वान्यत् ॥ ५१ ॥

गतिना समानार्था गत्यर्थाः गत्यर्थानां लोट् गत्यर्थलोट् तेन गत्यर्थलोटा युक्तं लृडन्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति न चेत्कारकं सर्वान्यद्भवति । यत्रैव कारके कर्त्तरि कर्म्मणि वा लोट तत्रैव यदि लृडपि भवतीत्यर्थः । कर्तृकर्म्मणी एवात्र तिङन्तवाच्ये कारकग्रहणेन गृह्येते । न करणादि कारकान्तरम् । आगच्छ देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम् । आगच्छ देवदत्त ग्राममोदनं भोक्ष्यसे । उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः तेनैव भोक्ष्यन्ते । उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते । गत्यर्थग्रहणं किम् । पच देवदत्तौदनं भोक्ष्यसएनम् । लोटेति किम् । आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम् । लृडिति किम् । आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्यस्येनम् । न चेत्कारकं सर्वान्यदिति किम् । आगच्छ देवदत्त ग्रामं पिता ते ओदनं भोक्ष्यते । उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः सक्तवस्तेन पास्यन्ते । सर्वग्रहणं किम् । आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाहं च द्रक्ष्याव एनमित्यत्रापि निघातप्रतिषेधो यथा स्यात् । लृडन्तवाच्ये हि सर्वस्मिन्कारके ऽन्येनाभ्यस्य भवितव्यम् । इह तु यल्लोडन्तस्य कारकं तच्चान्यच्च लृडन्तेनोच्यते इति ॥

लोट् च ॥ ५२ ॥

लोडन्तं तिङन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं नानुदात्तं भवति, न चेत्कारकं सर्वान्यद्भवति । लोडन्तयोरेकं कारकं यदि भवतीत्यर्थः । आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य । आव्रज विष्णुमित्र ग्रामं शाधि । आगम्यतां देवदत्तेन ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन । गत्यर्थानामित्येव । पच देवदत्तौदनं भुङ्क्ष्वैनम् । लोटेत्येव । आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं पश्यैनम् । न चेत्कारकं सर्वान्यदित्येव । आगच्छ

---

* आहो अधीते । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

देवदत्त ग्रामं पश्यत्वेनं यज्ञदत्तः । सर्वग्रहणानुवृत्तेस्त्विह भवत्येव । आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाहं च पश्याव । पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम् ॥

विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥

सर्वं पूर्वमनुवर्त्तते । प्राप्तविभाषेयं, लोडन्तं सोपसर्गमुत्तमवर्जितं गत्यर्थलोटा युक्तं तिङन्तं विभाषितं नानुदात्तं भवति न चेत्कारकं सर्वान्यद्भवति । आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रविश । २ । आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रशाधि । २ । सोपसर्गमिति किम् । आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य । अनुत्तममिति किम् । आगच्छानि देवदत्त ग्रामं प्रविशानि ॥

हन्त च ॥ ५४ ॥

पूर्वं सर्वमनुवर्त्तते गत्यर्थलोटं वर्जयित्वा । हन्त इत्यनेन युक्तं लोडन्तं सोपसर्गमुत्तमवर्ज्जितं विभाषितं नानुदात्तं भवति । हन्त प्रविश २ । हन्त प्रशाधि २ । सोपसर्गमित्येव । हन्त कुरु । निपातैर्यद्यदिहन्तेति नित्यमत्र निघातप्रतिषेधो भवति । अनुत्तममित्येव । हन्त प्रभुनजावहै । हन्त प्रभुनजामहै ॥

आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके ॥ ५५ ॥

आम उत्तरमेकपदान्तरमामन्त्रितान्तमनन्तिके नानुदात्तं भवति । आम् पचसि देवदत्त३ । आम् भो देवदत्त३ । भो इत्यामन्त्रितान्तमपि नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनमिति नाविद्यमानवद्भवति । आम इति किम् । आकं पचसि देवदत्त३ । एकान्तरमिति किम् । आम् प्रपचसि देवदत्त३ । आमन्त्रितमिति किम् । आम्पचति देवदत्तः । अनन्तिकइति किम् । आम् देवदत्त ॥ आम एकान्तरमामन्त्रितं यत्तस्य एकश्रुतेरनुदात्तस्य च प्रतिषेध इष्यते ॥ तदुभयमनेन क्रियतइति के चिदाहुः । प्लुतोदात्तः पुनरसिद्धत्वाच प्रतिषिध्यते । अपरेषां दर्शनमनन्तिकइत्यनेन यच दूरं न संनिकृष्टं तत्परिगृह्यते । तेनास्मिन्नेकश्रुतेः प्राप्तिरेव नास्ति । प्लुतोदात्तोपि नोदाहर्त्तव्य इति ॥

यद्धितुपरं छन्दसि ॥ ५६ ॥

आमन्त्रितमित्येतदस्वरितत्वाचानुवर्त्तते । तिङिति वर्त्ततएव । यत्परं हिपरं तुपरं च तिङन्तं छन्दसि नानुदात्तं भवति । यत्परं तावत् । गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः । हिपरम् । इन्द्रवो वामुशन्ति हि । तुपरम् । आख्यास्यामि तु ते । निपातैर्यद्यदिहन्तेति हि चेति तुपश्यपश्यताहैरिति च निघातप्रतिषेधे सिद्धे वचनमिदं नियमार्थम्, एभिरेव परैर्योगे प्रतिषेधो भवति नान्यैरिति । इह न भवति । जाये स्वारोहावै हि । एहीत्यनेन गत्यर्थलोटा युक्तस्य रोहावेत्यस्य लोडन्तस्य निघातो भवत्येव ॥

चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः ॥ ५७ ॥

चन चिद् इव गोत्रादि तद्धित आम्रेडित इत्येतेषु परतः अगतेरुत्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति । चन । देवदत्तः पचति चन । चित् । देवदत्तः पचति चित् । इव । देवदत्तः पचतीव । गोत्रादि । देवदत्तः पचति गोत्रम् । देवदत्तः पचति ब्रुवम् । देवदत्तः प्रपचति प्रवचनम् । इहापि गोत्रादयः कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरेव गृह्यन्ते । तद्धित । देवदत्तः पचतिकल्पम् । देवदत्तः पचतिरूपम् । अनुदात्तस्तद्धित इहोदाहरणमन्यत्र तद्धितस्वरेण तिङ्स्वरो बाध्यते । पचतिदेश्यः । आम्रेडित । देवदत्तः पचति २ । अगतेरिति किम् । देवदत्तः प्रपचति चन । अत्रागतिग्रहणे सगतिरपि तिङित्यत्र च उपसर्गग्रहणं द्रष्टव्यम् । इह मा भूत् । शुक्लीकरोति चन । यत्काष्ठं शुक्लीकरोति । यत्काष्ठं कृष्णीकरोति ॥

चादिषु च ॥ ५८ ॥

चादिषु च परतः तिङन्तमगतेः परं नानुदात्तं भवति । चादयो नचवाहाहैवयुक्ते इत्यत्र ये निर्दिष्टाः तइह परिगृह्यन्ते । चशब्दे तावत् । देवदत्तः पचति च खादति च । वा । देवदत्तः पचति वा खादति वा । ह । देवदत्तः पचति ह खादति ह । अह । देवदत्तः पचत्यह खादत्यह । एव । देवदत्तः पचत्येव खादत्येव । अगतेरित्येव । देवदत्तः प्रपचति च प्रखादति च । प्रथमस्यात्र तिङन्तस्य चवायोगे प्रथमेति निघातः प्रतिषिद्धते, एवपरं तु निहन्यते ॥

चवायोगे प्रथमा ॥ ५९ ॥

अगतेरिति पूर्वसूत्रे चानुकृष्टमित्यत्र नानुवर्त्तते । च वा इत्येताभ्यां योगे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति । गद्दंभांश्च कालयति । वीणां च वादयति । गद्दंभान्वा कालयति । वीणां वा वादयति । योगग्रहणं पूर्वाभ्यामपि योगे निघातप्रतिषेधो यथा स्यादिति । प्रथमाग्रहणं द्वितीयादेस्तिङन्तस्य मा भूदिति । चवायोगो हि द्विसमुच्चये विकल्पे च सति भवति । स चानेकस्य धर्म इति ॥

हेति क्षियायाम् ॥ ६० ॥

ह इत्यनेन युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति क्षियायां गम्यमानायाम् । क्षिया धर्मव्यतिक्रमः आचारभेदः । स्वयं ह रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । स्वयं हौदनं भुङ्क्ते ३ उपाध्यायं सक्तून्पाययति । प्रथमस्य तिङन्तस्यात्र निघातः प्रतिषिध्यते । क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षमिति च प्लुतो भवति ॥

अहेति विनियोगे च ॥ ६१ ॥

अह इत्यनेन युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति विनियोगे गम्यमाने चशब्दात् क्षियायां च । नानाप्रयोजनो नियोगो विनियोगः । त्वमह ग्रामं गच्छ । त्वमहारण्यं गच्छ । क्षियायाम् । स्वयमह रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । स्वयमहौदनं भुङ्क्ते ३ उपाध्यायं सक्तून्पाययति । पूर्ववद्विघातप्रतिषेधः प्लुतश्च ॥

चाहलोप एवेत्यवधारणम् ॥ ६२ ॥

चलोपे अहलोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति । एवेत्येतच्चेदवधारणार्थं प्रयुज्यते । क्व चास्य लोपो यत्र गम्यते चार्थो न च प्रयुज्यते तत्र लोपः । तत्र चशब्दः समुच्चयार्थः अहशब्दः केवलार्थ इति समानकर्तृके चलोपः नानाकर्तृके अहलोपः । चलोपे । देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु देवदत्त एवारण्यं गच्छतु । ग्रामं चारण्यं च गच्छत्वित्यर्थः । अहलोपे । देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु । ग्रामं केवलमरण्यं केवलमित्यर्थः । अवधारणमिति किम् । देवदत्तः क्वेव भोक्ष्यते । देवदत्तः क्वेव शयिष्यते । अनवक्लृप्तावयमेवशब्दः । न क्व चिद्भोक्ष्यत इत्यर्थः । एवे चानियोग इति पररूपम् ॥

चादिलोपे विभाषा ॥ ६३ ॥

चादयो नचवाहाहैवयुक्त इति सूत्रनिर्दिष्टा गृह्यन्ते तेषां लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति विभाषा । चलोपे । शुक्ला व्रीहयो भवन्ति २ । श्वेता गा आज्याय दुहन्ति २ । भवन्तीत्येतद्विकल्पेन न निहन्यते । वालोपे । व्रीहिभिर्यजेत २ । यवैर्यजेत । एवं शेषेष्वपि यथादर्शनमुदाहार्यम् ॥

वैवावेति च च्छन्दसि ॥ ६४ ॥

वै वाव इत्येताभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विभाषा नानुदात्ता भवति छन्दसि विषये । अहर्वै देवानामासीत् २ । रात्रीरसुराणामासीत् । बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत् २ । शण्डामर्कावसुराणाम् । वाव । अयं वाव हस्त आसीत् २ । नेतर आसीत् ॥

एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ ६५ ॥

एक अन्य इत्येताभ्यां समर्थाभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विभाषा नानुदात्ता भवति छन्दसि विषये । प्रजामेका जिन्वति २ । ऊर्जमेका रक्षति २ । जिन्वतीत्येतत्पदं न निहन्यते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति २ । अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति । अत्तीत्येतत्पदं न निहन्यते । समर्थाभ्यामिति किम् । एको

देवानुपातिष्ठत् । एक इति संख्यापदमेतद् अन्यार्थे न वर्त्तते । एकशब्दस्य व्यवस्थार्थं च समर्थग्रहणं व्यभिचारित्वात्तस्य ॥

यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ ६६ ॥

प्रथमा छन्दसीति निवृत्तं, निघातप्रतिषेध इत्येव । यदो वृत्तं यद्वृत्तं, यत्र पदे यद्वर्त्तते तत्सर्वं यद्वृत्तम् । इह वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात् । डतरडतमौ च प्रत्ययौ इत्येतन्नाश्रीयते । तस्माद्यद्वृत्तादुत्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति नित्यम् । यो भुङ्क्ते । यं भोजयति । येन भुङ्क्ते । यस्मै ददाति । यत्कामास्ते जुहुमः । यद्यङ् वायुर्वाति । यद्वायुः पवते ॥ पञ्चमीनिर्देशेप्यत्र व्यवहिते कार्यमिष्यते ॥ यथाकाम्ये वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ यत्र क्व चन यजन्ते * ॥

पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ॥ ६७ ॥

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्य उत्तरपदं पूजितमनुदात्तं भवति । काष्ठ । काष्ठाध्यापकः । काष्ठाभिरूपकः । दारुण । दारुणाध्यापकः । दारुणाभिरूपकः । अमातापुत्र । अमातापुत्राध्यापकः । अयुत । अयुताभिरूपकः । अयुताध्यापकः । अद्भुत । अद्भुताध्यापकाः । अनुक्त । अनुक्ताध्यापकः । भृश । भृशाध्यापकः । घोर । घोराध्यापकः । परम । परमाध्यापकः । सु । स्वध्यापकः । अति । अत्यध्यापकः† ॥ मलोपश्च ॥ * ॥ इति वार्त्तिककारमतञ्च ॥ मयूरव्यंसकादित्वात्समासः । समासे चैतदनुदात्तत्वम् ॥ समासान्तोदात्तत्वापवाद इष्यते ॥ दारुणमध्यापक इत्येवमादिषु न भवति । मलोपश्चेत्यनेनाप्ययमेव विषय आख्यायते । यत्र विभक्तेरभावान्मकारो न श्रूयते तत्रानुदात्तत्वमिति । असमासे हि मलोपो नैवेष्यते । दारुणमधीते दारुणमध्यापक इति । पूजनादित्येव पूजितपरिग्रहे सिद्धे पूजितग्रहणमनन्तरपूजितप्रतिपत्त्यर्थम् । एतदेव ज्ञापकमिह प्रकरणे पञ्चमीनिर्देशेपि नानान्तर्यमाश्रीयते इति । तथा च यद्वृत्तान्नित्यमित्यत्रोदाहृतम् । अनुदात्तमिति वर्त्तमाने पुनरनुदात्तग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थम् ॥

सगतिरपि तिङ् ॥ ६८ ॥

सगतिरगतिरपि पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितं तिङन्तमनुदात्तं भवति । यत्काष्ठं पचति । यत्काष्ठं प्रपचति । यद्दारुणं पचति । यद्दारुणं प्रपचति । तङ्गतिङ इति निघातस्य निपातैर्यद्यदिहन्तेति प्रतिषेधे प्राप्ते पुनर्विधानम् । सगतिग्रहणाच्च गतिरपि निहन्यते ॥ गतिग्रहणे चात्र उपसर्गग्रहणमिष्यते ॥ इह न भवति । यत्काष्ठं शुक्लीकरोति । यत्काष्ठं कृष्णीकरोति ॥

---

* एकस्मिन्पुस्तके यथाकाम्ये इत्यारभ्य यजन्ते इत्यन्तं नास्ति ।

† अनुज्ञात । अनुज्ञाताध्यापकः । कल्याण । कल्याणाध्यापकः । वेश । वेशाध्यापकः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ॥ ६९ ॥

पदादिति निवृत्तम् । सगतिरपि तिङिति वर्त्तते । कुत्सने च सुबन्ते गोत्रादिवर्जिते परतः सगतिरपि तिङ् अगतिरप्यनुदात्तो भवति । पचति पूति । प्रपचति पूति । पचति मिथ्या । प्रपचति मिथ्या । कुत्सनइति किम् । पचति शोभनम् । सुपीति किम् । पचति क्लिश्नाति । अगोत्रादाविति किम् । पचति गोत्रम् । पचति ब्रुवम् । पचति प्रवचनम् ॥ क्रियाकुत्सनइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कर्त्तुः कुत्सने मा भूत् । पचति पूतिर्देवदत्तः । प्रपचति पूतिः ॥ पूतिश्च चानुबन्धो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तेनायं चकारानुबन्धकत्वादन्तोदात्तो भवति ॥ विभाषितं चापि बह्वर्थमनुदात्तं भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पचन्ति पूति २ । प्रपचन्ति पूति २ ।

सुपि कुत्सने क्रियाया मलोप इष्टोऽतिङीति चोक्तार्थे ।
पूतिश्च चानुबन्धो विभाषितं चापि बह्वर्थम् ॥

गतिर्गतौ ॥ ७० ॥

गतिर्गतौ परतोऽनुदात्तो भवति । अभ्युद्धरति । समुदानयति । अभिसंपर्याहरति । गतिरिति किम् । देवदत्तः प्रपचति । गताविति किम् । आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ॥ याहीत्येतत्प्रति क्रियायोगादाङित्येष गतिः । तस्य गतावित्येतस्मिन्नसति गतिरित्यनाश्रितपरनिमित्तकमनुदात्तत्वं स्यात् ॥

तिङि चोदात्तवति ॥ ७१ ॥

गतिरिति वर्त्तते । तिङन्ते ऽनुदात्तवति परतो गतिरनुदात्तो भवति । यत्प्रपचति । यत्प्रकरोति । तिङ्ग्रहणमुदात्तवतः परिमाणार्थम् । अन्यथा हि यं प्रति गतिस्तत्रानुदात्तो भवतीति धातावेवोदात्तवति स्यात् । प्रत्यये न स्यात् । यत्प्रकरोतीति । यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तेषां तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवत इति तिङन्ते धातुमेव प्रति गतिसंज्ञा । आमन्ते तर्हि न प्राप्नोति । प्रपचतितराम् । प्रपचतितमामिति । अत्र केचिदामन्तेन गतेः समासं कुर्वन्ति । तेषामव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे सत्यक्रियमाणेपि तिङ्ग्रहणे परमनुदात्तवद्भवतीति गतिनिघातो नैव सिद्ध्यति । अथ तरबन्तस्य गतिसमास एवमपि सतिशिष्टत्वादाम एव स्वरे सति गतेरनुदात्तं पदमेकवर्जमित्येवानुदात्तत्वं सिद्धम् । येषां गतिकारकोपपदानां कृद्भिः समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेरित्यनेन वचनेन कृदन्तेनैव प्राक्सुबुत्पत्तेः समासो भवति नान्येनेति दर्शनम्, तेषामेवंविधे विषये समासेन नैव भवितव्यमिति । पृथक् स्वरप्रवृत्तौ सत्यामनेन निघातेन प्रयोजनमस्ति । तदर्थं यत्नः कर्त्तव्यः । उदात्तवतीति किम् । प्रपचति । प्रकरोति ॥

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥ ७२ ॥

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद्भवति, तस्मिन्सति यत्कार्यं तच्च भवति। असति यत्तद्भवति। कानि पुनरविद्यमानवत्त्वे प्रयोजनानि। आमन्त्रिततिङ्निघातयुष्मदस्मदादेशाभावाः। देवदत्त यज्ञदत्तेत्यत्रामन्त्रितस्य पदात्परस्येति निघातो न भवति। षाष्ठिकामन्त्रिताद्युदात्तत्वं भवति। देवदत्त पचसीत्यत्र तिङ्ङतिङ इति निघातो न भवति। देवदत्त तव ग्रामः स्वम्, देवदत्त मम ग्रामः स्वमित्येवमादिषु युष्मदस्मदादेशा न भवन्ति। पूजायामनन्तरप्रतिषेधः प्रयोजनम्। यावद्देवदत्त पचसीत्यत्रापि पूजायां नानन्तरमित्येव प्रतिषेधो भवति। जात्वपूर्वमित्येतद् देवदत्त जातु पचसीत्यत्रापि भवति। आहो उताहो चानन्तरमिति आहो देवदत्त पचसि उताहो देवदत्त पचसीत्यत्रापि भवति। आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिकइति आम् भो पचसि देवदत्त इत्यत्रापि भवति। आमन्त्रितमिति किम्। देवदत्तः पचति। पूर्वमिति किम्। देवदत्त इत्येतस्यामन्त्रिताद्युदात्तत्वे कर्तव्ये नाविद्यमानवद्भवति। पूर्वत्वं च परापेक्षं भवतीति परस्यैव कार्ये स्वनिमित्ते ऽन्यनिमित्ते वा तदविद्यमानवद्भवति, न तु स्वकार्ये। देवदत्त पचसीत्यत्रापि ह्यामन्त्रिताद्युदात्तत्वं भवत्येव। इह इमं मे गङ्गे यमुने इति गङ्गे शब्दः पूर्वमामन्त्रितं ततः परस्य यमुनेशब्दस्यानुदात्तत्वे कर्तव्ये स्वयमविद्यमानवत्त्वान्निमित्तं न भवति। मेशब्दस्य निमित्तभावं न प्रतिबध्नाति॥

नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्॥ ७३॥

अविद्यमानवत्त्वस्य प्रतिषेधः। आमन्त्रितान्ते समानाधिकरणे परतः पूर्वमामन्त्रितान्तं सामान्यवचनं नाविद्यमानवद्भवति। किं तर्हि विद्यमानवदेव। अग्ने गृहपते। माणवक जटिलकाध्यापक। पूर्वस्य विद्यमानवत्त्वात्परमनुदात्तमेव भवति। आमन्त्रितमिति किम्। देवदत्त पचसि। समानाधिकरणइति किम्। देवदत्त पण्डित यज्ञदत्त। अत्र यज्ञदत्त विशेषणं पण्डित शब्दः। न पूर्वेण समानाधिकरणः। सामान्यवचनमिति किम्। पर्यायेषु मा भूत्। अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये। पर्यायशब्दा एते। एवं ह्युक्तमेतानि ह्यघ्न्ये नामानीति॥

विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम्॥ ७४॥

पूर्वेणाविद्यमानवत्त्वे प्रतिषिद्धे विकल्प उच्यते। विशेषवचने समानाधिकरणे आमन्त्रितान्ते परतः पूर्वमामन्त्रितं बहुवचनान्तं विभाषितमविद्यमानवद्भवति। देवाः शरण्याः २। ब्राह्मणा वैयाकरणाः २। सामान्यवचनाधिकारादेव विशेषवचनइति सिद्धे विशेषवचनग्रहणं विस्पष्टार्थम्। बहुवचनमिति किम्। माणवक जटिलक। नित्यमेतद्विद्यमानवदेव॥

इति श्रीकाशिकायां वृत्तावष्टमस्याध्यायस्य प्रथमः पादः॥

॥ अथ अष्टमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

पूर्वत्रासिद्धम् ॥ १ ॥

पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकार आ अध्यायपरिसमाप्तेः । यदित ऊर्द्धमनुक्रमिष्यामः पूर्वत्रासिद्धमित्येवं तद्वेदितव्यम् । तत्र येयं सपादसप्ताध्यायनुक्रान्ता एतस्यामयं पादोनो ऽध्यायो ऽसिद्धो भवति । इत उत्तरं चोत्तरोत्तरो योगः पूर्वत्रपूर्वत्रासिद्धो भवति । असिद्धवद्भवति * । सिद्धकार्यं न करोतीत्यर्थः । तदेतदसिद्धत्ववचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थं उत्सर्गलक्षणभावार्थं च । अस्माउद्धर । द्वावत्र । द्वावानय । असावादित्यः । इत्यत्र व्यलोपस्यासिद्धत्वाद् आद्गुण इत्यकः सवर्णे दीर्घ इति च न भवति । अमुष्मै । अमुष्मात् । अमुष्मिन् । इति उत्वस्यासिद्धत्वात् स्मायादयो भवन्ति ।

शुष्किका शुष्कजङ्घा च क्षामिमानौजढत्तथा ।
मतोर्वत्वे झलां जश्त्वं गुडलिण्मान्निदर्शनम् ॥

शुष्किकेत्यत्र शुषः क इत्यस्यासिद्धत्वाद् उदीचामातः स्थाने यकपूर्वाया इत्येतन्न भवति । शुष्कजङ्घा इति न कोपधाया इति पुंवद्भावप्रतिषेधो न भवति । क्षामिमानिति क्षामस्यापत्यं क्षामिः, क्षामो वा अस्यास्तीति क्षामी । क्षामिः क्षामी वा यस्यास्तीति क्षामिमान् । क्षायो म इत्यस्यासिद्धत्वान्मादुपधायाश्चेति वत्वं न भवति । औजढदिति वहेर्निष्ठायामूढस्तमाख्यदिति णिच् तदन्ताल्लुङ् । चङीति द्विर्वचने कर्त्तव्ये ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपानामसिद्धत्वाण्णौ च यष्टिलोपस्तस्य स्थानिवद्भावाद् ऊतइत्येतद् द्विरुच्यते । अनग्लोपइति प्रतिषेधात्सन्वदित्त्वं नास्ति । तेन औजढदिति भवति । औजिढदित्येतत्तु क्तिचन्तस्य ऊढिशब्दस्य भवति । गुडलिण्मानिति गुडलिहोस्य सन्ति इति मतुप् तत्र ढत्वजश्त्वयोरसिद्धत्वाद् झय इति वत्वं न भवति । येत्र षष्ठीनिर्द्देशाः सप्तमीनिर्द्देशाः पञ्चमीनिर्द्देशाश्च तेषां षष्ठी स्थानेयोगा तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तस्मादित्युत्तरस्येति च कर्त्तव्ये नासिद्धत्वं भवति । कार्यकालं हि संज्ञा परिभाषमिति पूर्वत्वमासां परिभाषाणां नास्तीति । विप्रतिषेधे परमित्येषा तु परिभाषा येन पूर्वेण लक्षणेन सह स्पर्द्धते परं लक्षणं तत्प्रति तस्यासिद्धत्वाच्च प्रवर्त्तते । तथा च सति विस्फोर्यमवगोर्यमिति गुणः परेण हलिचेति दीर्घत्वेन न बाध्यते । अपवादस्य तु परस्यापि उत्सर्गे कर्त्तव्ये वचनप्रामाण्यादसिद्धत्वं न भवति । तेन दोग्धा दोग्धुमित्यत्र घत्वस्यासिद्धत्वाद् होढ इति न भवति ॥

---

* असिद्धवद्भवतीति पुस्तकान्तरे नास्ति ।

नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥ २ ॥

नलोपः पूर्वत्रासिद्धो भवति सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ तुग्विधौ च कृति । विधिशब्दोऽयं प्रत्येकमभिसंबध्यमानः स्वरसंज्ञातुकां विधेयत्वात्तैः कर्मषष्ठीयुक्तैर्भावसाधनो ऽभिसंबध्यते । सुपा तु संबन्धसामान्यवचनषष्ठ्यन्तेन कर्मसाधनः । तेन सुपः स्थाने यो विधिः सुपि च परभूते सर्वासौ सुब्विधिरिति सर्वत्रासिद्धत्वं भवति । सुब्विधौ तावत् । राजभिः, तक्षभिरित्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वादतोभिस ऐसिति न भवति । राजभ्याम्, तक्षभ्याम्, राजसु, तक्षस्विति, सुपि चेति बहुवचने झल्येदिति दीर्घत्वमेत्वं च न भवति । स्वरविधौ । राजवतीत्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वादन्तोऽवत्या इति न भवति । पञ्चार्मं, दशार्ममिति । अत्र नलोपस्यासिद्धत्वाद् अर्मे चावर्णं द्व्यज्त्र्यजिति पूर्वपदस्याद्युदात्तत्वं न भवति । पञ्चबीजीत्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वादिगन्ते द्विगाविति पूर्वपदप्रकृतिस्वरो न भवति । संज्ञाविधौ । पञ्च ब्राह्मण्यो दश ब्राह्मण्य इति नलोपस्यासिद्धत्वाद् ष्णान्ताषडिति षट्संज्ञा भवति । ततश्च न षट्स्वस्रादिभ्य इति टापः प्रतिषेधो भवति । तदेतत्कथं प्रयोजनं भवति । यदि प्रतिकार्यं संज्ञाप्रवृत्तिरित्येतद्दर्शनम् । या हि जश्शसोर्लुगर्थो षट्संज्ञा प्रवृत्ता तया स्त्रीप्रत्ययप्रतिषेधो न क्रियतइति सा पुनः प्रवर्त्तयितव्येति । तुग्विधौ । वृत्रहभ्यां, वृत्रहभिरिति नलोपस्यासिद्धत्वाद् ह्रस्वस्य पिति कृति तुगिति तुग्न भवति । अत्र केचित्संनिपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति तुकं प्रति नलोपस्यानिमित्तत्वाद्बहिरङ्गलक्षणेन वा ऽसिद्धत्वात्तुग्विधिग्रहणमनर्थकमिति प्रतिपन्नाः, तत्तु क्रियतेपरिभाषाद्वयस्यानित्यत्वं ज्ञापयितुम् । कृतीति किम् । वृत्रहच्छत्रम् । वृत्रहच्छाया । छे चेति तुग्भवति । अत्र सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । एतेष्वेव नलोपो ऽसिद्धो भवति नान्यत्र । तेन राजीयति राजायते राजाश्व इति ईत्वं दीर्घत्वमेकादेशश्च सिद्धो भवति ॥

न मु ने ॥ ३ ॥

मुभावो नाभावे कर्त्तव्ये नासिद्धो भवति । किं तर्हि सिद्ध एव । अमुना । मुभावस्यासिद्धत्वात् घिलक्षणो नाभावो न स्यात् । कृते तु नाभावे मुभावस्यासिद्धत्वात्सुपि चेति दीर्घत्वं यत्प्राप्नोति तत्सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति न भवति । अथ वा योगद्वयमिदमुभयार्थं तन्त्रेणोच्चारितम् । अथ वा ने परतो यत्प्राप्नोति तस्मिन्कर्त्तव्ये मुभावो नासिद्ध इत्येष एवात्र सूत्रार्थः । ने तु कर्त्तव्ये मुभावस्य यत्सिद्धत्वं तदर्थतो गृहीतम् । तेनात्र मुभावस्य सिद्धत्वान्नाभावश्च भवति । दीर्घत्वं च भवति ॥ एकादेशस्वरोन्तरङ्गः सिद्धो वक्तव्यः ॥ * ॥ किं प्रयोजनम् । अयायावेकादेशशतृस्वरैकानुदा-

त्तसर्वानुदात्तार्थम् । वृक्षइदं, प्लक्षइदम् । अत्र प्रातिपदिकान्तसप्तम्येकवचनयोरुदात्तानुदात्तयोरेकादेशः स एकादेश उदात्तेनोदात्त इत्युदात्तः तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम् । आन्तर्यतः अयादेश उदात्तो यथा स्यात् । आय् । कुमार्या इदम् । कथमिदमुदाहरणम् । यदि उदात्तयणो हल्पूर्वादित्युदात्तत्वे कृते विभक्तेराटश्चैकादेशस्तदा भवतीदमुदाहरणम् । अथ कृते एकादेशे उदात्तयणो हल्पूर्वादिति स्वरस्तदा नैतदस्य प्रयोजनं भवति । आव् । वृक्षाविदं, प्लक्षाविदम् । एकादेशस्वरः । गाङ्गे ऽनूप इति गाङ्गे शब्दे एकार एकादेश उदात्तेनोदात्त इत्युदात्तः तस्य सिद्धत्वाद् यः पुनरेङः पदान्तादतीति एकादेशः स एकादेश उदात्तेनोदात्त इति, स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादाविति, एतद्भवति । शतृस्वरः । तुदती । तुदते । अदुपदेशादिति लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते एकादेशः तदुदात्तस्य सिद्धत्वात् शतुरनुमोनद्यजादी अन्तोदात्तादिति एष स्वरो भवति । अनुम इति प्रतिषेधो ज्ञापकः । एकादेशस्वरः शतृस्वरे सिद्ध इति । नहि सनुंकं शत्रन्तं किं चिदेकादेशस्वरमन्तरेणान्तोदात्तमस्ति । एकाननुदात्तः । तुदन्ति । लिखन्ति । एकादेशस्वरस्य सिद्धत्वाद् अनुदात्तं पदमेकवर्जमिति वर्ज्यमानता भवति । सर्वानुदात्तः । ब्राह्मणास्तुदन्ति । ब्राह्मणा लिखन्ति । एकादेशस्वरस्य सिद्धत्वाद् कृते तस्मिंस्तिङ्ङतिङ इति निघातो भवति । अन्तरङ्ग इति वचनाद्बहिरङ्गस्यासिद्धत्वमेव । पचतीति । प्रपचतीति ॥ संयोगान्तस्य लोपो रोरुत्वे सिद्धो वक्तव्यः ॥ * ॥ किं प्रयोजनम् । हरिवो मेदिनं त्वा । हरिव इति मतुबन्तमेतत् । तत्र छन्दसीर इति वत्वे संयोगान्तस्य लोपे च कृते मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसीति रुत्वम् । तस्य संयोगान्तस्य लोपस्यासिद्धत्वाद्धशिचेत्युत्वं न प्राप्नोति ॥ सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥ * ॥ अलावीत् । अपावीत् । इट ईटीति सिज्लोपस्य सिद्धत्वात् सवर्णदीर्घत्वं भवति ॥ निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥ * ॥ वृक्णः । वृक्णवान् । निष्ठादेशस्य सिद्धत्वाद् झलीति षत्वं न भवति । कुत्वं प्रत्ययसिद्ध एवेति तद्भवति । स्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु क्षीबशब्द उदाह्रियते । तत्र च निपातनमनेकधा समाश्रीयते । यदा क्षीबेर्निष्ठायामिटि कृते ईत्शब्दलोपो निपात्यते । तदा क्षीब इति संज्ञायामीत्शब्दलोपस्यासिद्धत्वान्निष्ठा च द्व्यजनादित्येष स्वरो न प्राप्नोति । क्षीबेन तरति क्षीबिक इति द्व्यज्लक्षणष्ठन् प्राप्नोति । यदा तु लकारलोपो निपात्यते तदा तस्यासिद्धत्वादिडागमः प्राप्नोति ॥ प्लुतविकारस्तुग्विधौ छे सिद्धो वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्ना३इच्छत्रम् । पटा३उच्छत्रम् । प्लुतविकारस्यासिद्धत्वाच्छे चेति ह्रस्वलक्षणस्तुग्नित्यं न प्राप्नोति ॥ श्चुत्वं धुटि सिद्धं वक्तव्यम् ॥ * ॥ श्च्युतिर् क्षरणे इत्ययं धातुः

सकारादिः पठ्यते तस्य श्चुत्वस्यासिद्धत्वाद् अटश्च्योतति रटश्च्योतति इति ड्वः सि धुट् इति प्राप्नोति । अटतीत्यड् । रटतीति रड् । क्विबन्तोयम् । किमर्थं पुनः सकारादिः पठ्यते । इह मधु श्च्योततीति मधुश्च्युत् क्विबन्तः । मधुश्च्युतमाचष्टे इति णिच् । मधुश्च्ययति । मधुश्च्ययतेः पुनः क्विपि कृते संयोगादित्वात्सलोपः संयोगान्तत्वाद् यलोपः चकारस्य कुत्वं मधुगिति सिद्धम् । शकारादौ पुनरेतस्मिन्संयोगान्तलोपेन यकारचकारयोर्लुप्तयोः शकारस्य षत्वे सति मधुडिति स्यात् ॥ अभ्यासजश्त्वचर्त्वे एत्वतुकोः सिद्धे वक्तव्ये ॥ * ॥ बभणतुः । बभणुः । अभ्यासजश्त्वस्यासिद्धत्वादनादेशादेरित्येत्वं प्राप्नोति । छिदेः, चिच्छित्सति, उच्छेः, उचिच्छिषतीति अभ्यासादेशस्यासिद्धत्वात् छे चेति तुक् प्राप्नोति । द्विर्वचने परसवर्णत्वं सिद्धं वक्तव्यम् ॥ * ॥ सय्यन्ता, सव्वत्सरः यल्ल्लोकम्, तल्ल्लोकमिति परसवर्णस्यासिद्धत्वाद्धर इति द्विर्वचनं न स्यात् ॥ पदाधिकारश्चेल्लत्वढत्वघत्वनत्वरुत्वषत्वणत्वानुनासिकछत्वानि सिद्धानिवक्तव्यानि ॥ * ॥ लत्वम् । गलो गलः । गरो गरः । घत्वं, द्रोग्धा २ । ढत्वं, द्रोढा २ । नत्वं, नुन्नो नुत्तः । रुत्वम्, अभिनोभिनः । अभिनदभिनत् । षत्वम् । मातुष्ष्वसा २ । मातुःस्वसा २ । णत्वं माषवापाणि २ । माषवापानि २ । अनुनासिक । वाङ्नयनम् २ । वाग्नयनम् २ । छत्वं । वाक्च्छयनम् २ । वाक्शयनम् २ । लत्वादीनां विकल्पितानामसिद्धत्वात् कृते द्विर्वचने सत्युपरिष्टाद्विकल्पे सति गरोगलः गलोगरः इत्येवं रूपमपि द्विरुक्तं स्यात् । तदेतत्सर्वं न मु ने इति योगविभागेन साध्यते । न इत्येतावदनिष्टे विषये पूर्वत्रासिद्धस्य प्रतिषेधार्थम् । ततो मु ने इति । नेत्येतदनुवर्त्तते ॥

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो ऽनुदात्तस्य ॥ ४ ॥

उदात्तयणः स्वरितयणश्च परस्यानुदात्तस्य स्वरित आदेशो भवति । उदात्तयणः । कुमार्यै । कुमार्यः । उदात्तनिवृत्तिस्वरेणायमीकार उदात्तः. तस्य स्थाने यणादेशः स उदात्तयण्, तस्मात्परस्यानुदात्तस्य स्वरित आदेशो भवति । स्वरितयणः । सकल्ल्व्याशा । खलप्व्याशा । सकलूः, खलपूरिति कृत्स्वरेणान्तोदात्तौ, तयो रोः सुपीति यणादेशः स उदात्तयण् ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य स्वरितत्वम्, तस्य यणादेशः स्वरितयण्, तस्मात्स्वरितयणः परस्याशाशब्दाकारस्यानुदात्तस्य स्वरितो भवति । ननु च सप्तम्येकवचनस्य यदुदात्तयण इति स्वरितत्वं तदसिद्धं यणादेशे । तत्कथमयं स्वरितयण् भवति । आश्रयात् सिद्धत्वं भविष्यति । यद्येवमुदात्तादनुदात्तस्य स्वरित इति एतस्याप्याश्रयात्सिद्धत्वं प्राप्नोति । ततश्च दध्याशेत्यत्रापि स्वरितः स्यात् ।

तस्मादयमेव यण्स्वरो यणादेशे सिद्धो वक्तव्यः । के चित्तु ब्रुवते उदात्तात्स्वरितयणोपि परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं दृश्यते । तथा च तैत्तिरीयके शाखान्तरे पठ्यते । यास्ते विश्वाः समिधः सन्त्यग्ने इति । अग्ने इत्ययमकारः स्वरितः पठ्यते । तथा ब्राह्मणेपि दध्याशयतीत्याकारः स्वरितः पठ्यते इति । यथा तु वार्त्तिकं भाष्यं च तथा उदात्तात्स्वरितयणः परस्यानुदात्तस्यानेन स्वरितत्वं न भवतीति स्थितम् । तथा च भाष्ये स्वरितयण्ग्रहणमिदं प्रत्याख्यायते । सक्तल्ल्वाशेत्युदात्तयण इत्येव स्वरितस्य सिद्धत्वात् । स्वरितयण्व्यवधानमव्यवधानमेव । स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति । तत्तु क्रियते, पूर्वस्मादपि विधौ स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमस्ति । स्वरदीर्घयलोपेषु च लोपाजादेशस्य स्थानिवद्भावः प्रतिषिध्यते इति । उदात्तस्वरितयोरिति किम् । वेदी आशा, वेद्याशा । शार्ङ्गरव्याशा । अनुदात्तयणादेशोयम् । अनुदात्तस्येति किम् । कुमार्यत्र । किशोर्यत्र । अत्रेत्ययमाद्युदात्तो लित्स्वरेण ॥

एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ ५ ॥

उदात्तेन सहानुदात्तस्य य एकादेशः स उदात्तो भवति । अनुदात्तस्येति वर्त्तते । अग्नी । वायू । वृचैः । प्लुचैः । उदात्तेनेति किम् । पचन्ति । यजन्ति । लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते द्वयोरनुदात्तयोरयमेकादेशः । पररूपे कर्त्तव्ये स्वरितस्यासिद्धत्वात् ॥

स्वरितो वा ऽनुदात्ते पदादौ ॥ ६ ॥

अनुदात्ते पदादौ उदात्तेन सह य एकादेशः स स्वरितो वा भवत्युदात्तो वा । सुर्उत्थितः । सूत्थितः । विर्ईक्षते । वीक्षते । वसुकः असि । वसुकोसि । सूत्थित इति सुशब्दः सुः पूजायामिति कर्म्मप्रवचनीयः, तस्य प्रादित्वात्समासे सति अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तः, शेषमनुदात्तमिति चानुदात्ते पदादावेकादेशो भवति । वीक्षते । वसुकोसीति । अत्रापि तिङ्ङतिङ इति निघाते कृते ऽनुदात्ते पदादावेकादेशः स्वरितग्रहणं विस्पष्टार्थम् । उदात्ते हि विकल्पिते तस्मिन्नसत्यान्तर्यतएव स्वरितो भविष्यतीति । अनुदात्त इति किम् । देवदत्तोत्र । पदादाविति किम् । वृक्षौ । वृक्षाः ॥

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ७ ॥

पदस्येति वर्त्तते । प्रातिपदिकस्य पदस्य योन्त्यो नकारस्तस्य लोपो भवति । राजा । राजभ्याम् । राजभिः । राजता । राजतरः । राजतमः । प्रातिपदिकग्रहणं किम् । अहन्नहम् । अन्तग्रहणं किम् । राजा । राजानौ । राजानः । प्रातिपदिकग्रहणमसमस्तमेव सुपां सुलुगिति षष्ठ्या लुका निर्दिष्टम् ॥ अह्नो नलोपप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ अहः । अहोभ्याम् । अहोभिः । अहन् रोसु-

पीति रेफहत्वयोरसिद्धत्वाद् नलोपः प्राप्नोति । सावकाशं तदुभयं संबुद्धौ । हे ऽहः । हे दीर्घाहो निदाघेति । तत्र समाधिमाहुः । अहन्निति रुविधौ यदुपादीयते प्रथमैकवचनान्तमकृतनलोपं तदावर्त्यते, तत्रैकया ऽऽवृत्त्या तदेवंरूपं नलोपाभावार्थमन्वाख्यायते, द्वितीययापि तस्य रुर्विधीयते ॥

न ङिसंबुद्ध्योः ॥ ८ ॥

ङौ परतः संबुद्धौ च नकारलोपो न भवति । आर्द्रे चर्मन् । लोहिते चर्मन् । सुपां सुलुगिति ङेर्लुक् । संबुद्धौ । हे राजन् । हे तक्षन् । अस्मादेव नलोपप्रतिषेधवचनादप्रत्यय इति प्रत्ययलक्षणेन प्रातिपदिकसंज्ञा न प्रतिषिध्यते इति ज्ञाप्यते । भसंज्ञा च न भवतीति । तथा हि राज्ञः पुरुषो राजपुरुष इति । अत्र नलोपश्च भवति । अल्लोपश्च न भवति ॥ ङावुत्तरपदे प्रतिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ चर्मणि तिला अस्य चर्मतिलः । हे राजवृन्दारक इत्यत्र समुदायार्थं संबोधनं न पूर्वपदार्थसंबोधनं प्रतीयतइति संबुद्ध्यन्तं पूर्वपदं नैव समस्यते ॥ वा नपुंसकानामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ हे चर्मन् । हे चर्म ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वो ऽयवादिभ्यः ॥ ९ ॥

मतोरिह कार्यित्वेनोपादानात् सामर्थ्यं लब्धं प्रातिपदिकं तन्मादिति मकारावर्णाभ्यां विशिष्यते। मकारावर्णविशिष्टया चोपधया इत्ययमर्थो भवति। मकारान्ताद् मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्चोत्तरस्य मतोर्व इत्ययमादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परतो न भवति। मकारान्तात्। किंवान्। शंवान्। मकारोपधात्। शमीवान्। दाडिमीवान्। अवर्णान्तात्। वृक्षवान्। प्लक्षवान्। खट्वावान्। मालावान्। अवर्णोपधात्। पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्। मादुपधायाश्चेति किम्। अग्निमान्। वायुमान्। अयवादिभ्य इति किम्। यवमान्। दल्मिमान्। ऊर्म्मिमान्। यव। दल्मि। ऊर्म्मि। भूमि। कृमि। क्रुञ्चा। वशा। द्राक्षा * एतेषां मादुपधायाश्चेति प्राप्नोति। ध्रजि। ध्वजि। सञ्जि † इत्येतेषां छन्दसीर इति। हरित्। ककुत्। गरुत् इत्येतेषां झय इति। इक्षु मधु द्रुम मण्ड धूम इत्येतेषां संज्ञायामिति। आकृतिगणश्च यवादिः। अकृतवत्वो मतुब् यवादिषु द्रष्टव्यः। यस्य सति निमित्ते मतुपो वत्वं न दृश्यते स यवादिषु द्रष्टव्यः‡। इह नुमत इदं नामतमिति बहिरङ्गलक्षणत्वादवर्णोपधस्य मतुपो वत्वं न भवति॥

झयः ॥ १० ॥

---

* वृक्षा। वेशा। इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

† वजि। व्रजि। ग्रञ्जि। सिञ्जि। इत्यधिकमन्यस्मिन्पुस्तके।

‡ यस्य सति निमित्ते मतुपो वत्वं न दृश्यते स यवादिषु द्रष्टव्य इति नास्त्येकस्मिन्पुस्तके।

झयन्तादुत्तरस्य मतोर्वे इत्ययमादेशो भवति । अग्निचित्वान् ग्रामः । उदश्वित्वान्घोषः । विद्युत्वान्बलाहकः । इन्द्रो मरुत्वान् । दृषद्वान्देशः ॥

संज्ञायाम् ॥ ११ ॥

संज्ञायां विषये मतोर्वे इत्ययमादेशो भवति । अहीवती । कपीवती । ऋषीवती । मुनीवती ॥

आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ॥ १२ ॥

आसन्दीवद् अष्टीवत् चक्रीवत् कक्षीवद् रुमण्वत् चर्म्मण्वती इत्येतानि संज्ञायां निपात्यन्ते। वत्वं पूर्वेणैव सिद्धमादेशार्थानि निपातनानि । आसन्दीवदिति । आसनशब्दस्यासन्दीभावो निपात्यते । आसन्दीवान् ग्रामः । आसन्दीवदहिस्थलम् । आसनवानित्येवान्यत्र । अपरे त्वाहुः । आसन्दीशब्दोऽपि प्रकृत्यन्तरमेवास्थि । तथा चोक्तमौदुम्बरी राजासन्दी भवतीति । तस्य संज्ञायामिति वत्वेन सिद्धं आसन्दीवदित्येतत्प्रपञ्चार्थमिह पठ्यते। अष्ठीवदिति। अस्थ्नोऽष्ठीभावः । अष्ठीवानिति शरीरैकदेशसंज्ञा । अस्थिमानित्येवान्यत्र । चक्रीवदिति । चक्रशब्दस्य चक्रीभावो निपात्यते । चक्रीवान् राजा । चक्रवानित्येवान्यत्र । चक्रीवन्ति सदोहविर्द्धानानि भवन्तीत्येतत्तु छान्दसत्वाद् अनुगन्तव्यम् । कक्षीवदिति । कक्ष्यायाः संप्रसारणं निपात्यते । कक्षीवान्नाम ऋषिः । कक्ष्यावानित्येवान्यत्र । रुमण्वदिति लवणशब्दस्य रुमणभावो निपात्यते । लवणवानित्येवान्यत्र । अपरे त्वाहुः । रुमणिति प्रकृत्यन्तरमस्ति तस्यैतन्निपातनं नकारलोपाभावार्थं णत्वार्थं च । मतोर्वा नुडर्थमिति । चर्मण्वतीति । चर्मणो नलोपाभावो णत्वं च निपात्यते । मतोर्वा नुडागमः । चर्मण्वती नाम नदी । चर्म्मवतीत्येवान्यत्र ॥

उदन्वानुदधौ च ॥ १३ ॥

उदन्वानित्युदकशब्दस्य मतावुदन्भावो निपात्यते उदधावर्थे संज्ञायां विषये । उदन्वान्नाम ऋषिर्यस्यौदन्वतः पुत्रः । उदधौ उदन्वान् । यस्मिन्नुदकं धीयते स एवमुच्यते । उदधाविति किम् । उदकवान् घट इत्यत्र तु दधात्यर्थो न विवक्ष्यते किं तर्हि उदकसत्तासंबन्धसामान्यम् ॥

राजन्वान्सौराज्ये ॥ १४ ॥

राजन्वानिति निपात्यते सौराज्ये गम्यमाने । शोभनो राजा यस्मिन्निति स राजन्वान् देशः । राजन्वती पृथ्वी । राजवानित्येवान्यत्र ॥

छन्दसीरः ॥ १५ ॥

छन्दसि विषये इवर्णान्ताद्रेफान्ताच्चोत्तरस्य मतोर्वत्वं भवति । इवर्णान्तात्तावत् । त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति । हरिवो मेदिनं त्वा । अधिपतिवती जुहोति । चरुरग्निवानिव । आरेवानेतु मा विशत् । रयेर्मताविति संप्रसारणम् । सरस्वतीवान् । भारतीवान् । दधीवांश्चरुः । छन्दसि सर्वे विधयो विकल्प्यन्तइतीह न भवति । सप्तर्षिमन्तम् । ऋषिमान् । ऋतीमान् । सूर्यं ते द्यावापृथिवी मन्तमिति । रेफान्तात् । गीर्वान् । धूर्वान् । आशीर्वान् ॥

अनो नुट् ॥ १६ ॥

छन्दसीति वर्तते ऽनन्तादुत्तरस्य मतोर्नुडागमो भवति छन्दसि विषये । अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः । अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्त्ति । अक्षण्वता लाङ्गलेन । शीर्षण्वती । मूर्द्धन्वती । नुटोसिद्धत्वात्तस्य च वत्वं न भवति । ततः परस्य च भवति ॥

नाद् घस्य ॥ १७ ॥

नकारान्तादुत्तरस्य घसंज्ञकस्य नुडागमो भवति छन्दसि विषये । सुपथिन्तरः । दस्युहन्तमः ॥ भूरिदाव्नस्तुड्वक्तव्यः ॥ * ॥ भूरिदावत्तरः ॥ ईद्रथिनः ॥ * ॥ रथिन ईकारान्तादेशो घे परतः । रथीतरः । रथशब्दादेव वा मत्वर्थीयोयमीकारः छन्दसीवनिपाविति ॥

कृपो रो लः ॥ १८ ॥

कृपेर्द्धातो रेफस्य लकारादेशो भवति । र इति श्रुतिसामान्यमुपादीयते । तेन यः केवलो रेफो यश्च ऋकारस्थस्तयोर्द्वयोरपि ग्रहणम् । ल इत्यपि सामान्यमेवोपादीयते । ततोयं केवलस्य रेफस्य स्थाने लकारादेशो विधीयते ऋकारस्याप्येकदेशविकारद्वारेण ऌकारस्तथा लुटि च क्लृप इत्येवमादयो निर्देशा उपपद्यन्ते । कल्प्ता । कल्प्तारौ । कल्प्तारः । क्लृप्तः । क्लृप्तवान् । कृपा इत्येतत्कृपेः सम्प्रसारणं चेति भिदादिषु पाठाद्भवति तस्य हि कृतसंप्रसारणस्य लाक्षणिकत्वात् इह कृप इति ग्रहणं नास्ति । कृपणकृपाणकृपीटकर्पूरादयोपि कृपेरेव द्रष्टव्याः । उणादयो बहुलमिति वा कृपेरेव लत्वाभावः ॥ बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वा रो लमापद्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बालः । बारः । मूलम् । मूरम् । लघु । रघु । असुरः । असुलः । अलम् । अरम् । अङ्गुलिः । अङ्गुरिः ॥ कपिलकादीनां संज्ञाछन्दसोर्वा रो लमापद्यतइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कपिरकः । कपिलकः । तिल्पिलीकम् । तिर्प्पिरीकम् । लोमानि । रोमाणि । पांशुरम् । पांशुलम् । कर्म । कल्म । रलयोरेकत्वस्मरणमिति के चित् । किमिदमेकत्वस्मरणमिति । समानविषयत्वमेव तयोः स्मर्यतइत्यर्थः ॥

उपसर्गस्यायतौ ॥ १९ ॥

अयतौ परत उपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लकार आदेशो भवति । प्लायते । पलायते । अत्र च यो ऽयमेकादेशस्तस्य स्थानिवद्भावादयतेरुपसर्गस्य च विभागे सति यद्यतिग्रहणं रेफस्य विशेषणं तदा येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रामाण्याद्धिति एकेन व्यवधानेपि सति लत्वं भवति । तथा च पल्ययते इत्यत्रापि भवति । उपसर्गस्य विशेषणे त्वयतिग्रहणे सिद्धमेवैतत्सर्वं प्रतेरपि तु व्यवहितेपि प्राप्नोति । तत्र केषां चिद्दर्शनं भवितव्यमेव प्लत्ययतइति । प्रथमपक्षदर्शनाभिनिर्विष्टास्तु प्रत्ययतइत्येव भवतीति मन्यन्ते । अपरे तु प्रतिशब्दोपसृष्टस्यायतेः प्रयोगमेव नेच्छन्ति । दुस् निस् इत्येतयोस्तु रुत्वस्यासिद्धत्वाल्लत्वेन नैव भवितव्यम् । निरयणम् । दुरयणम् ॥

ग्रो यङि ॥ २० ॥

गृ इत्येतस्य धातो रेफस्य लकार आदेशो भवति यङि परतः । निजेगिल्यते । निजेगिल्येते । निजेगिल्यन्ते । भावगर्हायां यो यङ्विहितः * । के चित् ग इति गिरतेर्गृणातेश्च सामान्येन ग्रहणमिच्छन्ति । अपरे तु गिरतेरेव न गृणातेः । गृणातेर्हि यङेव नास्ति अनभिधानादिति । यङीति किम् । निगीर्यते ॥

अचि विभाषा ॥ २१ ॥

अजादौ प्रत्यये परतो ग्रो रेफस्य विभाषा लकारादेशो भवति । निगिरति । निगिलति । निगरणम् । निगलनम् । निगारकः । निगालकः । इयं तु व्यवस्थितविभाषा । तेन गल इति प्राण्यङ्गे नित्यं लत्वं भवति । गर इति विषे नित्यं न भवति । निगार्यते । निगाल्यतइति । णिलोपस्य स्थानिवद्भावादचि विभाषेति लत्वविकल्पः । पूर्वत्रासिद्धे नस्थानिवदिति एतदपि सापवादमेव तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्विति । अन्तरङ्गत्वाद्वा कृते लत्वविकल्पे णिलोपो भविष्यति । गिरौ गिर इत्यत्र धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये विज्ञानमिति लत्वं न भवति । गिरतिर्वा लत्वविधावधिकृतो गृणातेरेतद्रूपम् ॥

परेश्च घाङ्कयोः ॥ २२ ॥

परि इत्येतस्य यो रेफस्तस्य घशब्दे ऽङ्कशब्दे च परतो विभाषा लकार आदेशो भवति । परिघः । पलिघः । पर्यङ्कः । पल्यङ्कः ॥ घ इति स्वरूपग्रहणमत्रेष्यते, न तरप्तमपौ इति ॥ योगे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ परियोगः । पलियोगः ॥

संयोगान्तस्य लोपः ॥ २३ ॥

---

* इत्वे कृते रपरत्वे च दीर्घस्यासिद्धत्वान्नित्यत्वाच्च लत्वे कृते तन्निमित्तत्वाभावाद्दीर्घत्वं न भवति । इत्यधिकमेकस्मिन्पुस्तके ।

संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति । गोमान् । यवमान् । कृतवान् । हतवान् । इह श्रेयान् भूयानिति रुत्वं परमप्यसिद्धत्वात् संयोगान्तस्य लोपं न बाधते । जश्त्वे तु नाप्राप्ते तदारभ्यतइति तस्य बाधकं भवति । यशः पय इति । दध्यत्र मध्वत्रेत्यत्र तु यणादेशस्य बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वात्संयोगान्तलोपो न भवति । पदस्येति किम् । गोमन्तौ गोमन्त इति ॥

रात्सस्य ॥ २४ ॥

संयोगान्तपदस्य यो रेफस्तस्मादुत्तरस्यान्तस्य सकारस्य लोपो भवति । गोभिरत्साः । प्रत्यञ्चमत्साः । त्सरतेः त्सरतेश्च लुङि सिचश्छान्दसत्वादीडभावो बहुलं छन्दसीति वचनाद्दीर्घे सति रूपमेतत् । मातुः पितुरिति । ऋत उदिति उत्वे कृते रपरत्वे च सति रात्सस्येति सलोपः । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । रात्सस्यैव लोपो भवति नान्यस्येति । ऊर्जेः क्विप् । ऊर्क् । मृजेर्लङि अमार्ट् ॥

धि च ॥ २५ ॥

धकारादौ प्रत्यये परतः सकारस्य लोपो भवति । अलविध्वम् । अलविढ्वम् । अपविध्वम् । अपविढ्वम् । यद्यत्र सकारलोपो न स्यात् । सिचः षत्वे जश्त्वे च विभाषेट इति मूर्द्धन्याभावश्चेपि न धकारः श्रूयेत ॥ इतः प्रभृति सिचः सकारस्य लोप इष्यते ॥ इह न भवति । चकाद्धि पलितं शिर इति । तथा पयो धावतीत्येवमादीनामपि न भवति । सग्धिर्बब्धामिति छान्दसो वर्णलोपः । भाष्यकारस्त्वाह । चकाधीत्येव भवितव्यमिति तेन पयो धावतीत्येवमादौ यत्नान्तरमास्थेयम् ।

> धि सकारे सिचो लोपश्चकाद्धीति प्रयोजनम् ।
> आशाध्वं तु कथं जश्त्वं सकारस्य भविष्यति ॥
> सर्वमेवं प्रसिद्धं स्याच्छ्रुतिश्चापि न विद्यते ।
> लुङश्चापि न मूर्द्धन्ये ग्रहणं सेटि दुष्यति ॥
> घसिभसोर्न सिध्येत तस्मात्सिज्ग्रहणं न तत् ।
> छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्त्तारमध्वरे ॥
> निष्कर्त्तारमध्वरस्येत्येवं प्राप्ते ॥

झलो झलि ॥ २६ ॥

झल उत्तरस्य सकारस्य झलि परतो लोपो भवति । अभित्त । अभित्थाः । अच्छित्त । अच्छित्थाः । अवात्ताम् । अवात्तेत्यत्र वा सिचः सकारलोपस्यासिद्धत्वात्सस्यार्द्धधातुकइति सकारस्य तकारः । झल इति किम् ।

१- साधुलक्, लस्जः क्विति सलोपे क्विन् प्रत्ययस्य कुः

अमंस्त । अमंस्थाः । झलीति किम् । अभित्साताम् । अभित्सत । अयमपि सिच एव लोपस्तेनेह न भवति, सोमसुत् स्तोता । दृषत् स्थानमिति ॥

ह्रस्वादङ्गात् ॥ २७ ॥

ह्रस्वान्तादङ्गादुत्तरस्य लोपो भवति झलि परतः । अकृत । अकृथाः । अहृत । अहृथाः । ह्रस्वादिति किम् । अच्योष्ट । अप्लोष्ट । अङ्गादिति किम् । अलाविष्टाम् । अलाविषुः । झलीत्येव । अकृषाताम् । अकृषत । अयमपि सिच एव लोपस्तेनेह न भवति । द्विष्टरां द्विष्टमामिति सुजन्ताद् द्विशब्दात्तरप्तमपौ अद्रव्यप्रकर्षे आतिशयिकः आम् प्रत्ययः ॥

इट ईटि ॥ २८ ॥

इट उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति ईटि परतः । आदावीत् । असेवीत् । अकोषीत् । अमोषीत् । इट इति किम् । अकार्षीत् । अहार्षीत् । ईटीति किम् । अलाविष्टाम् । अलाविषुः ॥

स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥ २९ ॥

पदस्यान्ते यः संयोगः झलि परतो वा संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपो भवति । लस्जेः । लग्नः । लग्नवान् । साधुलक् । ककारस्य । तक्षेः, तट् । तष्टवान् । काष्ठतट् ॥ झलि सडीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ किमिदं सडीति । सत: सप्रभृति महिङो ङकारेण प्रत्याहारः । इह मा भूत् । काष्ठशक्स्यातेति थकारे झलि ककारस्य संयोगादिर्लोपः प्राप्नोति । तदत्र शकेः क्विबन्तस्य प्रयोग एव नास्तीत्याह । काष्ठशगेव नास्ति कुतोऽयं काष्ठशकि तिष्ठेदिति । वास्यर्थं, काक्यर्थमिति । अत्रापि बहिरङ्गलक्षणस्य यणादेशस्यासिद्धत्वात् संयोगादिलोपो न भवति । स्कोरिति किम् । नर्नर्त्ति । वर्वर्त्ति । संयोगाद्योरिति किम् । पयःशक् । अन्ते चेति किम् । तक्षिता । तक्षकः ॥

चोः कुः ॥ ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गादेशो भवति झलि परतः पदान्ते च । पक्ता । पक्तुम् । पक्तव्यम् । ओदनपक् । वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् । वाक् । कुञ्चेत्यत्र सडीति वचनाद् ञकारस्य चकारे झलि कुत्वं न भवति । युजिक्रुञ्चां चेति निपातनाद्वा । नकारोपधो वा धातुरयं रेफरहितश्च कुञ्चकौटिल्याल्पीभावयोरिति पठ्यते । नकारलोपे हि निकुचिरिति दृश्यते । युजिक्रुञ्चां चेति तस्यैव रेफाधिको नकारस्य लोपाभावश्चेति निपात्यते । तत्रानुस्वारस्य परसवर्णस्य चासिद्धत्वात् ञकार एव नास्तीति कुत्वं न भविष्यति ॥

होः ढः ॥ ३१ ॥

हकारस्य ढकारादेशो भवति झलि परतः पदान्ते च । सोढा । सोढुम् । सोढव्यम् । तुरासाट् । वोढा । वोढुम् । वोढव्यम् । प्रष्ठवाट् । दित्यवाट् ॥

दादेर्धातोर्घः ॥ ३२ ॥

दकारादेर्धातोर्हकारस्य घकारादेशो भवति झलि परतः पदान्ते च । दग्धा । दग्धुम् । दग्धव्यम् । काष्ठधक् । दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । गोधुक् । दादेरिति किम् । लेढा । लेढुम् । लेढव्यम् । गुडलिट् । धातोरिति दादिसमानाधिकरणमेतन्न, किं तर्हि तद्विशेषणमवयवषष्ठ्यन्तं धातोरवयवो यो दादिः शब्दस्तदवयवस्य हकारस्येति । किमेवं कृतं भवति । अधोगित्यत्रापि घकारः । सिद्धो भवति । कथं दोग्धा दोग्धुमिति, व्यपदेशिवद्भावात् । अथ वा धातूपदेशे यो दादिरित्येवं विज्ञायते । तथा च दामलिहमिच्छति दामलिह्यति । दामलिह्यतेः क्विप्रत्ययः । दामलिडित्यत्रापि न भवति ॥

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ॥ ३३ ॥

द्रुह मुह ष्णुह ष्णिह इत्येतेषां धातूनां हकारस्य वा घकारादेशो भवति झलि परतः पदान्ते च । द्रुह् । द्रोग्धा । द्रोढा । मित्रध्रुक् । मित्रध्रुट् । मुह । उन्मोग्धा । उन्मोढा । उन्मुक् । उन्मुट् । स्नुह । उत्स्नोग्धा । उत्स्नोढा । उत्स्नुक् । उत्स्नुट् । स्निह । स्नेग्धा । स्नेढा । स्निक् । स्निट् । द्रुहेर्दादित्वाद् घत्वं नित्यं प्राप्तमितरेषामप्राप्तमेव घत्वं विकल्प्यते ॥

नहो धः ॥ ३४ ॥

नहो हकारस्य धकारादेशो भवति झलि परे पदान्ते च । नद्धुम् । नद्धम् । नद्धव्यम् । उपानत् । परीणत् ॥

आहस्थः ॥ ३५ ॥

आहो हकारस्य थकारादेशो भवति झलि परतः । इदमात्थ । किमात्थ । स्थादेशान्तरकरणं झषस्तथोर्धो ऽध इत्यस्य निवृत्त्यर्थम् । झलीत्येव । आह । आहतुः । आहुः ॥ हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गर्द्भेन संभरति । गभीता । जभ्रिरे । उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ॥

व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ ३६ ॥

व्रश्च भ्रस्ज सृज मृज यज राज भ्राज इत्येतेषां छकारान्तानां शकारान्तानां च षकार आदेशो भवति झलि परतः पदान्ते च । व्रश्च । व्रष्टा । व्रष्टुम् । व्रष्टव्यम् । मूलवृट् । भ्रस्ज । भ्रष्टा । भ्रष्टुम् । भ्रष्टव्यम् । धानाभृट् । सृज । स्रष्टा । स्रष्टुम् । स्रष्टव्यम् । रज्जुसृट् । मृज । मार्ष्टा । मार्ष्टुम् । मार्ष्टव्यम् । कंसपरिमृट् । यज । यष्टा । यष्टुम् । यष्टव्यम् । उपयट् । राज् ।

सम्राट् । स्वराट् । विराट् । राजभ्राजोः पदान्तार्थं ग्रहणं झलादिराभ्यामिटा पर्यवपद्यते । के चित्तु राष्टिरिति क्विबन्तमिच्छन्ति । छकारान्तानाम् । प्रच्छ । प्रष्टा । प्रष्टुम् । प्रष्टव्यम् । शब्दप्राट् । छ्वोः शूडनुनासिके चेत्यत्र क्ङितीत्यनुवर्त्तते इति छग्रहणमिह क्रियते । शकारान्तानाम् । लिश् । लेष्टा । लेष्टुम् । लेष्टव्यम् । लिट् । विश् । वेष्टा । वेष्टुम् । वेष्टव्यम् । विट् ॥

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥ ३७ ॥

धातोरवयवो य एकाच् झषन्तः तदवयवस्य बशः स्थाने भष् आदेशो भवति झलि सकारे ध्वशब्दे च परतः पदान्ते च । बुध् । भोत्स्यन्ते । अभुद्ध्वम् । अर्थभुत् । गुह । निघोक्ष्यते । न्यघुड्ढ्वम् । पर्णघुट् । दुह । धोक्ष्यते । अधुग्ध्वम् । गोधुक् । अजर्घाः । गृधेर्यङ्लुगन्तस्य लङि सिपि लघूपधगुणे कृते सिपो हल्ङ्यादिलोपे च धातोरवयवस्यैकाचो बशः स्थाने भष्भावस्ततो धकारस्य जश्त्वं दश्चेति रुत्वं रो रीति पूर्वरेफस्य लोपः ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण इति दीर्घत्वम् । गर्द्धभयतेरप्रत्ययः । गर्द्धप् । एकाच इति किम् । दामलिहमिच्छति दामलिह्यति, दामलिह्यतेरप्रत्ययः । दामलिट् । असति ह्येकाज्ग्रहणे धातोरित्येतद्बशो विशेषणं स्यात् । बश इति किम् । क्रुध । क्रोत्स्यति । झषन्तस्येति किम् । दास्यति । स्ध्वोरिति किम् । बोद्धा । बोद्धुम् । बोद्धव्यम् । धकारस्य वकारोपसृष्टस्य ग्रहणं किम् । दादर्द्धि । दध धारणइत्येतस्य यङ्लुकि लोटि हुझल्भ्यो हेर्धिरिति धिभावे सत्येतद्भवति । अत्र चत्वारो बशः स्थानिनो भषादेशाश्चत्वार एव । तत्र संख्यातानुदेशे प्राप्ते डकारस्य स्थानिनोऽभावाद् ढकारादेशो न भवति । आन्तर्यतो व्यवस्था विज्ञास्यते ॥

दधस्तथोश्च ॥ ३८ ॥

दध इति दधातिः कृतद्विर्वचनो निर्दिश्यते । तस्य झलन्तस्य बशः स्थाने भष् आदेशो भवति तकारथकारयोः परतश्चकारात् स्ध्वोश्च परतः । धत्तः । धत्थः । धत्से । धत्स्व । धद्ध्वम् । वचनसामर्थ्यादातो लोपस्य स्थानिवद्भावो न भवति । अभ्यासजश्त्वस्य चासिद्धत्वम् । तथोरिति किम् । आनन्तर्यात्स्ध्वोरेव विज्ञायेत । चकारस्तयोरनुवृत्त्यर्थः । झषन्तस्येत्येव । दधाति ॥

झलां जशोऽन्ते ॥ ३९ ॥

झलां जश आदेशा भवन्ति पदस्यान्ते वर्त्तमानानाम् । वागत्र । श्वलिडत्र । अग्निचिदत्र । त्रिष्टुबत्र । अन्तग्रहणं झलीत्येतस्य निवृत्त्यर्थम् । वस्ता । वस्तव्यम् ॥

झषस्तथोर्धोऽधः ॥ ४० ॥

झष उत्तरयोस्तकारथकारयोः स्थाने धकार आदेशो भवति । दधाति वर्ज-

यित्वा । लब्धा । लब्धुम् । लब्धव्यम् । अलब्ध । अलब्धाः । दुह । दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । अदुग्ध । अदुग्धाः । लिह । लेढा । लेढुम् । लेढव्यम् । अलीढ । अलीढाः । बुध् । बोद्धा । बोद्धुम् । बोधव्यम् । अबुद्ध । अबुद्धाः । अध इति किम् । धत्तः । धत्थः ॥

षढोः कः सि ॥ ४१ ॥

षकारढकारयोः ककारादेशो भवति सकारे परतः । षकारस्य । विष् । विवेक्ष्यति । अवेक्ष्यत् । विविक्षति । ढकारस्य । लिह । लेक्ष्यति । अलेक्ष्यत् । लिलिक्षति । सीति किम् । पिनष्टि । लेढि ॥

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥ ४२ ॥

रेफदकाराभ्यामुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति पूर्वस्य च दकारस्य । रेफान्तात्तावत् । आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । विशीर्णम् । निगीर्णम् । अवगूर्णम् । दकारात् । भिन्नः । भिन्नवान् । छिन्नः । छिन्नवान् । रदाभ्यामिति किम् । कृतः । कृतवान् । र इत्यत्र रश्रुतिसामान्यं नोपादीयते किं तर्हि व्यञ्जनमात्रम् । रेफसामान्यनिर्देशेपि सति रेफात्परा याऽभक्तिस्तद्व्यवधानान्नत्वं न भवति । निष्ठेति किम् । कर्त्ता । हर्त्ता । त इति किम् । चरितम् । मुदितम् । पूर्वस्येति किम् । परस्य मा भूत् । भिन्नवद्भ्याम् । भिन्नवद्भिः । इह कृतस्यापत्यं कार्त्तिरिति वृद्धिर्बहिरङ्गलक्षणाया असिद्धत्वान्नत्वे कर्त्तव्ये रेफस्यासिद्धत्वम् ॥

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ ४३ ॥

संयोगादिर्यो धातुराकारान्तो यण्वान् तस्मादुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति । प्रद्राणः । प्रद्राणवान् । ग्लानः । ग्लानवान् । संयोगादेरिति किम् । यातः । यातवान् । आत इति किम् । च्युतः । च्युतवान् । प्लुतः । प्लुतवान् । धातोरिति किम् । निर्यातः । निर्वातः । यण्वत इति किम् । स्नातः । स्नातवान् ॥

ल्वादिभ्यः ॥ ४४ ॥

लूञ् छेदने इत्येतत्प्रभृति वृ वरणे इति यावत् वृत्करणेन समापिता ल्वादयो गृह्यन्ते । तेभ्य उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति । लूनः । लूनवान् । धूनः । धूनवान् । जीनः । जीनवान् ॥ ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कीर्णिः । गीर्णिः । शीर्णिः । लूनिः । पूनिः ॥ दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ दु, आदूनः । गु, विगूनः ॥ पूञो विनाश इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पूना यवाः । विनष्टा इत्यर्थः । विनाश इति किम् । पूतं धान्यम् ॥ सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सिनो ग्रासः स्वयमेव । ग्रासकर्मकर्तृकस्येति किम् । सिता पाशेन सूकरी । ग्रासोपि यदा कर्मैव भवति न कर्मकर्त्ता तदा न भवति । सितो ग्रासो देवदत्तेनेति ॥

ओदितश्च ॥ ४५ ॥

ओकारेतो धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। ओलस्जी। लग्नः। लग्नवान्। ओविजी। उद्विग्नः। उद्विग्नवान्। ओप्यायी वृद्धौ। आपीनः। आपीनवान्। स्वादय ओदितः। षूङ्। सूनः। सूनवान्। दूङ्। दूनः। दूनवान्। दीङ्। दीनः। दीनवान्। डीङ्। डीनः। डीनवान्। धीङ्। धीनः। धीनवान्। मीङ्। मीनः। मीनवान्। रीङ्। रीणः। रीणवान्। लीङ्। लीनः। लीनवान्। व्रीङ्। व्रीणः। व्रीणवान्॥

क्षियो दीर्घात् ॥ ४६ ॥

क्षियो धातोर्दीर्घादुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। क्षीणः क्लेशः। क्षीणो जाल्मः। क्षीणस्तपस्वी। क्षियो निष्ठायामण्यदर्थे वा क्रोशदैन्ययोरिति दीर्घत्वं भवति। दीर्घादिति किम्। अक्षितमसि मामेक्षेष्ठाः। अक्षितमिति क्तप्रत्ययो भावे। भावश्च ण्यदर्थ इति दीर्घाभावः। ह्रस्वान्तस्यापि धात्वनुकरणस्य इष्ट इयङा निर्देशः। क्षियो निष्ठायामण्यदर्थइत्यत्र दीर्घग्रहणं क्रियते विपराभ्यां जेरित्येवमादौ तु धातुत्वमनुकार्यगतं सदप्यविवक्षितत्वाद् जिरूपसामान्यानुकरणं द्रष्टव्यम्॥

श्यो ऽस्पर्शे ॥ ४७ ॥

श्यायतेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्यास्पर्शे नकार आदेशो भवति। शीनं घृतम्। शीनं मेदः। शीना वसा। अस्पर्शइति किम्। शीतं वर्त्तते। शीतो वायुः। शीतमुदकमित्यत्र गुणभूतोपि स्पर्शो नत्वप्रतिषेधस्य संप्रसारणस्य च निमित्तं भवति। गुणे च स्पर्शप्रतिषेधोयं न रोगे, तेन प्रतिशीन इत्यत्र नत्वं भवत्येव॥

अञ्चो ऽनपादाने ॥ ४८ ॥

अञ्चतेरुत्तरपदस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति न चेदपादानं तत्र भवति। समक्नौ शकुनेः पादौ। तस्मात्पशवो न्यक्नाः। अनपादानइति किम्। उदक्तमुदकं कूपात्। व्यक्तमित्येतदञ्जे रूपम्॥

दिवो ऽविजिगीषायाम् ॥ ४९ ॥

दिव उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति अविजिगीषायामर्थे। आद्यूनः। परिद्यूनः। अविजिगीषायामिति किम्। द्यूतं वर्त्तते। विजिगीषया हि तत्राक्षपातनादि क्रियते॥

निर्वाणो ऽवाते ॥ ५० ॥

निर्वाण इति निस्पूर्वाद्वातेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारो निपात्यते।

न चेद्वाताधिकरणो वात्यर्थो भवति। निर्वाणोऽग्निः। निर्वाणः प्रदीपः। निर्वाणो भिक्षुः। अवातइति किम्। निर्वातो वातः। निर्वातं वातेन। निर्वाणः प्रदीपो वातेनेत्यत्र तु प्रदीपाधिकरणो वात्यर्थो वातस्तु तस्य करणमिति भवत्येव नत्वम् ॥

शुषः कः ॥ ५१ ॥

शुषेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य ककारादेशो भवति। शुष्कः। शुष्कवान् ॥

पचो वः ॥ ५२ ॥

पचेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य वकारादेशो भवति। पक्वः। पक्ववान् ॥

क्षायो मः ॥ ५३ ॥

क्षैधातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य मकारादेशो भवति। क्षामः। क्षामवान् ॥

प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

प्रपूर्वात् स्त्यायतेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्यान्यतरस्यां मकारादेशो भवति। प्रस्तीमः। प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतः। प्रस्तीतवान्। यदा मत्वं नास्ति तदा संयोगादेरातो धातोर्यण्वत इत्यस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात् संप्रसारणं प्रथमं क्रियते। तत्र कृते निमित्तव्याघातान्नत्वं न भवति ॥

अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ॥ ५५ ॥

फुल्ल क्षीब कृश उल्लाघ इत्येते निपात्यन्ते न चेदुपसर्गादुत्तरा भवन्ति। फुल्ल इति ञिफला विशरणइत्येतस्माद्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य लकारो निपात्यते। उत्वमिडभावश्च सिद्ध एव ॥ क्तवत्वन्तस्याप्येतल्लत्वमिष्यते ॥ फुल्लः। फुल्लवान् इति। क्षीबकृशोल्लाघा इति क्षीबकृशिभ्यामुत्पूर्वाच्च लाघेः क्तप्रत्ययस्य तलोप इडागमाभावश्च निपात्यते। कृते वा इटि इच्छब्दलोपः। क्षीबः। कृशः। उल्लाघः। अनुपसर्गादिति किम्। प्रफुल्लाः सुमनसः। प्रक्षीबितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। लाघेरुदोन्य उपसर्गः प्रतिषिध्यते ॥ उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उत्फुल्लः। संफुल्लः। परिकृश इत्यत्र यः परिशब्दः स क्रियान्तरयोगात्कृशिं प्रत्यनुपसर्ग एव। परिगतः कृशः। परिकृश इति ॥

नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यो ऽन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

नुद विद उन्द त्रा घ्रा ह्री इत्येतेभ्य उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति अन्यतरस्याम्। नुद। नुन्नः। नुत्तः। विद। विन्नः। वित्तः। उन्द। समुन्नः। समुत्तः। त्रा। त्राणः। त्रातः। घ्रा। घ्राणः। घ्रातः। ह्री। ह्रीणः। ह्रीतः। ह्री इत्येतस्मादप्राप्तं नत्वमितरेषां नित्यं प्राप्तं विकल्प्यते ॥ विदविचारणइत्यस्य विदेरिह ग्रहणमिष्यते ॥ एवमुक्तम् ॥

वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते ।
वित्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे विन्नश्च विन्दतेः ॥ इति ॥

न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् ॥ ५७ ॥

ध्या ख्या पॄ मूर्च्छि मद इत्येतेषां निष्ठातकारस्य नकारादेशो न भवति । ध्यातः । ध्यातवान् । ख्यातः । ख्यातवान् । पूर्त्तः । पूर्त्तवान् । मूर्त्तः । मूर्त्तवान् । मत्तः । मत्तवान् । रदाभ्यां संयोगादिरिति च प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥

वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ ५८ ॥

वित्त इति विदेर्लाभार्थादुत्तरस्य क्तस्य नत्वाभावो निपात्यते भोगे प्रत्यये चाभिधेये । वित्तमस्य बहु । धनमस्य बह्वित्यर्थः । धनं हि भुज्यतइति भोगोभिधीयते । प्रत्यये । वित्तोयं मनुष्यः । प्रतीत इत्यर्थः । प्रतीयतइति प्रत्ययः । भोगप्रत्यययोरिति किम् । विन्नः ॥

भित्तं शकलम् ॥ ५९ ॥

भिन्नमिति निपात्यते शकलं चेत्तद्भवति । भित्तं तिष्ठति । भित्तं प्रपतति । शकलपर्यायोयम् । अत्र भिदिः क्रिया शब्दव्युत्पत्तेरेव निमित्तम् । भिदिक्रियाविवक्षायां हि शकलविषये भिन्नमित्येव भवति ॥

ऋणमाधमर्ण्ये ॥ ६० ॥

ऋणमिति ऋइत्येतस्माद्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारो निपात्यते आधमर्ण्यविषये । अधम ऋणे अधमर्णः । एतस्मादेव निपातनात्सप्तम्यन्तेनोत्तरपदेन समासः । तद्भाव आधमर्ण्यम् । यद्येवमुत्तमर्ण इति न सिध्यति । नैष दोषः । कालान्तरदेयविनिमयोपलक्षणार्थं चेदमुपात्तम् । तेन उत्तमर्ण इत्यपि हि भवति । ऋणं ददाति । ऋणं धारयति । आधमर्ण्यइति किम् । ऋतं वक्ष्यामि नानृतम् ॥

नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ ६१ ॥

नसत्त निषत्त अनुत्त प्रतूर्त्त सूर्त्त गूर्त्त इत्येतानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते । नसत्तनिषत्तेति सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च नत्वाभावो निपात्यते । नसत्तमञ्जसा । नसन्नमिति भाषायाम् । निषत्तः । निषण्ण इति भाषायाम् । अनुत्तमित्युन्देर्नञ्पूर्वस्य निपातनम् । अनुत्तमा ते मघवन् । अनुन्नमिति भाषायाम् । प्रतूर्त्तमिति त्वरतेः तूर्वे इत्येतस्य वा निपातनम् । प्रतूर्त्तं वाजिनम् । प्रतूर्णमिति भाषायाम् । सूर्त्तमिति सृइत्येतस्य उत्वं निपात्यते । सूर्त्ता गावः । सृता गाव इति भाषायाम् । गूर्त्तमिति गूरी इत्येतस्य नत्वाभावो निपात्यते । गूर्त्ता अमृतस्य । गूर्णमिति भाषायाम् ॥

क्विन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ६२ ॥

पदस्येति वर्त्तते । क्विन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुत्वमिष्यते । क्विन्प्रत्ययो यस्माद्धातोः स क्विन्प्रत्ययः । तस्य पदस्यालोन्त्यस्य कवर्गादेशो भवति । स्पृशोऽनुदके क्विन् । घृतस्पृक् । हलस्पृक् । मन्त्रस्पृक् । क्विनः कुरिति वक्तव्ये प्रत्ययग्रहणं कृतं बहुव्रीहिविज्ञानार्थं, क्विन्प्रत्ययो यस्माद्विहितस्तस्मादन्यस्मिन्नपि प्रत्यये कुत्वं यथा स्यात् । मा नो अस्राक् । मा नो अद्राक् । सृजिदृशिभ्यां हि क्विन्विहितः तयोर्लुङि कुत्वमेतत् । माङ्योगेपि छान्दसत्वादडागमः ईडपि न भवति । बहुलं छन्दसीति । तथा दृग्भ्यां दृग्भिरिति । क्विबन्तस्यापि दृशेः कुत्वं भवति । एवं च सति रज्जुसृड्भ्यामित्यत्रापि कुत्वं प्राप्नोति । अथ तु नेष्यते । ततस्तत्प्रतिविधातव्यमिति ॥

नशेर्वा ॥ ६३ ॥

पदस्येति वर्त्तते । नशेः पदस्य वा कवर्गादेशो भवति । सा वै जीवनगाहुतिः । सा वै जीवनडाहुतिः । नशेरयं संपदादित्वाद् भावे क्विप् । जीवस्य नाशो जीवनक् । जीवनट् । षत्वे प्राप्ते कुत्वविकल्पः ॥

मो नो धातोः ॥ ६४ ॥

मकारान्तस्य धातोः पदस्य नकारादेशो भवति । प्रशान् । प्रतान् । प्रदान । शमितमिदमादीनां क्विप् । अनुनासिकस्य क्विझलोःक्ङितीति दीर्घत्वम्* । नत्वस्यासिद्धत्वान्नलोपो न भवति । म इति किम् । भित् । छित् । धातोरिति किम् । इदम् । किम् । पदस्येत्येव प्रतामौ । प्रतामः ॥

म्वोश्च ॥ ६५ ॥

मकारवकारयोश्च परतः मकारान्तस्य धातोर्नकारादेशो भवति । अगन्म तमसः पारम् । अगन्व । गमेर्लुङि बहुलं छन्दसीति शपो लुक् । जगन्वान् । विभाषा गमहनजनविदविशामिति क्वसाविडागमस्याभावः । अपदान्तार्थ आरम्भः ॥

ससजुषो रुः ॥ ६६ ॥

सकारान्तस्य पदस्य सजुष् इत्येतस्य च रुर्भवति । सकारान्तस्य । अग्निरत्र । वायुरत्र । सजुषः । सजूर्ऋतुभिः । सजूर्देवेभिः । जुषेः क्विपि सपूर्वस्य रूपमेतत् ॥

अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ॥ ६७ ॥

अवयाः श्वेतवाः पुरोडाः इत्येते निपात्यन्ते । अवपूर्वस्य यजेः श्वेतपूर्वस्य वहेः पुरस्पूर्वस्य दाशतेः मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् । अवे यज इति

* शमितमादीनामित्यारभ्य दीर्घत्वमित्यन्तः पाठः पुस्तकान्तरे नास्ति ।

ख्विनि कृते श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति डस्प्रत्यये निपातनान्येतानि। किमर्थं तर्हि निपातनं यावता पूर्वेणैव रुः सिद्धः। दीर्घत्वमप्यत्वसन्तस्य चाधातोरिति। संबुद्धौ दीर्घार्थमेते निपात्यन्ते। अत्वसन्तस्य चाधातोरित्यत्र हि असंबुद्धाविति वर्त्तते। हे अवयाः। हे श्वेतवाः। हे पुरोडाः। चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः। हे उक्थशाः॥

अहन् ॥ ६८ ॥

अहन्नित्येतस्य पदस्य रुर्भवति। अहोभ्याम्। अहोभिः। नलोपमकृत्वा निर्द्देशो ज्ञापकः नलोपाभावो यथा स्यादिति। दीर्घाहा निदाघः। हे दीर्घाहोत्रेति। अहन्नित्यत्र तु लाक्षणिकत्वादहन्शब्दस्य रुत्वं भवति॥ अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानं कर्त्तव्यम्॥ * ॥ अहो रूपम्। अहोरात्रः। अहो रथन्तरम्। रोसुपीत्यस्यापवादो रुत्वमुपसंख्यायते। अपर आह। सामान्येन रेफादौ रुत्वं भवति। अहो रम्यम्। अहो रत्नानीति॥

रोसुपि ॥ ६९ ॥

अहन्नित्येतस्य रेफादेशो भवत्यसुपि परतः। अहर्द्ददाति। अहर्भुङ्क्ते। असुपीति किम्। अहोभ्याम्। अहोभिः। ननु चात्रापि प्रत्ययलक्षणेन सुबस्ति। अहर्द्ददाति। अहर्भुङ्क्त इति। नैतदस्ति। उक्तमेतत्। अह्नो रविधौ लुमता लुप्ते प्रत्ययलक्षणं न भवतीति नायमहःशब्दः सुप्परो भवति। यत्र तु लोपशब्देन लुप्यते तत्र प्रत्ययलक्षणं भवत्येव। यथा हे दीर्घाहोत्र दीर्घाह निदाघ इति। अत्र हि हल्ङ्याबिति लोपेन प्रत्ययस्य निवृत्तिः॥

अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि ॥ ७० ॥

अम्नस् ऊधस् अवस् इत्येतेषां छन्दसि विषये उभयथा भवति। रुर्वा रेफो वा। अम्नस्। अम्न एव। अम्नरेव। ऊधस्। ऊधरेव। ऊध एव। अवस्। अवरेव। अव एव। यदा रुत्वं तदा भोभगोअघोअपूर्वस्य योशीति यकारः॥ छन्दसि भाषायां च विभाषा प्रचेतसो राजन्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्॥ * ॥ प्रचेता राजन्। प्रचेतो राजन्॥ अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानं कर्त्तव्यम्॥ * ॥ अहर्पतिः। अहःपतिः। गीर्पतिः। गीष्पतिः। धूर्पतिः। धूःपतिः। विसर्जनीयबाधनार्थमत्र पक्षे रेफस्यैव रेफो विधीयते॥

भुवश्च महाव्याहृतेः ॥ ७१ ॥

भुवस् इत्येतस्य महाव्याहृतेश्छन्दसि विषये उभयथा भवति। रुर्वा रेफो वा। भुवरित्यन्तरिक्षम्। भुव इत्यन्तरिक्षम्। महाव्याहृतेरिति किम्। भुवो विश्वेषु भुवनेषु यज्ञियः *। भुवरित्येतदव्ययमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः॥

* भुवो मध्यम्। भुव इदम्। पुस्तकान्तरे एतदधिकम्।

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ ७२ ॥

ससजुषोरित्यतः स इति वर्त्तते। तेन संभवाद्व्यभिचाराच्च वसुरेव विशेष्यते। न स्रंसुध्वंसू व्यभिचाराभावाद्,संभवाच्चानडुह्शब्दः। वस्वन्तस्य पदस्य सकारान्तस्य स्रंसु ध्वंसु अनडुह् इत्येतेषां च दकारादेशो भवति। वसु। विद्वद्भ्याम्। विद्वद्भिः। पपिवद्भ्याम्। पपिवद्भिः। स्रंसु। उखास्रद्भ्याम्। उखास्रद्भिः। ध्वंसु। पर्णध्वद्भ्याम्। पर्णध्वद्भिः। अनडुह्। अनडुद्भ्याम्। अनडुद्भिः। स इत्येव। विद्वान्। पपिवान्। नकारस्य न भवति। रुत्वे नाप्राप्ते इदमारभ्यतइति तद्बाध्यते। संयोगान्तलोपस्तु नैवमिति तेनैतदेव दत्वं बाध्यते। अनडुहोपि ढत्वमनेन बाध्यते। नुमस्तु विधानसामर्थ्याच्च भवति। अनड्वान्। हे अनड्वन्निति। पदस्येत्येव। विद्वांसौ। विद्वांसः॥

तिप्यनस्तेः ॥ ७३ ॥

तिपि परतः सकारान्तस्य पदस्य अनस्तेर्दकार आदेशो भवति। अचकाद्भवान्। अन्वशाद् भवान्। तिपीति किम्। चकास्तेः क्विप्। चकाः। अनस्तेरिति किम्। आप एवेदं सलिलं सर्वमाः। आ इत्यस्तेर्लङितिपि बहुलं छन्दसीति ईडुन कृतः॥

सिपि धातो रुर्वा ॥ ७४ ॥

सिपि परतः सकारान्तस्य पदस्य धातो रुः इत्ययमादेशो भवति दकारो वा। अचकास्त्वम्। अचकात्त्वम्। अन्वशास्त्वम्। अन्वशात्त्वम्। धातुग्रहणं चोत्तरार्थं रुग्रहणं च॥

दश्च ॥ ७५ ॥

दकारान्तस्य धातोः पदस्य सिपि परतो रुर्भवति दकारो वा। अभिनत्त्वम्। अभिनस्त्वम्। अच्छिनत्त्वम्। अच्छिनस्त्वम्॥

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ॥ ७६ ॥

रेफवकारान्तस्य धातोः पदस्य उपधाया इको दीर्घो भवति। गीः। धूः। पूः। आशीः। वाग्रहणमुत्तरार्थम्। उपधाग्रहणं किम्। अबिभर्भवान्। अभ्यासेकारस्य मा भूत्। इक इति किम्। अत्रैव प्रत्युदाहरणे भशब्दाकारस्य मा भूत्। धातोरित्येव। अग्निः। वायुः। पदस्येत्येव। गिरौ। गिरः॥

हलि च ॥ ७७ ॥

हलि च परतः रेफवकारान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति। आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। अवगूर्णम्। वकारान्तस्य। दीव्यति। सीव्यति। धातोरित्येव। दिवमिच्छति दिव्यति। चतुर इच्छति चतुर्यति। इक इत्येव। स्मर्यते। भव्यम्। अपदान्तार्थोयमारम्भः॥

उपधायां च ॥ ७८ ॥

हलीत्यनुवर्त्तते । धातोरुपधाभूतौ यौ रेफवकारौ हल्परौ तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति । हुर्छा । हूर्छिता । मुर्छा । मूर्छिता । उर्वी । ऊर्विता । धुर्वी । धूर्विता । हलीत्येव । चिरि,जिरि । चिरिणोति । जिरिणोति । इह कस्माच भवति । री गतौ । रियंतुः । रियुं । वी गत्यादिषु । विव्यतुः । विव्युरिति । यणादेशस्य स्थानिवत्त्वाद् असिद्धत्वाच्च बहिरङ्गलक्षणत्वेन हल्परौ रेफवकारौ न भवतः । चतुर्यितेत्यत्रापि बहिरङ्गलक्षणत्वादतो लोपस्य धातोरुपधाभूतो रेफो न भवति । प्रतिदीव्नेत्यत्र तु हलि चेति दीर्घत्वम् । दीर्घविधौ लोपाजादेशस्य स्थानिवद्भावप्रतिषेधात् । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इत्येतत्तु नाश्रयितव्यम् । उणादयो ऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानीति जिव्रिः क्रिर्योर्गिर्योरित्येवमादिषु दीर्घो न भवति ॥

न भकुर्छुराम् ॥ ७९ ॥

रेफवकारान्तस्य भस्य कुर् छुर् इत्येतयोश्च दीर्घो न भवति । धुरं वहति धुर्यः । धुरि साधुर्धुर्यः । कुर् । कुर्यात् । छुर् । छुर्यात् । दिव्यम् । रेफवकाराभ्यां भविशेषणं किम् । प्रतिदीव्ना । प्रतिदीव्ने ॥

अदसो ऽसेर्दादु दो मः ॥ ८० ॥

अदसो ऽसकारान्तस्य वर्णस्य दात्परस्य उवर्णादेशो भवति दकारस्य च मकारः । अमुम् । अमू । अमून् । अमुना । अमूभ्याम् । भाव्यमानेनाप्युकारेण सवर्णानां ग्रहणमिष्यतइत्येकमात्रिकस्य मात्रिको द्विमात्रिकस्य द्विमात्रिक आदेशो भवति । असेरिति किम् । अद इच्छति, अदस्यति ॥ अदसो ऽनोस इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ओकाररेफयोरपि प्रतिषेधो यथा स्यादिति । अदोत्र । अदः । तदर्थे के चित्सूत्रं वर्णयन्ति । अः सेर्यस्य सोयमसिः यत्र सकारस्य अकारः क्रियतइति तेन त्यदाद्यत्वविधाने एतद् अन्यत्र न भवितव्यमेवेति । अद्व्यादेशे कथम् ।

अदसोद्रेः पृथङ् मुत्वं के चिदिच्छन्ति लत्ववत् ।
के चिदन्त्यसदेशस्य नेत्येके ऽसेर्हि दृश्यते ॥

येरसेरिति सकारस्य प्रतिषेधः क्रियते अनन्त्यविकारेन्त्यसदेशस्येति च परिभाषा नाश्रीयते तेषामुभयोरपि मुत्वेन भवितव्यम् । अमुमुयङ् । अमुमुयञ्चौ । अमुमुयञ्च इति । यथा चलीक्लृप्यतइति लत्वम् । ये तु परिभाषामाश्रयन्ति तेषामन्त्यसदेशस्यैव भवितव्यम् । अदमुयङ् । अदमुयञ्चौ । अदमुयञ्च इति । येषां तु त्यदाद्यत्वविषयएव मुत्वेन भवितव्यमिति दर्शनं तेषामत्र न

भवितव्यम् । अदद्र्यङ् । अदद्र्यञ्चौ । अदद्र्यञ्च इति । दादिति किम् । अलोन्त्यस्य मा भूत् । अमुया । अमुयोः ॥

एत ईद्बहुवचने ॥ ८१ ॥

अदसो दकारादुत्तरस्य एकारस्य ईकारादेशो भवति दकारस्य च मकारः बहुवचने बहूनामर्थानामुक्तौ । अमी । अमीभिः । अमीभ्यः । अमीषाम् । अमीषु । बहुवचनइत्यर्थनिर्द्देशोयं, पारिभाषिकस्य हि बहुवचनस्य ग्रहणे ऽमी इत्यत्र न स्यात् ॥

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ॥ ८२ ॥

अधिकारोयम् । वाक्यस्य टेरिति प्लुत इति च उदात्त इति च एतत्त्रयमप्यधिकृतं वेदितव्यमापादपरिसमाप्ते,र्यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्त इत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । प्रत्यभिवादेऽशूद्रे । अभिवादये देवदत्तोहं, भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३ । पदाधिकारोनुवर्त्ततएव । वाक्यग्रहणमनन्त्यस्य पदस्य प्लुतनिवृत्त्यर्थम् । टिग्रहणं व्यञ्जनान्तस्यापि टेरचः प्लुतो यथा स्यात् । अग्निचि ३ दिति ॥

प्रत्यभिवादे ऽशूद्रे ॥ ८३ ॥

प्रत्यभिवादो नाम यदत्राभिवाद्यमानो गुरुराशिषं प्रयुङ्क्ते तत्राशूद्रविषये यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुत उदात्तो भवति । अभिवादये देवदत्तोहं, भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३ । अशूद्रइति किम् । अभिवादये तुषजकोहं, भो आयुष्मानेधि तुषजक ॥ स्त्रियामपि प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ अभिवादये गार्ग्यहं, भो आयुष्मती भव गार्गि । असूयकेपि के चित् प्रतिषेधमिच्छन्ति । अभिवादये स्थाल्यहं भोः । आयुष्मानेधि स्थालिन् । यावच्च तस्यासूयकत्वं न ज्ञायते तावदेव प्रत्यभिवादवाक्यम् । तस्मिंस्त्वसूयकत्वेन निर्ज्ञाते प्रत्यभिवाद एव नास्ति कुतः प्लुतः तथा ह्युक्तम्, असूयकस्त्वं जाल्म न त्वं प्रत्यभिवादनमर्हसि । भिद्यस्व वृषल स्थालिचिति ॥ अभिवादवाक्ये यत् संकीर्त्तितं नाम गोत्रं वा तद् यत्र प्रत्यभिवादवाक्यान्ते प्रयुज्यते तत्र प्लुत इष्यते ॥ इह न भवति । देवदत्त कुशल्यसि । देवदत्त आयुष्मानेधीति ॥ भोराजन्यविशां वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भो अभिवादये देवदत्तोहम्, आयुष्मानेधि देवदत्त भोः ३ । आयुष्मानेधि देवदत्त भोः । राजन्य । अभिवादये इन्द्रवर्म्माहं भोः । आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्म ३ न् । आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्मन् । विश् । अभिवादये इन्द्रपालितोहं भोः । आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ । आयुष्मानेधीन्द्रपालित ॥

दूराद्धूते च ॥ ८४ ॥

दूराद्धूते यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुतो भवति स चोदात्तः । आह्वानं हूतं शब्देन सम्बोधनम् । आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३ । आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त ३ । दूरं यद्यप्यपेक्षाभेदादनवस्थितं तथापि हूतापेक्षं यत्तदाश्रीयते इति यत्र प्राकृतात्प्रयत्नादधिकविशेषे आश्रीयमाणे शब्दः श्रूयते तद्दूरम् । हूतग्रहणं च सम्बोधनमात्रोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम् । तेन यत्राप्याह्वानं नास्ति तत्रापि प्लुतिर्भवति । सक्तून्पिब देवदत्त ३ । पलायस्व देवदत्त ३ इति ॥ अस्याश्च प्लुतेरेकश्रुत्या समावेश इष्यते ॥ दूरादिति किम् । आगच्छ भो माणवक देवदत्त ॥ दूरादाह्वाने वाक्यस्यान्ते यत्र सम्बोधनपदं भवति तत्रायं प्लुत इष्यते ॥ तेनेह न भवति । देवदत्त आगच्छ * ॥

हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ८५ ॥

हैहेप्रयोगे दूराद्धूते यद्वाक्यं वर्त्तते तत्र हैहयोरेव प्लुतो भवति । है ३ देवदत्त । देवदत्त है ३ । हे ३ देवदत्त । देवदत्त हे ३ । पुनर्हैहयोर्ग्रहणमनन्त्ययोरपि यथा स्यात् ॥

गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ॥ ८६ ॥

प्रत्यभिवादे ऽशूद्र इत्येवमादिना यः प्लुतो विहितस्तस्यैवायं स्थानिविशेष उच्यते । ऋकारवर्जितस्य गुरोरनन्त्यस्यापिशब्दादन्त्यस्यापि टेरेकैकस्य सम्बोधने वर्त्तमानस्य प्लुतो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन । दे३वदत्त । देवद३त्त । देवदत्त३ । य३ज्ञदत्त । यज्ञद३त्त । यज्ञदत्त३ । गुरोरिति किम् । वकारात्परस्य मा भूत् । अनृत इति किम् । कृष्णमि३त्र । कृष्णमित्र३ । एकैकग्रहणं पर्यायार्थम् । प्राचामिति ग्रहणं विकल्पार्थम् । आयुष्मानेधि देवदत्त । तदनेन यदेतदुच्यते सर्व एव प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा कर्त्तव्य इति तदुपपन्नं भवति ॥

ओमभ्यादाने ॥ ८७ ॥

अभ्यादानं प्रारम्भः । तत्र य ओम्शब्दः तस्य प्लुतो भवति । ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितम् । अभ्यादानइति किम् । ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥

ये यज्ञकर्म्मणि ॥ ८८ ॥

ये इत्येतस्य यज्ञकर्म्मणि प्लुतो भवति । ये ३ यजामहे । यज्ञकर्म्मणीति किम् । ये यजामहइति पञ्चाक्षरमिति स्वाध्यायकाले मा भूत् ॥ ये यजामहइत्यत्रैवायं प्लुत इष्यते ॥ इह हि न भवति । ये देवासो दिव्येकादशस्थ इति ॥

प्रणवष्टेः ॥ ८९ ॥

---

* दूरादाह्वाने वाक्यस्यान्ते यत्रेत्यारभ्य देवदत्त आगच्छेत्यन्तं पुस्तकान्तरे नास्ति ।

यज्ञकर्म्मणीति वर्त्तते । यज्ञकर्म्मणि टेः प्रणव आदेशो भवति । क एष प्रणवो नाम पादस्य वार्द्धर्चस्य वान्त्यमक्षरमुपसंहृत्य तदाद्यक्षरशेषस्य स्थाने त्रिमात्रमोकारमोङ्कारं वा विदधति तं प्रणवमित्याचक्षते । अपां रेतांसि जिन्वतो३म् । देवान् जिगाति सुम्नयों३म् । टिग्रहणं सर्वादेशार्थम् * । ओकारः सर्वादेशो यथा स्यात् । व्यञ्जनान्ते अन्त्यस्य मा भूदिति । यज्ञकर्म्मणीत्येव । अपां रेतांसि जिन्वति ॥

याज्यान्तः ॥ ९० ॥

याज्या नाम ये याज्याकाण्डे पठ्यन्ते मन्त्रास्तेषामन्त्यो यष्टिः स प्लवते यज्ञकर्मणि । स्तोमैर्विधेमाग्नये३ । जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहाम्३ । अन्तग्रहणं किम् । याज्या नाम ऋचः काश्चिद्वाक्यसमुदायरूपास्तत्र यावन्ति वाक्यानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति । सर्वान्त्यस्यैवेष्यते तदर्थमन्तग्रहणम् ॥

ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ॥ ९१ ॥

ब्रूहि प्रेष्य श्रौषट् वौषट् आवह इत्येतेषामादेः प्लुतो भवति यज्ञकर्म्मणि । अग्नये ऽनुब्रू३हि । प्रेष्य । अग्नये गोमयान्प्रे३ष्य । श्रौषट् । अस्तु श्रौ३षट् । वौषट् । सोमस्याग्ने वीहीे३वौ३षट् । आवह । अग्निमा३वह । आवह देवान्यजमानायेत्येवमादावयं प्लुतो न भवति । सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्तइति ॥

अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ॥ ९२ ॥

अग्नीधः प्रेषणमग्नीत्प्रेषणम् । तत्रादेः प्लुतो भवति परस्य च । आ३श्रा३वय । ओ३श्रावय ॥ अत्रैवायं प्लुत इष्यते ॥ तेनेह न भवति । अग्नीदग्नीन्विहर बर्हिस्तृणीहीति । तदर्थं केचिद्वक्ष्यमाणं विभाषेत्यभिसंबध्नन्ति । सा च व्यवस्थितविभाषेति । अपर आह । सर्व एव प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा विज्ञेय इति । इह तु उद्धर३उद्धर । अभिहर३ । अभिहरेति । छान्दसः प्लुतव्यत्ययः । यज्ञकर्म्मणीत्येव । ओ श्रावय ॥

विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ॥ ९३ ॥

पृष्टप्रतिवचने विभाषा हेः प्लुतो भवति । अकार्षीः कटं देवदत्त । अकार्षं हि३ । अकार्षं हि । अलावीः केदारं देवदत्त । अलाविषं हि३ । अलाविषं हि । पृष्टप्रतिवचनइति किम् । कटं करिष्यति हि । हेरिति किम् । करोमि ननु ॥

निगृह्यानुयोगे च ॥ ९४ ॥

स्वमतात्प्रच्यावनं निग्रहः । अनुयोगस्तस्य मतस्याविष्करणम् । तत्र निगृह्यानुयोगे यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुतो भवति विभाषा । अनित्यः शब्द

* टेरिति वर्त्तमाने इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

इति केन चित्प्रतिज्ञातं तमुपालिप्सुरुपपत्तिभिर्निगृह्य साभ्यसूयमनुयुङ्क्ते । अनित्यः शब्द इत्यात्थ ३ । अनित्यः शब्द इत्यात्थ । अद्य श्राद्धमित्यात्थ३ । अद्य श्राद्धमित्यात्थ । अद्यामावास्येत्यात्थ३ । अद्यामावास्येत्यात्थ । अद्य अमावास्येत्येवं वादी युक्त्या प्रच्याव्य स्वमतादेवमनुयुज्यते ॥

आम्रेडितं भर्त्सने ॥ ९५ ॥

वाक्यादेरामन्त्रितस्येति भर्त्सने द्विर्वचनमुक्तं तस्याम्रेडितं प्लवते । चौर-चौर ३, वृषलवृषल ३, दस्योदस्यो ३, घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामि त्वा ॥ भर्त्सने पर्यायेणेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चौर ३ चौर । चौरचौर ३ । तदर्थमाम्रेडितग्रहणं द्विरुक्तोपलक्षणार्थं वर्णयन्ति ॥

अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ॥ ९६ ॥

अङ्गइत्यनेन युक्तं तिङन्तमाकाङ्क्षं भर्त्सने प्लवते । अङ्ग कूज ३ । अङ्ग व्याहर ३ । इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । तिङिति किम् । अङ्ग देवदत्त मिथ्या वदसि । आकाङ्क्षमिति किम् । अङ्ग पच । नैतदपरमाकाङ्क्षति । भर्त्सनइत्येव । अङ्गाधीष्व ओदनं ते दास्यामि ॥

विचार्यमाणानाम् ॥ ९७ ॥

प्रमाणेन वस्तुपरीक्षणं विचारः । तस्य विषये विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुतो भवति । होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ । होतव्यं न होतव्यमिति विचार्यते । तिष्ठेद्यूप ३ इ । अनुप्रहरेद्यूप ३ इ । यूपे तिष्ठेद्यूपे अनुप्रहरेदिति विचार्यते ॥

पूर्वं तु भाषायाम् ॥ ९८ ॥

भाषायां विषये विचार्यमाणानां पूर्वमेव प्लवते । अहिर्नु ३ । रज्जुर्नु । लोष्टो नु ३ । कपोतो नु * । प्रयोगापेक्षं पूर्वत्वम् । इह भाषाग्रहणात्पूर्वयोगश्छन्दसि विज्ञायते ॥

प्रतिश्रवणे च ॥ ९९ ॥

प्रतिश्रवणमभ्युपगमः प्रतिज्ञानम् । श्रवणाभिमुख्यं च तत्राविशेषात्सर्वस्य ग्रहणम् । प्रतिश्रवणे यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुतो भवति । गां देहि भोः, अहं ते ददामि ३ । नित्यः शब्दो भवितुमर्हति । देवदत्त भोः किमात्थ ३ ॥

अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ॥ १०० ॥

अनुदात्तः प्लुतो भवति प्रश्नान्ते अभिपूजिते च † । अगमः३ पूर्वा३न्

---

* स्थाणुर्नु३ । पुरुषो नु३ । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।
† नानेन प्लुतो विधीयते किं तु दूराद्धूतादिषु विहितस्यानन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोरिति स्वरितप्लुतस्यानुदात्तत्वं गुणमात्रं विधीयते इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

ग्रामा३न् अग्निभूत ३ इ । पटा ३ उ । अग्निभूते पटो इत्येतयोः प्रश्नान्ते वर्त्तमानयोरनुदात्तः प्लुतो भवति । अगम इत्येवमादीनां तु अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोरिति स्वरितः प्लुतो भवति । अभिपूजिते । शोभनः खल्वसि माणवक ३ ।

चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ॥ १०१ ॥

अनुदात्तमिति वर्त्तते । चिदित्येतस्मिन्निपाते उपमार्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतो भवति । प्लुतोऽत्र विधीयते न गुणमात्रम् । अग्निचिद्भाया ३त् । राजचिद्भायात् ३ । अग्निरिव भायात् । राजेव भायादित्यर्थः । उपमार्थ इति किम् । कथं चिदाहुः । प्रयुज्यमान इति किम् । अग्निर्माणवको भायात् ॥

उपरिस्विदासीदिति च ॥ १०२ ॥

अनुदात्तमित्ति वर्त्तते । उपरिस्विदासीत्येतस्य टेरनुदात्तः प्लुतो भवति । अधः स्विदासी ३ त् । उपरि स्विदासी ३ त् । अधः स्विदासीदित्यत्र विचार्यमाणानामित्युदात्तः प्लुतः । उपरिस्विदासीदित्यत्र तु अनेनानुदात्तः ॥

स्वरितमाम्रेडितेसूयासंमतिकोपकुत्सनेषु ॥ १०३ ॥

स्वरितः प्लुतो भवति आम्रेडिते परतः असूयायां संमतौ कोपे कुत्सने च गम्यमाने । वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेष्विति द्विर्वचनमुक्तं तत्रायं प्लुतविधिः । असूयायां तावत् । माणवक ३ माणवक । अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं तआभिरूप्यम् । संमतौ । माणवक ३ माणवक अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि । कोपे । माणवक ३ माणवक अविनीतक ३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । कुत्सने । शाक्तीक ३ शाक्तीक याष्टीक ३ याष्टीक रिक्ता ते शक्तिः ॥ असूयादिषु वावचनं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ माणवक माणवकेत्येवमाद्यपि यथा स्यात् ॥

क्षियाशीः प्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् ॥ १०४ ॥

स्वरित इति वर्त्तते । क्षिया आचारभेदः । आशीः प्रार्थनाविशेषः । शब्देन व्यापारणं प्रैषः । एतेषु गम्यमानेषु तिङन्तमाकाङ्क्षं यत्तस्य स्वरितः प्लुतो भवति । आकाङ्क्षतीत्याकाङ्क्षं तिङन्तमुत्तरपदमाकाङ्क्षतीत्यर्थः । क्षियायां तावत् । स्वयं रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयतीति । स्वयं ओदनं ह भुङ्क्ते उपाध्यायं सक्तून्पाययति । पूर्वमत्र तिङन्तमुत्तरमाकाङ्क्षतीति साकाङ्क्षं भवति । आशिषि । सुतांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात । छन्दोध्यषीष्ट ३ व्याकरणं च, भद्र । प्रैषे । कटं कुरु ३ ग्रामं च गच्छ । यवान् लुनाहि ३ सक्तूंश्च पिब । आकाङ्क्षमिति किम् । दीर्घं ते आयुरस्तु । अग्नीन्विहर ॥

अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ॥ १०५ ॥

पदस्येति वर्त्तते स्वरितमिति च । अनन्त्यस्यापि अन्त्यस्यापि पदस्य टेः प्लुतो भवति प्रश्ने आख्याने च । आगम३ः३पूर्वा३न्ग्रामा३न् । अग्निभूत३इ । पट३उ । सर्वेषामेव पदानामेष स्वरितः प्लुतः । अन्त्यस्य अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोरिति । अनुदात्तोपि पक्षे भवति । आख्याने । अगम३ः पूर्वा३न्ग्रामा३न्भोः३ ॥

प्लुतावैच इदुतौ ॥ १०६ ॥

दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितः तत्र ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवभूताविदुतौ प्लुतौ । ऐ३तिकायन । औ३पगव । अत्र यदैवर्णावर्णयोरवर्णस्य च समविभागस्तदा इदुतौ द्विमात्रावनेन प्लुतौ क्रियेते । प्लुताविति हि क्रियानिमित्तोयं व्यपदेशः इदुतौ प्लवेते वृद्धिं गच्छत इत्यर्थः । तावती च स प्लुतिर्भवति । यया तावैचौ त्रिमात्रौ संपद्येते । यदा त्वर्द्धमात्रावर्णस्याध्यर्द्धमात्रा इवर्णोवर्णयोस्तदा तावर्द्धतृतीयमात्रौ क्रियेते इति । भाष्ये तूक्तमिष्यते चतुर्मात्रः प्लुत इति । तत्कथं, समप्रविभागपक्षे इदुतोरनेन त्रिमात्रः प्लुतो विधीयते ॥

एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्द्धस्यादुत्तरस्येदुतौ ॥ १०७ ॥

एचो ऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते प्लुतविषयस्यार्द्धस्याकार आदेशो भवति च स प्लुतः उत्तरस्येकारोकारावादेशौ भवतः । विषयपरिगणनं कर्त्तव्यम् ॥ प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्विति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्रश्नान्ते । अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ । पटा३उ । अभिपूजिते । भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूत३इ । पट३उ । विचार्यमाणे । होतव्यं दीक्षितस्य गृह३इ । प्रत्यभिवादे । आयुष्मानेधि अग्निभूत३इ । पट३उ । याज्यान्ते । उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नय३इ । सोयमाकारः प्लुतो यथाविषयमुदात्तो ऽनुदात्तः स्वरितो वेदितव्यः । इदुतौ पुनरुदात्तावेव भवतः । परिगणनं किम् । विष्णुभूते विष्णुभूते३ घातयिष्यामि त्वा । आगच्छ भो माणवक विष्णुभूते । परिगणने च सत्यदूराद्धूतइति न वक्तव्यम् । पदान्तग्रहणं तु कर्त्तव्यम् । इह मा भूत् । भद्रं करोषि गौरिति । अप्रगृह्यस्येति किम् । शोभने खलु स्थः खट्वे३ ॥ आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोयं वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्न३इ पत्नीव३ः ॥

तयोर्य्वावचि संहितायाम् ॥ १०८ ॥

तयोरिदुतोर्यकारवकारादेशौ भवतो ऽचि संहितायां विषये । संहितायामित्येतच्चाधिकृतमिति उत्तरमाध्यायपरिसमाप्तेर्यद्वक्ष्यामः संहितायामि-

त्येवं तद्वेदितव्यम् । अग्ना३वाशा । पटा३वाशा । अग्ना३यिन्द्रम् । पटा३वुद-कम् । अचीति किम् । अग्ना३इ । पटा३उ । संहितायामिति किम् । अग्ना-३इ इन्द्रम् । पटा३उ उदकम् । इदुतोरसिद्धत्वादिको यणचीति न प्राप्नोती-त्ययमारम्भः । अथापि कथं चित्तयोः सिद्धत्वं स्यादेवमपि सवर्णदीर्घत्वनिवृ-त्त्यर्थं शाकलनिवृत्त्यर्थं च वक्तव्यमेतत् । अथापि तन्निवृत्त्यर्थं यत्नान्तरमस्ति तथापि यण्स्वरनिवृत्त्यर्थमिदमारभ्यते । यणादेशस्यासिद्धत्वाद् उदात्तस्वरित-योर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्येत्येष स्वरो न भवति ॥

किं तु यणा भवतीह न सिद्धं य्वाविदुतोर्यदयं विदधाति ।
तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ शाकलदीर्घविधी तु निवर्त्यौ ॥
इक्तु यदा भवति प्लुतपूर्वस्तस्य यणं विदधात्यपवादम् ।
तेन तयोश्च न शाकलदीर्घौ यण्स्वरबाधनमेव तु हेतुः ॥

॥ इति काशिकायां वृत्तौ अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि ॥ १ ॥

संहितायामिति वर्त्तते । मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च पदस्य रुरित्ययमा-देशो भवति सम्बुद्धौ परतः छन्दसि विषये । मत्वन्तस्य तावत् । इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम् । हरिवो मेदिनं त्वा । मरुतोऽस्य सन्ति, हरयोऽस्य सन्ति, इति मतुप् । सुप्तमोर्हल्ङ्यादिलोपे संयोगान्तस्य लोपे च कृते नकारस्य रुर्भ-वति । वस्वन्तस्य खल्वपि । मीढ्वस्तोकाय तनयाय । इन्द्र साह्वः । क्वसोर्नि-पातनं दाश्वान् साह्वानिति । मतुवसोरिति किम् । ब्रह्मन्स्तोष्यामः । संबु-द्धाविति किम् । य एवं विद्वानग्निमाधत्ते । छन्दसीति किम् । हे गोमन् । हे पपिवन् ॥ वन उपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः । इणः प्रातः पूर्वस्य छन्दसि क्वनिप् ॥ विभाषा भवद्भगवदघवतामोच्चा-वस्य ॥ * ॥ छन्दसि भाषायां च भवद् भगवद् अघवद् इत्येतेषां विभाषा रुर्वक्तव्यो ऽवशब्दस्य च ओकारादेशः । समासेन छन्दसि भाषायां चेदं वच-नम् । भवत् । हे भोः । हे भवन् । भगवद् । हे भगोः । हे भगवन् । अघ-वत् । हे अघोः । हे अघवन् । निपातनविज्ञानाद्वा सिद्धम् । अथ वा भोइ-त्येवमादयो निपाता द्रष्टव्याः । असंबुद्धावपि द्विवचनबहुवचनयोरपि दृश्यन्ते । भो देवदत्तयज्ञदत्तौ । भो देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्राः । तथा स्त्रियामपि च

दृश्यन्ते । भो ब्राह्मणि । संहिताधिकार उत्तरत्रोपयुज्यते यत्र भिन्नपदस्था निमित्तनिमित्तिनौ । नश्छव्यप्रशानिति * ॥

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ॥ २ ॥

अधिकारोयम् । इत उत्तरं यस्य स्थाने रुर्विधीयते ततः पूर्वस्य तु वर्णस्य वाऽनुनासिको भवतीत्येतदधिकृतं वेदितव्यम् । यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्र । वक्ष्यति । समः सुटि । सँस्कर्त्ता । सँस्कर्त्तुम् । सँस्कर्त्तव्यम् । अत्रग्रहणं रुणा सह संनियोगप्रतिपत्त्यर्थम् । अधिकारपरिमाणापरिग्रहे हि सति ढो ढे लोप इत्यत्रापि पूर्वस्यानुनासिक आशङ्क्येत ॥

आतोऽटि नित्यम् ॥ ३ ॥

अटि परतो रोः पूर्वस्याकारस्य स्थाने नित्यमनुनासिकादेशो भवति । दीर्घादटि समानपाद इति रुत्वं वक्ष्यति । ततः पूर्वस्यातोऽनुनासिकविकल्पे प्राप्ते । नित्यार्थं वचनम् । महाँ असि । महां इन्द्रो य ओजसा । देवाँ अच्छादीध्यत् । के चिदनुस्वारमधीयते । स च्छान्दसो व्यत्ययो द्रष्टव्यः । आत इति किम् । ये वा वनस्पतींरनु । अटीति किम् । भवांश्चरति भवांश्छादयति । नित्यग्रहणं विस्पष्टार्थम् † ॥

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ॥ ४ ॥

अन्यशब्दोऽत्राध्याहर्त्तव्यः । तदपेक्षया चेयमनुनासिकादिति पञ्चमी । अनुनासिकादन्यो यो वर्णः रोः पूर्वः यस्यानुनासिको न विहितस्ततः परोऽनुस्वार आगमो भवति । वक्ष्यति । समः सुटि । संस्कर्त्ता । संस्कर्त्तव्यम् । पुमः खय्यम्परे । पुंस्कामा । नश्छव्यप्रशान् । भवांश्चरति । के चित्तु परशब्दमेवान्यार्थं वर्णयन्ति । अनुनासिकात्परोऽनुनासिकादन्योऽनुस्वारो भवति । यस्मिन्पक्षेऽनुनासिको नास्ति तत्रानुस्वारागमो भवति । स तु कस्यागमो भवति रोः पूर्वस्यैवेति वर्त्तते व्याख्यानादादेशो न भवति ॥

समः सुटि ॥ ५ ॥

रुर्वर्त्तते । सम इत्येतस्य रुर्भवति सुटि परतः संहितायां विषये । संस्कर्त्ता । संस्कर्त्तुम् । संस्कर्त्तव्यम् । संस्स्कर्त्ता । संस्स्कर्त्तुम् । संस्स्कर्त्तव्यम् । अत्र रोर्विसर्जनीये कृते वा शरीति पक्षे विसर्जनीय एव प्राप्नोति । व्यवस्थितविभाषा द्रष्टव्या । तेनात्र नित्यं सकार एव भवति । अस्मिन्नेव सूत्रे सकारादेशो वा निर्द्दिश्यते । समः सुटीति द्विसकारको निर्द्देशः । सम इति किम् ।

* संहिताधिकार उत्तरत्रेत्यत आरभ्य नश्छव्यप्रशानित्यन्तः पाठः पुस्तकान्तरे नास्ति ।
† नित्यग्रहणं नियमाशङ्कापरिहारार्थमिति पाठः पुस्तकान्तरे ।

उपस्कर्त्ता । सुटीति किम् । संकृतिः । कश्चिदाह ॥ संपुंकानां सो वक्तव्यः ॥ * ॥ रुविधौ ह्यनिष्टप्रसङ्गः । संस्स्कर्त्ता । पुंस्स्कामा । कांस्स्कानिति ॥

पुमः खय्यम्परे ॥ ६ ॥

पुमित्येतस्य रुर्भवति अम्परे खयि परतः । पुँस्कामा । पुंस्कामा । पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । पुँस्फलम् । पुंस्फलम् । पुँश्चली । पुंश्चली । पुंस्कामेत्यत्र विसर्जनीयस्य कुप्वोः ᳲकᳲपौ चेति प्राप्नोति । तस्मादत्र सकार एवादेशो वक्तव्यः । द्विसकारकनिर्द्देशपक्षे तु पूर्वस्मादेव सूत्रात्स इत्यनुवर्त्तते । रुत्वं त्वनुवर्त्तमानमपि नात्राभिसंबध्यते । संबन्धानुवृत्तिस्तस्येति । खयीति किम् । पुंदासः । पुंगवः । अम्परइति किम् । पुंक्षीरः । पुंक्षुरः । परग्रहणं किम् । पुमाख्यः । पुमाचारः ॥

नश्छव्यप्रशान् ॥ ७ ॥

अम्परइति वर्त्तते । नकारान्तस्य पदस्य प्रशान्वर्जितस्य रुर्भवत्यम्परे छवि परतः । भवांश्छादयति २ । भवांश्चिनोति २ । भवांष्टीकते २ । भवांस्तरति २ । छवीति किम् । भवान्करोति । अप्रशानिति किम् । प्रशाञ्छादयति । प्रशान् चिनोति । अम्परइत्येव । भवान्त्सरुकः ॥

उभयथर्क्षु ॥ ८ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पः क्रियते । नकारान्तस्य पदस्य छवि परतः अम्परे उभयथा ऋक्षु भवति । रुर्वा नकारो वा । तस्मिंस्त्वा दधाति । तस्मिन्त्वा दधाति । ऋक्ष्विति किम् । तांस्त्वं खादं सुखादितान् ॥

दीर्घादटि समानपादे ॥ ९ ॥

न इत्यनुवर्त्तते । दीर्घादुत्तरस्य पदान्तस्य नकारस्य रुर्भवत्यटि परतस्तौ चेन्निमित्तनिमित्तिनौ समानपदे भवतः । ऋक्ष्विति प्रकृतत्वादृक्पाद एह गृह्यते । परिधीँ रति । देवाँ अच्छादीध्यत् । महाँ इन्द्रो य ओजसा । दीर्घादिति किम् । अहन्नहिम् । अटीति किम् । इभ्यान्त्सत्रियान् । समानपादइति किम् । यातुधानानुपस्पृशः । उभयथेत्येव । आदित्यान् हवामहे ॥

नॄन्पे ॥ १० ॥

नॄनित्येतस्य नकारस्य रुर्भवति पशब्दे परतः । अकारउच्चारणार्थः । नॄँःपाहि । नॄंःपाहि । नॄँःप्रीणीहि । नॄंःप्रणीहि । पइति किम् । नॄन्भोजयति । उभयथेत्यपि के चिदनुवर्त्तयन्ति । नॄन्पाहीत्यपि यथास्यात् ॥

स्वतवान्पायौ ॥ ११ ॥

स्वतवानित्येतस्य नकारस्य रुर्भवति पायुशब्दे परतः । स्वतवाँः पायुरग्ने ॥

कानाम्रेडिते ॥ १२ ॥

कानित्येतस्य नकारस्य रुर्भवति आम्रेडिते परतः। कांस्कानामन्त्रयते। कांस्कान्भोजयति। अस्य कस्कादिषु पाठो द्रष्टव्यः। तेन कुप्वोः ≍क≍पौ चेति न भवति। समः सुटीत्यतो वा सकारो ऽनुवर्त्तते स एवात्र विधीयते। पूर्वेषु योगेषु संबन्धानुवृत्त्या गतस्य रोरत्रानभिसंबन्धः। आम्रेडितइति किम्। कान् कान्पश्यति। एकोत्र कुत्सायाम्॥

ढो ढे लोपः ॥ १३ ॥

ढकारस्य ढकारे लोपो भवति। सत्यपि पदाधिकारे तस्यासंभवादपदान्तस्य ढकारस्यायं लोपो विज्ञायते। लीढम्। उपगूढम्। ष्टुत्वस्यात्र सिद्धत्वमाश्रयाद् द्रष्टव्यम्। श्वलिड्ढौकतइत्यत्र तु जश्त्वे कृते कार्यं नास्तीति लोपाभावः। न च ढलोपो जश्त्वापवादो विज्ञातुं शक्यते। तस्य हि लीढादिर्विषयः संभवति। तत्र हि श्रुतिकृतमानन्तर्यमस्ति शास्त्रकृतं तु यदा नानान्तर्यं ष्टुत्वस्यासिद्धत्वेन प्राप्तं तत्तु सूत्रकरणसामर्थ्याद्बाध्यते। श्वलिड्ढौकतइत्यत्र तु न श्रुतिकृतमानन्तर्यं न शास्त्रकृतमिति अविषयोयं ढलोपस्य॥

रो रि ॥ १४ ॥

रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति। नीरक्तम्। दूरक्तम्। अग्नी रथः। इन्दू रथः। पुना रक्तं वासः। प्राता राजक्रयः। पदस्येत्यत्र विशेषणे षष्ठी तेन पदान्तस्यापि रेफस्य लोपो भवति। जर्घ्रेरजर्घाः। पास्पर्द्धेरपास्पाः इति॥

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ १५ ॥

र इति वर्त्तते। रेफान्तस्य पदस्य खरि परतो ऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति। वृक्षश्छादयति। प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति। प्लक्षस्तरति *। अवसाने। वृक्षः। प्लक्षः। खरवसानयोरिति किम्। अग्निर्नयति। वायुर्नयति। इह नृकुट्यां भवः, नार्कुटः। नृपतेरपत्यं नार्पत्य इति। वृद्धेर्बहिरङ्गलक्षणत्वात्तदाश्रयस्य रेफस्यासिद्धं बहिरङ्गमित्यसिद्धत्वाद्विसर्जनीयो न भवति॥

रोः सुपि ॥ १६ ॥

रु इत्येतस्य रेफस्य सुपि परतो विसर्जनीयादेशो भवति। पयःसु। सर्प्पिःषु। यशःसु। सुपीति सप्तमीबहुवचनं गृह्यते। सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः। रोरेव सुपि विसर्जनीयादेशो नान्यस्य। गीर्षु। धूर्षु॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ॥ १७ ॥

---

* वृक्षश्चिनोति। प्लक्षश्चिनोति। वृक्षष्टीकते। प्लक्षष्टीकते। इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

भो भगो अघो इत्येवंपूर्वस्य अवर्णपूर्वस्य च रो रेफस्य यकारादेशो भवति असि परतः । भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो ददाति । अघो ददाति । अवर्णपूर्वस्य । क आस्ते । कय् आस्ते । ब्राह्मणा ददति । पुरुषा ददति । भोभगोअघोअपूर्वस्येति किम् । अग्निरत्र । वायुरत्र । अशिग्रहणं किम् । वृक्षः । प्लक्षः । नैतदस्ति । संहितायामित्यनुवर्त्तते । तर्हि अशिग्रहण मुत्तरार्थम् । हलि सर्वेषामित्ययं लोपो ऽशि हलि यथा स्यात् । इह मा भूत् । वृक्षं वृश्चतीति वृक्षवृट्, तमाचष्टे यः स वृक्षवयति । वृक्षवयतेरप्रत्ययः, वृक्षव् करोति । अथ तत्रैव अशिग्रहणं कस्मान् न कृतम् । उत्तरार्थम् । मोनुस्वार इति हल्मात्रे यथा स्यात् । व्योर्लघुप्रयत्नतरः । शाकटायनस्य लोपः शाकल्यस्येत्येतच्च वृक्षव् करोतीत्यत्र मा भूदित्यशिग्रहणम् । रोरित्येव । प्रातरत्र । पुनरत्र ॥

व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥ १८ ॥

वकारयकारयोर्भोभगोअघोअवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति अशि परतः शकटायनस्याचार्यस्य मतेन । भगोयत्र । अघोयत्र । क आस्ते । कयास्ते । अस्मायुद्धर । अस्मा उद्धर । असावादित्यः । असा आदित्यः । द्वावत्र । द्वा अत्र । द्वावानय । द्वा आनय । लघुप्रयत्नतरत्व-मुच्चारणे स्थानकरणशैथिल्यम् । स्थानं ताल्वादि । करणं जिह्वामूलादि । तयोरुच्चारणे शैथिल्यं मन्दप्रयत्नता ॥

लोपः शाकल्यस्य ॥ १९ ॥

वकारयकारयोः पदान्तयोरवर्णपूर्वयोर्लोपो भवति शाकल्यस्याचार्यस्य मतेनाशि परतः । क आस्ते । कयास्ते । काक आस्ते । काकयास्ते । अस्मा उद्धर । अस्मायुद्धर । द्वावत्र । द्वा अत्र । असावादित्यः । असा आदित्यः । शाकल्यग्रहणं विभाषार्थम् । तेन यदापि लघुप्रयत्नतरो न भवत्यादेशस्तदापि व्योः पक्षे श्रवणं भवति ॥

ओतो गार्ग्यस्य ॥ २० ॥

ओकारादुत्तरस्य यकारस्य लोपो भवति गार्ग्यस्याचार्य्यस्य मतेन अशि परतः । भो अत्र । भगो अत्र । भो इदम् । भगो इदम् । नित्यार्थोयमारम्भः । गार्ग्यग्रहणं पूजार्थम् । योयमलघुप्रयत्नस्य विकल्पेन लोपः क्रियते सोऽनेन निव-र्त्यते । लघुप्रयत्नतरस्तु भवत्येव यकारः । भो अत्र । भोयत्र । भगो अत्र । भगोयत्र । अघो अत्र । अघोयत्र । के चित्तु सर्वमेव यकारमत्र नेच्छन्ति ॥

उञि च पदे ॥ २१ ॥

अवर्णपूर्वयोः व्योः पादान्तयोर्लोपो भवति उञि च पदे परतः । स

उ एकविंशतिः । स उ एकाग्निः । पद इति किम् । तन्त्र उतं, तन्त्रयुतम् । वेञः संप्रसारणे कृते उञिति भूतपूर्वेण ञकारेण शक्यते प्रतिपत्तुमिति । अथ उञित्येवंरूपो निपातः प्रतिपदोक्तो ऽस्ति तदा लाक्षणिकत्वाद्विआदेशस्य ग्रहणमिह नास्ति उत्तरार्थं पदग्रहणं क्रियते ॥

हलि सर्वेषाम् ॥ २२ ॥

हलि परतो भोभगोअघोअपूर्वस्य यकारस्य पदान्तस्य लोपो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन । भो हसति । भगो हसति । अघो हसति । भो याति । भगो याति । अघो याति । वृक्षा हसन्ति । सर्वेषांग्रहणं शाकटायनस्यापि लोपो यथा स्यात्, लघुप्रयत्नतरो मा भूदिति ॥

मो ऽनुस्वारः ॥ २३ ॥

मकारस्य पदान्तस्यानुस्वार आदेशो भवति हलि परतः । कुण्डं हसति । वनं हसति । कुण्डं याति । हलीत्येव । त्वमत्र । किमत्र । पदान्तस्येत्येव । गम्यते । रम्यते ॥

नश्चापदान्तस्य झलि ॥ २४ ॥

नकारस्य मकारस्य चापदान्तस्यानुस्वारादेशो भवति झलि परतः । पयांसि । यशांसि । सर्पींषि । धनूंषि । मकारस्य । आक्रंस्यते । आक्रिंस्यते । अधिजिगांसते । अपदान्तस्येति किम् । राजन्भुङ्क्ष्व । झलीति किम् । रम्यते । गम्यते ॥ दिपष्ठिबति

मो राजि समः क्वौ ॥ २५ ॥

समो मकारस्य मकार आदेशो भवति राजतौ क्विप्प्रत्ययान्ते परतः । सम्राट् । साम्राज्यम् । मकारस्य मकारवचनमनुस्वारनिवृत्त्यर्थम् । राजीति किम् । संयत् । सम इति किम् । किं राट् । क्वाविति किम् । संराजिता । संराजितुम् । संराजितव्यम् ॥

हे मपरे वा ॥ २६ ॥

हकारे मकारपरे परतो मकारस्य वा मकार आदेशो भवति । किं ह्मलयति । किम् ह्मलयति । कथं ह्मलयति । कथम् ह्मलयति ॥ यवलपरे यवला वा ॥ * ॥ यवलपरे हकारे मकारस्य यवला यथासंख्यं वा भवन्तीति वक्तव्यम् । कियँ ह्यः । किं ह्यः । किवँ ह्वलयति । किं ह्वलयति । किलँ ह्लादयति । किं ह्लादयति ॥

नपरे नः ॥ २७ ॥

नकारपरे हे परतः मकारस्य वा नकारादेशो भवति । किन् ह्नुते किं ह्नुते । कथं ह्नुते । कथन् ह्नुते ॥

ङ्णोः कुक्टुक् शरि ॥ २८ ॥

ङकारणकारयोः पदान्तयोः कुक् टुग् इत्येतावागमौ वा भवतः शरि परतः । प्राङ्क् शेते । प्राङ् शेते । प्राङ्क् षष्ठः । प्राङ् षष्ठः । प्राङ्क् साये । प्राङ् साये । णकारस्य । वण्ट् शेते । वण् शेते । पूर्वान्तकरणं प्राङ्क् छेते इत्यत्र छत्वार्थम् । शश्छोटीति हि पदान्ताज्झय इति तद्विज्ञायते । इह मा भूत् । पुराक्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । प्राङ्क् सायइत्यत्रापि सात्पदाद्योरिति षत्वप्रतिषेधार्थं च । वण्ट् साय इत्यत्र च न पदान्ताट्टोरनामिति ष्टुत्वप्रतिषेधार्थम् ॥

डः सि धुट् ॥ २९ ॥

डकारान्तात्पदादुत्तरस्य सकारादेः पदस्य वा धुडागमो भवति । श्वलिट्त्साये । मधुलिट्त्साये । श्वलिट् साये । मधुलिट् साये । परादिकरणं न पदान्ताट्टोरनामिति ष्टुत्वप्रतिषेधार्थम् ॥

नश्च ॥ ३० ॥

नकारान्तात्पदादुत्तरस्य सकारस्य वा धुडागमो भवति । भवान्त्साये । महान्त्साये । भवान्साये । महान्साये । धुटश्चर्त्वस्य चासिद्धत्वान्नश्छव्यप्रशानिति रुत्वं न भवति ॥

शि तुक् ॥ ३१ ॥

नकारस्य पदान्तस्य शकारे परतो वा तुगागमो भवति । भवाञ्च्छेते । पूर्वान्तकरणं छत्वार्थम् । यद्येवं कुर्वञ्च्छेते इत्यत्र नकारस्यापदान्तत्वाण्णत्वं प्राप्नोति । तत्र समाधिमाहुः । स्तोः श्चुना श्चुरित्यत्र योगविभागः क्रियते णत्वप्रतिषेधार्थं, स्तोः श्चुना णकारो न भवतीति । ततः श्चुरिति ॥

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ॥ ३२ ॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तात्पदादुत्तरस्याचो ङमुडागमो भवति नित्यम् । ङणनेभ्यो यथासंख्यं ङणना भवन्ति । ङकारान्तान् ङुट् । प्रत्यङ्ङास्ते । णकारान्ताण्णुट् । वण्णास्ते । वण्णवोचत् । नकारान्तान्नुट् । कुर्वन्नास्ते । कुर्वन्नवोचत् । कृषन्नास्ते । कृषन्नवोचत् । ङम इति किम् । त्वमास्से । ह्रस्वादिति किम् । प्राङास्ते । भवानास्ते । अचीति किम् । प्रत्यङ्करोति । इह परमदण्डिनौ परमदण्डिनेति उत्तरपदत्वे चापदादिविधाविति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधादुत्तरपदस्य पदत्वं नास्तीति ङमुण्न भवति । अथ वा उञि च पदइत्यतः सप्तम्यन्तं पदइत्यनुवर्त्तते । तेन अजादौ पदे ङमुड् भवति ॥

मय उञो वो वा ॥ ३३ ॥

मय उत्तरस्य उञो वा वकारादेशो भवति अचि परतः। शमुअस्तु वेदिः। शम्वस्तु वेदिः। तदु अस्य परेतः। तद्वस्य परेतः। किमु आवपनम्। किम्वावपनम्। प्रगृह्यत्वादुञः प्रकृतिभावे प्राप्ते वकारो विधीयते। तस्यासिद्धत्वाद्धलीति मो ऽनुस्वारो न भवति॥

विसर्जनीयस्य सः ॥ ३४ ॥

खरीत्यनुवर्तते। विसर्जनीयस्य सकार आदेशो भवति खरि परतः। वृक्षश्छादयति। प्लक्षश्छादयति। वृक्षष्ठकारः। प्लक्षष्ठकारः। वृक्षस्थकारः। प्लक्षस्थकारः। वृक्षश्चिनोति। प्लक्षश्चिनोति। वृक्षष्टीकते। प्लक्षष्टीकते। वृक्षस्तरति। प्लक्षस्तरति॥

शर्परे विसर्जनीयः ॥ ३५ ॥

शर्परे खरि परतो विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो भवति। शशः क्षुरम्। पुरुषः क्षुरम्। अद्भिः प्सातम्। वासः क्षौमम्। पुरुषः त्सरुः। घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। नेति वक्तव्ये विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशविधानं विकारनिवृत्त्यर्थम्। तेन जिव्हामूलीयोपध्मानीयौ न भवतः॥

वा शरि ॥ ३६ ॥

विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो वा भवति शरि परे। वृक्षः शेते। प्लक्षः शेते। प्लक्षश्शेते। वृक्षः षण्डे। वृक्षष्षण्डे। वृक्षः साये। वृक्षस्साये॥ खर्परे शरि वा लोपो वक्तव्यः॥ * ॥ वृक्षा स्थातारः। वृक्षाः स्थातारः। वृक्षास्स्थातारः॥

कुप्वोः ᳵकᳶपौ च ॥ ३७ ॥

कवर्गपवर्गयोः परतो विसर्जनीयस्य यथासंख्यं ᳵकᳶप इत्येतावादेशौ भवतः, चकाराद्विसर्जनीयश्च। वृक्षᳵ करोति। वृक्षः करोति। वृक्षᳵ खनति। वृक्षः खनति। वृक्षᳶ पचति। वृक्षः पचति। वृक्षᳶ फलति। वृक्षः फलति। कपावुच्चारणार्थौ। जिह्वामूलीयोपध्मानीयावेतावादेशौ। विसर्जनीयस्य स इत्येतस्मिन्नप्राप्ते इदमारभ्यते इत्येतस्य बाधकं, शर्परे विसर्जनीय इत्येतत्तु न बाध्यते। वासः क्षौमम्। अद्भिः प्सातम्। पूर्वत्रासिद्धे नास्ति विप्रतिषेधो ऽभावादुत्तरस्येति शर्परे विसर्जनीय इत्येतदेव भवति। केचित्तु एतदर्थं योगविभागं कुर्वन्ति। कुप्वोः। शर्परयोः विसर्जनीयस्य विसर्जनीय आदेशो भवति। किमर्थमिदम्। ᳵकᳶपौ चेति वक्ष्यति तद्बाधनार्थमिति॥

सोपदादौ ॥ ३८ ॥

सकार आदेशो भवति विसर्जनीयस्य कुप्वोरपदाद्योः परतः । पाशकल्पककाम्येषु । याप्ये पाशप् । पयस्पाशम् * । ईषदपरिसमाप्तौ । कल्पप् । पयस्कल्पम् । यशस्कल्पम् । प्रागिवात्कः । पयस्कम् । यशस्कम् । काम्यच्च । पयस्काम्यति । यशस्काम्यति । अपदादाविति किम् । पयः कामयते । पयः पिबति ॥ सोपदादावित्यनव्ययस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । प्रातःकल्पम् । पुनःकल्पमिति । रोः काम्ये नियमार्थम् ॥ * ॥ रोरेव काम्ये नान्यस्येति नियमार्थं वक्तव्यम् । पयस्काम्यति । यशस्काम्यति । इह मा भूत् । गीःकाम्यति । धूःकाम्यति । उपध्मानीयस्य कवर्गे परतः सकार आदेशो भवतीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ किं प्रयोजनमुब्जिरुपध्मानीयोपधः पठ्यतइति दर्शने अभ्युद्गः समुद्ग इति यथा स्यात् ॥

इणः षः ॥ ३९ ॥

अपदादाविति वर्त्तते । इण उत्तरस्य विसर्जनीयस्य षकारादेशो भवति कुप्वोरपदाद्योः परतः । पाशकल्पककाम्येषु । पाश । सर्पिष्पाशम् । यजुष्पाशम् । कल्प । सर्पिष्कल्पम् । यजुष्कल्पम् । क । सर्पिष्कम् । यजुष्कम् । काम्य । सर्पिष्काम्यति । यजुष्काम्यति । अपदादावित्येव । अग्निः करोति । वायुः करोति । अग्निः पचति । वायुः पचति । कुप्वोरित्येव । सर्पिस्ते । यजुस्ते । इत उत्तरं स इति इणः ष इति च वर्त्तते तत्र य इणः परो यो विसर्जनीयस्तस्य षकारो भवत्यन्यस्य सकारो भवति ॥

नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ ४० ॥

नमस्पुरस् इत्येतयोर्गतिसंज्ञकयोर्विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः । नमस्कर्त्ता । नमस्कर्त्तुम् । नमस्कर्त्तव्यम् । गत्योरिति किम् । पूः पुरौ पुरः करोति ॥

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ॥ ४१ ॥

इकारोपधस्य उकारोपधस्य चाप्रत्ययस्य विसर्जनीयस्य षकार आदेशो भवति कुप्वोः परतः । निर्दुर्बहिराविश्चतुर्प्रादुस् । निस् । निष्कृतम् । निष्पीतम् । दुस् । दुष्कृतम् । दुष्पीतम् । बहिस् । बहिष्कृतम् । बहिष्पीतम् । आविस् । आविष्कृतम् । आविष्पीतम् । चतुष्कृतम् । चतुष्कपालम् । चतुष्कन्दलम् । चतुष्फलम् । प्रादुष्कृतम् । प्रादुष्पीतम् । अप्रत्ययस्येति किम् । अग्निः करोति । वायुः करोति । मातुः करोति । पितुः करोति । अत्र रात्सस्येति सकारलोपे कृते रेफस्य यो विसर्जनीयस्तस्याप्रत्ययविसर्जनीयत्वात् षत्वं प्राप्नोति । कस्कादिषु तु भ्रातुष्पुत्रग्रहणं ज्ञापकमेकादेशनिमित्तत्वात्षत्वप्रतिषेधस्य ॥

---

* यशस्पाशमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

पुम्मुहुसोः प्रतिषेधोवक्तव्यः ॥ * ॥ पुंस्कामा । मुहुस् कामा । * नैष्कुल्यम् । दौष्कुल्यम् । नि ३ ष्कुलम् । दु ३ ष्कुलम् । दु ३ ष्पुरुषः । बहिरङ्गलक्षणयोर्वृद्धिप्लुतयोरसिद्धत्वात्षत्वं प्रवर्त्तते ॥

तिरसोऽन्यतरस्याम् ॥ ४२ ॥

तिरसो विसर्जनीयस्यान्यतरस्यां सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः । तिरस्कर्ता । तिरस्कर्त्तव्यम् । तिरःकर्त्ता । तिरःकर्त्तुम् । तिरःकर्त्तव्यम् । गतेरित्येव । तिरः कृत्वा काण्डं गतः ॥

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ॥ ४३ ॥

ष इति संबद्ध्यते । द्विस् त्रिस् चतुर् इत्येतेषां कृत्वोऽर्थे वर्त्तमानानां विसर्जनीयस्य षकार आदेशो भवति अन्यतरस्यां कुप्वोः परतः । द्विः करोति । द्विष्करोति । त्रिः करोति । त्रिष्करोति । चतुष्करोति । चतुः करोति । द्विः पचति । द्विष्पचति । त्रिः पचति । त्रिष्पचति । चतुः पचति । चतुष्पचति । कृत्वोऽर्थइति किम् । चतुष्कपालम् । चतुष्कण्टकम् । पूर्वेण नित्यं षत्वं भवति । इदुदुपधस्येत्यस्यानुवृत्तौ सत्यां कृत्वोऽर्थविषयेण च पदेन विसर्जनीये विशेष्यमाणे द्विस्त्रिश्चतुरिति शक्यमकर्त्तुम् ।

कृत्वसुजर्थे षत्वं ब्रवीति कस्माच्चतुष्कपाले मा ।
षत्व विभाषया भून्ननु सिद्धं तच पूर्वेण ॥
सिद्धे ह्ययं विधत्ते चतुरः षत्वं यदापि कृत्वोऽर्थे ।
लुप्ते कृत्वोऽर्थीये रेफस्य विसर्जनीयो हि ॥
एवं सति त्विदानीं द्विस्त्रिश्चतुरित्यनेन किं कार्यम् ।
अन्यो हि नेदुदुपधः कृत्वोऽर्थः कश्चिदप्यस्ति ॥
अक्रियमाणे ग्रहणे विसर्जनीयस्तदा विशेष्येत ।
चतुरो न सिध्यति तथा रेफस्य विसर्जनीयो हि ॥
तस्मिंस्तु क्रियमाणे युक्तं चतुरो विशेषणं भवति ।
प्रकृतं पदं तदन्तं तस्यापि विशेषणं न्याय्यम् ॥

एवं च क्रियमाणे द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणे चतुःशब्दस्य कृत्वोऽर्थे ऽपि वर्त्तमानस्य पूर्वेणैव नित्यं षत्वं स्यात् । पूर्वत्रासिद्धे नास्ति प्रतिषेधो ऽभावादुत्तरस्य ॥

---

* पुस्तकान्तरे मुहुःकामेति· पाठः, स एव च युक्तः, अत एव पदमञ्जर्यां मुहुःकामेति प्रतीकमुपादाय कुप्वो ≍क≍पौ चेत्येष एव विधिर्भवति क्व चित्तु मुहुस्कामेति पठ्यते, सोऽपपाठः, नह्यत्र सत्वसंभवः सूत्रवार्तिकयोरनिबद्धत्वादित्युक्तम् ।

इसुसोः सामर्थ्ये ॥ ४४ ॥

ष इति संबद्ध्यते। इस् उस् इत्येतयोर्विसर्जनीयस्यान्यतरस्यां षकारादेशो भवति सामर्थ्ये कुप्वोः परतः। सर्पिष्करोति। सर्पिः करोति। यजुः करोति। यजुष्करोति। सामर्थ्यइति किम्। तिष्ठतु सर्पिः पिबत्वमुदकम्। सामर्थ्यमिह व्यपेक्षा। न पुनरेकार्थीभावः उभयं वा॥

नित्यं समासे ऽनुत्तरपदस्थस्य ॥ ४५ ॥

इसुसोरिति वर्त्तते। समासविषये इसुसोर्विसर्जनीयस्यानुत्तरपदस्थस्य नित्यं षत्वं भवति कुप्वोः परतः। सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम्। सर्पिष्पानम्। धनुष्फलम्। अनुत्तरपदस्थस्येति किम्। परमसर्पिःकुण्डिका। परमधनुःकपालम्। पूर्वसूत्रेण विकल्पोप्यत्र न भवति। एतदेवानुत्तरपदस्थस्येति वचनं ज्ञापकमिसुसोः प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेरित्ययं नियमो न भवति। तेन वाक्येपि। परमसर्पिष्करोति। परमसर्पिः करोति। इसुसोः सामर्थ्यइत्येतद्भवति। व्यपेक्षा च तत्र सामर्थ्यमाश्रितमिति समासे न भवति॥

अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ॥ ४६ ॥

अकारादुत्तरस्य अनव्ययविसर्जनीयस्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य नित्यं सकारादेशो भवति कृ कमि कंस कुम्भ पात्र कुशा कर्णी इत्येतेषु परतः। कृ। अयस्कारः। पयस्कारः। कमि। अयस्कामः। पयस्कामः। कंस। अयस्कंसः। पयस्कंसः। कुम्भ। अयस्कुम्भः। पयस्कुम्भः। अयस्कुम्भी पयस्कुम्भीत्यत्रापि भवति प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवतीति। पात्र। अयस्पात्रम्। पयस्पात्रम्। अयस्पात्री। पयस्पात्री। कुशा। अयस्कुशा। पयस्कुशा। कर्णी। अयस्कर्णी। पयस्कर्णी। शुनस्कर्ण इत्ययं तु कस्कादिषु द्रष्टव्यः। अत इति किम्। गीः कारः। धूःकारः। तपरकरणं किम्। भाःकरणम्। भास्कर इत्ययं तु कस्कादिषु द्रष्टव्यः। अनव्ययस्येति किम्। स्वःकारः। पुनःकारः। समासइत्येव। यशः करोति। पयः करोति। यशः कामयते। अनुत्तरपदस्थस्येत्येव। परमपयःकारः। परमपयःकामः॥

अधःशिरसी पदे ॥ ४७ ॥

अधस् शिरस् इत्येतयोर्विसर्जनीयस्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य सकार आदेशो भवति पदशब्दे परतः। अधस्पदम्। शिरस्पदम्। अधस्पदी। शिरस्पदी। समासइत्येव। अधः पदम्। अनुत्तरपदस्थस्येत्येव। परमशिरःपदम्। अधस्पदमिति मयूरव्यंसकादित्वात्समासः॥

कस्कादिषु च ॥ ४८ ॥

कस्क इत्येवमादिषु च विसर्जनीयस्य सकारः षकारो वा यथायोगमादेशो भवति कुप्वोः परतः । कस्कः । कौतस्कुतः । कुत आगत इत्यण् । भ्रातुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । क्रीणातेरयं संपदादित्वात्क्विप्प्रत्ययः । तत्र भवः क्रतुः । साद्यस्क्रः । कांस्कान् । कानाम्रेडितइति रुत्वमत्र । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रमित्येषां पाठ उत्तरपदस्यस्यापि षत्वं यथा स्यादिति । परमसर्पिः फलमित्येवमादिप्रत्युदाहरणादिति पारायणिका आहुः । भाष्ये वृत्तौ च नित्यं समासे ऽनुत्तरपदस्येत्यत्र परमसर्पिःकुण्डिकेत्येतदेव प्रत्युदाहरणम् । अयस्काण्डः । मेदस्पिण्डः । अविहितलक्षण उपचारः कस्कादिषु द्रष्टव्यः ॥

छन्दसि वा ऽप्राम्रेडितयोः ॥ ४९ ॥

छन्दसि विषये विसर्जनीयस्य वा सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः प्रशब्दं आम्रेडितं वर्जयित्वा । अयःपात्रम् । अयस्पात्रम् । विश्वतः पात्रम् । विश्वतस्पात्रम् । उरुणःकारः । उरुणस्कारः । अप्राम्रेडितयोरिति किम् । अग्नीःप्र विद्वान् । परुषः परुषः परि ॥ सूर्यरश्मिहरिकेशः पुरस्तात् । स नः पावक इत्येवमादिषु सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्तइति सत्वं न भवति ॥

कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः ॥ ५० ॥

कः करत् करति कृधि कृत इत्येतेषु परतः अनदितेर्विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति छन्दसि विषये । कः । विश्वतस्कः । करत् । विश्वतस्करत् । करति । पयस्करति । कृधि । उरुणस्कृधि । कृत । सदस्कृतम् । अनदितेरिति किम् । यथा नो अदितिः करत् ॥

पञ्चम्याः परावध्यर्थे ॥ ५१ ॥

छन्दसीत्येव । पञ्चमीविसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति परौ परतः अध्यर्थे । दिवस्परि प्रथमं जज्ञे । अग्निर्हिमवतस्परि । दिवस्परि । महस्परि । पञ्चम्या इति किम् । अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम् । पराविति किम् । एभ्यो वा एतल्लोकेभ्यः प्रजापतिः समैरयत् । अध्यर्थइति किम् । दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम् । अत्र परिः सर्वतोभावे अध्यर्थः उपरिभावः ॥

पातौ च बहुलम् ॥ ५२ ॥

पातौ च धातौ परतः पञ्चमीविसर्जनीयस्य बहुलं सकार आदेशो भवति छन्दसि विषये । दिवस्पातु । राज्ञस्पातु । न च भवति । परिषदः पातु ॥

षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु ॥ ५३ ॥

षष्ठीविसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति पति पुत्र पृष्ठ पार पद पयस्

पोष इत्येतेषु परतः छन्दसि विषये । वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये । पुत्र । दिवस्पुत्राय सूर्याय । पृष्ठ । दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम् । पार । अगन्म तमसस्पारम् । पद । इडस्पदे समिध्यसे । पयस् । सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः पोष । रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् । षष्ठ्या इति किम् । मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् ॥

इडाया वा ॥ ५४ ॥

इडायाः षष्ठीविसर्जनीयस्य वा सकार आदेशो भवति पत्यादिषु परतश्छन्दसि विषये । इडायास्पतिः । इडायाः पतिः । इडायास्पुत्रः । इडायाः पुत्रः । इडायास्पृष्ठम् । इडायाः पृष्ठम् । इडायास्पारम् । इडायाः पारम् । इडायास्पदम् । इडायाः पदम् । इडायास्पयः । इडायाः पयः । इडायाः पोषम् । इडायास्पोषम् ॥

अपदान्तस्य मूर्द्धन्यः ॥ ५५ ॥

पदाधिकारो निवृत्तः । अपदान्तस्येति मूर्द्धन्य इति चैतदधिकृतं वेदितव्यम् । आपादपरिसमाप्तेः । वक्ष्यति । आदेशप्रत्यययोः । सिषेव । सुष्वाप । अग्निषु । वायुषु । अपदान्तस्येति किम् । अग्निस्तत्र । आयुस्तत्र । ष इत्येवं सिद्धे मूर्द्धन्यग्रहणं ढकारार्थम् । अक्षद्रुम् । चक्षुढ्वे ॥

सहेः साडः सः ॥ ५६ ॥

सहेर्द्धातोः साड्रूपस्य यः सकारस्तस्य मूर्द्धन्य आदेशो भवति । जलाषाट् । तुराषाट् । पृतनाषाट् । सहेरिति किम् । सह डेन वर्त्तते सडस्तस्यापत्यं साडिः । साड्ग्रहणं किम् । यत्रास्यैतद्रूपं तत्र यथा स्यात् । इह मा भूत् । जलासाहम् । तुरासाहम् । स इति किम् । आकारस्य मा भूत् ॥

इण्कोः ॥ ५७ ॥

इण्कोरित्येतदधिकृतं वेदितव्यम् । इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः इणः कवर्गाच्चेत्येवं तद्वेदितव्यम् । वक्ष्यति । आदेशप्रत्यययोः । सिषेव । सुष्वाप । अग्निषु । वायुषु । कर्तृषु । हर्तृषु । गीर्षु । धूर्षु । वाक्षु । त्वक्षु । इण्कोरिति किम् । दास्यति । असौ ॥

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेपि ॥ ५८ ॥

नुम्व्यवायेपि विसर्जनीयव्यवायेपि शर्व्यवायेपि इण्कोरुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । व्यवायशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्ध्यते । नुम्व्यवाये तावत् । सर्पींषि । यजूंषि । हवींषि । विसर्जनीयव्यवाये । सर्पिःषु । यजुःषु । हविःषु । शर्व्यवाये । सर्पिष्षु । यजुष्षु । हविष्षु । नुमादिभिः प्रत्येकं व्यवाये षत्वमिष्यते न समस्तैः ॥ तेनेह न भवति । निंस्से । निंस्स्व इति । णिसि चुम्बन इत्येतस्यैतद्रूपम् । अत्र हि नुमा सकारेण च शरा व्यवधानम् ॥

आदेशप्रत्यययोः ॥ ५९ ॥

मूर्द्धन्य इति वर्त्तते स इति च । आदेशप्रत्यययोरिति षष्ठी भेदेन संबध्यते । आदेशो यः सकारः प्रत्ययस्य च यः सकारः इणकोरुत्तरस्तस्य मूर्द्धन्यो भवति आदेशः । आदेशस्य तावत् । सिषेव । सुष्वाप । प्रत्ययस्य । अग्निषु । वायुषु । कर्तृषु । हर्तृषु । इन्द्रो मा वक्षत् । स देवान्यक्षदिति व्यपदेशिवद्भावात्प्रत्ययस्येति षत्वं भवति । यजतेर्वहतेश्च पञ्चमलकारे परस्मैपदप्रथमैकवचनदिकारलोपः लेटोडाटावित्यट् सिब्बहुलं लेटीति सिप्, ततः सिद्धं यक्षत्, वक्षत्, इति ॥

शासिवसिघसीनां च ॥ ६० ॥

शासि वसि घसि इत्येतेषां च इणकोरुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यो भवति । अन्वशिषत् । अन्वशिषताम् । अन्वशिषन् । शिष्टः । शिष्टवान् । वसि । उषितः । उषितवान् । उषित्वा । घसि । जक्षतुः । जक्षुः । घसिभसोरित्युपधालोपः । अक्षन्नमीमदन्त पितरः । अनादेशार्थं वचनम् । घसिर्यद्यप्यादेशः सकारस्त्वादेशो न भवति । इणकोरित्येव । शास्ति । वसति । जघास ॥

स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ॥ ६१ ॥

स्तौतेर्ण्यन्तानां च षणभूते सनि परतः अभ्यासादिण उत्तरस्य आदेशसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । तुष्टूषति । ण्यन्तानाम् । सिषेवयिषति । सिषञ्जयिषति । सुष्वापयिषति । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासाद्यथा स्यादन्यस्य मा भूत् । सिसिक्षति । सुसूषति । एवकारकरणमिष्टतोवधारणार्थम् । स्तौतिण्योः षण्येवेति हि विज्ञायमाने तुष्टावेत्यत्र न स्यात् । इह च स्यादेव । सिसिक्षतीति । षणीति किम् । अन्यत्र नियमो मा भूत् । सिषेव । को विनतेनुरोधः । अविनते नियमो मा भूत् । सुपुप्सति । तिष्ठासति । कः सानुबन्धे ऽनुरोधः । षशब्दमात्रे नियमो मा भूत् । सुषुपिषइन्द्रम् । * अभ्यासादिति किम् । अभ्यासस्य या प्राप्तिस्तस्या नियमो यथा स्याद्धातोर्या प्राप्तिस्तस्या नियमो मा भूत् † । प्रतीषिषति । अधीषिषति ॥

सः स्विदिस्वदिसहीनां च ॥ ६२ ॥

स्विदि स्वदि सहि इत्येतेषां ण्यन्तानां सनि षभूते परतो ऽभ्यासादुत्तरस्य सकारस्य सकारादेशो भवति । स्विदि । सिस्वेदयिषति । स्वदि । सिस्वादयिषति । सहि । सिसाहयिषति । सकारस्य सकारवचनं मूर्द्धन्यनिवृत्त्यर्थम् ॥

---

* स्वपेर्लिटि षाषः सइति रूपमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† धातोरित्यत्र द्वितीयेति पाठान्तरम् ।

प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ॥ ६३ ॥

सेवसितेति वक्ष्यति प्राक्सितसंशब्दनाद्यदित ऊर्द्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्राड्व्यवायेपि मूर्द्धन्यो भवतीत्येवं तद्वेदितव्यमपिशब्दादनड्व्यवायेपि। वक्ष्यति। उपसर्गात्सुनोतिसुवतीति षत्वम्। अभिषुणोति। परिषुणोति। विषुणोति। निषुणोति। अभ्यषुणोत्। पर्यषुणोत्। व्यषुणोत्। न्यषुणोत् ॥

स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ॥ ६४ ॥

प्राक् सितादिति वर्त्तते उपसर्गात्सुनोतीत्यत्र स्थासेनयसेधेति स्थादयस्तेषु स्थादिषु प्राक् सितसंशब्दनाद् अभ्यासेन व्यवाये मूर्द्धन्यो भवत्यभ्याससकारस्य च भवतीत्येवं वेदितव्यम्। अभ्यासेन व्यवाये परितष्ठौ। अषोपदेशार्थं च। अभिषिषेणयिषति। परिषिषेणयिषति। अवर्णान्ताभ्यासार्थं च। अभितष्ठौ। षणि प्रतिषेधार्थं च। अभिषिषिक्षति। परिषिषिक्षति। अभ्यासस्येति वचनं नियमार्थं स्थादिष्वेवाभ्याससकारस्य मूर्द्धन्यो भवति नान्यत्र। अभिसुसूषति। अभिसिषासति ॥

उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ॥ ६५ ॥

मूर्द्धन्य इति वर्त्तते स इति च। उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य सुनोति सुवति स्यति स्तौति स्तोभति स्था सेनय सेध सिच सञ्ज स्वञ्ज इत्येतेषां सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति। सुनोति। अभिषुणोति। परिषुणोति। अभ्यषुणोत्। पर्यषुणोत्। सुवति। अभिषुवति। परिषुवति। अभ्यषुवत्। पर्यषुवत्। स्यति। अभिष्यति। परिष्यति। अभ्यष्यत्। पर्यष्यत्। स्तौति। अभिष्टौति। परिष्टौति। अभ्यष्टौत्। स्तोभति। अभिष्टोभते। परिष्टोभते। अभ्यष्टोभत। पर्यष्टोभत। स्था। अभिष्ठास्यति। परिष्ठास्यति। अभ्यष्ठात्। पर्यष्ठात्। अभितष्ठौ। परितष्ठौ। सेनय। अभिषेणयति। परिषेणयति। अभ्यषेणयत्। पर्यषेणयत्। अभिषिषेणयिषति। परिषिषेणयिषति। सेध। अभिषेधति। परिषेधति। अभ्यषेधत्। पर्यषेधत्। सिच। अभिषिञ्चति। परिषिञ्चति। अभ्यषिञ्चत्। पर्यषिञ्चत्। अभिषिषिक्षति। परिषिषिक्षति। सञ्ज। अभिषजति। परिषजति। अभ्यषजत्। पर्यषजत्। अभिषिषङ्क्षति। परिषिषङ्क्षति। स्वञ्ज। अभिष्वजते। परिष्वजते। अभ्यष्वजत। पर्यष्वजत। अभिषिष्वङ्क्षते। परिषिष्वङ्क्षते। सेध इति शब्विकरणनिर्द्देशः सिध्यतिनिवृत्त्यर्थः। उपसर्गादिति किम्। दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति। निर्गताः सेचका अस्माद्देशान्निःसेचको देश इति। नायं सिचेरुपसर्गः अभिसावकीयतीत्यत्रापि न सुनोतिं प्रति

क्रियायोगः किं तर्हि सावकीयं प्रति । अभिषावयतीत्यत्र तु सुनोतिमेव प्रति क्रियायोगो न सावयतिमिति षत्वं भवति ॥

सदिरप्रतेः ॥ ६६ ॥

सदेः सकारस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादप्रतेरुत्तरस्य मूर्द्धन्य आदेशो भवति । निषीदति । विषीदति । न्यषीदत् । व्यषीदत् । निषसाद । विषसाद । अप्रतेरिति किम् । प्रतिसीदति ॥

स्तन्भेः ॥ ६७ ॥

उपसर्गादिति वर्तते । स्तन्भेः सकारस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य मूर्द्धन्य आदेशो भवति । अभिष्टभ्नाति । परिष्टभ्नाति । अभ्यष्टभ्नात् । पर्यष्टभ्नात् । अभितष्टम्भ । परितष्टम्भ । अप्रतेरित्येतदिह नानुवर्त्तते तेनैतदपि भवति । प्रतिष्टभ्नाति । प्रत्यष्टभ्नात् । प्रत्यतितष्टम्भ ॥

अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः ॥ ६८ ॥

अवशब्दादुपसर्गादुत्तरस्य स्तन्भेः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । आलम्बनेर्थे आविदूर्ये च । आलम्बनमाश्रयणम् । अविदूरस्य भाव आविदूर्यम् । आलम्बने तावत् । अवष्टभ्यास्ते । अवष्टभ्य तिष्ठति । आविदूर्ये । अवष्टब्धा सेना । अवष्टब्धा शरत् । आलम्बनाविदूर्ययोरिति किम् । अवस्तब्धो वृषलः शीतेन । अनिशार्थ आरम्भः ॥

वेश्च स्वनो भोजने ॥ ६९ ॥

वेरुपसर्गादवाच्चोत्तरस्य भोजनार्थे स्वनतेः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । विष्वणति । व्यष्वणत् । विषष्वाण । अवष्वणति । अवाष्वणत् । अवषष्वाण । अभ्यवहारक्रियाविशेषोभिधीयते । यत्र स्वननमस्ति । भोजन इति किम् । विस्वनति मृदङ्गः * ॥

परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ॥ ७० ॥

परि नि वि इत्येतेभ्य उपसर्गेभ्य उत्तरेषां सेव सित सय सिवु सह सुट् स्तु स्वञ्ज इत्येतेषां सकारस्य मूर्द्धन्य आदेशो भवति । परिषेवते । निषेवते । विषेवते । पर्यषेवत । व्यषेवत । न्यषेवत । परिषिषेविषते । विषिषेविषते । निषिषेविषते । सित । परिषितो, विषितो, निषितः । सय । परिषयो, निषयो, विषयः । सिव् । परिषीव्यति । निषीव्यति । विषीव्यति । पर्यषीव्यत् । न्यषीव्यत् । व्यषीव्यत् । पर्यसीव्यत् । न्यसीव्यत् । व्यसीव्यत् । सह । परिषहते ।

* अवस्वनति वीणेत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

निषहते । विषहते । पर्यषहत । न्यषहत । व्यषहत । पर्यसहत । न्यसहत । व्यसहत । सुट् । परिष्करोति । पर्यस्करोत् । स्तु । परिष्टौति । निष्टौति । विष्टौति । पर्यष्टौत् । न्यष्टौत् । व्यष्टौत् । पर्यस्तौत् । न्यस्तौत् । व्यस्तौत् । ष्वञ्ज । दंशसञ्जस्वञ्जामिति नलोपः । परिष्वजते । विष्वजते । निष्वजते । पर्यष्वजत । पर्यस्वजत । पूर्वेणैव सिद्धे स्तुस्वञ्जिग्रहणमुत्तरार्थम् । अड्व्यवाये विभाषा यथा स्यात् ॥

सिवादीनां वाड्व्यवायेपि ॥ ७१ ॥

अनन्तरसूत्रे सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जामिति सिवादयः । सिवादीनामड्व्यवायेपि परिनिविभ्य उत्तरस्य सकारस्य वा मूर्द्धन्यो भवति । तथा चैवोदाहृतम् * ॥

अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ॥ ७२ ॥

अनु वि परि अभि नि इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्यन्दतेरप्राणिषु सकारस्य वा मूर्द्धन्यादेशो भवति । अनुष्यन्दते । विष्यन्दते । परिष्यन्दते । अभिष्यन्दते तैलम् । निष्यन्दते । अनुस्यन्दते । विस्यन्दते । परिस्यन्दते । अभिस्यन्दते । निस्यन्दते । अप्राणिष्विति किम् । अनुस्यन्दते मत्स्य उदके । प्राण्यप्राणिविषयस्यापि स्यन्दतेरयं विकल्पो भवति । अनुष्यन्देते मत्स्योदके । अनुस्यन्देते । अप्राणिष्विति पर्युदासोऽयं न प्रसज्य प्रतिषेधः ॥

वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ ७३ ॥

वेरुपसर्गादुत्तरस्य स्कन्देः सकारस्य मूर्द्धन्यो वा भवति अनिष्ठायाम् । विष्कन्ता । विस्कन्ता । विष्कन्तुम् । विस्कन्तुम् । विष्कन्तव्यम् । विस्कन्तव्यम् । अनिष्ठायामिति किम् । विस्कन्नः ॥

परेश्च ॥ ७४ ॥

परिशब्दाच्चोत्तरस्य स्कन्देः सकारस्य वा मूर्द्धन्यो भवति । परिष्कन्ता । परिष्कन्तुम् । परिष्कन्तव्यम् । परिस्कन्ता । परिस्कन्तुम् । परिस्कन्तव्यम् । पृथग्योगकरणसामर्थ्यादनिष्ठायामित्येतन्नानुवर्त्तते । परिष्कणाः । परिस्कन्नः ॥

परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ ७५ ॥

परिस्कन्द इति मूर्द्धन्याभावो निपात्यते प्राच्यभरतेषु प्रयोगविषयेषु । पूर्वेण मूर्धन्ये प्राप्ते तदभावो निपात्यते । परिस्कन्दः । अन्यत्र परिष्कन्दः । अचि निपातनम् । अथ वा निष्ठातकारस्य लोपः, भरतग्रहणं प्राच्यविशेषणम् ॥

* क्वचित्पुस्तके पूर्वसूत्रोदाहृतान्यड्घटितानि रूपाण्यत्रैवोदाहृतानि ।

स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ॥ ७६ ॥

स्फुरतिस्फुलत्योः सकारस्य निस् नि वि इत्येतेभ्य उत्तरस्य वा मूर्द्धन्यादेशो भवति । स्फुरति । निष्ष्फुरति । निस्स्फुरति । निस्फुरति । निष्फुरति । विस्फुरति । विष्फुरति । स्फुलति । निष्ष्फुलति । निस्स्फुलति । निस्फुलति । निष्फुलति । विस्फुलति । विष्फुलति ॥

वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ ७७ ॥

वेरुत्तरस्य स्कभ्नातेः सकारस्य नित्यं मूर्द्धन्यादेशो भवति । विष्कभ्नाति । विष्कम्भिता । विष्कम्भितुम् । विष्कम्भितव्यम् ॥

इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ॥ ७८ ॥

मूर्द्धन्य इति वर्त्तते । इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । च्योषीढ्वम् । प्लोषीढ्वम् । लुङ् । अच्योढ्वम् । अप्लोढ्वम् । लिट् । चकृढ्वे । इणकोरिति वर्त्तमाने पुनरिणग्रहणं कवर्गनिवृत्त्यर्थम् । पक्षीध्वं । यक्षीध्वं । षीध्वंलुङ्लिटामिति किम् । स्तुध्वे । अस्तुध्वम् । अङ्गादिति किम् । परिवेविषीध्वम् । अर्थवद्ग्रहणादपि सिद्धं तत्तु नाश्रितम् ॥

विभाषेटः ॥ ७९ ॥

इणः परस्मादिट उत्तरेषां षीध्वलुङ्लिटां यो धकारस्तस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति विभाषा । लविषीढ्वम् । लविषीध्वम् । पविषीढ्वम् । पविषीध्वम् । लुङ् । अलविढ्वम् । अलविध्वम् । लिट् । लुलुविध्वे । लुलुविढ्वे । इण इत्येव । आसिषीध्वम् । अथेह कथं भवितव्यम् उपदिदीयिढ्वे । केचिदाहुः । इणन्ताङ्गादुत्तरस्य इट आनन्तर्यं युटा व्यवहितमिति न भवितव्यं ढत्वेनेति । अपरेषां दर्शनमङ्गादिति निवृत्तमिण इत्यनुवर्त्तते ततश्च यकारादेव इणः परोनन्तर इडिति पक्षे भवितव्यं मूर्द्धन्येनेति ॥

समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ ८० ॥

सङ्गसकारस्याङ्गुलेरुत्तरस्य मूर्द्धन्य आदेशो भवति समासे । अङ्गुलेः सङ्गः अङ्गुलिषङ्गः । अङ्गुलिषङ्गा यवागूः । अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति । समास इति किम् । अङ्गुले सङ्गं पश्य ॥

भीरोः स्थानम् ॥ ८१ ॥

स्थानसकारस्य भीरोरुत्तरस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । भीरुष्ठानम् । समास इत्येव । भीरोः स्थानं पश्य ॥

अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ ८२ ॥

अग्नेरुत्तरस्य स्तुत् स्तोम सोम इत्येतेषां सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति समासे । अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमः ॥ अग्नेर्द्दीर्घात्सोमस्येष्यते ॥ तेनेह न भवति । अग्निसोमौ माणवकौ । तथा च ज्योतिरग्निः सोमो लताविशेषः । अग्निसोमौ तिष्ठतः । समा इत्येव । अग्ने सोमः ॥

ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ ८३ ॥

ज्योतिस् आयुस् इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्तोमसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति समासे । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासइत्येव । ज्योतिः स्तोमं दर्शयति ॥

मातृपितृभ्यां स्वसा ॥ ८४ ॥

मातृ पितृ इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्वसृसकारस्य समासे मूर्द्धन्यादेशो भवति । मातृष्वसा । पितृष्वसा ॥

मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ ८५ ॥

मातुर् पितुर् इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्वसृशब्दस्यान्यतरस्यां मूर्द्धन्यादेशो भवति समासे । मातुःष्वसा । मातुःस्वस्वा । पितुःस्वसा । पितुःष्वसा । मातुःपितुरिति रेफान्तयोरेतद्ग्रहणम् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद्विसर्जनीयान्तात्सकारान्ताच्च षत्वं भवति । समासइत्येव । वाक्ये मा भूत् । मातुः स्वसेत्येव नित्यं भवति ॥

अभिनिसस्तनः शब्दसंज्ञायाम् ॥ ८६ ॥

अभि निस् इत्येतस्मादुत्तरस्य स्तनतिसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति अन्यतरस्यां शब्दसंज्ञायां गम्यमानायाम् । अभिनिष्टानोवर्णः । अभिनिष्टानो विसर्जनीयः । अभिनिस्तानो वर्णः । अभिनिस्तानो विसर्जनीयः * । शब्दसंज्ञायामिति किम् । अभिनिस्तनति मृदङ्गः † । समासइत्यतः प्रभृति निवृत्तम् ॥

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ ८७ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्प्रादुस्शब्दाच्चोत्तरस्य यकारपरस्याच्परस्य चास्तिसकारस्य मूर्द्धन्यो भवति । अभिषन्ति । निषन्ति । विषन्ति । प्रादुःषन्ति । अभिष्यात् । निष्यात् । विष्यात् । प्रादुःष्यात् । उपसर्गादिति किम् । दधि स्यात् । मधु स्यात् । अस्तीति किम् । अनुसृतम । विसृतम् । अथासत्यपि अस्तिग्रहणे सकारमेव प्रति उपसर्ग आश्रीयते । प्रादुः शब्दस्य च कृभ्वस्तिष्वेव प्रयोग इत्यन्यत्राप्रसङ्गः । तथाप्येतत्प्रत्युदाहर्त्तव्यम् । अनुसूते अनुसूः ।

---

* विसर्जनीयस्येषा संज्ञेत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

† क्वचिदिदं नास्ति ।

अनुस्वोपत्यं आनुसेयः शुभ्रादित्वाड्ढक्। ढे लोपे कद्र्वा इत्युवर्णलोपः। यच्यर इति किम्। निस्तः। विस्तः। प्रादुस्तः॥

सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ ८८ ॥

सु वि निर् दुर् इत्येतेभ्य उत्तरस्य सुपि सूति सम इत्येतेषां सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति। सुपीति स्वपिः कृतसंप्रसारणो गृह्यते। सुषुप्तः। निःषुप्तः। दुःषुप्तः। सूतिरिति स्वरूपग्रहणम्। सुषूतिः। विषूतिः। निःषूतिः। दुःषूतिः। सम। सुषमम्। विषमम्। निःषमम्। दुःषमम्।

सुपेः षत्वं स्वपेर्मा भूद्विसुष्वापेति केन न।
हलादिशेषान्न सुपिरिष्टं पूर्वं प्रसारणम्॥
स्यादीनां नियमो नात्र प्राक्सितादुत्तरः सुपिः।
अनर्थके विषुषुपुः सुपिभूतो द्विरुच्यते॥

पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने इति कृते षत्वे ततो द्विर्वचनम्॥

निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ ८९ ॥

नि नदी इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्नातिसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति कौशले गम्यमाने। निष्णातः कटकरणे। निष्णातो रज्जुवर्त्तने। नद्यां स्नातीति नदीष्णः। सुपि स्थ इत्यत्र सुपीति योगविभागात्कप्रत्ययः। कौशलइति किम्। निस्नातः। नद्यां स्नातो नदीस्नातः इति॥

सूत्रं प्रतिष्णातम् ॥ ९० ॥

प्रतिष्णातमिति निपात्यते। सूत्रं चेद्भवति। प्रतिष्णातं सूत्रम्। शुद्धमित्यर्थः। प्रतिस्नातमित्येवान्यत्र॥

कपिष्ठलो गोत्रे ॥ ९१ ॥

कपिष्ठल इति निपात्यते गोत्रविषये। कपिष्ठलो नाम यस्य स कापिष्ठलिः पुत्रः। गोत्रइति किम्। कपेः स्थलं कपिस्थलम्॥

प्रष्ठो ऽग्रगामिनि ॥ ९२ ॥

प्रष्ठ इति निपात्यते अग्रगामिन्यभिधेये। प्रतिष्ठतइति प्रष्ठो ऽश्वः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः। अग्रगामिनीति किम्। प्रस्थे हिमवतः पुण्ये। प्रस्थो व्रीहीणाम्॥

वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ ९३ ॥

विष्टर इति निपात्यते वृक्षे आसने च वाच्ये। विपूर्वस्य स्तृणातेः

षत्वं निपात्यते । विष्टरो वृक्षः । विष्टरमासनम् । वृक्षासनयोरिति किम् । ओलपिवाक्यस्य विस्तरः * ॥

छन्दोनाम्नि च ॥ ९४ ॥

विष्टर इति निपात्यते । विपूर्वात्स्तॄ इत्येतस्माद्धातोः छन्दोनाम्नि चेत्येवं विहित इति विष्टर इत्यपि प्रकृते विष्टार इत्यत्र विज्ञायते । विष्टारपङ्क्तिः छन्दः । विष्टारो बृहतीछन्दः । छन्दोनाम्नीति किम् । पटस्य विस्तारः ॥

गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ ९५ ॥

गवियुधिभ्यामुत्तरस्य स्थिरसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । गविष्ठिरः । युधिष्ठिरः । गोशब्दादहलन्तादपि एतस्मादेव निपातनात्सप्तम्या अलुग्भवति ॥

विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ ९६ ॥

वि कु शमि परि इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्थलसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् ॥

अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ ९७ ॥

अम्ब आम्ब गो भूमि सव्य अप द्वि त्रि कु शेकु शङ्कु अङ्गु मञ्जि पुञ्जि परमे बर्हिस् दिवि अग्नि इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्थशब्दसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । अम्बष्ठः । आम्बष्ठः । गोष्ठः । भूमिष्ठः । सव्येष्ठः । अपष्ठः । द्विष्ठः । त्रिष्ठः । कुष्ठः । शेकुष्ठः । शङ्कुष्ठः । अङ्गुष्ठः । मञ्जिष्ठः । पुञ्जिष्ठः । परमेष्ठः । बर्हिष्ठः । दिविष्ठः । अग्निष्ठः ॥ स्थास्थिन्स्थॄणामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सव्येष्ठाः । परमेष्ठी । सव्येष्ठा सारथिः ॥

सुषामादिषु च ॥ ९८ ॥

सुषामादिषु शब्देषु सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः । निष्षामा । दुष्षेधः । सुशब्दस्य कर्म्मप्रवचनीयसंज्ञकत्वान्निर्दुर्शब्दयोश्च क्रियान्तरविषयत्वादनुपसर्गत्वे सति पाठोऽयम् । सेधतेर्गताविति वा प्रतिषेधबाधनार्थः । सुषन्धिः । दुःषन्धिः । निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्टु । तिष्ठतेर्दुर्गादिष्वेतौ व्युत्पाद्येते । गौरिषक्थः संज्ञायाम् । ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलमिति पूर्वपदस्य ह्रस्वत्वम् । प्रतिष्णिका । प्रतिष्णाशब्दादयं कन्प्रत्ययः । जलाषाहम् । नौषेचनम् । दुन्दुभिषेवनम् ॥

एति संज्ञायामगात् ॥ ९९ ॥

---

* एतदुत्तरं विस्तरं वाक्यमाहेत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

एकारपरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति इणकोरुत्तरस्यागकारात्परस्य संज्ञायां विषये । हरिषेणः । वारिषेणः । जानुषेणी । एतीति किम् । हरिसक्थम् । संज्ञायामिति किम् । पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेनो राजा । अगादिति किम् । विष्वक्सेनः । इणकोरित्येव । सर्वसेनः ॥

नक्षत्राद्वा ॥ १०० ॥

नक्षत्रवाचिनः शब्दादुत्तरस्य सकारस्य वा एति संज्ञायामगकाराद् मूर्द्धन्यो भवति । रोहिणिषेणः । रोहिणिसेनः । भरणिषेणः । भरणिसेनः । अगकारादित्येव । शतभिषक्सेनः । अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः ॥

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ॥ १०१ ॥

ह्रस्वादुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति तादौ तद्धिते परतः । तर तम तय त्व तल तस् त्यप् एतानि प्रयोजयन्ति । तर । सर्पिष्टरम् । यजुष्टरम् । तम । सर्पिष्टमम् । यजुष्टमम् । तय । चतुष्टये ब्राह्मणानां निकेताः । त्व । सर्पिष्ट्वम् । यजुष्ट्वम् । तल् । सर्पिष्टा । यजुष्टा । तस् । सर्पिष्टो यजुष्टः । त्यप् । आविष्ट्यो वर्द्धते । ह्रस्वादिति किम् । गीस्तरा । धूस्तरा । तादाविति किम् । सर्पिस्साद्भवति । प्रत्ययसकारस्य स्यात्पदाद्योरिति सत्यपि प्रतिषेधे प्रकृतिसकारस्य स्यात् । तद्धितइति किम् । सर्पिस्तरति ॥ तिङन्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ भिन्द्युस्तराम् । छिन्द्युस्तराम् ॥

निसस्तपतावनासेवने ॥ १०२ ॥

निसः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति तपतौ परतोनासेवनेर्थे । आसेवनं पुनःपुनःकरणम् । निष्टपति सुवर्णम् । सकृदग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः । अनासेवनइति किम् । निस्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । पुनः पुनरग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः । निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातय इत्यत्र सदप्यासेवनं न विवक्ष्यते । छान्दसो वा वर्णविकारः ॥

युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम् ॥ १०३ ॥

युष्मत् तत् ततक्षुस् इत्येतेषु तकारादिषु परतः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति स चेत्सकारोन्तःपादं भवति । युष्मदादेशास्त्वं त्वां ते तव । अग्निष्टं नामासीत् । त्वा । अग्निष्ट्वा वर्द्धयामसि । ते अग्निष्टे विश्वमानय । तव । अप्स्वग्ने सधिष्टव । तत् । अग्निष्टद्विश्वमापृणाति । ततक्षुस् । द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । अन्तःपादमिति किम् । नित्यमात्मनो विदाभूदग्निस्तत्पुनराह जातवेदा विचर्षणिः ॥

यजुष्येकेषाम् ॥ १०४ ॥

यजुषि विषये युष्मत्तत्ततक्षुःषु परत एकेषामाचार्याणां मतेन सकारस्य

मूर्द्धन्यादेशो भवति । अर्चिर्भिष्ट्वम् । अर्चिर्भिस्त्वम् । अग्निष्टेयम् । यम् । अग्निष्टत् । अग्निस्तत् । अर्चिर्भिष्टतनुः । अर्चिर्भिस्ततनुः ॥

स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ॥ १०५ ॥

एकेषामिति वर्त्तते । स्तुत स्तोम इत्येतयोः सकारस्य छन्दसि विषये मूर्द्धन्यादेशो भवति एकेषामाचार्याणां मतेन । त्रिभिष्टुतस्य । त्रिभिस्तुतस्य । गोष्टोमं षोडशिनम् । गोस्तोमं षोडशिनम् । पूर्वपदादित्येव सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम् ॥

पूर्वपदात् ॥ १०६ ॥

छन्दसीति वर्त्तते एकेषामिति च । पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये एकेषामाचार्याणां मतेन । द्विषन्धिः । त्रिषन्धिः । द्विसन्धिः । त्रिसन्धिः । मधुष्ठानम् । मधुस्थानम् । द्विषाहस्रं चिन्वीत । द्विसाहस्रं चिन्वीत । असमासेऽपि यत्पूर्वपदं तदपीह गृह्यते । त्रिःषमृद्धत्वाय । त्रिःसमृद्धत्वाय ॥

सुञः ॥ १०७ ॥

सुञिति निपात इह गृह्यते तस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये । अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्द्ध्व ऊषुणः । इकः सुञीति दीर्घः । नश्च धातुस्थोरुषुभ्य इति णत्वम् * ॥

सनोतेरनः ॥ १०८ ॥

सनोतेरनकारान्तस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । गोषाः । नृषाः । अन इति किम् । गोसनिं वाचमुदीरयन् । पूर्वपदादित्येव सिद्धे नियमार्थमिदम् । तत्र केचित्सवनादिपाठाद्गोसनिर्नियमस्य फलं न भवतीति सिसानयिषतीति प्रत्युदाहरन्ति । सिसनिषतेरप्रत्ययः । सिसनीरि त्यपरे ॥

सहेः पृतनर्त्ताभ्यां च ॥ १०९ ॥

पृतना ऋत इत्येताभ्यामुत्तरस्य सहिसकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति । पृतनाषाहम् । ऋताषाहम् । केचिद्योगविभागं सहेरिति कुर्वन्ति । ऋतीषहमित्यत्रापि यथा स्यात् । ऋतिशब्दस्य पूर्वपदस्य संहितायामेतद्दीर्घत्वम् । अवग्रहे तु ऋतिसहमित्येव भवति । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन ऋतीषहमिति सिद्धम् ॥

न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ ११० ॥

---

* इकः सुञीति दीर्घः । नश्च धातुस्थोरुषुभ्य इति णत्वमिति पुस्तकान्तरे नास्ति ।

रेफपरस्य सकारस्य सृपि सृजि स्पृशि स्पृहि सवनादीनां च मूर्द्धन्यो न भवति । रपर । विस्रंसिकायाः काण्डं जुहोति । विस्रब्धः कथयति । सृपि । पुरा क्रूरस्य विसृपः । सृजि । वाचो विसर्जनात् । स्पृशि । दिविस्पृशम् । स्पृहि । निस्पृहं कथयति । सवनादीनाम् । सवने २ । सूते २ । सोमे २ । सवनमुखे २ । किं स्यतीति किंसः । अनुसवनम् २ । गोसनिम् । अश्वसनिम् । पूर्वपदादिति प्राप्तेः प्रतिषेधः । अश्वसनिग्रहणमनिणोऽपि षत्वमस्तीति ज्ञापनार्थम् । तेन जलाषाहमश्वषाहमित्येतत्सिद्धं भवति । क्वचिदेवं गणपाठः । सवनेसवने । अनुसवने २ । संज्ञायां बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । सोमे २ । सूते २ । संवत्सरे २ । किंसम् २ । मुसलम् २ । गोसनिमश्वसनिम् ॥

सात्पदाद्योः ॥ १११ ॥

सादिति चैतस्य पदादेश्च मूर्द्धन्यादेशो न भवति * । विभाषा साति कार्त्स्न्ये । प्रत्ययसकारत्वात्प्राप्तिः । पदादेश्चादेशसकारात् । सात् । अग्निसात् । दधिसात् । मधुसात् । पदादेः । दधि सिञ्चति । मधु सिञ्चति ॥

सिचो यङि ॥ ११२ ॥

सिचः सकारस्य यङि परतो मूर्द्धन्यादेशो न भवति । सेसिच्यते । अभिसेसिच्यते । उपसर्गादिति या प्राप्तिः सा पदादिलक्षणमेव प्रतिषेधं बाधते न सिचो यङीति । तस्मादयं प्रतिषेधः सर्वत्र भवति । यङीति किम् । अभिषिषिक्षति ॥

सेधतेर्गतौ ॥ ११३ ॥

गतौ वर्त्तमानस्य सेधतेः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति । अभिसेधयति गाः । परिसेधयति गाः । गताविति किम् । शिष्यमकार्यात्प्रतिषेधयति ॥

प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥ ११४ ॥

प्रतिस्तब्ध निस्तब्ध इत्येतौ मूर्द्धन्यप्रतिषेधाय निपात्येते । स्तम्भेरिति प्राप्तं षत्वं प्रतिषिध्यते । प्रतिस्तब्धः । निस्तब्धः ॥

सोढः ॥ ११५ ॥

सहिरयं सोड्भूतो गृह्यते तस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति । परिसोढः । परिसोढुम् । परिसोढव्यम् । सोड्भूतग्रहणं किम् । परिषहते ॥

स्तम्भुसिवुसहां चङि ॥ ११६ ॥

स्तम्भु सिवु सह इत्येतेषां चङि परतः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति । स्तम्भेरिति प्राप्तः परिनिविभ्य इति च मूर्द्धन्यः प्रतिषिध्यते । स्तम्भु ।

* इत आरभ्यादेशसकारादित्यन्तं पुस्तकान्तरे नास्ति ।

पर्यतस्तम्भत् । अभ्यतस्तम्भत् । सिवु । पर्यसीषिवत् । न्यसीषिवत् । सह । पर्यसीषहत् । व्यसीषहत् ॥ स्तम्भुसिवुसहां चङि उपसर्गादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उपसर्गाद्या प्राप्तिस्तस्याः प्रतिषेधो यथा स्यात् । अभ्यासाद्या प्राप्तिस्तस्या मा भूदिति । तथा चैवोदाहृतम् ॥

सुनोतेः स्यसनोः ॥ ११७ ॥

सुनोतेः सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति स्ये सनि च परतः । अभिसोष्यति । परिसोष्यति । अभ्यसोष्यत् । पर्यसोष्यत् । सनि किमुदाहरणम् । सुसूषति । नैतदस्ति प्रयोजनं तत्रस्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासादिति नियमाद् न भविष्यति । इदं तर्हि । अभिसुसूषते । एतदपि नास्ति । स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्येति । नियमात् । इदंतर्ह्यभिसुसूषतेरप्रत्ययः अभिसुसूरित्युदाहरणमिति । अत्रहि सन्षभूतो न भवतीत्यभ्यासात्प्राप्तिरस्ति । स्यसनोरिति किम् । सुषाव ॥

सदिष्वञ्जोः परस्य लिटि ॥ ११८ ॥

सदि ष्वञ्ज इत्येतयोर्द्धात्वोर्लिटि परतः सकारस्य परस्य मूर्द्धन्यो न भवति । अभिषसाद । परिषसाद । निषसाद । विषसाद । परिषस्वजे । परिषस्वजाते । परिषस्वजिरे । अभिषस्वजे । स्वञ्जे. संयोगान्तादपि विभाषा लिटः कित्त्वमिच्छन्तीति पक्षे ऽनुषङ्गलोपः ॥

निव्यभिभ्योड्व्यवाये वा छन्दसि ॥ ११९ ॥

नि वि अभि इत्येतेभ्य उपसर्गेभ्य उत्तरस्य सकारस्याड्व्यवाये छन्दसि विषये मूर्द्धन्यादेशो न भवति वा । न्यषीदत्पिता नः । व्यषीदत्पिता नः । न्यसीदत् । व्यसीदत् । अभ्यषीदत् । अभ्यसीदत् । सदिस्वञ्जोरिति तदिह नानुवर्त्तते । सामान्येनैव तद्वचनम् । व्यस्तौत् । न्यष्टौत् । अभ्यष्टौत् । अभ्यस्तौत् इत्येतदपि सिद्धं भवति ॥

॥ इति काशिकायां वृत्तावष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

॥ अथ अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ १ ॥

रेफषकाराभ्यामुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति, समानपदस्थौ चेन्निमित्तनिमित्तिनौ भवतः । आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् * । षकारात् । कुष्णाति ।

* अवगूर्णमित्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

पुष्णाति । मुष्णाति । षग्रहणमुत्तरार्थं, ष्टुत्वेनैव हि सिद्धमेतत् । समानपद-इति किम् । अग्निर्नयति । वायुर्नयति ॥ ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तिसृणाम् । चतसृणाम् । मातृणाम् । पितृणाम् । रश्रुतिसामान्यनिर्देशात्सिद्धम् । वर्णभक्त्या च व्यवधानेपि णत्वं भवतीति क्षुभ्नादिषु नृनमनतृप्नोतिग्रहणं ज्ञापकम् । अथ वा ऋवर्णादपि णत्वं भवतीत्येतदेवानेन ज्ञाप्यते ॥

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि ॥ २ ॥

अट् कु पु आङ् नुम् इत्येतैर्व्यवायेपि रेफषकाराभ्यामुत्तरस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति । अड्व्यवाये तावत् । करणम् । हरणम् । किरिणा । गिरिणा । कुरुणा । गुरुणा । कवर्गव्यवाये । अर्केण । मूर्खेण । गर्गेण । अर्घेण । पवर्गव्यवाये । दर्पेण । रेफेण । गर्भेण । चर्म्मणा । वर्म्मणा । आङ्व्यवाये । पर्याणद्धम् । निराणद्धम् । अड्व्यवायइति सिद्धे आङ्ग्रहणं पदव्यवायइत्यस्य प्रतिषेधस्य बाधनार्थम् । नुम्व्यवाये । बृंहणम् । बृंहणीयम् । नुम्ग्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम् । तेन तृंहणं तृंहणीयमित्यत्रानुस्वारव्यवाये नुमभावेपि णत्वं भवति । सत्यपि च नुमि यत्रानुस्वारो न श्रूयते तत्र न भवति । प्रेन्वनम् । प्रेन्वनीयमिति । व्यवायोपलक्षणार्थत्वादडादीनामिह व्यस्तैः समस्तैश्च व्यवायेपि णत्वं भवति ॥

पूर्वपदात्संज्ञायामगः ॥ ३ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य गकारवर्जिताद् नकारस्य णकार आदेशो भवति संज्ञायां विषये । द्रुणसः । वार्ध्रीणसः । खरणसः * । शूर्पणखा । संज्ञायामिति किम् । चर्मनासिकः । अग इति किम् । ऋगयनम् । के चिदेतन्नियमार्थं वर्णयन्ति । पूर्वपदात्संज्ञायामेव णत्वं नान्यत्रेति । समासपदेपि हि समानपदे निमित्तनिमित्तिनोर्भावादस्ति पूर्वेण प्राप्तिरिति । स च नियमः पूर्वपदसंबन्धादुत्तरपदस्यस्यैव णत्वं निवर्त्तयति चर्म्मनासिक इति । न तद्धितपूर्वपदस्थस्य । खारपायणः । मातृभोगीणः करणप्रिय इति । अग इति योगविभागेन णत्वप्रतिषेधो न नियमप्रतिषेध इति । अपरे तु पूर्वसूत्रे समानमेव यद् नित्यं पदं तत्समानपदमित्याश्रयन्ति समानग्रहणात् । तेषामप्राप्तमेव णत्वमनेन विधीयते । समासे हि पूर्वपदोत्तरपदविभागादसमानपदत्वमप्यस्तीति ॥

वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥ ४ ॥

पूर्वपदात्संज्ञामिति वर्तते । पुरगा मिश्रका सिध्रका शारिका कोटरा अग्रे इत्येतेभ्यः पूर्वपदेभ्य उत्तरस्य वननकारस्य णकारादेशो भवति संज्ञायां

* क चित्खरणस इति नास्ति ।

विषये । पुरगावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । शारिकावणम् । कोटरावणम् । अग्रेवणम् । सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः । एतेभ्य एव परस्य वननकारस्य णकारादेशो भवति, नान्येभ्य इति । कुबेरवनम् । शतधारवनम् । असिपत्रवनम् ॥

प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ॥ ५ ॥

प्र निर् अन्तर् शर इक्षु प्लक्ष आम्र कार्ष्य खदिर पीयूक्षा इत्येतेभ्य उत्तरस्य वननकारस्य संज्ञायामसंज्ञायामपि णकारादेशो भवति । प्र । प्रवणे यष्टव्यम् । निर् । निर्वणे प्रतिधीयते । अन्तर् । अन्तर्वणे । शर । शरवणम् । इक्षु । इक्षुवणम् । प्लक्ष । प्लक्षवणम् । आम्र । आम्रवणम् । कार्ष्य । कार्ष्यवणम् । खदिर । खदिरवणम् । पीयूक्षा । पीयूक्षावणम् ॥

विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः ॥ ६ ॥

वनमित्येव । ओषधिवाचि यत्पूर्वपदं वनस्पतिवाचि च तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्य वननकारस्य णकार आदेशो भवति विभाषा । ओषधिवाचिभ्यस्तावत् । दूर्वावणम् । दूर्वावनम् । मूर्वावणम् । मूर्वावनम् । वनस्पतिभ्यः । शिरीषवणम् । शिरीषवनम् । बदरीवणम् । बदरीवनम् ॥ द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । देवदारुवनम् । भद्रदारुवनम् ॥ इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ इरिकावनम् । तिमिरकावनम् । सत्यपि भेदे वृक्षवनस्पत्योरिहाभेदेन ग्रहणं द्रष्टव्यम् ।

फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता लता गुल्माश्च वीरुधः ॥

अह्नोऽदन्तात् ॥ ७ ॥

अदन्तं यत्पूर्वपदं तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्याह्नो नकारस्य णकार आदेशो भवति । पूर्वाह्णः । अपराह्णः । अदन्तादिति किम् । निरह्नः । दुरह्नः । अह्नोऽह्न एतेभ्य इत्यह्नादेशः । अन्ह इत्यकारान्तग्रहणाद् दीर्घाह्नी शरदित्यत्र न भवति ॥

वाहनमाहितात् ॥ ८ ॥

आहितवाचि यत्पूर्वपदं तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्य वाहननकारस्य णकार आदेशो भवति । इक्षुवाहणम् । शरवाहणम् । दर्भवाहणम् । वाहने यद् आरोपितमुह्यते तदाहितमुच्यते । आहितादिति किम् । दाक्षिवाहनम् । दाक्षिस्वामिकं वाहनमित्यर्थः ॥

पानं देशे ॥ ९ ॥

पाननकारस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य देशाभिधाने णकार आदेशो भवति । पीयतइति पानम् । कृत्यल्युटो बहुलमिति कर्म्मणि ल्युट् । क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः । मनुष्याभिधानेपि देशाभिधानं गम्यते । सुरापाणाः प्राच्याः । सौवीरपाणा बाह्लीकाः । कषायपाणा गन्धाराः । देशइति किम् । दाक्षीणां पानं दाक्षिपानम् ॥

वा भावकरणयोः ॥ १० ॥

भावे करणे च यः पानशब्दस्तदीयस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति वा पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य । क्षीरपाणं वर्त्तते । क्षीरपानम् । कषायपाणम् । कषायपानम् । सुरापाणम् । सुरापानम् । करणे । क्षीरपाणः कंसः । क्षीरपानः ॥ वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ गिरिणदी । गिरिनदी । चक्रणदी । चक्रनदी । चक्रनितम्बा । चक्रणितम्बा ॥

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ ११ ॥

वेति वर्त्तते । प्रातिपदिकान्ते नुम्विभक्तौ च यो नकारस्तस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य वा णकार आदेशो भवति । प्रातिपदिकान्ते तावत् । माषवापिणौ । माषवापिनौ । नुमि । माषवापाणि । माषवापानि । व्रीहिवापाणि । व्रीहिवापानि । विभक्तौ । माषवापेण । माषवापेन । व्रीहिवापेण । व्रीहिवापेन ॥ पूर्वपदाधिकारादुत्तरपदस्य प्रातिपदिकस्य योन्त्यो नकारस्तस्येदं णत्वमिष्यते ॥ इह हि न भवति । गर्गाणां भगिनी, गर्गभगिनी । यदा त्वत्र भवति । गर्गाणां भगो गर्गभगः । गर्गभगोस्या अस्तीति गर्गभगिणीति । तदा मातृभोगीणवन्नित्यमेव णत्वेन भवितव्यम् । माषवापिणी माषवापिनीत्यत्र तु गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेरिति कृदन्तेनैव समासे सति प्रातिपदिकस्योत्तरपदस्यैव सतो नकारो भवति * । तथा नुम्ग्रहणं कृतम् । स हि समुदायभक्तत्वादुत्तरपदस्यान्तो न भवति ॥ युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ आर्य्ययूना । क्षत्रिययूना । प्रपक्वानि । † दीर्घाह्नी शरत् ॥

एकाजुत्तरपदे णः ॥ १२ ॥

एकाजुत्तरपदं यस्य स एकाजुत्तरपदः । तस्मिन्नेकाजुत्तरपदसमासे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । नुमि । क्षीरपाणि । सुरापाणि । विभक्तौ ।

---

* क्वचित्तु प्रातिपदिकस्योत्तरपदस्यान्तो नकारो भवतीति पाठः ।

† परिपक्वानीत्यधिकमन्यत्र ।

क्षीरपेण । सुरापेण । ण इति वर्त्तमाने पुनर्णग्रहणं विकल्पाधिकारनिवृत्तेर्वि-स्पष्टीकरणार्थम् ॥

कुमति च ॥ १३ ॥

कवर्गवति चोत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । वस्त्रयुगिणौ । वस्त्रयुगिणः । स्वर्गकामिणौ । वृषगामिणौ । नुमि । वस्त्रयुगाणि । खरयुगाणि । विभक्तौ । वस्त्रयुगेण । खरयुगेण ॥

उपसर्गादसमासेपि णोपदेशस्य ॥ १४ ॥

ण उपदेशे यस्यासौ णोपदेशः । णोपदेशस्य धातोर्यो नकारः तस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति असमासेपि समासेपि । प्रणमति । परिणमति । * प्रणायकः । परिणायकः । उपसर्गादिति किम् । प्रगता नायका अस्माद्देशात् । प्रनायको देशः । असमासेपीति किम् । पूर्वपदाधिकारात् समास एव स्यादिति तदधिकारनिवृत्तिद्योतनार्थम् । णोपदेशस्येति किम् । प्रनर्द्दति । प्रनर्द्दकः ॥

हिनुमीना ॥ १५ ॥

हिनु मीना इत्येतयोरुपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । प्रहिणोति । प्रहिणुतः । प्रमीणाति । प्रमीणीतः । हीनुमीनाग्रहणे विकृतस्यापि भवति । अजादेशस्य स्थानिवत्त्वात् ॥

आनि लोट् ॥ १६ ॥

आनीत्येतस्य लोडादेशस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । प्रवपाणि । परिवपाणि । प्रयाणि । परियाणि । लोडिति किम् । प्रवपानि मांसानि ॥

नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ॥ १७ ॥

निरित्येतस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति गद नद पत पद घु मा स्यति हन्ति याति वाति द्राति प्साति वपति वहति शाम्यति चिनोति देग्धि इत्येतेषु परतः । गद । प्रणिगदति । परिणिगदति । नद । प्रणिनदति । परिणिनदति । पत । प्रणिपतति । परिणिपतति । पद । प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । घु । प्रणिददाति । परिणिददाति । प्रणिदधाति । परिणिदधाति । माङ् । प्रणिमिमीते । परिणिमिमीते । मेङ् । प्रणिमयते ।

* प्रणयति । परिणयति । प्रणामकः । परिणामकः । इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

परिणिमयते ॥ मा इति माङ्ङेर्ग्रहणमिष्यते ॥ स्यति । प्रणिष्यति । परिणिष्यति । हन्ति । प्रणिहन्ति । परिणिहन्ति । याति । प्रणियाति । परिणियाति । वाति । प्रणिवाति । परिणिवाति । द्राति । प्रणिद्राति । परिणिद्राति । प्साति । प्रणिप्साति । परिणिप्साति । वपति । प्रणिवपति । परिणिवपति । वहति । प्रणिवहति । परिणिवहति । शाम्यति । प्रणिशाम्यति । परिणिशाम्यति । चिनोति । प्रणिचिनोति । परिणिचिनोति । देग्धि । प्रणिदेग्धि । परिणिदेग्धि । अड्व्यवायेपि नेर्गदादिषु णत्वमिष्यते ॥ प्रण्यगदत् । परिण्यगदत् ॥

शेषे विभाषाऽकखादावषान्तउपदेशे ॥ १८ ॥

नेरिति वर्त्तते उपसर्गादिति च । अककारखकारादिरषकारान्तश्च उपदेशे यो धातुः शेषस्तस्मिन्परत उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नेर्नकारस्य । विभाषा णकार आदेशो भवति । प्रणिपचति । प्रनिपचति । प्रणिभिनत्ति । प्रनिभिनत्ति । अकखादाविति किम् । प्रनिकरोति । प्रनिखादति । अषान्तइति किम् । प्रनिपिनष्टि । उपदेशग्रहणं किम् । इह च प्रतिषेधो यथा स्यात् । प्रनिचकार । प्रनिचखाद । प्रनिपेक्ष्यतीति । इह च मा भूत् । विशेः । प्रणिवेष्टा । प्रणिवेक्ष्यति ॥

अनितेः ॥ १९ ॥

अनितेर्नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति । प्राणिति । पराणिति ॥

अन्तः ॥ २० ॥

अनितेरिति वर्त्तते । उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्यानितिनकारस्य पदान्ते वर्त्तमानस्य णकारादेशो भवति । हे प्राण् । हे पराण् । पदान्तस्येति प्रतिषेधस्यापवादोयम् । अन्तश्च पदापेक्षो गृह्यते । के चित्तु पूर्वसूत्रएवैतदन्तग्रहणं सामीप्यार्थमभिसंबध्नन्ति । निमित्तसमीपस्यैकवर्णाव्यवहितस्यानितिनकारस्य पदान्ते वर्त्तमानस्य णकारादेशो यथा स्यात् । इह मा भूत् । पर्यनितीति । तैर्द्वितीयमपि पदान्तस्य णत्वार्थमन्तग्रहणमाश्रयितव्यमेव । येषां तु पर्यणितीति भवितव्यमिति दर्शनम् । तेषां पूर्वसूत्रे नार्थोऽन्तग्रहणेन ॥

उभौ साभ्यासस्य ॥ २१ ॥

साभ्यासस्यानितेरुपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्योभयोर्नकारयोर्णकार आदेशो भवति । प्राणिणिषति । प्राणिणत् । पराणिणिषति । पराणिणत् पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचनइत्येतस्मिन्त्सति पूर्वमेव कृतणत्वस्य द्विर्वचने कृते सिद्धमेतदन्तरेणापि वचनं तत्तु नाश्रयितव्यमिति सूत्रमिदमारभ्यते । तेन ओजढदिति सिद्धं भवति * ॥

* तेनेत्यारभ्यैतावत्पर्यन्तं क्व चित्पुस्तके नास्ति ।

हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ २२ ॥

अकारपूर्वस्य हन्तिनकारस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकार आदेशो भवति । प्रहण्यते । परिहण्यते । प्रहणनम् । परिहणनम् । अत्पूर्वस्येति किम् । प्रघ्नन्ति । परिघ्नन्ति । तपरकरणं किम् । चिणि प्राघानि । पर्यघानि ॥

वमोर्वा ॥ २३ ॥

हन्तेरिति वर्त्तते । वकारमकारयोः परतो हन्तिनकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य वा णकारादेशो भवति । प्रहण्वः । परिहण्वः । प्रहन्वः । परिहन्वः । प्रहण्मः । परिहण्मः । प्रहन्मः । परिहन्मः * ॥

अन्तरदेशे ॥ २४ ॥

अन्तःशब्दादुत्तरस्य हन्तिनकारस्यात्पूर्वस्य णकारादेशो भवति अदेशाभिधाने । अन्तर्हण्यते । अन्तर्हणनं वर्त्तते । अदेशइति किम् । अन्तर्हननो देशः अत्पूर्वस्येत्येव । अन्तर्घ्नन्ति । तपरकरणं किम् । अन्तरघानि ॥

अयनं च ॥ २५ ॥

अन्तरदेशइति वर्त्तते । अयननकारस्य चान्तः शब्दादुत्तरस्य णकारादेशो भवति अदेशाभिधाने । अन्तरयणं वर्त्तते । अन्तरयणं शोभनम् । अदेशइत्येव । अन्तरयनो देशः ॥

छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ २६ ॥

पूर्वपदादिति वर्त्तते । ऋकारान्तादवग्रहात्पूर्वपदादुत्तरस्य णकारादेशो भवति छन्दसि विषये । नृमणाः । पितृयाणम् । अत्र हि नृमणा पितृयाणमिति ऋकारोवगृह्यते । अवग्रहग्रहणं किमर्थमुच्यते । यावता संहिताधिकार आध्यायपरिसमाप्तेरित्युक्तम् । विषयोपलक्षणार्थमवग्रहग्रहणं,मवगृह्यमाणाद्यथा स्यादनवगृह्यमाणान्मा भूत् । अपदान्ते चावग्रहो नास्ति ॥

नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ २७ ॥

नस् इत्येतस्य नकारस्य णकारादेशो भवति धातुस्थान्निमित्तादुत्तरस्योरुशब्दात्षुशब्दाच्च छन्दसि विषये । धातुस्थात्तावत् । अग्ने रक्षाणः । शिक्षाणो अस्मिन् । उरुशब्दात् । उरुणस्कृधि । षुशब्दात् । अभी षु णः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये । अस्मदादेशोयं नस्शब्दो बहुवचनस्य वस्नसाविति ॥

उपसर्गाद्बहुलम् ॥ २८ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नसो नकारस्य णकारादेशो भवति । प्रणः

---

* पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प इत्यधिकमन्यत्र ।

शूद्रः । प्रणसः प्रणो राजा । न च भवति । प्र नो मुञ्चतम् । बहुलग्रहणाद्भाषायामपि भवति । प्रणसंमुखम् * । उपसर्गाच्चेति नासिकाया नसादेशः ॥

कृत्यचः ॥ २९ ॥

कृत्स्थो यो नकारो ऽच उत्तरस्तस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति । अन मान अनीय अनि इनि निष्ठादेश एते णत्वं प्रयोजयन्ति । अन । प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । मान । प्रयायमाणम् । परियायमाणम् । अनीय । प्रयाणीयम् । परियाणीयम् । अनिः । अप्रयाणिः । अपरियाणिः । इनि । प्रयायिणौ । परियायिणौ । निष्ठादेशः । प्रहीणः । परिहीणः । प्रहीणवान् । परिहीणवान् । अच इति किम् । प्रभुग्नः । परिभुग्नः । भुजो कौटिल्ये । अस्य निष्ठाप्रत्ययः । ओदितश्चेति निष्ठानत्वम् । चोः कुरिति कुत्वे सिद्धं परिभुग्न इति † ॥ कृत्स्थस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ निर्विण्णोऽस्मि खलसङ्गेन । निर्विण्णोऽहमत्र वासेन ॥

णेर्विभाषा ॥ ३० ॥

ण्यन्ताद्यो विहितः कृत्प्रत्ययः तत्स्थस्य नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य विभाषा णकारादेशो भवति । प्रयापणम् । प्रयापनम् । परियापणम् । परियापनम् । प्रयाप्यमाणम् । प्रयाप्यमानम् । प्रयापणीयम् । प्रयापनीयम् । अप्रयापणिः । अप्रयापनिः । प्रयापिणौ । प्रयापिनौ । विहितविशेषणं किम् । प्रयाप्यमाणमित्यत्र यका व्यवधानेपि यथा स्यादिति ॥

हलश्चेजुपधात् ॥ ३१ ॥

कृत्यच इति वर्त्तते । हलादिर्यो धातुरिजुपधस्तस्मात्परो यः कृत्प्रत्ययः तत्स्थस्य नकारस्याच उत्तरस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य विभाषा णकारादेशो भवति । प्रकोपणम् । प्रकोपनम् । परिकोपणम् । परिकोपनम् । हल इति किम् । प्रेहणम् । प्रोहणम् । इजुपधादिति किम् । प्रवपणम् । परिवपणम् । कृत्यच इति नित्ये प्राप्ते विकल्पः । अच इत्येव । परिभुग्नः । इजुपधस्य सर्वस्य हलन्तत्वादिह हल्ग्रहणमादिविशेषणम् ॥

इजादेः सनुमः ॥ ३२ ॥

हल इति वर्त्तते । तेनेह सामर्थ्यात्तदन्तविधिः । इजादेः सनुमो हलन्ताद्धातोर्विहितो यः कृत्तत्स्थस्य नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारो भवति । प्रेङ्खणम् । परेङ्खणम् । प्रेङ्गणम् । परेङ्गणम् । प्रोम्भणम् । परोम्भणम् ।

---

* क्वचित्पुस्तके छन्दसीति निवृत्तं तेन भाषायामपि भवतीति पाठः ।

† क्वचिद्भुजो कौटिल्यइत्यारभ्यैतत्पर्यन्तं नास्ति ।

सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थं इजादेरेव सनुमो नान्यस्मादिति । प्रमङ्गनम् । परिमङ्गनम् । हल इत्यधिकाराद् ण्यन्ते नित्यं विध्यर्थमेतच्च भवति ॥

वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ ३३ ॥

उपसर्गादिति वर्त्तते । निंस निक्ष निन्द इत्येतेषां नकारस्योपसर्गस्थाच्चिमित्तादुत्तरस्य वा णकारादेशो भवति । प्रणिंसनम् । प्रनिंसनम् । प्रणिक्षणम् । प्रनिक्षणम् । प्रणिन्दनम् । प्रनिन्दनम् । णोपदेशत्वादेतेषां नित्ये प्राप्ते विकल्पः ॥

न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम् ॥ ३४ ॥

भा भू पू कमि गमि प्यायि वेप इत्येतेषामुपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य णकारादेशो न भवति । भा । प्रभानम् । परिभानम् । भू । प्रभवनम् । परिभवनम् । पू । प्रपवनम् । परिपवनम् । पूञ्ग्रहणं द्रष्टव्यम् । पूङो हि भवत्येव णत्वम् । प्रपवणं सोमस्येति । कमि । प्रकमनम् । परिकमनम् । गमि । प्रगमनम् । परिगमनम् । प्यायि । प्रप्यायनम् । परिप्यायनम् । वेप । प्रवेपनम् । परिवेपनम् ॥ ण्यन्तानां भादीनामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ प्रभापनम् । परिभापनम् ॥

षात्पदान्तात् ॥ ३५ ॥

षकारात्पदान्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो न भवति । निष्पानम् । दुष्पानम् । सर्पिष्पानम् । यजुष्पानम् । षादिति किम् । निर्णयः । पदान्तादिति किम् । कुष्णाति । पुष्णाति । पदे अन्तः पदान्त इति सप्तमीसमासोयं तेनेह न भवति । सुसर्पिष्केण । सुयजुष्केण । शेषाद्विभाषेति कप् ॥

नशेः षान्तस्य ॥ ३६ ॥

नेति वर्त्तते । नशेः षकारान्तस्य णकारादेशो न भवति । प्रनष्टः । परिनष्टः । षान्तस्येति किम् । प्रणश्यति । परिणश्यति । अन्तग्रहणं षान्तभूतपूर्वमात्रस्यापि यथा स्यात् । प्रनङ्क्ष्यति । परिनङ्क्ष्यति ॥

पदान्तस्य ॥ ३७ ॥

पदान्तो यो नकारस्तस्य णकारादेशो न भवति । वृक्षान् । प्लक्षान् । अरीन् । गिरीन् ॥

पदव्यवायेपि ॥ ३८ ॥

पदेन व्यवायः पदव्यवायः । पदव्यवधानम् । पदेन व्यवायेपि सति निमित्तनिमित्तिनोर्नकारस्य णकारादेशो न भवति । माषकुम्भवापेन । चतुरङ्गयोगेन । प्रावनद्धम् । पर्यवनद्धम् । प्रगाच्चयामः । परिगाच्चयामः ॥ पदव्य-

वाये ऽतद्धितइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण । गोश्च पुरीषइति मयट् । स्वादौ पूर्वं पदमिति गोशब्दः पूर्वपदं तेन व्यवायः ॥

क्षुभ्नादिषु च ॥ ३९ ॥

नेति वर्त्तते । क्षुभ्ना इत्येवमादिषु शब्देषु नकारस्य णकारादेशो न भवति । क्षुभ्नाति । अज्ञादेशस्य स्थानिवद्भावादिहापि प्रतिषेधो भवति । क्षुभ्नीतः । क्षुभ्नन्ति । नृनमनः । पूर्वपदात्संज्ञायामिति प्राप्तिः । छन्दस्यृदवग्रहादिति च प्राप्नोति । नन्दिन् । नन्दन । नगर । एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति । हरिनन्दी । हरिनन्दनः । गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयति । नरीनृत्यते । तृप्नु । तृप्नोति । नर्तन । गहन । नन्दन । निवेश । निवास । अग्नि । अनूप । एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति । परिनर्त्तनं परिगहनमिति संज्ञायां पूर्वपदात्संज्ञायामिति प्राप्नोति । परिनन्दनमित्यत्रोपसर्गादसमासेपीति प्राप्नोति । शरनिवेशः । शरनिवासः । शराग्निः । दर्भानूपः । इत्येताः संज्ञाः ॥ अचार्यादणत्वं च ॥ आचार्यभोगीनः । आचार्यानी * ॥ इरिकादिभ्यो वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥ इरिका । तिमिर । समीर । कुबेर ॥ हरि ॥ कर्म्मारइत्युत्तरपदवनशब्दस्यस्य संज्ञायाम् ॥ क्षुभ्नादिराकृतिगणः । अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु द्रष्टव्यः ॥

स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां सन्निपाते शकारचवर्गावादेशौ भवतः । स्तोः श्चुनेति यथासंख्यमत्र नेष्यते । सकारस्य शकारेण चवर्गेण द्वाभ्यामपि संनिपाते शकारो भवति । तवर्गस्यापि च शकारेण चवर्गेण च संनिपाते चवर्गो भवति । आदेशे तु यथासंख्यमिष्यते । सकारस्य शकारस्तवर्गस्य च चवर्ग इति । सकारस्य शकारेण संनिपाते । वृक्षश्शेते । प्लक्षश्शेते । तस्यैव चवर्गेण । वृक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति । वृक्षश्छादयति । प्लक्षश्छादयति । तवर्गस्य शकारेण । अग्निचिच्छेते । सोमसुच्छेते । तस्यैव चवर्गेण । अग्निचिच्चिनोति । सोमसुच्चिनोति । अग्निचिच्छादयति । सोमसुच्छादयति । अग्निचिज्जयति । सोमसुज्जयति । अग्निचिज्झकारम् । सोमसुज्झकारम् । अग्निचिञ्जकारः । सोमसुञ्जकारः । मस्जेः मज्जति । भ्रस्जेः भृज्जति । व्रश्चेर्वृश्चति । यज्ञः यज्ञः । याचेर्याच्ञा । शादिति प्रतिषेधो ज्ञापकः संख्यातानुदेशाभावस्य । स्तोः श्चाविति सप्तमीनिर्द्देशो न कृतः । पूर्वेण परेण च श्चुना संनिपाते श्चुत्वं यथा स्यादिति ॥

---

* तथा हायनस्य नेष्यते । त्रिहायनः चतुर्हायनः कर्मार इति चोत्तरपदस्य संज्ञायाम् इत्यधिकं पुस्तकान्तरे ।

ष्टुना ष्टुः ॥ ४१ ॥

स्तोरिति वर्त्तते । सकारतवर्गयोः षकारटवर्गाभ्यां संनिपाते षकारटवर्गावादेशौ भवतः । अत्रापि तथैव संख्यातानुदेशाभावः । षकारेण सकारस्य । वृक्षष्षण्डे । प्लक्षष्षण्डे । तस्यैव टवर्गेण । वृक्षष्टीकते । प्लक्षष्टीकते । वृक्षष्ठकारः । प्लक्षष्ठकारः । तवर्गस्य षकारेण । पेष्टा । पेष्टुम् । पेष्टव्यम् । कृषीष्ट । कृषीष्ठाः । तस्यैव टवर्गेण । अग्निचिट्टीकते । सोमसुट्टीकते । अग्निचिट्ठकारः । सोमसुट्ठकारः । अग्निचिड्डीनः । सोमसुड्डीनः । अग्निचिट् ढौकते । सोमसुट ढौकते । अग्निचिण्णकारः । सोमसुण्णकारः । अटट् । अट्टति । अड्ड् । अड्डति ॥

न पदान्ताट्टोरनाम् ॥ ४२ ॥

पदान्ताट्टवर्गादुत्तरस्य स्तोः ष्टुत्वं न भवति नामित्येतद्वर्जयित्वा । श्वलिट्साये । मधुलिट् तरति । पदान्तादिति किम् । ईड स्तुतौ । ईट्टे । टोरिति किम् । सर्पिष्टमम् । अनामिति किम् । षण्णाम् । अत्यल्पमिदमुच्यते ॥ अनाम्नवतिनगरीणामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ षण्णाम् । षण्णवतिः । षण्णगरी ॥

तोः षि ॥ ४३ ॥

नेति वर्त्तते । तवर्गस्य षकारे यदुक्तं तन्न भवति । अग्निचित्षण्डे । भवान्षण्डे । महान्षण्डे ॥

शात् ॥ ४४ ॥

तोरिति वर्त्तते । शकारादुत्तरस्य तवर्गस्य यदुक्तं तन्न भवति । प्रश्नः । विश्नः ॥

यरोनुनासिकेनुनासिको वा ॥ ४५ ॥

पदान्तग्रहणमनुवर्त्तते । यरः । पदान्तस्यानुनासिके परतो वानुनासिकादेशो भवति । वाग्नयति । वाङ्नयति । श्वलिण्नयति । श्वलिड्नयति । अग्निचिद्नयति । अग्निचिन्नयति । त्रिष्टुब्नयति । त्रिष्टुम्नयति । पदान्तस्येत्येव । वेद्मि । क्षुभ्नाति ॥ यरोनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यवचनं कर्त्तव्यम् ॥ * ॥ वाङ्मात्रम् * । कियन्मात्रम् । व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात्सिद्धम् ॥

अचो रहाभ्यां द्वे ॥ ४६ ॥

यर इति वर्त्तते । अच उत्तरौ यौ रेफहकारौ ताभ्यामुत्तरस्य यरो द्वे भवतः । अर्क्कः । मर्क्कः । ब्रह्म्मा । अपह्नुते । अच इति किम् । ह्नुते । ह्मलयति ॥

अनचि च ॥ ४७ ॥

---

* वाङ्मयमिति क्वचित्पाठः ।

अच इति वर्त्तते । यर इति च । अच उत्तरस्य यरो द्वे भवतोऽनचि परतः । दद्ध्यत्र । मद्ध्वत्र । अच इत्येव । स्मितम् । स्मातम् ॥ यणो मयो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ केचिदत्र यण इति पञ्चमी मय इति षष्ठीति व्याचक्षते । तेषामुल्क्का वाल्मीक्क इत्युदाहरणम् । अपरे तु यण इति षष्ठी मय इति पञ्चमीति तेषां दध्य्यत्र मध्व्वत्रेत्युदाहरणम् ॥ शरः खयो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अत्रापि यदि शर इति पञ्चमी खय इति षष्ठी स्यात्स्यातित्युदाहरणम् । अथ वा खय उत्तरस्य शरो द्वे भवतः । वत्स्सरः । अप्स्सराः ॥ अवसाने च यरो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वाक्क् । वाक् । त्वक्क् । त्वक् । षट्ट् । षट् । तत्त् । तत् ॥

नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ॥ ४८ ॥

आदिनी परत आक्रोशे गम्यमाने पुत्रशब्दस्य न द्वे भवतः । अनचि चेति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । पुत्रादिनी त्वमसि पापे । आक्रोशइति किम् । तत्त्वकथने द्विर्वचनं भवत्येव । पुत्रानत्तीति पुत्रादिनी । शिशुमारी व्याघ्री ॥ तत्परे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पुत्रपुत्रादिनि त्वमसि पापे ॥ वा हतजग्धपरइति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पुत्त्रहती । पुत्रहती । पुत्त्रजग्धी । पुत्रजग्धी ॥ चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः ॥ * ॥ चयो द्वितीया भवन्ति शरि परतः पौष्करसादेराचार्यस्य मतेन । तकारस्य थकारः । वथ्सः । ककारस्य । खकारः । अख्षरम् । पकारस्य फकारः । अफ्सराः ॥

शरोऽचि ॥ ४९ ॥

नेति वर्त्तते । शरोऽचि परतो न द्वे भवतः । अचो रहाभ्यामिति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते । कर्षति । वर्षति । आकर्षः । अक्षदर्शः । अचीति किम् । दश्श्यते ॥

त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ ५० ॥

त्रिप्रभृतिषु वर्णेषु संयुक्तेषु शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन न भवति । इन्द्रः । चन्द्रः । उष्ट्रः । राष्ट्रम् । भ्राष्ट्रम् ॥

सर्वत्र शाकल्यस्य ॥ ५१ ॥

शाकल्याचार्यस्य मतेन सर्वत्र द्विर्वचनं न भवति । अर्कः । मर्कः । ब्रह्मा । अपह्नुते ॥

दीर्घादाचार्याणाम् ॥ ५२ ॥

दीर्घादुत्तरस्याचार्याणां मतेन न द्वित्वं भवति । दात्रम् । पात्रम् । मूत्रम् । सूत्रम् ॥

झलां जश्झशि ॥ ५३ ॥

झलां स्थाने जशादेशो भवति झशि परतः । लब्धा । लब्धुम् । लब्धव्यम् । दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । बोद्धा । बोद्धुम् । बोद्धव्यम् । झशीति किम् । दत्तः । दत्थः । दध्मः ॥

अभ्यासे चर्च ॥ ५४ ॥

अभ्यासे वर्त्तमानानां झलां चरादेशो भवति चकाराज्जश्च । चिखनिषति । चिच्छित्सति । टिठकारयिषति । तिष्ठासति । पिफकारयिषति । बुभूषति । जिघत्सति । डुढौकिषते । प्रकृतिचरां प्रकृतिचरो भवन्ति । चिचीषति । टिटीकिषते । तितनिषति । प्रकृतिजशां प्रकृतिजशो भवन्ति । जिजनिषति । बुबुधे । ददौ । डिड्ये ॥

खरि च ॥ ५५ ॥

खरि च परतो झलां चरादेशो भवति । झल्ग्रहणं नानुवर्त्तते पूर्वसूत्रे चानुकृष्टत्वात् । भेत्ता । भेत्तुम् । भेत्तव्यम् । युयुत्सते । आरिप्सते । आलिप्सते ॥

वावसाने ॥ ५६ ॥

झलां चरिति वर्त्तते । अवसाने वर्त्तमानानां झलां वा चरादेशो भवति । वाक् । वाग् । त्वक् । त्वग् । श्वलिट् । श्वलिड् । त्रिष्टुप् । त्रिष्टुब् ॥

अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ॥ ५७ ॥

अणः अप्रगृह्यसंज्ञस्यावसाने वर्त्तमाने वानुनासिकादेशो भवति । दधि २ । मधु २ । कुमारी २ । अण इति किम् । कर्तृ । हर्तृ । अप्रगृह्यस्येति किम् । अग्नी । वायू ॥

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ॥ ५८ ॥

अनुस्वारस्य ययि परतः परसवर्ण आदेशो भवति । शङ्किता । शङ्कितुम् । शङ्कितव्यम् । उञ्छिता । उञ्छितुम् । उञ्छितव्यम् । कुण्डिता । कुण्डितुम् । कुण्डितव्यम् । नन्दिता । नन्दितुम् । नन्दितव्यम् । कम्पिता । कम्पितुम् । कम्पितव्यम् । इह कुर्वन्ति वृषन्ति इत्यत्र णत्वस्यासिद्धत्वात्पूर्वं नकारस्यानुस्वारः क्रियते । तस्यापि । परसवर्णेन पुनर्नकार एव भवति । तस्याप्यसिद्धत्वात्पुनर्णत्वं न भवति । एवमनुस्वारीभूतो णत्वमतिक्रामतीति । ययीति किम् । आक्रंस्यते । आचिक्रंसते ॥

वा पदान्तस्य ॥ ५९ ॥

पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परतो वा परसवर्णादेशो भवति । तङ् कथ-ञ्चिञ्चपक्षण्डयमानन्नभःस्थम्पुरुषो वधीत् । तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभःस्थं पुरुषोवधीत् ॥

तोर्लि ॥ ६० ॥

तवर्गस्य लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति । अग्निचिल्लुनाति । सोमसुल्लुनाति । भवाँल्लुनाति । महाँल्लुनाति ॥

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ॥ ६१ ॥

सवर्ण इति वर्त्तते । उद उत्तरयोः स्था स्तम्भ इत्येतयोः पूर्वसवर्णादेशो भवति । उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । स्तम्भेः खल्वपि । उत्तम्भिता । उत्तम्भितुम् । उत्तम्भितव्यम् । स्थास्तम्भोरिति किम् । उत्स्नातः ॥ उदः पूर्वसवर्णत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अग्ने दूरमुत्कन्दः ॥ रोगे चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उत्कन्दको नाम रोगः । कन्दतेर्वा धात्वन्तरस्यैतद्रूपम् ॥

झयो होन्यतरस्याम् ॥ ६२ ॥

झय उत्तरस्य हकारस्य पूर्वसवर्णादेशो भवति अन्यतरस्याम् । वाग्घसति । वाग् हसति । श्वलिड् ढसति । श्वलिड् हसति । अग्निचिद्धसति । अग्निचिद् हसति । सोमसुद्धसति । सोमसुद् हसति । त्रिष्टुब्भसति । त्रिष्टुब् हसति । झय इति किम् । प्राङ् हसति । भवान्हसति ॥

शश्छोटि ॥ ६३ ॥

झय इति वर्त्तते । अन्यतरस्यामिति च । झय उत्तरस्य शकारस्याटि परतश्छकारादेशो भवति अन्यतरस्याम् । वाक्छेते । वाक् शेते । अग्निचिच्छेते । अग्निचित् शेते । सोमसुच्छेते । सोमसुत् शेते । श्वलिट् छेते । श्वलिट् शेते । त्रिष्टुप्छेते । त्रिष्टुप् शेते ॥ छत्वममीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ किं प्रयोजनम् । तच्छ्लोकेन तच्छ्मश्रुणेत्येवमर्थम् ॥

हलो यमां यमि लोपः ॥ ६४ ॥

अन्यतरस्यामिति वर्त्तते । हल उत्तरेषां यमां यमि परतो लोपो भवति अन्यतरस्याम् । शय्या इत्यत्र द्वौ यकारौ क्रमजस्तृतीयस्तत्र मध्यमस्य वा लोपो भवति । शय्या । शय्य्या । अदितेरपत्यमादित्य इत्यत्र तकारात्पर एको यकारो यणो मय इति क्रमजो द्वितीयः । तत्र मध्यमस्य वा लोपो भवति । आदित्यो देवता अस्य स्थालीपाकस्येति आदित्यः । आदित्य इत्यत्रापि

द्वौ यकारौ क्रमजस्तृतीयः । तत्र मध्यमस्य मध्यमयोर्वा लोपो भवति । हल इति किम् । अचम् । यमामिति किम् । अग्निः । यमीति किम् । शार्ङ्गम् ॥

झरो झरि सवर्णे ॥ ६५ ॥

हल इति वर्त्तते हल उत्तरस्य झरो झरि सवर्णे परतो लोपो भवति अन्यतरस्याम् । प्रत्तम्अवत्तमित्यत्र त्रयस्तकाराः । क्रमजश्चतुर्थः । तत्र मध्यमस्य मध्यमयोर्वा लोपो भवति । मरुत्त इत्यत्र चत्वारस्तकाराः क्रमजः पञ्चमस्तत्र । मध्यमस्य मध्यमयोर्मध्यमानां वा लोपो भवति । मरुच्छब्दस्य ह्युपसंख्यानसामर्थ्यादच उपसर्गात्त इति तत्वं भवति । झर इति किम् । शार्ङ्गम् । झरीति किम् । प्रियपञ्च्नः । अल्लोपस्य च पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदिति स्थानिवद्भावप्रतिषेधादत्र चकारस्य ञकारे लोपः स्यात् । सवर्णइति किम् । तप्ता । तप्तुम् । तप्तव्यम् । सवर्णग्रहणसामर्थ्यादिह संख्यातानुदेशो न भवति । सवर्णमात्रे लोपो विज्ञायते । तेन शिण्ढि पिण्ढि इति ढकारे डकारस्य लोपो भवति ॥

उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ ६६ ॥

उदात्तादुत्तरस्यानुदात्तस्य स्वरितादेशो भवति । गार्ग्यः । वात्स्यः । पचति । पठति । अस्य स्वरितस्यासिद्धत्वादनुदात्तं पदमेकवर्जमित्येतन्न प्रवर्त्तते । तेनोदात्तस्वरितावुभावपि श्रूयेते ॥

नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥ ६७ ॥

उदात्तोदयस्य स्वरितोदयस्य चानुदात्तस्य स्वरितो न भवति । पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते । अगार्ग्यकाश्यपगालवानां मतेन । उदात्त उदयो यस्मात्स उदात्तोदयः । उदात्तपर इत्यर्थः । एवं स्वरितोदयः । उदात्तोदयस्तावत् । गार्ग्यस्तत्र । वात्स्यस्तत्र । तत्रशब्द आद्युदात्तः । तस्मिन्नुदात्ते परतो गार्ग्यशब्दः स्वरितो न भवति । स्वरितोदयः । गार्ग्यः क्व । वात्स्यः क्व । क्वशब्दः स्वरितः तस्मिन्परतो ऽनुदात्तः स्वरितो न भवति । अगार्ग्यकाश्यपगालवानामिति किम् । गार्ग्यस्तत्र । गार्ग्यः क्व । तेषां हि मतेन स्वरितो भवत्येव । उदात्तपरस्येति वक्तव्यउदयग्रहणं मङ्गलार्थम् । अनेकाचार्यसंकीर्तनं पूजार्थम् ॥

अ अ इति ॥ ६८ ॥

एकोत्र विवृतो ऽपरः संवृतस्तत्र विवृतस्य संवृतः क्रियते । अकारो विवृतः संवृतो भवति । वृक्षः । प्लक्षः । इह शास्त्रे कार्यार्थमकारो विवृतः

कदाचित इसका एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है स्वास्थ्य-उपाय। ग्रामीण प्रभावक्षेत्र में निर्धनता लहलहाती हरियाली में कैद रहती है। वहाँ की ...ली-खुली, विस्तृत जगह मानवीय अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण हेतु होती ...रिजन कॉलोनियों में वहाँ सड़ते कूड़े के ऊँचे-ऊँचे ढेर नहीं होते; ... कस्बों, शहरों की हरिजन कॉलोनियों की तुलना में इक्का दुक्का ही ... ही इसके पीछे चार पैसे की आमदनी की भावना हो। प्रत्येक ...के प्रयासों द्वारा गाँवों के बीचोबीच से निकलने वाली सड़क ...भव है। अत: मेरे निर्वाचन-क्षेत्र के गाँव (अपेक्षाकृत, ...स्कारक हैं।

...स्तियों (झोपड़पट्टियों) में यदि निजी तौर पर ...-सुथरा रखना चाहता है तो सवाल यह ...ये? इसके लिए म्युनिसिपल गार्बेज ... आवश्यकता होगी। ... गार्बेज कलेक्शन (बेतहाशा ...का समर्थक कोई भी नहीं ...लों, विशेष रूप से ...समस्या है दिन ...ोई समस्या ...ही नहीं,

उन्हें एक सटीक समाधान मिल गया है कि यदि सांसद कोई काम करने को कहते हैं, तो उसे कर दो; यदि सांसद नहीं कहते तो फिक्र कैसी? प्रशासन की तात्कालिक चिन्ता यह तथ्य नहीं है कि सांसद मलिन-बस्ती में नहीं रहते, न ही लघु अथवा दीर्घ शंका निवारण हेतु सार्वजनिक शौचालय उपयोग करते हैं, न ही सड़ांध से बचने की खातिर गैस-मास्क लगाते हैं; उनकी चिन्ता तो सांसद के तुष्टीकरण से है, उनकी चिन्ता तो सतही तौर पर काम निपटाने से है। क्या भारत के शहरी क्षेत्र में निर्धनों की सर्वाधिक विकट समस्या का कोई सटीक हल खोज पाना आई.ए.एस. संवर्ग की बुद्धि या बूते के वाकई परे है? अथवा ऐसा तो नहीं कि वे इसकी परवाह न करते हों? अब आप समझ गए होंगे कि क्यों मैं किसी दिन सर्वाधिक निरक्षर महिला के निर्वाचित होने पे प्राथमिकता दूंगा जिसमें सामाजिक दायित्व-बोध हो और जो अपनी मलिन बस्ती की आवश्यकताओं का ध्यान रखे बजाय सबसे मेधावी, छोटे से आई.ए.एस. के जो कॉलेज से ताज़ा-ताज़ा निकले, साफ-सुथरे चेहरे लिए, मद्रास या दिल्ली में अपनी तत्काल तैनाती को लालायित अथवा यदि उनके पिता आई.ए.एस. बपौती में पर्याप्त रूप से श्रेष्ठ हैं तो वे भी लन्दन या वॉशिंगटन में गद्देदार हनीमून एसाइनमेन्ट पर जाना ही चाहेंगे?

कुम्भकोणम् का विस्तार:– व्यक्तिगत स्वास्थ्य उपाय ... एकमात्र समस्या है सार्वजनिक स्वास्थ्य उपाय। कुम्भकोणम् के ... छिद्र चारों ओर घिरे रहते हैं जाम पड़े नालों से बनी स्थिर ... सीवेज, औद्योगिक कचरे के अलावा मनुष्य, पशु तथा ...

इस बहाने श्री रामाराव का राष्ट्रीय राजनीति में महत्व कम ... जाएगा।

उसी दिन हैदराबाद में नए मुख्यमंत्री श्री नायडू के स... रैली भी थी और श्री रामाराव के दूसरे विवाह की दूसरी ...

अब, इन उपजाऊ खेतिहर भूमि पर शहरी ... अंग्रेजों के ज़माने का सिंचाई-तन्त्र, कृषि ... गया है। शहर से गुजरते कुछ प्रमुख ... नगरीय अतिक्रमण ने इस तरह हड़... नहरें अब कुम्भकोणम् के शहरी ...

मैं अब ठीक से नहीं ... सिंचाई नहरें अब जल... जलनिकास तन्त्र ... सकता? तब ... से कोई ले... हल ...

...रहे हैं।

... दूसरे को नंगा करने का स्थिति पैदा हो चुकी है। नए विभागों के बँटवारे के बाद पैदा हुई इस स्थिति और उससे उपजा असंतोष फिलहाल थमता नहीं नजर आ रहा है। और अगर यह स्थिति अभी आम चुनाव से पूर्व ही बन चुकी है तो चुनाव प्रक्रिया के समय के हालातों के बारे में सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। पिछले विधानसभा चुनावों पर नजर डालें तो साफ परिलक्षित है कि कांग्रेस की ज्यादातर सीटें उनके ही विद्रोही उम्मीदवारों की वजह से विपक्षी दलों को भेंट हो गईं। सर्वाधिक प्रभाव महाराष्ट्र पर पड़ा जहां भितरघात के कारण ही कांग्रेस को शर्मनाक पराजय का सामना कर भाजपा-शिवसेना गठबंधन को सत्ता सौंपनी पड़ी। तबसे लेकर कांग्रेस के भीतर चल रही उठापटक निरंतर दे रही है।

महाराष्ट्र की सीमाओं से बाहर भी कांग्रेस की छवि साल के अंत में बुरी तरह बिखरी नजर आ रही है। नयना साहनी हत्याकांड ने विध्वंस के कगार पर खड़ी युवा कांग्रेस को अंतिम धक्का दे दिया है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि लोकसभा चनावों के सन्निकट होने के चलते युवा कांग्रेस का महत्व बड़े स्तर पर आंका जा रहा था, किन्तु इस बार युवा कांग्रेस ही कांग्रेस की स्थिति शर्मसार कर देने के लिए पर्याप्त होगी। और अब ताजातरीन घटनाक्रम में पूर्व आंतरिक सुरक्षा राज्यमंत्री राजेश पायलट बनाम चंद्रास्वामी का मामला राजनीतिक हलकों में प्रमुखता से लिया जा रहा है। पायलट ने कथित तांत्रिक चंद्रास्वामी के विभिन्न कार्यकलापों की जांच के लिए सी. बी. आई. को निर्देशित किया था। कभी राव के निकटतम लोगों में से एक रहे पायलट सर्वप्रथम कश्मीर मुद्दे पर गृहमंत्री चह्वाण से हुए मनमुटाव के कारण चर्चा में आए थे। कश्मीर जैसे जटिल मुद्दे के समाधान के तरीकों को लेकर केंद्रीय गृहमंत्री और उनके कनिष्ठ राज्यमंत्री ने सार्वजनिक रूप से परस्पर टकराव का प्रभार छीनकर उन्हें वन एवं पर्यावरण जैसा राजनीतिक [illegible] विभाग सौंप दिया, परंतु गृह मंत्रालय से हटाए जाने से [illegible] चंद्रास्वामी के विरुद्ध सी. बी. आई. जांच का निर्देश [illegible] विस्फोट कर दिया जिसकी राजनीतिक धमक कांग्रेस को [illegible] महसूस की जा रही है।

पिछले एक लम्बे अंतराल से चंद्रास्वामी उच्चस्तरीय राजनीतिक उठापटक के प्रमुख संचालक की भूमिका [illegible] माफिया स्तरीय नेटवर्क बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। [illegible] सुल्तान, अदनान खागोशी और टिनी रोलैण्ड्स जैसे नाम [illegible] जाते रहे हैं और अब सी. बी. आई. बंबई बम कांड के [illegible] माफिया सरगना दाउद इब्राहिम और चंद्रास्वामी के संबंधों [illegible] है। जहां तक अपने देश की बात है तो चंद्रास्वामी के राजनीतिक [illegible] की सीमाएं दूर-दूर तक फैली हुई हैं। चंद्रास्वामी स्वयं प्रधान[illegible] एक लंबे समय से संबंधों का दावा करते हैं, एक ऐसा दावा [illegible]

गरीबी हटाने के सटीक उपाय

अपने निर्वाचन क्षेत्र के एक कस्बे की गरीबी से जुड़ी समस्याओं की चर्चा कर रहे लेखक बता रहे हैं कि इन समस्या[illegible]

मेरे निर्वाचन-क्षेत्र का सबसे बड़ा कस्बा कुम्भकोणम् है। अपने देश के अधिकांश अन्य कस्बों-शहरों की ही भाँति इसके भी हिस्से में चौड़े-विस्तृत मार्गों के दोनों तरफ वैभवशाली भवन हैं, जिसमें सुन्दर-सुन्दर लोग रहते हैं और मुर्गी के दड़बों जैसे छोटे-छोटे झोपड़ों के झुण्ड, जिनमें भी संयोगवश लोग ही रहते हैं। शहरी निर्धनता से अधिक अपमानजनक और कोई बात नहीं होती। गाँव-देहात में निर्धनता अपने समकक्ष अन्य समस्याओं से सम्भवतया कम पीड़ादायी होती है। शायद इसी कारण, यकीनन गाँवों की निर्धन जनता ने पहले पहल ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर कस्बाई इलाकों में बसना शुरू किया। और यह भी सही है कि भारतवर्ष के शहरी क्षेत्रों में निर्धनता से बचने की आशा कुछ ज्यादा है, कुछ वास्तविक है। कम से कम उनके लिए जो निजी आर्थिक उन्नति की गाड़ी पर रेंगते, घिसटते चढ़ने की अक्ल रखते हैं अथवा खुशनसीब होते हैं। किन्तु चाहे मलिन बस्ती, झोपड़[illegible]

फिर भी कुम्भकोणम् की ३६ मलिन बस्तियों में जहाँ भी मैं जाता हूँ, जिस पहली माँग का सामना होता है, वह एक-दूसरे की विपरीतार्थी होती है। जहाँ कहीं भी सार्वजनिक शौचालयों की सुविधा नहीं है, वहाँ इन सुविधाओं की माँग प्राथमिकता के आधार पर होती है। जहाँ सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण हो चुका है, उन्हें वहाँ से हटाये जाने की मांग प्राथमिकता के आधार पर हो रही है। वजह है कि शौचालय के निर्माण हेतु बजट का छोटा सा भाग तय करने से आसान कुछ और है नहीं, और पी.डब्ल्यू.डी. (लोक निर्माण विभाग) सचमुच इसे बनाना जानता है। [illegible] चुनौती तो इसे बरकरार रखने की है। इस समस्या का सटी[illegible] पाने में नौकरशाह तबका (आई.ए.एस. संवर्ग) पूरी त[illegible] उनसे किसी शौचालय-विशेष को साफ कराने के [illegible] दिन सुबह तक वे इसे करा देंगे। यदि उनसे पूछा [illegible] क्यों नहीं कराई तो [illegible]

पदार्थ डूबते-उतराते रहते हैं। गन्दगी और कीचड़ के [illegible] बसते हैं, वास्तविक मनुष्य हमारे-आप जैसे नर-नारी [illegible] जो कीच भरे तालों की ऊपरी, भद्दी पर्त अलग कर[illegible] कपड़े तथा कभी-कभी खुद को धो लेते हैं और कभी तो [illegible] बुझा लेते हैं।

मैंने इसकी वजह पूछी। मुझे बताया गया कि समस्या [illegible] वर्षों (अर्थात् पिछले तीन दशकों या उससे अधिक) में कम[illegible] व्यवस्थित विस्तार हुआ। शहर की नगरीय सीमाओं का [illegible] रूप से अनाधिकृत मलिन बस्तियों में न होकर [illegible] गैर-पंजीकृत मध्यवर्गीय कॉलोनियों के रूप में हुआ जहाँ [illegible] समय खेती-बारी होती थी। इसी कारण, [illegible]